ॐ

सर्वज्ञवीतरागाय नमः।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत

श्री

प्रवचनसार

मूल गाथा, संस्कृत छाया, गुजराती पद्यानुवाद,
श्री अमृतचंद्राचार्यदेवविरचित 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृत टीका और
उसके गुजराती अनुवादके हिन्दी रूपान्तर सहित

卐

: गुजराती अनुवादक :

पंडितरत्न श्री हिंमतलाल जेठालाल शाह (बी. एससी.)

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

卐

: हिन्दी रूपान्तरकार :

पं. परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ

ललितपुर (उ. प्र.)

卐

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

❀ भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-८७ ❀

ॐ

सर्वज्ञवीतरागाय नमः।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत

श्री

प्रवचनसार

मूल गाथा, संस्कृत छाया, गुजराती पद्यानुवाद,
श्री अमृतचंद्राचार्यदेवविरचित 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृत टीका और
उसके गुजराती अनुवादके हिन्दी रूपान्तर सहित

卐

: गुजराती अनुवादक :
पंडितरत्न श्री हिंमतलाल जेठालाल शाह (बी. एससी.)
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

卐

: हिन्दी रूपान्तरकार :
पं. परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ
ललितपुर (उ. प्र.)

卐

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

विगत छह संस्करण : प्रति 11,600

प्रस्तुत सातवाँ संस्करण : 1000

वि. नि. सं. 2533 वि. सं. 2066 ई. स. 2010

मुद्रक:

स्मृति ऑफसेट

सोनगढ-364250

Phone : (02846) 244081

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

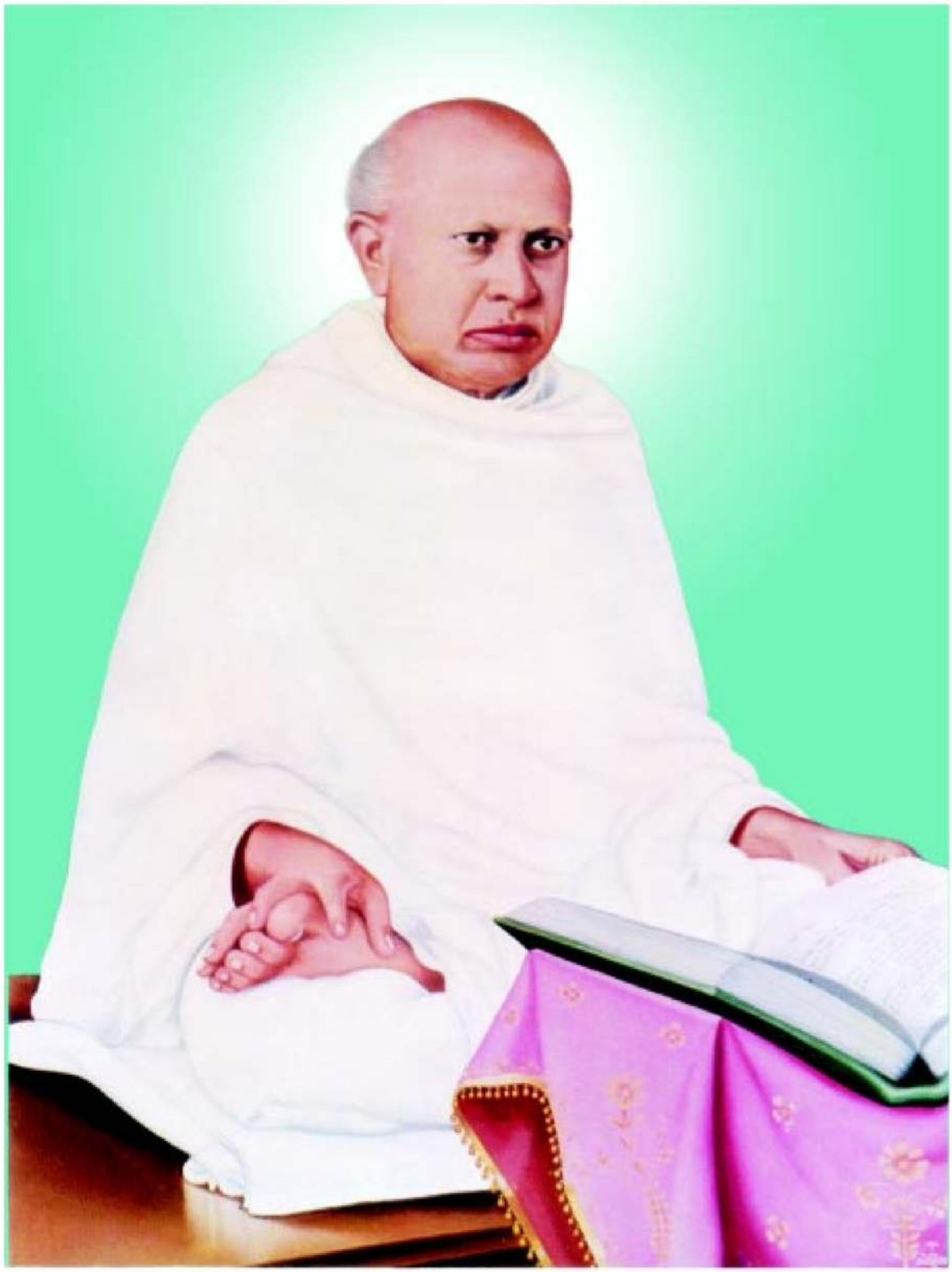

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

[२]

अर्पण

जिन्होंने इस पामर पर अपार उपकार किया है, जिनकी प्रेरणासे प्रवचनसारका यह अनुवाद तैयार हुआ है, जो जिनप्रवचनके परम भक्त एवं मर्मज्ञ हैं, जो जिनप्रवचनके हार्दका अनुभव कर निज कल्याण साथ रहे हैं और भारतवर्षके भव्य जीवोंको कल्याणपन्थमें लगा रहे हैं, जो जिनप्रवचनके सारस्वरूप भेदविज्ञानके और शुद्धात्मप्रवृत्तिके इस कालमें इस क्षेत्रमें सर्वोत्कृष्ट प्रभावक हैं, उन परमपूज्य परमोपकारी सद्गुरुदेव (श्री कानजीस्वामी)को यह अनुवाद-पुष्प अत्यन्त भक्ति-भावसे समर्पित करता हूँ।

—अनुवादक
(हिंमतलाल जेठालाल शाह)

* श्री सद्गुरुदेव-स्तुति *

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना अे नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो.

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना!
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां.

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिदघन विषे कांई न मळे.

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयुं 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
—रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा.

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं.

(स्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं,—मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

— रचयिता : हिंमतलाल जेठालाल शाह

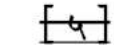

ॐ

नमः श्रीप्रवचनसारपरमागमाय।

प्रकाशकीय निवेदन

[छठवाँ संस्करण]

प्रवर्तमानतीर्थप्रणेता वीतराग सर्वज्ञ भगवान श्री महावीरस्वामीकी ॐकार दिव्यध्वनिसे प्रवाहित और गणधरदेव श्री गौतमस्वामी आदि गुरुपरम्परा द्वारा प्राप्त हुए शुद्धात्मानुभूतिप्रधान अध्यात्मप्रवाहको झेलकर, तथा विदेहक्षेत्रस्थ जीवन्तस्वामी श्री सीमन्धरजिनवरकी प्रत्यक्ष वन्दना एवं देशनाश्रवणसे पुष्ट कर, श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवने उसे समयसारादि परमागमरूप भाजनोंमें संगृहीत करके अध्यात्मतत्त्वपिपासु जगत पर सातिशय महान उपकार किया है।

स्वानुभवप्रधान–अध्यात्मश्रुतलब्धिधर भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा प्रणीत प्राभृतरूप प्रभूत श्रुतरचनाओंमें श्री समयसार, श्री प्रवचनसार, श्री पंचास्तिकायसंग्रह, श्री नियमसार और श्री अष्टप्राभृत—यह पाँच परमागम मुख्य हैं। ये पाँचों परमागम श्री कुन्दकुन्दअध्यात्म-भारतीके अनन्य परमोपासक, अध्यात्मयुगप्रवर्तक, परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके सत्प्रभावनोदयसे श्री दि० जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट (सोनगढ़) एवं अन्य ट्रस्ट द्वारा गुजराती एवं हिन्दी भाषामें अनेक बार प्रकाशित हो चुके हैं। उनके ही सत्प्रतापसे ये पाँचों ही परमागम, अध्यात्म–अतिशयक्षेत्र श्री सुवर्णपुरी (सोनगढ़)में भगवान महावीरके पचीसवें शताब्दी–समारोहके अवसर पर (वि. सं. २०३०में), विश्वमें अद्वितीय एवं दर्शनीय ऐसे 'श्री महावीर–कुन्दकुन्द–दिगम्बर–जैन–परमागममंदिर'की भव्य दिवारों पर लगे संगेमर्मरके धवल शिलापट पर (आद्य चार परमागम टीका सहित और अष्टप्राभृतकी मूल गाथा) उत्कीर्ण कराकर चिरंजीवी किये गये हैं। अधुना, परमागम श्री प्रवचनसार एवं श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवकी 'तत्त्वप्रदीपिका' टीकाके गुजराती अनुवादके हिन्दी रूपान्तरका यह छठवाँ संस्करण अध्यात्मतत्त्वप्रेमियोंके हाथमें प्रस्तुत करते हुए श्रुतप्रभावनाका विशेष आनन्द अनुभूत होता है।

जिनके पुनीत प्रभावनोदयसे श्री कुन्दकुन्द–अध्यात्मभारतीका इस युगमें पुनरभ्युदय हुआ है ऐसे हमारे परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी उपकारमहिमा क्या कही जाये? उनहीने भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा प्ररूपित एवं तदाम्नायानुवर्ती भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा समयसार, प्रवचनसार आदि परमागमोंमें सुसंचित स्वानुभव

मुद्रित व शुद्धात्मद्रव्यप्रधान अध्यात्मतत्त्वामृतका स्वयं पान करके, इस कलिकालमें अध्यात्मसाधनाके पावन पथका पुनः समुद्योत किया है, तथा रूढिप्रस्त साम्प्रदायिकतामें फँसे हुए जैनजगत पर, द्रव्यदृष्टिप्रधान स्वानुभूतिमूलक वीतराग जैनधर्मको प्रकाशमें लाकर, अनुपम, अद्‌भुत एवं अनन्त–अनन्त उपकार किये हैं। ऐसे परमोपकारी, स्वानुभवरसभीनी अध्यात्मविद्याके दाता, पूज्य सद्‌गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने इस प्रवचनसार परमागम पर अनेक बार प्रवचनों द्वारा उसके गहन तात्त्विक रहस्योंका उद्‌घाटन किया है। इस शताब्दीमें अध्यात्मरुचिका एवं अध्यात्मतत्त्वज्ञानका जो नवयुग प्रवर्त रहा है उसका श्रेय पूज्य गुरुदेवश्रीको ही है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके पुनीत प्रतापसे ही मुमुक्षुजगतको जैन अध्यात्मश्रुतके अनेक परमागमरत्न अपनी मातृभाषामें प्राप्त हुए हैं। श्री प्रवचनसारका गुजराती अनुवाद (जिसका यह हिन्दी रूपान्तर है) भी, श्री समयसारके गुजराती गद्यपद्यानुवादकी भाँति, प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनके बड़े भाई अध्यात्मतत्त्वरसिक, विद्वद्रत्न, आदरणीय पं० श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाहने, पूज्य गुरुदेव द्वारा दिये गये शुद्धात्मदर्शी उपदेशामृतबोध द्वारा शास्त्रोंके गहन भावोंको खोलनेकी सूझ प्राप्त कर, अध्यात्मजिनवाणीकी अगाध भक्तिसे सरल भाषामें—आबालवृद्धग्राह्य, रोचक एवं सुन्दर ढंगसे—कर दिया है। सम्माननीय अनुवादक महानुभाव अध्यात्मरसिक विद्वान होनेके अतिरिक्त तत्त्वविचारक, गम्भीर आदर्श आत्मार्थी, वैराग्यशाली, शान्त, गम्भीर, निःस्पृह, निरभिमानी एवं विवेकशील सज्जन हैं; तथा उनमें अध्यात्मरसभरा मधुर कवित्व भी है कि जिसके दर्शन उनके पद्यानुसार एवं अन्य स्तुतिकाव्योंसे स्पष्टतया होते है। वे बहुत वर्षों तक पूज्य गुरुदेवके समागममें रहे हैं, और पूज्य गुरुदेवके अध्यात्मप्रवचनोंके श्रवण एवं स्वयंके गहन मनन द्वारा उन्होंने अपनी आत्मार्थिताकी बहुत पुष्टि की है। तत्त्वार्थके मूल रहस्यों पर उनका मनन अति गहन है। शास्त्रकार एवं टीकाकार उभय आचार्यभगवन्तोंके हृदयके गहन भावोंकी गम्भीरताको यथावत् सुरक्षित रखकर उन्होंने यह शब्दशः गुजराती अनुवाद किया है; तदुपरान्त मूल गाथासूत्रोंका भावपूर्ण मधुर गुजराती पद्यानुवाद भी (हरिगीत छन्दमें) उन्होंने किया है, जो इस अनुवादकी अतीव अधिकता लाता है और स्वाध्यायप्रेमियोंको बहुत ही उपयोगी होता है। तदुपरान्त जहाँ आवश्यकता लगी वहाँ भावार्थ द्वारा या पदटिप्पण द्वारा भी उन्होंने अति सुन्दर स्पष्टता की है।

इस प्रकार भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवके समयसारादि उत्तमोत्तम परमागमोंके अनुवादका परम सौभाग्य, पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीकी परम कृपासे, आदरणीय श्री

हिम्मतभाईको सम्प्राप्त हुआ एतदर्थ वे सचमुच अभिनन्दनीय हैं। पूज्य गुरुदेवश्रीकी कल्याणी प्रेरणा झेलकर अत्यन्त परिश्रमपूर्वक ऐसा सुन्दर भाववाही अनुवाद कर देनेके बदलेमें संस्था एवं समग्र अध्यात्मजिज्ञासु समाज उनका जितना उपकार माने वह कम है। यह अनुवाद अमूल्य है, क्योंकि कुन्दकुन्दभारती एवं गुरुदेवके प्रति मात्र परम भक्तिसे प्रेरित होकर अपनी अध्यात्मरसिकता द्वारा किये गये इस अनुवादका मूल्य कैस आंका जाये ? प्रवचनसारके इस अनुवादरूप महान कार्यके बदलेमें संस्था द्वारा, कुछ कीमती भेटकी स्वीकृतिके लिये, उनको आग्रहपूर्ण अनुरोध किया गया था तब उन्होंने वैराग्यपूर्वक नम्रभावसे ऐसा प्रत्युत्तर दिया था कि ''मेरा आत्मा इस संसारपरिभ्रमणसे छूटे इतना ही पर्याप्त है, दूसरा मुझे कुछ बदला नहीं चाहिये''। उनकी यह निस्पृहता भी अत्यन्त प्रशंसनीय है। उपोद्घातमें भी अपनी भावना व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं कि—''यह अनुवाद मैंने श्री प्रवचनसार प्रति भक्तिसे और पूज्य गुरुदेवश्रीकी प्रेरणासे प्रेरित होकर, निज कल्याणके लिये, भवभयसे डरते डरते किया है''।

श्री प्रवचनसार शास्त्रके दूसरे संस्करणके अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्रीके अन्तेवासी ब्रह्मचारी श्री चन्दूलालभाई खीमचन्द झोबालिया द्वारा, हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे संशोधित श्री जयसेनाचार्यदेवकृत 'तात्पर्यवृत्ति' संस्कृत टीका भी इस हिन्दी संस्करणमें जोड दी है। हिन्दी संस्करणके लिये गुजराती अनुवादका हिन्दी रूपान्तर पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ (ललितपुर)ने किया है, तदर्थ उनके प्रति उपकृतभाव तथा इस संस्करणके सुन्दर मुद्रणके लिये 'किताबघर' राजकोटके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

इस शास्त्रमें आचार्यभगवन्तोंने कहे हुए अध्यात्ममन्त्रको गहराईसे समझकर, भव्य जीव शुद्धोपयोगधर्मको प्राप्त करो—यही हार्दिक कामना।

भादों कृष्णा २, वि. सं. २०४९,
'७९वीं बहिनश्री–चम्बाबेन–जन्मजयन्ती'

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दि० जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ-३६४२५०(सौराष्ट्र)

❀ प्रकाशकीय निवेदन ❀

[सातवाँ संस्करण]

इस ग्रंथ प्रवचनसारका अगला संस्करण समाप्त हो जानेसे मुमुक्षुओंकी मांगको ध्यानमें रखकर यह नवीन सातवां संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस संस्करणमें अगले संस्करणकी क्षतियोंको सुधारनेका यथायोग्य प्रयत्न किया गया है।

प्रवचनसारमें बताये हुए भावोंको पूज्य गुरुदेवश्रीने जिस प्रकार खोला है उस प्रकार यथार्थ समझकर, अन्तरमें उसका परिणमन करके अतीन्द्रिय ज्ञानकी प्राप्ति द्वारा अतीन्द्रिय आनन्दको सब जीव आस्वादन करे यह अंतरीक भावना सह.....

महावीर निर्वाणोत्सव
दीपावली
ता. २६-१०-२०११

साहित्यप्रकाशनविभाग
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़-364250 (सौराष्ट्र)

[९]

❀ जिनजीनी वाणी ❀

(राग–आशाभर्या अमे आवीया)

सीमंधर मुखथी फूलडां खरे,
अेनी कुंदकुंद गूंथे माळ रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

वाणी भली, मन लागे रळी,
जेमां सार-समय शिरताज रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

गूंथ्यां पाहुड ने गूंथ्युं पंचास्ति,
गूंथ्युं प्रवचनसार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

गूंथ्युं नियमसार, गूंथ्युं स्यणसार,
गूंथ्यो समयनो सार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

स्याद्वाद केरी सुवासे भरेलो,
जिनजीनो ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

वंदुं जिनेश्वर, वंदुं हुं कुंदकुंद,
वंदुं अे ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

हैडे हजो, मारा भावे हजो,
मारा ध्याने हजो जिनवाण रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

जिनेश्वरदेवनी वाणीना वायरा
वाजो मने दिनरात रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

—हिंमतलाल जेठालाल शाह

ॐ

नमः श्री सद्गुरवे।

उपोद्घात

[गुजरातीका हिन्दी अनुवाद]

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत यह 'प्रवचनसार' नामका शास्त्र 'द्वितीय श्रुतस्कंध'के सर्वोत्कृष्ट आगमोंमेंसे एक है।

'द्वितीय श्रुतस्कंध'की उत्पत्ति केसे हुई, उसका हम पट्टावलिओंके आधारसे संक्षेपमें अवलोकन करें :–

आज से २४७४ वर्ष पूर्व इस भरतक्षेत्रकी पुण्यभूमिमें जगत्पूज्य परम भट्टारक भगवान श्री महावीरस्वामी मोक्षमार्गका प्रकाश करनेके लिये समस्त पदार्थोंका स्वरूप अपनी सातिशय दिव्यध्वनिके द्वारा प्रगट कर रहे थे। उनके निर्वाणके पश्चात् पाँच श्रुतकेवली हुए, जिनमेंसे अन्तिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुस्वामी थे। वहाँ तक तो द्वादशांगशास्त्रके प्ररूपणासे निश्चय-व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग यथार्थरूपमें प्रवर्तता रहा। तत्पश्चात् कालदोषसे क्रमशः अंगोंके ज्ञानकी व्युच्छित्ति होती गई और इसप्रकार अपार ज्ञानसिंधुका बहुभाग विच्छिन्न होनेके बाद दूसरे भद्रबाहुस्वामी आचार्यकी परिपाटी (परम्परा)में दो महा समर्थ मुनि हुए। उनमेंसे—एकका नाम श्री धरसेन आचार्य तथा दूसरोंका नाम श्री गुणधर आचार्य था। उनसे प्राप्त ज्ञानके द्वारा उनकी परम्परामें होनेवाले आचार्योंने शास्त्रोंकी रचना की और श्री वीर भगवानके उपदेशका प्रवाह चालू रखा।

श्री धरसेनाचार्यको आग्रायणीपूर्वके पंचम वस्तुअधिकारके 'महाकर्मप्रकृति' नामक चौथे प्राभृतका ज्ञान था। उस ज्ञानामृतमेंसे क्रमशः उनके बादके आचार्यों द्वारा षट्खंडागम, धवल, महाधवल, गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि शास्त्रोंकी रचना हुई। इसप्रकार प्रथम श्रुतस्कंधकी उत्पत्ति हुई। उसमें जीव और कर्मके संयोगसे होनेवाली आत्माकी संसारपर्यायका—गुणस्थान, मार्गणास्थान आदिका—वर्णन है, पर्यायार्थिकनयको प्रधान करके कथन है। इस नयको अशुद्धद्रव्यार्थिक भी कहते हैं और अध्यात्मभाषासे अशुद्ध-निश्चयनय अथवा व्यवहार कहते हैं।

श्री गुणधर आचार्यको ज्ञानप्रवादपूर्वकी दशम वस्तुअधिकारके तृतीय प्राभृतका ज्ञान था। उस ज्ञानमेंसे बादके आचार्योंने क्रमशः सिद्धान्त-रचना की। इसप्रकार सर्वज्ञ भगवान् महावीरसे चला आनेवाला ज्ञान आचार्यपरम्परासे भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवको प्राप्त हुआ। उन्होंने पंचास्तिकायसंग्रह, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ आदि शास्त्रोंकी रचना की। इस प्रकार द्वितीय श्रुतस्कंधकी उत्पत्ति हुई। उसमें ज्ञानको प्रधान करके शुद्धद्रव्यार्थिक नयसे कथन है, आत्माके शुद्धस्वरूपका वर्णन है।

भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विक्रम संवत्के प्रारम्भमें हो गये हैं। दिगम्बर जैन परम्परामें भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेवका स्थान सर्वोत्कृष्ट है।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

—यह श्लोक प्रत्येक दिगम्बर जैन, शास्त्रस्वाध्यायके प्रारम्भमें मंगलाचरणके रूपमें बोलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सर्वज्ञ भगवान् श्री महावीरस्वामी और गणधर भगवान श्री गौतमस्वामीके पश्चात् तुरत ही भगवान कुन्दकुन्दाचार्यका स्थान आता है। दिगम्बर जैन साधु अपनेको कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्पराका कहलानेमें गौरव मानते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवके शास्त्र साक्षात् गणधरदेवके वचन जितने ही प्रमाणभूत माने जाते हैं। उनके बाद होनेवाले ग्रन्थकार आचार्य अपने किसी कथनको सिद्ध करनेके लिये कुन्दकुन्दाचार्यदेवके शास्त्रोंका प्रमाण देते हैं जिससे यह कथन निर्विवाद सिद्ध हो जाता है। उनके बाद लिखे गये ग्रन्थोंमें उनके शास्त्रोंमेंसे अनेकानेक बहुतसे अवतरण लिये गए हैं। वास्तवमें भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने अपने परमागमोंमें तीर्थंकरदेवोंके द्वारा प्ररूपित उत्तमोत्तम सिद्धांतोंको सुरक्षित कर रखा है, और मोक्षमार्गको स्थिर रखा है। विक्रम संवत् ६६०में होनेवाले श्री देवसेनाचार्यवर अपने दर्शनसार नामके ग्रन्थमें कहते हैं कि—

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥

''विदेहक्षेत्रके वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधरस्वामीके समवसरणमें जाकर श्री पद्मनंदिनाथने (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने) स्वयं प्राप्त किये गए ज्ञानके द्वारा बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते?'' एक दूसरा उल्लेख देखिये, जिसमें कुन्दकुन्दाचार्यदेवको 'कलिकालसर्वज्ञ' कहा गया है। षट्प्राभृतकी श्री श्रुतसागरसूरिकृत

टीकाके अंतमें लिखा है कि—''पद्मनंदी, कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, ऐलाचार्य, गृध्रपिच्छाचार्य,—इन पाँच नामोंसे युक्त तथा जिन्हें चार अंगुल ऊपर आकाशमें चलनेकी ऋद्धि प्राप्त थी, और जिन्होंने पूर्वविदेहमें जाकर सीमंधरभगवानकी वंदना की थी तथा उनके पाससे प्राप्त श्रुतज्ञानके द्वारा जिन्होंने भारतवर्षके भव्य जीवोंको प्रतिबोधित किया है, उन श्री जिनचन्द्रसूरिभट्टारकके पट्टके आभरणरूप कलिकालसर्वज्ञ (भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव)के द्वारा रचित इस षट्प्राभृत ग्रन्थमें.....सूरीश्वर श्री श्रुतसागर द्वारा रचित मोक्षप्राभृतकी टीका समाप्त हुई।'' भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी महत्ता बतानेवाले ऐसे अनेकानेक उल्लेख जैन साहित्यमें मिलते हैं; कई *शिलालेखोंमें भी उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सनातन जैन (दिगम्बर) संप्रदायमें कलिकालसर्वज्ञ भगवान् कुंदकुंदाचार्यका अद्वितीय स्थान है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित अनेक शास्त्र हैं जिनमेंसे थोडेसे वर्तमानमें विद्यमान है। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेवके मुखसे प्रवाहित श्रुतामृतकी सरितामेंसे भर लिए गए वह अमृतभाजन वर्तमानमें भी अनेक आत्मार्थियोंको आत्मजीवन प्रदान करते हैं। उनके समयसार, पंचास्तिकाय और प्रवचनसार नामक तीन उत्तमोत्तम शास्त्र 'प्राभृतत्रय' कहलाते हैं। इन तीन परमागमोंमें हजारों शास्त्रोंका सार आ जाता है। भगवान कुंदकुंदाचार्यके बाद लिखे गए अनेक ग्रंथोंके बीज इन तीन परमागमोंमें विद्यमान हैं,—ऐसा सूक्ष्मदृष्टिसे अभ्यास करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है। श्री समयसार इस भरतक्षेत्रका सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नव तत्त्वोंका शुद्धनयकी दृष्टिसे निरूपण करके जीवका शुद्ध स्वरूप सर्व प्रकारसे–आगम, युक्ति, अनुभव और परम्परासे—अति विस्तारपूर्वक समझाया है। पंचास्तिकायमें छह द्रव्यों और नव तत्त्वोंका स्वरूप संक्षेपमें कहा गया है। प्रवचनसारमें उसके नामानुसार जिनप्रवचनका सार संगृहीत किया गया है। जैसे समयसारमें मुख्यतया दर्शनप्रधान निरूपण है उसीप्रकार प्रवचनसारमें मुख्यतया ज्ञानप्रधान कथन है।

श्री प्रवचनसारके प्रारम्भमें ही शास्त्रकर्ताने वीतरागचारित्रके लिए अपनी तीव्र आकांक्षा व्यक्त की है। बार–बार भीतर ही भीतर (अंतरमें) डुबकी लगाते हुए आचार्यदेव निरन्तर भीतर ही समाए रहना चाहते हैं। किन्तु जब तक उस दशाको नहीं पहुँचा जाता तब तक अंतर अनुभवसे छूटकर बार–बार बाहर भी आना हो जाता है। इस दशामें जिन अमूल्य वचन मौक्तिकोंकी माला गूँथ गई वह यह प्रवचनसार परमागम है। सम्पूर्ण परमागममें वीतरागचारित्रकी तीव्राकांक्षाकी मुख्य ध्वनि गूंज रही है।

---

* शिलालेखके लिए देखे पृष्ठ १९

ऐसे इस परम पवित्र शास्त्रमें तीन श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्धका नाम 'ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन' है। अनादिकालसे परोन्मुख जीवोंको कभी ऐसी श्रद्धा नहीं हुई कि 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ और मेरा सुख मुझमें ही है'। इसीलिए उसकी परमुखापेक्षी–परोन्मुखवृत्ति कभी नहीं टलती। ऐसे दीन दुखी जीवों पर आचार्यदेवने करुणा करके इस अधिकारमें जीवका ज्ञानानन्दस्वभाव विस्तारपूर्वक समझाया है; उसीप्रकार केवलीके ज्ञान और सुख प्राप्त करनेकी प्रचुर उत्कृष्ट भावना बहाई है। ''क्षायिक ज्ञान ही उपादेय है, क्षायोपशमिकज्ञानवाले तो कर्मभारको ही भोगते हैं; प्रत्यक्षज्ञान ही एकान्तिक सुख है, परोक्षज्ञान तो अत्यंत आकुल है; केवलीका अतीन्द्रिय सुख ही सुख है, इन्द्रियजनित सुख तो दुःख ही है; सिद्ध भगवान स्वयमेव ज्ञान, सुख और देव हैं, घातिकर्म रहित भगवानका सुख सुनकर भी जिन्हें उनके प्रति श्रद्धा नहीं होती वे अभव्य (दूरभव्य) हैं'' यों अनेकानेक प्रकारसे आचार्यदेवने केवलज्ञान और अतींद्रिय, परिपूर्ण सुखके लिये पुकार की है। केवलीके ज्ञान और आनन्दके लिए आचार्यदेवने ऐसी भाव भरी धुन मचाई है कि जिसे सुनकर–पढ़कर सहज ही ऐसा लगने लगता है कि विदेहवासी सीमंधर भगवानके और केवली भगवन्तोंके झुण्डमेंसे भरतक्षेत्रमें आकर तत्काल ही कदाचित् आचार्यदेवने यह अधिकार रचकर अपनी हृदयोर्मियाँ व्यक्त की हों। इस प्रकार ज्ञान और सुखका अनुपम निरूपण करके इस अधिकारमें आचार्यदेवने मुमुक्षुओंको अतीन्द्रिय ज्ञान और सुखकी रुचि तथा श्रद्धा कराई है, और अन्तिम गाथाओंमें मोह–राग–द्वेषको निर्मूल करनेका जिनोक्त यथार्थ उपाय संक्षेपमें बताया है।

द्वितीय श्रुतस्कन्धका नाम 'ज्ञेयतत्त्व–प्रज्ञापन' है। अनादिकालसे परिभ्रमण करता हुआ जीव सब कुछ कर चुका है, किन्तु उसने स्व–परका भेदविज्ञान कभी नहीं किया। उसे कभी ऐसी सानुभव श्रद्धा नहीं हुई कि 'बंध मार्गमें तथा मोक्षमार्गमें जीव अकेला ही कर्ता, कर्म, करण और कर्मफल बनता है, उसका परके साथ कभी भी कुछ भी सम्बन्ध नहीं है'। इसलिए हजारों मिथ्या उपाय करने पर भी वह दुःख मुक्त नहीं होता। इस श्रुतस्कन्धमें आचार्यदेवने दुःखकी जड़ छेदनेका साधन–भेदविज्ञान–समझाया है। 'जगतका प्रत्येक सत् अर्थात् प्रत्येक द्रव्य उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यके अतिरिक्त या गुण–पर्याय समूहके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। सत् कहो, द्रव्य कहो, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य कहो या गुणपर्यायपिण्ड कहो,–यह सब एक ही है' यह त्रिकालज्ञ जिनेन्द्रभगवानके द्वारा साक्षात् दृष्ट वस्तुस्वरूपका मूलभूत सिद्धान्त है। वीतरागविज्ञानका यह मूलभूत सिद्धान्त प्रारम्भकी बहुतसी गाथाओंमें अत्यधिक सुन्दर रीतिसे, किसी लोकोत्तर वैज्ञानिक ढंगसे

समझाया गया है। उसमें द्रव्यसामान्यका स्वरूप जिस अलौकिक शैलीसे सिद्ध किया है उसका ध्यान पाठकोंको यह भाग स्वयं ही समझपूर्वक पढ़े बिना आना अशक्य है।

वास्तवमें प्रवचनसारमें वर्णित यह द्रव्यसामान्य निरूपण अत्यन्त अबाध्य और परम प्रतीतिकर है। इस प्रकार द्रव्यसामान्यकी ज्ञानरूपी सुदृढ़ भूमिका रचकर, द्रव्य विशेषका असाधारण वर्णन, प्राणादिसे जीवकी भिन्नता, जीव देहादिका–कर्ता, कारयिता, अनुमोदक नहीं है–यह वास्तविकता, जीवको पुद्गलपिण्डका अकर्तृत्व, निश्चयबंधका स्वरूप, शुद्धात्माकी उपलब्धिका फल, एकाग्र संचेतनलक्षण ध्यान इत्यादि अनेक विषय अति स्पष्टतया समझाए गए हैं। इन सबमें स्व–परका भेदविज्ञान ही स्पष्ट तैरता दिखाई दे रहा है। सम्पूर्ण अधिकार में वीतराग प्रणीत द्रव्यानुयोगका सत्त्व खूब ठूंस ठूंस कर भरा है, जिनशासनके मौलिक सिद्धान्तोंको अबाध्ययुक्तिसे सिद्ध किया है। यह अधिकार जिनशासनके स्तम्भ समान है। इसका गहराईसे अभ्यास करनेवाले मध्यस्थ सुपात्र जीवको ऐसी प्रतीति हुये बिना नहीं रहती कि 'जैन दर्शन ही वस्तुदर्शन है'। विषयका प्रतिपादन इतना प्रौढ़, अगाध गहराईयुक्त, मर्मस्पर्शी और चमत्कृतिमय है कि वह मुमुक्षुके उपयोगको तीक्ष्ण बनाकर श्रुतरत्नाकरकी गम्भीर गहराईमें ले जाता है। किसी उच्चकोटिके मुमुक्षुको निजस्वभावरत्नकी प्राप्ति कराता है, और यदि कोई सामान्य मुमुक्षु वहाँ तक न पहुँच सके तो उसके हृदयमें भी इतनी महिमा तो अवश्य ही घर कर लेती है कि 'श्रुतरत्नाकर अद्भुत और अपार है'। ग्रन्थकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव और टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवके हृदयसे प्रवाहित श्रुतगंगाने तीर्थंकरके और श्रुतकेवलियोंके विरहको भुला दिया है।

तीसरे श्रुतस्कन्धका नाम 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' है। शुभोपयोगी मुनिको अंतरंग दशाके अनुरूप किस प्रकारका शुभोपयोग वर्तता है और साथ ही साथ सहजतया बाहरकी कैसी क्रियामें स्वयं वर्तना होती हैं, वह इसमें जिनेन्द्र कथनानुसार समझाया गया है। दीक्षा ग्रहण करनेकी जिनोक्त विधि, अंतरंग सहज दशाके अनुरूप बहिरंगयथाजात-रूपत्व, अट्ठाईस मूलगुण, अंतरंग–बहिरंग छेद, उपधिनिषेध, उत्सर्ग–अपवाद, युक्ताहार विहार, एकाग्रतारूप मोक्षमार्ग, मुनिका अन्य मुनियोंके प्रतिका व्यवहार आदि अनेक विषय इसमें युक्ति सहित समझाये गये हैं। ग्रंथकार और टीकाकार आचार्ययुगलने चरणानुयोग जैसे विषयको भी आत्मद्रव्यको मुख्य करके शुद्धद्रव्यावलम्बी अंतरंग दशाके साथ उन–उन क्रियाओंका या शुभभावोंका संबंध दर्शाते हुए निश्चय–व्यवहारकी संधिपूर्वक ऐसा चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है कि आचरणप्रज्ञापन जैसे अधिकारमें भी जैसे कोई शांतझरनेसे झरता हुआ अध्यात्मगीत गाया जा रहा हो,—ऐसा ही लगता रहता है। आत्मद्रव्यको मुख्य करके, ऐसा सयुक्तिक ऐसा

प्रमाणभूत, साद्यन्त, शान्तरसनिर्झरता चरणानुयोगका प्रतिपादन अन्य किसी शास्त्रमें नहीं है। हृदयमें भरे हुए अनुभवामृतमें ओतप्रोत होकर निकलती हुई दोनों आचार्यदेवोंकी वाणीमें कोई ऐसा चमत्कार है कि वह जिस जिस विषयको स्पर्श करती है उस उस विषयको परम रसमय, शीतल-शीतल और सुधास्यंदी बना देती है।

इस प्रकार तीन श्रुतस्कन्धोंमें विभाजित यह परम पवित्र परमागम मुमुक्षुओंको यथार्थ वस्तुस्वरूपके समझनेमें महानिमित्तभूत है। इस शास्त्रमें जिनशासनके अनेक मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंके बीज विद्यमान हैं। इस शास्त्रमें प्रत्येक पदार्थकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की गई है तथा दिव्यध्वनिके द्वारा विनिर्गत अनेक प्रयोजनभूत सिद्धान्तोंका दोहन है। परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी अनेक बार कहते है कि—'श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि शास्त्रोंकी गाथा-गाथामें दिव्यध्वनिका संदेश है। इन गाथाओंमें इतनी अपार गहराई है कि उसका माप करनेमें अपनी ही शक्तिका माप होजाता है। यह सागरगम्भीर शास्त्रोंके रचयिता परमकृपालु आचार्यभगवानका कोई परम अलौकिक सामर्थ्य है। परम अद्‌भुत सातिशय अन्तर्बाह्य योगोंके बिना इन शास्त्रोंका रचा जाना शक्य नहीं है। इन शास्त्रोंकी वाणी तैरते हुए पुरुषकी वाणी है यह स्पष्ट प्रतीत होता है। इनकी प्रत्येक गाथा छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलनेवाले महामुनिके आत्मानुभवसे निकली हुई है। इन शास्त्रोंके कर्ता भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग भी सीमंधर भगवानके समवसरणमें गये थे, और वहाँ वे आठ दिन रहे थे यह बात यथातथ्य है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है। उन परमोपकारी आचार्यदेवके द्वारा रचित समयसार, प्रवचनसार आदि शास्त्रोंमें तीर्थंकरदेवकी ॐकारध्वनिमेंसे ही निकला हुआ उपदेश है।'

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवकृत इस शास्त्रकी प्राकृत गाथाओंकी 'तत्त्वदीपिका' नामक संस्कृत टीका श्री अमृतचन्द्राचार्य (जो कि लगभग विक्रम संवत्‌की १०वीं शताब्दीमें हो गये हैं)ने रची है। जैसे इस शास्त्रके मूल कर्ता अलौकिक पुरुष हैं वैसे ही इसके टीकाकार भी महासमर्थ आचार्य हैं। उन्होंने समयसार तथा पंचास्तिकायकी टीका भी लिखी है और तत्त्वार्थसार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि स्वतन्त्र ग्रन्थोंकी भी रचना की है। उन जैसी टीकायें अभी तक अन्य जैनशास्त्रकी नहीं हुई है। उनकी टीकाओंके पाठकोंको उनकी अध्यात्मरसिकता, आत्मानुभव, प्रखर विद्वत्ता, वस्तुस्वरूपको न्यायपूर्वक सिद्ध करनेकी असाधारण शक्ति, जिनशासनका अत्यन्त गम्भीर ज्ञान, निश्चय-व्यवहारका संधिबद्ध निरूपण करनेकी विरल शक्ति और उत्तम काव्यशक्तिका पूरा पता लग जाता है। गम्भीर रहस्योंको अत्यन्त संक्षेपमें भर देनेकी उनकी शक्ति विद्वानोंको आश्चर्यचकित कर देती है। उनकी दैवी

टीकायें श्रुतकेवलीके वचनों जैसी हैं। जैसे मूल शास्त्रकारके शास्त्र अनुभव–युक्ति आदि समस्त समृद्धियोंसे समृद्ध हैं वैसे ही टीकाकारकी टीकायें भी उन उन सर्व समृद्धियोंसे विभूषित हैं। शासनमान्य भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेवने मानो कि वे कुंदकुंदभगवान्के हृदयमें पैठ गये हों इसप्रकारसे उनके गंभीर आशयोंको यथार्थतया व्यक्त करके उनके गणधर जैसा कार्य किया है। श्री अमृतचंद्राचार्यदेव द्वारा रचित काव्य भी अध्यात्मरस और आत्मानुभवकी मस्तीसे भरपूर हैं। श्री समयसारकी टीकामें आनेवाले काव्यों (कलशों)ने श्री पद्मप्रभदेव जैसे समर्थ मुनिवरों पर गहरी छाप जमाई है, और आज भी तत्त्वज्ञान तथा अध्यात्मरससे भरे हुए वे मधुर कलश अध्यात्मरसिकोंके हृदयके तारको झनझना डालते हैं। अध्यात्मकविके रूपमें श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवका स्थान अद्वितीय है।

प्रवचनसारमें भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने २७५ गाथाओंकी रचना प्राकृतमें की है। उसपर श्री अमृतचन्द्राचार्यने तत्त्वदीपिका नामक तथा श्री जयसेनाचार्यने तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीकाकी रचना की है। श्री पांडे हेमराजजीने तत्त्वदीपिकाका भावार्थ हिन्दीमें लिखा है, जिसका नाम 'बालावबोधभाषाटीका' रखा है। विक्रम संवत् १९६९में श्री परमश्रुतप्रभावक मण्डल द्वारा प्रकाशित हिन्दी प्रवचनसारमें मूल गाथायें, दोनों संस्कृत टीकायें, और श्री हेमराजजीकृत हिन्दी बालावबोधभाषाटीका मुद्रित हुई है। अब इस प्रकाशित गुजराती प्रवचनसारमें मूल गाथायें, उनका गुजराती पद्यानुवाद, संस्कृत तत्त्वदीपिका टीका और उन गाथा व टीकाका अक्षरशः गुजराती अनुवाद प्रगट किया गया है। जहाँ कुछ विशेष स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई है वहाँ कोष्ठकमें अथवा 'भावार्थ'में या फूटनोटमें स्पष्टता की गई है। उस स्पष्टता करनेमें बहुत सी जगह श्री जयसेनाचार्यकी 'तात्पर्यवृत्ति' अत्यन्त उपयोगी हुई है और कही कहीं श्री हेमराजजीकृत बालावबोधभाषाटीकाका भी आधार लिया है। श्री परमश्रुतप्रभावक मण्डल द्वारा प्रकाशित प्रवचनसारमें मुद्रित संस्कृत टीकाको हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलान करने पर उसमें कहीं कहीं जो अल्प अशुद्धियाँ मालूम हुई वे इसमें ठीक कर ली गई हैं।

यह अनुवाद करनेका महाभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, जो कि मेरे लिये अत्यन्त हर्षका कारण है। परमपूज्य अध्यात्ममूर्ति सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके आश्रयमें इस गहन शास्त्रका अनुवाद हुआ है। अनुवाद करनेकी सम्पूर्ण शक्ति मुझे पूज्यपाद सद्गुरुदेवसे ही प्राप्त हुई है। परमोपकारी सद्गुरुदेवके पवित्र जीवनके प्रत्यक्ष परिचयके बिना और उनके आध्यात्मिक उपदेशके बिना इस पामरको जिनवाणीके प्रति लेशमात्र भी भक्ति या श्रद्धा कहाँसे प्रगट होती, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव और उनके शास्त्रोंकी रंचमात्र महिमा कहाँसे

आती, तथा उन शास्त्रोंका अर्थ ढूंढ निकालनेकी लेशमात्र शक्ति कहाँसे आती ?—इसप्रकार अनुवादकी समस्त शक्तिका मूल श्री सद्गुरुदेव ही होनेसे वास्तवमें तो सद्गुरुदेवकी अमृतवाणीका प्रवाह ही—उनसे प्राप्त अमूल्य उपदेश ही—यथासमय इस अनुवादके रूपमें परिणत हुआ है। जिनके द्वारा सिंचित शक्तिसे और जिनका पीठपर बल होनेसे इस गहन शास्त्रके अनुवाद करनेका मैंने साहस किया और जिनकी कृपासे वह निर्विघ्न समाप्त हुआ उन परमपूज्य परमोपकारी सद्गुरुदेव (श्री कानजीस्वामी)के चरणारविन्दमें अति भक्तिभावसे मैं वन्दना करता हूँ।

परमपूज्य बहेनश्री चम्पाबेनके प्रति भी, इस अनुवादकी पूर्णाहुति करते हुये, उपकारवशताकी उग्र भावनाका अनुभव हो रहा है। जिनके पवित्र जीवन और बोध इस पामरको श्री प्रवचनसारके प्रति, प्रवचनसारके महान् कर्ताके प्रति और प्रवचनसारमें उपदिष्ट वीतरागविज्ञानके प्रति बहुमानवृद्धिका विशिष्ट निमित्त हुए हैं—ऐसी उन परमपूज्य बहिनश्रीके चरणकमलमें यह हृदय नमन करता है।

इस अनुवादमें अनेक भाइयोंसे हार्दिक सहायता मिली है। माननीय श्री वकील रामजीभाई माणेकचन्द दोशीने अपने भरपूर धार्मिक व्यवसायोंमेंसे समय निकालकर सारा अनुवाद बारीकीसे जाँच लिया है, यथोचित सलाह दी है और अनुवादमें आनेवाली छोटी-बड़ी कठिनाइयोंका अपने विशाल शास्त्रज्ञानसे हल किया है। भाईश्री खीमचन्द जेठालाल शेठने भी पूरा अनुवाद सावधानीपूर्वक जांचा है और अपने संस्कृत भाषाके तथा शास्त्रीय ज्ञानके आधारके उपयोगी सूचनायें दी हैं। ब्रह्मचारी भाईश्री चन्दूलाल खीमचन्द झोबालियाने हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे संस्कृत टीकामें सुधार किया है, अनुवादका कितना ही भाग जांचा है, शुद्धिपत्र, अनुक्रमणिका और गाथासूची तैयार की है, तथा प्रूफसंशोधनका कार्य किया है—इस प्रकार विधविध सहायता की है। इन सब भाइयोंका मैं अन्तःकरणपूर्वक आभार मानता हूँ। उनकी सहृदय सहायताके बिना अनुवादमें अनेक त्रूटियाँ रह जातीं। इनके अतिरिक्त अन्य जिन-जिन भाइयोंकी इसमें सहायता मिली है मैं उन सबका ऋणी हूँ।

मैंने यह अनुवाद प्रवचनसारके प्रति भक्तिसे और गुरुदेवकी प्रेरणासे प्रेरित होकर निज कल्याणके हेतु, भवभयसे डरते-डरते किया है। अनुवाद करते हुये शास्त्रके मूल आशयमें कोई अन्तर न पड़ने पाये, इस ओर मैंने पूरी-पूरी सावधानी रखी है; तथापि अल्पज्ञताके कारण उसमें कहीं कोई आशय बदल गया हो या कोई भूल रह गई हो तो उसके लिये मैं शास्त्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यभगवान, टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव और मुमुक्षु पाठकोंसे अंतःकरणपूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

मेरी आंतरिक भावना है कि यह अनुवाद भव्य जीवोंको जिनकथित वस्तुविज्ञानका निर्णय कराकर, अतीन्द्रिय ज्ञान और सुखकी श्रद्धा कराकर, प्रत्येक द्रव्यका संपूर्ण स्वातंत्र्य समझाकर, द्रव्यसामान्यमें लीन होनेरूप शाश्वत सुखका पंथ दिखाये। 'परमानन्दरूपी सुधारसके पिपासु भव्य जीवोंके हितार्थ' श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने इस महाशास्त्रकी व्याख्या की है। जो जीव इसमें कथित परमकल्याणकारी भावोंको हृदयगत करेंगे वे अवश्य परमानन्दरूपी सुधारसके भाजन होंगे। जब तक ये भाव हृदयगत न हों तब तक निश-दिन यही भावना, यही विचार, यही मंथन और यही पुरुषार्थ कर्तव्य है। यही परमानन्दप्राप्तिका उपाय है। श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव द्वारा तत्त्वदीपिकाकी पूर्णाहुति करते हुये भावित भावनाको भाकर यह उपोद्घात पूर्ण करता हूँ—''आनन्दामृतके पूरसे परिपूर्ण प्रवाहित कैवल्यसरितामें जो निमग्न है, जगत्को देखनेके लिये समर्थ महाज्ञानलक्ष्मी जिसमें मुख्य है, जो उत्तम रत्नके किरणोंके समान स्पष्ट है और जो इष्ट है—ऐसे प्रकाशमान स्वतत्त्वको जीव स्यात्कारलक्षणसे लक्षित जिनेन्द्रशासनके वश प्राप्त हों।''

श्रुतपंचमी, वि० सं० २००४

हिम्मतलाल जेठालाल शाह

जो जाणंदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जालि तस्स लयं॥

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।
जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं॥

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं॥

—श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव

ભગવાન શ્રીકુંદકુંદાચાર્યદેવ વનમાં તાડપત્ર ઉપર શાસ્ત્ર લખે છે.

ॐ

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवके सम्बन्धमें

उल्लेख

*

वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः
कुन्द-प्रभा-प्रणयि-कीर्ति-विभूषिताशः ।
यश्चारु-चारण-कराम्बुजचञ्चरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम् ॥

[चन्द्रगिरि पर्वतका शिलालेख]

अर्थ :—कुन्दपुष्पकी प्रभा धारण करनेवाली जिनकी कीर्ति द्वारा दिशाएँ विभूषित हुई हैं, जो चारणोंके—चारणऋद्धिधारी महामुनियोंके—सुन्दर हस्तकमलोंके भ्रमर थे और जिन पवित्रात्माने भरतक्षेत्रमें श्रुतकी प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुन्दकुन्द इस पृथ्वी पर किससे वन्द्य नहीं हैं?

*

.....कोण्डकुन्दो यतीन्द्रः ॥
रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्त-
र्बाह्योपि संव्यञ्जयितुं यतीशः ।
रजःपदं भूमितलं विहाय
चचार मन्ये चतुरङ्गुलं सः ॥

[विंध्यगिरि- शिलालेख]

अर्थ :—यतीश्वर (श्री कुन्दकुन्दस्वामी) रजःस्थानको—भूमितलको—छोड़कर चार अंगुल ऊपर आकाशमें गमन करते थे उसके द्वारा मैं ऐसा समझता हूँ कि—वे अन्तरमें तथा बाह्यमें रजसे (अपनी) अत्यन्त अस्पृष्टता व्यक्त करते थे (–अन्तरमें वे रागादिक मलसे अस्पृष्ट थे और बाह्यमें धूलसे अस्पृष्ट थे)।

*

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥

[दर्शनसार]

अर्थ :—(महाविदेहक्षेत्रके वर्तमान तीर्थंकरदेव) श्री सीमन्धरस्वामीसे प्राप्त हुए दिव्य ज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथने (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने) बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते?

*

हे कुन्दकुन्दादि आचार्यों! आपके वचन भी स्वरूपानुसन्धानमें इस पामरको परम उपकारभूत हुए हैं। उसके लिये मैं आपको अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। *[श्रीमद् राजचन्द्र]*

*

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवका हमारे उपर बहुत उपकार है, हम उनके दासानुदास है। श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें गये थे और वे वहाँ आठ दिन रहे थे उसमें लेशमात्र शंका नहीं है। वह बात वैसी ही हैं; कल्पना करना नहीं, ना कहना नहीं; मानो तो भी वैसे ही है, न मानो तो भी वैसे ही है। यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है। *[पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी]*

परमागम श्री प्रवचनसारकी

* वि ष या नु क्र म णि का *

(१) ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन

विषय	गाथा
मंगलाचरणपूर्वक भगवान शास्त्रकारकी प्रतिज्ञा	१
वीतरागचरित्र उपादेय और सरागचारित्र हेय है....	६
चारित्रका स्वरूप	७
आत्मा ही चारित्र है	८
जीवका शुभ, अशुभ और शुद्धत्व.....	९
परिणाम वस्तुका स्वभाव है.....	१०
शुद्ध और शुभ-अशुभ परिणामका फल ...	११-१२
*** शुद्धोपयोग अधिकार ***	
शुद्धोपयोगके फलकी प्रशंसा	१३
शुद्धोपयोगपरिणत आत्माका स्वरूप.....	१४
शुद्धोपयोगसे होनेवाली शुद्धात्मस्वभावप्राप्ति	१५
शुद्धात्मस्वभावप्राप्ति कारकान्तरसे निरपेक्ष..... ..	१६
'स्वयंभू'के शुद्धात्मस्वभावप्राप्तिका अत्यन्त अविनाशीपना और कथंचित् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तता	१७
स्वयंभू-आत्माके इन्द्रियोंके बिना ज्ञान-आनन्द कैसे ?	१९
अतीन्द्रियताके कारण शुद्धात्माको शारीरिक सुख-दुःखका अभाव.....	२०
*** ज्ञान अधिकार ***	
अतीन्द्रिय ज्ञानपरिणत केवलीको सब प्रत्यक्ष है.....	२१
आत्माका ज्ञानप्रमाणपना और ज्ञानका सर्वगतपना....	२३
आत्माको ज्ञानप्रमाण न माननेमें दोष.....	२४
ज्ञानकी भाँति आत्माका भी सर्वगतत्त्व..... ...	२६
आत्मा और ज्ञानके एकत्व-अन्यत्व.....	२७
ज्ञान और ज्ञेयके परस्पर गमनका निषेध..... ..	२८
आत्मा पदार्थोंमें प्रवृत्त नहीं होता तथापि जिससे उनमें प्रवृत्त होना सिद्ध होता है वह शक्तिवैचित्र्य.....	२९
ज्ञान पदार्थोंमें प्रवृत्त होता है उसके दृष्टान्त.....	३०
पदार्थ ज्ञानमें वर्तते हैं—यह व्यक्त करते हैं....	३१
आत्माकी पदार्थोंके साथ एक दूसरेमें प्रवृत्ति होनेपर भी, वह परका ग्रहणत्याग किये बिना तथा पररूप परिणमित हुए बिना सबको देखता-जानता होनेसे उसे अत्यन्त भिन्नता है.....	३२
केवलज्ञानी और श्रुतज्ञानीको अविशेषरूप दिखाकर विशेष आकांक्षाके क्षोभका क्षय करते हैं.....	३३
ज्ञानके श्रुत-उपाधिकृत भेदको दूर करते हैं	३४
आत्मा और ज्ञानका कर्तृत्व-करणत्वकृत भेद दूर करते हैं.....	३५

विषय	गाथा
ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है यह व्यक्त करते हैं.....	३६
द्रव्योंकी भूत-भावि पर्यायें भी तात्कालिक पर्यायोंकी भाँति पृथक्रूपसे ज्ञानमें वर्तती हैं	३७
अविद्यमान पर्यायोंकी कथंचित् विद्यमानता	३८
अविद्यमान पर्यायोंकी ज्ञानप्रत्यक्षता दृढ करते हैं.....	३९
इन्द्रियज्ञानके लिये नष्ट और अनुत्पन्नका जानना अशक्य है ऐसा निश्चित करते हैं	४०
अतीन्द्रिय ज्ञानके लिये जो जो कहा जाता है वह (सब) सम्भव है.....	४१
ज्ञेयार्थपरिणमनक्रिया ज्ञानमेंसे उत्पन्न नहीं होती।	४२
ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप क्रिया और तत्फल कहाँसे उत्पन्न होता है—इसका विवेचन.....	४३
केवलीके क्रिया भी क्रियाफल उत्पन्न नहीं करती।.....	४४
तीर्थंकरोंके पुण्यका विपाक अकिंचित्कर ही है।	४५
केवलीकी भाँति सब जीवोंको स्वभावविघातका अभाव होनेका निषेध करते हैं.....	४६
अतीन्द्रिय ज्ञानको सर्वज्ञरूपसे अभिनन्दन	४७
सबको न जाननेवाला एकको भी नहीं जानता।	४८
एकको न जाननेवाला सबको नहीं जानता।	४९
क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञानकी सर्वगतता सिद्ध नहीं होती.....	५०
युगपत् प्रवृत्तिके द्वारा ही ज्ञानका सर्वगतत्व	५१
केवलीके ज्ञप्तिक्रियाका सद्भाव होने पर भी क्रियाफलरूप बन्धका निषेध करते हुए उपसंहार करते हैं.....	५२

विषय	गाथा
*** सुख अधिकार ***	
ज्ञानसे अभिन्न सुखका स्वरूप वर्णन करते हुए ज्ञान और सुखकी हेयोपादेयताका विचार	५३
अतीन्द्रिय सुखका साधनभूत अतीन्द्रिय ज्ञान उपादेय है इसप्रकार उसकी प्रशंसा.....	५४
इन्द्रियसुखका साधनभूत इन्द्रियज्ञान हेय है इसप्रकार उसकी निन्दा.....	५५
इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा निश्चय करते हैं।	५७
परोक्ष और प्रत्यक्षके लक्षण.....	५८
प्रत्यक्षज्ञानको पारमार्थिक सुखरूप बतलाते हैं ...	५९
केवलज्ञानको भी परिणामके द्वारा खेदका सम्भव होनेसे वह ऐकान्तिक सुख नहीं है—इसका खंडन....	६०
'केवलज्ञान सुखस्वरूप है' ऐसे निरूपण द्वारा उपसंहार.....	६१
केवलियोंको ही पारमार्थिक सुख होता है ऐसी श्रद्धा कराते हैं.....	६२
परोक्षज्ञानवालोंके अपारमार्थिक इन्द्रियसुखका विचार.....	६३
इन्द्रियाँ है वहाँ तक स्वभावसे ही दुःख है.....	६४
मुक्तात्माके सुखकी प्रसिद्धिके लिये, शरीर सुखका साधन होनेकी बातका खंडन....	६५
आत्मा स्वयमेव सुखपरिणामकी शक्तिवाला होनेसे विषयोंकी अकिंचित्करता.....	६७
आत्माके सुखस्वभावत्वको दृष्टान्त द्वारा दृढ करके आनन्द-अधिकारकी पूर्णता..... ..	६८

विषय	गाथा
*** शुभपरिणाम अधिकार ***	
इन्द्रियसुखसम्बन्धी विचारको लेकर, उसके साधनका स्वरूप.....	६९
इन्द्रियसुखको शुभोपयोगके साध्यके रूपमें कहते हैं.....	७०
इन्द्रियसुखको दुःखपनेमें डालते हैं.....	७१
पुण्योत्पादक शुभोपयोगकी पापोत्पादक अशुभोपयोगसे अविशेषता.....	७२
पुण्य दुःखके बीजके कारण हैं–यह बताते हैं ...	७४
पुण्यजन्य इन्द्रियसुख बहुधा दुःखरूप हैं.....	७६
पुण्य और पापकी अविशेषताका निश्चय करते हुए (इस विषयका) उपसंहार करते हैं.....	७७
शुभ–अशुभ उपयोगकी अविशेषता निश्चित करके, रागद्वेषके द्वैतको दूर करते हुए, अशेषदुःखक्षयका दृढ निश्चय करके शुद्धोपयोगमें निवास.....	७८
मोहादिके उन्मूलन प्रति सर्व उद्यमसे कटिबद्ध...	७९
मोहकी सेना जीतनेका उपाय.....	८०
चिन्तामणि प्राप्त किया होने पर भी, प्रमाद चोर विद्यमान है अतः जागृत रहता है.....	८१
यही एक, भगवन्तोंने स्वयं अनुभव करके प्रगट किया हुआ मोक्षका पारमार्थिकपन्थ है ...	८२
शुद्धात्मलाभके परिपंथी–मोहका स्वभाव और उसके प्रकार....	८३
तीन प्रकारके मोहको अनिष्ट कार्यका कारण कहकर उसके क्षयका उपदेश.....	८४
मोहरागद्वेषको इन चिह्नोंके द्वारा पहिचान कर उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिये	८५
मोहक्षय करनेका उपायान्तर.....	८६
शब्दब्रह्ममें अर्थोंकी व्यवस्था किस प्रकार है उसका विचार.....	८७
मोहक्षयके उपायभूत जिनोपदेशकी प्राप्ति होने पर भी पुरुषार्थ अर्थक्रियाकारी है..... ...	८८
स्व–परके विवेककी सिद्धिसे ही मोहका क्षय होता है अतः स्व–परके विभागकी सिद्धिके लिये प्रयत्न.....	८९
सब प्रकारके स्वपरके विवेककी सिद्धि आगमसे कर्तव्य है—इस प्रकार उपसंहार करते हैं.....	९०
जिनोदित अर्थोंके श्रद्धान विना धर्मलाभ नहीं होता.....	९१
आचार्यभगवान साम्यका धर्मत्व सिद्ध करके 'मैं स्वयं साक्षात् धर्म ही हूँ' ऐसे भावमें निश्चल स्थित होते हैं.....	९२

* * *

(२) ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन

*** द्रव्यसामान्य अधिकार ***

पदार्थका सम्यक् द्रव्यगुणपर्यायस्वरूप.....	९३
स्वसमय–परसमयकी व्यवस्था निश्चित करके उपसंहार.....	९४
द्रव्यका लक्षण.....	९५
स्वरूप–अस्तित्वका कथन.....	९६
सादृश्य–अस्तित्वका कथन.....	९७
द्रव्योंसे द्रव्यान्तरकी उत्पत्ति होनेका और द्रव्यसे सत्ताका अर्थान्तरत्व होनेका खंडन.....	९८
उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक होनेपर भी द्रव्य 'सत्' है.....	९९

विषय	गाथा
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका परस्पर अविनाभाव दृढ़ करते हैं।	१००
उत्पादादिका द्रव्यसे अर्थान्तरत्व नष्ट करते हैं.....	१०१
उत्पादादिका क्षणभेद निरस्त करके वे द्रव्य हैं यह समझाते हैं.....	१०२
द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको अनेकद्रव्यपर्याय तथा एकद्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं.....	१०३
सत्ता और द्रव्य अर्थान्तर नहीं होनेके विषयमें युक्ति.....	१०५
पृथक्त्वका और अत्यत्वका लक्षण.....	१०६
अतद्भावको उदाहरण द्वारा स्पष्टतया बतलाते हैं.....	१०७
सर्वथा अभाव वह अतद्भावका लक्षण नहीं है	१०८
सत्ता और द्रव्यका गुण-गुणीपना सिद्ध करते हैं.....	१०९
गुण और गुणीके अनेकत्वका खण्डन.....	११०
द्रव्यके सत्-उत्पाद और असत्-उत्पाद होनेमें अविरोध सिद्ध करते हैं.....	१११
सत्-उत्पादको अनन्यत्वके द्वारा और असत्-उत्पादको अन्यत्वके द्वारा निश्चित करते हैं....	११२-११३
एक ही द्रव्यको अन्यत्व और अन्यत्व होनेमें अविरोध.....	११४
गर्व विरोधको दूर करनेवाली सप्तभंगी.....	११५
जीवको मनुष्यादि पर्यायें क्रियाका फल होनेसे उनका अन्यत्व प्रकाशित करते हैं.....	११६
मनुष्यादिपर्यायोंमें जीवको स्वभावका पराभव किस कारणसे होता है—इसका निर्णय.....	११८
जीवकी द्रव्यरूपसे अवस्थितता होने पर भी पर्यायोंसे अनवस्थितता.....	११९
परिणामात्मक संसारमें किस कारणसे पुद्गलका सम्बन्ध होता है कि जिससे वह (संसार) मनुष्यादि-पर्यायात्मक होता है—इसका समाधान.....	१२१
परमार्थसे आत्माको द्रव्यकर्मका अकर्तृत्व.....	१२२
वह कौनसा स्वरूप है जिसरूप आत्मा परिणमित होता है ?	१२३
ज्ञान, कर्म और कर्मफलका स्वरूप.....	१२४
उन (तीनों)को आत्मारूपसे निश्चित करते हैं।	१२५
शुद्धात्मोपलब्धिका अभिनन्दन करते हुए, द्रव्य-सामान्यके वर्णनका उपसंहार.....	१२६
*** द्रव्यविशेष अधिकार ***	
द्रव्यके जीव-अजीवपनेरूप विशेष.....	१२७
द्रव्यके लोकालोकत्वरूप विशेष.....	१२८
द्रव्यके 'क्रिया' और 'भाव' रूप विशेष	१२९
गुणविशेषसे द्रव्यविशेष होता है.....	१३०
मूर्त और अमूर्त गुणोंके लक्षण तथा सम्बन्ध.....	१३१
मूर्त पुद्गलद्रव्यके गुण.....	१३२
अमूर्त द्रव्योंके गुण.....	१३३
द्रव्योंका प्रदेशवत्त्व और अप्रदेशवत्त्वरूप विशेष	१३५
प्रदेशी और अप्रदेशी द्रव्य कहाँ रहते हैं.....	१३६
प्रदेशवत्त्व और अप्रदेशवत्त्व किस प्रकारसे संभव ?	१३७

विषय	गाथा
'कालाणु अप्रदेशी ही है'—ऐसा नियम कालपदार्थके द्रव्य और पर्याय..... -----	१३८
कालपदार्थके द्रव्य और पर्याय..... ----------	१३९
आकाशके प्रदेशका लक्षण..... ----------	१४०
तिर्यक्प्रचय तथा ऊर्ध्वप्रचय..... ----------	१४१
कालपदार्थका ऊर्ध्वप्रचय निरन्वय है–इस बातका खण्डन....----------	१४२
सर्व वृत्त्यंशोंमें कालपदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यवाला है। ----------	१४३
कालपदार्थका प्रदेशमात्रपना सिद्ध करते हैं।----------	१४४
*** ज्ञानज्ञेयविभाग अधिकार ***	
आत्माको विभक्त करनेके लिये व्यवहारजीवत्वके हेतुका विचार.....	१४५
प्राण कौन–कौनसे है, सो बतलाते हैं.....	१४६
व्युत्पत्तिसे प्राणोंको जीवत्वका हेतुपना और उनका पौद्गलिकपना.....	१४७
पौद्गलिक प्राणोंकी सन्ततिकी प्रवृत्तिका अन्तरंग हेतु.....	१५०
पौद्गलिक प्राणसन्ततिकी निवृत्तिका अन्तरंग हेतु.....	१५१
आत्माके अत्यन्त विभक्तत्वकी सिद्धिके लिये, व्यवहार–जीवत्वके हेतु जो गतिविशिष्ट पर्याय उनका स्वरूप....	१५१
पर्यायके भेद	१५३
अर्थनिश्चायक अस्तित्वको स्व–परके विभागके हेतुके रूपमें समझाते हैं। ...	१५४
आत्माको अत्यन्त विभक्त करनेके लिये, परद्रव्यके संयोगके कारणका स्वरूप....	१५५
शुभोपयोग और अशुभोपयोगका स्वरूप.....	१५७–१५८
परद्रव्यके संयोगका जो कारण उसके विनाशका अभ्यास.....	१५९
शरीरादि परद्रव्य प्रति मध्यस्थता प्रगटकरते हैं..	१६०
शरीर, वाणी और मनका परद्रव्यपना..... ..	१६१
आत्माको परद्रव्यत्वका और उसके कर्तृत्वका अभाव....	१६२
परमाणुद्रव्योंको पिण्डपर्यायरूप परिणतिका कारण.....	१६३
आत्माको पुद्गलपिंडके कर्तृत्वका अभाव.....	१६७
आत्माको शरीरपनेका अभाव.....	१७१
जीवका असाधारण स्वलक्षण.....	१७२
अमूर्त आत्माको स्निग्ध–रुक्षत्वका अभाव होनेसे बन्ध कैसे हो सकता है ?–ऐसा पूर्वपक्ष.....	१७३
उपर्युक्त पूर्वपक्षका उत्तर.....	१७४
भावबन्धका स्वरूप....	१७५
भावबन्धकी युक्ति और द्रव्यबन्धका स्वरूप .	१७६
पुद्गलबन्ध, जीवबन्ध और उभयबन्धका स्वरूप.....	१७७
द्रव्यबन्धका हेतु भावबन्ध....	१७८
भावबन्ध ही निश्चयबन्ध है....	१७९
परिणामका द्रव्यबन्धके साधकतम रागसे विशिष्टपना सविशेष प्रगट करते हैं.....	१८०
विशिष्ट परिणामको, भेदको तथा अविशिष्ट परिणामको कारणमें कार्यका उपचार करके कार्यरूपसे बतलाते हैं....	१८१

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

विषय	गाथा
जीवकी स्वद्रव्यमें प्रवृत्ति और परद्रव्यसे निवृत्तिकी सिद्धिके लिये स्व-परका विभाग	१८२
स्वद्रव्यमें प्रवृत्तिका और परद्रव्यमें प्रवृत्तिका निमित्त स्व-परके विभागका ज्ञान-अज्ञान है।	१८३
आत्माका कर्म क्या है-इसका निरूपण	१८४
'पुद्गलपरिणाम आत्माका कर्म क्यों नहीं है' इस सन्देहका निराकरण	१८५
आत्मा किस प्रकार पुद्गलकर्मोंके द्वारा ग्रहण किया जाता है और छोड़ा जाता है?	१८६
पुद्गलकर्मोंकी विचित्रताको कौन कहता है?	१८७
अकेला ही आत्मा बन्ध है	१८८
निश्चय और व्यवहारका अविरोध	१८९
अशुद्धनयसे अशुद्ध आत्माकी ही प्राप्ति	१९०
शुद्धनयसे शुद्धात्माकी ही प्राप्ति	१९१
ध्रुवत्वके कारण शुद्धात्मा ही उपलब्ध करने योग्य	१९२
शुद्धात्माकी उपलब्धिसे क्या होता है	१९४
मोहग्रंथि टूटनेसे क्या होता है	१९५
एकाग्रसंचेतनलक्षणध्यान अशुद्धता नहीं लाता	१९६
सकलज्ञानी क्या ध्याते हैं?	१९७
उपरोक्त प्रश्नका उत्तर	१९८
शुद्धात्मोपलब्धिलक्षण मोक्षमार्गको निश्चित करते हैं	१९९
प्रतिज्ञाका निर्वहण करते हुए (आचार्यदेव) स्वयं मोक्षमार्गभूत शुद्धात्मप्रवृत्ति करते हैं	२००

(३) चरणानुयोगसूचक चूलिका

* आचरण-प्रज्ञापन

विषय	गाथा
दुःखमुक्तिके लिये श्रामण्यमें जुड़ जानेकी प्रेरणा	२०१
श्रामण्य-इच्छुक पहले क्या-क्या करता है	२०२
यथाजातरूपधरत्वक बहिरंग-अन्तरंग दो लिंग	२०५
श्रामण्यकी 'भवति' क्रियामें, इतनेसे श्रामण्यकी प्राप्ति	२०७
सामायिकमें आरूढ़ श्रमण कदाचित् छेदोपस्थापनाके योग्य	२०८
आचार्यके भेद	२१०
छिन्न संयमके प्रतिसंधानकी विधि	२११
श्रामण्यके छेदके आयतन होनेसे परद्रव्य प्रतिबन्धोंका निषेध	२१३
श्रामण्यकी परिपूर्णताका आयतन होनेसे स्वद्रव्यमें ही प्रतिबन्ध कर्तव्य है	२१४
मुनिजनको निकटका सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्ध भी निषेध्य	२१५
छेद क्या है—इसका उपदेश	२१६
छेदके अन्तरंग-बहिरंग-ऐसे दो प्रकार	२१७
सर्वथा अन्तरंग छेद निषेध्य है	२१८
उपधि अन्तरंग छेदकी भाँति त्याज्य है	२१९
उपधिका निषेध वह अन्तरंग छेदका ही निषेध है	२२०

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

विषय	गाथा
'किसीको कहीं कभी किसी प्रकार कोई उपधि अनिषिद्ध भी है' ऐसे अपवादका उपदेश.....	२२२
अनिषिद्ध उपधिका स्वरूप.....	२२३
'उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है, अपवाद नहीं'.....	२२४
अपवादके विशेष.....	२२५
अनिषिद्ध शरीरमात्र-उपधिके पालनकी विधि.....	२२६
युक्ताहारविहारी साक्षात् अनाहारविहारी ही है.....	२२७
श्रमणको युक्ताहारीपनेकी सिद्धि.....	२२८
युक्ताहारका विस्तृत स्वरूप.....	२२९
उत्सर्ग-अपवादकी मैत्री द्वारा आचरणका सुस्थितपना.....	२३०
उत्सर्ग-अपवादके विरोधसे आचरणका दुःस्थितपना.....	२३१
*** मोक्षमार्ग-प्रज्ञापन ***	
मोक्षमार्गके मूलसाधनभूत आगममें व्यापार.....	२३२
आगमहीनको मोक्षाख्य कर्मक्षय नहीं होता....	२३३
मोक्षमार्गियोंको आगम ही एक चक्षु.....	२३४
आगमचक्षुसे सब कुछ दिखाई देता ही है.....	२३५
आगमज्ञान, तत्पूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान और तदुभयपूर्वक संयतत्वकी युगपत्ताको मोक्षमार्गपना होनेका नियम.....	२३६
उक्त तीनोंकी अयुगपत्ताको मोक्षमार्गत्व घटित नहीं होता.....	२३७
उक्त तीनोंकी युगपत्ता होने पर भी, आत्मज्ञान मोक्षमार्गका साधकतम है.....	२३८
आत्मज्ञानशून्यके सर्व-आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान तथा संयतत्वकी युगपत्ता भी अकिंचित्कर.....	२३९
उक्त तीनोंकी युगपत्ताके साथ आत्मज्ञानकी युगपत्ताको साधते हैं.....	२४०
उक्त तीनोंकी युगपत्ता तथा आत्मज्ञानकी युगपत्ता जिसे सिद्ध हुई है ऐसे संयतका लक्षण.....	२४१
जिसका दूसरा नाम एकाग्रतालक्षण श्रामण्य है ऐसा यह संयतत्व ही मोक्षमार्ग है.....	२४२
अनेकाग्रताको मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता.....	२४३
एकाग्रता वह मोक्षमार्ग है ऐसा निश्चय करते हुए मोक्षमार्ग-प्रज्ञापनका उपसंहार.....	२४४
*** शुभोपयोग-प्रज्ञापन ***	
शुभोपयोगियोंको श्रमणरूपमें गौणतया बतलाते हैं.....	२४५
शुभोपयोगी श्रमणका लक्षण.....	२४६
शुभोपयोगी श्रमणोंकी प्रवृत्ति.....	२४७
शुभोपयोगियोंके ही ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं.....	२४८
सभी प्रवृत्तियाँ शुभोपयोगियोंके ही होती हैं.....	२४९
प्रवृत्ति संयमकी विरोधी होनेका निषेध.....	२५०
प्रवृत्तिके विषयके दो विभाग.....	२५१
प्रवृत्तिके कालका विभाग.....	२५२
लोकसंभाषणप्रवृत्ति उसके निमित्तके विभाग सहित बतलाते हैं.....	२५३
शुभोपयोगका गौण-मुख्य विभाग.....	२५४

विषय	गाथा
शुभोपयोगको कारणकी विपरीततासे फलकी विपरीतता.....	२५५
अविपरीत फलका कारण ऐसा जो 'अविपरीत कारण'.....	२५९
'अविपरीत कारण'की उपासनारूप प्रवृत्ति सामान्य और विशेषरूपसे कर्तव्य है.....	२६१
श्रमणाभासोंके प्रति समस्त प्रवृत्तियोंका निषेध.....	२६३
कैसा जीव श्रमणाभास है सो कहते हैं.....	२६४
जो श्रामण्यसे समान है उनका अनुमोदन न करनेवालेका विनाश.....	२६५
जो श्रामण्यमें अधिक हो उसके प्रति जैसे कि वह श्रामण्यमें हीन हो ऐसा आचरण करनेवालेका विनाश.....	२६६
स्वयं श्रामण्यमें अधिक हों तथापि अपनेसे हीन श्रमण प्रति समान जैसा आचरण करे तो उसका विनाश.....	२६७
असत्संग निषेध्य है.....	२६८
'लौकिक' (जन)का लक्षण	२६९
सत्संग करने योग्य है.....	२७०

*** पञ्चरत्न-प्रज्ञापन ***

संसारतत्त्व	२७१
मोक्षतत्त्व	२७२
मोक्षतत्त्वका साधनतत्त्व	२७३
मोक्षतत्त्वके साधनतत्त्वका अभिनन्दन.....	२७४
शास्त्रकी समाप्ति	२७५

* * *

*** परिशिष्ट ***

४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्यका कथन	५२१
आत्मद्रव्यकी प्राप्तिका प्रकार	५३२

[२९]

स्वानुभूति होनेपर जीवको कैसा साक्षात्कार होता है?

स्वानुभूति होनेपर, अनाकुल-आह्लादमय, एक, समस्त ही विश्व पर तैरता विज्ञानघन परमपदार्थ-परमात्मा अनुभवमें आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा सम्यक्रूपसे दृष्टिगोचर नहीं होता—श्रद्धामें नहीं आता, इसलिये स्वानुभूतिके बिना सम्यग्दर्शनका—धर्मका प्रारम्भ नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करनेके लिये जीवको क्या करना?

स्वानुभूतिकी प्राप्तिके लिये ज्ञानस्वभावी आत्माका चाहे जिस प्रकार भी दृढ़ निर्णय करना। ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय दृढ़ करनेमें सहायभूत तत्त्वज्ञानका—द्रव्योंका स्वयंसिद्ध सत्पना और स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्वका सच्चा स्वरूप, जीव और शरीरकी बिलकुल भिन्न-भिन्न क्रियाएँ, पुण्य और धर्मके लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयोंके सच्चे बोधका—अभ्यास करना चाहिय। तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक प्रयोजनभूत सत्योंके अभ्यासके साथ-साथ सर्व तत्त्वज्ञानका सिरमौर—मुकुटमणि जो शुद्धद्रव्यसामान्य अर्थात् परम पारिणामिकभाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्मद्रव्यसामान्य—जो स्वानुभूतिका आधार है, सम्यग्दर्शनका आश्रय है, मोक्षमार्गका आलम्बन है, सर्व शुद्धभावोंका नाथ है—उसकी दिव्य महिमा हृदयमें सर्वाधिकरूपसे अंकित करनेयोग्य है। उस निजशुद्धात्मद्रव्य-सामान्यका आश्रय करनेसे ही अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वानुभूति प्राप्त होती है।

—पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

❀ नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय। ❀

शास्त्र-स्वाध्यायका प्रारंभिक मंगलाचरण

*

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३॥

॥ श्रीपरमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्रीप्रवचनसारनामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्यश्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचितं, श्रोतारः सावधानतया शृणवन्तु॥

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥१॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥२॥

ॐ

नमः श्रीसिद्धेभ्यः।
नमोऽनेकान्ताय।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत

श्री

प्रवचनसार

–१–

ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिकृततत्त्वप्रदीपिकावृत्तिसमुपेतः।

(अनुष्टुभ्)

सर्वव्याप्येकचिद्रूपस्वरूपाय परात्मने।
स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय ज्ञानानन्दात्मने नमः ॥१॥

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः।

नमः परमचैतन्यस्वात्मोत्थसुखसम्पदे।
परमागमसाराय सिद्धाय परमेष्ठिने ॥

मूल गाथाओं और तत्त्वप्रदीपिका नामक टीकाके गुजराती अनुवादका
हिन्दी रूपान्तर

[सर्व प्रथम ग्रंथके प्रारंभमें श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित प्राकृतगाथाबद्ध श्री 'प्रवचनसार' नामक शास्त्रकी 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृत टीकाके रचयिता श्री अमृतचंद्राचार्यदेव उपरोक्त श्लोकोंके द्वारा मङ्गलाचरण करते हुए ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्माको नमस्कार करते हैं :–]

अर्थ :—सर्वव्यापी (अर्थात् सबका ज्ञाता-द्रष्टा) एक चैतन्यरूप (मात्र चैतन्य ही) जिसका स्वरूप है और जो स्वानुभवप्रसिद्ध है (अर्थात् शुद्ध आत्मानुभवसे प्रकृष्टतया सिद्ध है) उस ज्ञानानन्दात्मक (ज्ञान और आनन्दस्वरूप) उत्कृष्ट आत्माको नमस्कार हो।

(अनुष्टुभ्)

हेलोल्लुप्तमहामोहतमस्तोमं जयत्यदः ।
प्रकाशयज्जगत्तत्त्वमनेकान्तमयं महः ॥२॥

(आर्या)

परमानन्दसुधारसपिपासितानां हिताय भव्यानाम् ।
क्रियते प्रकटिततत्त्वा प्रवचनसारस्य वृत्तिरियम् ॥३॥

अथ प्रवचनसारव्याख्यायां मध्यमरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थायां मुख्यगौणरूपेणान्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वप्ररूपणसमर्थायां च प्रथमत एकोत्तरशतगाथाभिर्ज्ञानाधिकारः, तदनन्तरं त्रयोदशाधिकशतगाथाभिर्दर्शनाधिकारः, ततश्च सप्तनवतिगाथाभिश्चारित्राधिकारश्चेति समुदायेनैकादशाधिकत्रिशतप्रमितसूत्रैः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपेण महाधिकारत्रयं भवति। अथवा टीकाभिप्रायेण तु सम्यग्ज्ञानज्ञेयचारित्राधिकारचूलिकारूपेणाधिकारत्रयम्। तत्राधिकारत्रये प्रथमतस्तावज्ज्ञानाभिधानमहाधिकारमध्ये द्वासप्ततिगाथापर्यन्तं शुद्धोपयोगाधिकारः कथ्यते। तासु द्वासप्ततिगाथासु मध्ये 'एस सुरासुर–' इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण चतुर्दशगाथापर्यन्तं पीठिका, तदनन्तरं सप्तगाथापर्यन्तं सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिः, तदनन्तरं त्रयस्त्रिंशद्गाथापर्यन्तं ज्ञानप्रपञ्चः, ततश्चाष्टादशगाथापर्यन्तं सुखप्रपञ्चश्चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन शुद्धोपयोगाधिकारो भवति। अथ पञ्चविंशतिगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्डिकाचतुष्टयप्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारश्चेत्यधिकारद्वयेन, तदनन्तरं स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन चैकोत्तरशतगाथाभिः प्रथममहाधिकारे समुदायपातनिका ज्ञातव्या।

इदानीं प्रथमपातनिकाभिप्रायेण प्रथमतः पीठिकाव्याख्यानं क्रियते, तत्र पञ्चस्थलानि भवन्ति; तेष्वादौ नमस्कारमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं, तदनन्तरं चारित्रसूचनमुख्यत्वेन 'संपज्जइ णिव्वाणं' इति प्रभृति गाथात्रयमथ शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुख्यत्वेन 'जीवो परिणमदि' इत्यादिगाथासूत्रद्वयमथ तत्फलकथनमुख्यतया 'धम्मेण परिणदप्पा' इति प्रभृति सूत्रद्वयम्। अथ शुद्धोपयोगध्यातुः पुरुषस्य प्रोत्साहनार्थं शुद्धोपयोगफलदर्शनार्थं च प्रथमगाथा, शुद्धोपयोगिपुरुषलक्षणकथनेन द्वितीया चेति 'अइसयमादसमुत्थं' इत्यादि गाथाद्वयम्। एवं पीठिकाभिधानप्रथमान्तराधिकारे स्थलपञ्चकेन चतुर्दशगाथाभिस्समुदायपातनिका। तद्यथा—

[अब अनेकान्तमय ज्ञानकी मंगलके लिये श्लोक द्वारा स्तुति करते हैं:]

अर्थ:—जो महामोहरूपी अंधकारसमूहको लीलामात्रमें नष्ट करता है और जगतके स्वरूपको प्रकाशित करता है ऐसा अनेकांतमय तेज सदा जयवंत है।

[अब श्री अमृतचंद्राचार्यदेव श्लोक द्वारा अनेकांतमय जिनप्रवचनके सारभूत इस 'प्रवचनसार' शास्त्रकी टीका करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं :]

अर्थ:—परमानन्दरूपी सुधारसके पिपासु भव्य जीवोंके हितार्थ, तत्त्वको (वस्तुस्वरूपको) प्रगट करनेवाली प्रवचनसारकी यह टीका रची जा रही है।

अथ खलु कश्चिदासन्नसंसारपारावारपारः समुन्मीलितसातिशयविवेकज्योतिरस्तमित-समस्तैकांतवादाविद्याभिनिवेशः पारमेश्वरीमनेकान्तवादविद्यामुपगम्य मुक्तसमस्तपक्षपरिग्रह-तयात्यंतमध्यस्थो भूत्वा सकलपुरुषार्थसारतया नितान्तमात्मनो हिततमां भगवत्पंचपरमेष्ठि-प्रसादोपजन्यां परमार्थसत्यां मोक्षलक्ष्मीमक्षयामुपादेयत्वेन निश्चिन्वन् प्रवर्तमानतीर्थनायक-पुरःसरान् भगवतः पंचपरमेष्ठिनः प्रणमनवंदनोपजनितनमस्करणेन संभाव्य सर्वारंभेण मोक्षमार्गं संप्रतिपद्यमानः प्रतिजानीते—

अथ कश्चिदासन्नभव्यः शिवकुमारनामा स्वसंवित्तिसमुत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतविपरीत-चतुर्गतिसंसारदुःखभयभीतः, समुत्पन्नपरमभेदविज्ञानप्रकाशातिशयः, समस्तदुर्नयैकान्तनिराकृतदुराग्रहः, परित्यक्तसमस्तशत्रुमित्रादिपक्षपातेनात्यन्तमध्यस्थो भूत्वा धर्मार्थकामेभ्यः सारभूतामत्यन्तात्महिताम-विनश्वरां पंचपरमेष्ठिप्रसादोत्पन्नां मुक्तिश्रियमुपादेयत्वेन स्वीकुर्वाणः, श्रीवर्धमानस्वामितीर्थकरपरमदेव-प्रमुखान् भगवतः पंचपरमेष्ठिनो द्रव्यभावनमस्काराभ्यां प्रणम्य परमचारित्रमाश्रयामीति प्रतिज्ञां करोति—

[इसप्रकार मंगलाचरण और टीका रचनेकी प्रतिज्ञा करके, भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव-विरचित प्रवचनसारकी पहली पाँच गाथाओंके प्रारम्भमें श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव उन गाथाओंकी उत्थानिका करते हैं।]

अब, जिनके संसार समुद्रका किनारा निकट है, सातिशय (उत्तम) विवेकज्योति प्रगट हो गई है (अर्थात् परम भेदविज्ञानका प्रकाश उत्पन्न हो गया है) तथा समस्त एकांतवादरूप अविद्याका [१]अभिनिवेश अस्त हो गया है ऐसे कोई (आसन्नभव्य महात्माश्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य), पारमेश्वरी (परमेश्वर जिनेन्द्रदेवकी) अनेकान्तवादविद्याको प्राप्त करके, समस्त पक्षका परिग्रह (शत्रुमित्रादिका समस्त पक्षपात) त्याग देनेसे अत्यन्त मध्यस्थ होकर, [२]सर्व पुरुषार्थमें सारभूत होनेसे आत्माके लिये अत्यन्त [३]हिततम भगवन्त पंचपरमेष्ठीके [४]प्रसादसे उत्पन्न होने योग्य, परमार्थसत्य (पारमार्थिक रीतिसे सत्य), अक्षय (अविनाशी) मोक्षलक्ष्मीको [५]उपादेयरूपसे निश्चित करते हुए प्रवर्तमान तीर्थके नायक (श्री महावीरस्वामी) पूर्वक भगवंत पंचपरमेष्ठीको [६]प्रणमन और वन्दनसे होनेवाले नमस्कारके द्वारा सन्मान करके सर्वारम्भसे (उद्यमसे) मोक्षमार्गका आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं।

१. अभिनिवेश=अभिप्राय; निश्चय; आग्रह।

२. पुरुषार्थ=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुष-अर्थोमें (पुरुष-प्रयोजनों में) मोक्ष ही सारभूत श्रेष्ठ तात्विक पुरुष-अर्थ है।

३. हिततम=उत्कृष्ट हितस्वरूप। ४. प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा।

५. उपादेय=ग्रहण करने योग्य, (मोक्षलक्ष्मी हिततम, यथार्थ और अविनाशी होनेसे उपादेय है।)

६. प्रणमन=देहसे नमस्कार करना। वन्दन=वचनसे स्तुति करना। नमस्कारमें प्रणमन और वन्दन दोनोंका समावेश होता है।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ सूत्रावतार :—

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं ।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥१॥
सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे ।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे ॥२॥
ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं ।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते ॥३॥
किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं ।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं ॥४॥

पणमामीत्यादिपदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते—**पणमामि** प्रणमामि। स कः। कर्ता **एस** एषोऽहं ग्रन्थकरणोद्यतमनाः स्वसंवेदनप्रत्यक्षः। कं। **वड्ढमाणं** अवसमन्तादृद्धं वृद्धं मानं प्रमाणं ज्ञानं यस्य स भवति वर्धमानः, 'अवाप्योरलोपः' इति लक्षणेन भवत्यकारलोपोऽवशब्दस्यात्र, तं रत्नत्रयात्मकप्रवर्तमानधर्मतीर्थोपदेशकं श्रीवर्धमानतीर्थकरपरमदेवम्। क्व प्रणमामि। प्रथमत एव। किंविशिष्टं। **सुरासुरमणुसिंदवंदिदं** त्रिभुवनाराध्यानन्तज्ञानादिगुणाधारपदाधिष्ठितत्वात्तत्पदाभिलाषिभिस्त्रिभुवनाधीशैः सम्यगाराध्यपादारविन्दत्वाच्च सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितम्। पुनरपि किंविशिष्टं। **धोदघाइ-**

अब, यहाँ (भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित) गाथासूत्रोंका अवतरण किया जाता है।

सुर-असुर-नरपतिवंद्यने, प्रविनष्टघातिकर्मने,
प्रणमन करूं हूँ धर्मकर्त्ता तीर्थ श्रीमहावीरने; १.
वळी शेष तीर्थंकर अने सौ सिद्ध शुद्धास्तित्वने.
मुनि ज्ञान-दृग-चारित्र-तप-वीर्याचरणसंयुक्तने. २.
ते सर्वने साथे तथा प्रत्येकने प्रत्येकने,
वंदुं वळी हुं मनुष्यक्षेत्रे वर्तता अर्हंतने. ३.
अर्हंतने, श्री सिद्धनेय नमस्करण करी अे रीते,
गणधर अने अध्यापकोने, सर्वसाधुसमूहने. ४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज ।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥५॥

एष सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितं धौतघातिकर्ममलम् ।
प्रणमामि वर्धमानं तीर्थं धर्मस्य कर्तारम् ॥१॥
शेषान् पुनस्तीर्थकरान् ससर्वसिद्धान् विशुद्धसद्भावान् ।
श्रमणांश्च ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारान् ॥२॥
तांस्तान् सर्वान् समकं समकं प्रत्येकमेव प्रत्येकम् ।
वन्दे च वर्तमानानर्हतो मानुषे क्षेत्रे ॥३॥

कम्ममलं परमसमाधिसमुत्पन्नरागादिमलरहितपारमार्थिकसुखामृतरूपनिर्मलनीरप्रक्षालितघातिकर्ममलत्वादन्येषां पापमलप्रक्षालनहेतुत्वाच्च धौतघातिकर्ममलम्। पुनश्च किंलक्षणम्। **तित्थं** दृष्टश्रुतानुभूतविषयसुखाभिलाषरूपनीरप्रवेशरहितेन परमसमाधिपोतेनोत्तीर्णसंसारसमुद्रत्वात् अन्येषां तरणोपायभूतत्वाच्च तीर्थम्। पुनश्च किंरूपम्। **धम्मस्स कत्तारं** निरुपरागात्मतत्त्वपरिणतिरूपनिश्चयधर्मस्योपादान-

---

अन्वयार्थ :—[एषः] यह मैं [सुरासुरमनुष्येन्द्रवंदितं] जो [१]सुरेन्द्रों, [२]असुरेन्द्रों और [३]नरेन्द्रोंसे वन्दित हैं तथा जिन्होंने [धौतघातिकर्ममलं] घाति कर्ममलको धो डाला है ऐसे [तीर्थं] तीर्थरूप और [धर्मस्य कर्तारं] धर्मके कर्ता [वर्धमानं] श्री वर्धमानस्वामीको [प्रणमामि] नमस्कार करता हूँ॥१॥

[पुनः] और [विशुद्धसद्भावान्] विशुद्ध [४]सत्तावाले [शेषान् तीर्थकरान्] शेष तीर्थंकरोंको [ससर्वसिद्धान्] सर्व सिद्धभगवन्तोंके साथ ही, [च] और [ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारान्] ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार युक्त [श्रमणान्] [५]श्रमणोंको नमस्कार करता हूँ॥२॥

[तान् तान् सर्वान्] उन उन सबको [च] तथा [मानुषे क्षेत्रे वर्तमानान्] मनुष्य क्षेत्रमें विद्यमान [अर्हतः] अरहन्तोंको [समकं समकं] साथ ही साथ—समुदायरूपसे और [प्रत्येकं एव प्रत्येकं] प्रत्येक प्रत्येकको—व्यक्तिगत [वंदे] वन्दना करता हूँ॥३॥

---

१. सुरेन्द्र = ऊर्ध्वलोकवासी देवोंके इन्द्र। २. असुरेन्द्र = अधोलोकवासी देवोंके इन्द्र।
३. नरेन्द्र = (मध्यलोकवासी) मनुष्योंके अधिपति, राजा। ४. सत्ता=अस्तित्व।
५. श्रमण = आचार्य, उपाध्याय और साधु।

तसु शुद्धदर्शनज्ञान मुख्य पवित्र आश्रम पामीने,
प्राप्ति करूं हुं साम्यनी, जेनाथी शिवप्राप्ति बने. ५.

कृत्वार्हद्भ्यः सिद्धेभ्यस्तथा नमो गणधरेभ्यः ।
अध्यापकवर्गेभ्यः साधुभ्यश्चैव सर्वेभ्यः ॥४॥
तेषां विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं समासाद्य ।
उपसम्पद्ये साम्यं यतो निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥५॥

एष स्वसंवेदनप्रत्यक्षदर्शनज्ञानसामान्यात्माहं सुरासुरमनुष्येन्द्रवंदितत्वात्त्रिलोकैकगुरुं, धौतघातिकर्ममलत्वाज्जगदनुग्रहसमर्थानंतशक्तिपारमैश्वर्यं, योगिनां तीर्थत्वात्तारणसमर्थं, धर्मकर्तृत्वाच्छुद्धस्वरूपवृत्तिविधातारं, प्रवर्तमानतीर्थनायकत्वेन प्रथमत एव परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरपरमपूज्यसुगृहीतनामश्रीवर्धमानदेवं प्रणमामि ॥१॥ तदनु विशुद्धसद्भावत्वादुपात्त-

---

कारणत्वात् अन्येषामुत्तमक्षमादिबहुविधधर्मोपदेशकत्वाच्च धर्मस्य कर्तारम्। इति क्रियाकारकसम्बन्धः। एवमन्तिमतीर्थकरनमस्कारमुख्यत्वेन गाथा गता ॥१॥ तदनन्तरं प्रणमामि। कान्। **सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे** शेषतीर्थकरान्, पुनः ससर्वसिद्धान् वृषभादिपार्श्वपर्यन्तान् शुद्धात्मोपलब्धिलक्षणसर्वसिद्धसहितानेतान् सर्वानपि। कथंभूतान्। विसुद्धसब्भावे निर्मलात्मोपलब्धिबलेन विश्लेषिताखिलावरणत्वात्केवलज्ञानदर्शनस्वभावत्वाच्च विशुद्धसद्भावान्। **समणे य** श्रमणशब्दवाच्यानाचार्योपाध्यायसाधूंश्च। किंलक्षणान्। **णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे** सर्वविशुद्धद्रव्यगुणपर्यायात्मके चिद्वस्तुनि यासौ रागादि-

---

[अर्हद्भ्यः] इसप्रकार अरहन्तोंको [सिद्धेभ्यः] सिद्धोंको [तथा गणधरेभ्यः] आचार्योंको [अध्यापकवर्गेभ्यः] उपाध्यायवर्गको [च एवं] और [सर्वेभ्यः साधुभ्यः] सर्व साधुओंको [नमः कृत्वा] नमस्कार करके [तेषां] उनके [विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं] [१]विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधान आश्रमको [समासाद्य] प्राप्त करके [साम्यं उपसंपद्ये] मैं [२]साम्यको प्राप्त करता हूँ [यतः] जिससे [निर्वाण संप्राप्तिः] निर्वाणकी प्राप्ति होती है ॥४-५॥

टीका :—यह [३]स्वसंवेदनप्रत्यक्ष [४]दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप मैं, जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रोंके द्वारा वन्दित होनेसे तीन लोकके एक (अनन्य सर्वोत्कृष्ट) गुरु हैं, जिनमें घातिकर्ममलके धो डालनेसे जगत पर अनुग्रह करनेमें समर्थ अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरता है, जो तीर्थताके कारण योगियोंको तारनेमें समर्थ हैं, धर्मके कर्ता होनेसे जो शुद्ध स्वरूपपरिणतिके कर्ता हैं, उन परम भट्टारक, महादेवाधिदेव, परमेश्वर, परमपूज्य, जिनका नामग्रहण भी अच्छा है ऐसे श्री वर्धमानदेवको प्रवर्तमान तीर्थकी नायकताके कारण प्रथम ही, प्रणाम करता हूँ ॥१॥

---

१. विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधान = विशुद्ध दर्शन और ज्ञान जिसमें प्रधान (मुख्य) हैं, ऐसे।
२. साम्य = समता, समभाव।
३. स्वसंवेदनप्रत्यक्ष = स्वानुभवसे प्रत्यक्ष (दर्शनज्ञानसामान्य स्वानुभवसे प्रत्यक्ष है)।
४. दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप = दर्शनज्ञानसामान्य अर्थात् चेतना जिसका स्वरूप है ऐसा।

पाकोत्तीर्णजात्यकार्तस्वरस्थानीयशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावान् शेषानतीततीर्थनायकान्, सर्वान् सिद्धांश्च, ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारयुक्तत्वात्संभावितपरमशुद्धोपयोगभूमिकानाचार्योपाध्याय-साधुत्वविशिष्टान् श्रमणांश्च प्रणमामि।।२।। तदन्वेतानेव पंचपरमेष्ठिनस्तत्तद्व्यक्तिव्यापिनः सर्वानेव सांप्रतमेतत्क्षेत्रसंभवतीर्थकरासंभवान्महाविदेहभूमिसंभवत्वे सति मनुष्यक्षेत्रप्रवर्तिभि-स्तीर्थनायकैः सह वर्तमानकालं गोचरीकृत्य युगपद्युगपत्प्रत्येकं प्रत्येकं च मोक्षलक्ष्मीस्वयं-वरायमाणपरमनैर्ग्रन्थ्यदीक्षाक्षणोचितमंगलाचारभूतकृतिकर्मशास्त्रोपदिष्टवन्दनाभिधानेन सम्भाव-

---

विकल्परहितनिश्चलचित्तवृत्तिस्तदन्तर्भूतेन व्यवहारपञ्चाचारसहकारिकारणोत्पन्नेन निश्चयपञ्चाचारेण परिणतत्वात् सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारोपेतानिति। एवं शेषत्रयोविंशतितीर्थकरनमस्कार-मुख्यत्वेन गाथा गता।।२।। अथ **ते ते सव्वे** तांस्तान्पूर्वोक्तानेव पञ्चपरमेष्ठिनः सर्वान् वंदामि य वन्दे, अहं कर्ता। कथं। **समगं समगं** समुदायवन्दनापेक्षया युगपद्युगपत्। पुनरपि कथं। **पत्तेगमेव पत्तेगं** प्रत्येकवन्दनापेक्षया प्रत्येकं प्रत्येकम्। न केवलमेतान् वन्दे। **अरहंते** अर्हतः। किंविशिष्टान्। **वट्टंते माणुसे खेत्ते** वर्तमानान्। क्व। मानुषे क्षेत्रे। तथा हि—साम्प्रतमत्र भरतक्षेत्रे तीर्थकराभावात् पञ्च-

---

तत्पश्चात् जो विशुद्ध सत्तावान् होनेसे तापसे उत्तीर्ण हुए (अन्तिम ताव दिये हुए अग्निमेंसे बाहर निकले हुए) उत्तम सुवर्णके समान शुद्धदर्शनज्ञानस्वभावको प्राप्त हुए हैं, ऐसे शेष [१]अतीत तीर्थंकरोंको और सर्वसिद्धोंको तथा ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचारयुक्त होनेसे जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिकाको प्राप्त किया है, ऐसे श्रमणोंको—जो कि आचार्यत्व, उपाध्यायत्व और साधुत्वरूप विशेषोंसे विशिष्ट (–भेदयुक्त) हैं उन्हें—नमस्कार करता हूँ।।२।।

तत्पश्चात् इन्हीं पंचपरमेष्ठियोंको, उस-उस व्यक्तिमें (पर्यायमें) व्याप्त होनेवाले सभीको, वर्तमानमें इस क्षेत्रमें उत्पन्न तीर्थंकरोंका अभाव होनेसे और महाविदेहक्षेत्रमें उनका सद्भाव होनेसे मनुष्यक्षेत्रमें प्रवर्तमान तीर्थनायकयुक्त वर्तमानकालगोचर करके, (–महाविदेहक्षेत्रमें वर्तमान श्री सीमंधरादि तीर्थंकरोंकी भाँति मानों सभी पंच परमेष्ठी भगवान वर्तमानकालमें ही विद्यमान हों, इसप्रकार अत्यन्त भक्तिके कारण भावना भाकर–चिंतवन करके उन्हें) युगपद् युगपद् अर्थात् समुदायरूपसे और प्रत्येक प्रत्येकको अर्थात् व्यक्तिगतरूपसे [२]संभावना करता हूँ। किस प्रकारसे संभावना करता हूँ? मोक्षलक्ष्मीके स्वयंवर समान जो परम निर्ग्रन्थताकी दीक्षाका उत्सव (–आनन्दमय प्रसंग) है उसके उचित मंगलाचरणभूत जो [३]कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट वन्दनोच्चार (कृतिकर्मशास्त्रमें उपदेशे हुए स्तुतिवचन)के द्वारा सम्भावना करता हूँ।।३।।

---

१. अतीत = गत, होगये, भूतकालीन।

२. संभावना = संभावना करना, सन्मान करना, आराधन करना।

३. कृतिकर्म = अंगबाह्य १४ प्रकीर्णकोंमें छट्ठा प्रकीर्णक कृतिकर्म है जिसमें नित्यनैमित्तिक क्रियाका वर्णन है।

यामि।।३।। अथैवमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधूनां प्रणतिवंदनाभिधानप्रवृत्तद्वैतद्वारेण भाव्य-भावकभावविजृम्भितातिनिर्भरेतरेतरसंवलनबलविलीननिखिलस्वपरविभागतया प्रवृत्ताद्वैतं नमस्कारं कृत्वा।।४।। तेषामेवार्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधूनां विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधानत्वेन सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावात्मतत्त्वश्रद्धानावबोधलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानसंपादकमाश्रमं समासाद्य सम्यग्दर्शनज्ञानसंपन्नो भूत्वा, जीवत्कषायकणतया पुण्यबन्धसंप्राप्तिहेतुभूतं सरागचारित्रं

महाविदेहस्थितश्रीसीमन्धरस्वामीतीर्थकरपरमदेवप्रभृतितीर्थकरैः सह तानेव पञ्चपरमेष्ठिनो नमस्करोमि। कया करणभूतया। मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरमण्डपभूतजिनदीक्षाक्षणे मङ्गलाचारभूतया अनन्तज्ञानादिसिद्धगुण-भावनारूपया सिद्धभक्त्या, तथैव निर्मलसमाधिपरिणतपरमयोगिगुणभावनालक्षणया योगभक्त्या चेति। एवं पूर्वविदेहतीर्थकरनमस्कारमुख्यत्वेन गाथा गतेत्यभिप्रायः।।३।। अथ किच्चा कृत्वा। कम्। णमो नमस्कारम्। केभ्यः। अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव अर्हत्सिद्धगणधरो-पाध्यायसाधुभ्यश्चैव। कतिसंख्योपेतेभ्यः। सव्वेसिं सर्वेभ्यः। इति पूर्वगाथात्रयेण कृतपञ्च-परमेष्ठिनमस्कारोपसंहारोऽयम्।।४।। एवं पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कृत्वा किं करोमि। उवसंपयामि उपसंपद्ये

अब इस प्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओंको प्रणाम और वन्दनोच्चारसे प्रवर्तमान द्वैतके द्वारा, [१]भाव्यभावक भावसे उत्पन्न अत्यन्त गाढ़ [२]इतरेतर मिलनके कारण समस्त स्वपरका विभाग विलीन हो जानेसे जिसमें [३]अद्वैत प्रवर्तमान है ऐसा नमस्कार करके, उन्हीं अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधुओंके आश्रमको,—जो कि (आश्रम) विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होनेसे [४]सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाले आत्मतत्त्वका श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका [५]सम्पादक है उसे—प्राप्त करके, सम्यग्दर्शनज्ञानसम्पन्न होकर, जिसमें [६]कषायकण विद्यमान होनेसे जीवको जो पुण्यबन्धकी प्राप्तिका कारण है ऐसे सराग चारित्रको—वह (सराग चारित्र) क्रमसे आ पड़ने

---

१. भाव्य = भाने योग्य; चिंतवन करने योग्य; ध्यान करने योग्य अर्थात् ध्येय। भावक = भावना करनेवाला, चिंतवन करनेवाला, ध्यान करनेवाला, अर्थात् ध्याता।

२. इतरेतरमिलन = एक दूसरेका परस्पर मिल जाना अर्थात् मिश्रित हो जाना।

३. अद्वैत = पंच परमेष्ठीके प्रति अत्यंत आराध्य भावके कारण आराध्यरूप पंच परमेष्ठी भगवान और आराधकरूप अपने भेदका विलय हो जाता है। इसप्रकार नमस्कारमें अद्वैत पाया जाता है। यद्यपि नमस्कारमें प्रणाम और वंदनोच्चार दोनोंका समावेश होता है इसलिये उसमें द्वैत कहा है, तथापि तीव्र भक्तिभावसे स्वपरका भेदविलिन हो जानेकी अपेक्षासे उसमें अद्वैत पाया जाता है।

४. सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाले = सहज शुद्ध दर्शन और ज्ञान जिनका स्वभाव है वे।

५. संपादक = प्राप्त करानेवाला, उत्पन्न करनेवाला।

६. कषायकण = कषायका सूक्ष्मांश

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

क्रमापतितमपि दूरमुत्क्रम्य सकलकषायकलिकलंकविविक्ततया निर्वाणसंप्राप्तिहेतुभूतं वीतरागचारित्राख्यं साम्यमुपसम्पद्ये। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यात्मकैकाग्र्यं गतोऽस्मीति प्रतिज्ञार्थः। एवं तावदयं साक्षान्मोक्षमार्गं संप्रतिपन्नः ॥५॥

अथायमेव वीतरागसरागचारित्रयोरिष्टानिष्टफलत्वेनोपादेयहेयत्वं विवेचयति—

संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं ।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो ॥६॥

समाश्रयामि। किम्। सम्मं साम्यं चारित्रम्। यस्मात् किं भवति। जत्तो णिव्वाणसंपत्ती यस्मान्निर्वाणसंप्राप्तिः। किं कृत्वा पूर्वं। समासिज्ज समासाद्य प्राप्य। कम्। विसुद्धणाणदंसणपहाणासमं विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणप्रधानाश्रमम्। केषां सम्बन्धित्वेन। तेसिं तेषां पूर्वोक्तपञ्चपरमेष्ठिनामिति। तथाहि—अहमाराधकः, एते चार्हदादय आराध्या, इत्याराध्याराधकविकल्परूपो द्वैतनमस्कारो भण्यते। रागाद्युपाधिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनात्मन्येवाराध्याराधकभावः पुनरद्वैतनमस्कारो भण्यते। इत्येवं-लक्षणं पूर्वोक्तगाथात्रयकथितप्रकारेण पञ्चपरमेष्ठिसम्बन्धिनं द्वैताद्वैतनमस्कारं कृत्वा। ततः किं करोमि। रागादिभ्यो भिन्नोऽयं स्वात्मोत्थसुखस्वभावः परमात्मेति भेदज्ञानं, तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वमित्युक्तलक्षणज्ञानदर्शनस्वभावं, मठचैत्यालयादिलक्षणव्यवहाराश्रमाद्विलक्षणं, भावा-श्रमरूपं प्रधानाश्रमं प्राप्य, तत्पूर्वकं क्रमायातमपि सरागचारित्रं पुण्यबन्धकारणमिति ज्ञात्वा परिहृत्य

पर भी (गुणस्थान-आरोहणके क्रममें बलात् अर्थात् चारित्रमोहके मन्द उदयसे आ पड़ने पर भी)—दूर उल्लंघन करके, जो समस्त कषायक्लेशरूपी कलंकसे भिन्न होनेसे निर्वाणप्राप्तिका कारण है ऐसे वीतरागचारित्र नामक साम्यको प्राप्त करता हूँ। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की ऐक्यस्वरूप एकाग्रताको मैं प्राप्त हुआ हूँ, यह (इस) प्रतिज्ञाका अर्थ है। इस प्रकार तब इन्होंने (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवने) साक्षात् मोक्षमार्गको अंगीकार किया ॥४-५॥

अब वे ही (कुन्दकुन्दाचार्यदेव) वीतरागचारित्र इष्ट फलवाला है इसलिये उसकी उपादेयता और सरागचारित्र अनिष्ट फलवाला है इसलिये उसकी हेयताका विवेचन करते हैं :—

सुर-असुर-मनुजेन्द्रो तणा विभवो सहित निर्वाणनी
प्राप्ति करे चारित्रथी जीव ज्ञानदर्शनमुख्यथी. ६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

सम्पद्यते निर्वाणं देवासुरमनुजराजविभवैः ।
जीवस्य चरित्राद्दर्शनज्ञानप्रधानात् ॥६॥

संपद्यते हि दर्शनज्ञानप्रधानाच्चारित्राद्वीतरागान्मोक्षः। तत एव च सरागाद्देवासुरमनुजराजविभवक्लेशरूपो बन्धः। अतो मुमुक्षुणेष्टफलत्वाद्वीतरागचारित्रमुपादेयमनिष्टफलत्वात्सरागचारित्रं हेयम् ॥६॥

अथ चारित्रस्वरूपं विभावयति—

**चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥७॥**

निश्चलशुद्धात्मानुभूतिस्वरूपं वीतरागचारित्रमहमाश्रयामीति भावार्थः। एवं प्रथमस्थले नमस्कारमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं गतम् ॥५॥ अथोपादेयभूतस्यातीन्द्रियसुखस्य कारणत्वाद्वीतरागचारित्रमुपादेयम्। अतीन्द्रियसुखापेक्षया हेयस्येन्द्रियसुखस्य कारणत्वात्सरागचारित्रं हेयमित्युपदिशति—**संपज्जदि** सम्पद्यते। किम्। **णिव्वाणं** निर्वाणम्। कथम्। सह। **कैः**। देवासुरमणुयरायविहवेहिं देवासुरमनुष्यराजविभवैः। कस्य। **जीवस्स** जीवस्य। कस्मात्। **चरित्तादो** चारित्रात्। कथंभूतात्। **दंसणणाणप्पहाणादो** सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधानादिति। तद्यथा---आत्माधीनज्ञानसुखस्वभावे शुद्धात्मद्रव्ये यन्निश्चलनिर्विकारानुभूतिरूपम-

---

अन्वयार्थ :—[जीवस्य] जीवको [दर्शनज्ञानप्रधानात्] दर्शनज्ञानप्रधान [चारित्रात्] चारित्रसे [देवासुरमनुजराजविभवैः] देवेन्द्र, असुरेन्द्र और नरेन्द्रके वैभवोंके साथ [निर्वाणं] निर्वाण [संपद्यते] प्राप्त होता है। (जीवको सरागचारित्रसे देवेन्द्र इत्यादिके वैभवोंकी और वीतरागचारित्रसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है।) ॥६॥

टीका :—दर्शनज्ञानप्रधान चारित्रसे, यदि वह (चारित्र) वीतराग हो तो मोक्ष प्राप्त होता है; और उससे ही, यदि वह सराग हो तो देवेन्द्र-असुरेन्द्र-नरेन्द्रके वैभवक्लेशरूप बन्धकी प्राप्ति होती है। इसलिये मुमुक्षुओंको इष्ट फलवाला होनेसे वीतरागचारित्र ग्रहण करने योग्य (उपादेय) है, और अनिष्ट फलवाला होनेसे सरागचारित्र त्यागने योग्य (हेय) है ॥६॥

अब चारित्रका स्वरूप व्यक्त करते हैं :—

**चारित्र छे ते धर्म छे, जे धर्म छे, ते साम्य छे;
ने साम्य जीवनो मोहक्षोभविहीन निज परिणाम छे. ७.**

चारित्रं खलु धर्मो धर्मो यस्तत्साम्यमिति निर्दिष्टम् ।
मोहक्षोभविहीनः परिणाम आत्मनो हि साम्यम् ।।७।।

स्वरूपे चरणं चारित्रं, स्वसमयप्रवृत्तिरित्यर्थः। तदेव वस्तुस्वभावत्वाद्धर्मः। शुद्ध-चैतन्यप्रकाशनमित्यर्थः। तदेव च यथावस्थितात्मगुणत्वात्साम्यम्। साम्यं तु दर्शनचारित्र-मोहनीयोदयापादितसमस्तमोहक्षोभाभावादत्यन्तनिर्विकारो जीवस्य परिणामः।।७।।

वस्थानं तल्लक्षणनिश्चयचारित्राज्जीवस्य समुत्पद्यते। किम्। पराधीनेन्द्रियजनितज्ञानसुखविलक्षणं, स्वाधीनातीन्द्रियरूपपरमज्ञानसुखलक्षणं निर्वाणम्। सरागचारित्रात्पुनर्देवासुरमनुष्यराजविभूतिजनको मुख्यवृत्त्या विशिष्टपुण्यबन्धो भवति, परम्परया निर्वाणं चेति। असुरेषु मध्ये सम्यग्दृष्टिः कथमुत्पद्यते इति चेत्–निदानबन्धेन सम्यक्त्वविराधनां कृत्वा तत्रोत्पद्यत इति ज्ञातव्यम्। अत्र निश्चयेन वीतरागचारित्रमुपादेयं सरागं हेयमिति भावार्थः।।६।। अथ निश्चयचारित्रस्य पर्यायनामानि कथयामीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिंद निरूपयति, एवमग्रेऽपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि धृत्वाथवास्य सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्--**चारित्तं** चारित्रं कर्तृ **खलु धम्मो खलु** स्फुटं धर्मो भवति। **धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो** धर्मो यः स तु शम इति निर्दिष्टः। **समो** यस्तु शमः सः **मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो**

अन्वयार्थ :—[**चारित्रं**] चारित्र [**खलु**] वास्तवमें [**धर्मः**] धर्म है। [**यः धर्मः**] जो धर्म है [**तत् साम्यम्**] वह साम्य है [**इति निर्दिष्टम्**] ऐसा (शास्त्रोंमें) कहा है। [**साम्यं हि**] साम्य [**मोहक्षोभविहीनः**] मोक्षक्षोभरहित ऐसा [**आत्मनःपरिणामः**] आत्माका परिणाम (भाव) है।।७।।

टीका :—स्वरूपमें चरण करना (–रमना) सो चारित्र है। स्वसमयमें प्रवृत्ति करना (अपने स्वभावमें प्रवृत्ति करना) ऐसा इसका अर्थ है। यही वस्तुका स्वभाव होनेसे धर्म है। शुद्ध चैतन्यका प्रकाश करना यह इसका अर्थ है। वही यथावस्थित आत्मगुण होनेसे (विषमतारहित सुस्थित आत्माका गुण होनेसे) साम्य है। और साम्य, दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीयके उदयसे उत्पन्न होनेवाले समस्त मोह और क्षोभके अभावके कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीवका परिणाम है।

भावार्थ :—शुद्ध आत्माके श्रद्धानरूप सम्यक्त्वसे विरुद्ध भाव (मिथ्यात्व) वह मोह है और निर्विकार निश्चल चैतन्यपरिणतिरूप चारित्रसे विरुद्ध भाव (अस्थिरता) वह क्षोभ है। मोह और क्षोभ रहित परिणाम, साम्य, धर्म और चारित्र यह सब पर्यायवाची हैं।।७।।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथात्मनश्चारित्रत्वं निश्चिनोति—

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं ति पण्णत्तं ।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो ॥८॥

परिणमति येन द्रव्यं तत्कालं तन्मयमिति प्रज्ञप्तम् ।
तस्माद्धर्मपरिणत आत्मा धर्मो मन्तव्यः ॥८॥

हु मोहक्षोभविहीनः परिणामः। कस्य। आत्मनः। हु स्फुटमिति। तथाहि--शुद्धचित्स्वरूपे चरणं चारित्रं, तदेव चारित्रं मिथ्यात्वरागादिसंसरणरूपे भावसंसारे पतन्तं प्राणिनमुद्धृत्य निर्विकारशुद्धचैतन्ये धरतीति धर्मः। स एव धर्मः स्वात्मभावनोत्थसुखामृतशीतजलेन कामक्रोधादिरूपाग्निजनितस्य संसारदुःख-दाहस्योपशमकत्वात् शम इति। ततश्च शुद्धात्मश्रद्धानरूपसम्यक्त्वस्य विनाशको दर्शनमोहाभिधानो मोह इत्युच्यते। निर्विकारनिश्चलचित्तवृत्तिरूपचारित्रस्य विनाशकश्चारित्रमोहाभिधानः क्षोभ इत्युच्यते। तयोर्विध्वंसकत्वात्स एव शमो मोहक्षोभविहीनः शुद्धात्मपरिणामो भण्यत इत्यभिप्रायः॥७॥ अथाभेदनयेन धर्मपरिणत आत्मैव धर्मो भवतीत्यावेदयति---**परिणमदि जेण दव्वं तक्काले तम्मयं ति पण्णत्तं** परिणमति येन पर्यायेण द्रव्यं कर्तृ तत्काले तन्मयं भवतीति प्रज्ञप्तं यतः कारणात्, **तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो** ततः कारणात् धर्मेण परिणत आत्मैव धर्मो मन्तव्य इति। तद्यथा–निजशुद्धात्मपरिणतिरूपो निश्चयधर्मो भवति। पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिपरिणामरूपो व्यवहार-धर्मस्तावदुच्यते। यतस्तेन तेन विवक्षितविवक्षितपर्यायेण परिणतं द्रव्यं तन्मयं भवति, ततः पूर्वोक्तधर्मद्वयेन परिणतस्तप्तायःपिण्डवदभेदनयेनात्मैव धर्मो भवतीति ज्ञातव्यम्। तदपि कस्मात्। उपादानकारणसदृशं हि कार्यमिति वचनात्। तच्च पुनरुपादानकारणं शुद्धाशुद्धभेदेन द्विधा। रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानमागमभाषया शुक्लध्यानं वा केवलज्ञानोत्पत्तौ शुद्धोपादानकारणं भवति। अशुद्धात्मा तु रागादीनामशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानकारणं भवतीति सूत्रार्थः। एवं चारित्रस्य

अब आत्माकी चारित्रता (अर्थात् आत्मा ही चारित्र है ऐसा) निश्चय करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**द्रव्यं**] द्रव्य जिस समय [**येन**] जिस भावरूपसे [**परिणमति**] परिणमन करता है [**तत्कालं**] उस समय [**तन्मयं**] उस मय है [**इति**] ऐसा [**प्रज्ञप्तं**] (जिनेन्द्र देवने) कहा है; [**तस्मात्**] इसलिये [**धर्मपरिणतः आत्मा**] धर्मपरिणत आत्माको [**धर्मः मन्तव्यः**] धर्म समझना चाहिये ॥८॥

जे भावमां प्रणमे दरव, ते काळ तन्मय ते कह्युं;
जीवद्रव्य तेथी धर्ममां प्रणमेल धर्म ज जाणवुं. ८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

यत्खलु द्रव्यं यस्मिन्काले येन भावेन परिणमति तत् तस्मिन् काले किलौष्ण्य-परिणतायःपिण्डवत्तन्मयं भवति। ततोऽयमात्मा धर्मेण परिणतो धर्म एव भवतीति सिद्धमात्मनश्चारित्रत्वम् ॥८॥

अथ जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वं निश्चिनोति—

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो ॥९॥

जीवः परिणमति यदा शुभेनाशुभेन वा शुभोऽशुभः।
शुद्धेन तदा शुद्धो भवति हि परिणामस्वभावः ॥९॥

संक्षेपसूचनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम् ॥८॥ अथ शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयेण परिणतो जीवः शुभाशुभशुद्धोपयोगस्वरूपो भवतीत्युपदिशति---**जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा** जीवः कर्ता यदा परिणमति शुभेनाशुभेन वा परिणामेन **सुहो असुहो हवदि** तदा शुभेन शुभो भवति, अशुभेन वाऽशुभो भवति। **सुद्धेण तदा सुद्धो हि** शुद्धेन यदा परिणमति तदा शुद्धो भवति, हि स्फुटम्। कथंभूतः सन्।

टीका :—वास्तवमें जो द्रव्य जिस समय जिस भावरूपसे परिणमन करता है, वह द्रव्य उस समय उष्णतारूपसे परिणमित लोहेके गोलेकी भाँति उस मय है, इसलिये यह आत्मा धर्मरूप परिणमित होने से धर्म ही है। इसप्रकार आत्माकी चारित्रता सिद्ध हुई।

भावार्थ :—सातवीं गाथामें कहा गया है कि चारित्र आत्माका ही भाव है। और इस गाथामें अभेदनयसे यह कहा है कि जैसे उष्णतारूप परिणमित लोहेका गोला स्वयं ही उष्णता है—लोहेका गोला और उष्णता पृथक् नहीं है, इसी प्रकार चारित्रभावसे परिणमित आत्मा स्वयं ही चारित्र है ॥८॥

अब यहाँ जीवका शुभ, अशुभ और शुद्धत्व (अर्थात् यह जीव ही शुभ, अशुभ और शुद्ध है ऐसा) निश्चित करते हैं।

अन्वयार्थ :—[**जीवः**] जीव [**परिणामस्वभावः**] परिणामस्वभावी होनेसे [**यदा**] जब [**शुभेन वा अशुभेन**] शुभ या अशुभ भावरूप [**परिणमति**] परिणमन करता है [**शुभः अशुभः**] तब शुभ या अशुभ (स्वयं ही) होता है, [**शुद्धेन**] और जब शुद्धभावरूप परिणमित होता है [**तदा शुद्धः हि भवति**] तब शुद्ध होता है ॥९॥

शुभ के अशुभमां प्रणमतां शुभ के अशुभ आत्मा बने,
शुद्धे प्रणमतां शुद्ध, परिणाम स्वभावी होईने. ९.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यदाऽयमात्मा शुभेनाशुभेन वा रागभावेन परिणमति तदा जपातापिच्छराग-परिणतस्फटिकवत् परिणामस्वभावः सन् शुभोऽशुभश्च भवति। यदा पुनः शुद्धेनारागभावेन परिणमति तदा शुद्धारागपरिणतस्फटिकवत्परिणामस्वभावः सन् शुद्धो भवतीति सिद्धं जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वम् ॥९॥

परिणामसद्भावो परिणामसद्भावः सन्निति। तद्यथा–यथा स्फटिकमणिविशेषो निर्मलोऽपि जपापुष्पादि-रक्तकृष्णश्वेतोपाधिवशेन रक्तकृष्णश्वेतवर्णो भवति, तथाऽयं जीवः स्वभावेन शुद्धबुद्धैकस्वरूपोऽपि व्यवहारेण गृहस्थापेक्षया यथासंभवं सरागसम्यक्त्वपूर्वकदानपूजादिशुभानुष्ठानेन, तपोधनापेक्षया तु मूलोत्तरगुणादिशुभानुष्ठानेन परिणतः शुभो ज्ञातव्य इति। मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगपञ्चप्रत्यय-रूपाशुभोपयोगेनाशुभो विज्ञेयः। निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन परिणतः शुद्धो ज्ञातव्य इति। किंच जीवस्यासंख्येयलोकमात्रपरिणामाः सिद्धान्ते मध्यमप्रतिपत्त्या मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानरूपेण कथिताः। अत्र प्राभृतशास्त्रे तान्येव गुणस्थानानि संक्षेपेणाशुभशुभशुद्धोपयोगरूपेण कथितानि। कथमिति चेत्—मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः, तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टि-देशविरतप्रमत्तसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तगुणस्थान-षट्के तारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनन्तरं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति

टीका :—जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भावसे परिणमित होता है तब जपा कुसुम या तमाल पुष्पके (लाल या काले) रंगरूप परिणमित स्फटिककी भाँति, परिणामस्वभाव होनेसे शुभ या अशुभ होता है (उस समय आत्मा स्वयं ही शुभ या अशुभ है); और जब वह शुद्ध अरागभावसे परिणमित होता है तब शुद्ध अरागपरिणत (रंग रहित) स्फटिककी भाँति, परिणामस्वभाव होनेसे शुद्ध होता है। (उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध है)। इस प्रकार जीवका शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध हुआ।

भावार्थ :—आत्मा सर्वथा कूटस्थ नहीं है किन्तु स्थिर रहकर परिणमन करना उसका स्वभाव है, इसलिये वह जैसे जैसे भावोंसे परिणमित होता है वैसा वैसा ही वह स्वयं हो जाता है। जैसे स्फटिकमणि स्वभावसे निर्मल है तथापि जब वह लाल या काले फूलके संयोग निमित्तसे परिणमित होता है तब लाल या काला स्वयं ही हो जाता है। इसीप्रकार आत्मा स्वभावसे शुद्ध-बुद्ध-एकस्वरूपी होने पर भी व्यवहारसे जब गृहस्थदशामें सम्यक्त्व पूर्वक दानपूजादि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोगमें और मुनिदशामें मूलगुण तथा उत्तरगुण इत्यादि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोगमें परिणमित होता है तब स्वयं ही शुभ होता है, और जब मिथ्यात्वादि पाँच प्रत्ययरूप अशुभोपयोगमें परिणमित होता है तब स्वयं ही अशुभ होता है और जैसे स्फटिकमणि अपने स्वाभाविक निर्मल रंगमें परिणमित होता है तब स्वयं ही शुद्ध होता है, उसी प्रकार आत्मा भी जब निश्चय रत्नत्रयात्मक शुद्धोपयोगमें परिणमित होता है तब स्वयं ही शुद्ध होता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ परिणामं वस्तुस्वभावत्वेन निश्चिनोति—

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो ।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो ॥१०॥

नास्ति विना परिणाममर्थोऽर्थं विनेह परिणामः ।
द्रव्यगुणपर्ययस्थोऽर्थोऽस्तित्वनिर्वृत्तः ॥१०॥

न खलु परिणाममन्तरेण वस्तु सत्तामालम्बते। वस्तुनो द्रव्यादिभिः परिणामात् पृथगुपलम्भाभावान्निःपरिणामस्य खरशृंगकल्पत्वाद् दृश्यमानगोरसादिपरिणामविरोधाच्च।

भावार्थः ॥९॥ अथ नित्यैकान्तक्षणिकैकान्तनिषेधार्थं परिणामपरिणामिनोः परस्परं कथंचिदभेदं दर्शयति—**णत्थि विणा परिणामं अत्थो** मुक्तजीवे तावत्कथ्यते, सिद्धपर्यायरूपशुद्धपरिणामं विना शुद्धजीवपदार्थो नास्ति। कस्मात्। संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावात्। **अत्थं विणेह परिणामो** मुक्तात्मपदार्थं विना इह जगति शुद्धात्मोपलम्भलक्षणः सिद्धपर्यायरूपः शुद्धपरिणामो नास्ति। कस्मात्। संज्ञादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावात्। **दव्वगुणपज्जयत्थो** आत्मस्वरूपं द्रव्यं, तत्रैव केवलज्ञानादयो गुणाः, सिद्धरूपः पर्यायश्च, इत्युक्तलक्षणेषु द्रव्यगुणपर्यायेषु तिष्ठतीति द्रव्यगुणपर्यायस्थो भवति। स

सिद्धान्त ग्रन्थोंमें जीवके असंख्य परिणामोंको मध्यम वर्णनसे चौदह गुणस्थानरूप कहा गया है। उन गुणस्थानोंको संक्षेपसे 'उपयोग' रूप वर्णन करते हुए, प्रथम तीन गुणस्थानोंमें तारतम्यपूर्वक (घटता हुआ) अशुभोपयोग, चौथे से छट्ठे गुणस्थान तक तारतम्य पूर्वक (बढ़ता हुआ) शुभोपयोग, सातवेंसे बारहवें गुणस्थान तक तारतम्य पूर्वक शुद्धोपयोग और अन्तिम दो गुणस्थानोंमें शुद्धोपयोगका फल कहा गया है,—ऐसा वर्णन कथंचित् हो सकता है॥९॥

अब परिणाम वस्तुका स्वभाव है यह निश्चय करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**इह**] इस लोकमें [**परिणामं विना**] परिणामके बिना [**अर्थः नास्ति**] पदार्थ नहीं है, [**अर्थं विना**] पदार्थके बिना [**परिणामः**] परिणाम नहीं है; [**अर्थः**] पदार्थ [**द्रव्यगुणपर्ययस्थः**] द्रव्य-गुण-पर्यायमें रहनेवाला और [**अस्तित्वनिर्वृत्तः**] (उत्पाद-व्ययध्रौव्यमय) अस्तित्वसे बना हुआ है॥१०॥

टीका :—परिणामके बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती, क्योंकि वस्तु द्रव्यादिके द्वारा (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे) परिणामसे भिन्न अनुभवमें (देखनेमें) नहीं आती, क्योंकि

परिणाम विण न पदार्थ, ने न पदार्थ विण परिणाम छे;
गुण-द्रव्य-पर्ययस्थित ने अस्तित्वसिद्ध पदार्थ छे. १०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अन्तरेण वस्तु परिणामोऽपि न सत्तामालम्बते। स्वाश्रयभूतस्य वस्तुनोऽभावे निराश्रयस्य परिणामस्य शून्यत्वप्रसंगात्। वस्तु पुनरूर्ध्वतासामान्यलक्षणे द्रव्ये सहभाविविशेषलक्षणेषु गुणेषु क्रमभाविविशेषलक्षणेषु पर्यायेषु व्यवस्थितमुत्पादव्ययध्रौव्यमयास्तित्वेन निर्वर्तित-निर्वृत्तिमच्च। अतः परिणामस्वभावमेव॥१०॥

कः कर्ता। अत्थो परमात्मपदार्थः, सुवर्णद्रव्यपीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायस्थसुवर्णपदार्थवत्। पुनश्च किंरूपः। अत्थित्तणिब्बत्तो शुद्धद्रव्यगुणपर्यायाधारभूतं यच्छुद्धास्तित्वं तेन निर्वृत्तोऽस्तित्वनिर्वृत्तः, सुवर्णद्रव्यगुणपर्यायास्तित्वनिर्वृत्तसुवर्णपदार्थवदिति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। यथा—मुक्तजीवे द्रव्यगुण-पर्यायत्रयं परस्पराविनाभूतं दर्शितं तथा संसारिजीवेऽपि मतिज्ञानादिविभावगुणेषु नरनारकादि-विभावपर्यायेषु नयविभागेन यथासंभवं विज्ञेयम्, तथैव पुद्गलादिष्वपि। एवं शुभाशुभ-शुद्धपरिणामव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम्॥१०॥ अथ वीतरागसरागचारित्रसंज्ञयोः

(१) परिणाम रहित वस्तु गधेके सींगके समान है, (२) तथा उसका, दिखाई देनेवाले गोरस इत्यादि (दूध, दही वगैरह) के परिणामोंके साथ [१]विरोध आता है। (जैसे–परिणामके बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती उसी प्रकार) वस्तुके बिना परिणाम भी अस्तित्वको धारण नहीं करता, क्योंकि स्वाश्रयभूत वस्तुके अभावमें (अपने आश्रयरूप जो वस्तु है वह न हो तो) निराश्रय परिणामको शून्यताका प्रसंग आता है।

और वस्तु तो [२]ऊर्ध्वतासामान्यस्वरूप द्रव्यमें, सहभावी विशेषस्वरूप (साथ ही साथ रहनेवाले विशेष-भेद जिनका स्वरूप है ऐसे) गुणोंमें तथा क्रमभावी विशेषस्वरूप पर्यायोंमें रही हुई और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तित्वसे बनी हुई है; इसलिये वस्तु परिणाम-स्वभाववाली ही है।

भावार्थ :—जहाँ जहाँ वस्तु दिखाई देती है वहाँ वहाँ परिणाम दिखाई देता है। जैसे—गोरस अपने दूध, दही घी, छाछ इत्यादि परिणामोंसे युक्त ही दिखाई देता है। जहाँ परिणाम नहीं होता वहाँ वस्तु भी नहीं होती। जैसे कालापन, स्निग्धता इत्यादि परिणाम नहीं है तो गधेके सींगरूप वस्तु भी नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि वस्तु परिणाम रहित कदापि नहीं होती। जैसे वस्तु परिणामके बिना नहीं होती उसीप्रकार परिणाम भी वस्तुके बिना नहीं होते, क्योंकि वस्तुरूप आश्रयके बिना परिणाम किसके आश्रयसे रहेंगे? गोरसरूप आश्रयके बिना दूध, दही इत्यादि परिणाम किसके आधारसे होंगे?

१. यदि वस्तुको परिणाम रहित माना जावे तो गोरस इत्यादि वस्तुओंके दूध, दही आदि जो परिणाम प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं उनके साथ विरोध आयेगा।

२. कालकी अपेक्षासे स्थिर होनेको अर्थात् कालापेक्षित प्रवाहको ऊर्ध्वता अथवा ऊँचाई कहा जाता है। ऊर्ध्वतासामान्य अर्थात् अनादि-अनन्त उच्च (कालापेक्षित) प्रवाहसामान्य द्रव्य है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कसंभववतोः शुद्धशुभपरिणामयोरुपादानहानाय फल-मालोचयति—

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो ।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं ॥११॥

धर्मेण परिणतात्मा आत्मा यदि शुद्धसंप्रयोगयुतः ।
प्राप्नोति निर्वाणसुखं शुभोपयुक्तो वा स्वर्गसुखम् ॥११॥

शुद्धशुभोपयोगपरिणामयोः संक्षेपेण फलं दर्शयति—**धम्मेण परिणदप्पा अप्पा** धर्म्मेण परिणतात्मा परिणतस्वरूपः सन्नयमात्मा **जदि सुद्धसंपओगजुदो** यदि चेच्छुद्धोपयोगाभिधानशुद्धसंप्रयोग-परिणामयुतः परिणतो भवति **पावदि णिव्वाणसुहं** तदा निर्वाणसुखं प्राप्नोति। **सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं** शुभोपयोगयुतः परिणतः सन् स्वर्गसुखं प्राप्नोति। इतो विस्तरम्—इह धर्मशब्देनाहिंसालक्षणः सागारानगाररूपस्तथोत्तमक्षमादिलक्षणो रत्नत्रयात्मको वा, तथा मोहक्षोभरहित आत्मपरिणामः शुद्ध-वस्तुस्वभावश्चेति गृह्यते। स एव धर्मः पर्यायान्तरेण चारित्रं भण्यते। 'चारित्तं खलु धम्मो' इति वचनात्। तच्च चारित्रमपहृतसंयमोपेक्षासंयमभेदेन सरागवीतरागभेदेन वा शुभोपयोगशुद्धोपयोगभेदेन

और फिर वस्तु तो द्रव्य-गुण-पर्यायमय है। उसमें त्रैकालिक ऊर्ध्व प्रवाहसामान्य द्रव्य है और साथ ही साथ रहनेवाले भेद वे गुण हैं, तथा क्रमशः होनेवाले भेद वे पर्यायें हैं। ऐसे द्रव्य, गुण और पर्यायकी एकतासे रहित कोई वस्तु नहीं होती। दूसरी रीतिसे कहा जाय तो, वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है अर्थात् वह उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और स्थिर रहती है। इसप्रकार वह द्रव्य-गुण-पर्यायमय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय होनेसे उसमें क्रिया (परिणमन) होती ही रहती है। इसलिये परिणाम वस्तुका स्वभाव ही है॥१०॥

अब जिनका चारित्र परिणामके साथ सम्पर्क (सम्बन्ध) है ऐसे जो शुद्ध और शुभ (दो प्रकारके) परिणाम हैं उनके ग्रहण तथा त्यागके लिये (शुद्ध परिणामके ग्रहण और शुभ परिणामके त्यागके लिये) उनका फल विचारते हैं :—

अन्वयार्थ :–[**धर्मेण परिणतात्मा**] धर्मसे परिणमित स्वरूपवाला [**आत्मा**] आत्मा [**यदि**] यदि [**शुद्धसंप्रयोगयुक्तः**] शुद्ध उपयोगमें युक्त हो तो [**निर्वाणसुखं**] मोक्ष सुखको [**प्राप्नोति**] प्राप्त करता है [**शुभोपयुक्तः च**] और यदि शुभोपयोगवाला हो तो (स्वर्गसुखम्) स्वर्गके सुखको (बन्धको) प्राप्त करता है॥११॥

जो धर्म परिणत स्वरूप जिव शुद्धोपयोगी होय तो
ते पामतो निर्वाणसुख, ने स्वर्गसुख शुभयुक्त जो. ११.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

यदायमात्मा धर्मपरिणतस्वभावः शुद्धोपयोगपरिणतिमुद्वहति तदा निःप्रत्यनीकशक्तितया स्वकार्यकरणसमर्थचारित्रः साक्षान्मोक्षमवाप्नोति। यदा तु धर्मपरिणतस्वभावोऽपि शुभोपयोगपरिणत्या संगच्छते तदा सप्रत्यनीकशक्तितया स्वकार्यकरणासमर्थः कथंचिद्विरुद्धकार्यकारिचारित्रः शिखितप्तघृतोपसिक्तपुरुषो दाहदुःखमिव स्वर्गसुखबन्धमवाप्नोति। अतः शुद्धोपयोग उपादेयः शुभोपयोगो हेयः॥११॥

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभपरिणामस्य फलमालोचयति—

असुहोदएण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिद्दुदो भमदि अच्चंतं॥१२॥

च द्विधा भवति। तत्र यच्छुद्धसंप्रयोगशब्दवाच्यं शुद्धोपयोगस्वरूपं वीतरागचारित्रं तेन निर्वाणं लभते। निर्विकल्पसमाधिरूपशुद्धोपयोगशक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूपसरागचारित्रेण परिणमति तदा

टीका :—जब यह आत्मा धर्मपरिणत स्वभाववाला होता हुआ शुद्धोपयोग परिणतिको धारण करता है—बनाये रखता है तब, जो विरोधी शक्तिसे रहित होनेके कारण अपना कार्य करनेके लिये समर्थ है ऐसा चारित्रवान होनेसे, (वह) साक्षात् मोक्षको प्राप्त करता है; और जब वह धर्मपरिणत स्वभाववाला होने पर भी शुभोपयोग परिणतिके साथ युक्त होता है तब जो [१]विरोधी शक्ति सहित होनेसे स्वकार्य करनेमें असमर्थ है और कथंचित् विरुद्ध कार्य करनेवाला है ऐसे चारित्रसे युक्त होनेसे, जैसे अग्निसे गर्म किया हुआ घी किसी मनुष्य पर डाल दिया जावे तो वह उसकी जलनसे दुःखी होता है, उसीप्रकार वह स्वर्ग सुखके बन्धको प्राप्त होता है, इसलिये शुद्धोपयोग उपादेय है और शुभोपयोग हेय है।

भावार्थ :—जैसे घी स्वभावतः शीतलता उत्पन्न करनेवाला है तथापि गर्म घी से जल जाते हैं, इसीप्रकार चारित्र स्वभावसे मोक्ष दाता है, तथापि सराग चारित्रसे बन्ध होता है। जैसे ठंडा घी शीतलता उत्पन्न करता है इसीप्रकार वीतराग चारित्र साक्षात् मोक्षका कारण है॥११॥

अब चारित्र परिणामके साथ सम्पर्क रहित होनेसे जो अत्यन्त हेय है ऐसे अशुभ परिणामका फल विचारते हैं :—

---

१. दान, पूजा, पंच-महाव्रत, देवगुरुधर्म प्रति राग इत्यादिरूप जो शुभोपयोग है वह चारित्रका विरोधी है इसलिये सराग (शुभोपयोगवाला) चारित्र विरोधी शक्ति सहित है और वीतराग चारित्र विरोधी शक्ति रहित है।

अशुभोदये आत्मा कुनर, तिर्यंच ने नारकपणे
नित्ये सहस्र दुःखे पीड़ित, संसारमां अति अति भमे. १२.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अशुभोदयेनात्मा कुनरस्तिर्यग्भूत्वा नैरयिकः ।
दुःखसहस्रैः सदा अभिद्रुतो भ्रमत्यत्यन्तम् ॥१२॥

यदायमात्मा मनागपि धर्मपरिणतिमनासादयन्नशुभोपयोगपरिणतिमालम्बते तदा कुमनुष्यतिर्यङ्नारकभ्रमणरूपं दुःखसहस्रबन्धमनुभवति। ततश्चारित्रलवस्याप्यभावादत्यन्तहेय एवायमशुभोपयोग इति॥१२॥

एवमयमपास्तसमस्तशुभाशुभोपयोगवृत्तिः शुद्धोपयोगवृत्तिमात्मसात्कुर्वाणः शुद्धोपयोगाधिकारमारभते। तत्र शुद्धोपयोगफलमात्मनः प्रोत्साहनार्थमभिष्टौति—

पूर्वमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतमाकुलत्वोत्पादकं स्वर्गसुखं लभते। पश्चात् परमसमाधिसामग्रीसद्भावे मोक्षं च लभते इति सूत्रार्थः॥११॥ अथ चारित्रपरिणामासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभोपयोगस्य फलं दर्शयति—**असुहोदएण** अशुभोदयेन **आदा** आत्मा **कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो** कुनरस्तिर्यङ्नारको भूत्वा। किं करोति। **दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिद्दुदो भमदि अच्चंतं** दुःखसहस्रैः सदा सर्वकालमभिद्रुतः कदर्थितः पीडितः सन् संसारे अत्यन्तं भ्रमतीति। तथाहि—निर्विकारशुद्धात्मतत्त्वरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वस्य तत्रैव शुद्धात्मन्यविक्षिप्तचित्तवृत्तिरूपनिश्चयचारित्रस्य च विलक्षणेन विपरीताभिनिवेशजनकेन **दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषतीव्रसंक्लेशरूपेण** चाशुभोपयोगेन यदुपार्जितं पापकर्म तदुदयेनायमात्मा सहजशुद्धात्मानन्दैकलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतेन दुःखेन दुःखितः सन् स्वस्वभावभावनाच्युतो भूत्वा संसारेऽत्यन्तं भ्रमतीति तात्पर्यार्थः। एवमुपयोगत्रयफलकथनरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम्॥१२॥ अथ शुभाशुभोपयोगद्वयं निश्चयनयेन हेयं ज्ञात्वा शुद्धोपयोगाधिकारं प्रारभमाणः, शुद्धात्मभावनामात्मसात्कुर्वाणः सन् जीवस्य प्रोत्साहनार्थं शुद्धोपयोगफलं प्रकाशयति। अथवा द्वितीयपातनीका—यद्यपि शुद्धोपयोगफलमग्रे ज्ञानं सुखं च संक्षेपेण

अन्वयार्थ :—[**अशुभोदयेन**] अशुभ उदयसे [**आत्मा**] आत्मा [**कुनरः**] कुमनुष्य [**तिर्यग्**] तिर्यंच [**नैरयिकः**] और नारकी [**भूत्वा**] होकर [**दुःखसहस्रैः**] हजारों दुःखोंसे [**सदा अभिद्रुतः**] सदा पीड़ित होता हुआ [**अत्यंतं भ्रमति**] (संसारमें) अत्यन्त भ्रमण करता है॥१२॥

टीका :—जब यह आत्मा किंचित् मात्र भी धर्मपरिणतिको प्राप्त न करता हुआ अशुभोपयोग परिणतिका अवलम्बन करता है, तब वह कुमनुष्य, तिर्यंच और नारकीके रूपमें परिभ्रमण करता हुआ (तद्रूप) हजारों दुःखोंके बन्धनका अनुभव करता है; इसलिये चारित्रके लेशमात्रका भी अभाव होनेसे यह अशुभोपयोग अत्यन्त हेय ही है॥१२॥

इसप्रकार यह भाव (भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव) समस्त शुभाशुभोपयोगवृत्तिको (शुभउपयोगरूप और अशुभ उपयोगरूप परिणतिको) *अपास्त कर (हेय मानकर, तिरस्कार

* अपास्त करना = तिरस्कार करना; हेय मानना; दूर करना; छोड देना।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं ।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं ॥१३॥

अतिशयमात्मसमुत्थं विषयातीतमनौपम्यमनन्तम् ।
अव्युच्छिन्नं च सुखं शुद्धोपयोगप्रसिद्धानाम् ॥१३॥

आसंसारापूर्वपरमाद्भुताह्लादरूपत्वादात्मानमेवाश्रित्य प्रवृत्तत्वात्पराश्रयनिरपेक्षत्वादत्यन्त-विलक्षणत्वात्समस्तायतिनिरपायित्वान्नैरन्तर्यप्रवर्तमानत्वाच्चातिशयवदात्मसमुत्थं विषयातीत-

---

विस्तरेण च कथयति तथाप्यत्रापि पीठिकायां सूचनां करोति। अथवा तृतीयपातनिका---पूर्वं शुद्धोपयोगफलं निर्वाणं भणितमिदानीं पुनर्निर्वाणस्य फलमनन्तसुखं कथयतीति पातनिकात्रयस्यार्थं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति---**अइसयं** आसंसाराद्देवेन्द्रादिसुखेभ्योऽप्यपूर्वाद्भुतपरमाह्लादरूपत्वाद-तिशयस्वरूपं, **आदसमुत्थं** रागादिविकल्परहितस्वशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नत्वादात्मसमुत्थं, **विसयातीदं** निर्विषयपरमात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतपञ्चेन्द्रियविषयातीतत्वाद्विषयातीतं, **अणोवमं** निरुपमपरमानन्दैकलक्षण-त्वेनोपमारहितत्वादनुपमं, **अणंतं** अनन्तागामिकाले विनाशाभावादप्रमितत्वाद्वाऽनन्तं, **अव्वुच्छिण्णं च**

करके, दूर करके) शुद्धोपयोगवृत्तिको आत्मसात् (आत्मरूप, अपनेरूप) करते हुए शुद्धोपयोग अधिकार प्रारम्भ करते हैं। उसमें (पहले) शुद्धोपयोगके फलकी आत्माके प्रोत्साहनके लिये प्रशंसा करते हैं।

अन्वयार्थ :—[**शुद्धोपयोगप्रसिद्धानां**] शुद्धोपयोगसे [1]निष्पन्न हुए आत्माओंको (केवली और सिद्धोंका) [**सुखं**] सुख [**अतिशयं**] अतिशय [**आत्मसमुत्थं**] आत्मोत्पन्न [**विषयातीतं**] विषयातीत (अतीन्द्रिय) [**अनौपम्यं**] अनुपम [**अनन्तं**] अनन्त (अविनाशी) [**अव्युच्छिन्नं च**] और अविच्छिन्न (अटूट) है ॥१३॥

टीका :—(१) अनादि संसारसे जो पहले कभी अनुभवमें नहीं आया ऐसे अपूर्व, परम अद्भुत आह्लादरूप होनेसे 'अतिशय', (२) आत्माका ही आश्रय लेकर (स्वाश्रित) प्रवर्तमान होनेसे 'आत्मोत्पन्न', (३) पराश्रयसे निरपेक्ष होनेसे (–स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्दके तथा संकल्पविकल्पके आश्रयकी अपेक्षासे रहित होनेसे) 'विषयातीत', (४) अत्यन्त

---

१. निष्पन्न होना = उत्पन्न होना; फलरूप होना; सिद्ध होना। (शुद्धोपयोगसे निष्पन्न हुए अर्थात् शुद्धोपयोग कारणसे कार्यरूप हुए।)

अत्यंत, आत्मोत्पन्न, विषयातीत, अनुप अनंत ने
विच्छेदहीन छे सुख अहो! शुद्धोपयोगप्रसिद्धने. १३.

मनौपम्यमनन्तमव्युच्छिन्नं च शुद्धोपयोगनिष्पन्नानां सुखमतस्तत्सर्वथा प्रार्थनीयम्॥१३॥

अथ शुद्धोपयोगपरिणतात्मस्वरूपं निरूपयति—

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति॥१४॥

सुविदितपदार्थसूत्रः संयमतपःसंयुतो विगतरागः।
श्रमणः समसुखदुःखो भणितः शुद्धोपयोग इति॥१४॥

असातोदयाभावान्निरन्तरत्वादविच्छिन्नं च **सुहं** एवमुक्तविशेषणविशिष्टं सुखं भवति। केषाम्। **सुद्धवओगप्पसिद्धाणं** वीतरागपरमसामायिकशब्दवाच्यशुद्धोपयोगेन प्रसिद्धा उत्पन्ना येऽर्हत्सिद्धास्तेषामिति। अत्रेदमेव सुखमुपादेयत्वेन निरन्तरं भावनीयमिति भावार्थः॥१३॥ अथ येन शुद्धोपयोगेन पूर्वोक्तसुखं भवति तत्परिणतपुरुषलक्षणं प्रकाशयति---**सुविदिदपयत्थसुत्तो** सुष्ठु संशयादिरहितत्वेन विदिता ज्ञाता रोचिताश्च निजशुद्धात्मादिपदार्थास्तत्प्रतिपादकसूत्राणि च येन स सुविदितपदार्थसूत्रो भण्यते। **संजमतवसंजुदो** बाह्ये द्रव्येन्द्रियव्यावर्तनेन षड्जीवरक्षेणन चाभ्यन्तरे निजशुद्धात्मसंवित्तिबलेन स्वरूपे संयमनात् संयमयुक्तः, बाह्याभ्यन्तरतपोबलेन कामक्रोधादिशत्रुभिरखण्डितप्रतापस्य स्वशुद्धात्मनि प्रतपनाद्विजयनात्तपःसंयुक्तः। **विगदरागो** वीतरागशुद्धात्मभावनाबलेन समस्तरागादिदोषरहितत्वाद्वि-

---

विलक्षण होनेसे (अन्य सुखोंसे सर्वथा भिन्न लक्षणवाला होनेसे) 'अनुपम', (५) समस्त आगामी कालमें कभी भी नाशको प्राप्त न होनेसे 'अनन्त' और (६) बिना ही अन्तरके प्रवर्तमान होनेसे 'अविच्छिन्न' सुख शुद्धोपयोगसे निष्पन्न हुए आत्माओंके होता है, इसलिये वह (सुख) सर्वथा प्रार्थनीय (वांछनीय) है॥१३॥

अब शुद्धोपयोगपरिणत आत्माका स्वरूप कहते हैं:—

अन्वयार्थ :—[**सुविदितपदार्थसूत्रः**] जिन्होंने (निज शुद्ध आत्मादि) पदार्थोंको और सूत्रोंको भली भाँति जान लिया है, [**संयमतपःसंयुतः**] जो संयम और तपयुक्त हैं, [**विगतरागः**] जो वीतराग अर्थात् राग रहित हैं [**समसुखदुःखः**] और जिन्हें सुख-दुःख समान हैं, [**श्रमणः**] ऐसे श्रमणको (मुनिवरको) [**शुद्धोपयोगः इति भणितः**] 'शुद्धोपयोगी' कहा गया है॥१४॥

सुविदित सूत्र पदार्थ, संयम तप सहित वीतराग ने
सुख दुःखमां सम श्रमणने शुद्धोपयोग जिनो कहे. १४.

सूत्रार्थज्ञानबलेन स्वपरद्रव्यविभागपरिज्ञानश्रद्धानविधानसमर्थत्वात्सुविदितपदार्थसूत्रः। सकलषड्जीवनिकायनिशुम्भनविकल्पात्पंचेन्द्रियाभिलाषविकल्पाच्च व्यावर्त्यात्मनः शुद्धस्वरूपे संयमनात्, स्वरूपविश्रान्तनिस्तरंगचैतन्यप्रतपनाच्च संयमतपःसंयुतः। सकलमोहनीयविपाक-विवेकभावनासौष्ठवस्फुटीकृतनिर्विकारात्मस्वरूपत्वाद्विगतरागः। परमकलावलोकनाननुभूयमान-

---

गतरागः। **समसुहदुक्खो** निर्विकारनिर्विकल्पसमाधेरुद्भता समुत्पन्ना तथैव परमानन्दसुखरसे लीना तल्लया निर्विकारस्वसंवित्तिरूपा या तु परमकला तदवष्टम्भेनेष्टानिष्टेन्द्रियविषयेषु हर्षविषादरहितत्वात्सम-सुखदुःखः। **समणो** एवंगुणविशिष्टः श्रमणः परममुनिः **भणिदो सुद्धोवओगो त्ति** शुद्धोपयोगो भणित इत्यभिप्रायः।।१४।। एवं शुद्धोपयोगफलभूतानन्तसुखस्य शुद्धोपयोगपरिणतपुरुषस्य च कथनरूपेण पञ्चमस्थले गाथाद्वयं गतम्।।

इति चतुर्दशगाथाभिः स्थलपञ्चकेन **पीठिकाभिधानः** प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।।

तदनन्तरं सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिर्ज्ञानविचारः संक्षेपेण शुद्धोपयोगफलं चेति कथनरूपेण गाथा-

---

टीका :—सूत्रोंके अर्थके ज्ञानबलसे स्वद्रव्य और परद्रव्यके विभागके [१]परिज्ञानमें श्रद्धानमें और विधानमें (आचरणमें) समर्थ होनेसे (स्वद्रव्य और परद्रव्यकी भिन्नताका ज्ञान, श्रद्धान और आचरण होनेसे) जो श्रमण पदार्थोंको और (उनके प्रतिपादक) सूत्रोंको जिन्होंने भलीभाँति जान लिया है ऐसे हैं, समस्त छह जीवनिकायके हननके विकल्पसे और पंचेन्द्रिय सम्बन्धी अभिलाषाके विकल्पसे आत्माको [२]व्यावृत्त करके आत्माका शुद्धस्वरूपमें संयमन करनेसे, और [३]स्वरूपविश्रान्त [४]निस्तरंग [५]चैतन्यप्रतपन होनेसे जो संयम और तपयुक्त हैं, सकल मोहनीयके विपाकसे भेदकी भावनाकी उत्कृष्टतासे (समस्त मोहनीय कर्मके उदयसे भिन्नत्वकी उत्कृष्ट भावनासे) निर्विकार आत्मस्वरूपको प्रगट किया होनेसे जो वीतराग है, और परमकलाके अवलोकनके कारण साता वेदनीय तथा असाता वेदनीयके विपाकसे उत्पन्न होनेवाले जो सुख-दुःख उन सुख-दुःख जनित परिणामोंकी विषमताका अनुभव नहीं होनेसे (परम सुखरसमें लीन निर्विकार स्वसंवेदनरूप परमकलाके अनुभवके कारण इष्टानिष्ट

---

१. परिज्ञान = पूरा ज्ञान; ज्ञान।

२. व्यावृत्त करके = विमुख करके; रोककर; अलग करके ।

३. स्वरूपविश्रान्त = स्वरूपमें स्थिर हुआ ।

४. निस्तरंग = तरंग रहित; चंचलता रहित; विकल्प रहित; शांत ।

५. प्रतपन होना = प्रतापवान होना, प्रकाशित होना, दैदीप्यमान होना ।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सातासातवेदनीयविपाकनिर्वर्तितसुखदुःखजनितपरिणामवैषम्यत्वात्समसुखदुःखः श्रमणः शुद्धोपयोग इत्यभिधीयते ॥१४॥

अथ शुद्धोपयोगलाभानन्तरभाविशुद्धात्मस्वभावलाभमभिनंदति—

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ ।
भूदो सयमेवादा जादि परं णेयभूदाणं ॥१५॥

उपयोगविशुद्धो यो विगतावरणान्तरायमोहरजाः ।
भूतः स्वयमेवात्मा याति पारं ज्ञेयभूतानाम् ॥१५॥

सप्तकम्। तत्र स्थलचतुष्टयं भवति; तस्मिन् प्रथमस्थले सर्वज्ञस्वरूपकथनार्थं प्रथमगाथा, स्वयम्भूकथनार्थं द्वितीया चेति 'उवओगविसुद्धो' इत्यादि गाथाद्वयम्। अथ तस्यैव भगवत उत्पादव्ययध्रौव्यस्थापनार्थं प्रथमगाथा, पुनरपि तस्यैव दृढीकरणार्थं द्वितीया चेति 'भंगविहीणो' इत्यादि गाथाद्वयम्। अथ सर्वज्ञश्रद्धानेनानन्तसुखं भवतीति दर्शनार्थं 'तं सव्वट्ठवरिट्ठं' इत्यादि सूत्रमेकम्। अथातीन्द्रियज्ञानसौख्यपरिणमनकथनमुख्यत्वेन प्रथमगाथा, केवलिभुक्तिनिराकरणमुख्यत्वेन द्वितीया चेति 'पक्खीणघाइकम्मो' इति प्रभृति गाथाद्वयम्। एवं द्वितीयान्तराधिकारे स्थलचतुष्टयेन समुदाय-

---

संयोगोंमें हर्ष-शोकादि विषय परिणामोंका अनुभव न होने से) जो [1]समसुखदुःख हैं, ऐसे श्रमण शुद्धोपयोगी कहलाते हैं ॥१४॥

अब, शुद्धोपयोगकी प्राप्तिके बाद तत्काल (अन्तर पड़े बिना) ही होनेवाली शुद्ध आत्मस्वभाव (केवलज्ञान) प्राप्तिकी प्रशंसा करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यः**] जो [**उपयोगविशुद्धः**] उपयोग विशुद्ध (शुद्धोपयोगी) है [**आत्मा**] वह आत्मा [**विगतावरणान्तरायमोहरजाः**] ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहरूप रजसे रहित [**स्वयमेव भूतः**] स्वयमेव होता हुआ [**ज्ञेयभूतानां**] ज्ञेयभूत पदार्थोंके [**पारं याति**] पारको प्राप्त होता है ॥१५॥

---

१. समसुखदुःख = जिन्हें सुख और दुःख (इष्टानिष्ट संयोग) दोनों समान हैं।

जे उपयोगविशुद्ध ते मोहादिघातिरज थकी
स्वयमेव रहित थयो थको ज्ञेयान्तने पामे सही. १५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

यो हि नाम चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेन यथाशक्ति विशुद्धो भूत्वा वर्तते स खलु प्रतिपदमुद्भिद्यमानविशिष्टविशुद्धिशक्तिरुद्ग्रन्थितासंसारबद्धदृढतरमोहग्रन्थितयात्यन्तनिर्विकारचैतन्यो निरस्तसमस्तज्ञानदर्शनावरणान्तरायतया निःप्रतिघविजृम्भितात्मशक्तिश्च स्वयमेव भूतो ज्ञेयत्वमापन्नानामन्तमवाप्नोति। इह किलात्मा ज्ञानस्वभावो ज्ञानं, तु ज्ञेयमात्रं; ततः समस्त-ज्ञेयान्तर्वर्तिज्ञानस्वभावमात्मानमात्मा शुद्धोपयोगप्रसादादेवासादयति॥१५॥

पातनिका। तद्यथा---अथ शुद्धोपयोगलाभानन्तरं केवलज्ञानं भवतीति कथयति। अथवा द्वितीयपातनिका---कुन्दकुन्दाचार्यदेवाः सम्बोधनं कुर्वन्ति, हे शिवकुमारमहाराज, कोऽप्यासन्नभव्यः संक्षेपरुचिः पीठिकाव्याख्यानमेव श्रुत्वात्मकार्यं करोति, अन्यः कोऽपि पुनर्विस्ररुचिः शुद्धोपयोगेन संजातसर्वज्ञस्य ज्ञानसुखादिकं विचार्य पश्चादात्मकार्यं करोतीति व्याख्याति---उवओगविसुद्धो जो उपयोगेन शुद्धोपयोगेन परिणामेन विशुद्धो भूत्वा वर्तते यः विगदावरणंतरायमोहरओ भूदो विगतावरणान्तरायमोहरजोभूतः सन्। कथम्। सयमेव निश्चयेन स्वयमेव आदा स पूर्वोक्त आत्मा जादि याति गच्छति। किं। परं पारमवसानम्। केषाम्। णेयभूदाणं ज्ञेयभूतपदार्थानाम्। सर्वं जानातीत्यर्थः। अतो विस्तरः—यो निर्मोहशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणेन शुद्धोपयोगसंज्ञेनागमभाषया पृथक्त्ववितर्क-वीचारप्रथमशुक्लध्यानेन पूर्वं निरवशेषमोहक्षपणं कृत्वा तदनन्तरं रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवित्ति-लक्षणेनैकत्ववितर्कावीचारसंज्ञद्वितीयशुक्लध्यानेन क्षीणकषायगुणस्थानेऽन्तर्मुहूर्तकालं स्थित्वा तस्यै-वान्त्यसमये ज्ञानदर्शनावरणवीर्यान्तरायाभिधानघातिकर्मत्रयं युगपद्विनाशयति, स जगत्त्रयकालत्रय-वर्तिसमस्तवस्तुगतानन्तधर्माणां युगपत्प्रकाशकं केवलज्ञानं प्राप्नोति। ततः स्थितं शुद्धोपयोगात्सर्वज्ञो भवतीति॥१५॥ अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्य भिन्नकारकनिरपेक्षत्वेनात्माधीनत्वं

टीका :—जो (आत्मा) चैतन्य परिणामस्वरूप उपयोगके द्वारा यथाशक्ति विशुद्ध होकर वर्तता है, वह (आत्मा) जिसे पद पद पर (–प्रत्येक पर्यायमें) [१]विशिष्ट विशुद्ध शक्ति प्रगट होती जाती है, ऐसा होनेसे, अनादि संसारसे बँधी हुई दृढ़तर मोहग्रन्थि छूट जानेसे अत्यन्त निर्विकार चैतन्यवाला और समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तरायके नष्ट हो जानेसे निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवान स्वयमेव होता हुआ ज्ञेयताको प्राप्त (पदार्थों) के अन्तको पा लेता है।

यहाँ (यह कहा है कि) आत्मा ज्ञानस्वभाव है, और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है; इसलिये समस्त ज्ञेयोंके भीतर प्रवेशको प्राप्त (ज्ञाता) ज्ञान जिसका स्वभाव है ऐसे आत्माको आत्मा शुद्धोपयोगके ही प्रसादसे प्राप्त करता है।

भावार्थ :—शुद्धोपयोगी जीव प्रतिक्षण अत्यन्त शुद्धिको प्राप्त करता रहता है; और

---

१. विशिष्ट = विशेष; असाधारण; खास।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्य कारकान्तरनिरपेक्षतयाऽत्यन्तमात्मायत्तत्वं द्योतयति—

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो ।
भूदो सयमेवादा हवदि सयंभु त्ति णिद्दिट्ठो ॥१६॥

तथा स लब्धस्वभावः सर्वज्ञः सर्वलोकपतिमहितः ।
भूतः स्वयमेवात्मा भवति स्वयम्भूरिति निर्दिष्टः ॥१६॥

अयं खल्वात्मा शुद्धोपयोगभावनानुभावप्रत्यस्तमितसमस्तघातिकर्मतया समुपलब्धशुद्धानन्तशक्तिचित्स्वभावः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञायकस्वभावेन स्वतन्त्रत्वाद्गृहीतकर्तृत्वाधिकारः,

---

प्रकाशयति—**तह सो लद्धसहावो** यथा निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धोपयोगप्रसादात्सर्वं जानाति तथैव सः पूर्वोक्तलब्धशुद्धात्मस्वभावः सन् **आदा** अयमात्मा **हवदि सयंभु त्ति णिद्दिट्ठो** स्वयम्भूर्भवतीति निर्दिष्टः कथितः। किंविशिष्टो भूतः। **सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो भूदो** सर्वज्ञः सर्वलोकपतिमहितश्च भूतः संजातः।

इसप्रकार मोहका क्षय करके निर्विकार चेतनावान होकर, बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण; दर्शनावरण और अन्तरायका युगपद् क्षय करके समस्त ज्ञेयोंको जाननेवाले केवलज्ञानको प्राप्त करता है। इसप्रकार शुद्धोपयोगसे ही शुद्धात्मस्वभावका लाभ होता है ॥१५॥

अब, शुद्धोपयोगसे होनेवाली शुद्धात्मस्वभावकी प्राप्ति अन्य कारकोंसे निरपेक्ष (–स्वतंत्र) होनेसे अत्यन्त आत्माधीन है (–लेशमात्र पराधीन नहीं है) यह प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**तथा**] इसप्रकार [**सः आत्मा**] वह आत्मा [**लब्धस्वभावः**] स्वभावको प्राप्त [**सर्वज्ञः**] सर्वज्ञ [**सर्वलोकपतिमहितः**] और [१]सर्व (तीन) लोकके अधिपतियोंसे पूजित [**स्वयमेव भूतः**] स्वयमेव हुआ होने से [**स्वयंभूः भवति**] 'स्वयंभू' है [**इति निर्दिष्टः**] ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥१६॥

टीका :—शुद्ध उपयोगकी भावनाके प्रभावसे समस्त घातिकर्मोंके नष्ट होनेसे जिसने शुद्ध अनन्तशक्तिवान चैतन्य स्वभावको प्राप्त किया है, ऐसा यह (पूर्वोक्त) आत्मा, (१) शुद्ध

---

१. सर्वलोकके अधिपति = तीनों लोकके स्वामी—सुरेन्द्र, असुरेन्द्र और चक्रवर्ती।

सर्वज्ञ, लब्ध स्वभाव ने त्रिजगेन्द्रपूजित अे रीते
स्वयमेव जीव थयो थको तेने स्वयंभू जिन कहे. १६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन प्राप्यत्वात् कर्मत्वं कलयन्, शुद्धानन्तशक्तिज्ञान-विपरिणमनस्वभावेन साधकतमत्वात् करणत्वमनुबिभ्राणः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमन-स्वभावेन कर्मणा समाश्रियमाणत्वात् संप्रदानत्वं दधानः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनसमये पूर्वप्रवृत्तविकलज्ञानस्वभावापगमेऽपि सहजज्ञानस्वभावेन ध्रुवत्वालम्बनादपादानत्वमुपाददानः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावस्याधारभूतत्वादधिकरणत्वमात्मसात्कुर्वाणः, स्वयमेव षट्कारकीरूपेणोपजायमानः, उत्पत्तिव्यपेक्षया द्रव्यभावभेदभिन्नघातिकर्माण्यपास्य स्वयमेवा-विर्भूतत्वाद्वा स्वयंभूरिति निर्दिश्यते। अतो न निश्चयतः परेण सहात्मनः कारकत्व-

---

कथम्। **सयमेव** निश्चयेन स्वयमेवेति। तथाहि—अभिन्नकारकचिदानन्दैकचैतन्यस्वभावेन स्वतन्त्रत्वात् कर्ता भवति। नित्यानन्दैकस्वभावेन स्वयं प्राप्यत्वात् कर्मकारकं भवति। शुद्धचैतन्यस्वभावेन साधकतमत्वात्करणकारकं भवति। निर्विकारपरमानन्दैकपरिणतिलक्षणेन शुद्धात्मभावरूपकर्मणा

अनन्तशक्तियुक्त ज्ञायक स्वभावके कारण स्वतंत्र होनेसे जिसने कर्तृत्वके अधिकारको ग्रहण किया है ऐसा, (२) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके स्वभावके कारण स्वयं ही प्राप्य होनेसे (–स्वयं ही प्राप्त होता होनेसे) कर्मत्वका अनुभव करता हुआ, (३) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके स्वभावसे स्वयं ही साधकतम (–उत्कृष्ट साधन) होनेसे करणताको धारण करता हुआ, (४) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके स्वभावके कारण स्वयं ही कर्म द्वारा समाश्रित होनेसे (अर्थात् कर्म स्वयंको ही देनेमें आता होनेसे) सम्प्रदानताको धारण करता हुआ, (५) शुद्ध अनन्तशक्तिमय ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके समय पूर्वमें प्रवर्तमान [१]विकलज्ञानस्वभावका नाश होने पर भी सहज ज्ञानस्वभावसे स्वयं ही ध्रुवताका अवलम्बन करनेसे अपादानको धारण करता हुआ, और (६) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके स्वभावका स्वयं ही आधार होने से अधिकरणता को आत्मसात् करता हुआ—(इस प्रकार) स्वयमेव छह कारकरूप होनेसे अथवा उत्पत्ति–अपेक्षासे [२]द्रव्य-भावभेदसे भिन्न घातिकर्मोंको दूर करके स्वयमेव आविर्भूत होनेसे, 'स्वयंभू' कहलाता है।

यहाँ यह कहा गया है कि—निश्चयसे परके साथ आत्माका कारकताका सम्बन्ध नहीं है, कि जिससे शुद्धात्मस्वभावकी प्राप्तिके लिये सामग्री (–बाह्य साधन) ढूँढनेकी व्यग्रतासे जीव (व्यर्थ ही) परतंत्र होते हैं।

---

१. विकलज्ञान = अपूर्ण (मति श्रुतादि) ज्ञान।

२. द्रव्य-भावभेदसे भिन्न घातिकर्म = द्रव्य और भावके भेदसे घातिकर्म दो प्रकारके हैं, द्रव्यघातिकर्म और भावघातिकर्म।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

संबन्धोऽस्ति, यतः शुद्धात्मस्वभावलाभाय सामग्रीमार्गणव्यग्रतया परतन्त्रर्भूयते॥१६॥

समाश्रियमाणत्वात्संप्रदानं भवति। तथैव पूर्वमत्यादिज्ञानविकल्पविनाशेऽप्यखण्डितैकचैतन्य-प्रकाशेनाविनश्वरत्वादपादानं भवति। निश्चयशुद्धचैतन्यादिगुणस्वभावात्मनः स्वयमेवाधारत्वादधिकरणं भवतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण स्वत एव परिणममाणः सन्नयमात्मा परमात्मस्वभाव-

भावार्थ :—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण नामक छह कारक हैं। जो स्वतंत्रतया-स्वाधीनतासे करता है वह कर्त्ता है; कर्त्ता जिसे प्राप्त करता है वह कर्म है; साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधनको करण कहते हैं; कर्म जिसे दिया जाता है अथवा जिसके लिये किया जाता है वह सम्प्रदान है; जिसमेंसे कर्म किया जाता है, वह ध्रुववस्तु अपादान है, और जिसमें अर्थात् जिसके आधारसे कर्म किया जाता है वह अधिकरण है। यह छह कारक व्यवहार और निश्चयके भेदसे दो प्रकारके हैं। जहाँ परके निमित्तसे कार्यकी सिद्धि कहलाती है वहा व्यवहार कारक हैं, और जहाँ अपने ही उपादान कारणसे कार्यकी सिद्धि कही जाती है वहाँ निश्चयकारक हैं।

व्यवहार कारकोंका दृष्टान्त इसप्रकार है—कुम्हार कर्ता है; घड़ा कर्म है; दंड, चक्र, चीवर इत्यादि करण है; कुम्हार जल भरनेवालेके लिये घड़ा बनाता है, इसलिये जल भरनेवाला सम्प्रदान है; टोकरीमेंसे मिट्टी लेकर घड़ा बनाता है, इसलिये टोकरी अपादान है, और पृथ्वीके आधार पर घड़ा बनाता है, इसलिये पृथ्वी अधिकरण है। यहाँ सभी कारक भिन्न-भिन्न हैं। अन्य कर्ता है; अन्य कर्म है; अन्य करण है; अन्य सम्प्रदान; अन्य अपादान और अन्य अधिकरण है। परमार्थतः कोई द्रव्य किसीका कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता, इसलिये यह छहों व्यवहार कारक असत्य हैं। वे मात्र उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे कहे जाते हैं। निश्चयसे किसी द्रव्यका अन्य द्रव्यके साथ कारणताका सम्बन्ध है ही नहीं।

निश्चय कारकोंका दृष्टान्त इस प्रकार है :—मिट्टी स्वतंत्रतया घटरूप कार्यको प्राप्त होती है इसलिए मिट्टी कर्ता है और घड़ा कर्म है। अथवा, घड़ा मिट्टीसे अभिन्न है इसलिये मिट्टी स्वयं ही कर्म है; अपने परिणमन स्वभाव से मिट्टीने घड़ा बनाया इसलिये मिट्टी स्वयं ही करण है; मिट्टीने घड़ारूप कर्म अपनेको ही दिया इसलिए मिट्टी स्वयं सम्प्रदान है; मिट्टीने अपनेमेंसे पिंडरूप अवस्था नष्ट करके घटरूप कर्म किया और स्वयं ध्रुव बनी रही इसलिए वह स्वयं ही अपादान है; मिट्टीने अपने ही आधारसे घड़ा बनाया इसलिये स्वयं ही अधिकरण है। इसप्रकार निश्चयसे छहों कारक एक ही द्रव्यमें है। परमार्थतः एक द्रव्य दूसरे की सहायता नहीं कर सकता और द्रव्य स्वयं ही, अपनेको, अपनेसे, अपने लिए, अपनेमेंसे, अपनेमें करता है इसलिये निश्चय छह कारक ही परम सत्य हैं।

उपरोक्त प्रकारसे द्रव्य स्वयं ही अपनी अनन्त शक्तिरूप सम्पदासे परिपूर्ण है इसलिये स्वयं ही छह कारकरूप होकर अपना कार्य करनेके लिए समर्थ है, उसे बाह्य सामग्री कोई

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ स्वायंभुवस्यास्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्यात्यन्तमनपायित्वं कथंचिदुत्पाद-व्ययध्रौव्ययुक्तत्वं चालोचयति—

भंगविहूणो य भवो संभवपरिवज्जिदो विणासो हि।
विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ॥१७॥

केवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे यतो भिन्नकारकं नापेक्षते ततः स्वयंभूर्भवतीति भावार्थः॥१६॥ एवं सर्वज्ञमुख्यत्वेन प्रथमगाथा। स्वयंभूमुख्यत्वेन द्वितीया चेति प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम्॥ अथास्य भगवतो द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेनानित्यत्वमुपदिशति—**भंगविहूणो य भवो** भङ्ग-विहीनश्च भवः जीवितमरणादिसमताभावलक्षणपरमोपेक्षासंयमरूपशुद्धोपयोगेनोत्पन्नो योऽसौ भवः केवलज्ञानोत्पादः। स किंविशिष्टः। भङ्गविहिनो विनाशरहितः। **संभवपरिवज्जिदो विणासो त्ति** संभवपरिवर्जितो विनाश इति। योऽसौ मिथ्यात्वरागादिसंसरणरूपसंसारपर्यायस्य विनाशः। स

सहायता नहीं कर सकती। इसलिये केवलज्ञान प्राप्तिके इच्छुक आत्माको बाह्य सामग्रीकी अपेक्षा रखकर परतंत्र होना निरर्थक है। शुद्धोपयोगमें लीन आत्मा स्वयं ही छह कारकरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है। वह आत्मा स्वयं अनन्तशक्तिवान ज्ञायकस्वभावसे स्वतन्त्र है इसलिए स्वयं ही कर्ता है; स्वयं अनन्तशक्तिवाले केवलज्ञानको प्राप्त करनेसे केवलज्ञान कर्म है, अथवा केवलज्ञानसे स्वयं अभिन्न होनेसे आत्मा स्वयं ही कर्म है; अपने अनन्त शक्तिवाले परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधनसे केवलज्ञानको प्रगट करता है, इसलिये आत्मा स्वयं ही करण है; अपनेको ही केवलज्ञान देता है, इसलिये आत्मा स्वयं ही सम्प्रदान है; अपनेमेंसे मति श्रुतादि अपूर्ण ज्ञान दूर करके केवलज्ञान प्रगट करता है, इसलिये और स्वयं सहज ज्ञान स्वभावके द्वारा ध्रुव रहता है इसलिये स्वयं ही अपादान है, अपनेमें ही अर्थात् अपने ही आधारसे केवलज्ञान प्रगट करता है, इसलिये स्वयं ही अधिकरण है। इसप्रकार स्वयं छह कारकरूप होता है, इसलिये वह 'स्वयंभू' कहलाता है। अथवा, अनादिकालसे अति दृढ़ बँधे हुए (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतरायरूप) द्रव्य तथा भाव घातिकर्मोंको नष्ट करके स्वयमेव आविर्भूत हुआ अर्थात् किसीकी सहायताके बिना अपने आप ही स्वयं प्रगट हुआ इसलिये 'स्वयंभू' कहलाता है॥१६॥

अब इस स्वयंभूके शुद्धात्मस्वभावकी प्राप्तिके अत्यन्त अविनाशीपना और कथंचित् (कोई प्रकारसे) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तताका विचार करते हैं :-

---

व्ययहीन छे उत्पाद ने उत्पादहीन विनाश छे,
तेने ज वळी उत्पादध्रौव्यविनाशनो समवाय छे. १७.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

भङ्गविहीनश्च भवः संभवपरिवर्जितो विनाशो हि।
विद्यते तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसमवायः ॥१७॥

अस्य खल्वात्मनः शुद्धोपयोगप्रसादात् शुद्धात्मस्वभावेन यो भवः स पुनस्तेन रूपेण प्रलयाभावाद्भंगविहीनः। यस्त्वशुद्धात्मस्वभावेन विनाशः स पुनरुत्पादाभावात्संभवपरिवर्जितः। अतोऽस्य सिद्धत्वेनानपायित्वम्। एवमपि स्थितिसंभवनाशसमवायोऽस्य न विप्रतिषिध्यते, भंगरहितोत्पादेन संभववर्जितविनाशेन तद्द्वयाधारभूतद्रव्येण च समवेतत्वात् ॥१७॥

किंविशिष्टः। संभवविहीनः निर्विकारात्मतत्त्वविलक्षणरागादिपरिणामाभावादुत्पत्तिरहितः। तस्माज्ज्ञायते तस्यैव भगवतः सिद्धस्वरूपतो द्रव्यार्थिकनयेन विनाशो नास्ति। **विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ** विद्यते तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसमवायः। तस्यैव भगवतः पर्यायार्थिकनयेन

अन्वयार्थ :—[**भङ्गविहिनः च भवः**] उसके (शुद्धात्मस्वभावको प्राप्त आत्माके) विनाश रहित उत्पाद है, और [**संभवपरिवर्जितः विनाशः हि**] उत्पाद रहित विनाश है। [**तस्य एव पुनः**] उसके ही फिर [**स्थितिसंभवनाशसमवायः विद्यते**] स्थिति, उत्पाद और विनाशका समवाय मिलाप, एकत्रपना विद्यमान है॥१७॥

टीका :—वास्तवमें इस (शुद्धात्मस्वभावको प्राप्त) आत्माके शुद्धोपयोगके प्रसादसे हुआ जो शुद्धात्मस्वभावसे (शुद्धात्मस्वभावरूपसे) उत्पाद है वह, पुनः उसरूपसे प्रलयका अभाव होनेसे विनाश रहित है; और (उस आत्माके शुद्धोपयोगके प्रसादसे हुआ) जो अशुद्धात्मस्वभावसे विनाश है वह पुनः उत्पत्तिका अभाव होनेसे, उत्पाद रहित है। इससे (यह कहा है कि) उस आत्माके सिद्धरूपसे अविनाशीपन है। ऐसा होने पर भी आत्माके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका समवाय विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह विनाश रहित उत्पादके साथ, उत्पाद रहित विनाशके साथ और उन दोनोंके आधारभूत द्रव्यके साथ समवेत (तन्मयतासे युक्त -एकमेक) है।

भावार्थ :—स्वयंभू सर्वज्ञ भगवानके जो शुद्धात्म स्वभाव उत्पन्न हुआ वह कभी नष्ट नहीं होता, इसलिये उनके विनाशरहित उत्पाद है; और अनादि अविद्या जनित विभाव परिणाम एक बार सर्वथा नाशको प्राप्त होनेके बाद फिर कभी उत्पन्न नहीं होते, इसलिये उनके उत्पाद रहित विनाश है। इसप्रकार यहाँ यह कहा है कि वे सिद्धरूपसे अविनाशी है। इसप्रकार अविनाशी होनेपर भी वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त हैं; क्योंकि शुद्ध पर्यायकी अपेक्षासे उनके उत्पाद है, अशुद्ध पर्यायकी अपेक्षासे व्यय है और उन दोनोंके आधारभूत आत्मत्वकी अपेक्षासे ध्रौव्य है॥१७॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथोत्पादादित्रयं सर्वद्रव्यसाधारणत्वेन शुद्धात्मनोऽप्यवश्यंभावीति विभावयति—

उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स।
पज्जाएण दु केणवि अट्ठो खलु होदि सब्भूदो॥१८॥

उत्पादश्च विनाशो विद्यते सर्वस्यार्थजातस्य।
पर्यायेण तु केनाप्यर्थः खलु भवति सद्भूतः॥१८॥

यथा हि जात्यजाम्बूनदस्यांगदपर्यायेणोत्पत्तिर्दृष्टा, पूर्वव्यवस्थितांगुलीयकादिपर्यायेण च विनाशः, पीततादिपर्यायेण तूभयत्राप्युत्पत्तिविनाशावनासादयतः ध्रुवत्वम्; एवमखिलद्रव्याणां

शुद्धव्यञ्जनपर्यायापेक्षया सिद्धपर्यायेणोत्पादः, संसारपर्यायेण विनाशः, केवलज्ञानादिगुणाधारद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति। ततः स्थितं द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयं संभवतीति॥१७॥ अथोत्पादादित्रयं यथा सुवर्णादिमूर्तपदार्थेषु दृश्यते तथैवामूर्तेऽपि सिद्धस्वरूपे विज्ञेयं पदार्थत्वादिति निरूपयति—**उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स** उत्पादश्च विनाशश्च विद्यते तावत्सर्वस्यार्थजातस्य पदार्थसमूहस्य। केन कृत्वा। **पज्जाएण दु केणवि** पर्यायेण तु केनापि विवक्षितेनार्थव्यञ्जनरूपेण स्वभावविभावरूपेण वा। स चार्थः किंविशिष्टः। **अट्ठो खलु होदि सब्भूदो** अर्थः खलु स्फुटं सत्ताभूतः सत्ताया अभिन्नो भवतीति। तथाहि—सुवर्णगोरसमृत्तिकापुरुषादिमूर्त-पदार्थेषु यथोत्पादादित्रयं लोके प्रसिद्धं तथैवामूर्तेऽपि मुक्तजीवे। यद्यपि शुद्धात्मरुचिपरिच्छित्ति-

---

अब, उत्पाद आदि तीनों (उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य) सर्व द्रव्योंके साधारण है इसलिये शुद्ध आत्मा (केवली भगवान और सिद्ध भगवान) के भी [१]अवश्यम्भावी है ऐसा व्यक्त करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**उत्पादः**] किसी पर्यायसे उत्पाद [**विनाशः च**] और किसी पर्यायसे विनाश [**सर्वस्य**] सर्व [**अर्थजातस्य**] पदार्थमात्रके [**विद्यते**] होता है; [**केन अपि पर्यायेण तु**] और किसी पर्यायसे [**अर्थः**] पदार्थ [**सद्भूतः खलु भवति**] वास्तवमें ध्रुव है॥१८॥

टीका :—जैसे उत्तम स्वर्णकी बाजूबन्दरूप पर्यायसे उत्पत्ति दिखाई देती है, पूर्व अवस्थारूपसे वर्तनेवाली अँगूठी इत्यादिक पर्यायसे विनाश देखा जाता है और पीलापन इत्यादि

---

१. अवश्यम्भावी = जरूर होनेवाला; अपरिहार्य्य।

उत्पाद तेम विनाश छे सौ कोई वस्तुमात्रने,
वळी कोई पर्ययथी दरेक पदार्थ छे सद्भूत खरे. १८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

केनचित्पर्यायेणोत्पादः केनचिद्विनाशः केनचिद्ध्रौव्यमित्यवबोद्धव्यम्। अतः शुद्धात्मनोऽप्युत्पादादित्रयरूपं द्रव्यलक्षणभूतमस्तित्वमवश्यंभावि॥१८॥

निश्चलानुभूतिलक्षणस्य संसारावसानोत्पन्नकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशो भवति तथैव केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारपर्यायस्योत्पादश्च भवति, तथाप्युभयपर्यायपरिणतात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यत्वं पदार्थत्वादिति। अथवा यथा ज्ञेयपदार्थाः प्रतिक्षणं भङ्गत्रयेण परिणमन्ति तथा ज्ञानमपि परिच्छित्त्यपेक्षया भङ्गत्रयेण परिणमति। षट्स्थानगतागुरुलघुकगुणवृद्धिहान्यपेक्षया वा भङ्गत्रयमवबोद्धव्यमिति सूत्रतात्पर्यम्॥१८॥ एवं सिद्धजीवे द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि विवक्षितपर्यायेणोत्पादव्ययध्रौव्यस्थापनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ तं पूर्वोक्तसर्वज्ञं ये मन्यन्ते ते सम्यग्दृष्टयो भवन्ति, परम्परया मोक्षं च लभन्त इति प्रतिपादयति—

[1]**तं सव्वट्ठवरिट्ठं इट्ठं अमरासुरप्पहाणेहिं।**
ये सद्दहंति जीवा तेसिं दुक्खाणि खीयंति॥★१॥

तं सव्वट्ठवरिट्ठं तं सर्वार्थवरिष्ठं **इट्ठं** इष्टमभिमतं। कैः। **अमरासुरप्पहाणेहिं** अमरासुरप्रधानैः। **ये सद्दहंति** ये श्रद्दधति रोचन्ते **जीवा** भव्यजीवाः। **तेसिं** तेषाम्। **दुक्खाणि** वीतरागपारमार्थिकसुखविलक्षणानि दुःखानि। **खीयंति** विनाशं गच्छन्ति, इति सूत्रार्थः॥१॥ एवं

पर्यायसे दोनोंमें (बाजूबन्द और अँगूठी में) उत्पत्ति-विनाशको प्राप्त न होनेसे ध्रौव्यत्व दिखाई देता है। इसप्रकार सर्व द्रव्योंके किसी पर्यायसे उत्पाद, किसी पर्यायसे विनाश और किसी पर्यायसे ध्रौव्य होता है, ऐसा जानना चाहिए। इससे (यह कहा गया है कि) शुद्ध आत्माके भी द्रव्यका लक्षणभूत उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप अस्तित्व अवश्यम्भावी है।

भावार्थ :—द्रव्यका लक्षण अस्तित्व है और अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है। इसलिये किसी पर्यायसे उत्पाद, किसी पर्यायसे विनाश और किसी पर्यायसे ध्रौव्यत्व प्रत्येक पदार्थके होता है।

प्रश्न :—'द्रव्यका अस्तित्व उत्पादादिक तीनोंसे क्यों कहा है? एकमात्र ध्रौव्यसे ही कहना चाहिये; क्योंकि जो ध्रुव रहता है वह सदा बना रह सकता है?'

उत्तर :—यदि पदार्थ ध्रुव ही हो तो मिट्टी, सोना, दूध इत्यादि समस्त पदार्थ एक ही सामान्य आकारसे रहना चाहिये; और घड़ा, कुंडल, दही इत्यादि भेद कभी न होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता अर्थात् भेद तो अवश्य दिखाई देते हैं। इसलिये पदार्थ सर्वथा ध्रुव न रहकर किसी पर्यायसे उत्पन्न और किसी पर्यायसे नष्ट भी होते हैं। यदि ऐसा न माना जाये तो संसारका ही लोप हो जाये।

---

१. ऐसी जो जो गाथायें श्री अमृतचंद्राचार्यविरचित तत्त्वप्रदीपिका टीकामें नहीं लेकिन श्री जयसेनाचार्यदेव विरचित तात्पर्यवृत्ति टीकामें है उन गाथाओंके अंतमें (★) करके उन गाथाओंको अलग नंबर दिये है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथास्यात्मनः शुद्धोपयोगानुभावात्स्वयंभुवो भूतस्य कथमिन्द्रियैर्विना ज्ञानानन्दाविति संदेहमुदस्यति—

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अहियतेजो।
जादो अदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि॥१९॥

निर्दोषिपरमात्मश्रद्धानान्मोक्षो भवतीति कथनरूपेण तृतीयस्थले गाथा गता॥ अथास्यात्मनो निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणशुद्धोपयोगप्रभावात्सर्वज्ञत्वे सतीन्द्रियैर्विना कथं ज्ञानानन्दाविति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति—**पक्खीणघादिकम्मो** ज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयस्वरूपपरमात्मद्रव्यभावनालक्षणशुद्धोपयोगबलेन प्रक्षीण-घातिकर्मा सन्। **अणंतवरवीरिओ** अनन्तवरवीर्यः। पुनरपि किंविशिष्टः। **अहियतेजो** अधिकतेजाः। अत्र तेजः शब्देन केवलज्ञानदर्शनद्वयं ग्राह्यम्। **जादो सो** स पूर्वोक्तलक्षण आत्मा जातः संजातः। कथंभूतः। **अणिंदियो** अनिन्द्रिय **इन्द्रियविषयव्यापाररहितः**। अनिन्द्रियः सन् किं करोति। **णाणं सोक्खं च परिणमदि** केवलज्ञानमनन्तसौख्यं च परिणमतीति। तथाहि—अनेन व्याख्यानेन किमुक्तं भवति। आत्मा

इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है, इसलिये मुक्त आत्माके भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अवश्य होते हैं। यदि स्थूलतासे देखा जाये तो सिद्ध पर्यायका उत्पाद और संसार पर्यायका व्यय हुआ तथा आत्मत्व ध्रुव बना रहा। इस अपेक्षासे मुक्त आत्माके भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है। अथवा मुक्त आत्माका ज्ञान ज्ञेय पदार्थोंके आकाररूप हुआ करता है इसलिये समस्त ज्ञेय पदार्थोंमें जिस जिस प्रकारसे उत्पादादिक होता है उस-उस प्रकारसे ज्ञानमें उत्पादादिक होता रहता है, इसलिये मुक्त आत्माके समय समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है। अथवा अधिक सूक्ष्मतासे देखा जाये तो, अगुरुलघुगुणमें होनेवाली षटगुनी हानी वृद्धिके कारण मुक्त आत्माको समय समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय वर्तता है। यहाँ जैसे सिद्धभगवानके उत्पादादि कहे हैं उसीप्रकार केवली भगवानके भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये॥१८॥

अब, शुद्धोपयोगके प्रभावसे स्वयंभू हुए इस (पूर्वोक्त) आत्माके इन्द्रियोंके बिना ज्ञान और आनन्द कैसे होता है? ऐसे संदेहका निवारण करते हैं:—

प्रक्षीणघातिकर्म, अनहदवीर्य, अधिकप्रकाश ने
इन्द्रिय-अतीत थयेल आत्मा ज्ञानसौख्ये परिणमे. १९.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

प्रक्षीणघातिकर्मा अनन्तवरवीर्योऽधिकतेजाः।
जातोऽतीन्द्रियः स ज्ञानं सौख्यं च परिणमति॥१९॥

अयं खल्वात्मा शुद्धोपयोगसामर्थ्यात् प्रक्षीणघातिकर्मा, क्षायोपशमिकज्ञान-दर्शनासंपृक्तत्वादतीन्द्रियो भूतः सन्निखिलान्तरायक्षयादनन्तवरवीर्यः, कृत्स्नज्ञानदर्शनावरण-प्रलयादधिककेवलज्ञानदर्शनाभिधानतेजाः, समस्तमोहनीयाभावादत्यन्तनिर्विकारशुद्धचैतन्य-स्वभावमात्मानमासादयन् स्वयमेव स्वपरप्रकाशकत्वलक्षणं ज्ञानमनाकुलत्वलक्षणं सौख्यं च भूत्वा परिणमते। एवमात्मनो ज्ञानानन्दौ स्वभाव एव। स्वभावस्य तु परानपेक्षत्वादिन्द्रियै-र्विनाप्यात्मनो ज्ञानानन्दौ संभवतः॥१९॥

तावन्निश्चयेनानन्तज्ञानसुखस्वभावोऽपि व्यवहारेण संसारावस्थायां कर्मप्रच्छादितज्ञानसुखः सन् पश्चादिन्द्रियाधारेण किमप्यल्पज्ञानं सुखं च परिणमति। यदा पुनर्निर्विकल्पस्वसंवित्तिबलेन कर्माभावो भवति तदा क्षयोपशमाभावादिन्द्रियाणि न सन्ति स्वकीयातीन्द्रियज्ञानं सुखं चानुभवति। ततः स्थितं इन्द्रियाभावेऽपि स्वकीयानन्तज्ञानं सुखं चानुभवति। तदपि कस्मात्। स्वभावस्य परापेक्षा नास्तीत्यभिप्रायः॥१९॥ अथातीन्द्रियत्वादेव केवलिनः शरीराधारोद्भूतं भोजनादिसुखं क्षुधादिदुःखं च नास्तीति विचारयति—सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि सुखं वा पुनर्दुःखं वा केवलज्ञानिनो

अन्वयार्थ :—[**प्रक्षीणघातिकर्मा**] जिसके घातिकर्म क्षय हो चुके हैं, [**अतीन्द्रियः जातः**] जो अतीन्द्रिय हो गया है, [**अनन्तवरवीर्यः**] अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है और [**अधिकतेजाः**] [१]अधिक जिसका (केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप) तेज है [**सः**] ऐसा वह (स्वयंभू आत्मा) [**ज्ञानं सौख्यं च**] ज्ञान और सुखरूप [**परिणमति**] परिणमन करता है॥१९॥

टीका :—शुद्धोपयोगके सामर्थ्यसे जिसके घातिकर्म क्षयको प्राप्त हुए हैं, क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शनके साथ असंपृक्त (संपर्क रहित) होनेसे जो अतीन्द्रिय हो गया है, समस्त अन्तरायका क्षय होनेसे अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है, समस्त ज्ञानावरण और दर्शनावरणका प्रलय हो जानेसे अधिक जिसका केवलज्ञान और केवलदर्शन नामक तेज है—ऐसा यह (स्वयंभू) आत्मा, समस्त मोहनीयके अभावके कारण अत्यंत निर्विकार शुद्ध चैतन्य स्वभाववाले आत्माका (अत्यन्त निर्विकार शुद्ध चैतन्य जिसका स्वभाव है ऐसे आत्माका) अनुभव करता हुआ स्वयमेव स्वपरप्रकाशकता लक्षण ज्ञान और अनाकुलता लक्षण सुख होकर परिणमित होता है। इस प्रकार आत्माका, ज्ञान और आनन्द स्वभाव ही है। और स्वभाव परसे [२]अनपेक्ष होनेके कारण इन्द्रियोंके बिना भी आत्माके ज्ञान और आनन्द होता है।

१. अधिक = उत्कृष्ट; असाधारण; अत्यन्त। २. अनपेक्ष = स्वतंत्र; उदासीन; अपेक्षा रहित।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथातीन्द्रियत्वादेव शुद्धात्मनः शारीरं सुखदुःखं नास्तीति विभावयति—

सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं॥२०॥

नास्ति। कथंभूतम्। देहगदं देहगतं देहाधारजिह्वेन्द्रियादिसमुत्पन्नं कवलाहारादिसुखम्, असातोदयजनितं क्षुधादिदुःखं च। कस्मान्नास्ति। जम्हा अदिंदियत्तं जादं यस्मान्मोहादिघातिकर्माभावे पञ्चेन्द्रिय-विषयव्यापाररहितत्वं जातम्। तम्हा दु तं णेयं तस्मादतीन्द्रियत्वाद्धेतोरतीन्द्रियमेव तज्ज्ञानं सुखं च ज्ञेयमिति। तद्यथा—लोहपिण्डसंसर्गाभावादग्निर्यथा घनघातपिट्टनं न लभते तथायमात्मापि लोहपिण्ड-स्थानीयेन्द्रियग्रामाभावात् सांसारिकसुखदुःखं नानुभवतीत्यर्थः। कश्चिदाह–केवलिनां भुक्तिरस्ति, औदारिकशरीरसद्भावात्। असद्वेद्यकर्मोदयसद्भावाद्वा। अस्मदादिवत्। परिहारमाह—तद्भगवतः शरीर-मौदारिकं न भवति किंतु परमौदारिकम्। तथा चोक्तं–"शुद्धस्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः। जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम्"॥ यच्चोक्तमसद्वेद्योदयसद्भावात्तत्र परिहारमाह—यथा व्रीह्यादिबीजं जलसहकारिकारणसहितमङ्कुरादिकार्यं जनयति तथैवासद्वेद्यकर्म मोहनीयसहकारिकारणसहितं क्षुधादि-कार्यमुत्पादयति। कस्मात्। 'मोहस्स बलेण घाददे जीवं' इति वचनात्। यदि पुनर्मोहाभावेऽपि क्षुधादिपरीषहं जनयति तर्हि वधरोगादिपरीषहमपि जनयतु, न च तथा। तदपि कस्मात्। 'भुक्त्युपसर्गाभावात्' इति वचनात्। अन्यदपि दूषणमस्ति। यदि क्षुधाबाधास्ति तर्हि क्षुधाक्षीणशक्तेरनन्तवीर्यं नास्ति। तथैव क्षुधादुःखितस्यानन्तसुखमपि नास्ति। जिह्वेन्द्रियपरिच्छित्ति-रूपमतिज्ञानपरिणतस्य केवलज्ञानमपि न संभवति। अथवा अन्यदपि कारणमस्ति। असद्वेद्योदयापेक्षया सद्वेद्योदयोऽनन्तगुणोऽस्ति। ततः कारणात् शर्कराराशिमध्ये निम्बकणिकावदसद्वेद्योदयो विद्यमानोऽपि न ज्ञायते। तथैवान्यदपि बाधकमस्ति—यथा प्रमत्तसंयतादितपोधनानां वेदोदये विद्यमानेऽपि मन्दमोहोदयत्वादखण्डब्रह्मचारिणां स्त्रीपरीषहबाधा नास्ति, यथैव च नवग्रैवेयकाद्यहमिन्द्रदेवानां

भावार्थ :—आत्माको ज्ञान और सुखरूप परिणमित होनेमें इन्द्रियादिक पर निमित्तोंकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप स्वपरप्रकाशकता है ऐसा ज्ञान और जिसका लक्षण अनाकुलता है ऐसा सुख आत्माका स्वभाव ही है॥१९॥

अब अतीन्द्रियताके कारण ही शुद्ध आत्माके (केवली भगवानके) शारीरिक सुख दुःख नहीं है यह व्यक्त करते हैं :—

कँई देहगत नथी सुख के नथी दुःख केवळज्ञानीने,
जेथी अतीन्द्रियता थई ते कारणे अे जाणजे. २०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सौख्यं वा पुनर्दुःखं केवलज्ञानिनो नास्ति देहगतम्।
यस्मादतीन्द्रियत्वं जातं तस्मात्तु तज्ज्ञेयम्॥२०॥

वेदोदये विद्यमानेऽपि मन्दमोहोदयेन स्त्रीविषयबाधा नास्ति, तथा भगवत्यसद्वेद्योदये विद्यमानेऽपि निरवशेषमोहाभावात् क्षुधाबाधा नास्ति। यदि पुनरुच्यते भवद्भिः—मिथ्यादृष्ट्यादिसयोग-केवलिपर्यन्तास्त्रयोदशगुणस्थानवर्तिनो जीवा आहारका भवन्तीत्याहारकमार्गणायामागमे भणितमास्ते, ततः कारणात् केवलिनामाहारोऽस्तीति। तदप्ययुक्तम्। "णोकम्म-कम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो। ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो"॥ इति गाथाकथितक्रमेण यद्यपि षट्प्रकार आहारो भवति तथापि नोकर्माहारापेक्षया केवलिनामाहारकत्वमवबोद्धव्यम्। न च कवलाहारापेक्षया। तथाहि—सूक्ष्माः सुरसाः सुगन्धा अन्यमनुजानामसंभविनः कवलाहारं विनापि किञ्चिदूनपूर्वकोटिपर्यन्तं शरीरस्थितिहेतवः सप्तधातुरहितपरमौदारिकशरीरनोकर्माहारयोग्या लाभान्त-रायकर्मनिरवशेषक्षयात् प्रतिक्षणं पुद्गला आस्रवन्तीति नवकेवललब्धिव्याख्यानकाले भणितं तिष्ठति। ततो ज्ञायते नोकर्माहारापेक्षया केवलिनामाहारकत्वम्। अथ मतम्–भवदीयकल्पनया आहारानाहारकत्वं नोकर्माहारापेक्षया, न च कवलाहारापेक्षया चेति कथं ज्ञायते। नैवम्। "एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः" इति तत्त्वार्थे कथितमास्ते। अस्य सूत्रस्यार्थः कथ्यते—भवान्तरगमनकाले विग्रहगतौ शरीराभावे सति नूतनशरीरधारणार्थं त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलपिण्डग्रहणं नोकर्माहार उच्यते। स च विग्रहगतौ कर्माहारे विद्यमानेऽप्येकद्वित्रिसमयपर्यन्तं नास्ति। ततो नोकर्माहारापेक्षयाऽऽहारा-नाहारकत्वमागमे ज्ञायते। यदि पुनः कवलाहारापेक्षया तर्हि भोजनकालं विहाय सर्वदैवानाहारक एव, समयत्रयनियमो न घटते। अथ मतम्–केवलिनां कवलाहारोऽस्ति मनुष्यत्वात् वर्तमानमनुष्यवत्। तदप्ययुक्तम्। तर्हि पूर्वकालपुरुषाणां सर्वज्ञत्वं नास्ति, रामरावणादिपुरुषाणां च विशेषसामर्थ्यं नास्ति वर्तमानमनुष्यवत्। न च तथा। किंच छद्मस्थतपोधना अपि सप्तधातुरहितपरमौदारिकशरीराभावे 'छट्ठो त्ति पढमसण्णा' इति वचनात् प्रमत्तसंयतषष्ठगुणस्थानवर्तिनो यद्यप्याहारं गृह्णन्ति तथापि ज्ञानसंयम-ध्यानसिद्ध्यर्थं, न च देहममत्वार्थम्। उक्तं च—"कायस्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थमिष्यते। ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं सुखम्"॥ "ण बलाउसाहणट्ठं ण सरीरस्स य चयट्ठ तेजट्ठं। णाणट्ठ संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजंति॥" तस्य भगवतो ज्ञानसंयमध्यानादिगुणाः स्वभावेनैव तिष्ठन्ति न चाहारबलेन। यदि पुनर्देहममत्वेनाहारं गृह्णाति तर्हि छद्मस्थेभ्योऽप्यसौ हीनः प्राप्नोति। अथोच्यते—तस्यातिशयविशेषात्प्रकटा भुक्तिर्नास्ति प्रच्छन्ना विद्यते। तर्हि परमौदारिकशरीरत्वाद्भुक्तिरेव नास्त्ययमेवातिशयः किं न भवति। तत्र तु प्रच्छन्नभुक्तौ मायास्थानं दैन्यवृत्तिः, अन्येऽपि पिण्डशुद्धिकथिता दोषा बहवो भवन्ति। ते चान्यत्र तर्कशास्त्रे ज्ञातव्याः। अत्र

अन्वयार्थ :—[केवलज्ञानिनः] केवलज्ञानीके [देहगतं] शरीरसम्बन्धी [सौख्यं] सुख [वा पुनः दुःखं] या दुःख [नास्ति] नहीं है, [यस्मात्] क्योंकि [अतीन्द्रियत्वं जातं] अतीन्द्रियता उत्पन्न हुई है [तस्मात् तु तत् ज्ञेयम्] इसलिये ऐसा जानना चाहिये॥२०॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

यत एव शुद्धात्मनो जातवेदस इव कालायसगोलोत्कूलितपुद्गलाशेषविलासकल्पो नास्तीन्द्रियग्रामस्तत एव घोरघनघाताभिघातपरम्परास्थानीयं शरीरगतं सुखदुःखं न स्यात् ॥२०॥

अथ ज्ञानस्वरूपप्रपंच सौख्यस्वरूपप्रपंच च क्रमप्रवृत्तप्रबन्धद्वयेनाभिदधाति। तत्र केवलिनोऽतीन्द्रियज्ञानपरिणतत्वात्सर्वं प्रत्यक्षं भवतीति विभावयति—

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जाया।
सो णेव ते विजाणदि उग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं॥२१॥

चाध्यात्मग्रन्थत्वान्नोच्यन्त इति। अयमत्र भावार्थः—इदं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यमत्राग्रहो न कर्तव्यः। कस्मात्। दुराग्रहे सति रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति ततश्च निर्विकारचिदानन्दैकस्वभावपरमात्मभावनाविघातो भवतीति॥२०॥ एवमनन्तज्ञानसुखस्थापने प्रथमगाथा केवलिभुक्तिनिराकरणे द्वितीया चेति गाथाद्वयं गतम्।

इति सप्तगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिनामा द्वितीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः॥

अथ ज्ञानप्रपञ्चाभिधानान्तराधिकारे त्रयस्त्रिंशद्गाथा भवन्ति। तत्राष्टौ स्थलानि। तेष्वादौ

टीका :–जैसे अग्निको लोहपिण्डके तप्त पुद्गलोंका समस्त विलास नहीं है (अर्थात् अग्नि लोहेके गोलेके पुद्गलोंके विलाससे—उनकी क्रियासे—भिन्न है) उसीप्रकार शुद्ध आत्माके (अर्थात् केवलज्ञानी भगवानके) इन्द्रिय-समूह नहीं है; इसीलिये जैसे अग्निको घनके घोर आघातोंकी परम्परा नहीं है (लोहेके गोलेके संसर्गका अभाव होने पर घनके लगातार आघातों की भयंकर मार अग्निपर नहीं पड़ती) इसीप्रकार शुद्ध आत्माके शरीर सम्बन्धी सुख दुःख नहीं हैं।

भावार्थ :—केवली भगवानके शरीर सम्बन्धी क्षुधादिका दुःख या भोजनादिका सुख नहीं होता इसलिये उनके कवलाहार नहीं होता॥२०॥

अब, ज्ञानके स्वरूपका विस्तार और सुखके स्वरूपका विस्तार क्रमशः प्रवर्तमान दो अधिकारोंके द्वारा कहते हैं। इनमेंसे (प्रथम) अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमित होनेसे केवली भगवानके सब प्रत्यक्ष है यह प्रगट करते हैं :—

प्रत्यक्ष छे सौ द्रव्यपर्यय ज्ञान–परिणमनारने;
जाणे नहीं ते तेमने अवग्रह–इहादि क्रिया वडे. २१.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

परिणममानस्य खलु ज्ञानं प्रत्यक्षाः सर्वद्रव्यपर्यायाः।
स नैव तान् विजानात्यवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः ॥२१॥

यतो न खल्विन्द्रियाण्यालम्ब्यावग्रहेहावायपूर्वकप्रक्रमेण केवली विजानाति, स्वयमेव समस्तावरणक्षयक्षण एवानाद्यनन्ताहेतुकासाधारणभूतज्ञानस्वभावमेव कारणत्वेनोपादाय तदुपरि प्रविकसत्केवलज्ञानोपयोगीभूय विपरिणमते, ततोऽस्याक्रमसमाक्रान्तसमस्तद्रव्यक्षेत्रकाल-भावतया समक्षसंवेदनालम्बनभूताः सर्वद्रव्यपर्यायाः प्रत्यक्षा एव भवन्ति॥२१॥

केवलज्ञानस्य सर्वं प्रत्यक्षं भवतीति कथनमुख्यत्वेन 'परिणमदो खलु' इत्यादिगाथाद्वयम्, अथात्मज्ञानयोर्निश्चयेनासंख्यातप्रदेशत्वेऽपि व्यवहारेण सर्वगतत्वं भवतीत्यादिकथनमुख्यत्वेन 'आदा णाणपमाणं' इत्यादिगाथापञ्चकम्, ततः परं ज्ञानज्ञेययोः परस्परगमननिराकरणमुख्यतया 'णाणी णाणसहावो' इत्यादिगाथापञ्चकम्, अथ निश्चयव्यवहारकेवलिप्रतिपादनादिमुख्यत्वेन 'जो हि सुदेण' इत्यादिसूत्रचतुष्टयम्, अथ वर्तमानज्ञाने कालत्रयपर्यायपरिच्छित्तिकथनादिरूपेण 'तक्कालिगेव सव्वे' इत्यादिसूत्रपञ्चकम्, अथ केवलज्ञानं बन्धकारणं न भवति रागादिविकल्परहितं छद्मस्थज्ञानमपि, किंतु रागादयो बन्धकारणमित्यादिनिरूपणमुख्यतया 'परिणमदि णेयं' इत्यादिसूत्रपञ्चकम्, अथ केवलज्ञानं सर्वज्ञानं सर्वज्ञत्वेन प्रतिपादयतीत्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन 'जं तक्कालियमिदरं' इत्यादिगाथापञ्चकम्, अथ ज्ञानप्रपञ्चोपसंहारमुख्यत्वेन प्रथमगाथा, नमस्कारकथनेन द्वितीया चेति 'णवि परिणमदि' इत्यादि गाथाद्वयम्। एवं ज्ञानप्रपञ्चाभिधानतृतीयान्तराधिकारे त्रयस्त्रिंशद्गाथाभिः स्थलाष्टकेन समुदाय-

अन्वयार्थ :—[खलु] वास्तवमें [ज्ञानं परिणममानस्य] ज्ञानरूपसे (केवलज्ञानरूपसे) परिणमित होते हुए केवलीभगवानके [सर्वद्रव्यपर्यायाः] सर्व द्रव्य-पर्यायें [प्रत्यक्षाः] प्रत्यक्ष हैं; [सः] वे [तान्] उन्हें [अवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः] अवग्रहादि क्रियाओंसे [नैव विजानाति] नहीं जानते॥२१॥

टीका :— केवलीभगवान इन्द्रियोंके आलम्बनसे अवग्रह-ईहा-अवाय पूर्वक क्रमसे नहीं जानते, (किन्तु) स्वयमेव समस्त आवरणके क्षयके क्षण ही, अनादि अनन्त, अहेतुक और असाधारण ज्ञानस्वभावको ही कारणरूप ग्रहण करनेसे तत्काल ही प्रगट होनेवाले केवलज्ञानोपयोगरूप होकर परिणमित होते हैं; इसलिये उनके समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका अक्रमिक ग्रहण होनेसे समक्ष संवेदनकी (-प्रत्यक्ष ज्ञानकी) आलम्बनभूत समस्त द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष ही हैं।

भावार्थ :—जिसका न आदि है और न अंत है, तथा जिसका कोई कारण नहीं और जो अन्य किसी द्रव्यमें नहीं है, ऐसे ज्ञान स्वभावको ही उपादेय करके, केवलज्ञानकी उत्पत्तिके बीजभूत शुक्लध्यान नामक स्वसंवेदनज्ञानरूपसे जब आत्मा परिणमित होता है तब

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथास्य भगवतोऽतीन्द्रियज्ञानपरिणतत्वादेव न किंचित्परोक्षं भवतीत्यभिप्रैति—

णत्थि परोक्खं किंचि वि समंत सव्वक्खगुणसमिद्धस्स।
अक्खातीदस्स सदा सयमेव हि णाणजादस्स॥२२॥

नास्ति परोक्षं किंचिदपि समन्ततः सर्वाक्षगुणसमृद्धस्य।
अक्षातीतस्य सदा स्वयमेव हि ज्ञानजातस्य॥२२॥

पातनिका। तद्यथा—अथातीन्द्रियज्ञानपरिणतत्वात्केवलिनः सर्वं प्रत्यक्षं भवतीति प्रतिपादयति—**पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जाया** सर्वद्रव्यपर्यायाः प्रत्यक्षा भवन्ति। कस्य। केवलिनः। किं कुर्वतः। **परिणमदो** परिणममानस्य। **खलु** स्फुटम्। किम्। **णाणं** अनन्तपदार्थपरिच्छित्तिसमर्थं केवलज्ञानम्। तर्हि किं क्रमेण जानाति। **सो णेव ते विजाणदि उग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं** स च भगवान्नैव तान् जानात्यवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः, किंतु युगपदित्यर्थः। इतो विस्तरः—अनाद्यनन्तमहेतुकं चिदानन्दैकस्वभावं निज-शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा केवलज्ञानोत्पत्तेर्बीजभूतेनागमभाषया शुक्लध्यानसंज्ञेन रागादिविकल्प-जालरहितस्वसंवेदनज्ञानेन यदायमात्मा परिणमति, तदा स्वसंवेदनज्ञानफलभूतकेवलज्ञान-परिच्छित्त्याकारपरिणतस्य तस्मिन्नेव क्षणे क्रमप्रवृत्तक्षायोपशमिकज्ञानाभावादक्रमसमाक्रान्तसमस्त-द्रव्यक्षेत्रकालभावतया सर्वद्रव्यगुणपर्याया अस्यात्मनः प्रत्यक्षा भवन्तीत्यभिप्रायः॥२१॥ अथ सर्वं

उसके निमित्तसे सर्व घातिकर्मोंका क्षय हो जाता है और उस क्षय होनेके समय ही आत्मा स्वयमेव केवलज्ञानरूप परिणमित होने लगता है। वे केवलज्ञानी भगवान क्षायोपशमिक ज्ञानवाले जीवोंकी भाँति अवग्रह-इहा-अवाय और धारणारूप क्रमसे नहीं जानते किन्तु सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको युगपत् जानते हैं। इसप्रकार उनके सब कुछ प्रत्यक्ष होता है॥२१॥

अब अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमित होनेसे ही इन भगवानको कुछ भी परोक्ष नहीं है, ऐसा अभिप्राय प्रगट करते हैं:—

अन्वयार्थ :—[**सदा अक्षातीतस्य**] जो सदा इन्द्रियातीत हैं, [**समन्ततः सर्वाक्षगुण-समृद्धस्य**] जो सर्व ओरसे (–सर्व आत्मप्रदेशोंसे) सर्व इन्द्रिय गुणोंसे समृद्ध हैं [**स्वयमेव हि ज्ञानजातस्य**] और जो स्वयमेव ज्ञानरूप हुए हैं, उन केवली भगवानको [**किंचित् अपि**] कुछ भी [**परोक्षं नास्ति**] परोक्ष नहीं है॥२२॥

न परोक्ष कँई पण सर्वतः सर्वाक्षगुण समृद्धने,
इन्द्रिय-अतीत सदैव ने स्वयमेव ज्ञान थयेलने. २२.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अस्य खलु भगवतः समस्तावरणक्षयक्षण एव सांसारिकपरिच्छित्तिनिष्पत्तिबलाधान-हेतुभूतानि प्रतिनियतविषयग्राहीण्यक्षाणि तैरतीतस्य, स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दपरिच्छेदरूपैः समरसतया समन्ततः सर्वैरेवेन्द्रियगुणैः समृद्धस्य, स्वयमेव सामस्त्येन स्वपरप्रकाशनक्षममनश्वरं लोकोत्तरज्ञानं जातस्य, अक्रमसमाक्रान्तसमस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावतया न किंचनापि परोक्षमेव स्यात् ।।२२।।

प्रत्यक्षं भवतीत्यन्वयरूपेण पूर्वसूत्रे भणितमिदानीं तु परोक्षं किमपि नास्तीति तमेवार्थं व्यतिरेकेण दृढयति—**णत्थि परोक्खं किंचि वि अस्य भगवतः परोक्षं किमपि नास्ति। किंविशिष्टस्य। समंत सव्वक्खगुणसमिद्धस्स** समन्ततः सर्वात्मप्रदेशैः सामस्त्येन वा स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दपरिच्छित्तिरूप-सर्वेन्द्रियगुणसमृद्धस्य। तर्हि किमक्षसहितस्य। नैवम्। **अक्खातीदस्स** अक्षातीतस्येन्द्रियव्यापाररहितस्य, अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—अक्ष्णोति ज्ञानेन व्याप्नोतीत्यक्ष आत्मा तद्गुणसमृद्धस्य। **सदा** सर्वदा सर्वकालम्। पुनरपि किंरूपस्य। **सयमेव हि णाणजादस्स** स्वयमेव हि स्फुटं केवलज्ञानरूपेण जातस्य परिणतस्येति। तद्यथा—अतीन्द्रियस्वभावपरमात्मनो विपरीतानि क्रमप्रवृत्तिहेतुभूतानीन्द्रियाण्यतिक्रान्तस्य जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्प्रत्यक्षप्रतीतिसमर्थमविनश्वरमखण्डैकप्रतिभासमयं केवलज्ञानं परिणतस्यास्य भगवतः परोक्षं किमपि नास्तीति भावार्थः।।२२।। एवं केवलिनां समस्तं प्रत्यक्षं भवतीति कथनरूपेण प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथात्मा ज्ञानप्रमाणो भवतीति ज्ञानं च

टीका :—समस्त आवरणके क्षयके क्षण ही जो (भगवान) सांसारिक ज्ञानको उत्पन्न करनेके बलको कार्यरूप देनेमें हेतुभूत ऐसी अपने अपने निश्चित् विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंसे अतीत हुए हैं, जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्दके ज्ञानरूप सर्व इन्द्रिय-गुणोंके द्वारा सर्व ओरसे समरसरूपसे समृद्ध हैं (अर्थात् जो भगवान स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तथा शब्दको सर्व आत्मप्रदेशोंसे समानरूपसे जानते हैं) और जो स्वयमेव समस्तरूपसे स्वपरका प्रकाशन करनेमें समर्थ अविनाशी लोकोत्तर ज्ञानरूप हुए हैं, ऐसे इन (केवली) भगवानको समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावका अक्रमिक ग्रहण होनेसे कुछ भी परोक्ष नहीं है।

भावार्थ :—इन्द्रियका गुण तो स्पर्शादिक एक-एक गुणको ही जानना है जैसे चक्षुइन्द्रियका गुण रूपको ही जानना है अर्थात् रूपको ही जाननेमें निमित्त होना है। और इन्द्रियज्ञान क्रमिक है। केवलीभगवान इन्द्रियोंके निमित्तके बिना समस्त आत्मप्रदेशोंसे स्पर्शादि सर्व विषयोंको जानते हैं, और जो समस्तरूपसे स्व-पर प्रकाशक है ऐसे लोकोत्तर ज्ञानरूप (-लौकिकज्ञानसे भिन्न केवलज्ञानरूप) स्वयमेव परिणमित हुआ करते हैं; इसलिये समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावको अवग्रहादि क्रम रहित जानते हैं इसलिये केवली भगवानके कुछ भी परोक्ष नहीं है।।२२।।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथात्मनो ज्ञानप्रमाणत्वं ज्ञानस्य सर्वगतत्वं चोद्योतयति—

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयं लोयालोयं तम्हा णाणं तु सव्वगयं॥२३॥

आत्मा ज्ञानप्रमाणं ज्ञानं ज्ञेयप्रमाणमुद्दिष्टम्।
ज्ञेयं लोकालोकं तस्माज्ज्ञानं तु सर्वगतम्॥२३॥

आत्मा हि 'समगुणपर्यायं द्रव्यम्' इति वचनात् ज्ञानेन सह हीनाधिकत्वरहितत्वेन परिणतत्वात्तत्परिमाणः, ज्ञानं तु ज्ञेयनिष्ठत्वाद्दाह्यनिष्ठदहनवत्तत्परिमाणं; ज्ञेयं तु लोकालोकविभागविभक्तानन्तपर्यायमालिकालीढस्वरूपसूचिता विच्छेदोत्पादध्रौव्या षड्द्रव्यी

व्यवहारेण सर्वगतमित्युपदिशति—आदा णाणपमाणं ज्ञानेन सह हीनाधिकत्वाभावादात्मा ज्ञानप्रमाणो भवति। तथाहि—'समगुणपर्यायं द्रव्यं भवति' इति वचनाद्वर्तमानमनुष्यभवे वर्तमानमनुष्यपर्यायप्रमाणः, तथैव मनुष्यपर्यायप्रदेशवर्तिज्ञानगुणप्रमाणश्च प्रत्यक्षेण दृश्यते यथायमात्मा, तथा निश्चयतः सर्वदैवाव्याबाधाक्षयसुखाद्यनन्तगुणाधारभूतो योऽसौ केवलज्ञानगुणस्तत्प्रमाणोऽयमात्मा। णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं दाह्यनिष्ठदहनवत् ज्ञानं ज्ञेयप्रमाणमुद्दिष्टं कथितम्। णेयं लोयालोयं ज्ञेयं लोका-

अब, आत्माका ज्ञानप्रमाणपना और ज्ञानका सर्वगतपना उद्योत करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[आत्मा] आत्मा [ज्ञानप्रमाणं] ज्ञान प्रमाण है; [ज्ञानं] ज्ञान [ज्ञेयप्रमाणं] ज्ञेय प्रमाण [उद्दिष्टं] कहा गया है। [ज्ञेयं लोकालोकं] ज्ञेय लोकालोक है [तस्मात्] इसलिये [ज्ञानं तु] ज्ञान [सर्वगतं] सर्वगत–सर्व व्यापक है॥२३॥

टीका :—'समगुणपर्यायं द्रव्यं (गुण-पर्यायें अर्थात् युगपद् सर्वगुण और पर्यायें ही द्रव्य है)' इस वचनके अनुसार आत्मा ज्ञानसे हीनाधिकतारहितरूपसे परिणमित होनेके कारण ज्ञानप्रमाण है, और ज्ञान [१]ज्ञेयनिष्ठ होनेसे, दाह्यनिष्ठ [२] दहनकी भाँति, ज्ञेय प्रमाण है। ज्ञेय तो लोक और अलोकके विभागसे [३]विभक्त, [४]अनन्त पर्यायमालासे आलिंगित स्वरूपसे सूचित (–प्रगट, ज्ञान), नाशवान दिखाई देता हुआ भी ध्रुव ऐसा षट्द्रव्य-समूह, अर्थात् सब कुछ है।

१. ज्ञेयनिष्ठ = ज्ञेयोंका अवलम्बन करनेवाला; ज्ञेयोमें तत्पर।　२. दहन = जलाना; अग्नि।

३. विभक्त = विभागवाला। (षट्द्रव्योंके समूहमें लोक-अलोकरूप दो विभाग हैं)।

४. अनन्त पर्यायें द्रव्यको आलिंगित करती है (द्रव्यमें होती हैं) ऐसे स्वरूपवाला द्रव्य ज्ञात होता है।

जीवद्रव्य ज्ञानप्रमाण भाख्युं, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण छे;
ने ज्ञेय लोकालोक, तेथी सर्वगत अे ज्ञान छे. २३.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सर्वमिति यावत्। ततो निःशेषावरणक्षयक्षण एव लोकालोकविभागविभक्तसमस्तवस्त्वाकार-पारमुपगम्य तथैवाप्रच्युतत्वेन व्यवस्थितत्वात् ज्ञानं सर्वगतम्॥२३॥

अथात्मनो ज्ञानप्रमाणत्वानभ्युपगमे द्वौ पक्षावुपन्यस्य दूषयति—

णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा।
हीणो वा अहिओ वा णाणादो हवदि धुवमेव॥२४॥
हीणो जदि सो आदा तण्णाणमचेदणं ण जाणादि।
अहिओ वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि॥२५॥

लोकं भवति। शुद्धबुद्धैकस्वभावसर्वप्रकारोपादेयभूतपरमात्मद्रव्यादिषड्द्रव्यात्मको लोकः, लोकाद्बहिर्भागे शुद्धाकाशमलोकः, तच्च लोकालोकद्वयं स्वकीयस्वकीयानन्तपर्यायपरिणतिरूपेणानित्यमपि द्रव्यार्थिकनयेन नित्यम्। **तम्हा णाणं तु सव्वगयं** यस्मान्निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगभावनाबलेनोत्पन्नं यत्केवलज्ञानं तट्टङ्कोत्कीर्णाकारन्यायेन निरन्तरं पूर्वोक्तज्ञेयं जानाति, तस्माद्व्यवहारेण तु ज्ञानं सर्वगतं भण्यते। ततः स्थितमेतदात्मा ज्ञानप्रमाणं ज्ञानं सर्वगतमिति॥२३॥ अथात्मानं ज्ञानप्रमाणं ये न मन्यन्ते तत्र हीनाधिकत्वे दूषणं ददाति—**णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह** ज्ञानप्रमाणमात्मा न भवति

(ज्ञेय छहों द्रव्योंका समूह अर्थात् सब कुछ है) इसलिये निःशेष आवरणके क्षयके समय ही लोक और अलोकके विभागसे विभक्त समस्त वस्तुओंके आकारोंके पारको प्राप्त करके इसीप्रकार अच्युतरूप रहने से ज्ञान सर्वगत है।

भावार्थ :—गुण-पर्यायसे द्रव्य अनन्य है इसलिये आत्मा ज्ञानसे हीनाधिक न होनेसे ज्ञान जितना ही है; और जैसे दाह्य (जलने योग्य पदार्थ) का अवलम्बन करनेवाला दहन दाह्यके बराबर ही है उसी प्रकार ज्ञेयका अवलम्बन करनेवाला ज्ञान ज्ञेयके बराबर ही है। ज्ञेय तो समस्त लोकालोक अर्थात् सब ही है। इसलिये, सर्व आवरणका क्षय होते ही (ज्ञान) सबको जानता है और फिर कभी भी सबके जाननेसे च्युत नहीं होता इसलिये ज्ञान सर्वव्यापक है॥२३॥

अब आत्माको ज्ञान प्रमाण न माननेमें दो पक्ष उपस्थित करके दोष बतलाते हैं:—

जीवद्रव्य ज्ञानप्रमाण नहि—अे मान्यता छे जेहने,
तेना मते जीव ज्ञानथी हीन के अधिक अवश्य छे. २४.
जो हीन आत्मा होय, नव जाणे अचेतन ज्ञान अे,
ने अधिक ज्ञानथी होय तो वण ज्ञान क्यम जाणे अरे? २५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

ज्ञानप्रमाणमात्मा न भवति यस्येह तस्य स आत्मा।
हीनो वा अधिको वा ज्ञानाद्भवति ध्रुवमेव॥२४॥
हीनो यदि स आत्मा तत् ज्ञानमचेतनं न जानाति।
अधिको वा ज्ञानात् ज्ञानेन विना कथं जानाति॥२५॥

यदि खल्वयमात्मा हीनो ज्ञानादित्यभ्युपगम्यते तदात्मनोऽतिरिच्यमानं ज्ञानं स्वाश्रय-भूतचेतनद्रव्यसमवायाभावादचेतनं भवद्रूपादिगुणकल्पतामापन्नं न जानाति। यदि पुनर्ज्ञाना-दधिक इति पक्षः कक्षीक्रियते तदावश्यं ज्ञानादतिरिक्तत्वात् पृथग्भूतो भवन् घटपटादि-स्थानीयतामापन्नो ज्ञानमन्तरेण न जानाति। ततो ज्ञानप्रमाण एवायमात्माभ्युप-गन्तव्यः॥ २४। २५॥

यस्य वादिनो मतेऽत्र जगति **तस्स सो आदा** तस्य मते स आत्मा **हीणो वा अहिओ वा णाणादो हवदि ध्रुवमेव हीनो वा अधिको वा** ज्ञानात्सकाशाद् भवति निश्चितमेवेति॥२४॥ **हीणो जदि सो आदा तं णाणमचेदणं ण जाणादि हीनो** यदि स आत्मा तदाग्नेरभावे सति उष्णगुणो यथा शीतलो भवति तथा स्वाश्रयभूतचेतनात्मकद्रव्यसमवायाभावात्तस्यात्मनो ज्ञानमचेतनं भवत्सत् किमपि न जानाति। **अहिओ**

अन्वयार्थ :—[इह] इस जगतमें [यस्य] जिसके मतमें [आत्मा] आत्मा [ज्ञानप्रमाणं] ज्ञानप्रमाण [न भवति] नहीं है, [तस्य] उसके मतमें [सः आत्मा] वह आत्मा [ध्रुवम् एव] अवश्य [ज्ञानात् हीनः वा] ज्ञानसे हीन [अधिकः वा भवति] अथवा अधिक होना चाहिये।

[यदि] यदि [सः आत्मा] वह आत्मा [हीनः] ज्ञानसे हीन हो [तत्] तो वह [ज्ञानं] ज्ञान [अचेतनं] अचेतन होनेसे [न जानाति] नहीं जानेगा, [ज्ञानात् अधिकः वा] और यदि (आत्मा) ज्ञानसे अधिक हो तो (वह आत्मा) [ज्ञानेन विना] ज्ञानके बिना [कथं जानाति] कैसे जानेगा? ॥२४-२५॥

टीका :— यदि यह स्वीकार किया जाये कि यह आत्मा ज्ञानसे हीन है तो आत्मासे आगे बढ़ जानेवाला ज्ञान (–आत्माके क्षेत्रसे आगे बढ़कर उससे बाहर व्याप्त होनेवाला ज्ञान) अपने आश्रयभूत चेतनद्रव्यका समवाय (सम्बन्ध) न रहनेसे अचेतन होता हुआ रूपादि गुण जैसा होनेसे नहीं जानेगा; और यदि ऐसा पक्ष स्वीकार किया जाये कि यह आत्मा ज्ञानसे अधिक है तो अवश्य (आत्मा) ज्ञानसे आगे बढ़ जानेसे (–ज्ञानके क्षेत्रसे बाहर व्याप्त होनेसे) ज्ञानसे पृथक् होता हुआ घटपटादि जैसा होनेसे ज्ञानके बिना नहीं जानेगा। इसलिये यह आत्मा ज्ञानप्रमाण ही मानना योग्य है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथात्मनोऽपि ज्ञानवत् सर्वगतत्वं न्यायायातमभिनन्दति—

सव्वगदो जिणवसहो सव्वे वि य तग्गया जगदि अट्ठा।
णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स ते भणिदा॥२६॥

सर्वगतो जिनवृषभः सर्वेऽपि च तद्गता जगत्यर्थाः।
ज्ञानमयत्वाच्च जिनो विषयत्वात्तस्य ते भणिताः॥२६॥

वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि अधिको वा ज्ञानात्सकाशात्तर्हि यथोष्णगुणाभावेऽग्निः शीतलो भवन्सन् दहनक्रियां प्रत्यसमर्थो भवति तथा ज्ञानगुणाभावे सत्यात्माप्यचेतनो भवन्सन् कथं जानाति, न कथमपीति। अयमत्र भावार्थः—ये केचनात्मानमङ्गुष्ठपर्वमात्रं, श्यामाकतण्डुलमात्रं, वटककणिकादिमात्रं वा मन्यन्ते ते निषिद्धाः। येऽपि समुद्घातसप्तकं विहाय देहादधिकं मन्यन्ते तेऽपि निराकृता इति॥२५॥ अथ यथा ज्ञानं पूर्वं सर्वगतमुक्तं तथैव सर्वगतज्ञानापेक्षया भगवानपि सर्वगतो भवतीत्यावेदयति—सव्वगदो सर्वगतो भवति। स कः कर्ता। जिणवसहो जिनवृषभः

भावार्थ :—आत्माका क्षेत्र ज्ञानके क्षेत्रसे कम माना जाये तो आत्माके क्षेत्रसे बाहर वर्तनेवाला ज्ञान चेतनद्रव्यके साथ सम्बन्ध न होनेसे अचेतन गुण जैसा ही होगा, इसलिये वह जाननेका काम नहीं कर सकेगा, जैसे कि वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इत्यादि अचेतन गुण जाननेका काम नहीं कर सकते। यदि आत्माका क्षेत्र ज्ञानके क्षेत्र से अधिक माना जाये तो ज्ञानके क्षेत्रसे बाहर वर्तनेवाला ज्ञानशून्य आत्मा ज्ञानके बिना जाननेका काम नहीं कर सकेगा, जैसे ज्ञानशून्य घट, पट इत्यादि पदार्थ जाननेका काम नहीं कर सकते। इसलिये आत्मा न तो ज्ञानसे हीन है और न अधिक है, किन्तु ज्ञान जितना ही है॥२४-२५॥

अब, ज्ञानकी भाँति आत्माका भी सर्वगतत्व न्यायसिद्ध है ऐसा कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[जिनवृषभः] जिनवर [सर्वगतः] सर्वगत हैं [च] और [जगति] जगतके [सर्वे अपि अर्थाः] सर्व पदार्थ [तद्गताः] जिनवरगत (जिनवरमें प्राप्त) हैं; [जिनः ज्ञानमयत्वात्] क्योंकि जिन ज्ञानमय हैं [च] और [ते] वे सब पदार्थ [विषयत्वात्] ज्ञानके विषय होनेसे [तस्य] जिनके विषय [भणिताः] कहे गये हैं॥२६॥

छे सर्वगत जिनवर अने सौ अर्थ जिनवरप्राप्त छे,
जिन ज्ञानमय ने सर्व अर्थो विषय जिनना होइने. २६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

ज्ञानं हि त्रिसमयावच्छिन्नसर्वद्रव्यपर्यायरूपव्यवस्थितविश्वज्ञेयाकारानाक्रामत् सर्वगतमुक्तं, तथाभूतज्ञानमयीभूय व्यवस्थितत्वाद्भगवानपि सर्वगत एव। एवं सर्वगतज्ञानविषयत्वात्सर्वेऽर्था अपि सर्वगतज्ञानाव्यतिरिक्तस्य भगवतस्तस्य ते विषया इति भणितत्वात्तद्गता एव भवन्ति।

तत्र निश्चयनयेनानाकुलत्वलक्षणसौख्यसंवेदनत्वाधिष्ठानत्वावच्छिन्नात्मप्रमाणज्ञानस्वतत्त्वापरित्यागेन विश्वज्ञेयाकारानननुपगम्यावबुध्यमानोऽपि व्यवहारनयेन भगवान् सर्वगत इति व्यपदिश्यते। तथा नैमित्तिकभूतज्ञेयाकारानात्मस्थानवलोक्य सर्वेऽर्थास्तद्गता इत्युपचर्यन्ते। न च तेषां परमार्थतोऽन्योन्यगमनमस्ति, सर्वद्रव्याणां स्वरूपनिष्ठत्वात्। अयं क्रमो ज्ञानेऽपि निश्चेयः ॥२६॥

सर्वज्ञः। कस्मात् सर्वगतो भवति। **जिणो** जिनः **णाणमयादो य** ज्ञानमयत्वाद्धेतोः **सव्वे वि य तग्गया जगदि अट्ठा** सर्वेऽपि च ये जगत्यर्थास्ते दर्पणे बिम्बवद् व्यवहारेण तत्र भगवति गता भवन्ति। कस्मात्। **ते भणिदा** तेऽर्थास्तत्र गता भणिताः **विसयादो** विषयत्वात्परिच्छेद्यत्वात् ज्ञेयत्वात्। कस्य। **तस्स** तस्य भगवत इति। तथाहि---यदनन्तज्ञानमनाकुलत्वलक्षणानन्तसुखं च तदाधारभूतस्तावदात्मा। इत्थंभूतात्मप्रमाणं ज्ञानमात्मनः स्वस्वरूपं भवति। इत्थंभूतं स्वस्वरूपं देहगतमपरित्यजन्नेव लोकालोकं परिच्छिनत्ति। ततः कारणाद्व्यवहारेण सर्वगतो भण्यते भगवान्। येन च कारणेन नीलपीतादिबहिःपदार्था आदर्शे बिम्बवत् परिच्छित्त्याकारेण ज्ञाने प्रतिफलन्ति ततः कारणादुपचारेणार्थकार्यभूता

टीका :—ज्ञान त्रिकालके सर्व द्रव्य–पर्यायरूप प्रवर्तमान समस्त ज्ञेयाकारोंको पहुँच जानेसे (–जानता होनेसे) सर्वगत कहा गया है; और ऐसे (सर्वगत) ज्ञानमय होकर रहनेसे भगवान भी सर्वगत ही हैं। इसप्रकार सर्व पदार्थ भी सर्वगत ज्ञानके विषय होनेसे, सर्वगत ज्ञानसे अभिन्न उन भगवानके वे विषय हैं ऐसा (शास्त्रमें) कहा है; इसलिये सर्व पदार्थ भगवानगत ही (–भगवानमें प्राप्त ही) हैं।

वहाँ (ऐसा समझना कि)—निश्चयनयसे अनाकुलतालक्षण सुखका जो संवेदन उस सुखसंवेदनके [१]अधिष्ठानता जितना ही आत्मा है और उस आत्माके बराबर ही ज्ञान स्वतत्त्व है; उस निज–स्वरूप आत्मप्रमाण ज्ञानको छोड़े बिना, समस्त [२]ज्ञेयाकारोंके निकट गये बिना, भगवान (सर्व पदार्थोंको) जानते हैं। निश्चयनयसे ऐसा होने पर भी व्यवहारनयसे यह कहा

---

१. अधिष्ठान = आधार, रहनेका स्थान। (आत्मा सुखसंवेदनका आधार है। जितनेमें सुखका वेदन होता है उतना ही आत्मा है।)

२. ज्ञेयाकारों = पर पदार्थोंके द्रव्य-गुण-पर्याय जो कि ज्ञेय हैं। (यह ज्ञेयाकार परमार्थतः आत्मासे सर्वथा भिन्न है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथात्मज्ञानयोरेकत्वान्यत्वं चिन्तयति—

णाणं अप्प त्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं।
तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं व अण्णं वा॥२७॥

ज्ञानमात्मेति मतं वर्तते ज्ञानं विना नात्मानम्।
तस्मात् ज्ञानमात्मा आत्मा ज्ञानं वा अन्यद्वा॥२७॥

अर्थाकारा अप्यर्था भण्यन्ते। ते च ज्ञाने तिष्ठन्तीत्युच्यमाने दोषो नास्तीत्यभिप्रायः॥२६॥ अथ ज्ञानमात्मा भवति, आत्मा तु ज्ञानं सुखादिकं वा भवतीति प्रतिपादयति—**णाणं अप्प त्ति मदं** ज्ञानमात्मा भवतीति मतं सम्मतम्। कस्मात्। **वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं** ज्ञानं कर्तृ विनात्मानं जीवमन्यत्र

जाता है कि भगवान सर्वगत हैं। और [१]नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारोंको आत्मस्थ (आत्मामें रहे हुए) देखकर ऐसा उपचारसे कहा जाता है; कि 'सर्व पदार्थ आत्मगत (आत्मामें) हैं'; परन्तु परमार्थतः उनका एक दूसरेमें गमन नहीं होता, क्योंकि सर्व द्रव्य स्वरूपनिष्ठ (अर्थात् अपने-अपने स्वरूपमें निश्चल अवस्थित) हैं।

यही क्रम ज्ञानमें भी निश्चित करना चाहिये। (अर्थात् आत्मा और ज्ञेयोंके सम्बन्धमें निश्चय-व्यवहारसे कहा गया है, उसीप्रकार ज्ञान और ज्ञेयोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए) ॥२६॥

अब, आत्मा और ज्ञानके एकत्व-अन्यत्वका विचार करते हैं:—

गाथा : २७ अन्वयार्थ :—[**ज्ञानं आत्मा**] ज्ञान आत्मा है [**इति मतं**] ऐसा जिनदेवका मत है। [**आत्मानं विना**] आत्माके बिना (अन्य किसी द्रव्यमें) [**ज्ञानं न वर्तते**] ज्ञान नहीं होता, [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं आत्मा**] ज्ञान आत्मा है; [**आत्मा**] और आत्मा [**ज्ञानं वा**] (ज्ञान गुण द्वारा) ज्ञान है [**अन्यत् वा**] अथवा (सुखादि अन्य गुण द्वारा) अन्य है॥२७॥

---

१. नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारों = ज्ञानमें होनेवाले (ज्ञानकी अवस्थारूप) ज्ञेयाकारों। (इन ज्ञेयाकारोंको ज्ञानाकार भी कहा जाता है, क्योंकि ज्ञान इन ज्ञेयाकाररूप परिणमित होते हैं। यह ज्ञेयाकार नैमित्तिक हैं और पर पदार्थोंके द्रव्य-गुण-पर्याय उनके निमित्त हैं। इन ज्ञेयाकारोंको आत्मामें देखकर 'समस्त पर पदार्थ आत्मामें हैं, इसप्रकार उपचार किया जाता है। यह बात ३१ वीं गाथामें दर्पणका दृष्टान्त देकर समझाई गई है।)

छे ज्ञान आत्मा जिनमते; आत्मा विना नहि ज्ञान छे,
ते कारणे छे ज्ञान जीव, जीव ज्ञान छे वा अन्य छे. २७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

यतः शेषसमस्तचेतनाचेतनवस्तुसमवायसंबन्धनिरुत्सुकतयाऽनाद्यनन्तस्वभावसिद्ध-समवायसंबन्धमेकमात्मानमाभिमुख्येनावलम्ब्य प्रवृत्तत्वात् तं विना आत्मानं ज्ञानं न धारयति, ततो ज्ञानमात्मैव स्यात्। आत्मा त्वनन्तधर्माधिष्ठानत्वात् ज्ञानधर्मद्वारेण ज्ञानमन्यधर्म-द्वारेणान्यदपि स्यात्।

किं चानेकान्तोऽत्र बलवान्। एकान्तेन ज्ञानमात्मेति ज्ञानस्या-भावोऽचेतनत्वमात्मनो विशेषगुणाभावादभावो वा स्यात्। सर्वथात्मा ज्ञानमिति निराश्रयत्वात् ज्ञानस्याभाव आत्मनः शेषपर्यायाभावस्तदविनाभाविनस्तस्याप्यभावः स्यात् ॥२७॥

घटपटादौ न वर्तते। **तम्हा णाणं अप्पा** तस्मात् ज्ञायते कथंचिज्ज्ञानमात्मैव स्यात्। इति गाथापादत्रयेण ज्ञानस्य कथंचिदात्मत्वं स्थापितम्। **अप्पा णाणं व अण्णं वा** आत्मा तु ज्ञानधर्मद्वारेण ज्ञानं भवति, सुखवीर्यादिधर्मद्वारेणान्यद्वा नियमो नास्तीति। तद्यथा–यदि पुनरेकान्तेन ज्ञानमात्मेति भण्यते तदा ज्ञानगुणमात्र एवात्मा प्राप्तः सुखादिधर्माणामवकाशो नास्ति। तथा सुखवीर्यादिधर्मसमूहाभावादात्मा-भावः, आत्मन आधारभूतस्याभावादाधेयभूतस्य ज्ञानगुणस्याप्यभावः, इत्येकान्ते सति द्वयोरप्यभावः। तस्मात्कथंचिज्ज्ञानमात्मा न सर्वथेति। अयमत्राभिप्रायः—आत्मा व्यापको ज्ञानं व्याप्यं ततो ज्ञानमात्मा स्यात्, आत्मा तु ज्ञानमन्यद्वा भवतीति। तथा चोक्तम्—'व्यापकं तदतन्निष्ठं व्याप्यं

टीका :—क्योंकि शेष समस्त चेतन तथा अचेतन वस्तुओंके साथ [१]समवायसम्बन्ध नहीं है, इसलिये जिसके साथ अनादि अनन्त स्वभावसिद्ध समवायसम्बन्ध है ऐसे एक आत्माका अति निकटतया (अभिन्न प्रदेशरूपसे) अवलम्बन करके प्रवर्तमान होनेसे ज्ञान आत्माके बिना अपना अस्तित्व नहीं रख सकता; इसलिये ज्ञान आत्मा ही है। और आत्मा तो अनन्त धर्मोंका अधिष्ठान (-आधार) होनेसे ज्ञानधर्मके द्वारा ज्ञान है और अन्य धर्मके द्वारा अन्य भी है।

और फिर, इसके अतिरिक्त (विशेष समझना कि) यहाँ अनेकान्त बलवान है। यदि यह माना जाय कि एकान्तसे ज्ञान आत्मा है तो, (ज्ञानगुण आत्मद्रव्य हो जानेसे) ज्ञानका अभाव हो जायेगा, (और ज्ञानगुणका अभाव होनेसे) आत्माके अचेतनता आ जायेगी अथवा विशेषगुणका अभाव होनेसे आत्माका अभाव हो जायेगा। यदि यह माना जाये कि सर्वथा आत्मा ज्ञान है तो, (आत्मद्रव्य एक ज्ञानगुणरूप हो जानेपर ज्ञानका कोई आधारभूत द्रव्य नहीं रहनेसे) निराश्रयताके कारण ज्ञानका अभाव हो जायेगा अथवा (आत्मद्रव्यके एक ज्ञानगुणरूप हो जानेसे) आत्माकी शेष पर्यायोंका (-सुख, वीर्यादि गुणोंका) अभाव हो जायेगा और उनके

---

१. समवाय सम्बन्ध = जहाँ गुण होते हैं वहाँ गुणी होता है और जहाँ गुणी होता है वहाँ गुण होते हैं, जहाँ गुण नहीं होते वहाँ गुणी नहीं होता और जहाँ गुणी नहीं होता वहाँ गुण नहीं होते—इस प्रकार गुण-गुणीका अभिन्न-प्रदेशरूप सम्बन्ध; तादात्म्यसम्बन्ध है।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ ज्ञानज्ञेययोः परस्परगमनं प्रतिहन्ति—

णाणी णाणसहावो अट्ठा णेयप्पगा हि णाणिस्स।
रूवाणि व चक्खूणं णेवण्णोण्णेसु वट्टंति॥२८॥

ज्ञानी ज्ञानस्वभावोऽर्था ज्ञेयात्मका हि ज्ञानिनः।
रूपाणीव चक्षुषोः नैवान्योन्येषु वर्तन्ते॥२८॥

ज्ञानी चार्थाश्च स्वलक्षणभूतपृथक्त्वतो न मिथो वृत्तिमासादयन्ति किंतु तेषां ज्ञानज्ञेयस्वभावसंबन्धसाधितमन्योन्यवृत्तिमात्रमस्ति चक्षुरूपवत्। यथा हि चक्षूंषि तद्विषय-

---

तन्निष्ठमेव च'॥२७॥ इत्यात्मज्ञानयोरेकत्वं, ज्ञानस्य व्यवहारेण सर्वगतत्वमित्यादिकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं गतम्। अथ ज्ञानं ज्ञेयसमीपे न गच्छतीति निश्चिनोति—**णाणी णाणसहावो** ज्ञानी सर्वज्ञः केवलज्ञानस्वभाव एव। **अट्ठा णेयप्पगा हि णाणिस्स** जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपदार्था ज्ञेयात्मका एव भवन्ति न च ज्ञानात्मकाः। कस्य। ज्ञानिनः। **रूवाणि व चक्खूणं णेवण्णोण्णेसु वट्टंति** ज्ञानी पदार्थाश्चान्योन्यं परस्परमेकत्वेन न वर्तन्ते। कानीव, केषां संबंधित्वेन। रूपाणीव चक्षुषामिति।

साथ ही अविनाभावी सम्बन्धवाले आत्माका भी अभाव हो जायेगा। (क्योंकि सुख, वीर्य इत्यादि गुण न हों तो आत्मा भी नहीं हो सकता) ॥२७॥

अब, ज्ञान और ज्ञेयके परस्पर गमनका निषेध करते हैं (अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय एक-दूसरेमें प्रवेश नहीं करते ऐसा कहते हैं।) :—

अन्वयार्थ :—[**ज्ञानी**] आत्मा [**ज्ञानस्वभावः**] ज्ञान स्वभाव है [**अर्थाः हि**] और पदार्थ [**ज्ञानिनः**] आत्माके [**ज्ञेयात्मकाः**] ज्ञेय स्वरूप हैं, [**रूपाणि इव चक्षुषोः**] जैसे कि रूप (रूपी पदार्थ) नेत्रोंका ज्ञेय है वैसे [**अन्योन्येषु**] वे एक-दूसरे में [**न एव वर्तन्ते**] नहीं वर्तते ॥२८॥

टीका :—आत्मा और पदार्थ स्वलक्षणभूत पृथक्त्वके कारण एक दूसरेमें नहीं वर्तते परन्तु उनके मात्र नेत्र और रूपी पदार्थकी भाँति ज्ञानज्ञेयस्वभाव-सम्बन्धसे होनेवाली एक दूसरेमें प्रवृत्ति पाई जाती है। (प्रत्येक द्रव्यका लक्षण अन्य द्रव्योंसे भिन्नत्व होनेसे आत्मा और पदार्थ एक दूसरेमें नहीं वर्तते, किन्तु आत्माका ज्ञानस्वभाव है और पदार्थोंका ज्ञेय स्वभाव है, ऐसे ज्ञानज्ञेयभावरूप सम्बन्धके कारण ही मात्र उनका एक दूसरेमें होना नेत्र

छे 'ज्ञानी' ज्ञानस्वभाव, अर्थो ज्ञेयरूप छे 'ज्ञानी'ना,
ज्यम रूप छे नेत्रो तणां, नहि वर्तता अन्योन्यमां. २८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

भूतरूपिद्रव्याणि च परस्परप्रवेशमन्तरेणापि ज्ञेयाकारग्रहणसमर्पणप्रवणान्येवमात्माऽर्थाश्चान्योन्यवृत्तिमन्तरेणापि विश्वज्ञेयाकारग्रहणसमर्पणप्रवणाः ॥२८॥

अथार्थेष्ववृत्तस्यापि ज्ञानिनस्तद्वृत्तिसाधकं शक्तिवैचित्र्यमुद्योतयति—

ण पविट्ठो णाविट्ठो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू।
जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं ॥२९॥

तथाहि---यथा रूपिद्रव्याणि चक्षुषा सह परस्परं संबन्धाभावेऽपि स्वाकारसमर्पणे समर्थानि, चक्षूंषि च तदाकारग्रहणे समर्थानि भवन्ति, तथा त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थाः कालत्रयपर्यायपरिणता ज्ञानेन सह परस्परप्रदेशसंसर्गाभावेऽपि स्वकीयाकारसमर्पणे समर्था भवन्ति, अखण्डैकप्रतिभासमयं केवलज्ञानं तु तदाकारग्रहणे समर्थमिति भावार्थः ॥२८॥ अथ ज्ञानी ज्ञेयपदार्थेषु निश्चयनयेनाप्रविष्टोऽपि व्यवहारेण प्रविष्ट इव प्रतिभातीति शक्तिवैचित्र्यं दर्शयति---**ण पविट्ठो** निश्चयनयेन न प्रविष्टः, **णाविट्ठो** व्यवहारेण च नाप्रविष्टः किंतु प्रविष्ट एव। स कः कर्ता। **णाणी** ज्ञानी। केषु मध्ये। **णेयेसु** ज्ञेयपदार्थेषु। किमिव। **रूवमिव चक्खू** रूपविषये चक्षुरिव। एवंभूतस्सन् किं करोति। **जाणदि पस्सदि** जानाति पश्यति च। **णियदं** निश्चितं संशयरहितं। किंविशिष्टः सन्। **अक्खातीदो** अक्षातीतः। किं जानाति पश्यति। **जगमसेसं**

और रूपी पदार्थोंकी भाँति उपचारसे कहा जा सकता है)। जैसे नैत्र और उनके विषयभूत रूपी पदार्थ परस्पर प्रवेश किये बिना ही ज्ञेयाकारों को ग्रहण और समर्पण करनेके स्वभाववाले हैं, उसी प्रकार आत्मा और पदार्थ एक दूसरेमें प्रविष्ट हुए बिना ही समस्त ज्ञेयाकारोंके ग्रहण और समर्पण करनेके स्वभाववाले हैं। (जिस प्रकार आँख रूपी पदार्थोंमें प्रवेश नहीं करती और रूपी पदार्थ आँखमें प्रवेश नहीं करते तो भी आँख रूपी पदार्थोंके ज्ञेयाकारोंके ग्रहण करने—जाननेके—स्वभाववाली है और रूपी पदार्थ स्वयंके ज्ञेयाकारोंको समर्पित होने—जनानेके—स्वभाववाले हैं, उसीप्रकार आत्मा पदार्थोंमें प्रवेश नहीं करता और पदार्थ आत्मामें प्रवेश नहीं करते तथापि आत्मा पदार्थोंके समस्त ज्ञेयाकारोंको ग्रहण कर लेने—जानलेनेके स्वभाववाला है और पदार्थ स्वयंके समस्त ज्ञेयाकारोंको समर्पित हो जाने—ज्ञात हो जानेके स्वभाववाले हैं।) ॥२८॥

अब, आत्मा पदार्थोंमें प्रवृत्त नहीं होता तथापि जिससे (जिस शक्तिवैचित्र्यसे) उसका पदार्थोंमें प्रवृत्त होना सिद्ध होता है उस शक्तिवैचित्र्यको उद्योत करते हैं :—

ज्ञेये प्रविष्ट न, अणप्रविष्ट न, जाणतो जग सर्वने
नित्ये अतीन्द्रिय आतमा, ज्यम नेत्र जाणे रूपने. २९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

न प्रविष्टो नाविष्टो ज्ञानी ज्ञेयेषु रूपमिव चक्षुः।
जानाति पश्यति नियतमक्षातीतो जगदशेषम्॥२९॥

यथा हि चक्षू रूपिद्रव्याणि स्वप्रदेशैरसंस्पृशदप्रविष्टं परिच्छेद्यमाकारमात्मसात्कुर्वन्न चाप्रविष्टं जानाति पश्यति च, एवमात्माप्यक्षातीतत्वात्प्राप्यकारितावि चारगोचरदूरतामवाप्तो ज्ञेयतामापन्नानि समस्तवस्तूनि स्वप्रदेशैरसंस्पृशन्न प्रविष्टः शक्तिवैचित्र्यवशतो वस्तुवर्तिनः समस्तज्ञेयाकारानुन्मूल्य इव कवलयन्न चाप्रविष्टो जानाति पश्यति च। एवमस्य विचित्रशक्तियोगिनो ज्ञानिनोऽर्थेष्वप्रवेश इव प्रवेशोऽपि सिद्धिमवतरति॥२९॥

जगदशेषमिति। तथा हि---यथा लोचनं कर्तृ रूपिद्रव्याणि यद्यपि निश्चयेन न स्पृशति तथापि व्यवहारेण स्पृशतीति प्रतिभाति लोके। तथायमात्मा मिथ्यात्वरागाद्यास्रवाणामात्मनश्च संबन्धि यत्केवलज्ञानात्पूर्वं विशिष्टभेदज्ञानं तेनोत्पन्नं यत्केवलज्ञानदर्शनद्वयं तेन जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपदार्थान्निश्चयेनास्पृशन्नपि व्यवहारेण स्पृशति, तथा स्पृशन्निव ज्ञानेन जानाति दर्शनेन पश्यति च। कथंभूतस्सन्। अतीन्द्रियसुखास्वादपरिणतः सन्नक्षातीत इति। ततो ज्ञायते निश्चयेनाप्रवेश इव व्यवहारेण ज्ञेयपदार्थेषु

अन्वयार्थ :—[**चक्षुः रूपं इव**] जैसे चक्षु रूपको (ज्ञेयोंमें अप्रविष्ट रहकर तथा अप्रविष्ट न रहकर जानती-देखती है) उसीप्रकार [**ज्ञानी**] आत्मा [**अक्षातीतः**] इन्द्रियातीत होता हुआ [**अशेषं जगत्**] अशेष जगतको (-समस्त लोकालोकको) [**ज्ञेयेषु**] ज्ञेयोमां [**न प्रविष्टः**] अप्रविष्ट रहकर [**न अविष्टः**] तथा अप्रविष्ट न रहकर [**नियतं**] निरन्तर [**जानाति पश्यति**] जानता-देखता है॥२९॥

टीका :—जिसप्रकार चक्षु रूपी द्रव्योंको स्वप्रदेशोंके द्वारा अस्पर्श करता हुआ अप्रविष्ट रहकर (जानता-देखता है) तथा ज्ञेय आकारोंको आत्मसात् (-निजरूप) करता हुआ अप्रविष्ट न रहकर जानता-देखता है; इसीप्रकार आत्मा भी इन्द्रियातीतताके कारण [१]प्राप्यकारिताकी विचारगोचरतासे दूर होता हुआ ज्ञेयभूत समस्त वस्तुओंको स्वप्रदेशोंसे अस्पर्श करता है, इसलिये अप्रविष्ट रहकर (जानता-देखता है) तथा शक्ति वैचित्र्यके कारण वस्तुमें वर्तते समस्त ज्ञेयाकारोंको मानों मूलमेंसे उखाड़कर ग्रास कर लेनेसे अप्रविष्ट न रहकर जानता-देखता है। इसप्रकार इस विचित्र शक्तिवाले आत्माके पदार्थोंमें अप्रवेशकी भाँति प्रवेश भी सिद्ध होता है।

भावार्थ :—यद्यपि आँख अपने प्रदेशोंसे रूपी पदार्थोंको स्पर्श नहीं करती इसलिये वह निश्चयसे ज्ञेयोंमें अप्रविष्ट है तथापि वह रूपी पदार्थोंको जानती-देखती है, इसलिये व्यवहारसे

---

१. प्राप्यकारिता = ज्ञेय विषयोंको स्पर्श करके ही कार्य कर सकना—जान सकना। (इन्द्रियातीत हुए आत्मामें प्राप्यकारिताके विचारका भी अवकाश नहीं है)।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथैवं ज्ञानमर्थेषु वर्तत इति संभावयति—

रयणमिह इंदणीलं दुद्धज्झसियं जहा सभासाए।
अभिभूय तं पि दुद्धं वट्टदि तह णाणमट्ठेसु॥३०॥

रत्नमिहेन्द्रनीलं दुग्धाध्युषितं यथा स्वभासा।
अभिभूय तदपि दुग्धं वर्तते तथा ज्ञानमर्थेषु॥३०॥

यथा किलेन्द्रनीलरत्नं दुग्धमधिवसत्स्वप्रभाभारेण तदभिभूय वर्तमानं दृष्टं, तथा

प्रवेशोऽपि घटत इति॥२९॥ अथ तमेवार्थं दृष्टान्तद्वारेण दृढयति--रयणं रत्नं इह जगति। किंनाम। इंदणीलं इन्द्रनीलसंज्ञम्। किंविशिष्टम्। दुद्धज्झसियं दुग्धे निक्षिप्तं जहा यथा सभासाए स्वकीयप्रभया अभिभूय तिरस्कृत्य। किम्। तं पि दुद्धं तत्पूर्वोक्तं दुग्धमपि वट्टदि वर्तते। इति दृष्टान्तो गतः। तह णाणमट्ठेसु तथा ज्ञानमर्थेषु वर्तत इति। तद्यथा---यथेन्द्रनीलरत्नं कर्तृ स्वकीयनीलप्रभया करणभूतया दुग्धं नीलं कृत्वा वर्तते, तथा निश्चयरत्नत्रयात्मकपरमसामायिकसंयमेन यदुत्पन्नं केवलज्ञानं तत् स्वपरपरिच्छित्तिसामर्थ्येन समस्ताज्ञानान्धकारं तिरस्कृत्य

यह कहा जाता है कि 'मेरी आँख बहुतसे पदार्थोंमें जा पहुँचती है।' इसीप्रकार यद्यपि केवलज्ञानप्राप्त आत्मा अपने प्रदेशोंके द्वारा ज्ञेय पदार्थोंको स्पर्श नहीं करता इसलिये वह निश्चयसे तो ज्ञेयोंमें अप्रविष्ट है तथापि ज्ञायक-दर्शक शक्तिकी किसी परम अद्भुत विचित्रताके कारण (निश्चयसे दूर रहकर भी) वह समस्त ज्ञेयाकारोंको जानता-देखता है, इसलिये व्यवहारसे यह कहा जाता है कि 'आत्मा सर्वद्रव्य-पर्यायोंमें प्रविष्ट हो जाता है।' इसप्रकार व्यवहारसे ज्ञेय पदार्थोंमें आत्माका प्रवेश सिद्ध होता है॥२९॥

अब, यहाँ इसप्रकार (दृष्टान्तपूर्वक) यह स्पष्ट करते हैं कि ज्ञान पदार्थोंमें प्रवृत्त होता है :—

अन्वयार्थ :—[यथा] जैसे [इह] इस जगतमें [दुग्धाध्युषितं] दूधमें पड़ा हुआ [इन्द्रनीलं रत्नं] इन्द्रनील रत्न [स्वभासा] अपनी प्रभाके द्वारा [तद् अपि दुग्धं] उस दूधमें [अभिभूय] व्याप्त होकर [वर्तते] वर्तता है, [तथा] उसीप्रकार [ज्ञानं] ज्ञान (अर्थात् ज्ञातृद्रव्य) [अर्थेषु] पदार्थोंमें व्याप्त होकर वर्तता है॥३०॥

टीका :—जैसे दूधमें पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न अपने प्रभासमूहसे दूधमें व्याप्त होकर

ज्यम दूधमां स्थित इन्द्रनीलमणि स्वकीय प्रभा वड़े
दूधने विषे व्यापी रहे, त्यम ज्ञान पण अर्थो विषे. ३०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

संवेदनमप्यात्मनोऽभिन्नत्वात् कर्त्रंशेनात्मतामापन्नं करणांशेन ज्ञानतामापन्नेन कारणभूतानामर्थानां कार्यभूतान् समस्तज्ञेयाकारानभिव्याप्य वर्तमानं, कार्य कारणत्वेनोपचर्य ज्ञानमर्थानभिभूय वर्तत इत्युच्यमानं न विप्रतिषिध्यते॥३०॥

अथैवमर्था ज्ञाने वर्तन्त इति संभावयति—

जदि ते ण संति अट्ठा णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं।
सव्वगयं वा णाणं कहं ण णाणट्ठिया अट्ठा॥३१॥

युगपदेव सर्वपदार्थेषु परिच्छित्त्याकारेण वर्तते। अयमत्र भावार्थः---कारणभूतानां सर्वपदार्थानां कार्यभूताः परिच्छित्त्याकारा उपचारेणार्था भण्यन्ते, तेषु च ज्ञानं वर्तत इति भण्यमानेऽपि व्यवहारेण दोषो नास्तीति॥३०॥ अथ पूर्वसूत्रेण भणितं ज्ञानमर्थेषु वर्तते व्यवहारेणात्र पुनरर्था ज्ञाने वर्तन्त इत्युपदिशति–जइ यदि चेत् ते अट्ठा ण संति ते पदार्थाः स्वकीयपरिच्छित्त्याकारसमर्पणद्वारेणादर्शे बिम्बवन्न सन्ति। क्व। णाणे केवलज्ञाने । णाणं ण होदि सव्वगयं तदा ज्ञानं सर्वगतं न भवति। सव्वगयं

वर्तता हुआ दिखाई देता है, उसीप्रकार [१]संवेदन(ज्ञान) भी आत्मासे अभिन्न होनेसे कर्ता–अंशसे आत्मताको प्राप्त होता हुआ ज्ञानरूप कारण-अंशके द्वारा [२]कारणभूत पदार्थोंके कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारोंमें व्याप्त होता हुआ वर्तता है, इसलिये कार्यमें कारणका (-ज्ञेयाकारोंमें पदार्थोंका) उपचार करके यह कहनेमें विरोध नहीं आता कि 'ज्ञान पदार्थोंमें व्याप्त होकर वर्तता है।'

भावार्थ :—जैसे दूधसे भरे हुए पात्रमें पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न (नीलमणि) सारे दूधको (अपनी प्रभासे नीलवर्ण कर देता है इसलिये व्यवहारसे रत्न और रत्नकी प्रभा सारे दूधमें) व्याप्त कही जाती है, इसीप्रकार ज्ञेयोंसे भरे हुए विश्वमें रहनेवाला आत्मा समस्त ज्ञेयोंको (लोकालोकको) अपनी ज्ञानप्रभाके द्वारा प्रकाशित करता है अर्थात् जानता है इसलिये व्यवहारसे आत्माका ज्ञान और आत्मा सर्वव्यापी कहलाता है। (यद्यपि निश्चयसे वे अपने असंख्य प्रदेशोंमें ही रहते हैं, ज्ञेयोंमें प्रविष्ट नहीं होते) ॥३०॥

अब, ऐसा व्यक्त करते हैं कि इस प्रकार पदार्थ [३]ज्ञानमें वर्तते हैं :—

---

१. प्रमाणदृष्टिसे संवेदन अर्थात् ज्ञान कहने पर अनन्त गुणपर्यायोंका पिंड समझमें आता है। उसमें यदि कर्ता, करण आदि अंश किये जायें तो कर्ता–अंश वह अखंड आत्मद्रव्य है और करण–अंश वह ज्ञानगुण है।

२. पदार्थ कारण हैं और उनके ज्ञेयाकार (द्रव्य-गुण-पर्याय) कार्य हैं।

३. इस गाथामें भी 'ज्ञान' शब्दसे अनन्त गुण-पर्यायोंका पिंडरूप ज्ञातृद्रव्य समझना चाहिये।

नव होय अर्थो ज्ञानमां, तो ज्ञान सौ-गत पण नहीं,
ने सर्वगत छे ज्ञान तो क्यम ज्ञानस्थित अर्थो नहीं ?. ३१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यदि ते न सन्त्यर्था ज्ञाने ज्ञानं न भवति सर्वगतम्।
सर्वगतं वा ज्ञानं कथं न ज्ञानस्थिता अर्थाः ॥३१॥

यदि खलु निखिलात्मीयज्ञेयाकारसमर्पणद्वारेणावतीर्णाः सर्वेऽर्था न प्रतिभान्ति ज्ञाने तदा तन्न सर्वगतमभ्युपगम्येत। अभ्युपगम्येत वा सर्वगतं, तर्हि साक्षात् संवेदनमुकुरुन्द-भूमिकावतीर्ण(प्रति)बिम्बस्थानीयस्वीयस्वीयसंवेद्याकारकारणानि परम्परया प्रतिबिम्बस्थानीय-संवेद्याकारकारणानीति कथं न ज्ञानस्थायिनोऽर्था निश्चीयन्ते॥ ३१ ॥

वा णाणं व्यवहारेण सर्वगतं ज्ञानं सम्मतं चेद्भवतां कहं ण णाणट्ठिया अट्ठा तर्हि व्यवहारनयेन स्वकीयज्ञेयाकारपरिच्छित्तिसमर्पणद्वारेण ज्ञानस्थिता अर्थाः कथं न भवन्ति किंतु भवन्त्येवेति। अत्रायमभिप्रायः--यत एव व्यवहारेण ज्ञेयपरिच्छित्त्याकारग्रहणद्वारेण ज्ञानं सर्वगतं भण्यते, तस्मादेव ज्ञेयपरिच्छित्त्याकारसमर्पणद्वारेण पदार्था अपि व्यवहारेण ज्ञानगता भण्यन्त इति॥३१॥ अथ ज्ञानिनः पदार्थैः सह यद्यपि व्यवहारेण ग्राह्यग्राहकसम्बन्धोऽस्ति तथापि संश्लेषादिसम्बन्धो नास्ति, तेन कारणेन ज्ञेयपदार्थैः सह भिन्नत्वमेवेति प्रतिपादयति—गेण्हदि णेव ण

अन्वयार्थ :—[यदि] यदि [ते अर्थाः] वे पदार्थ [ज्ञाने न संति] ज्ञानमें न हों तो [ज्ञानं] ज्ञान [सर्वगतं] सर्वगत [न भवति] नहीं हो सकता [वा] और यदि [ज्ञानं सर्वगतं] ज्ञान सर्वगत है तो [अर्थाः] पदार्थ [ज्ञानस्थिताः] ज्ञानस्थित [कथं न] कैसे नहीं हैं? (अर्थात् अवश्य हैं) ॥३१॥

टीका :—यदि समस्त स्व-ज्ञेयाकारोंके समर्पण द्वारा (ज्ञानमें) अवतरित होते हुए समस्त पदार्थ ज्ञानमें प्रतिभासित न हों तो वह ज्ञान सर्वगत नहीं माना जाता। और यदि वह (ज्ञान) सर्वगत माना जाये, तो फिर (पदार्थ) साक्षात् ज्ञानदर्पण-भूमिकामें अवतरित [१]बिम्बकी भाँति अपने-अपने ज्ञेयाकारोंके कारण (होनेसे) और [२]परम्परासे प्रतिबिम्बके समान ज्ञेयाकारोंके कारण होनेसे पदार्थ कैसे ज्ञानस्थित निश्चित् नहीं होते ? (अवश्य ही ज्ञानस्थित निश्चित होते हैं)

भावार्थ :—दर्पणमें मयूर, मन्दिर, सूर्य, वृक्ष इत्यादिके प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। वहाँ निश्चयसे तो प्रतिबिम्ब दर्पणकी ही अवस्थायें हैं, तथापि दर्पणमें प्रतिबिम्ब देखकर [३]कार्यमें कारणका उपचार करके व्यवहारसे कहा जाता है कि 'मयूरादिक दर्पणमें हैं।' इसीप्रकार

---

१. बिम्ब = जिसका दर्पणमें प्रतिबिंब पड़ा हो वह। (ज्ञानको दर्पणकी उपमा दी जाये तो, पदार्थोंके ज्ञेयाकार बिम्ब समान हैं और ज्ञानमें होनेवाले ज्ञानकी अवस्थारूप ज्ञेयाकार प्रतिबिम्ब समान हैं)।

२. पदार्थ साक्षात् स्वज्ञेयाकारोंके कारण हैं (अर्थात् पदार्थ अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्यायोंके साक्षात् कारण हैं) और परम्परासे ज्ञानकी अवस्थारूप ज्ञेयाकारोंके (ज्ञानाकारोंके) कारण हैं।

३. प्रतिबिम्ब नैमित्तिक कार्य हैं और मयूरादि निमित्त-कारण हैं।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथैवं ज्ञानिनोऽर्थैः सहान्योन्यवृत्तिमत्त्वेऽपि परग्रहणमोक्षणपरिणमनाभावेन सर्वं पश्यतोऽध्यवस्यतश्चात्यन्तविविक्तत्वं भावयति—

गेण्हदि णेव ण मुंचदि ण परं परिणमदि केवली भगवं।
पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं॥३२॥

गृह्णाति नैव न मुञ्चति न परं परिणमति केवली भगवान्।
पश्यति समन्ततः स जानाति सर्वं निरवशेषम्॥३२॥

मुंचदि गृह्णाति नैव मुञ्चति नैव **ण परं परिणमदि** परं परद्रव्यं ज्ञेयपदार्थं नैव परिणमति। स कः कर्ता। **केवली भगवं** केवली भगवान् सर्वज्ञः। ततो ज्ञायते परद्रव्येण सह भिन्नत्वमेव। तर्हि किं

ज्ञानदर्पणमें भी सर्व पदार्थोंके समस्त ज्ञेयाकारोंके प्रतिबिम्ब पड़ते हैं अर्थात् पदार्थोंके ज्ञेयाकारोंके निमित्तसे ज्ञानमें ज्ञानकी अवस्थारूप ज्ञेयाकार होते हैं (क्योंकि यदि ऐसा न हो तो ज्ञान सर्व पदार्थोंको नहीं जान सकेगा)। वहाँ निश्चयसे ज्ञानमें होनेवाले ज्ञेयाकार ज्ञानकी ही अवस्थायें है, पदार्थोंके ज्ञेयाकार कहीं ज्ञानमें प्रविष्ट नहीं है। निश्चयसे ऐसा होने पर भी व्यवहारसे देखा जाये तो, ज्ञानमें होनेवाले ज्ञेयाकारोंके कारण पदार्थोंके ज्ञेयाकार हैं, और उनके कारण पदार्थ हैं —इसप्रकार परम्परासे ज्ञानमें होनेवाले ज्ञेयाकारोंके कारण पदार्थ हैं; इसलिये उन (ज्ञानकी अवस्थारूप) ज्ञेयाकारोंको ज्ञानमें देखकर, कार्यमें कारणका उपचार करके व्यवहारसे ऐसा कहा जा सकता है कि 'पदार्थ ज्ञानमें हैं'॥३१॥

अब, इसप्रकार (व्यवहारसे) आत्माकी पदार्थोंके साथ एक दूसरेंमें प्रवृत्ति होने पर भी, (निश्चयसे) वह परका ग्रहण-त्याग किये बिना तथा पररूप परिणमित हुए बिना सबको देखता-जानता है इसलिये उसे (पदार्थोंके साथ) अत्यन्त भिन्नता है ऐसा बतलाते हैं:—

अन्वयार्थ :—[**केवली भगवान्**] केवली भगवान [**परं**] परको [**न एव गृह्णाति**] ग्रहण नहीं करते, [**न मुंचति**] छोड़ते नहीं, [**न परिणमति**] पररूप परिणमित नहीं होते; [**सः**] वे [**निरवशेषं सर्वं**] निरवशेषरूपसे सबको (सम्पूर्ण आत्माको, सर्व ज्ञेयोंको) [**समन्ततः**] सर्व ओरसे (सर्व आत्मप्रदेशोंसे) [**पश्यति जानाति**] देखते-जानते हैं॥३२॥

प्रभु केवली न ग्रहे, न छोडे, पररूपे नव परिणमे;
देखे अने जाणे निःशेषे सर्वतः ते सर्वने. ३२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अयं खल्वात्मा स्वभावत एव परद्रव्यग्रहणमोक्षणपरिणमनाभावात्स्वतत्त्वभूतकेवल-ज्ञानस्वरूपेण विपरिणम्य निष्कम्पोन्मज्ज्योतिर्जात्यमणिकल्पो भूत्वाऽवतिष्ठमानः समन्ततः स्फुरितदर्शनज्ञानशक्तिः, समस्तमेव निःशेषतयात्मानमात्मनात्मनि संचेतयते। अथवा युगपदेव सर्वार्थसार्थसाक्षात्करणेन ज्ञप्तिपरिवर्तनाभावात् संभावितग्रहणमोक्षणलक्षणक्रियाविरामः प्रथममेव समस्तपरिच्छेद्याकारपरिणतत्वात् पुनः परमाकारान्तरमपरिणममानः समन्ततोऽपि विश्वमशेषं पश्यति जानाति च। एवमस्यात्यन्तविविक्तत्वमेव ॥३२॥

परद्रव्यं न जानाति। पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं तथापि व्यवहारनयेन पश्यति समन्ततः सर्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्जानाति च सर्वं निरवशेषम्। अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—अभ्यन्तरे कामक्रोधादि बहिर्विषये पञ्चेन्द्रियविषयादिकं बहिर्द्रव्यं न गृह्णाति, स्वकीयानन्तज्ञानादिचतुष्टयं च न मुञ्चति यतस्ततः कारणादयं जीवः केवलज्ञानोत्पत्तिक्षण एव युगपत्सर्वं जानन्सन् परं विकल्पान्तरं न परिणमति। तथाभूतः सन् किं करोति। स्वतत्त्वभूतकेवलज्ञानज्योतिषा जात्यमणिकल्पो निःकम्पचैतन्यप्रकाशो भूत्वा स्वात्मानं स्वात्मना स्वात्मनि जानात्यनुभवति। तेनापि कारणेन परद्रव्यैः सह भिन्नत्वमेवेत्यभिप्रायः ॥३२॥ एवं ज्ञानं ज्ञेयरूपेण न परिणमतीत्यादिव्याख्यानरूपेण तृतीयस्थले

टीका :—यह आत्मा, स्वभावसे ही परद्रव्यके ग्रहण-त्यागका तथा परद्रव्यरूपसे परिणमित होनेका (उसके) अभाव होनेसे, स्वतत्त्वभूत केवलज्ञानरूपसे परिणमित होकर निष्कंप निकलनेवाली ज्योतिवाला उत्तम मणि जैसा होकर रहता हुआ, (१) जिसके सर्व ओरसे (सर्व आत्मप्रदेशोंसे) दर्शनज्ञानशक्ति स्फुरित है ऐसा होता हुआ, [१]निःशेषरूपसे परिपूर्ण आत्माको आत्मासे आत्मामें संचेतता-जानता-अनुभव करता है, अथवा (२) एकसाथ ही सर्व पदार्थोंके समूहका [२]साक्षात्कार करनेके कारण ज्ञप्तिपरिवर्तनका अभाव होनेसे जिसके [३]ग्रहणत्यागरूप क्रिया विरामको प्राप्त हुई है ऐसा होता हुआ, पहलेसे ही समस्त ज्ञेयाकाररूप परिणमित होनेसे फिर पररूपसे—[४]आकारान्तररूपसे नहीं परिणमित होता हुआ सर्व प्रकारसे अशेष विश्वको, (मात्र) देखता-जानता है। इसप्रकार (पूर्वोक्त दोनों प्रकारसे) उसका (आत्माका पदार्थोंसे) अत्यन्त भिन्नत्व ही है।

भावार्थ :—केवलीभगवान सर्व आत्मप्रदेशोंसे अपनेको ही अनुभव करते रहते हैं; इसप्रकार वे परद्रव्योंसे सर्वथा भिन्न हैं। अथवा, केवली भगवानको सर्व पदार्थोंका युगपत्

---

१. निःशेषरूपसे = कुछ भी किंचित् मात्र शेष न रहे इसप्रकार से।

२. साक्षात्कार करना = प्रत्यक्ष जानना।

३. ज्ञप्तिक्रियाका बदलते रहना अर्थात् ज्ञानमें एक ज्ञेयको ग्रहण करना और दूसरेको छोड़ना सो ग्रहण-त्याग है; इसप्रकारका ग्रहण-त्याग वह क्रिया है, ऐसी क्रियाका केवलीभगवानके अभाव हुआ है।

४. आकारान्तर = अन्य आकार।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ केवलज्ञानिश्रुतज्ञानिनोरविशेषदर्शनेन विशेषाकांक्षाक्षोभं क्षपयति—

जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण।
तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा॥३३॥

यो हि श्रुतेन विजानात्यात्मानं ज्ञायकं स्वभावेन।
तं श्रुतकेवलिनमृषयो भणन्ति लोकप्रदीपकराः॥३३॥

गाथापञ्चकं गतम्। अथ यथा निरावरणसकलव्यक्तिलक्षणेन केवलज्ञानेनात्मपरिज्ञानं भवति तथा सावरणैकदेशव्यक्तिलक्षणेन केवलज्ञानोत्पत्तिबीजभूतेन स्वसंवेदनज्ञानरूपभावश्रुतेनाप्यात्मपरिज्ञानं भवतीति निश्चिनोति। अथवा द्वितीयपातनिका—यथा केवलज्ञानं प्रमाणं भवति तथा केवलज्ञानप्रणीतपदार्थप्रकाशकं श्रुतज्ञानमपि परोक्षप्रमाणं भवतीति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति---जो यः कर्ता हि स्फुटं सुदेण निर्विकारस्वसंवित्तिरूपभावश्रुतपरिणामेन विजाणदि

ज्ञान होता है इसलिये उनका ज्ञान एक ज्ञेयमेंसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें नहीं बदलता तथा उन्हें कुछ भी जानना शेष नहीं रहता इसलिये उनका ज्ञान किसी विशेष ज्ञेयाकारको जाननेके प्रति भी नहीं जाता; इसप्रकार भी वे परसे सर्वथा भिन्न हैं। [यदि जाननक्रिया बदलती हो तभी उसे विकल्प (पर-निमित्तक रागद्वेष) हो सकते हैं और तभी इतना परद्रव्यके साथका सम्बन्ध कहलाता है। किन्तु केवलीभगवानकी ज्ञप्तिका परिवर्तन नहीं होता इसलिये वे परसे अत्यन्त भिन्न हैं।] इसप्रकार केवलज्ञानप्राप्त आत्मा परसे अत्यन्त भिन्न होनेसे और प्रत्येक आत्मा स्वभावसे केवलीभगवान जैसा ही होनेसे यह सिद्ध हुआ कि निश्चयसे प्रत्येक आत्मा परसे भिन्न है॥३२॥

अब केवलज्ञानीको और श्रुतज्ञानीको अविशेषरूपसे दिखाकर विशेष आकांक्षाके क्षोभका क्षय करते हैं (अर्थात् केवलज्ञानीमें और श्रुतज्ञानीमें अन्तर नहीं है ऐसा बतलाकर विशेष जाननेकी इच्छाके क्षोभको नष्ट करते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[यः हि] जो वास्तवमें [श्रुतेन] श्रुतज्ञानके द्वारा [स्वभावेन ज्ञायकं] स्वभावसे ज्ञायक (अर्थात् ज्ञायकस्वभाव) [आत्मानं] आत्माको [विजानाति] जानता है [तं] उसे [लोकप्रदीपकराः] लोकके प्रकाशक [ऋषयः] ऋषीश्वरगण [श्रुतकेवलिनं भणन्ति] श्रुतकेवली कहते हैं॥३३॥

श्रुतज्ञानथी जाणे खरे ज्ञायकस्वभावी आत्मने,
ऋषिओ प्रकाशक लोकना श्रुतकेवली तेने कहे. ३३.

यथा भगवान् युगपत्परिणतसमस्तचैतन्यविशेषशालिना केवलज्ञानेनानादिनिधन-निष्कारणासाधारणस्वसंचेत्यमानचैतन्यसामान्यमहिम्नश्चेतकस्वभावेनैकत्वात् केवलस्यात्मन आत्मनात्मनि संचेतनात् केवली, तथायं जनोऽपि क्रमपरिणममाणकतिपयचैतन्यविशेष-शालिना श्रुतज्ञानेनानादिनिधननिष्कारणासाधारणस्वसंचेत्यमानचैतन्यसामान्यमहिम्नश्चेतक-स्वभावेनैकत्वात् केवलस्यात्मन आत्मनात्मनि संचेतनात् श्रुतकेवली। अलं विशेषा-कांक्षाक्षोभेण, स्वरूपनिश्चलैरेवावस्थीयते॥३३॥

विजानाति विशेषेण जानाति विषयसुखानन्दविलक्षणनिजशुद्धात्मभावनोत्थपरमानन्दैकलक्षणसुख-रसास्वादेनानुभवति। कम्। अप्पाणं निजात्मद्रव्यम्। जाणगं ज्ञायकं केवलज्ञानस्वरूपम्। केन कृत्वा। सहावेण समस्तविभावरहितस्वस्वभावेन। तं सुयकेवलिं तं महायोगीन्द्रं श्रुतकेवलिनं भणंति कथयन्ति। के कर्तारः। इसिणो ऋषयः। किंविशिष्टाः। लोगप्पदीवयरा लोकप्रदीपकरा लोकप्रकाशका इति। अतो विस्तरः---युगपत्परिणतसमस्तचैतन्यशालिना केवलज्ञानेन अनाद्यनन्तनिष्कारणान्य-द्रव्यासाधारणस्वसंवेद्यमानपरमचैतन्यसामान्यलक्षणस्य परद्रव्यरहितत्वेन केवलस्यात्मन आत्मनि स्वानुभवनाद्यथा भगवान् केवली भवति, तथायं गणधरदेवादिनिश्चयरत्नत्रयाराधकजनोऽपि

टीका :—जैसे भगवान, युगपत् परिणमन करते हुए समस्त चैतन्यविशेषयुक्त केवलज्ञानके द्वारा, [१]अनादिनिधन-[२]निष्कारण-[३]असाधारण-[४]स्वसंवेद्यमान चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है तथा जो [५]चेतकस्वभावसे एकत्व होनेसे केवल (अकेला, शुद्ध, अखंड) है ऐसे आत्माको आत्मासे आत्मामें अनुभव करनेके कारण केवली हैं; उसीप्रकार हम भी, क्रमशः परिणमित होते हुए कितने ही चैतन्यविशेषोंसेयुक्त श्रुतज्ञानके द्वारा, अनादिनिधन-निष्कारण-असाधारण-स्वसंवेद्यमान-चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है तथा जो चेतक स्वभावके द्वारा एकत्व होने से [६]केवल (अकेला) है ऐसे आत्माको आत्मासे आत्मामें अनुभव करनेके कारण श्रुतकेवली हैं। (इसलिये) विशेष आकांक्षाके क्षोभसे बस हो; (हम तो) स्वरूपनिश्चल ही रहते हैं।

---

१. अनादिनिधन = अनादि-अनन्त (चैतन्यसामान्य आदि तथा अन्त रहित है)।

२. निष्कारण = जिसका कोई कारण नहीं हैं ऐसा; स्वयंसिद्ध; सहज।

३. असाधारण = जो अन्य किसी द्रव्यमें न हो, ऐसा।

४. स्वसंवेद्यमान = स्वतः ही अनुभवमें आनेवाला।

५. चेतक = चेतनेवाला; दर्शकज्ञायक।

६. आत्मा निश्चयसे परद्रव्यके तथा रागद्वेषादिके संयोगों तथा गुणपर्यायके भेदोंसे रहित, मात्र चेतकस्वभावरूप ही है, इसलिये वह परमार्थसे केवल (अकेला, शुद्ध, अखण्ड) है।

अथ ज्ञानस्य श्रुतोपाधिभेदमुदस्यति—

सुत्तं जिणोवदिट्ठं पोग्गलदव्वप्पगेहिं वयणेहिं।
तं जाणणा हि णाणं सुत्तस्स य जाणणा भणिया॥३४॥

सूत्रं जिनोपदिष्टं पुद्गलद्रव्यात्मकैर्वचनैः।
तज्ज्ञप्तिर्हि ज्ञानं सूत्रस्य च ज्ञप्तिर्भणिता॥३४॥

पूर्वोक्तलक्षणस्यात्मनो भावश्रुतज्ञानेन स्वसंवेदनान्निश्चयश्रुतकेवली भवतीति। किंच--यथा कोऽपि देवदत्त आदित्योदयेन दिवसे पश्यति, रात्रौ किमपि प्रदीपेनेति। तथादित्योदयस्थानीयेन केवलज्ञानेन दिवसस्थानीयमोक्षपर्याये भगवानात्मानं पश्यति, संसारी विवेकिजनः पुनर्निशास्थानीयसंसारपर्याये

भावार्थ :—भगवान समस्त पदार्थोंको जानते हैं, मात्र इसलिये ही वे 'केवली' नहीं कहलाते, किन्तु केवल अर्थात् शुद्ध आत्माको जानने-अनुभव करनेसे 'केवली' कहलाते हैं। केवल (-शुद्ध) आत्माके जानने-अनुभव करनेवाला श्रुतज्ञानी भी 'श्रुतकेवली' कहलाता है। केवली और श्रुतकेवलीमें इतना मात्र अन्तर है कि—जिसमें चैतन्यके समस्त विशेष एक ही साथ परिणमित होते हैं ऐसे केवलज्ञानके द्वारा केवली केवल आत्माका अनुभव करते हैं जिसमें चैतन्यके कुछ विशेष क्रमशः परिणमित होते हैं ऐसे श्रुतज्ञानके द्वारा श्रुतकेवली केवल आत्माका अनुभव करते हैं; अर्थात्, केवली सूर्यके समान केवलज्ञानके द्वारा आत्माको देखते और अनुभव करते हैं तथा श्रुतकेवली दीपकके समान श्रुतज्ञानके द्वारा आत्माको देखते और अनुभव करते हैं, इसप्रकार केवली और श्रुतकेवलीमें स्वरूपस्थिरताकी तरतमतारूप भेद ही मुख्य है, कम-बढ़ (पदार्थ) जाननेरूप भेद अत्यन्त गौण है। इसलिये अधिक जाननेकी इच्छाका क्षोभ छोड़कर स्वरूपमें ही निश्चल रहना योग्य है। यही केवलज्ञान-प्राप्तिका उपाय है॥३३॥

अब, ज्ञानके श्रुत-उपाधिकृत भेदको दूर करते हैं (अर्थात् ऐसा बतलाते हैं कि श्रुतज्ञान भी ज्ञान ही है, श्रुतरूप उपाधिके कारण ज्ञानमें कोई भेद नहीं होता) :—

अन्वयार्थ :—[सूत्रं] सूत्र अर्थात् [पुद्गलद्रव्यात्मकैः वचनैः] पुद्गलद्रव्यात्मक वचनोंके द्वारा [जिनोपदिष्टं] जिनेन्द्र भगवानके द्वारा उपदिष्ट वह [तज्ज्ञप्तिः ही] उसकी ज्ञप्ति [ज्ञानं] ज्ञान है [च] और उसे [सूत्रस्य ज्ञप्तिः] सूत्रकी ज्ञप्ति (श्रुतज्ञान) [भणिता] कहा गया है॥३४॥

पुद्गलस्वरूप वचनोथी जिन-उपदिष्ट जे ते सूत्र छे;
छे ज्ञप्ति तेनी ज्ञान, तेने सूत्रनी ज्ञप्ति कहे. ३४.

श्रुतं हि तावत्सूत्रम्। तच्च भगवदर्हत्सर्वज्ञोपज्ञं स्यात्कारकेतनं पौद्गलिकं शब्दब्रह्म। तज्ज्ञप्तिर्हि ज्ञानम्। श्रुतं तु तत्कारणत्वात् ज्ञानत्वेनोपचर्यत एव। एवं सति सूत्रस्य ज्ञप्तिः श्रुतज्ञानमित्यायाति। अथ सूत्रमुपाधित्वान्नाद्रियते ज्ञप्तिरेवावशिष्यते। सा च केवलिनः श्रुतकेवलिनश्चात्मसंचेतने तुल्यैव इति नास्ति ज्ञानस्य श्रुतोपाधिभेदः॥ ३४॥

प्रदीपस्थानीयेन रागादिविकल्परहितपरमसमाधिना निजात्मानं पश्यतीति। अयमत्राभिप्रायः---आत्मा परोक्षः, कथं ध्यानं क्रियते इति सन्देहं कृत्वा परमात्मभावना न त्याज्येति॥३३॥ अथ शब्दरूपं द्रव्यश्रुतं व्यवहारेण ज्ञानं निश्चयेनार्थपरिच्छित्तिरूपं भावश्रुतमेव ज्ञानमिति कथयति। अथवात्मभावनारतो निश्चयश्रुतकेवली भवतीति पूर्वसूत्रे भणितम्। अयं तु व्यवहारश्रुतकेवलीति कथ्यते---सुत्तं द्रव्यश्रुतम्। कथम्भूतम्। जिणोवदिट्ठं जिनोपदिष्टम्। कैः कृत्वा। पोग्गलदव्वप्पगेहिं वयणेहिं पुद्गलद्रव्यात्मकैर्दिव्यध्वनिवचनैः। तं जाणणा हि णाणं तेन पूर्वोक्तशब्दश्रुताधारेण ज्ञप्तिरर्थपरिच्छित्तिर्ज्ञानं भण्यते हि स्फुटम्। सुत्तस्स य जाणणा भणिया पूर्वोक्तद्रव्यश्रुतस्यापि व्यवहारेण ज्ञानव्यपदेशो भवति न तु निश्चयेनेति। तथा हि--यथा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवः पश्चाद्व्यवहारेण नरनारकादिरूपोऽपि जीवो भण्यते; तथा निश्चयेनाखण्डैकप्रतिभासरूपं समस्तवस्तुप्रकाशकं ज्ञानं भण्यते, पश्चाद्व्यवहारेण मेघपटलावृतादित्यस्यावस्थाविशेषवत्कर्मपटलावृताखण्डैकज्ञानरूपजीवस्य मतिज्ञानश्रुतज्ञानादिव्यपदेशो भवतीति भावार्थः॥३४॥ अथ भिन्नज्ञानेनात्मा

टीका :—प्रथम तो श्रुत ही सूत्र है; और वह सूत्र भगवान अर्हन्त–सर्वज्ञके द्वारा स्वयं जानकर उपदिष्ट [१]स्यात्कार चिह्नयुक्त, पौदगलिक शब्दब्रह्म है। उसकी [२]ज्ञप्ति (-शब्दब्रह्मको जाननेवाली ज्ञातृक्रिया) सो ज्ञान है; श्रुत (-सूत्र) तो उसका (-ज्ञानका) कारण होनेसे ज्ञानके रूपमें उपचारसे ही कहा जाता है (जैसे कि अन्नको प्राण कहा जाता है)। ऐसा होनेसे यह फलित हुआ कि 'सूत्रकी ज्ञप्ति' सो श्रुतज्ञान है। अब यदि सूत्र तो उपाधि होनेसे उसका आदर न किया जाये तो 'ज्ञप्ति' ही शेष रह जाती है; ('सूत्रकी ज्ञप्ति' कहने पर निश्चयसे ज्ञप्ति कहीं पौद्गलिक सूत्रकी नहीं, किन्तु आत्माकी है; सूत्र ज्ञप्तिका स्वरूपभूत नहीं, किन्तु विशेष वस्तु अर्थात् उपाधि है; क्योंकि सूत्र न हो तो वहाँ भी ज्ञप्ति तो होती ही है। इसलिये यदि सूत्रको न गिना जाय तो 'ज्ञप्ति' ही शेष रहती है।) और वह (-ज्ञप्ति) केवली और श्रुतकेवलीके आत्मानुभवनमें समान ही है। इसलिये ज्ञानमें श्रुत-उपाधिकृत भेद नहीं है॥३४॥

---

१. स्यात्कार = 'स्यात्' शब्द। (स्यात् = कथंचित्; किसी अपेक्षासे)

२. ज्ञप्ति = जानना; जाननेकी क्रिया; जाननक्रिया।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथात्मज्ञानयोः कर्तृकरणताकृतं भेदमपनुदति—

जो जाणदि सो णाणं ण हवदि णाणेण जाणगो आदा।
णाणं परिणमदि सयं अट्ठा णाणट्ठिया सव्वे॥३५॥

यो जानाति स ज्ञानं न भवति ज्ञानेन ज्ञायक आत्मा।
ज्ञानं परिणमते स्वयमर्था ज्ञानस्थिताः सर्वे॥३५॥

अपृथग्भूतकर्तृकरणत्वशक्तिपारमैश्वर्ययोगित्वादात्मनो य एव स्वयमेव जानाति स एव ज्ञानमन्तर्लीनसाधकतमोष्णत्वशक्तेः स्वतंत्रस्य जातवेदसो दहनक्रियाप्रसिद्धेरुष्ण-

ज्ञानी न भवतीत्युपदिशति—जो जाणदि सो णाणं यः कर्ता जानाति स ज्ञानं भवतीति। तथा हि—यथा संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि सति पश्चादभेदनयेन दहनक्रियासमर्थोष्णगुणेन परिणतोऽग्निरप्युष्णो भण्यते, तथार्थक्रियापरिच्छित्तिसमर्थज्ञानगुणेन परिणत आत्मापि ज्ञानं भण्यते। तथा चोक्तम्–'जानातीति ज्ञानमात्मा'। ण हवदि णाणेण जाणगो आदा सर्वथैव भिन्नज्ञानेनात्मा ज्ञायको न

अब, आत्मा और ज्ञानका कर्तृत्व-करणत्वकृत भेद दूर करते हैं (अर्थात् परमार्थतः अभेद आत्मामें, 'आत्मा ज्ञातृक्रियाका कर्ता है और ज्ञान करण है' ऐसा व्यवहारसे भेद किया जाता है, तथापि आत्मा और ज्ञान भिन्न नहीं हैं इसलिये अभेदनयसे 'आत्मा ही ज्ञान है' ऐसा समझाते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[यः जानाति] जो जानता है [सः ज्ञानं] सो ज्ञान है (अर्थात् जो ज्ञायक है वही ज्ञान है), [ज्ञानेन] ज्ञानके द्वारा [आत्मा] आत्मा [ज्ञायकः भवति] ज्ञायक है [न] ऐसा नहीं है। [स्वयं] स्वयं ही [ज्ञानं परिणमते] ज्ञानरूप परिणमित होता है [सर्वे अर्थाः] और सर्व पदार्थ [ज्ञानस्थिताः] ज्ञानस्थित हैं॥३५॥

टीका :—आत्मा अपृथग्भूत कर्तृत्व और करणत्वकी शक्तिरूप [१]पारमैश्वर्यवान होनेसे जो स्वयमेव जानता है (अर्थात् जो ज्ञायक है) वही ज्ञान है; जैसे–जिसमें [२]साधकतम उष्णत्वशक्ति अन्तर्लीन है, ऐसी [३]स्वतंत्र अग्निके [४]दहनक्रियाकी प्रसिद्धि होनेसे उष्णता कही जाती है। परन्तु ऐसा नहीं है कि जैसे पृथग्वर्ती हँसियेसे देवदत्त काटनेवाला कहलाता है उसीप्रकार

१. पारमैश्वर्य = परम सामर्थ्य; परमेश्वरता। २. साधकतम = उत्कृष्ट साधन वह करण।
३. जो स्वतंत्र रूपसे करे वह कर्ता।
४. अग्नि जलानेकी क्रिया करती है, इसलिये उसे उष्णता कहा जाता है।

जे जाणतो ते ज्ञान, नहि जीव ज्ञानथी ज्ञायक बने;
पोते प्रणमतो ज्ञानरूप, ने ज्ञानस्थित सौ अर्थ छे. ३५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

व्यपदेशवत्। न तु यथा पृथग्वर्तिना दात्रेण लावको भवति देवदत्तस्तथा ज्ञानेन ज्ञायको भवत्यात्मा। तथा सत्युभयोरचेतनत्वमचेतनयोः संयोगेऽपि न परिच्छित्तिनिष्पत्तिः। पृथक्त्ववर्तिनोरपि परिच्छेदाभ्युपगमे परपरिच्छेदेन परस्य परिच्छित्तिर्भूतिप्रभृतीनां च परिच्छित्तिप्रसूतिरनंकुशा स्यात्। किंच–स्वतोऽव्यतिरिक्तसमस्तपरिच्छेद्याकारपरिणतं ज्ञानं स्वयं परिणममानस्य कार्यभूतसमस्तज्ञेयाकारकारणीभूताः सर्वेऽर्था ज्ञानवर्तिन एव कथंचिद्भवन्ति; किं ज्ञातृज्ञानविभागक्लेशकल्पनया॥३५॥

अथ किं ज्ञानं किं ज्ञेयमिति व्यनक्ति—

तम्हा णाणं जीवो णेयं दव्वं तिहा समक्खादं।
दव्वं ति पुणो आदा परं च परिणामसंबद्धं॥३६॥

भवतीति। अथ मतम्--यथा भिन्नदात्रेण लावको भवति देवदत्तस्तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञायको भवतु को दोष इति। नैवम्। छेदनक्रियाविषये दात्रं बहिरङ्गोपकरणं तद्भिन्नं भवतु, अभ्यन्तरोपकरणं तु देवदत्तस्य छेदनक्रियाविषये शक्तिविशेषस्तच्चाभिन्नमेव भवति; तथार्थपरिच्छित्तिविषये ज्ञानमेवाभ्यन्तरोपकरणं तथाभिन्नमेव भवति, उपाध्यायप्रकाशादिबहिरङ्गोपकरणं तद्भिन्नमपि भवतु दोषो नास्ति। यदि च भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवति तर्हि परकीयज्ञानेन सर्वेऽपि कुम्भस्तम्भादिजडपदार्था ज्ञानिनो

(पृथग्वर्ती) ज्ञानसे आत्मा जाननेवाला (-ज्ञायक) है। यदि ऐसा हो तो दोनोंके अचेतनता आ जायेगी और अचेतनोंका संयोग होने पर भी ज्ञप्ति उत्पन्न नहीं होगी। आत्मा और ज्ञानके पृथग्वर्ती होने पर भी यदि आत्माके ज्ञप्तिका होना माना जाये तो परज्ञानके द्वारा परको ज्ञप्ति हो जायेगी और इसप्रकार राख इत्यादिके भी ज्ञप्तिका उद्भव निरंकुश हो जायेगा। ('आत्मा और ज्ञान पृथक् हैं किन्तु ज्ञान आत्माके साथ युक्त हो जाता है इसलिये आत्मा जाननेका कार्य करता है' यदि ऐसा माना जाये तो जैसे ज्ञान आत्माके साथ युक्त होता है, उसीप्रकार राख, घड़ा, स्तंभ इत्यादि समस्त पदार्थोंके साथ युक्त हो जाये और उससे वे सब पदार्थ भी जाननेका कार्य करने लगें; किन्तु ऐसा तो नहीं होता, इसलिये आत्मा और ज्ञान पृथक् नहीं हैं) और, अपनेसे अभिन्न ऐसे समस्त ज्ञेयाकाररूप परिणमित जो ज्ञान है उसरूप स्वयं परिणमित होनेवालेको, कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारोंके कारणभूत समस्त पदार्थ ज्ञानवर्ति ही कथंचित् हैं। (इसलिये) ज्ञाता और ज्ञानके विभागकी क्लिष्ट कल्पनासे क्या प्रयोजन है? ॥३५॥

अब, यह व्यक्त करते हैं कि ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है :—

छे ज्ञान तेथी जीव, ज्ञेय त्रिधा कहेलुं द्रव्य छे;
अे द्रव्य पर ने आतमा, परिणामसंयुत जेह छे. ३६.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

तस्मात् ज्ञानं जीवो ज्ञेयं द्रव्यं त्रिधा समाख्यातम्।
द्रव्यमिति पुनरात्मा परश्च परिणामसंबद्धः ॥३६॥

यतः परिच्छेदरूपेण स्वयं विपरिणम्य स्वतंत्र एव परिच्छिनत्ति ततो जीव एव ज्ञानमन्यद्रव्याणां तथा परिणन्तुं परिच्छेत्तुं चाशक्तेः। ज्ञेयं तु वृत्तवर्तमानवर्तिष्यमाणविचित्र-पर्यायपरम्पराप्रकारेण त्रिधाकालकोटिस्पर्शित्वादनाद्यनन्तं द्रव्यम्। तत्तु ज्ञेयतामापद्यमानं द्वेधात्मपरविकल्पात्। इष्यते हि स्वपरपरिच्छेदकत्वादवबोधस्य बोध्यस्यैवंविधं द्वैविध्यम्।

ननु स्वात्मनि क्रियाविरोधात् कथं नामात्मपरिच्छेदकत्वम्। का हि नाम क्रिया कीदृशश्च विरोधः। क्रिया ह्यत्र विरोधिनी समुत्पत्तिरूपा वा ज्ञप्तिरूपा वा। उत्पत्तिरूपा हि तावन्नैकं स्वस्मात्प्रजायत इत्यागमाद्विरुद्धैव। ज्ञप्तिरूपायास्तु प्रकाशनक्रिययेव प्रत्यवस्थितत्वान्न

भवन्तु, न च तथा। **णाणं परिणमदि सयं** यत एव भिन्नज्ञानेन ज्ञानी न भवति तत एव घटोत्पत्तौ मृत्पिण्ड इव स्वयमेवोपादानरूपेणात्मा ज्ञानं परिणमति। **अट्ठा णाणट्ठिया सव्वे** व्यवहारेण ज्ञेयपदार्था आदर्शे बिम्बमिव परिच्छित्त्याकारेण ज्ञाने तिष्ठन्तीत्यभिप्रायः॥३५॥ अथात्मा ज्ञानं भवति शेषं तु ज्ञेयमित्यावेदयति---**तम्हा णाणं जीवो** यस्मादात्मैवोपादानरूपेण ज्ञानं परिणमति तथैव पदार्थान् परिच्छिनत्ति, इति भणितं पूर्वसूत्रे, तस्मादात्मैव ज्ञानं। **णेयं दव्वं** तस्य ज्ञानरूपस्यात्मनो ज्ञेयं भवति। किम्। द्रव्यम्। **तिहा समक्खादं** तच्च द्रव्यं कालत्रयपर्यायपरिणतिरूपेण द्रव्यगुणपर्यायरूपेण वा

अन्वयार्थ :—[तस्मात्] इसलिये [जीवः ज्ञानं] जीव ज्ञान है [ज्ञेयं] और ज्ञेय [त्रिधा समाख्यातं] तीन प्रकारसे वर्णित (त्रिकालस्पर्शी) [द्रव्यं] द्रव्य है। [पुनः द्रव्यं इति] (वह ज्ञेयभूत) द्रव्य अर्थात् [आत्मा] आत्मा (स्वात्मा) [परः च] और पर [परिणामसम्बद्धः] जोकि परिणामवाले हैं॥३६॥

टीका :—(पूर्वोक्त प्रकार) ज्ञानरूपसे स्वयं परिणमित होकर स्वतंत्रतया ही जानता है इसलिये जीव ही ज्ञान है, क्योंकि अन्य द्रव्य इसप्रकार (ज्ञानरूप) परिणमित होने तथा जाननेमें असमर्थ हैं। और ज्ञेय, वर्त चुकी, वर्त रही और वर्तनेवाली ऐसी विचित्र पर्यायोंकी परम्पराके प्रकारसे त्रिविध कालकोटिको स्पर्श करता होनेसे अनादि-अनन्त ऐसा द्रव्य है। (आत्मा ही ज्ञान है और ज्ञेय समस्त द्रव्य हैं) वह ज्ञेयभूत द्रव्य आत्मा और पर (-स्व और पर) ऐसे दो भेदसे दो प्रकारका है। ज्ञान स्वपरज्ञायक है, इसलिये ज्ञेयकी ऐसी द्विविधता मानी जाती है।

(प्रश्न) :—अपनेमें क्रियाके हो सकनेका विरोध है, इसलिये आत्माके स्वज्ञायकता कैसे घटित होती है?

(उत्तर) :—कौनसी क्रिया है और किस प्रकारका विरोध है? जो यहाँ (प्रश्नमें विरोधी क्रिया कही गई है वह या तो उत्पत्तिरूप होगी या ज्ञप्तिरूप होगी। प्रथम, उत्पत्तिरूप क्रिया तो 'कहीं स्वयं अपनेमेंसे उत्पन्न नहीं हो सकती' इस आगमकथनसे विरुद्ध ही है; परन्तु

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

तत्र विप्रतिषेधस्यावतारः। यथा हि प्रकाशकस्य प्रदीपस्य परं प्रकाश्यतामापन्नं प्रकाशयतः स्वस्मिन् प्रकाश्ये न प्रकाशकान्तरं मृग्यं स्वयमेव प्रकाशनक्रियायाः समुपलम्भात्; तथा परिच्छेदकस्यात्मनः परं परिच्छेद्यतामापन्नं परिच्छिन्दतः स्वस्मिन् परिच्छेद्ये न परिच्छेदकान्तरं मृग्यं स्वयमेव परिच्छेदनक्रियायाः समुपलम्भात्।

ननु कुत आत्मनो द्रव्यज्ञानरूपत्वं द्रव्याणां च आत्मज्ञेयरूपत्वं च? परिणाम-संबन्धत्वात्। यतः खलु आत्मा द्रव्याणि च परिणामैः सह संबध्यन्ते, तत आत्मनो द्रव्यालम्बनज्ञानेन द्रव्याणां तु ज्ञानमालम्ब्य ज्ञेयाकारेण परिणतिरबाधिता प्रतपति॥३६॥

तथैवोत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण च त्रिधा समाख्यातम्। दव्वं ति पुणो आदा परं च तच्च ज्ञेयभूतं द्रव्यमात्मा भवति परं च। कस्मात्। यतो ज्ञानं स्वं जानाति परं चेति प्रदीपवत्। तच्च स्वपरद्रव्यं कथंभूतम्। **परिणामसंबद्धं कथंचित्परिणामीत्यर्थः। नैयायिकमतानुसारी कश्चिदाह---ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात्**

ज्ञप्तिरूप क्रियामें विरोध नहीं आता, क्योंकि वह, प्रकाशन क्रियाकी भाँति, उत्पत्तिक्रियासे विरुद्ध प्रकारसे (भिन्न प्रकारसे) होती है। जैसे जो प्रकाश्यभूत परको प्रकाशित करता है ऐसे प्रकाशक दीपकको स्व प्रकाश्यको प्रकाशित करनेके सम्बन्धमें अन्य प्रकाशककी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसके स्वयमेव प्रकाशन क्रियाकी प्राप्ति है; उसीप्रकार जो ज्ञेयभूत परको जानता है ऐसे ज्ञायक आत्माको स्व ज्ञेयके जाननेके सम्बन्धमें अन्य ज्ञायककी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि स्वयमेव ज्ञान-क्रिया की प्राप्ति[१] है। (इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञान स्वको भी जान सकता है।)

(प्रश्न) :—आत्माको द्रव्योंकी ज्ञानरूपता और द्रव्योंको आत्माकी ज्ञेयरूपता कैसे (–किसप्रकार घटित) है ?

(उत्तर) :—वे परिणामवाले होनेसे। आत्मा और द्रव्य परिणामयुक्त हैं, इसलिये आत्माके, द्रव्य जिसका [२]आलम्बन हैं ऐसे ज्ञानरूपसे (परिणति), और द्रव्योंके, ज्ञानका [३]अवलम्बन लेकर ज्ञेयाकाररूपसे परिणति अबाधितरूपसे तपती है—प्रतापवंत वर्तती है।

---

१. कोई पर्याय स्वयं अपनेमेंसे उत्पन्न नहीं हो सकती, किन्तु वह द्रव्यके आधारसे–द्रव्यमेंसे उत्पन्न होती है; क्योंकि यदि ऐसा न हो तो द्रव्यरूप आधारके बिना पर्यायें उत्पन्न होने लगें और जलके बिना तरंगें होने लगें; किन्तु यह सब प्रत्यक्ष विरुद्ध है; इसलिये पर्यायके उत्पन्न होनेके लिये द्रव्यरूप आधार आवश्यक है। इसीप्रकार ज्ञानपर्याय भी स्वयं अपनेमेंसे उत्पन्न नहीं हो सकती; वह आत्मद्रव्यमेंसे उत्पन्न हो सकती है—जो कि ठीक ही है। परन्तु ज्ञान पर्याय स्वयं अपनेसे ही ज्ञात नहीं हो सकती यह बात यथार्थ नहीं है। आत्म द्रव्यमेंसे उत्पन्न होनेवाली ज्ञानपर्याय स्वयं अपनेसे ही ज्ञात होती है। जैसे दीपकरूपी आधारमेंसे उत्पन्न होने वाली प्रकाशपर्याय स्व-परको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार आत्मारूपी आधारमेंसे उत्पन्न होनेवाली ज्ञानपर्याय स्वपरको जानती है। और यह अनुभव सिद्ध भी है कि ज्ञान स्वयं अपनेको जानता है।

२. ज्ञानके ज्ञेयभूत द्रव्य आलम्बन अर्थात् निमित्त हैं। यदि ज्ञान ज्ञेयको न जाने तो ज्ञानका ज्ञानत्व क्या?

३. ज्ञेयका ज्ञान आलम्बन अर्थात् निमित्त है। यदि ज्ञेय ज्ञानमें ज्ञात न हो तो ज्ञेयका ज्ञेयत्व क्या?

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथातिवाहितानागतानामपि द्रव्यपर्यायाणां तादात्विकवत् पृथक्त्वेन ज्ञाने वृत्तिमुद्योतयति—

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं।
वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं॥३७॥

तात्कालिका इव सर्वे सदसद्भूता हि पर्यायास्तासाम्।
वर्तन्ते ते ज्ञाने विशेषतो द्रव्यजातीनाम्॥३७॥

सर्वासामेव हि द्रव्यजातीनां त्रिसमयावच्छिन्नात्मलाभभूमिकत्वेन क्रमप्रतपत्स्वरूपसंपदः

घटादिवत्। परिहारमाह–प्रदीपेन व्यभिचारः, प्रदीपस्तावत्प्रमेयः परिच्छेद्यो ज्ञेयो भवति न च प्रदीपान्तरेण प्रकाश्यते, तथा ज्ञानमपि स्वयमेवात्मानं प्रकाशयति न च ज्ञानान्तरेण प्रकाश्यते। यदि पुनर्ज्ञानान्तरेण प्रकाश्यते तर्हि गगनावलम्बिनी महती दुर्निवारानवस्था प्राप्नोतीति सूत्रार्थः॥३६॥ एवं निश्चयश्रुतकेवलिव्यवहारश्रुतकेवलिकथनमुख्यत्वेन भिन्नज्ञाननिराकरणेन ज्ञानज्ञेयस्वरूपकथनेन च चतुर्थस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्। अथातीतानागतपर्याया वर्तमानज्ञाने सांप्रता इव दृश्यन्त इति निरूपयति—**सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया** सर्वे सद्भूता असद्भूता अपि पर्यायाः ये हि स्फुटं **वट्टंते ते** ते

(आत्मा और द्रव्य समय-समय पर परिणमन किया करते हैं, वे कूटस्थ नहीं हैं; इसलिये आत्मा ज्ञान स्वभावसे और द्रव्य ज्ञेय स्वभावसे परिणमन करता है, इसप्रकार ज्ञान स्वभावमें परिणमित आत्मा ज्ञानके आलम्बनभूत द्रव्योंको जानता है और ज्ञेय-स्वभावसे परिणमित द्रव्य ज्ञेयके आलम्बनभूत ज्ञानमें—आत्मामें—ज्ञात होते हैं।) ॥३६॥

अब, ऐसा उद्योत करते हैं कि द्रव्योंकी अतीत और अनागत पर्यायें भी तात्कालिक पर्यायोंकी भाँति पृथक्रूपसे ज्ञानमें वर्तती हैं :—

अन्वयार्थ :—[**तासाम् द्रव्यजातीनाम्**] उन (जीवादि) द्रव्यजातियोंकी [**ते सर्वे**] समस्त [**सदसद्भूताः हि**] विद्यमान और अविद्यमान [**पर्यायाः**] पर्यायें [**तात्कालिकाः इव**] तात्कालिक (वर्तमान) पर्यायोंकी भाँति, [**विशेषतः**] विशिष्टतापूर्वक (अपने-अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपमें) [**ज्ञाने वर्तन्ते**] ज्ञानमें वर्तती हैं॥३७॥

टीका :—(जीवादिक) समस्त द्रव्यजातियोंकी पर्यायोंकी उत्पत्तिकी मर्यादा तीनोंकालकी मर्यादा जितनी होनेसे (वे तीनोंकालमें उत्पन्न हुआ करती हैं इसलिये), उनकी (उन समस्त द्रव्य-जातियोंकी), क्रमपूर्वक तपती हुई स्वरूप-सम्पदा वाली (-एकके बाद

ते द्रव्यना सद्भूत-असद्भूत पर्ययो सौ वर्तता,
तत्कालना पर्याय जेम, विशेषपूर्वक ज्ञानमां. ३७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सद्भूतासद्भूततामायान्तो ये यावन्तः पर्यायास्ते तावन्तस्तात्कालिका इवात्यन्तसंकरेणाप्यवधारितविशेषलक्षणा एकक्षण एवावबोधसौधस्थितिमवतरन्ति। न खल्वेतदयुक्तम्—दृष्टाविरोधात्; दृश्यते हि छद्मस्थस्यापि वर्तमानमिव व्यतीतमनागतं वा वस्तु चिन्तयतः संविदालम्बितस्तदाकारः।—किंच चित्रपटीस्थानीयत्वात् संविदः; यथा हि चित्रपट्यामतिवाहितानामनुपस्थितानां वर्तमानानां च वस्तूनामालेख्याकाराः साक्षादेकक्षण एवावभासन्ते, तथा संविद्भित्तावपि।—किंच सर्वज्ञेयाकाराणां तादात्विकत्वाविरोधात्; यथा हि प्रध्वस्तानामनुदितानां च वस्तूनामालेख्याकारा वर्तमाना एव, तथातीतानामनागतानां च पर्यायाणां ज्ञेयाकारा वर्तमाना एव भवन्ति।।३७।।

पूर्वोक्ताः पर्याया वर्तन्ते प्रतिभासन्ते प्रतिस्फुरन्ति। क्व। णाणे केवलज्ञाने। कथंभूता इव। तक्कालिगेव तात्कालिका इव वर्तमाना इव। कासां सम्बन्धिनः। तासिं दव्वजादीणं तासां प्रसिद्धानां

दूसरी प्रगट होनेवाली), विद्यमानता और अविद्यमानताको प्राप्त जो जितनी पर्यायें हैं, वे सब तात्कालिक (वर्तमानकालीन) पर्यायोंकी भाँति, अत्यन्त [१]मिश्रित होनेपर भी सब पर्यायोंके विशिष्ट लक्षण स्पष्ट ज्ञात हों इसप्रकार, एक क्षणमें ही, ज्ञानमंदिरमें स्थितिको प्राप्त होती हैं। यह (तीनों कालकी पर्यायोंका वर्तमान पर्यायोंकी भाँति ज्ञानमें ज्ञात होना) अयुक्त नहीं है; क्योंकि—

(१) उसका दृष्टान्तके साथ (जगतमें जो दिखाई देता है—अनुभवमें आता है उसके साथ) अविरोध है। (जगतमें) दिखाई देता है कि छद्मस्थके भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुए ज्ञान उसके आकारका अवलम्बन करता है उसीप्रकार भूत और भविष्यत वस्तुका चिंतवन करते हुए (भी) ज्ञान उसके आकारका अवलम्बन करता है।

(२) और ज्ञान चित्रपटके समान है। जैसे चित्रपटमें अतीत, अनागत और वर्तमान वस्तुओंके [२]आलेख्याकार साक्षात् एक क्षणमें ही भासित होते हैं; उसीप्रकार ज्ञानरूपी भित्तिमें (-ज्ञानभूमिकामें, ज्ञानपटमें) भी अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायोंके ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षणमें ही भासित होते हैं।

(३) और सर्व ज्ञेयाकारोंकी तात्कालिकता (वर्तमानता, साम्प्रतिकता) अविरुद्ध है। जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके आलेख्याकार वर्तमान ही हैं, उसीप्रकार अतीत और अनागत पर्यायोंके ज्ञेयाकार वर्तमान ही हैं।

---

१. ज्ञानमें समस्त द्रव्योंकी तीनोंकालकी पर्यायें एक ही साथ ज्ञात होने पर भी प्रत्येक पर्यायका विशिष्ट स्वरूप-प्रदेश, काल, आकार इत्यादि विशेषतायें-स्पष्ट ज्ञात होता है; संकर-व्यतिकर नहीं होते।

२. आलेख्य = आलेखन योग्य; चित्रित करने योग्य।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथासद्भूतपर्यायाणां कथंचित्सद्भूतत्वं विदधाति—

जे णेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया।
ते होंति असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा॥३८॥

ये नैव हि संजाता ये खलु नष्टा भूत्वा पर्यायाः।
ते भवन्ति असद्भूताः पर्याया ज्ञानप्रत्यक्षाः॥३८॥

शुद्धजीवद्रव्यादिद्रव्यजातीनामिति व्यवहितसंबन्धः। कस्मात्। विसेसदो स्वकीयस्वकीयप्रदेश-कालाकारविशेषैः संकरव्यतिकरपरिहारेणेत्यर्थः। किंच---यथा छद्मस्थपुरुषस्यातीतानागतपर्याया मनसि चिन्तयतः प्रतिस्फुरन्ति, यथा च चित्रभित्तौ बाहुबलिभरतादिव्यतिक्रान्तरूपाणि श्रेणिकतीर्थकरादि-भाविरूपाणि च वर्तमानानीव प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते तथा चित्रभित्तिस्थानीयकेवलज्ञाने भूतभाविनश्च पर्याया युगपत्प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते, नास्ति विरोधः। यथायं केवली भगवान् परद्रव्यपर्यायान् परिच्छित्तिमात्रेण

भावार्थ :—केवलज्ञान समस्त द्रव्योंकी तीनों कालकी पर्यायोंको युगपद् जानता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायोंको वर्तमान कालमें कैसे जान सकता है? उसका समाधान है कि—जगतमें भी देखा जाता है कि अल्पज्ञ जीवका ज्ञान भी नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंका चिंतवन कर सकता है, अनुमानके द्वारा जान सकता है, तदाकार हो सकता है; तब फिर पूर्ण ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायोंको क्यों न जान सकेगा? ज्ञानशक्ति ही ऐसी है कि वह चित्रपटकी भाँति अतीत और अनागत पर्यायोंको भी जान सकती है और आलेख्यत्वशक्तिकी भाँति, द्रव्योंकी ज्ञेयत्व शक्ति ऐसी है कि उनकी अतीत और अनागत पर्यायें भी ज्ञानमें ज्ञेयरूप होती हैं–ज्ञात होती हैं। इसप्रकार आत्माकी अद्भुत ज्ञानशक्ति और द्रव्योंकी अद्भुत ज्ञेयत्वशक्तिके कारण केवलज्ञानमें समस्त द्रव्योंकी तीनोंकालकी पर्यायोंका एक ही समयमें भासित होना अविरुद्ध है॥३७॥

अब, अविद्यमान पर्यायोंकी (भी) कथंचित् (-किसी प्रकारसे; किसी अपेक्षासे) विद्यमानता बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**ये पर्यायाः**] जो पर्यायें [**हि**] वास्तवमें [**न एव संजाताः**] उत्पन्न नहीं हुई हैं, तथा [**ये**] जो पर्यायें [**खलु**] वास्तवमें [**भूत्वा नष्टाः**] उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, [**ते**] वे [**असद्भूताः पर्यायाः**] अविद्यमान पर्यायें [**ज्ञानप्रत्यक्षाः भवन्ति**] ज्ञान प्रत्यक्ष हैं॥३८॥

जे पर्ययो अणजात छे, वली जन्मीने प्रविनष्ट जे,
ते सौ असद्भूत पर्ययो पण ज्ञानमां प्रत्यक्ष छे. ३८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

ये खलु नाद्यापि संभूतिमनुभवन्ति, ये चात्मलाभमनुभूय विलयमुपगतास्ते किलासद्भूता अपि परिच्छेदं प्रति नियतत्वात् ज्ञानप्रत्यक्षतामनुभवन्तः शिलास्तम्भोत्कीर्णभूतभाविदेववदप्रकम्पार्पितस्वरूपाः सद्भूता एव भवन्ति॥३८॥

अथैतदेवासद्भूतानां ज्ञानप्रत्यक्षत्वं दृढयति—

जदि पच्चक्खमजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स।
ण हवदि वा तं णाणं दिव्वं ति हि के परूवेंति॥३९॥

जानाति, न च तन्मयत्वेन, निश्चयेन तु केवलज्ञानादिगुणाधारभूतं स्वकीयसिद्धपर्यायमेव स्वसंवित्त्याकारेण तन्मयो भूत्वा परिच्छिनत्ति जानाति, तथासन्नभव्यजीवेनापि निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयपर्याय एव सर्वतात्पर्येण ज्ञातव्य इति तात्पर्यम्॥३७॥ अथातीतानागतपर्यायाणामसद्भूतसंज्ञा भवतीति प्रतिपादयति---**जे णेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया ये नैव** संजाता नाद्यापि भवन्ति, भाविन इत्यर्थः। हि स्फुटं ये च खलु नष्टा विनष्टाः पर्यायाः। किं कृत्वा। भूत्वा। **ते होंति असब्भूदा पज्जाया** ते पूर्वोक्ता भूता भाविनश्च पर्याया अविद्यमानत्वादसद्भूता भण्यन्ते। **णाणपच्चक्खा** ते चाविद्यमानत्वादसद्भूता अपि वर्तमानज्ञानविषयत्वाद्व्यवहारेण भूतार्था भण्यन्ते, तथैव ज्ञानप्रत्यक्षाश्चेति। यथायं भगवान्निश्चयेन परमानन्दैकलक्षणसुखस्वभावं मोक्षपर्यायमेव तन्मयत्वेन परिच्छिनत्ति, परद्रव्यपर्यायं तु व्यवहारेणेति; तथा भावितात्मना पुरुषेण रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनपर्याय एव तात्पर्येण ज्ञातव्यः, बहिर्द्रव्यपर्यायाश्च गौणवृत्त्येति भावार्थः॥३८॥

टीका :—जो (पर्यायें) अभी तक उत्पन्न भी नहीं हुई और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, वे (पर्यायें) वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी, ज्ञानके प्रति नियत होनेसे (ज्ञानमें निश्चित—स्थिर—लगी हुई होनेसे, ज्ञानमें सीधी ज्ञात होनेसे) [१]ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई, पाषाण स्तम्भमें उत्कीर्ण, भूत और भावी देवों (तीर्थंकरदेवों) की भाँति अपने स्वरूपको अकम्पतया (ज्ञानको) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं॥३८॥

अब, इन्हीं अविद्यमान पर्यायोंकी ज्ञानप्रत्यक्षताको दृढ़ करते हैं :—

---

१. प्रत्यक्ष = अक्षके प्रति—अक्षके सन्मुख—अक्षके निकटमें—अक्षके सम्बन्धमें हो ऐसा। [अक्ष = ज्ञान; आत्मा।]

ज्ञाने अजात-विनष्ट पर्यायो तणी प्रत्यक्षता
नव होय जो, तो ज्ञानने अे 'दिव्य' कौण कहे भला? ३९.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यदि प्रत्यक्षोऽजातः पर्यायः प्रलयितश्च ज्ञानस्य।
न भवति वा तत् ज्ञानं दिव्यमिति हि के प्ररूपयन्ति॥३९॥

यदि खल्वसंभावितभावं संभावितभावं च पर्यायजातमप्रतिघविजृंभिताखंडित-प्रतापप्रभुशक्तितया प्रसभेनैव नितान्तमाक्रम्याक्रमसमर्पितस्वरूपसर्वस्वमात्मानं प्रति नियतं ज्ञानं न करोति, तदा तस्य कुतस्तनी दिव्यता स्यात्। अतः काष्ठाप्राप्तस्य परिच्छेदस्य सर्व-मेतदुपपन्नम्॥३९॥

अथासद्भूतपर्यायाणां वर्तमानज्ञानप्रत्यक्षत्वं दृढयति—**जइ पच्चक्खमजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स ण हवदि वा** यदि प्रत्यक्षो न भवति। स कः। अजातपर्यायो भाविपर्यायः। न केवलं भाविपर्यायः प्रलयितश्च वा। कस्य। ज्ञानस्य। **तं णाणं दिव्वं ति हि के परूवेंति** तद्ज्ञानं दिव्यमिति के प्ररूपयन्ति, न केऽपीति। तथा हि—यदि वर्तमानपर्यायवदतीतानागतपर्यायं ज्ञानं कर्तृ क्रमकरणव्यवधान-रहितत्वेन साक्षात्प्रत्यक्षं न करोति, तर्हि तत् ज्ञानं दिव्यं न भवति। वस्तुतस्तु ज्ञानमेव न भवतीति। यथायं केवली परकीयद्रव्यपर्यायान् यद्यपि परिच्छित्तिमात्रेण जानाति, तथापि निश्चयनयेन सहजानन्दैकस्वभावे स्वशुद्धात्मनि तन्मयत्वेन परिच्छित्तिं करोति, तथा निर्मलविवेकिजनोऽपि यद्यपि व्यवहारेण परकीयद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानं करोति, तथापि निश्चयेन निर्विकारस्वसंवेदनपर्याये विषयत्वात्पर्यायेण परिज्ञानं करोतीति सूत्रतात्पर्यम्॥३९॥ अथातीतानागतसूक्ष्मादिपदार्थानिन्द्रियज्ञानं

अन्वयार्थ :—[यदि वा] यदि [अजातः पर्यायः] अनुत्पन्न पर्याय [च] तथा [प्रलयितः] नष्ट पर्याय [ज्ञानस्य] ज्ञानके (केवलज्ञानके) [प्रत्यक्षः न भवति] प्रत्यक्ष न हो तो [तत् ज्ञानं] उस ज्ञानको [दिव्यं इति हि] 'दिव्य' [के प्ररूपयंति] कौन प्ररूपेगा? ॥३९॥

टीका :—जिसने अस्तित्वका अनुभव नहीं किया और जिसने अस्तित्वका अनुभव कर लिया है ऐसी (अनुत्पन्न और नष्ट) पर्यायमात्रको यदि ज्ञान अपनी निर्विघ्न विकसित, अखंडित प्रतापयुक्त प्रभुशक्तिके (-महा सामर्थ्य) द्वारा बलात् अत्यन्त आक्रमित करे (-प्राप्त करे), तथा वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको अक्रमसे अर्पित करें (-एक ही साथ ज्ञानमें ज्ञात हों) इसप्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे (-अपनेमें निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने), तो उस ज्ञानकी दिव्यता क्या है? इससे (यह कहा गया है कि) पराकाष्ठाको प्राप्त ज्ञानके लिये यह सब योग्य है।

भावार्थ :—अनन्त महिमावान केवलज्ञानकी यह दिव्यता है कि वह अनन्त द्रव्योंकी समस्त पर्यायोंको (अतीत और अनागत पर्यायोंको भी) सम्पूर्णतया एक ही समय प्रत्यक्ष जानता है॥३९॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथेन्द्रियज्ञानस्यैव प्रलीनमनुत्पन्नं च ज्ञातुमशक्यमिति वितर्कयति—

अत्थं अक्खणिवदिदं ईहापुव्वेहिं जे विजाणंति।
तेसिं परोक्खभूदं णादुमसक्कं ति पण्णत्तं॥४०॥

अर्थमक्षनिपतितमीहापूर्वैर्ये विजानन्ति।
तेषां परोक्षभूतं ज्ञातुमशक्यमिति प्रज्ञप्तम्॥४०॥

ये खलु विषयविषयिसन्निपातलक्षणमिन्द्रियार्थसन्निकर्षमधिगम्य क्रमोपजायमानेनेहादिकप्रक्रमेण परिच्छिन्दन्ति, ते किलातिवाहितस्वास्तित्वकालमनुपस्थितस्वास्तित्वकालं वा

न जानातीति विचारयति---**अत्थं** घटपटादिज्ञेयपदार्थं। कथंभूतं। **अक्खणिवदिदं** अक्षनिपतितं इन्द्रियप्राप्तं इन्द्रियसंबद्धं। इत्थंभूतमर्थं **ईहापुव्वेहिं जे विजाणंति** अवग्रहेहावायादिक्रमेण ये पुरुषा विजानन्ति हि स्फुटं। **तेसिं परोक्खभूदं** तेषां सम्बन्धि ज्ञानं परोक्षभूतं सत् **णादुमसक्कं ति पण्णत्तं** सूक्ष्मादिपदार्थान् ज्ञातुमशक्यमिति प्रज्ञप्तं कथितम्। कैः। ज्ञानिभिरिति। तद्यथा--चक्षुरादीन्द्रियं घटपटादिपदार्थपार्श्वे गत्वा पश्चादर्थं जानातीति सन्निकर्षलक्षणं नैयायिकमते। अथवा संक्षेपेणेन्द्रियार्थयोः संबन्धः सन्निकर्षः स एव प्रमाणम्। स च सन्निकर्ष आकाशाद्यमूर्तपदार्थेषु देशान्तरितमेर्वादि-

अब, इन्द्रियज्ञानके लिये नष्ट और अनुत्पन्नका जानना अशक्य है (अर्थात् इन्द्रियज्ञान ही नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थोंको-पर्यायोंको नहीं जान सकता) ऐसा न्यायसे निश्चित करते हैं।

अन्वयार्थ :—[**ये**] जो [**अक्षनिपतितं**] अक्षपतित अर्थात् इन्द्रियगोचर [**अर्थं**] पदार्थको [**ईहापूर्वैः**] ईहादिक द्वारा [**विजानन्ति**] जानते हैं, [**तेषां**] उनके लिये [**परोक्षभूतं**] [१]परोक्षभूत पदार्थको [**ज्ञातुं**] जानना [**अशक्यं**] अशक्य है [**इति प्रज्ञप्तं**] ऐसा सर्वज्ञदेवने कहा है॥४०॥

टीका :—विषय और विषयीका [२]सन्निपात जिसका लक्षण (-स्वरूप) है, ऐसे इन्द्रिय और पदार्थके [३]सन्निकर्षको प्राप्त करके, जो अनुक्रमसे उत्पन्न ईहादिकके क्रमसे जानते हैं वे उसे नहीं जान सकते जिसका स्व-अस्तित्वकाल बीत गया है तथा जिसका स्व-अस्तित्वकाल उपस्थित नहीं हुआ है क्योंकि (-अतीत-अनागत पदार्थ और इन्द्रियके) यथोक्त

१. परोक्ष = अक्षसे पर अर्थात् अक्षसे दूर होवे ऐसा; इन्द्रिय अगोचर।

२. सन्निपात = मिलाप; संबंध होना वह। ३. सन्निकर्ष = संबंध, समीपता।

ईहादिपूर्वक जाणता जे अक्षपतित पदार्थने,
तेने परोक्ष पदार्थ जाणवुं शक्य ना—जिनजी कहे. ४०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यथोदितलक्षणस्य ग्राह्यग्राहकसंबन्धस्यासंभवतः परिच्छेत्तुं न शक्नुवन्ति॥४०॥

अथातीन्द्रियज्ञानस्य तु यद्यदुच्यते तत्तत्संभवतीति संभावयति—

अपदेसं सपदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं।
पलयं गदं च जाणदि तं णाणमदिंदियं भणियं॥४१॥

अप्रदेशं सप्रदेशं मूर्तममूर्तं च पर्ययमजातम्।
प्रलयं गतं च जानाति तज्ज्ञानमतीन्द्रियं भणितम्॥४१॥

इन्द्रियज्ञानं नाम उपदेशान्तःकरणेन्द्रियादीनि विरूपकारणत्वेनोपलब्धिसंस्कारादीन्

पदार्थेषु कालान्तरितरामरावणादिषु स्वभावान्तरितभूतादिषु तथैवातिसूक्ष्मेषु परचेतोवृत्ति-पुद्गलपरमाण्वादिषु च न प्रवर्तते। कस्मादिति चेत्। इन्द्रियाणां स्थूलविषयत्वात्, तथैव मूर्तविषयत्वाच्च। ततः कारणादिन्द्रियज्ञानेन सर्वज्ञो न भवति। तत एव चातीन्द्रियज्ञानोत्पत्तिकारणं रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनज्ञानं विहाय पञ्चेन्द्रियसुखसाधनभूतेन्द्रियज्ञाने नानामनोरथविकल्प-जालरूपे मानसज्ञाने च ये रतिं कुर्वन्ति ते सर्वज्ञपदं न लभन्ते इति सूत्राभिप्रायः॥४०॥

लक्षण (-यथोक्तस्वरूप, ऊपर कहा गया जैसा) [१]ग्राह्यग्राहकसम्बन्धका असंभव है।

भावार्थ :—इन्द्रियोंके साथ पदार्थका (अर्थात् विषयीके साथ विषयका) सन्निकर्ष सम्बन्ध हो तभी (अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणारूप क्रमसे) इन्द्रिय ज्ञान पदार्थको जान सकता है। नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थोंके साथ इन्द्रियोंका सन्निकर्ष-सम्बन्ध न होनेसे इन्द्रिय ज्ञान उन्हें नहीं जान सकता। इसलिये इन्द्रियज्ञान हीन है, हेय है॥४०॥

अब, ऐसा स्पष्ट करते हैं कि अतीन्द्रिय ज्ञानके लिये जो जो कहा जाता है वह (सब) संभव है :—

अन्वयार्थ :—[**अप्रदेशं**] जो ज्ञान अप्रदेशको, [**सप्रदेशं**] सप्रदेशको, [**मूर्तं**] मूर्तको, [**अमूर्तः च**] और अमूर्तको तथा [**अजातं**] अनुत्पन्न [**च**] और [**प्रलयंगतं**] नष्ट [**पर्यायं**] पर्यायको [**जानाति**] जानता है, [**तत् ज्ञानं**] वह ज्ञान [**अतीन्द्रियं**] अतीन्द्रिय [**भणितम्**] कहा गया है॥४१॥

टीका :—इन्द्रियज्ञान उपदेश, अन्तःकरण और इन्द्रिय इत्यादिको

---

१. इन्द्रियगोचर पदार्थ ग्राह्य है और इन्द्रियाँ ग्राहक हैं।

जे जाणतुं अप्रदेशने, सप्रदेश, मूर्त, अमूर्तने,
पर्याय नष्ट-अजातने, भाख्युं अतींद्रिय ज्ञान ते. ४१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अन्तरंगस्वरूपकारणत्वेनोपादाय प्रवर्तते; प्रवर्तमानं च सप्रदेशमेवाध्यवस्यति स्थूलोपलम्भकत्वान्नाप्रदेशम्; मूर्तमेवावगच्छति तथाविधविषयनिबन्धनसद्भावान्नामूर्तम्; वर्तमानमेव परिच्छिनत्ति विषयविषयिसन्निपातसद्भावान्न तु वृत्तं वर्त्स्यच्च। यत्तु पुनरनावरणमतीन्द्रियं ज्ञानं तस्य समिद्धधूमध्वजस्येवानेकप्रकारतालिंगितं दाह्यं दाह्यतानतिक्रमाद्दाह्यमेव यथा तथात्मनः अप्रदेशं सप्रदेशं मूर्तममूर्तमजातमतिवाहितं च पर्यायजातं ज्ञेयतानतिक्रमात्परिच्छेद्यमेव भवतीति॥४१॥

अथातीन्द्रियज्ञानमतीतानागतसूक्ष्मादिपदार्थान् जानातीत्युपदिशति---**अपदेसं** अप्रदेशं कालाणुपरमाण्वादि **सपदेसं** शुद्धजीवास्तिकायादिपञ्चास्तिकायस्वरूपं **मुत्तं** मूर्तं पुद्गलद्रव्यं **अमुत्तं** च अमूर्तं च शुद्धजीवद्रव्यादि **पज्जयमजादं पलयं गदं** च पर्यायमजातं भाविनं प्रलयं गतं चातीतमेतत्सर्वं पूर्वोक्तं ज्ञेयं **वस्तु जाणदि** जानाति **यद्ज्ञानं कर्तृ तं णाणमदिंदियं भणियं** तद्ज्ञानमतीन्द्रियं भणितं, तेनैव सर्वज्ञो भवति। तत एव च पूर्वगाथोदितमिन्द्रियज्ञानं मानसज्ञानं च त्यक्त्वा ये निर्विकल्पसमाधिरूपस्वसंवेदनज्ञाने समस्तविभावपरिणामत्यागेन रतिं कुर्वन्ति त एव परमाह्लादैकलक्षणसुखस्वभावं सर्वज्ञपदं लभन्ते इत्यभिप्रायः॥४१॥ एवमतीतानागतपर्याया वर्तमानज्ञाने प्रत्यक्षा न भवन्तीति

---

[१]विरूप- कारणतासे (ग्रहण करके) और [२]उपलब्धि (-क्षयोपशम), [३]संस्कार इत्यादिको अंतरङ्ग स्वरूप-कारणतासे ग्रहण करके प्रवृत्त होता है; और वह प्रवृत्त होता हुआ सप्रदेशको ही जानता है क्योंकि वह स्थूलको जाननेवाला है, अप्रदेशको नहीं जानता, (क्योंकि वह सूक्ष्मको जाननेवाला नहीं है); वह मूर्तको ही जानता है क्योंकि वैसे (मूर्तिक) विषयके साथ उसका सम्बन्ध है, वह अमूर्तको नहीं जानता (क्योंकि अमूर्तिक विषयके साथ इन्द्रियज्ञानका सम्बन्ध नहीं है); वह वर्तमानको ही जानता है, क्योंकि विषय-विषयीके सन्निपात सद्भाव है, वह प्रवर्तित हो चुकनेवालेको और भविष्यमें प्रवृत्त होनेवालेको नहीं जानता (क्योंकि इन्द्रिय और पदार्थके सन्निकर्षका अभाव है)।

परन्तु जो अनावरण अतीन्द्रिय ज्ञान है उसे अपने अप्रदेश, सप्रदेश, मूर्त और अमूर्त (पदार्थ मात्र) तथा अनुत्पन्न एवं व्यतीत पर्यायमात्र, ज्ञेयताका अतिक्रमण न करनेसे ज्ञेय ही है—जैसे प्रज्वलित अग्निको अनेक प्रकारका ईंधन, दाह्यताका अतिक्रमण न करनेसे दाह्य ही है। (जैसे प्रदीप्त अग्नि दाह्यमात्रको—ईंधनमात्रको—जला देती है, उसीप्रकार निरावरण ज्ञान ज्ञेयमात्रको—द्रव्यपर्यायमात्रको—जानता है)॥४१॥

---

१. विरूप = ज्ञानके स्वरूपसे भिन्न स्वरूपवाले। (उपदेश, मन और इन्द्रियाँ पौद्गलिक होनेसे उनका रूप ज्ञानके स्वरूपसे भिन्न है। वे इन्द्रियज्ञानमें बहिरंग कारण हैं।)

२. उपलब्धि = ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके निमित्तसे पदार्थोंको जाननेकी शक्ति. (यह 'लब्ध' शक्ति जब 'उपयुक्त' होती हैं तभी पदार्थ जाननेमें आते है।)

३. संस्कार = भूतकालमें जाने हुये पदार्थोंकी धारणा।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया ज्ञानान्न भवतीति श्रद्दधाति—

परिणमदि णेयमट्ठं णादा जदि णेव खाइगं तस्स।
णाणं ति तं जिणिंदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता॥४२॥

परिणमति ज्ञेयमर्थं ज्ञाता यदि नैव क्षायिकं तस्य।
ज्ञानमिति तं जिनेन्द्राः क्षपयन्तं कर्मैवोक्तवन्तः॥४२॥

परिच्छेत्ता हि यत्परिच्छेद्यमर्थं परिणमति तन्न तस्य सकलकर्मकक्षक्षयप्रवृत्तस्वाभाविक-परिच्छेदनिदानमथवा ज्ञानमेव नास्ति तस्य; यतः प्रत्यर्थपरिणतिद्वारेण मृगतृष्णाम्भोभार-संभावनाकरणमानसः सुदुःसहं कर्मभारमेवोपभुंजानः स जिनेन्द्रैरुद्गीतः॥४२॥

बौद्धमतनिराकरणमुख्यत्वेन गाथात्रयं, तदनन्तरमिन्द्रियज्ञानेन सर्वज्ञो न भवत्यतीन्द्रियज्ञानेन भवतीति नैयायिकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं च गाथाद्वयमिति समुदायेन पञ्चमस्थले गाथापञ्चकं गतम्॥ अथ रागद्वेषमोहाः बन्धकारणं, न च ज्ञानमित्यादिकथनरूपेण गाथापञ्चकपर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तद्यथा–यस्येष्टानिष्टविकल्परूपेण कर्मबन्धकारणभूतेन ज्ञेयविषये परिणमनमस्ति तस्य क्षायिकज्ञानं नास्तीत्यावेदयति---**परिणमदि णेयमट्ठं णादा जदि** नीलमिदं पीतमिदमित्यादिविकल्परूपेण यदि ज्ञेयार्थं परिणमति ज्ञातात्मा **णेव खाइगं तस्स णाणं ति** तस्यात्मनः क्षायिकज्ञानं नैवास्ति। अथवा ज्ञानमेव नास्ति। कस्मान्नास्ति। **तं जिणिंदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता** तं पुरुषं कर्मतापन्नं जिनेन्द्राः कर्तारः उक्तवंतः।

अब, ऐसी श्रद्धा व्यक्त करते हैं कि ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन जिसका लक्षण है ऐसी (ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप) क्रिया ज्ञानमेंसे उत्पन्न नहीं होती :—

अन्वयार्थ :—[ज्ञाता] ज्ञाता [यदि] यदि [ज्ञेयं अर्थं] ज्ञेय पदार्थरूप [परिणमति] परिणमित होता हो तो [तस्य] उसके [क्षायिकं ज्ञानं] क्षायिक ज्ञान [न एव इति] होता ही नहीं। [जिनेन्द्राः] जिनेन्द्रदेवोंने [तं] उसे [कर्म एव] कर्मको ही [क्षपयन्तं] अनुभव करनेवाला [उक्तवन्तः] कहा है॥४२॥

टीका :–यदि ज्ञाता ज्ञेय पदार्थरूप परिणमित होता हो, तो उसे सकल कर्मवनके क्षयसे प्रवर्तमान स्वाभाविक जानपनेका कारण (क्षायिक ज्ञान) नहीं है; अथवा उसे ज्ञान ही नहीं है; क्योंकि प्रत्येक पदार्थरूपसे परिणतिके द्वारा मृगतृष्णामें जलसमूहकी कल्पना करनेकी भावनावाला वह (आत्मा) अत्यन्त दुःसह कर्मभारको ही भोगता है ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है।

जो ज्ञेय अर्थे परिणमे ज्ञाता, न क्षायिक ज्ञान छे;
ते कर्मने ज अनुभवे छे अेम जिनदेवो कहे. ४२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ कुतस्तर्हि ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया तत्फलं च भवतीति विवेचयति—

उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया।
तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठो वा बंधमणुभवदि॥४३॥

उदयगताः कर्मांशा जिनवरवृषभैः नियत्या भणिताः।
तेषु विमूढो रक्तो दुष्टो वा बन्धमनुभवति॥४३॥

संसारिणो हि नियमेन तावदुदयगताः पुद्गलकर्मांशाः सन्त्येव। अथ स सत्सु तेषु

किं कुर्वन्तम्। क्षपयन्तमनुभवन्तम्। किमेव। कर्मैव। निर्विकारसहजानन्दैकसुखस्वभावानुभवनशून्यः सन्नुदयागतं स्वकीयकर्मैव स अनुभवन्नास्ते न च ज्ञानमित्यर्थः। अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—यदि ज्ञाता प्रत्यर्थं परिणम्य पश्चादर्थं जानाति तदा अर्थानामानन्त्यात्सर्वपदार्थपरिज्ञानं नास्ति। अथवा तृतीयव्याख्यानम्–बहिरङ्गज्ञेयपदार्थान् यदा छद्मस्थावस्थायां चिन्तयति तदा रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनज्ञानं नास्ति, तदभावे क्षायिकज्ञानमेव नोत्पद्यते इत्यभिप्रायः॥४२॥ अथानन्तपदार्थ-परिच्छित्तिपरिणमनेऽपि ज्ञानं बन्धकारणं न भवति, न च रागादिरहितकर्मोदयोऽपीति निश्चिनोति—
उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया उदयगता उदयं प्राप्ताः कर्मांशा

भावार्थ :—ज्ञेय पदार्थरूपसे परिणमन करना अर्थात् 'यह हरा है, यह पीला है' इत्यादि विकल्परूपसे ज्ञेय पदार्थोंमें परिणमन करना वह कर्मका भोगना है, ज्ञानका नहीं। निर्विकार सहज आनन्दमें लीन रहकर सहजरूपसे जानते रहना वही ज्ञानका स्वरूप है; ज्ञेय पदार्थोंमें रुकना—उनके सन्मुख वृत्ति होना, वह ज्ञानका स्वरूप नहीं है॥४२॥

(यदि ऐसा है) तो फिर ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन जिसका लक्षण है ऐसी (ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप) क्रिया और उसका फल कहाँसे (किस कारणसे) उत्पन्न होता है, ऐसा अब विवेचन करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**उदयगताः कर्मांशाः**] (संसारी जीवके) उदयप्राप्त कर्मांश (ज्ञानावरणीय आदि पुद्गलकर्मके भेद) [**नियत्या**] नियमसे [**जिनवरवृषभैः**] जिनवर वृषभोंने [**भणिताः**] कहे हैं। [**तेषु**] जीव उन कर्मांशोंके होने पर [**विमूढः रक्तः दुष्टः वा**] मोही, रागी अथवा द्वेषी होता हुआ [**बन्धं अनुभवति**] बन्धका अनुभव करता है॥४३॥

टीका :—प्रथम तो, संसारीके नियमसे उदयगत पुद्गल कर्मांश होते ही हैं। अब

भाख्यां जिने कर्मो उदयगत नियमथी संसारीने,
ते कर्म होतां मोही-रागी-द्वेषी बंध अनुभवे. ४३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

संचेतयमानो मोहरागद्वेषपरिणतत्वात् ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणया क्रियया युज्यते। तत एव च क्रियाफलभूतं बन्धमनुभवति। अतो मोहोदयात् क्रियाक्रियाफले, न तु ज्ञानात् ॥४३॥

अथ केवलिनां क्रियापि क्रियाफलं न साधयतीत्यनुशास्ति—

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य णियदयो तेसिं।
अरहंताणं काले मायाचारो व्व इत्थीणं॥४४॥

ज्ञानावरणादिमूलोत्तरकर्मप्रकृतिभेदाः जिनवरवृषभैर्नियत्या स्वभावेन भणिताः, किंतु स्वकीय-शुभाशुभफलं दत्वा गच्छन्ति, न च रागादिपरिणामरहिताः सन्तो बन्धं कुर्वन्ति। तर्हि कथं बन्धं करोति जीवः इति चेत्। तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठो वा बन्धमणुभवदि तेषु उदयागतेषु सत्सु कर्मांशेषु मोहरागद्वेषविलक्षणनिजशुद्धात्मतत्त्वभावनारहितः सन् यो विशेषेण मूढो रक्तो दुष्टो वा भवति सः केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिलक्षणमोक्षाद्विलक्षणं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नं बन्धमनुभवति। ततः स्थितमेतत् ज्ञानं बन्धकारणं न भवति कर्मोदयोऽपि, किंतु रागादयो बन्धकारणमिति॥४३॥ अथ केवलिनां रागाद्यभावाद्धर्मोपदेशादयोऽपि बन्धकारणं न भवन्तीति कथयति---**ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य** स्थानमूर्ध्वस्थितिर्निषद्या चासनं श्रीविहारो धर्मोपदेशश्च **णियदयो** एते व्यापारा नियतयः स्वभावा

वह संसारी, उन उदयगत कर्मांशोंके अस्तित्वमें, चेतते-जानते-अनुभव करते हुए, मोह-राग-द्वेषमें परिणत होनेसे ज्ञेय पदार्थोंमें परिणमन जिसका लक्षण है ऐसी (ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप) क्रियाके साथ युक्त होता है; और इसीलिये क्रियाके फलभूत बन्धका अनुभव करता है। इससे (ऐसा कहा है कि) मोहके उदयसे ही (मोहके उदयमें युक्त होनेके कारणसे ही) क्रिया और क्रियाफल होता है, ज्ञानसे नहीं।

भावार्थ :—समस्त संसारी जीवोंके कर्मका उदय है, परन्तु वह उदय वन्धका कारण नहीं है। यदि कर्मनिमित्तक इष्ट-अनिष्ट भावोंमें जीव रागी-द्वेषी-मोही होकर परिणमन करे तो बन्ध होता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि ज्ञान, उदय प्राप्त पौद्गलिक कर्म या कर्मोदयसे उत्पन्न देहादिकी क्रियाएँ बन्धका कारण नहीं हैं, बन्धके कारण मात्र राग-द्वेष-मोहभाव हैं। इसलिये वे भाव सर्वप्रकारसे त्यागने योग्य है॥४३॥

अब, ऐसा उपदेश देते हैं कि केवलीभगवानके क्रिया भी क्रियाफल (-बन्ध) उत्पन्न नहीं करती :—

धर्मोपदेश, विहार, आसन, स्थान श्री अर्हंतने
वर्ते सहज ते कालमां, मायाचरण ज्यम नारीने. ४४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

स्थाननिषद्याविहारा धर्मोपदेशश्च नियतयस्तेषाम्।
अर्हतां काले मायाचार इव स्त्रीणाम्॥४४॥

यथा हि महिलानां प्रयत्नमन्तरेणापि तथाविधयोग्यतासद्भावात् स्वभावभूत एव मायोपगुण्ठनागुण्ठितो व्यवहारः प्रवर्तते, तथा हि केवलिनां प्रयत्नमन्तरेणापि तथाविध-योग्यतासद्भावात् स्थानमासनं विहरणं धर्मदेशना च स्वभावभूता एव प्रवर्तन्ते। अपि चाविरुद्धमेतदम्भोधरदृष्टान्तात्। यथा खल्वम्भोधराकारपरिणतानां पुद्गलानां गमनमवस्थानं गर्जनमम्बुवर्षं च पुरुषप्रयत्नमन्तरेणापि दृश्यन्ते, तथा केवलिनां स्थानादयोऽबुद्धिपूर्वका एव दृश्यन्ते। अतोऽमी स्थानादयो मोहोदयपूर्वकत्वाभावात् क्रियाविशेषा अपि केवलिनां क्रियाफलभूतबन्धसाधनानि न भवन्ति॥४४॥

अनीहिताः। केषाम्। **तेसिं अरहंताणं** तेषामर्हतां निर्दोषिपरमात्मनाम्। क। **काले** अर्हदवस्थायाम्। क इव। **मायाचारो व्व इत्थीणं मायाचार इव स्त्रीणामिति।** तथा हि—यथा स्त्रीणां स्त्रीवेदोदय-सद्भावात्प्रयत्नाभावेऽपि मायाचारः प्रवर्तते, तथा भगवतां शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतमोहोदयकार्येहापूर्व-

---

अन्वयार्थ :—[**तेषाम् अर्हतां**] उन अरहन्त भगवन्तोंके [**काले**] उस समय [**स्थाननिषद्याविहाराः**] खड़े रहना, बैठना, विहार [**धर्मोपदेशः च**] और धर्मोपदेश-[**स्त्रीणां मायाचारः इव**] स्त्रियोंके मायाचारकी भाँति, [**नियतयः**] स्वाभाविक ही—प्रयत्न बिना ही—होता है॥४४॥

टीका :—जैसे स्त्रियोंके, प्रयत्नके बिना भी, उस प्रकार योग्यताका सद्भाव होनेसे स्वभावभूत ही मायाके ढक्कनसे ढँका हुआ व्यवहार प्रवर्तता है, उसीप्रकार केवलीभगवानके, प्रयत्नके बिना ही (–प्रयत्न न होनेपर भी) उस प्रकारकी योग्यताका सद्भाव होनेसे खड़े रहना, बैठना, विहार और धर्मदेशना स्वभावभूत ही प्रवर्तते हैं और यह (प्रयत्नके बिना ही विहारादिका होना), बादलके दृष्टान्तसे अविरुद्ध है। जैसे बादलके आकाररूप परिणमित पुद्गलोंका गमन, स्थिरता, गर्जन और जलवृष्टि पुरुष-प्रयत्नके बिना भी देखी जाती है, उसीप्रकार केवलीभगवानके खड़े रहना इत्यादि अबुद्धिपूर्वक ही (इच्छाके बिना ही) देखा जाता है। इसलिये यह स्थानादिक (–खड़े रहने-बैठने इत्यादिका व्यापार), मोहोदयपूर्वक न होनेसे, क्रियाविशेष (–क्रियाके प्रकार) होने पर भी केवली भगवानके क्रियाफलभूत बन्धके साधन नहीं होते।

भावार्थ :—केवली भगवानके स्थान, आसन और विहार, यह काययोगसम्बन्धी क्रियाएँ तथा दिव्यध्वनिसे निश्चय-व्यवहारस्वरूप धर्मका उपदेश–वचनयोग सम्बन्धी क्रिया-

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथैवं सति तीर्थकृतां पुण्यविपाकोऽकिंचित्कर एवेत्यवधारयति—

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइग त्ति मदा॥४५॥

पुण्यफला अर्हन्तस्तेषां क्रिया पुनर्हि औदयिकी।
मोहादिभिः विरहिता तस्मात् सा क्षायिकीति मता॥४५॥

अर्हन्तः खलु सकलसम्यक्परिपक्वपुण्यकल्पपादपफला एव भवन्ति। क्रिया तु तेषां या काचन सा सर्वापि तदुदयानुभावसंभावितात्मसंभूतितया किलौदयिक्येव। अथैवंभूतापि सा

प्रयत्नाभावेऽपि श्रीविहारादयः प्रवर्तन्ते। मेघानां स्थानगमनगर्जनजलवर्षणादिवद्वा। ततः स्थितमेतत् मोहाद्यभावात् क्रियाविशेषा अपि बन्धकारणं न भवन्तीति॥४४॥ अथ पूर्वं यदुक्तं रागादि-रहितकर्मोदयो बन्धकारणं न भवति विहारादिक्रिया च, तमेवार्थं प्रकारान्तरेण दृढयति—**पुण्णफला अरहंता** पञ्चमहाकल्याणपूजाजनकं त्रैलोक्यविजयकरं यत्तीर्थकरनाम पुण्यकर्म तत्फलभूता अर्हन्तो भवन्ति। **तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया** तेषां या दिव्यध्वनिरूपवचनव्यापारादिक्रिया सा निःक्रियशुद्धात्म-

---

अघातिकर्मके निमित्तसे सहज ही होती है। उसमें केवली भगवानकी किंचित् मात्र इच्छा नहीं होती, क्योंकि जहाँ मोहनीय-कर्मका सर्वथा क्षय हो गया है वहाँ उसकी कार्यभूत इच्छा कहाँसे होगी? इसप्रकार इच्छाके बिना ही—मोह-राग-द्वेषके बिना ही—होनेसे केवली-भगवानके लिये वे क्रियाएँ बन्धका कारण नहीं होतीं॥४४॥

इसप्रकार होनेसे तीर्थंकरोंके पुण्यका विपाक अकिंचित्कर ही है (-कुछ करता नहीं है, स्वभावका किंचित् घात नहीं करता) ऐसा अब निश्चित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अर्हन्तः**] अरहन्तभगवान [**पुण्यफलाः**] पुण्यफलवाले हैं [**पुनः हि**] और [**तेषां क्रिया**] उनकी क्रिया [**औदयिकी**] औदयिकी है; [**मोहादिभिः विरहिता**] मोहादिसे रहित है [**तस्मात्**] इसलिये [**सा**] वह [**क्षायिकी**] क्षायिकी [**इति मता**] मानी गई है॥४५॥

टीका :—अरहन्तभगवान जिनके वास्तवमें पुण्यरूपी कल्पवृक्षके समस्त फल भलीभाँति परिपक्व हुए हैं ऐसे ही हैं, और उनकी जो भी क्रिया है वह सब उसके

छे पुण्यफल अर्हंत, ने अर्हंतकिरिया उदयिकी;
मोहादिथी विरहित तेथी ते क्रिया क्षायिक गणी. ४५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

समस्तमहामोहमूर्धाभिषिक्तस्कन्धावारस्यात्यन्तक्षये संभूतत्वान्मोहरागद्वेषरूपाणामुपरंजकानाम-भावाच्चैतन्यविकारकारणतामनासादयन्ती नित्यमौदयिकी कार्यभूतस्य बन्धस्याकारणभूततया कार्यभूतस्य मोक्षस्य कारणभूततया च क्षायिक्येव कथं हि नाम नानुमन्येत। अथानुमन्येत चेत्तर्हि कर्मविपाकोऽपि न तेषां स्वभावविघाताय।।४५।।

तत्त्वविपरीतकर्मोदयजनितत्वात्सर्वाप्यौदयिकी भवति हि स्फुटम्। मोहादीहिं विरहिदा निर्मोह-शुद्धात्मतत्त्वप्रच्छादकममकाराहङ्कारोत्पादनसमर्थमोहादिविरहितत्वाद्यतः तम्हा सा खायग त्ति मदा तस्मात् सा यद्यप्यौदयिकी तथापि निर्विकारशुद्धात्मतत्त्वस्य विक्रियामकुर्वती सती क्षायिकीति मता। अत्राह शिष्यः---'औदयिका भावाः बन्धकारणम्' इत्यागमवचनं तर्हि वृथा भवति। परिहारमाह--औदयिका भावा बन्धकारणं भवन्ति, परं किंतु मोहोदयसहिताः। द्रव्यमोहोदयेऽपि सति यदि शुद्धात्मभावनाबलेन भावमोहेन न परिणमति तदा बंधो न भवति। यदि पुनः कर्मोदयमात्रेण बन्धो भवति तर्हि संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात् सर्वदैव बन्ध एव, न मोक्ष इत्यभिप्रायः।।४५।। अथ यथार्हतां शुभाशुभपरिणामविकारो नास्ति तथैकान्तेन संसारिणामपि नास्तीति सांख्यमतानुसारिशिष्येण पूर्वपक्षे

(–पुण्यके) उदयके प्रभावसे उत्पन्न होनेके कारण औदयिकी ही है। किन्तु ऐसी (पुण्यके उदयसे होनेवाली) होने पर भी वह सदा औदयिकी क्रिया महामोहराजाकी समस्त सेनाके सर्वथा क्षयसे उत्पन्न होती है इसलिये मोहरागद्वेषरूपी [१]उपरंजकोंका अभाव होनेसे चैतन्यके विकारका कारण नहीं होती इसलिये कार्यभूत बन्धकी अकारणभूततासे और कार्यभूत मोक्षकी कारणभूततासे क्षायिकी ही क्यों न माननी चाहिये? (अवश्य माननी चाहिये) और जब क्षायिकी ही माने तब कर्मविपाक (-कर्मोदय) भी उनके (अरहन्तोंके) स्वभावविघातका कारण नहीं होता (ऐसै निश्चित होता है)।

भावार्थ :—अरहन्तभगवानके जो दिव्यध्वनि, विहार आदि क्रियाएँ हैं वे निष्क्रिय शुद्ध आत्मतत्त्वके प्रदेशपरिस्पंदमें निमित्तभूत पूर्वबद्ध कर्मोदयसे उत्पन्न होती हैं इसलिये औदयिकी हैं। वे क्रियाएँ अरहन्तभगवानके चैतन्यविकाररूप भावकर्म उत्पन्न नहीं करतीं, क्योंकि (उनके) निर्मोह शुद्ध आत्मतत्त्वके रागद्वेषमोहरूप विकारमें निमित्तभूत मोहनीयकर्मका क्षय हो चुका है। और वे क्रियाएँ उन्हें, रागद्वेषमोहका अभाव हो जानेसे नवीन बन्धमें कारणरूप नहीं होतीं, परन्तु वे पूर्वकर्मोंके क्षयमें कारणरूप हैं क्योंकि जिन कर्मोंके उदयसे वे क्रियाएँ होती हैं वे कर्म अपना रस देकर खिर जाते हैं। इसप्रकार मोहनीयकर्मके क्षयसे उत्पन्न होनेसे और कर्मोंके क्षयमें कारणभूत होनेसे अरहंतभगवानकी वह औदयिकी क्रिया क्षायिकी कहलाती है।।४५।।

---

१. उपरंजकों = उपराग-मलिनता करनेवाले (विकारीभाव)।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ केवलिनामिव सर्वेषामपि स्वभावविघाताभावं निषेधयति—

जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहावेण।
संसारो वि ण विज्जदि सव्वेसिं जीवकायाणं॥४६॥

यदि स शुभो वा अशुभो न भवति आत्मा स्वयं स्वभावेन।
संसारोऽपि न विद्यते सर्वेषां जीवकायानाम्॥४६॥

यदि खल्वेकान्तेन शुभाशुभभावस्वभावेन स्वयमात्मा न परिणमते तदा सर्वदैव सर्वथा निर्विघातेन शुद्धस्वभावेनैवावतिष्ठते। तथा च सर्व एव भूतग्रामाः समस्तबन्धसाधन-शून्यत्वादाजवंजवाभावस्वभावतो नित्यमुक्ततां प्रतिपद्येरन्। तच्च नाभ्युपगम्यते; आत्मनः

कृते सति दूषणद्वारेण परिहारं ददाति---जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहावेण यथैव शुद्धनयेनात्मा शुभाशुभाभ्यां न परिणमति तथैवाशुद्धनयेनापि स्वयं स्वकीयोपादानकारणेन स्वभावेनाशुद्धनिश्चयरूपेणापि यदि न परिणमति तदा। किं दूषणं भवति। संसारो वि ण विज्जदि निस्संसारशुद्धात्मस्वरूपात्प्रतिपक्षभूतो व्यवहारनयेनापि संसारो न विद्यते। केषाम्। सव्वेसिं जीवकायाणं सर्वेषां जीवसंघातानामिति। तथा हि--आत्मा तावत्परिणामी, स च कर्मोपाधिनिमित्ते सति स्फटिकमणिरिवोपाधिं गृह्णाति, ततः कारणात्संसाराभावो न भवति। अथ मतम्---संसाराभावः

अब, केवलीभगवानकी भाँति समस्त जीवोंके स्वभाव विघातका अभाव होनेका निषेध करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यदि] यदि (ऐसा माना जाये कि) [सः आत्मा] आत्मा [स्वयं] स्वयं [स्वभावेन] स्वभावसे (-अपने भावसे) [शुभः वा अशुभः] शुभ या अशुभ [न भवति] नहीं होता (शुभाशुभ भावमें परिणमित ही नहीं होता) [सर्वेषां जीवकायानां] तो समस्त जीवनिकायोंके [संसारः अपि] संसार भी [न विद्यते] विद्यमान नहीं है ऐसा सिद्ध होगा॥४६॥

टीका :—यदि एकान्तसे ऐसा माना जाये कि शुभाशुभभावरूप स्वभावमें (-अपने भावमें) आत्मा स्वयं परिणमित नहीं होता, तो यह सिद्ध हुआ कि (वह) सदा ही सर्वथा निर्विघात शुद्धस्वभावसे ही अवस्थित है; और इसप्रकार समस्त जीवसमूह, समस्त बन्धकारणोंसे रहित सिद्ध होनेसे संसार अभावरूप स्वभावके कारण नित्यमुक्तताको प्राप्त हो

आत्मा स्वयं निज भावथी जो शुभ-अशुभ बने नहीं,
तो सर्व जीवनिकायने संसार पण वर्ते नहीं! ४६.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

परिणामधर्मत्वेन स्फटिकस्य जपातापिच्छरागस्वभावत्ववत् शुभाशुभस्वभावत्वद्योतनात् ॥४६॥

अथ पुनरपि प्रकृतमनुसृत्यातीन्द्रियज्ञानं सर्वज्ञत्वेनाभिनन्दति—

जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइयं भणियं॥४७॥

यत्तात्कालिकमितरं जानाति युगपत्समन्ततः सर्वम्।
अर्थं विचित्रविषमं तत् ज्ञानं क्षायिकं भणितम्॥४७॥

सांख्यानां दूषणं न भवति, भूषणमेव। नैवम्। संसाराभावो हि मोक्षो भण्यते, स च संसारिजीवानां न दृश्यते, प्रत्यक्षविरोधादिति भावार्थः॥४६॥ एवं रागादयो बन्धकारणं, न च ज्ञानमित्यादि-व्याख्यानमुख्यत्वेन षष्ठस्थले गाथापञ्चकं गतम्। अथ प्रथमं तावत् केवलज्ञानमेव सर्वज्ञस्वरूपं,

---

जायेंगे अर्थात् नित्यमुक्त सिद्ध होवेंगे! किन्तु ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि आत्मा परिणामधर्मवाला होनेसे, जैसे स्फटिकमणि, जपाकुसुम और तमालपुष्पके रंग-रूप स्वभावयुक्ततासे प्रकाशित होता है उसीप्रकार, उसे (आत्माके) शुभाशुभ-स्वभावयुक्तता प्रकाशित होती है। (जैसे स्फटिकमणि लाल और काले फूलके निमित्तसे लाल और काले स्वभावमें परिणमित दिखाई देता है उसीप्रकार आत्मा कर्मोपाधिके निमित्तसे शुभाशुभ स्वभावरूप परिणमित होता हुआ दिखाई देता है)।

भावार्थ :—जैसे शुद्धनयसे कोई जीव शुभाशुभ भावरूप परिणमित नहीं होता उसीप्रकार यदि अशुद्धनयसे भी परिणमित न होता हो तो व्यवहारनयसे भी समस्त जीवोंके संसारका अभाव हो जाये और सभी जीव सदा मुक्त ही सिद्ध होजावें! किन्तु यह तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। इसलिये जैसे केवलीभगवानके शुभाशुभ परिणामोंका अभाव है उसीप्रकार सभी जीवोंके सर्वथा शुभाशुभ परिणामोंका अभाव नहीं समझना चाहिये॥४६॥

अब, पुनः प्रकृतका (-चालु विषयका) अनुसरण करके अतीन्द्रिय ज्ञानको सर्वज्ञरूपसे अभिनन्दन करते हैं। (अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान सबका ज्ञाता है ऐसी उसकी प्रशंसा करते हैं)

अन्वयार्थ :—[यत्] जो [युगपद्] एक ही साथ [समन्ततः] सर्वतः (सर्व आत्मप्रदेशोंसे) [तात्कालिकं] तात्कालिक [इतरं] या अतात्कालिक, [विचित्रविषमं]

सौ वर्तमान-अवर्तमान, विचित्र, विषम पदार्थने
युगपद सरवतः जाणतुं, ते ज्ञान क्षायिक जिन कहे. ४७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

तत्कालकलितवृत्तिकमतीतोदर्ककालकलितवृत्तिकं चाप्येकपद एव समन्ततोऽपि सकलमप्यर्थजातं, पृथक्त्ववृत्तस्वलक्षणलक्ष्मीकटाक्षितानेकप्रकारव्यंजितवैचित्र्यमितरेतरविरोधधापितासमानजातीयत्वोद्दामितवैषम्यं क्षायिकं ज्ञानं किल जानीयात्; तस्य हि क्रमप्रवृत्तिहेतुभूतानां क्षयोपशमावस्थावस्थितज्ञानावरणीयकर्मपुद्गलानामत्यन्ताभावात्तात्कालिकमतात्कालिकं वाप्यर्थजातं तुल्यकालमेव प्रकाशेत; सर्वतो विशुद्धस्य प्रतिनियतदेशविशुद्धेरन्तःप्लवनात् समन्ततोऽपि प्रकाशेत; सर्वावरणक्षयाद्देशावरणक्षयोपशमस्यानवस्थानात्सर्वमपि प्रकाशेत; सर्वप्रकारज्ञानावरणीयक्षयादसर्वप्रकारज्ञानावरणीयक्षयोपशमस्य विलयनाद्विचित्रमपि प्रकाशेत; असमानजातीयज्ञानावरणक्षयात्समानजातीयज्ञानावरणीय-

---

तदनन्तरं सर्वपरिज्ञाने सति एकपरिज्ञानं, एकपरिज्ञाने सति सर्वपरिज्ञानमित्यादिकथनरूपेण गाथापञ्चकपर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तद्यथा--अत्र ज्ञानप्रपञ्चव्याख्यानं प्रकृतं तावत्तत्प्रस्तुतमनुसृत्य पुनरपि केवलज्ञानं सर्वज्ञत्वेन निरूपयति--जं यज्ज्ञानं कर्तृ जाणदि जानाति। कम्। अत्थं अर्थं

विचित्र (-अनेक प्रकारके) और विषम (मूर्त, अमूर्त आदि असमान जातिके) [सर्वं अर्थं] समस्त पदार्थोंको [जानाति] जानता है [तत् ज्ञानं] उस ज्ञानको [क्षायिकं भणितम्] क्षायिक कहा है।।४७।।

टीका :—क्षायिक ज्ञान वास्तवमें एक समयमें ही सर्वतः (सर्व आत्मप्रदेशोंसे), वतर्मानमें वर्तते तथा भूत-भविष्यत कालमें वर्तते उन समस्त पदार्थोंको जानता है जिनमें [१]पृथकरूपसे वर्तते स्वलक्षणरूप लक्ष्मीसे आलोकित अनेक प्रकारोंके कारण वैचित्र्य प्रगट हुआ है और जिनमें परस्पर विरोधसे उत्पन्न होनेवाली असमानजातीयताके कारण वैषम्य प्रगट हुआ है। (इसी बातको युक्तिपूर्वक समझाते हैं :—) क्रम-प्रवृत्तिके हेतुभूत, क्षयोपशम-अवस्थामें रहनेवाले ज्ञानावरणीय कर्मपुद्गलोंका उसके (क्षायिक ज्ञानके) अत्यन्त अभाव होनेसे वह तात्कालिक या अतात्कालिक पदार्थ-मात्रको समकालमें ही प्रकाशित करता है; (क्षायिक ज्ञान) सर्वतः विशुद्ध होनेके कारण प्रतिनियत प्रदेशोंकी विशुद्धि (सर्वतः विशुद्धि) के भीतर डूब जानेसे वह सर्वतः (सर्व आत्मप्रदेशोंसे) भी प्रकाशित करता है; सर्व आवरणोंका क्षय होनेसे, देश-आवरणका क्षयोपशम न रहनेसे वह सबको भी प्रकाशित करता है, सर्वप्रकार ज्ञानावरणके क्षयके कारण (-सर्व प्रकारके पदार्थोंको जाननेवाले ज्ञानके आवरणमें निमित्तभूत कर्मके क्षय होनेसे) असर्वप्रकारके ज्ञानावरणका क्षयोपशम (-अमुक ही प्रकारके पदार्थोंको जाननेवाले ज्ञानके आवरणमें निमित्तभूत कर्मोंका क्षयोपशम) विलयको प्राप्त होनेसे वह विचित्र को भी (-अनेक प्रकारके पदार्थों को भी) प्रकाशित करता है; असमानजातीय-ज्ञानावरणके

---

१. द्रव्योंके भिन्न-भिन्न वर्तनेवाले निज-निज लक्षण उन द्रव्योंकी लक्ष्मी-सम्पत्ति-शोभा हैं।

क्षयोपशमस्य विनाशनाद्विषममपि प्रकाशेत। अलमथवातिविस्तरेण, अनिवारितप्रसरप्रकाश-शालितया क्षायिकज्ञानमवश्यमेव सर्वदा सर्वत्र सर्वथा सर्वमेव जानीयात् ॥४७॥

अथ सर्वमजानन्नेकमपि न जानातीति निश्चिनोति—

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तिक्कालिगे तिहुवणत्थे।
णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दव्वमेगं वा ॥४८॥

यो न विजानाति युगपदर्थान् त्रैकालिकान् त्रिभुवनस्थान्।
ज्ञातुं तस्य न शक्यं सपर्ययं द्रव्यमेकं वा ॥४८॥

पदार्थमिति विशेष्यपदम्। किंविशिष्टम्। **तक्कालियमिदरं** तात्कालिकं वर्तमानमितरं चातीतानागतम्। कथं जानाति। **जुगवं** युगपदेकसमये **समंतदो** समन्ततः सर्वात्मप्रदेशैः सर्वप्रकारेण वा। कतिसंख्योपेतम्। **सव्वं** समस्तम्। पुनरपि किंविशिष्टम्। **विचित्तं** नानाभेदभिन्नम्। पुनरपि किंरूपम्। **विसमं** मूर्तामूर्तचेतनाचेतनादिजात्यन्तरविशेषैर्विसदृशं। **तं णाणं खाइयं भणियं** यदेवंगुणविशिष्टं ज्ञानं तत्क्षायिकं

क्षयके कारण (-असमानजातिके पदार्थोंको जाननेवाले ज्ञानके आवरणमें निमित्तभूत कर्मोंके क्षयके कारण) समानजातीय ज्ञानावरणका क्षयोपशम (-समान जातिके ही पदार्थोंको जाननेवाले ज्ञानके आवरणमें निमित्तभूत कर्मोंका क्षयोपशम) नष्ट हो जानेसे वह विषम को भी (-असमानजातिके पदार्थोंको भी) प्रकाशित करता है। अथवा, अतिविस्तारसे पूरा पड़े (कुछ लाभ नहीं) ? जिसका अनिवार (रोका न जा सके ऐसा अमर्यादित) फैलाव है ऐसा प्रकाशमान होनेसे क्षायिक ज्ञान अवश्यमेव सर्वदा सर्वत्र सर्वथा सर्वको जानता है।

भावार्थ :—क्रमपूर्वक जानना, नियत आत्मप्रदेशोंसे ही जानना, अमुकको ही जानना—इत्यादि मर्यादायें मति-श्रुतादि क्षायोपशमिक ज्ञानमें ही संभव हैं। क्षायिकज्ञानके अमर्यादित होनेसे एकही साथ सर्व आत्मप्रदेशोंसे तीनों कालकी पर्यायोंके साथ सर्व पदार्थोंको—उन पदार्थोंके अनेक प्रकारके और विरुद्ध जातिके होने पर भी जानता है अर्थात् केवलज्ञान एक ही समयमें सर्व आत्मप्रदेशोंसे समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको जानता है ॥४७॥

अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि जो सबको नहीं जानता वह एकको भी नहीं जानता :—

अन्वयार्थ :—[य] जो [युगपद्] एक ही साथ [त्रैकालिकान् त्रिभुवनस्थान्] त्रैकालिक त्रिभुवनस्थ (-तीनों कालके और तीनों लोकके) [अर्थान्] पदार्थोंको [न

जाणे नहि युगपद त्रिकालिक त्रिभुवनस्थ पदार्थ ने,
तेने सपर्यय एक पण नहि द्रव्य जाणवुं शक्य छे. ४८.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इह किलैकमाकाशद्रव्यमेकं धर्मद्रव्यमेकमधर्मद्रव्यमसंख्येयानि कालद्रव्याण्यनन्तानि जीवद्रव्याणि। ततोऽप्यनन्तगुणानि पुद्गलद्रव्याणि। तथैषामेव प्रत्येकमतीतानागतानुभूयमानभेदभिन्ननिरवधिवृत्तिप्रवाहपरिपातिनोऽनन्ताः पर्यायाः। एवमेतत्समस्तमपि समुदितं ज्ञेयम्। इहैवैकं किंचिज्जीवद्रव्यं ज्ञातृ। अथ यथा समस्तं दाह्यं दहन् दहनः समस्तदाह्यहेतुकसमस्तदाह्याकारपर्यायपरिणतसकलैकदहनाकारमात्मानं परिणमति, तथा समस्तं ज्ञेयं जानन् ज्ञाता समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणतसकलैकज्ञानाकारं चेतनत्वात् स्वानुभवप्रत्यक्षमात्मानं परिणमति। एवं किल द्रव्यस्वभावः। यस्तु समस्तं ज्ञेयं न जानाति स समस्तं

भणितम्। अभेदनयेन तदेव सर्वज्ञस्वरूपं तदेवोपादेयभूतानन्तसुखाद्यनन्तगुणानामाधारभूतं सर्वप्रकारोपादेयरूपेण भावनीयम् इति तात्पर्यम्॥४७॥ अथ यः सर्वं न जानाति स एकमपि न जानातीति विचारयति—**जो ण विजाणदि** यः कर्ता नैव जानाति। कथम्। **जुगवं** युगपदेकक्षणे। कान्। **अत्थे** अर्थान्। कथंभूतान्। **तिक्कालिगे** त्रिकालपर्यायपरिणतान्। पुनरपि कथंभूतान्। **तिहुवणत्थे** त्रिभुवनस्थान्। **णादुं तस्स ण सक्कं** तस्य पुरुषस्य सम्बन्धि ज्ञानं ज्ञातुं समर्थं न भवति। किम्। **दव्वं**

विजानाति] नहीं जानता, [**तस्य**] उसे [**सपर्ययं**] पर्याय सहित [**एकं द्रव्यं वा**] एक द्रव्य भी [**ज्ञातुं न शक्यं**] जानना शक्य नहीं है॥४८॥

टीका :—इस विश्वमें एक आकाशद्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, असंख्य कालद्रव्य और अनन्त जीवद्रव्य तथा उनसे भी अनन्तगुने पुद्गल द्रव्य हैं, और उन्हींके प्रत्येकके अतीत, अनागत और वर्तमान ऐसे (तीन) प्रकारोंसे भेदवाली [१]निरवधि [२]वृत्तिप्रवाहके भीतर पड़नेवाली (-समा जानेवाली) अनन्त पर्यायें हैं। इसप्रकार यह समस्त (द्रव्यों और पर्यायोंका) समुदाय ज्ञेय है। उसीमें एक कोई भी जीवद्रव्य ज्ञाता है। अब यहाँ, जैसे समस्त दाह्यको दहकती हुई अग्नि समस्त-दाह्यहेतुक (-समस्त दाह्य जिसका निमित्त है ऐसा) समस्त दाह्याकारपर्यायरूप परिणमित सकल एक [३]दहन जिसका आकार (स्वरूप) है ऐसे अपने रूपमें (-अग्निरूपमें) परिणमित होती है, वैसे ही समस्त ज्ञेयोको जानता हुआ ज्ञाता (-आत्मा) समस्तज्ञेयहेतुक समस्त ज्ञेयाकारपर्यायरूप परिणमित [४]सकल एक ज्ञान जिसका आकार (स्वरूप) है ऐसे निजरूपसे—जो चेतनताके कारण स्वानुभवप्रत्यक्ष है उस-रूप—परिणमित होता है। इसप्रकार वास्तवमें द्रव्यका स्वभाव है। किन्तु जो समस्त ज्ञेयको नहीं जानता वह (आत्मा), जैसे समस्त दाह्यको न दहती हुई अग्नि समस्तदाह्यहेतुक

---

१. निरवधि = अवधि-हद-मर्यादा अन्तरहित।

२. वृत्ति = वर्तन करना; उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य; अस्तित्व, परिणति।

३. दहन = जलाना, दहना।

४. सकल = सारा; परिपूर्ण।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

दाह्यमदहन् समस्तदाह्यहेतुकसमस्तदाह्याकारपर्यायपरिणतसकलैकदहनाकारमात्मानं दहन इव समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणतसकलैकज्ञानाकारमात्मानं चेतनत्वात् स्वानुभव-प्रत्यक्षत्वेऽपि न परिणमति। एवमेतदायाति यः सर्वं न जानाति स आत्मानं न जानाति।।४८।।

ज्ञेयद्रव्यम्। किंविशिष्टम्। सपज्जयं अनन्तपर्यायसहितम्। कतिसंख्योपेतम्। एगं वा एकमपीति। तथा हि---आकाशद्रव्यं तावदेकं, धर्मद्रव्यमेकं, तथैवाधर्मद्रव्यं च, लोकाकाशप्रमितासंख्येयकालद्रव्याणि, ततोऽनन्तगुणानि जीवद्रव्याणि, तेभ्योऽप्यनन्तगुणानि पुद्गलद्रव्याणि। तथैव सर्वेषां प्रत्येकमनन्त-पर्यायाः, एतत्सर्वं ज्ञेयं तावत्त्रैकं विवक्षितं जीवद्रव्यं ज्ञातृ भवति। एवं तावद्वस्तुस्वभावः। तत्र यथा दहनः समस्तं दाह्यं दहन् सन् समस्तदाह्यहेतुकसमस्तदाह्याकारपर्यायपरिणतसकलैकदहनस्वरूपमुष्ण-परिणततृणपर्णाद्याकारमात्मानं (स्वकीयस्वभावं) परिणमति, तथायमात्मा समस्तं ज्ञेयं जानन् सन् समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणतसकलैकाखण्डज्ञानरूपं स्वकीयमात्मानं परिणमति जानाति परिच्छिनत्ति। यथैव च स एव दहनः पूर्वोक्तलक्षणं दाह्यमदहन् सन् तदाकारेण न परिणमति, तथाऽऽत्मापि पूर्वोक्तलक्षणं समस्तं ज्ञेयमजानन् पूर्वोक्तलक्षणमेव सकलैकाखण्डज्ञानाकारं स्वकीयमात्मानं न परिणमति न जानाति न परिच्छिनत्ति। अपरमप्युदाहरणं दीयते---यथा कोऽप्यन्धक आदित्यप्रकाश्यान् पदार्थानपश्यन्नादित्यमिव, प्रदीपप्रकाश्यान् पदार्थानपश्यन् प्रदीपमिव, दर्पणस्थ-बिम्बान्यपश्यन् दर्पणमिव, स्वकीयदृष्टिप्रकाश्यान् पदार्थानपश्यन् हस्तपादाद्यवयवपरिणतं स्वकीय-देहाकारमात्मानं स्वकीयदृष्ट्या न पश्यति, तथायं विवक्षितात्मापि केवलज्ञानप्रकाश्यान् पदार्थानजानन्

समस्तदाह्याकारपर्यायरूप परिणमित सकल एक दहन जिसका आकार है ऐसे अपने रूपमें परिणमित नहीं होता उसीप्रकार समस्तज्ञेयहेतुक समस्तज्ञेयाकारपर्यायरूप परिणमित सकल एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसे अपने रूपमें—स्वयं चेतनाके कारण स्वानुभवप्रत्यक्ष होने पर भी परिणमित नहीं होता, (अपनेको परिपूर्ण तया अनुभव नहीं करता—नहीं जानता) इस प्रकार यह फलित होता है कि जो सबको नहीं जानता वह अपनेको (-आत्माको) नहीं जानता।

भावार्थ :—जो अग्नि काष्ठ, तृण, पत्ते इत्यादि समस्त दाह्यपदार्थोंको नहीं जलाता, उसका दहनस्वभाव (काष्ठादिक समस्त दाह्य जिसका निमित्त है ऐसा) समस्त दाह्याकारपर्यायरूप परिणमित न होनेसे अपूर्णरूपसे परिणमित होता है—परिपूर्णरूपसे परिणमित नहीं होता, इसलिये परिपूर्ण एक दहन जिसका स्वरूप है ऐसी वह अग्नि अपने रूप ही पूर्ण रीतिसे परिणमित नहीं होती; उसी प्रकार यह आत्मा समस्त द्रव्य-पर्यायरूप समस्त ज्ञेयको नहीं जानता, उसका ज्ञान (समस्त ज्ञेय जिसका निमित्त है ऐसे) समस्तज्ञेयाकारपर्यायरूप परिणमित न होनेसे अपूर्णरूपसे परिणमित होता है–परिपूर्ण रूपसे परिणमित नहीं होता, इसलिये परिपूर्ण एक ज्ञान जिसका स्वरूप है ऐसा वह आत्मा अपने रूपसे ही पूर्ण रीतिसे परिणमित नहीं होता अर्थात् निजको ही पूर्ण रीतिसे अनुभव नहीं करता—नहीं जानता। इसप्रकार सिद्ध हुआ कि जो सबको नहीं जानता वह एकको—अपनेको (पूर्ण रीतिसे) नहीं जानता।।४८।।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति—

दव्वं अणंतपज्जयमेगमणंताणि दव्वजादाणि।
ण विजाणदि जदि जुगवं किध सो सव्वाणि जाणादि॥४९॥

द्रव्यमनन्तपर्यायमेकमनन्तानि द्रव्यजातानि।
न विजानाति यदि युगपत् कथं स सर्वाणि जानाति॥४९॥

आत्मा हि तावत्स्वयं ज्ञानमयत्वे सति ज्ञातृत्वात् ज्ञानमेव। ज्ञानं तु प्रत्यात्मवर्ति प्रतिभासमयं महासामान्यम्। तत्तु प्रतिभासमयानन्तविशेषव्यापि। ते च सर्वद्रव्यपर्याय-

---

सकलाखण्डैककेवलज्ञानरूपमात्मानमपि न जानाति। तत एतत्स्थितं यः सर्वं न जानाति स आत्मानमपि न जानातीति॥४८॥ अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति–दव्वं द्रव्यं अणंतपज्जयं अनन्तपर्यायं एगं एकं अणंताणि दव्वजादीणि अनन्तानि द्रव्यजातीनि जो ण विजाणदि यो न विजानाति

अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि एकको न जाननेवाला सबको नहीं जानता :—

अन्वयार्थ :—[यदि] यदि [अनन्तपर्यायं] अनन्त पर्यायवाले [एकं द्रव्यं] एक द्रव्यको (-आत्मद्रव्यको) [अनन्तानि द्रव्यजातानि] तथा अनन्त द्रव्यसमूहको [युगपद्] एक ही साथ [न विजानाति] नहीं जानता [सः] तो वह पुरुष [सर्वाणि] सब को (-अनन्त द्रव्यसमूहको) [कथं जानाति] कैसे जान सकेगा? (अर्थात् जो आत्मद्रव्यको नहीं जानता हो वह समस्त द्रव्यसमूहको नहीं जान सकता) ॥४९॥

प्रकारान्तरसे **अन्वयार्थ** :—[यदि] यदि [अनन्तपर्यायं] अनन्त पर्यायवाले [एकं द्रव्यं] एक द्रव्यको (-आत्मद्रव्यको) [न विजानाति] नहीं जानता [सः] तो वह पुरुष [युगपद्] एक ही साथ [सर्वाणि अनन्तानि द्रव्यजातानि] सर्व अनन्त द्रव्य-समूहको [कथं जानाति] कैसे जान सकेगा?

टीका :—प्रथम तो आत्मा वास्तवमें स्वयं ज्ञानमय होनेसे ज्ञातृत्वके कारण ज्ञान ही है; और ज्ञान प्रत्येक आत्मामें वर्तता (-रहता) हुआ प्रतिभासमय महासामान्य है। वह प्रतिभासमय महासामान्य प्रतिभासमय अनन्त विशेषोंमें व्याप्त होनेवाला है; और उन विशेषोंके (-भेदोंके) निमित्त सर्व द्रव्यपर्याय हैं। अब जो पुरुष सर्व द्रव्यपर्याय जिनके निमित्त हैं ऐसे

जो एक द्रव्य अनंतपर्यय तेम द्रव्य अनंतने
युगपद न जाणे जीव, तो ते केम जाणे सर्वने? ४९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

निबन्धनाः। अथ यः सर्वद्रव्यपर्यायनिबन्धनानंतविशेषव्यापिप्रतिभासमयमहासामान्यरूप-मात्मानं स्वानुभवप्रत्यक्षं न करोति स कथं प्रतिभासमयमहासामान्यव्याप्यप्रतिभासमयानन्त-विशेषनिबन्धनभूतसर्वद्रव्यपर्यायान् प्रत्यक्षीकुर्यात्। एवमेतदायाति य आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानाति। अथ सर्वज्ञानादात्मज्ञानमात्मज्ञानात्सर्वज्ञानमित्यवतिष्ठते। एवं च सति ज्ञानमयत्वेन स्वसंचेतकत्वादात्मनो ज्ञातृज्ञेययोर्वस्तुत्वेनान्यत्वे सत्यपि प्रतिभासप्रतिभास्य-मानयोः स्वस्यामवस्थायामन्योन्यसंवलनेनात्यन्तमशक्यविवेचनत्वात्सर्वमात्मनि निखातमिव प्रतिभाति। यद्येवं न स्यात् तदा ज्ञानस्य परिपूर्णात्मसंचेतनाभावात् परिपूर्णस्यैकस्यात्मनोऽपि ज्ञानं न सिद्ध्येत् ॥४६॥

अनन्तद्रव्यसमूहान् किध सो सव्वाणि जाणादि कथं स सर्वान् जानाति जुगवं युगपदेकसमये, न कथमपीति। तथा हि--आत्मलक्षणं तावज्ज्ञानं तच्चाखण्डप्रतिभासमयं सर्वजीवसाधारणं महासामान्यम्। तच्च महासामान्यं ज्ञानमयानन्तविशेषव्यापि। ते च ज्ञानविशेषा अनन्तद्रव्यपर्यायाणां विषयभूतानां

अनन्त विशेषोंमें व्याप्त होनेवाले प्रतिभासमय महासामान्यरूप आत्माका स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं करता, वह (पुरुष) प्रतिभासमय महासामान्यके द्वारा [१]व्याप्य (-व्याप्य होने योग्य) जो प्रतिभासमय अनन्त विशेष है उनकी निमित्तभूत सर्व द्रव्य पर्यायोंको कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा? (नहीं कर सकेगा) इससे ऐसा फलित हुआ कि जो आत्माको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता।

अब, इससे ऐसा निश्चित होता है कि सर्वके ज्ञानसे आत्माका ज्ञान और आत्माके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान (होता है); और ऐसा होनेसे, आत्मा ज्ञानमयताके कारण स्वसंचेतक होनेसे, ज्ञाता और ज्ञेयका वस्तुरूपसे अन्यत्व होने पर भी प्रतिभास और प्रतिभास्यमानकर अपनी अवस्थामें अन्योन्य मिलन होनेके कारण (ज्ञान और ज्ञेय, आत्माकी–ज्ञानकी अवस्थामें परस्पर मिश्रित–एकमेकरूप होनेसे) उन्हें भिन्न करना अत्यन्त अशक्य होनेसे मानो सब कुछ आत्मामें [२]निखात (प्रविष्ट) हो गया हो इसप्रकार प्रतिभासित होता है—ज्ञात होता है। (आत्मा ज्ञानमय होनेसे वह अपनेको अनुभव करता है—जानता है, और अपनेको जाननेपर समस्त ज्ञेय ऐसे ज्ञात होते हैं–मानों वे ज्ञानमें स्थित ही हों, क्योंकि ज्ञानकी अवस्थामेंसे ज्ञेयाकारोंको भिन्न करना अशक्य है।) यदि ऐसा न हो तो (यदि आत्मा सबको न जानता हो तो) ज्ञानके परिपूर्ण आत्मसंचेतनका अभाव होनेसे परिपूर्ण एक आत्माका भी ज्ञान सिद्ध न हो।

---

१. ज्ञान सामान्य व्यापक है, और ज्ञान विशेष-भेद व्याप्य हैं। उन ज्ञानविशेषोंके निमित्त ज्ञेयभूत सर्व द्रव्य और पर्यायें हैं।

२. निखात = खोदकर भीतर गहरा उतर गया हुवा; भीतर प्रविष्ट हुआ।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ क्रमकृतप्रवृत्त्या ज्ञानस्य सर्वगतत्वं न सिद्ध्यतीति निश्चिनोति—

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अट्ठे पडुच्च णाणिस्स।
तं णेव हवदि णिच्चं ण खाइगं णेव सव्वगदं॥५०॥

उत्पद्यते यदि ज्ञानं क्रमशोऽर्थान् प्रतीत्य ज्ञानिनः।
तन्नैव भवति नित्यं न क्षायिकं नैव सर्वगतम्॥५०॥

ज्ञेयभूतानां परिच्छेदका ग्राहकाः। अखण्डैकप्रतिभासमयं यन्महासामान्यं तत्स्वभावमात्मानं योऽसौ प्रत्यक्षं न जानाति स पुरुषः प्रतिभासमयेन महासामान्येन ये व्याप्ता अनन्तज्ञानविशेषास्तेषां विषयभूताः येऽनन्तद्रव्यपर्यायास्तान् कथं जानाति, न कथमपि। अथ एतदायातम्—यः आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानातीति। तथा चोक्तम्--"एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वे भावा एकभावस्वभावाः। एको भावस्तत्त्वतो येन बुद्धः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः॥" अत्राह शिष्य :– आत्मपरिज्ञाने सति सर्वपरिज्ञानं भवतीत्यत्र व्याख्यातं, तत्र तु पूर्वसूत्रे भणितं सर्वपरिज्ञाने सत्यात्मपरिज्ञानं भवतीति। यद्येवं तर्हि छद्मस्थानां सर्वपरिज्ञानं नास्त्यात्मपरिज्ञानं कथं भविष्यति, आत्मपरिज्ञानाभावे चात्मभावना कथं, तदभावे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नास्तीति। परिहारमाह— परोक्षप्रमाणभूतश्रुतज्ञानेन सर्वपदार्था ज्ञायन्ते। कथमिति चेत्--लोकालोकादिपरिज्ञानं व्याप्तिज्ञानरूपेण छद्मस्थानामपि विद्यते, तच्च व्याप्तिज्ञानं परोक्षाकारेण केवलज्ञानविषयग्राहकं कथंचिदात्मैव भण्यते।

भावार्थ :—४८ और ४९वीं गाथामें ऐसा बताया गया है कि सबको नहीं जानता वह अपनेको नहीं जानता, और जो अपनेको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता। अपना ज्ञान और सबका ज्ञान एक साथ ही होता है। स्वयं और सर्व—इन दोमेंसे एकका ज्ञान हो और दूसरेका न हो यह असम्भव है।

यह कथन एकदेश ज्ञानकी अपेक्षासे नहीं किन्तु पूर्णज्ञानकी (केवलज्ञानकी) अपेक्षासे है॥४९॥

अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञानकी सर्वगतता सिद्ध नहीं होती :—

अन्वयार्थ :—[**यदि**] यदि [**ज्ञानिनः ज्ञानं**] आत्माका ज्ञान [**क्रमशः**] क्रमशः [**अर्थान् प्रतीत्य**] पदार्थोंका अवलम्बन लेकर [**उत्पद्यते**] उत्पन्न होता हो [**तत्**] तो वह (ज्ञान) [**न एव नित्यं भवति**] नित्य नहीं है, [**न क्षायिकं**] क्षायिक नहीं है, [**न एव सर्वगतम्**] और सर्वगत नहीं है॥५०॥

जो ज्ञान 'ज्ञानी'नु ऊपजे क्रमशः अरथ अवलंबीने,
तो नित्य नहि, क्षायिक नहि ने सर्वगत नहि ज्ञान अे. ५०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

यत्किल क्रमेणैकैकमर्थमालम्ब्य प्रवर्तते ज्ञानं तदेकार्थालम्बनादुत्पन्नमन्यार्थालम्बनात् प्रलीयमानं नित्यमसत्तथा कर्मोदयादेकां व्यक्तिं प्रतिपन्नं पुनर्व्यक्त्यन्तरं प्रतिपद्यमानं क्षायिकमप्यसदनन्तद्रव्यक्षेत्रकालभावानाक्रान्तुमशक्तत्वात् सर्वगतं न स्यात् ॥५०॥

अथ यौगपद्यप्रवृत्त्यैव ज्ञानस्य सर्वगतत्वं सिद्ध्यतीति व्यवतिष्ठते—

तिक्कालणिच्चविसमं सयलं सव्वत्थसंभवं चित्तं।
जुगवं जाणदि जोण्हं अहो हि णाणस्स माहप्पं॥५१॥

त्रैकाल्यनित्यविषमं सकलं सर्वत्रसंभवं चित्रम्।
युगपज्जानाति जैनमहो हि ज्ञानस्य माहात्म्यम्॥५१॥

अथवा स्वसंवेदनज्ञानेनात्मा ज्ञायते, ततश्च भावना क्रियते, तया रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानभावनया केवलज्ञानं च जायते। इति नास्ति दोषः॥४९॥ अथ क्रमप्रवृत्तज्ञानेन सर्वज्ञो न भवतीति व्यवस्थापयति—**उप्पज्जदि जदि णाणं** उत्पद्यते ज्ञानं यदि चेत्। **कमसो** क्रमशः सकाशात्। किं

टीका :—जो ज्ञान क्रमशः एक एक पदार्थका अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है वह (ज्ञान) एक पदार्थके अवलम्बनसे उत्पन्न होकर दूसरे पदार्थके अवलम्बनसे नष्ट हो जानेसे नित्य नहीं होता तथा कर्मोदयके कारण एक [१]व्यक्तिको प्राप्त करके फिर अन्य व्यक्तिको प्राप्त करता है इसलिये क्षायिक भी न होता हुआ, वह अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको प्राप्त होने में (-जानने में) असमर्थ होनेके कारण सर्वगत नहीं है।

भावार्थ :—क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञान अनित्य है, क्षायोपशमिक है; ऐसा क्रमिक ज्ञानवाला पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता॥५०॥

अब ऐसा निश्चित होता है कि युगपत् प्रवृत्तिके द्वारा ही ज्ञानका सर्वगतत्व सिद्ध होता है (अर्थात् अक्रमसे प्रवर्तमान ज्ञान ही सर्वगत हो सकता है) :—

अन्वयार्थ :—[**त्रैकाल्यनित्यविषमं**] तीनों कालमें सदा विषम (असमान जातिके), [**सर्वत्र संभवं**] सर्व क्षेत्रके [**चित्रं**] अनेक प्रकारके [**सकलं**] समस्त पदार्थोंको [**जैनं**] जिनदेवका ज्ञान [**युगपत् जानाति**] एक साथ जानता है [**अहो हि**] अहो! [**ज्ञानस्य माहात्म्यम्**] ज्ञानका माहात्म्य! ॥५१॥

---

१. व्यक्ति = प्रगटता; विशेष, भेद।

नित्ये विषम, विधविध, सकल पदार्थगण सर्वत्रनो,
जिनज्ञान जाणे युगपदे, महिमा अहो अे ज्ञाननो!. ५१.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

क्षायिकं हि ज्ञानमतिशयास्पदीभूतपरममाहात्म्यम्। यत्तु युगपदेव सर्वार्थानालम्ब्य प्रवर्तते ज्ञानं तट्टंकोत्कीर्णन्यायावस्थितसमस्तवस्तुज्ञेयाकारतयाधिरोपितनित्यत्वं प्रतिपन्नसमस्त-व्यक्तित्वेनाभिव्यक्तस्वभावभासिक्षायिकभावं त्रैकाल्येन नित्यमेव विषमीकृतां सकलामपि सर्वार्थसंभूतिमनन्तजातिप्रापितवैचित्र्यां परिच्छिन्ददक्रमसमाक्रान्तानन्तद्रव्यक्षेत्रकालभावतया प्रकटीकृताद्भुतमाहात्म्यं सर्वगतमेव स्यात् ॥५१॥

कृत्वा। अट्ठे पडुच्च ज्ञेयार्थानाश्रित्य। कस्य। णाणिस्स ज्ञानिनः आत्मनः। तं णेव हवदि णिच्चं उत्पत्तिनिमित्तभूतपदार्थविनाशे तस्यापि विनाश इति नित्यं न भवति। ण खाइगं ज्ञानावरणीय-कर्मक्षयोपशमाधीनत्वात् क्षायिकमपि न भवति। णेव सब्वगदं यत एव पूर्वोक्तप्रकारेण पराधीनत्वेन नित्यं न भवति, क्षयोपशमाधीनत्वेन क्षायिकं च न भवति, तत एव युगपत्समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावानां परिज्ञानसामर्थ्याभावात्सर्वगतं न भवति। अत एतत्स्थितं यद्ज्ञानं क्रमेणार्थान् प्रतीत्य जायते तेन सर्वज्ञो न भवति इति॥५०॥ अथ युगपत्परिच्छित्तिरूपज्ञानेनैव सर्वज्ञो भवतीत्यावेदयति---जाणदि जानाति। किं कर्तृ। जोण्हं जैनज्ञानम्। कथम्। जुगवं युगपदेकसमये। अहो हि णाणस्स माहप्पं अहो हि स्फुटं जैनज्ञानस्य माहात्म्यं पश्यताम्। किं जानाति। अर्थमित्यध्याहारः। कथंभूतम्। तिक्कालणि-च्चविसयं त्रिकालविषयं त्रिकालगतं नित्यं सर्वकालम्। पुनरपि किंविशिष्टम्। सयलं समस्तम्। पुनरपि कथंभूतम्। सब्वत्थसंभवं सर्वत्र लोके संभवं समुत्पन्नं स्थितम्। पुनश्च किंरूपम्। चित्तं नानाजातिभेदेन विचित्रमिति। तथा हि–युगपत्सकलग्राहकज्ञानेन सर्वज्ञो भवतीति ज्ञात्वा किं कर्तव्यम्। ज्योतिष्क-

---

टीका :—वास्तवमें क्षायिक ज्ञानका, सर्वोत्कृष्टताका स्थानभूत परम माहात्म्य है; और जो ज्ञान एक साथ ही समस्त पदार्थोंका अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है वह ज्ञान—अपनेमें समस्त वस्तुओंके ज्ञेयाकार [१]टंकोत्कीर्ण–न्यायसे स्थित होनेसे जिसने नित्यत्व प्राप्त किया है और समस्त व्यक्तिको प्राप्त कर लेनेसे जिसने स्वभावप्रकाशक क्षायिकभाव प्रगट किया है ऐसा—त्रिकालमें सदा विषम रहनेवाले (-असमान जातिरूपसे परिणमित होनेवाले) और अनन्त प्रकारोंके कारण विचित्रताको प्राप्त सम्पूर्ण सर्व पदार्थोंके समूहको जानता हुआ, अक्रमसे अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको प्राप्त होनेसे जिसने अद्भुत माहात्म्य प्रगट किया है ऐसा सर्वगत ही है।

भावार्थ :—अक्रमसे प्रवर्तमान ज्ञान एक ज्ञेयसे दूसरेके प्रति नहीं बदलता इसलिये नित्य है, अपनी समस्त शक्तियोंके प्रगट हो जानेसे क्षायिक है, ऐसे अक्रमिक ज्ञानवाला पुरुष ही सर्वज्ञ हो सकता है। सर्वज्ञके इस ज्ञानका कोई परम अद्भुत माहात्म्य है॥५१॥

---

१. टंकोत्कीर्ण न्याय = पत्थरमें टांकीसे उत्कीर्ण आकृतिकी भाँति।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ ज्ञानिनो ज्ञप्तिक्रियासद्भावेऽपि क्रियाफलभूतं बन्धं प्रतिषेधयन्नुपसंहरति—

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अट्ठेसु।
जाणण्णवि ते आदा अबंधगो तेण पण्णत्तो॥५२॥

नापि परिणमति न गृह्णाति उत्पद्यते नैव तेष्वर्थेषु।
जानन्नपि तानात्मा अबन्धकस्तेन प्रज्ञप्तः॥५२॥

इह खलु 'उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया। तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठो वा बंधमणुभवदि॥' इत्यत्र सूत्रे उदयगतेषु पुद्गलकर्मांशेषु सत्सु संचेतयमानो

मन्त्रवादरससिद्ध्यादीनि यानि खण्डविज्ञानानि मूढजीवानां चित्तचमत्कारकारणानि परमात्मभावना-विनाशकानि च। तत्राग्रहं त्यक्त्वा जगत्त्रयकालत्रयसकलवस्तुयुगपत्प्रकाशकमविनश्वरमखण्डैक-प्रतिभासरूपं सर्वज्ञशब्दवाच्यं यत्केवलज्ञानं तस्यैवोत्पत्तिकारणभूतं यत्समस्तरागादिविकल्पजालेन रहितं सहजशुद्धात्मनोऽभेदज्ञानं तत्र भावना कर्तव्या, इति तात्पर्यम्॥५१॥ एवं केवलज्ञानमेव सर्वज्ञ इति कथनरूपेण गाथैका, तदनन्तरं सर्वपदार्थपरिज्ञानात्परमात्मज्ञानमिति प्रथमगाथा परमात्मज्ञानाच्च सर्वपदार्थपरिज्ञानमिति द्वितीया चेति। ततश्च क्रमप्रवृत्तज्ञानेन सर्वज्ञो न भवतीति प्रथमगाथा, युगपद्ग्राहकेण स भवतीति द्वितीया चेति समुदायेन सप्तमस्थले गाथापञ्चकं गतम्। अथ पूर्वं यदुक्तं

अब, ज्ञानीके (-केवलज्ञानी आत्माके) ज्ञप्तिक्रियाका सद्भाव होने पर भी उसके क्रियाके फलरूप बन्धका निषेध करते हुए उपसंहार करते हैं (अर्थात् केवलज्ञानी आत्माके जाननेकी क्रिया होने पर भी बन्ध नहीं होता, ऐसा कहकर ज्ञान-अधिकार पूर्ण करते हैं)—

अन्वयार्थ :-[आत्मा] (केवलज्ञानी) आत्मा [तान् जानन् अपि] पदार्थोंको जानता हुआ भी [न अपि परिणमति] उसरूप परिणमित नहीं होता, [न गृह्णाति] उन्हें ग्रहण नहीं करता [तेषु अर्थेषु न एव उत्पद्यते] और उन पदार्थोंके रूपमें उत्पन्न नहीं होता [तेन] इसलिये [अबन्धकः प्रज्ञप्तः] उसे अबन्धक कहा है॥५२॥

टीका :—यहाँ 'उदयगदा कम्मंसा जिनवरवसहेहिं णियदिणा भणिया। तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठो वा [१]बन्धमणुभवदि॥' इस गाथा सूत्रमें, 'उदयगत पुद्गलकर्मांशोंके अस्तित्वमें चेतित होने पर-जाननेपर-अनुभव करने पर मोह-राग-द्वेषमें परिणत होनेसे ज्ञेयार्थपरिणमन-

१. ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापनकी ४३वीं गाथा।

ते अर्थरूप न परिणमे जीव, नव ग्रहे, नव ऊपजे,
सौ अर्थने जाणे छतां, तेथी अबंधक जिन कहे. ५२.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मोहरागद्वेषपरिणतत्वात् ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणया क्रियया युज्यमानः क्रियाफलभूतं बन्धमनुभवति, न तु ज्ञानादिति प्रथममेवार्थपरिणमनक्रियाफलत्वेन बन्धस्य समर्थितत्वात्, तथा 'गेण्हदि णेव ण मुंचदि ण परं परिणमदि केवली भगवं। पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं।।' इत्यर्थपरिणमनादिक्रियाणामभावस्य शुद्धात्मनो निरूपितत्वाच्चार्थानपरिणमतोऽगृह्णतस्तेष्वनुत्पद्यमानस्य चात्मनो ज्ञप्तिक्रियासद्भावेऽपि न खलु क्रियाफलभूतो बन्धः सिद्ध्येत् ॥५२॥

पदार्थपरिच्छित्तिसद्भावेऽपि रागद्वेषमोहाभावात् केवलिनां बन्धो नास्तीति तमेवार्थं प्रकारान्तरेण दृढीकुर्वन् ज्ञानप्रपञ्चाधिकारमुपसंहरति—**ण वि परिणमदि** यथा स्वकीयात्मप्रदेशैः समरसीभावेन सह परिणमति तथा ज्ञेयरूपेण न परिणमति। **ण गेण्हदि** यथैव चानन्तज्ञानादिचतुष्टयरूपमात्मरूपमात्मरूपतया गृह्णाति तथा ज्ञेयरूपं न गृह्णाति। **उप्पज्जदि णेव तेसु अट्ठेसु** यथा च निर्विकारपरमानन्दैकसुखरूपेण स्वकीयसिद्धपर्यायेणोत्पद्यते तथैव च ज्ञेयपदार्थेषु नोत्पद्यते। किं कुर्वन्नपि। **जाणण्णवि ते तान्** ज्ञेयपदार्थान् स्वस्मात् पृथग्रूपेण जानन्नपि। **स कः** कर्ता। **आदा मुक्तात्मा। अबंधगो तेण पण्णत्तो** ततः कारणात्कर्मणामबन्धकः प्रज्ञप्त इति। तद्यथा—रागादिरहितज्ञानं बन्धकारणं न भवतीति ज्ञात्वा शुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षविपरीतस्य नारकादिदुःखकारणकर्मबन्धस्य कारणानीन्द्रियमनोजनितान्येकदेश-

---

स्वरूप क्रियाके साथ युक्त होता हुआ आत्मा क्रियाफलभूत बन्धका अनुभव करता है, किन्तु ज्ञानसे नहीं' इसप्रकार प्रथम ही अर्थपरिणमनक्रियाके फलरूपसे बन्धका समर्थन किया गया है (अर्थात् बन्ध तो पदार्थरूपमें परिणमनरूप क्रियाका फल है ऐसा निश्चित किया गया है) तथा 'गेण्हदि णेव ण मुञ्चदि ण परं परिणमदि केवली भगवं। पेच्छदि समंतदो सो जाणादि सव्वं [१]णिरवसेसं।।'

इस गाथा सूत्रमें शुद्धात्माके अर्थ परिणमनादि क्रियाओंका अभाव निरूपित किया गया है इसलिये जो (आत्मा) पदार्थरूपमें परिणमित नहीं होता उसे ग्रहाण नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता उस आत्माके ज्ञप्तिक्रियाका सद्भाव होने पर भी वास्तवमें क्रियाफलभूत बन्ध सिद्ध नहीं होता।

भावार्थ :—कर्मके तीन भेद किये गये हैं–प्राप्य–विकार्य और निर्वर्त्य। केवली-भगवानके प्राप्य कर्म, विकार्य कर्म और निर्वर्त्य कर्म ज्ञान ही है, क्योंकि वे ज्ञानको ही ग्रहण करते हैं, ज्ञानरूप ही परिणमित होते हैं और ज्ञानरूप ही उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार ज्ञान ही उनका कर्म और ज्ञप्ति ही उनकी क्रिया है। ऐसा होनेसे केवलीभगवानके बन्ध नहीं होता, क्योंकि ज्ञप्तिक्रिया बन्धका कारण नहीं है किन्तु ज्ञेयार्थपरिणमनक्रिया अर्थात् ज्ञेय पदार्थोंके

---

१. ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापनकी ३२ वीं गाथा।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

(स्रग्धरा)

जानन्नप्येष विश्वं युगपदपि भवद्भाविभूतं समस्तं
मोहाभावाद्यदात्मा परिणमति परं नैव निर्लूनकर्मा।
तेनास्ते मुक्त एव प्रसभविकसितज्ञप्तिविस्तारपीत-
ज्ञेयाकारां त्रिलोकीं पृथगपृथगथ द्योतयन् ज्ञानमूर्तिः ॥४॥

—इति ज्ञानाधिकारः।

अथ ज्ञानादभिन्नस्य सौख्यस्य स्वरूपं प्रपंचयन् ज्ञानसौख्ययोः हेयोपादेयत्वं चिन्तयति—

अत्थि अमुत्तं मुत्तं अदिंदियं इंदियं च अत्थेसु।
णाणं च तहा सोक्खं जं तेसु परं च तं णेयं॥५३॥

विज्ञानानि त्यक्त्वा सकलविमलकेवलज्ञानस्य कर्मबन्धाकारणभूतस्य यद्बीजभूतं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं तत्रैव भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः ॥५२॥ एवं रागद्वेषमोहरहितत्वात्केवलिनां बन्धो नास्तीति कथनरूपेण ज्ञानप्रपञ्चसमाप्तिमुख्यत्वेन चैकसूत्रेणाष्टमस्थलं गतम्।

सन्मुख वृत्ति होना (-ज्ञेय पदार्थोंके प्रति परिणमित होना) वह बन्धका कारण है॥५२॥

(अब, पूर्वोक्त आशयको काव्यद्वारा कहकर, केवलज्ञानी आत्माकी महिमा बताकर यह ज्ञान-अधिकार पूर्ण किया जाता है।)

अर्थ :—जिसने कर्मोंको छेद डाला है ऐसा यह आत्मा भूत, भविष्यत और वर्तमान समस्त विश्वको (अर्थात् तीनों कालकी पर्यायोंसे युक्त समस्त पदार्थोंको) एक ही साथ जानता हुआ भी मोहके अभावके कारण पररूप परिणमित नहीं होता, इसलिये अब, जिसके समस्त ज्ञेयाकारोंको अत्यन्त विकसित ज्ञप्तिके विस्तारसे स्वयं पी गया है ऐसै तीनोंलोकके पदार्थोंको पृथक् और अपृथक् प्रकाशित करता हुआ वह ज्ञानमूर्ति मुक्त ही रहता है।

इस प्रकार ज्ञान-अधिकार समाप्त हुआ।

अब, ज्ञानसे अभिन्न सुखका स्वरूप विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए ज्ञान और सुखकी हेयोपादेयताका (अर्थात् कौनसा ज्ञान तथा सुख हेय है और कौनसा उपादेय है वह) विचार करते हैं :-

अर्थोनुं ज्ञान अमूर्त, मूर्त, अतीन्द्रिय ने ऐन्द्रिय छे,
छे सुख पण अेवुंज, त्यां परधान जे ते ग्राह्य छे. ५३.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अस्त्यमूर्तं मूर्तमतीन्द्रियमैन्द्रियं चार्थेषु।
ज्ञानं च तथा सौख्यं यत्तेषु परं च तत् ज्ञेयम्॥५३॥

अत्र ज्ञानं सौख्यं च मूर्तमिन्द्रियजं चैकमस्ति। इतरदमूर्तमतीन्द्रियं चास्ति। तत्र यदमूर्तमतीन्द्रियं च तत्प्रधानत्वादुपादेयत्वेन ज्ञातव्यम्। तत्राद्यं मूर्ताभिः क्षायोपशमिकीभिरुपयोगशक्तिभिस्तथाविधेभ्य इन्द्रियेभ्यः समुत्पद्यमानं परायत्तत्वात् कादाचित्कं क्रमकृतप्रवृत्ति

अथ ज्ञानप्रपञ्चव्याख्यानानन्तरं ज्ञानाधारसर्वज्ञं नमस्करोति---

तस्स णमाइं लोगो देवासुरमणुअरायसंबंधो।
भत्तो करेदि णिच्चं उवजुत्तो तं तहा वि अहं॥★२॥

करेदि करोति। स कः। लोगो लोकः। कथंभूतः। देवासुरमणुअरायसंबंधो देवासुरमनुष्यराजसंबन्धः। पुनरपि कथंभूतः। भत्तो भक्तः। णिच्चं नित्यं सर्वकालम्। पुनरपि किंविशिष्टः। उवजुत्तो उपयुक्त उद्यतः। इत्थंभूतो लोकः कां करोति। णमाइं नमस्यां नमस्क्रियाम्। कस्य। तस्स तस्य पूर्वोक्तसर्वज्ञस्य। तं तहा वि अहं तं सर्वज्ञं तथा तेनैव प्रकारेणाहमपि ग्रन्थकर्ता नमस्करोमीति। अयमत्रार्थः---यथा देवेन्द्रचक्रवर्त्यादयोऽनन्ताक्षयसुखादिगुणास्पदं सर्वज्ञस्वरूपं नमस्कुर्वन्ति, तथैवाहमपि तत्पदाभिलाषी परमभक्त्या प्रणमामि॥★२॥ एवमष्टाभिः स्थलैर्द्वात्रिंशद्गाथास्तदनन्तरं नमस्कारगाथा चेति समुदायेन त्रयस्त्रिंशत्सूत्रैर्ज्ञानप्रपञ्चनामा तृतीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः। अथ सुखप्रपञ्चाभिधानान्तराधिकारेऽष्टादश गाथा भवन्ति। अत्र पञ्चस्थलानि, तेषु प्रथमस्थले 'अत्थि अमुत्तं'

अन्वयार्थ :—[अर्थेषु ज्ञानं] पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान [अमूर्तं मूर्तं] अमूर्त या मूर्त, [अतीन्द्रियं ऐन्द्रियं च अस्ति] अतीन्द्रिय या ऐन्द्रिय होता है; [च तथा सौख्यं] और इसीप्रकार (अमूर्त या मूर्त, अतीन्द्रिय या ऐन्द्रिय) सुख होता है। [तेषु च यत् परं] उसमें जो प्रधान-उत्कृष्ट है [तत् ज्ञेयं] वह उपादेयरूप जानना॥५३॥

टीका :—यहाँ, (ज्ञान तथा सुख दो प्रकारका है-) एक ज्ञान तथा सुख मूर्त और [१]इन्द्रियज है; और दूसरा (ज्ञान तथा सुख) अमूर्त और अतीन्द्रिय है। उसमें जो अमूर्त और अतीन्द्रिय है वह प्रधान होनेसे उपादेयरूप जानना।

वहाँ, पहला ज्ञान तथा सुख मूर्तरूप ऐसी क्षायोपशमिक उपयोगशक्तियोंसे उस-उस प्रकारकी इन्द्रियोंके द्वारा उत्पन्न होता हुआ पराधीन होनेसे [२]कादाचित्क, क्रमशः

---

१. इन्द्रियज = इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होनेवाला; ऐन्द्रिय।

२. कादाचित्क = कदाचित्-कभी कभी होनेवाला; अनित्य।.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सप्रतिपक्षं सहानिवृद्धि च गौणमिति कृत्वा ज्ञानं च सौख्यं च हेयम्। इतरत्पुनरमूर्ताभिश्चैतन्यानुविधायिनीभिरेकाकिनीभिरेवात्मपरिणामशक्तिभिस्तथाविधेभ्योऽतीन्द्रियेभ्यः स्वाभाविकचिदाकारपरिणामेभ्यः समुत्पद्यमानमत्यन्तमात्मायत्तत्वान्नित्यं युगपत्कृतप्रवृत्ति निःप्रतिपक्षमहानिवृद्धि च मुख्यमिति कृत्वा ज्ञानं सौख्यं चोपादेयम्॥५३॥

इत्याद्यधिकारगाथासूत्रमेकं, तदनन्तरमतीन्द्रियज्ञानमुख्यत्वेन 'जं पेच्छदो' इत्यादि सूत्रमेकं, अथेन्द्रियज्ञानमुख्यत्वेन 'जीवो सयं अमुत्तो' इत्यादि गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरमतीन्द्रियसुखमुख्यतया 'जादं सयं' इत्यादि गाथाचतुष्टयं, अथानन्तरमिन्द्रियसुखप्रतिपादनरूपेण गाथाष्टकम्, तत्राप्यष्टकमध्ये प्रथमत इन्द्रियसुखस्य दुःखत्वस्थापनार्थं 'मणुआसुरा' इत्यादि गाथाद्वयं, अथ मुक्तात्मनां देहाभावेऽपि सुखमस्तीति ज्ञापनार्थं देहः सुखकारणं न भवतीति कथनरूपेण 'पप्पा इट्ठे विसये' इत्यादि सूत्रद्वयं, तदनन्तरमिन्द्रियविषया अपि सुखकारणं न भवन्तीति कथनेन 'तिमिरहरा' इत्यादि गाथाद्वयम्, अतोऽपि सर्वज्ञनमस्कारमुख्यत्वेन 'तेजोदिट्ठि' इत्यादि गाथाद्वयम्। एवं पञ्चमस्थले अन्तरस्थलचतुष्टयं भवतीति सुखप्रपञ्चाधिकारे समुदायपातनिका॥ अथातीन्द्रियसुखस्योपादेयभूतस्य स्वरूपं प्रपञ्चयन्नतीन्द्रियज्ञानमतीन्द्रियसुखं चोपादेयमिति, यत्पुनरिन्द्रियजं ज्ञानं सुखं च तद्धेयमिति प्रतिपादनरूपेण प्रथमतस्तावदधिकारस्थलगाथया स्थलचतुष्टयं सूत्रयति—**अत्थि** अस्ति विद्यते। किं कर्तृ। **णाणं** ज्ञानमिति भिन्नप्रक्रमो व्यवहितसम्बन्धः। किंविशिष्टम्। **अमुत्तं मुत्तं** अमूर्तं मूर्तं च। पुनरपि किंविशिष्टम्। **अदिंदियं इंदियं च** यदमूर्तं तदतीन्द्रियं मूर्तं पुनरिन्द्रियजम्। इत्थंभूतं ज्ञानमस्ति। केषु विषयेषु। **अत्थेसु** ज्ञेयपदार्थेषु, **तहा सोक्खं च** तथैव ज्ञानवदमूर्तमतीन्द्रियं मूर्तमिन्द्रियजं च सुखमिति। **जं तेसु परं च तं णेयं** यत्तेषु पूर्वोक्तज्ञानसुखेषु मध्ये परमुत्कृष्टमतीन्द्रियं तदुपादेयमिति ज्ञातव्यम्। तदेव

---

[१]प्रवृत्त होनेवाला, [२]सप्रतिपक्ष और [३]सहानिवृद्धि है इसलिये गौण है ऐसा समझकर वह हेय है अर्थात् छोड़ने योग्य है; और दूसरा ज्ञान तथा सुख अमूर्तरूप ऐसी [४]चैतन्यानुविधायी ऐकाकी आत्मपरिणाम शक्तियोंसे तथाविध अतीन्द्रिय स्वाभाविक-चिदाकार-परिणामोंके द्वारा उत्पन्न होता हुआ अत्यन्त आत्माधीन होनेसे नित्य युगपत् प्रवर्तमान, निःप्रतिपक्ष और हानिवृद्धिसे रहित है, इसलिये मुख्य है, ऐसा समझकर वह (ज्ञान और सुख) उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है॥५३॥

---

१. मूर्तिक इन्द्रियज ज्ञान क्रमसे प्रवृत्त होता है; युगपत् नहीं होता; तथा मूर्तिक इन्द्रियज सुख भी क्रमशः होता है, एक ही साथ सर्व इन्द्रियोंके द्वारा या सर्व प्रकारसे नहीं होता।

२. सप्रतिपक्ष = प्रतिपक्ष-विरोधी सहित। (मूर्त-इन्द्रियज ज्ञान अपने प्रतिपक्ष अज्ञानसहित ही होता है, और मूर्त इन्द्रियज सुख उसके प्रतिपक्षभूत दुःख सहित ही होता है।

३. सहानिवृद्धि = हानिवृद्धि सहित।

४. चैतन्यानुविधायी = चैतन्यके अनुसार वर्तनेवाली; चैतन्यके अनुकूलरूपसे-विरुद्धरूपसे नहीं वर्तनेवाली।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथातीन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमभिष्टौति—

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं।
सयलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं॥५४॥

यत्प्रेक्षमाणस्यामूर्तं मूर्तेष्वतीन्द्रियं च प्रच्छन्नम्।
सकलं स्वकं च इतरत् तद्ज्ञानं भवति प्रत्यक्षम्॥५४॥

अतीन्द्रियं हि ज्ञानं यदमूर्तं यन्मूर्तेष्वप्यतीन्द्रियं यत्प्रच्छन्नं च तत्सकलं

विव्रियते—अमूर्ताभिः क्षायिकीभिरतीन्द्रियाभिश्चिदानन्दैकलक्षणाभिः शुद्धात्मशक्तिभिरुत्पन्नत्वादतीन्द्रियज्ञानं सुखं चात्माधीनत्वेनाविनश्वरत्वादुपादेयमिति; पूर्वोक्तामूर्तशुद्धात्मशक्तिभ्यो विलक्षणाभिः क्षायोपशमिकेन्द्रियशक्तिभिरुत्पन्नत्वादिन्द्रियजं ज्ञानं सुखं च परायत्तत्वेन विनश्वरत्वाद्धेयमिति तात्पर्यम्॥५३॥ एवमधिकारगाथया प्रथमस्थलं गतम्। अथ पूर्वोक्तमुपादेयभूतमतीन्द्रियज्ञानं विशेषेण व्यक्तीकरोति—**जं** यदतीन्द्रियं ज्ञानं कर्तृ। **पेच्छदो** प्रेक्षमाणपुरुषस्य जानाति। किम्। **अमुत्तं** अमूर्तमतीन्द्रियनिरुपरागसदानन्दैकसुखस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रभृति समस्तामूर्तद्रव्यसमूहं **मुत्तेसु अदिंदियं च** मूर्तेषु पुद्गलद्रव्येषु यदतीन्द्रियं परमाण्वादि। **पच्छण्णं** कालाणुप्रभृतिद्रव्यरूपेण प्रच्छन्नं व्यवहितमन्तरितं, अलोकाकाशप्रदेशप्रभृति क्षेत्रप्रच्छन्नं, निर्विकारपरमानन्दैकसुखास्वादपरिणतिरूपपरमात्मनो वर्तमानसमयगतपरिणामास्तत्प्रभृतयो ये समस्तद्रव्याणां वर्तमानसमयगतपरिणामास्ते कालप्रच्छन्नाः, तस्यैव परमात्मनः सिद्धरूपशुद्धव्यञ्जनपर्यायः शेषद्रव्याणां च ये यथासंभवं व्यञ्जनपर्यायास्तेष्वन्त-

---

अब, अतीन्द्रिय सुखका साधनभूत (-कारणरूप) अतीन्द्रिय ज्ञान उपादेय है—इसप्रकार उसकी प्रशंसा करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**प्रेक्षमाणस्य यत्**] देखनेवालेका जो ज्ञान [**अमूर्तं**] अमूर्तको, [**मूर्तेषु**] मूर्त पदार्थोंमें भी [**अतीन्द्रियं**] अतीन्द्रियको, [**च प्रच्छन्नं**] और प्रच्छन्नको, [**सकलं**] इन सबको—[**स्वकं च इतरत**] स्व तथा परको—देखता है, [**तद् ज्ञानं**] वह ज्ञान [**प्रत्यक्षं भवति**] प्रत्यक्ष है॥५४॥

टीका :—जो अमूर्त है, जो मूर्त पदार्थोंमें भी अतीन्द्रिय है, और जो [१]प्रच्छन्न है, उस सबको—जो कि स्व और पर इन दो भेदोंमें समा जाता है उसे—अतीन्द्रिय ज्ञान अवश्य देखता

---

१. प्रच्छन्न = गुप्त; अन्तरित; ढका हुआ।

देखे अमूर्तिक, मूर्तमांय अतीन्द्रि ने, प्रच्छन्नने,
ते सर्वने—पर के स्वकीयने, ज्ञान ते प्रत्यक्ष छे. ५४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

स्वपरविकल्पान्तःपाति प्रेक्षत एव। तस्य खल्वमूर्तेषु धर्माधर्मादिषु, मूर्तेष्वप्यतीन्द्रियेषु परमाण्वादिषु, द्रव्यप्रच्छन्नेषु कालादिषु, क्षेत्रप्रच्छन्नेष्वलोकाकाशप्रदेशादिषु, कालप्रच्छन्नेष्वसांप्रतिकपर्यायेषु, भावप्रच्छन्नेषु स्थूलपर्यायान्तर्लीनसूक्ष्मपर्यायेषु सर्वेष्वपि स्वपरव्यवस्थाव्यवस्थितेष्वस्ति द्रष्टृत्वं, प्रत्यक्षत्वात्। प्रत्यक्षं हि ज्ञानमुद्भिन्नानन्तशुद्धिसन्निधानमनादिसिद्धचैतन्यसामान्यसंबन्धमेकमेवाक्षनामानमात्मानं प्रति नियतमितरां सामग्रीममृगयमाणमनन्तशक्तिसद्भावतोऽनन्ततामुपगतं दहनस्येव दाह्याकाराणां ज्ञानस्य ज्ञेयाकाराणामन-

---

भूताः प्रतिसमयप्रवर्तमानषट्प्रकारप्रवृद्धिहानिरूपा अर्थपर्याया भावप्रच्छन्ना भण्यन्ते। सयलं तत्पूर्वोक्तं समस्तं ज्ञेयं द्विधा भवति। कथमिति चेत्। सगं च इदरं किमपि यथासंभवं स्वद्रव्यगतं इतरत्परद्रव्यगतं च। तदुभयं यतः कारणाज्जानाति तेन कारणेन तं णाणं तत्पूर्वोक्तज्ञानं हवदि भवति। कथंभूतम्। पच्चक्खं प्रत्यक्षमिति। अत्राहं शिष्यः—ज्ञानप्रपञ्चाधिकारः पूर्वमेव गतः, अस्मिन् सुखप्रपञ्चाधिकारे सुखमेव कथनीयमिति। परिहारमाह—यदतीन्द्रियं ज्ञानं पूर्वं भणितं तदेवाभेदनयेन सुखं भवतीति ज्ञापनार्थं, अथवा ज्ञानस्य मुख्यवृत्त्या तत्र हेयोपादेयचिन्ता नास्तीति ज्ञापनार्थं वा। एवमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमिति

है। अमूर्त धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय इत्यादि, मूर्त पदार्थोंमें भी अतीन्द्रिय परमाणु इत्यादि, तथा द्रव्यमें प्रच्छन्न काल इत्यादि (-द्रव्य अपेक्षासे गुप्त ऐसे जो काल धर्मास्तिकाय वगैरह), क्षेत्रमें प्रच्छन्न अलोकाकाशके प्रदेश इत्यादि, कालमें प्रच्छन्न [१]असाम्प्रतिक (अतीत-अनागत) पर्यायें तथा भाव-प्रच्छन्न स्थूल पर्यायोंमें [२]अन्तर्लीन सूक्ष्म पर्यायें हैं, उन सबका—जो कि स्व और परके भेदसे विभक्त हैं उनका वास्तवमें उस अतीन्द्रिय ज्ञानके दृष्टापन है; (अर्थात् उन सबको वह अतीन्द्रिय ज्ञान देखता है) क्योंकि वह (अतीन्द्रिय ज्ञान) प्रत्यक्ष है। जिसे अनन्त शुद्धिका सद्भाव प्रगट हुआ है, ऐसे चैतन्यसामान्यके साथ अनादिसिद्ध सम्बन्धवाले एक ही [३]'अक्ष' नामक आत्माके प्रति जो नियत है (अर्थात् जो ज्ञान आत्माके साथ ही लगा हुआ है—आत्माके द्वारा सीधा प्रवृत्ति करता है), जो (इन्द्रियादिक) अन्य सामग्रीको नहीं ढूँढता और जो अनन्तशक्तिके सद्भावके कारण अनन्तताको (-बेहदताको) प्राप्त है, ऐसे उस प्रत्यक्ष ज्ञानको—जैसे दाह्याकार दहनका अतिक्रमण नहीं करते उसीप्रकार ज्ञेयाकार ज्ञानका [४]अतिक्रम (उल्लंघन) न करनेसे—यथोक्त प्रभावका अनुभव करते हुए (-उपर्युक्त पदार्थोंको जानते हुए) कौन रोक

---

१. असांप्रतिक= अतात्कालिक; वर्तमानकालीन नहि ऐसा; अतीत-अनागत.

२. अन्तर्लीन = अन्दर लीन हुए; अन्तर्मग्न।

३. अक्ष = आत्माका नाम 'अक्ष' भी है। (इन्द्रियज्ञान अक्ष = अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा जानता है; अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान अक्ष अर्थात् आत्माके द्वारा ही जानता है।)

४. ज्ञेयाकार ज्ञानको पार नहीं कर सकते—ज्ञानकी हद बाहर जा नहीं सकते, ज्ञानमें जान ही लेते है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

तिक्रमाद्यथोदितानुभावमनुभवत्तत् केन नाम निवार्येत। अतस्तदुपादेयम्॥५४॥

अथेन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमिन्द्रियज्ञानं हेयं प्रणिन्दति—

जीवो सयं अमुत्तो मुत्तिगदो तेण मुत्तिणा मुत्तं।
ओगेण्हित्ता जोग्गं जाणदि वा तं ण जाणादि॥५५॥

जीवः स्वयममूर्तो मूर्तिगतस्तेन मूर्तेन मूर्तम्।
अवगृह्य योग्यं जानाति वा तन्न जानाति॥५५॥

इन्द्रियज्ञानं हि मूर्तोपलम्भकं मूर्तोपलभ्यं च। तद्वान् जीवः स्वयममूर्तोऽपि

कथनमुख्यत्वेनैकगाथया द्वितीयस्थलं गतम्॥५४॥ अथ हेयभूतस्येन्द्रियसुखस्य कारणत्वादल्पविषयत्वाच्चेन्द्रियज्ञानं हेयमित्युपदिशति---जीवो सयं अमुत्तो जीवस्तावच्छक्तिरूपेण शुद्धद्रव्यार्थिक-

---

सकता है? (अर्थात् कोई नहीं रोक सकता।) इसलिये वह (अतीन्द्रिय ज्ञान) उपादेय है॥५४॥

अब, इन्द्रियसुखका साधनभूत (-कारणरूप) इन्द्रियज्ञान हेय है—इसप्रकार उसकी निन्दा करते हैं—

अन्वयार्थ :—[स्वयं अमूर्तः] स्वयं अमूर्त ऐसा [जीवः] जीव [मूर्तिगतः] मूर्त शरीरको प्राप्त होता हुआ [तेन मूर्तेन] उस मूर्त शरीरके द्वारा [योग्य मूर्तं] योग्य मूर्त पदार्थको [अवग्रह्य] [1]अवग्रह करके (—इन्द्रियग्रहणयोग्य मूर्त पदार्थका अवग्रह करके) [तत्] उसे [जानाति] जानता है [वा न जानाति] अथवा नहीं जानता (—कभी जानता है और कभी नहीं जानता)॥५५॥

टीका :—इन्द्रियज्ञानको [2]उपलम्भक भी मूर्त है और [3]उपलभ्य भी मूर्त है। वह

---

१. अवग्रह = मतिज्ञानसे किसी पदार्थको जाननेका प्रारम्भ होने पर पहले ही अवग्रह होता है क्योंकि मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा—इस क्रमसे जानता है।

२. उपलम्भक = बतानेवाला, जाननेमें निमित्तभूत। (इन्द्रियज्ञानको पदार्थोंके जाननेमें निमित्तभूत मूर्त पंचेन्द्रियात्मक शरीर है)।

३. उपलभ्य = जनाने योग्य।

पोते अमूर्तिक जीव मूर्तशरीरगत अे मूर्तथी
कदी योग्य मूर्त अवग्रही जाणे, कदीक जाणे नहीं. ५५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पंचेन्द्रियात्मकं शरीरं मूर्तमुपागतस्तेन ज्ञप्तिनिष्पत्तौ बलाधाननिमित्ततयोपलम्भकेन मूर्तेन मूर्तं स्पर्शादिप्रधानं वस्तूपलभ्यतामुपागतं योग्यमवगृह्य कदाचित्तदुपर्युपरि शुद्धिसंभवादवगच्छति, कदाचित्तदसंभवान्नावगच्छति, परोक्षत्वात्। परोक्षं हि ज्ञानमतिदृढतराज्ञानतमोग्रन्थिगुण्ठनान्निमीलितस्यानादिसिद्धचैतन्यसामान्यसंबन्धस्याप्यात्मनः स्वयं परिच्छेत्तुमर्थमसमर्थस्योपात्तानुपात्तपरप्रत्ययसामग्रीमार्गणव्यग्रतयात्यन्तविसंष्ठुलत्वमवलम्बमानमनन्तायाः शक्तेः परिस्खलनान्नितान्तविक्लवीभूतं महामोहमल्लस्य जीवदवस्थत्वात् परपरिणतिप्रवर्तिताभिप्रायमपि पदे पदे प्राप्तविप्रलम्भमनुपलंभसंभावनामेव परमार्थतोऽर्हति। अतस्तद्धेयम्॥५५॥

नयेनामूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखस्वभावः, पश्चादनादिबन्धवशात् व्यवहारनयेन मुत्तिगदो मूर्तशरीरगतो मूर्तशरीरपरिणतो भवति। तेण मुत्तिणा तेन मूर्तशरीरेण मूर्तशरीराधारोत्पन्नमूर्तद्रव्येन्द्रियभावेन्द्रियाधारेण मुत्तं मूर्तं वस्तु ओगेण्हित्ता अवग्रहादिकेन क्रमकरणव्यवधानरूपं कृत्वा जोग्गं तत्स्पर्शादिमूर्तं वस्तु।

इन्द्रियज्ञानवाला जीव स्वयं अमूर्त होने पर भी मूर्त-पंचेन्द्रियात्मक शरीरको प्राप्त होता हुआ, ज्ञप्ति उत्पन्न करनेमें बल-धारणका निमित्त होनेसे जो उपलम्भक है ऐसे उस मूर्त (शरीर) के द्वारा मूर्त ऐसी [१]स्पर्शादिप्रधान वस्तुको—जो कि योग्य हो अर्थात् जो (इन्द्रियोंके द्वारा) उपलभ्य हो उसे—अवग्रह करके, कदाचित उससे आगे-आगेकी शुद्धिके सद्भावके कारण उसे जानता है और कदाचित अवग्रहसे आगे आगेकी शुद्धिके असद्भावके कारण नहीं जानता, क्योंकि वह (इन्द्रिय ज्ञान) परोक्ष है। परोक्षज्ञान, चैतन्यसामान्यके साथ (आत्माका) अनादिसिद्ध सम्बन्ध होने पर भी जो अति दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थि (अन्धकारसमूह) द्वारा आवृत हो गया है, ऐसा आत्मा पदार्थको स्वयं जाननेके लिये असमर्थ होनेसे [२]उपात्त और [३]अनुपात्त परपदार्थरूप सामग्रीको ढूँढ़नेकी व्यग्रतासे अत्यन्त चंचल-तरल-अस्थिर वर्तता हुआ, अनन्तशक्तिसे च्युत होनेसे अत्यन्त [४]विक्लव वर्तता हुआ, महामोह-मल्लके जीवित होनेसे परपरिणतिका (-परको परिणमित करनेका) अभिप्राय करने पर भी पद पद पर ठगाता हुआ, परमार्थतः अज्ञानमें गिने जाने योग्य है। इसलिये वह हेय है।

भावार्थ :—इन्द्रियज्ञान इन्द्रियोंके निमित्तसे मूर्त स्थूल इन्द्रियगोचर पदार्थोंको ही क्षायोपशमिक ज्ञानके अनुसार जान सकता है। परोक्षभूत वह इन्द्रिय ज्ञान इन्द्रिय, प्रकाश, आदि बाह्य सामग्रीको ढूँढ़नेकी व्यग्रताके (-अस्थिरताके) कारण अतिशय चंचल-क्षुब्ध

---

१. स्पर्शादिप्रधान = जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण मुख्य हैं , ऐसी।

२. उपात्त = प्राप्त (इन्द्रिय, मन इत्यादि उपात्त पर पदार्थ हैं)

३. अनुपात्त = अप्राप्त (प्रकाश इत्यादि अनुपात्त पर पदार्थ हैं)

४. विक्लव = खिन्न; दुःखी, घबराया हुआ।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथेन्द्रियाणां स्वविषयमात्रेऽपि युगपत्प्रवृत्त्यसंभवाद्धेयमेवेन्द्रियज्ञानमित्यवधारयति—

फासो रसो य गंधो वण्णो सद्दो य पोग्गला होंति।
अक्खाणं ते अक्खा जुगवं ते णेव गेण्हंति॥५६॥

स्पर्शो रसश्च गन्धो वर्णः शब्दश्च पुद्गला भवन्ति।
अक्षाणां तान्यक्षाणि युगपत्तान्नैव गृह्णन्ति॥५६॥

इन्द्रियाणां हि स्पर्शरसगन्धवर्णप्रधानाः शब्दश्च ग्रहणयोग्याः पुद्गलाः। अथेन्द्रियैर्युग-

---

कतंभूतम्। इन्द्रियग्रहणयोग्यम्। जाणदि वा तं ण जाणादि स्वावरणक्षयोपशमयोग्यं किमपि स्थूलं जानाति, विशेषक्षयोपशमाभावात् सूक्ष्मं न जानातीति। अयमत्र भावार्थः—इन्द्रियज्ञानं यद्यपि व्यवहारेण प्रत्यक्षं भण्यते, तथापि निश्चयेन केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमेव। परोक्षं तु यावतांशेन सूक्ष्मार्थं न जानाति तावतांशेन चित्तखेदकारणं भवति। खेदश्च दुःखं, ततो दुःखजनकत्वादिन्द्रियज्ञानं हेयमिति॥५५॥ अथ चक्षुरादीन्द्रियज्ञानं रूपादिस्वविषयमपि युगपन्न जानाति तेन कारणेन हेयमिति

है, अल्प शक्तिवान होनेसे खेद खिन्न है, परपदार्थोंको परिणमित करानेका अभिप्राय होने पर भी पद पद पर ठगा जाता है (क्योंकि पर पदार्थ आत्माके आधीन परिणमित नहीं होते) इसलिये परमार्थसे वह ज्ञान 'अज्ञान' नामके ही योग्य है। इसलिये वह हेय है॥५५॥

अब, इन्द्रियाँ मात्र अपने विषयोंमें भी युगपत् प्रवृत्त नहीं होतीं, इसलिये इन्द्रियज्ञान हेय ही है, ऐसा निश्चय करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[स्पर्शः] स्पर्श, [रसः च] रस, [गंधः] गंध, [वर्णः] वर्ण [शब्दः च] और शब्द [पुद्गलाः] पुद्गल हैं, वे [अक्षाणां भवन्ति] इन्द्रियोंके विषय हैं [तानि अक्षाणि] (परन्तु) वे इन्द्रियाँ [तान्] उन्हें (भी) [युगपत्] एक साथ [न एव गृह्णन्ति] ग्रहण नहीं करतीं (नहीं जान सकतीं)॥५६॥

टीका :—[1]मुख्य ऐसे स्पर्श-रस-गंध-वर्ण तथा शब्द—जो कि पुद्गल हैं वे—

---

१. स्पर्श, रस, गंध और वर्ण–यह पुद्गलके मुख्य गुण हैं।

रस, गंध, स्पर्श वळी वरण ने शब्द जे पौद्गलिक ते
छे इन्द्रिविषयो, तेमनेय न इन्द्रियो युगपद ग्रहे. ५६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पत्तेऽपि न गृह्यन्ते, तथाविधक्षयोपशमनशक्तेरसंभवात्। इन्द्रियाणां हि क्षयोपशमसंज्ञिकायाः परिच्छेत्र्याः शक्तेरन्तरंगायाः काकाक्षितारकवत् क्रमप्रवृत्तिवशादनेकतः प्रकाशयितुमसमर्थत्वात्सत्स्वपि द्रव्येन्द्रियद्वारेषु न यौगपद्येन निखिलेन्द्रियार्थावबोधः सिद्ध्येत्, परोक्षत्वात् ॥५६॥

निश्चिनोति—**फासो रसो य गंधो वण्णो सद्दो य पोग्गला होंति** स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः पुद्गला मूर्ता भवन्ति। ते च विषयाः। केषाम्। **अक्खाणं** स्पर्शनादीन्द्रियाणां। ते **अक्खा** तान्यक्षाणीन्द्रियाणी कर्तृणि **जुगवं ते णेव गेण्हंति युगपत्तान्** स्वकीयविषयानपि न गृह्णन्ति न जानन्तीति। अयमत्राभिप्रायः—यथा सर्वप्रकारोपादेयभूतस्यानन्तसुखस्योपादानकारणभूतं केवलज्ञानं युगपत्समस्तं वस्तु जानत्सत् जीवस्य सुखकारणं भवति, तथेदमिन्द्रियज्ञानं स्वकीयविषयेऽपि युगपत्परिज्ञानाभावात्सुखकारणं न भवति॥५६॥

इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण होने योग्य (-ज्ञात होने योग्य), हैं। (किन्तु) इन्द्रियोंके द्वारा वे भी युगपद् (एक साथ) ग्रहण नहीं होते (-जाननेमें नहीं आते) क्योंकि क्षयोपशमकी उसप्रकारकी शक्ति नहीं है। इन्द्रियोंके जो क्षयोपशम नामकी अन्तरंग ज्ञातृशक्ति है वह कौवेकी आँखकी पुतलीकी भाँति क्रमिक प्रवृत्तिवाली होनेसे अनेकतः प्रकाशके लिये (-एक ही साथ अनेक विषयोंको जाननेके लिये) असमर्थ है, इसलिये द्रव्येन्द्रियद्वारोंके विद्यमान होने पर भी समस्त इन्द्रियोंके विषयोंका (-विषयभूत पदार्थोंका) ज्ञान एक ही साथ नहीं होता, क्योंकि इन्द्रिय ज्ञान परोक्ष है।

भावार्थ :—कौवेकी दो आँखें होती हैं किन्तु पुतली एक ही होती है। कौवेको जिस आँखसे देखना हो उस आँखमें पुतली आ जाती है; उस समय वह दूसरी आँखसे नहीं देख सकता। ऐसा होने पर भी वह पुतली इतनी जल्दी दोनों आँखोंमें आतीजाती है कि लोगोंको ऐसा मालूम होता है कि दोनों आँखोंमें दो भिन्न-भिन्न पुतलियाँ हैं; किन्तु वास्तवमें वह एक ही होती है। ऐसी ही दशा क्षायोपशमिक ज्ञानकी है। द्रव्य-इन्द्रियरूपी द्वार तो पाँच हैं, किन्तु क्षायोपशमिक ज्ञान एक समय एक इन्द्रिय द्वारा ही जान सकता है; उस समय दूसरी इन्द्रियोंके द्वारा कार्य नहीं होता। जब क्षायोपशमिक ज्ञान नेत्रके द्वारा वर्णको देखनेका कार्य करता है तब वह शब्द, गंध, रस या स्पर्शको नहीं जान सकता; अर्थात् जब उस ज्ञानका उपयोग नेत्रके द्वारा वर्णके देखनेमें लगा होता है तब कानमें कौनसे शब्द पड़ते हैं या नाकमें कैसी गन्ध आती है इत्यादि ख्याल नहीं रहता। यद्यपि ज्ञानका उपयोग एक विषयमेंसे दूसरेमें अत्यन्त शीघ्रतासे बदलता है, इसलिये स्थूलदृष्टिसे देखनेमें ऐसा लगता है कि मानों सभी विषय एक ही साथ ज्ञात होते हों, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर क्षायोपशमिक ज्ञान एक समयमें एक ही इन्द्रियके द्वारा प्रवर्तमान होता हुआ स्पष्टतया भासित होता है। इसप्रकार इन्द्रियाँ अपने विषयोंमें भी क्रमशः प्रवर्तमान होनेसे परोक्षभूत इन्द्रियज्ञान हेय है॥५६॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथेन्द्रियज्ञानं न प्रत्यक्षं भवतीति निश्चिनोति—

परदव्वं ते अक्खा णेव सहावो त्ति अप्पणो भणिदा।
उवलद्धं तेहि कधं पच्चक्खं अप्पणो होदि॥५७॥

परद्रव्यं तान्यक्षाणि नैव स्वभाव इत्यात्मनो भणितानि।
उपलब्धं तैः कथं प्रत्यक्षमात्मनो भवति॥५७॥

आत्मानमेव केवलं प्रति नियतं किल प्रत्यक्षम्। इदं तु व्यतिरिक्तास्तित्वयोगितया परद्रव्यतामुपगतैरात्मनः स्वभावतां मनागप्यसंस्पृशद्भिरिन्द्रियैरुपलभ्योपजन्यमानं न नामात्मनः प्रत्यक्षं भवितुमर्हति॥५७॥

अथेन्द्रियज्ञानं प्रत्यक्षं न भवतीति व्यवस्थापयति—**परदव्वं ते अक्खा** तानि प्रसिद्धान्यक्षाणीन्द्रियाणि परद्रव्यं भवन्ति। कस्य। आत्मनः। **णेव सहावो त्ति अप्पणो भणिदा** योऽसौ विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव आत्मनः संबन्धी तत्स्वभावानि निश्चयेन न भणितानीन्द्रियाणि। कस्मात्। भिन्नास्तित्वनिष्पन्नत्वात्। **उवलद्धं तेहि** उपलब्धं ज्ञातं यत्पञ्चेन्द्रियविषयभूतं वस्तु तैरिन्द्रियैः **कधं पच्चक्खं अप्पणो होदि** तद्वस्तु कथं प्रत्यक्षं भवत्यात्मनो, न कथमपीति। तथैव च नानामनोरथव्यातिविषये प्रतिपाद्यप्रतिपादकादिविकल्पजालरूपं यन्मनस्तदपीन्द्रियज्ञानवन्निश्चयेन परोक्षं भवतीति ज्ञात्वा किं कर्तव्यम्। सकलैकाखण्डप्रत्यक्ष-

---

अब, यह निश्चय करते हैं कि इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है :—

अन्वयार्थ :—[**तानि अक्षाणि**] वे इन्द्रियाँ [**परद्रव्यं**] पर द्रव्य हैं [**आत्मनः स्वभावः इति**] उन्हें आत्मस्वभावरूप [**न एव भणितानि**] नहीं कहा है; [**तैः**] उनके द्वारा [**उपलब्धं**] ज्ञात [**आत्मनः**] आत्माको [**प्रत्यक्षं**] प्रत्यक्ष [**कथं भवति**] कैसे हो सकता है?॥५७॥

टीका :—जो केवल आत्माके प्रति ही नियत हो वह (ज्ञान) वास्तवमें प्रत्यक्ष है। यह (इन्द्रियज्ञान) तो, जो भिन्न अस्तित्ववाली होनेसे परद्रव्यत्वको प्राप्त हुई है, और आत्मस्वभावत्वको किंचित्मात्र स्पर्श नहीं करतीं (आत्मस्वभावरूप किंचित्मात्र भी नहीं हैं) ऐसी इन्द्रियोंके द्वारा उपलब्धि करके (-ऐसी इन्द्रियोंके निमित्तसे पदार्थोंको जानकर) उत्पन्न होता है, इसलिये वह (इन्द्रियज्ञान) आत्माके लिये प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

भावार्थ :—जो सीधा आत्माके द्वारा ही जानता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। इन्द्रियज्ञान

ते इन्द्रियो परद्रव्य, जीवस्वभाव भाखी न तेमने;
तेनाथी जे उपलब्ध ते प्रत्यक्ष कई रीत जीवने?. ५७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ परोक्षप्रत्यक्षलक्षणमुपलक्षयति—

जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खं ति भणिदमट्ठेसु।
जदि केवलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं॥५८॥

यत्परतो विज्ञानं तत्तु परोक्षमिति भणितमर्थेषु।
यदि केवलेन ज्ञातं भवति हि जीवेन प्रत्यक्षम्॥५८॥

यत्तु खलु परद्रव्यभूतादन्तःकरणादिन्द्रियात्परोपदेशादुपलब्धेः संस्कारादालोकादेर्वा

प्रतिभासमयपरमज्योतिःकारणभूते स्वशुद्धात्मस्वरूपभावनासमुत्पन्नपरमाह्लादैकलक्षणसुखसंवित्त्याकार-परिणतिरूपे रागादिविकल्पोपाधिरहिते स्वसंवेदनज्ञाने भावना कर्तव्या इत्यभिप्रायः॥५७॥ अथ पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणं कथयति—**जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खं ति भणिदं** यत्परतः सकाशाद्विज्ञानं परिज्ञानं भवति तत्पुनः परोक्षमिति भणितम्। केषु विषयेषु। **अट्ठेसु** ज्ञेयपदार्थेषु। **जदि**

परद्रव्यरूप इन्द्रियोंके द्वारा जानता है इसलिये वह प्रत्यक्ष नहीं है॥५७॥

अब, परोक्ष और प्रत्यक्षके लक्षण बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**परतः**] परके द्वारा होनेवाला [**यत्**] जो [**अर्थेषु विज्ञानं**] पदार्थ सम्बन्धी विज्ञान है [**तत् तु**] वह तो [**परोक्षं इति भणितं**] परोक्ष कहा गया है, [**यदि**] यदि [**केवलेन जीवेण**] मात्र जीवके द्वारा ही [**ज्ञातं भवति हि**] जाना जाये तो [**प्रत्यक्षं**] वह ज्ञान प्रत्यक्ष है॥५८॥

टीका :—निमित्तताको प्राप्त (निमित्तरूप बने हुए) ऐसे जो परद्रव्यभूत अंतःकरण (मन), इन्द्रिय, [१]परोपदेश, [२]उपलब्धि, [३]संस्कार या [४]प्रकाशादिक हैं उनके द्वारा होनेवाला

---

१. परोपदेश = अन्यका उपदेश।

२. उपलब्धि = ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके निमित्तसे उत्पन्न पदार्थोंको जाननेकी शक्ति। (यह 'लब्ध' शक्ति जब 'उपर्युक्त' होती है, तभी पदार्थ ज्ञात होता है।)

३. संस्कार = पूर्व ज्ञात पदार्थकी धारणा।

४. चक्षुइन्द्रिय द्वारा रूपी पदार्थको देखनेमें प्रकाश भी निमित्तरूप होता है।

अर्थो तणुं जे ज्ञान परतः थाय तेह परोक्ष छे;
जीवमात्रथी ज जणाय जो , तो ज्ञान ते प्रत्यक्ष छे. ५८.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

निमित्ततामुपगतात् स्वविषयमुपगतस्यार्थस्य परिच्छेदनं तत् परतः प्रादुर्भवत्परोक्षमित्या-लक्ष्यते। यत्पुनरन्तःकरणमिन्द्रियं परोपदेशमुपलब्धिं संस्कारमालोकादिकं वा समस्तमपि परद्रव्यमनपेक्ष्यात्मस्वभावमेवैकं कारणत्वेनोपादाय सर्वद्रव्यपर्यायजातमेकपद एवाभिव्याप्य प्रवर्तमानं परिच्छेदनं तत् केवलादेवात्मनः संभूतत्वात् प्रत्यक्षमित्यालक्ष्यते। इह हि सहजसौख्यसाधनीभूतमिदमेव महाप्रत्यक्षमभिप्रेतमिति ॥५८॥

अथैतदेव प्रत्यक्षं पारमार्थिकसौख्यत्वेनोपक्षिपति—

जादं सयं समंतं णाणमणंतत्थवित्थडं विमलं।
रहियं तु ओग्गहादिहिं सुहं ति एगंतियं भणिदं॥५९॥

केवलेण णादं हवदि हि यदि केवलेनासहायेन ज्ञातं भवति हि स्फुटम्। केन कर्तृभूतेन। जीवेण जीवेन। तर्हि **पच्चक्खं** प्रत्यक्षं भवतीति। अतो विस्तरः—इन्द्रियमनःपरोपदेशालोकादिबहिरङ्गनिमित्तभूतात्तथैव च ज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितार्थग्रहणशक्तिरूपाया उपलब्धेरर्थावधारणरूपसंस्काराच्चान्तरङ्गकारणभूतात्-सकाशादुत्पद्यते यद्विज्ञानं तत्पराधीनत्वात्परोक्षमित्युच्यते। यदि पुनः पूर्वोक्तसमस्तपरद्रव्यमनपेक्ष्य केवलाच्छुद्धबुद्धैकस्वभावात्परमात्मनः सकाशात्समुत्पद्यते ततोऽक्षनामानमात्मानं प्रतीत्योत्पद्यमानत्वा-त्प्रत्यक्षं भवतीति सूत्राभिप्रायः॥५८॥ एवं हेयभूतेन्द्रियज्ञानकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन तृतीयस्थलं गतम्। अथाभेदनयेन पञ्चविशेषणविशिष्टं केवलज्ञानमेव सुखमिति प्रतिपादयति—**जादं** जातं

जो स्वविषयभूत पदार्थका ज्ञान, वह परके द्वारा [१]प्रादुर्भावको प्राप्त होनेसे 'परोक्ष'-के रूपमें जाना जाता है, और अंतःकरण, इन्द्रिय, परोपदेश, उपलब्धि संस्कार या प्रकाशादिक—सब परद्रव्यकी अपेक्षा रखे बिना एकमात्र आत्मस्वभावको ही कारणरूपसे ग्रहण करके सर्व द्रव्य-पर्यायोंके समूहमें एक समय ही व्याप्त होकर प्रवर्तमान ज्ञान वह केवल आत्माके द्वारा ही उत्पन्न होनेसे 'प्रत्यक्ष' के रूपमें जाना जाता है।

यहाँ (इस गाथामें) सहज सुखका साधनभूत ऐसा यही महाप्रत्यक्ष ज्ञान इच्छनीय माना गया है—उपादेय माना गया है (ऐसा आशय समझना) ॥५८॥

---

१ प्रादुर्भावको प्राप्त = प्रगट उत्पन्न।

स्वयमेव जात, समंत, अर्थ अनंतमां विस्तृत ने
अवग्रह-ईहादि रहित, निर्मल ज्ञान सुख एकांत छे. ५९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

जातं स्वयं समंतं ज्ञानमनन्तार्थविस्तृतं विमलम्।
रहितं त्ववग्रहादिभिः सुखमिति ऐकान्तिकं भणितम्॥५९॥

स्वयं जातत्वात्, समन्तत्वात्, अनन्तार्थविस्तृतत्वात्, विमलत्वात्, अवग्रहादि-रहितत्वाच्च प्रत्यक्षं ज्ञानं सुखमैकान्तिकमिति निश्चीयते, अनाकुलत्वैकलक्षणत्वात्सौख्यस्य। यतो हि परतो जायमानं पराधीनतया, असमंतमितरद्वारावरणेन, कतिपयार्थप्रवृत्तमितरार्थ-बुभुत्सया, समलमसम्यगवबोधेन, अवग्रहादिसहितं क्रमकृतार्थग्रहणखेदेन परोक्षं ज्ञानमत्यन्त-

उत्पन्नम्। किं कर्तृ। णाणं केवलज्ञानम्। कथं जातम्। सयं स्वयमेव। पुनरपि किंविशिष्टम्। समंतं परिपूर्णम्। पुनरपि किंरूपम्। अणंतत्थवित्थडं अनन्तार्थविस्तीर्णम्। पुनः कीदृशम्। विमलं संशयादिमल-

अब, इसी प्रत्यक्षज्ञानको पारमार्थिक सुखरूप बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**स्वयं जातं**] अपने आप ही उत्पन्न [**समंतं**] समंत (सर्व प्रदेशोंसे जानता हुआ) [**अनन्तार्थविस्तृतं**] अनन्त पदार्थोंमें विस्तृत [**विमलं**] विमल [**तु**] और [**अवग्रहादिभिः रहितं**] अवग्रहादिसे रहित—[**ज्ञानं**] ऐसा ज्ञान [**ऐकान्तिकं सुखं**] ऐकान्तिक सुख है [**इति भणितं**] ऐसा (सर्वज्ञदेवने) कहा है॥५९॥

टीका :—(१) 'स्वयं उत्पन्न' होनेसे, (२) [१]'समंत' होनेसे, (३) 'अनन्त-पदार्थोंमें विस्तृत' होनेसे, (४) 'विमल' होनेसे और (५) 'अवग्रहादि रहित' होनेसे, प्रत्यक्षज्ञान [२]ऐकान्तिक सुख है यह निश्चित होता है, क्योंकि एक मात्र अनाकुलता ही सुखका लक्षण है।

(इसी बातको विस्तारपूर्वक समझाते हैं :—)

(१) 'परके द्वारा उत्पन्न' होता हुआ पराधीनताके कारण (२) [३]'असमंत' होनेसे [४]इतर द्वारोंके आवरणके कारण (३) 'मात्र कुछ पदार्थोंमें प्रवर्तमान' होता हुआ अन्य पदार्थोंको जाननेकी इच्छाके कारण, (४) 'समल' होनेसे असम्यक् अवबोधके कारण (—कर्ममलयुक्त होनेसे संशय-विमोह-विभ्रम सहित जाननेके कारण), और (५) 'अवग्रहादि सहित' होनेसे क्रमशः होनेवाले [५]पदार्थग्रहणके खेदके कारण (-इन कारणोंको लेकर), परोक्ष ज्ञान अत्यन्त

१. समन्त = चारों ओर-सर्व भागोंमें वर्तमान; सर्व आत्मप्रदेशोंसे जानता हुआ; समस्त; सम्पूर्ण, अखण्ड।

२. ऐकान्तिक = परिपूर्ण; अन्तिम, अकेला; सर्वथा।

३. परोक्ष ज्ञान खंडित है अर्थात् वह अमुक प्रदेशोंके द्वारा ही जानता है; जैसे-वर्ण आँख जितने प्रदेशोंके द्वारा ही (इन्द्रियज्ञानसे) ज्ञात होता है; अन्य द्वार बन्द हैं।

४. इतर = दूसरे; अन्य; उसके सिवायके।

५. पदार्थग्रहण अर्थात् पदार्थका बोध एक ही साथ न होने पर अवग्रह, ईहा इत्यादि क्रमपूर्वक होनेसे खेद होता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

माकुलं भवति। ततो न तत् परमार्थतः सौख्यम्। इदं तु पुनरनादिज्ञानसामान्य-स्वभावस्योपरि महाविकाशेनाभिव्याप्य स्वत एव व्यवस्थितत्वात्स्वयं जायमानमात्माधीनतया, समन्तात्मप्रदेशान् परमसमक्षज्ञानोपयोगीभूयाभिव्याप्य व्यवस्थितत्वात्समन्तम् अशेषद्वारा-पावरणेन, प्रसभं निपीतसमस्तवस्तुज्ञेयाकारं परमं वैश्वरूप्यमभिव्याप्य व्यवस्थितत्वादनन्तार्थ-विस्तृतं समस्तार्थाबुभुत्सया, सकलशक्तिप्रतिबन्धककर्मसामान्यनिष्क्रान्ततया परिस्पष्ट-प्रकाशभास्वरं स्वभावमभिव्याप्य व्यवस्थितत्वाद्विमलं सम्यगवबोधेन, युगपत्समर्पित-त्रैसमयिकात्मस्वरूपं लोकालोकमभिव्याप्य व्यवस्थितत्वादवग्रहादिरहितं क्रमकृतार्थग्रहण-खेदाभावेन प्रत्यक्षं ज्ञानमनाकुलं भवति। ततस्तत्पारमार्थिकं खलु सौख्यम्॥५६॥

रहितम्। पुनरपि कीदृक्। रहियं तु ओग्गहादिहिं अवग्रहादिरहितं चेति। एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं यत्केवलज्ञानं सुहं ति एगंतियं भणिदं तत्सुखं भणितम्। कथंभूतम्। ऐकान्तिकं नियमेनेति। तथाहि— परनिरपेक्षत्वेन चिदानन्दैकस्वभावं निजशुद्धात्मानमुपादानकारणं कृत्वा समुत्पद्यमानत्वात्स्वयं जायमानं

आकुल है; इसलिये वह परमार्थसे सुख नहीं है।

और यह प्रत्यक्ष ज्ञान तो अनाकुल है, क्योंकि—(१) अनादि ज्ञानसामान्यरूप स्वभाव पर महा विकाससे व्याप्त होकर स्वतः ही रहनेसे 'स्वयं उत्पन्न होता है,' इसलिये आत्माधीन है, (और आत्माधीन होनेसे आकुलता नहीं होती); (२) समस्त आत्मप्रदेशोंमें परम [१]समक्ष ज्ञानोपयोगरूप होकर, व्याप्त होनेसे 'समंत है', इसलिये अशेष द्वार खुले हुए हैं (और इसप्रकार कोई द्वार बन्द न होनेसे आकुलता नहीं होती); (३) समस्त वस्तुओंके ज्ञेयाकारोंको सर्वथा पी जानेसे [२]परम विविधतामें व्याप्त होकर रहनेसे 'अनन्त पदार्थोंमें विस्तृत है,' इसलिये सर्व पदार्थोंको जाननेकी इच्छाका अभाव है (और इसप्रकार किसी पदार्थको जाननेकी इच्छा न होनेसे आकुलता नहीं होती); (४) सकल शक्तिको रोकनेवाला कर्मसामान्य (ज्ञानमेंसे) निकल जानेसे (ज्ञान) अत्यन्त स्पष्ट प्रकाशके द्वारा प्रकाशमान (-तेजस्वी) स्वभावमें व्याप्त होकर रहनेसे 'विमल है' इसलिये सम्यक्रूपसे (-बराबर) जानता है (और इसप्रकार संशयादि रहिततासे जाननेके कारण आकुलता नहीं होती); तथा (५) जिनने त्रिकालका अपना स्वरूप युगपत् समर्पित किया है (-एक ही समय बताया है) ऐसे लोकालोकमें व्याप्त होकर रहनेसे 'अवग्रहादि रहित है' इसलिये क्रमशः होनेवाले पदार्थ ग्रहणके खेदका अभाव है।—इसप्रकार (उपरोक्त पाँच कारणोंसे) प्रत्यक्ष ज्ञान अनाकुल है। इसलिये वास्तवमें वह पारमार्थिक सुख है।

---

१. समक्ष = प्रत्यक्ष

२. परमविविधता = समस्त पदार्थसमूह जो कि अनन्त विविधतामय है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ केवलस्यापि परिणामद्वारेण खेदस्य संभवादैकान्तिकसुखत्वं नास्तीति प्रत्याचष्टे—

जं केवलं ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।
खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा॥६०॥

यत्केवलमिति ज्ञानं तत्सौख्यं परिणामश्च स चैव।
खेदस्तस्य न भणितो यस्मात् घातीनि क्षयं जातानि॥६०॥

अत्र को हि नाम खेदः, कश्च परिणामः कश्च केवलसुखयोर्व्यतिरेकः, यतः केवलस्यैकान्तिकसुखत्वं न स्यात्। खेदस्यायतनानि घातिकर्माणि, न नाम केवलं परिणाम-

---

सत्, सर्वशुद्धात्मप्रदेशाधारत्वेनोत्पन्नत्वात्समस्तं सर्वज्ञानाविभागपरिच्छेदपरिपूर्णं सत्, समस्तावरणक्षयेनोत्पन्नत्वात्समस्तज्ञेयपदार्थग्राहकत्वेन विस्तीर्णं सत्, संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन सूक्ष्मादिपदार्थपरिच्छित्तिविषयेऽत्यन्तविशदत्वाद्विमलं सत्, क्रमकरणव्यवधानजनितखेदाभावादवग्रहादिरहितं च सत्, यदेवं पञ्चविशेषणविशिष्टं क्षायिकज्ञानं तदनाकुलत्वलक्षणपरमानन्दैकरूपपारमार्थिकसुखात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि निश्चयेनाभिन्नत्वात्पारमार्थिकसुखं भण्यते—इत्यभिप्रायः॥५९॥ अथानन्तपदार्थपरिच्छेदनात्केवलज्ञानेऽपि खेदोऽस्तीति पूर्वपक्षे सति परिहारमाह—**जं केवलं ति णाणं तं सोक्खं**

भावार्थ :—क्षायिकज्ञान-केवलज्ञान एकान्त सुखस्वरूप हैं॥५९॥

अब, ऐसे अभिप्रायका खंडन करते हैं कि 'केवलज्ञानको भी परिणामके द्वारा [१]खेदका सम्भव होनेसे केवलज्ञान ऐकान्तिक सुख नहीं है :—

अन्वयार्थ :—[यत्] जो [केवलं इति ज्ञानं] 'केवल' नामका ज्ञान है [तत् सौख्यं] वह सुख है [परिणामः च] परिणाम भी [सः च एव] वही है [तस्य खेदः न भणितः] उसे खेद नहीं कहा है (अर्थात् केवलज्ञानमें सर्वज्ञदेवने खेद नहीं कहा) [यस्मात्] क्योंकि [घातीनि] घातिकर्म [क्षयं जातानि] क्षयको प्राप्त हुए हैं॥६०॥

टीका :—यहाँ (केवलज्ञानके सम्बन्धमें), खेद क्या, (२) परिणाम क्या तथा (३) केवलज्ञान और सुखका व्यतिरेक (-भेद) क्या, कि जिससे केवलज्ञानको ऐकान्तिक सुखत्व न हो?

---

१. खेद = थकावट; संताप; दुःख

जे ज्ञान 'केवल' ते ज सुख, परिणाम पण वळी ते ज छे;
भाख्यो न तेमां खेद जेथी घातिकर्म विनष्ट छे. ६०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मात्रम्। घातिकर्माणि हि महामोहोत्पादकत्वादुन्मत्तकवदतस्मिंस्तद्बुद्धिमाधाय परिच्छेद्यमर्थं प्रत्यात्मानं यतः परिणामयन्ति, ततस्तानि तस्य प्रत्यर्थं परिणम्य परिणम्य श्राम्यतः खेदनिदानतां प्रतिपद्यन्ते। तदभावात्कुतो हि नाम केवले खेदस्योद्भेदः। यतश्च त्रिसमयावच्छिन्नसकलपदार्थपरिच्छेद्याकारवैश्वरूप्यप्रकाशनास्पदीभूतं चित्रभित्तिस्थानीयमनन्तस्वरूपं स्वयमेव परिणमत् केवलमेव परिणामः, ततः कुतोऽन्यः परिणामो यद्द्वारेण खेदस्यात्मलाभः। यतश्च समस्तस्वभावप्रतिघाताभावात्समुल्लसितनिरंकुशानन्तशक्तितया सकलं त्रैकालिकं लोकालोकाकारमभिव्याप्य कूटस्थत्वेनात्यन्तनिष्पकम्पं व्यवस्थितत्वादनाकुलतां

यत्केवलमिति ज्ञानं तत्सौख्यं भवति, तस्मात् **खेदो तस्स ण भणिदो** तस्य केवलज्ञानस्य खेदो दुःखं न भणितम्। तदपि कस्मात्। **जम्हा घादी खयं जादा** यस्मान्मोहादिघातिकर्माणि क्षयं गतानि। तर्हि तस्यानन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणामो दुःखकारणं भविष्यति। नैवम्। **परिणमं च सो चेव** तस्य केवलज्ञानस्य संबन्धी परिणामश्च स एव सुखरूप एवेति। इदानीं विस्तरः—ज्ञानदर्शनावरणोदये सति युगपदर्थान् ज्ञातुमशक्यत्वात् क्रमकरणव्यवधानग्रहणे खेदो भवति, आवरणद्वयाभावे सति युगपद्ग्रहणे केवलज्ञानस्य खेदो नास्तीति सुखमेव। तथैव तस्य भगवतो जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्परिच्छित्तिसमर्थमखण्डैकरूपं प्रत्यक्षपरिच्छित्तिमयं स्वरूपं परिणमत्सत् केवलज्ञानमेव परिणामो, न

---

(१) खेदके आयतन (-स्थान) घातिकर्म हैं, केवल परिणाममात्र नहीं। घातिकर्म महा मोहके उत्पादक होनेसे धतूरेकी भाँति [१]अतत्में तत् बुद्धि धारण करवाकर आत्माको ज्ञेयपदार्थके प्रति परिणमन कराते हैं; इसलिये वे घातिकर्म, प्रत्येक पदार्थके प्रति परिणमित हो-होकर थकनेवाले आत्माके लिये खेदके कारण होते हैं। उनका (घातिकर्मोंका) अभाव होनेसे केवलज्ञानमें खेद कहाँसे प्रगट होगा? (२) और तीनकालरूप तीन भेद जिसमें किये जाते हैं ऐसे समस्त पदार्थोंकी ज्ञेयाकाररूप (विविधताको प्रकाशित करनेका स्थानभूत केवलज्ञान, चित्रित् दीवारकी भाँति, स्वयं) ही अनन्तस्वरूप स्वयमेव परिणमित होनेसे केवलज्ञान ही परिणाम है। इसलिये अन्य परिणाम कहाँ हैं कि जिनसे खेदकी उत्पत्ति हो? (३) और, केवलज्ञान समस्त स्वभावप्रतिघातके[२] अभावके कारण निरंकुश अनन्त शक्तिके उल्लसित होनेसे समस्त त्रैकालिक लोकालोकके-आकारमें व्याप्त होकर [३]कूटस्थतया अत्यन्त निष्कंप है,

---

१. अतत्में तत्बुद्धि = वस्तु जिसस्वरूप नहीं है उस स्वरूप होनेकी मान्यता; जैसे कि—जड़में चेतनबुद्धि (अर्थात् जड़में चेतनकी मान्यता) दुःखमें सुखबुद्धि वगैरह।

२. प्रतिघात = विघ्न; रुकावट; हनन; घात।

३. कूटस्थ = सदा एकरूप रहनेवाला; अचल (केवलज्ञान सर्वथा अपरिणामी नहीं है, किन्तु वह एक ज्ञेयसे दूसरे ज्ञेयके प्रति नहीं बदलता-सर्वथा तीनों कालके समस्त ज्ञेयाकारोंको जानता है, इसलिये उसे कूटस्थ कहा है)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

सौख्यलक्षण-भूतामात्मनोऽव्यतिरिक्तां बिभ्राणं केवलमेव सौख्यम्, ततः कुतः केवलसुखयोर्व्यतिरेकः। अतः सर्वथा केवलं सुखमैकान्तिकमनुमोदनीयम् ।।६०।।

च केवलज्ञानाद्भिन्नपरिणामोऽस्ति येन खेदो भविष्यति। अथवा परिणामविषये द्वितीयव्याख्यानं क्रियते---युगपदनन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणामेऽपि वीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयादनन्तवीर्यत्वात् खेदकारणं नास्ति, तथैव च शुद्धात्मसर्वप्रदेशेषु समरसीभावेन परिणममानानां सहजशुद्धानन्दैकलक्षणसुख-रसास्वादपरिणतिरूपामात्मनः सकाशादभिन्नामनाकुलतां प्रति खेदो नास्ति। संज्ञालक्षणप्रयोजनादि-भेदेऽपि निश्चयेनाभेदरूपेण परिणममानं केवलज्ञानमेव सुखं भण्यते। ततः स्थितमेतत्केवलज्ञानाद्भिन्नं सुखं नास्ति। तत एव केवलज्ञाने खेदो न संभवतीति।।६०।। अथ पुनरपि केवलज्ञानस्य सुखस्वरूपतां प्रकारान्तरेण दृढयति—**णाणं अत्थंतगयं** ज्ञानं केवलज्ञानमर्थान्तगतं ज्ञेयान्तप्राप्तं। **लोयालोएसु वित्थडा**

इसलिये आत्मासे अभिन्न ऐसा सुख-लक्षणभूत अनाकुलताको धारण करता हुआ केवलज्ञान ही सुख है, इसलिये केवलज्ञान और सुखका व्यतिरेक कहाँ है?

इससे, यह सर्वथा अनुमोदन करने योग्य है (-आनन्दसे संमत करने योग्य है) कि 'केवलज्ञान ऐकान्तिक सुख है'।

भावार्थ :—केवलज्ञानमें भी परिणाम होते रहनेसे वहाँ भी थकान लगेगी और इसलिये दुःख होगा अतः केवलज्ञान ऐकान्तिक सुख कैसे हो सकता है? ऐसी शंकाका समाधान यहाँ किया गया है :—

(१) परिणाम मात्र थकावट या दुःखका कारण नहीं है, किन्तु घातिकर्मोंके निमित्तसे होनेवाला परोन्मुख परिणाम थकावट या दुःखका कारण है, केवलज्ञानमें घातिकर्म अविद्यमान होनेसे वहाँ थकावट या दुःख नहीं है। (२) केवलज्ञान स्वयं ही परिणमनशील है; परिणमन केवलज्ञानका स्वरूप ही है उपाधि नहीं। यदि परिणामका नाश हो जाये तो केवलज्ञानका ही नाश हो जाये। इसप्रकार परिणाम केवलज्ञानका सहज स्वरूप होनेसे केवलज्ञानको परिणामके द्वारा खेद नहीं हो सकता—नहीं होता। (३) केवलज्ञान समस्त त्रैकालिक लोकालोकको आकारको (-समस्त पदार्थोंके त्रैकालिक ज्ञेयाकारसमूहको) सर्वदा अडोलरूपसे जानता हुआ अत्यन्त निष्कंप-स्थिर-अक्षुब्ध-अनाकुल है; और अनाकुल होनेसे सुखी है—सुखस्वरूप-है, क्योंकि अनाकुलता सुखका ही लक्षण है। इसप्रकार केवलज्ञान और अक्षुब्धता-अनाकुलता भिन्न नहीं होनेसे केवलज्ञान और सुख भिन्न नहीं हैं।

इसप्रकार (१) घातिकर्मोंके अभावके कारण, (२) परिणमन कोई उपाधि न होनेसे और (३) केवलज्ञान निष्कंप-स्थिर-अनाकुल होनेसे केवलज्ञान सुखस्वरूप ही है।।६०।।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ पुनरपि केवलस्य सुखस्वरूपतां निरूपयन्नुपसंहरति—

णाणं अत्थंतगयं लोयालोएसु वित्थडा दिट्ठी।
णट्ठमणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं॥६१॥

ज्ञानमर्थान्तगतं लोकालोकेषु विस्तृता दृष्टिः।
नष्टमनिष्टं सर्वमिष्टं पुनर्यत्तु तल्लब्धम्॥६१॥

स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकं हि सौख्यम्। आत्मनो हि दृशिज्ञप्ती स्वभावः, तयोर्लोकालोकविस्तृतत्वेनार्थान्तगतत्वेन च स्वच्छन्दविजृम्भितत्वाद्भवति प्रतिघाताभावः। ततस्तद्धेतुकं सौख्यमभेदविवक्षायां केवलस्य स्वरूपम्। किंच केवलं सौख्यमेव; सर्वानिष्टप्रहाणात्,

---

दिट्ठी लोकालोकयोर्विस्तृता दृष्टिः केवलदर्शनम्। णट्ठमणिट्ठं सव्वं अनिष्टं दुःखमज्ञानं च तत्सर्वं नष्टं। इट्ठं पुण जं हि तं लद्धं इष्टं पुनर्यद् ज्ञानं सुखं च हि स्फुटं तत्सर्वं लब्धमिति। तद्यथा—स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकं सुखं भवति। स्वभावो हि केवलज्ञानदर्शनद्वयं, तयोः प्रतिघात आवरणद्वयं, तस्याभावः केवलिनां, ततः कारणात्स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकमक्षयानन्तसुखं भवति। यतश्च परमानन्दैकलक्षण-

---

अब, पुनः 'केवल (अर्थात् केवलज्ञान) सुखस्वरूप है' ऐसा निरूपण करते हुए उपसंहार करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**ज्ञानं**] ज्ञान [**अर्थान्तगतं**] पदार्थोंके पारको प्राप्त है [**दृष्टिः**] और दर्शन [**लोकालोकेषु विस्तृताः**] लोकालोकमें विस्तृत है; [**सर्वं अनिष्टं**] सर्व अनिष्ट [**नष्टं**] नष्ट हो चुका है [**पुनः**] और [**यत् तु**] जो [**इष्टं**] इष्ट है [**तत्**] वह सब [**लब्धं**] प्राप्त हुआ है। [इसलिये केवल (अर्थात् केवलज्ञान) सुखस्वरूप है।] ॥६१॥

टीका :—सुखका कारण स्वभावप्रतिघातका अभाव है। आत्माका स्वभाव दर्शन-ज्ञान है; (केवलदशामें) उनके (-दर्शन-ज्ञानके) प्रतिघातका अभाव है, क्योंकि दर्शन लोकालोकमें विस्तृत होनेसे और ज्ञान पदार्थोंके पारको प्राप्त होनेसे वे (दर्शन-ज्ञान) स्वच्छन्दतापूर्वक (-स्वतंत्रतापूर्वक, बिना अंकुश, किसीसे बिना दबे) विकसित हैं (इसप्रकार दर्शन-ज्ञानरूप स्वभावके प्रतिघातका अभाव है) इसलिये स्वभावके प्रतिघातका अभाव जिसका कारण है ऐसा सुख अभेदविवक्षासे केवलज्ञानका स्वरूप है।

अर्थान्तगत छे ज्ञान, लोकालोकविस्तृत दृष्टि छे;
छे नष्ट सर्व अनिष्ट ने जे इष्ट ते सौ प्राप्त छे. ६१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

सर्वेष्टोपलम्भाच्च। यतो हि केवलावस्थायां सुखप्रतिपत्तिविपक्षभूतस्य दुःखस्य साधनतामुपगतमज्ञानमखिलमेव प्रणश्यति, सुखस्य साधनीभूतं तु परिपूर्णं ज्ञानमुपजायते, ततः केवलमेव सौख्यमित्यलं प्रपंचेन॥६१॥

अथ केवलिनामेव पारमार्थिकसुखमिति श्रद्धापयति—

णो सद्दहंति सोक्खं सुहेसु परमं ति विगदघादीणं।
सुणिदूण ते अभव्वा भव्वा वा तं पडिच्छंति॥६२॥

न श्रद्दधति सौख्यं सुखेषु परममिति विगतघातिनाम्।
श्रुत्वा ते अभव्या भव्या वा तत्प्रतीच्छन्ति॥६२॥

सुखप्रतिपक्षभूतमाकुलत्वोत्पादकमनिष्टं दुःखमज्ञानं च नष्टं, यतश्च पूर्वोक्तलक्षणसुखाविनाभूतं त्रैलोक्योदरविवरवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्प्रकाशकमिष्टं ज्ञानं च लब्धं, ततो ज्ञायते केवलिनां ज्ञानमेव सुखमित्यभिप्रायः॥६१॥ अथ पारमार्थिकसुखं केवलिनामेव, संसारिणां ये मन्यन्ते तेऽभव्या इति निरूपयति—**णो सद्दहंति** नैव **श्रद्दधति** न मन्यन्ते। किम्। **सोक्खं** निर्विकारपरमाह्लादैकसुखम्। कथंभूतं न मन्यन्ते। **सुहेसु परमं ति** सुखेषु मध्ये तदेव परमसुखम्। केषां संबन्धि यत्सुखम्। **विगदघादीणं** विगतघातिकर्मणां केवलिनाम्। किं कृत्वापि न मन्यन्ते। **सुणिदूण** 'जादं सयं समत्तं' इत्यादिपूर्वोक्तगाथात्रयकथितप्रकारेण श्रुत्वापि। **ते अभव्वा** ते अभव्याः। ते हि जीवा वर्तमानकाले

(प्रकारान्तरसे केवलज्ञानकी सुखस्वरूपता बतलाते हैं :—) और, केवल अर्थात् केवलज्ञान सुख ही है, क्योंकि सर्व अनिष्टोंका नाश हो चुका है और सम्पूर्ण इष्टकी प्राप्ति हो चुकी है। केवल-अवस्थामें, सुखोपलब्धिके विपक्षभूत दुःखोंके साधनभूत अज्ञानका सम्पूर्णतया नाश हो जाता है और सुखका साधनभूत परिपूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिये केवल ही सुख है। अधिक विस्तारसे बस हो॥६१॥

अब, ऐसी श्रद्धा कराते हैं कि केवलज्ञानियोंको ही पारमार्थिक सुख होता है :—

अन्वयार्थ :—'[विगतघातिनां] जिनके घातिकर्म नष्ट हो गये हैं उनका [सौख्यं] सुख [सुखेषु परमं] (सर्व) सुखोंमें परम अर्थात् उत्कृष्ट है' [इति श्रुत्वा] ऐसा वचन सुनकर [न श्रद्दधति] जो श्रद्धा नहीं करते [ते अभव्याः] वे अभव्य हैं; [भव्याः वा] और भव्य [तत्] उसे [प्रतीच्छन्ति] स्वीकार (-आदर) करते हैं-उसकी श्रद्धा करते हैं॥६२॥

सुणी 'घातिकर्मविहीननुं सुख सौ सुखे उत्कृष्ट छे',
श्रद्धे न तेह अभव्य छे, ने भव्य ते संमत करे. ६२.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इह खलु स्वभावप्रतिघातादाकुलत्वाच्च मोहनीयादिकर्मजालशालिनां सुखाभासेऽप्यपारमार्थिकी सुखमिति रूढिः। केवलिनां तु भगवतां प्रक्षीणघातिकर्मणां स्वभावप्रतिघाताभावादनाकुलत्वाच्च यथोदितस्य हेतोर्लक्षणस्य च सद्भावात्पारमार्थिकं सुखमिति श्रद्धेयम्। न किलैवं येषां श्रद्धानमस्ति ते खलु मोक्षसुखसुधापानदूरवर्तिनो मृगतृष्णाम्भोभारमेवाभव्याः पश्यन्ति। ये पुनरिदमिदानीमेव वचः प्रतीच्छन्ति ते शिवश्रियो भाजनं समासन्नभव्याः भवन्ति। ये तु पुरा प्रतीच्छन्ति ते तु दूरभव्या इति॥६२॥

सम्यक्त्वरूपभव्यत्वव्यक्त्यभावादभव्या भण्यन्ते, न पुनः सर्वथा। भव्या वा तं पडिच्छंति ये वर्तमानकाले सम्यक्त्वरूपभव्यत्वव्यक्तिपरिणतास्तिष्ठन्ति ते तदनन्तसुखमिदानीं मन्यन्ते। ये च सम्यक्त्वरूपभव्यत्वव्यक्त्या भाविकाले परिणमिष्यन्ति ते च दूरभव्या अग्रे श्रद्धानं कुर्युरिति। अयमत्रार्थः—मारणार्थं तलवरगृहीततस्करस्य मरणमिव यद्यपीन्द्रियसुखमिष्टं न भवति, तथापि तलवरस्थानीयचारित्रमोहोदयेन मोहितः सन्निरुपरागस्वात्मोत्थसुखमलभमानः सन् सरागसम्यग्दृष्टिरात्मनिन्दादिपरिणतो हेयरूपेण तदनुभवति। ये पुनर्वीतरागसम्यग्दृष्टयः शुद्धोपयोगिनस्तेषां, मत्स्यानां स्थलगमनमिवाग्निप्रवेश इव वा, निर्विकारशुद्धात्मसुखाच्च्यवनमपि दुःखं प्रतिभाति। तथा चोक्तम्—

टीका :—इस लोकमें मोहनीयआदिकर्मजालवालोंके स्वभावप्रतिघातके कारण और आकुलताके कारण सुखाभास होने पर भी उस सुखाभासको 'सुख' कहनेकी अपारमार्थिक रूढ़ि है; और जिनके घातिकर्म नष्ट हो चुके हैं ऐसे केवलीभगवानके, स्वभावप्रतिघातके अभावके कारण और आकुलताके कारण सुखके यथोक्त [१]कारणका और [२]लक्षणका सद्भाव होनेसे पारमार्थिक सुख है—ऐसी श्रद्धा करने योग्य है। जिन्हें ऐसी श्रद्धा नहीं है वे–मोक्षसुखके सुधापानसे दूर रहनेवाले अभव्य—मृगतृष्णाके जलसमूहको ही देखते (-अनुभव करते) हैं; और जो उस वचनको इसीसमय स्वीकार(-श्रद्धा) करते हैं वे—शिवश्रीके (-मोक्षलक्ष्मीके) भाजन—आसन्नभव्य हैं, और जो आगे जाकर स्वीकार करेंगे वे दूरभव्य हैं।

भावार्थ :—'केवलीभगवानके ही पारमार्थिक सुख है' ऐसा वचन सुनकर जो कभी इसका स्वीकार–आदर–श्रद्धा नहीं करते वे कभी मोक्ष प्राप्त नहीं करते; जो उपरोक्त वचन सुनकर अंतरंगसे उसकी श्रद्धा करते हैं वे ही मोक्षको प्राप्त करते हैं। जो वर्तमानमें श्रद्धा करते हैं वे आसन्नभव्य हैं और जो भविष्यमें श्रद्धा करेंगे वे दूरभव्य हैं॥६२॥

---

१. सुखका कारण स्वभाव प्रतिघातका अभाव है।

२. सुखका लक्षण अनाकुलता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ परोक्षज्ञानिनामपारमार्थिकमिन्द्रियसुखं विचारयति—

मणुआसुरामरिंदा अहिद्दुदा इंदिएहिं सहजेहिं।
असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु॥६३॥

मनुजासुरामरेन्द्रा अभिद्रुता इन्द्रियैः सहजैः।
असहमानास्तद्दुःखं रमन्ते विषयेषु रम्येषु॥६३॥

अमीषां प्राणिनां हि प्रत्यक्षज्ञानाभावात्परोक्षज्ञानमुपसर्पतां तत्सामग्रीभूतेषु स्वरसत एवेन्द्रियेषु मैत्री प्रवर्तते। अथ तेषां तेषु मैत्रीमुपगतानामुदीर्णमहामोहकालानलकवलितानां

"समसुखशीलितमनसां च्यवनमपि द्वेषमेति किमु कामाः। स्थलमपि दहति झषाणां किमङ्ग पुनरङ्गमङ्गाराः" ॥६२॥ एवमभेदनयेन केवलज्ञानमेव सुखं भण्यते इति कथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन चतुर्थस्थलं गतम्। अथ संसारिणामिन्द्रियज्ञानसाधकमिन्द्रियसुखं विचारयति—मणुआसुरामरिंदा मनुजासुरामरेन्द्राः। कथंभूताः। अहिद्दुदा इंदिएहिं सहजेहिं अभिद्रुताः कदर्थिताः दुखिताः। कैः। इन्द्रियैः सहजैः। असहंता तं दुक्खं तद्दुःखोद्रेकमसहमानाः सन्तः। रमंति विसएसु रम्मेसु रमन्ते विषयेषु रम्याभासेषु इति। अथ विस्तरः—मनुजादयो जीवा अमूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखास्वादमलभमानाः सन्तः मूर्तेन्द्रियज्ञानसुखनिमित्तं तन्निमित्तपञ्चेन्द्रियेषु मैत्री कुर्वन्ति। ततश्च तप्तलोहगोलकानामुदकाकर्षणमिव विषयेषु तीव्रतृष्णा जायते। तां तृष्णामसहमाना विषयाननुभवन्ति इति। ततो ज्ञायते पञ्चेन्द्रियाणि

अब, परोक्षज्ञानवालोंके अपारमार्थिक इन्द्रियसुखका विचार करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[मनुजासुरामरेन्द्राः] मनुष्येन्द्र (चक्रवर्ती) असुरेन्द्र और सुरेन्द्र [सहजैः इन्द्रियैः] स्वाभाविक (परोक्षज्ञानवालोंको जो स्वाभाविक है ऐसी) इन्द्रियोंसे [अभिद्रुताः] पीड़ित वर्तते हुए [तद् दुःखं] उस दुःखको [असहमानाः] सहन न कर सकनेसे [रम्येषु विषयेषु] रम्य विषयोंमें [रमन्ते] रमण करते हैं॥६३॥

टीका :—प्रत्यक्ष ज्ञानके अभावके कारण परोक्ष ज्ञानका आश्रय लेनेवाले इन प्राणियोंको उसकी (-परोक्ष ज्ञानकी) सामग्रीरूप इन्द्रियोंके प्रति निजरससे ही (-स्वभावसे ही) मैत्री प्रवर्तती है। अब इन्द्रियोंके प्रति मैत्रीको प्राप्त उन प्राणियोंको, उदयप्राप्त महामोहरूपी कालाग्निने ग्रास बना लिया है, इसलिये तप्त लोहेके गोलेकी भाँति (-जैसे गरम

सुर-असुर-नरपति पीडित वर्ते सहज इन्द्रियो वडे,
नव सही शके ते दुःख तेथी रम्य विषयोमां रमे. ६३.

तप्तायोगोलानामिवात्यन्तमुपात्ततृष्णानां तद्दुःखवेगमसहमानानां व्याधिसात्म्यतामुपगतेषु रम्येषु विषयेषु रतिरुपजायते। ततो व्याधिस्थानीयत्वादिन्द्रियाणां व्याधिसात्म्यसमत्वाद्विषयाणां च न छद्मस्थानां पारमार्थिकं सौख्यम्॥६३॥

अथ यावदिन्द्रियाणि तावत्स्वभावादेव दुःखमेवं वितर्कयति—

जेसिं विसएसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जइ तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं॥६४॥

येषां विषयेषु रतिस्तेषां दुःखं विजानीहि स्वाभावम्।
यदि तन्न हि स्वभावो व्यापारो नास्ति विषयार्थम्॥६४॥

व्याधिस्थानीयानि, विषयाश्च तत्प्रतीकारौषधस्थानीया इति संसारिणां वास्तवं सुखं नास्ति॥६३॥ अथ यावदिन्द्रियव्यापारस्तावद्दुःखमेवेति कथयति—जेसिं विसएसु रदी येषां निर्विषयातीन्द्रिय-परमात्मस्वरूपविपरीतेषु विषयेषु रतिः तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं तेषां बहिर्मुखजीवानां निजशुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्ननिरुपाधिपारमार्थिकसुखविपरीतं स्वभावेनैव दुःखमस्तीति विजानीहि।

किया हुआ लोहेका गोला पानीको शीघ्र ही सोख लेता है) अत्यन्त तृष्णा उत्पन्न हुई है; उस दुःखके वेगको सहन न कर सकनेसे उन्हें व्याधिके प्रतिकारके समान (-रोगमें थोड़ासा आराम जैसा अनुभव करानेवाले उपचारके समान) रम्य विषयोंमें रति उत्पन्न होती है। इसलिये इन्द्रियाँ व्याधि समान होनेसे और विषय व्याधिके प्रतिकार समान होनेसे छद्मस्थोंके पारमार्थिक सुख नहीं है॥६३॥

अब, जहाँ तक इन्द्रियाँ हैं वहाँ तक स्वभावसे ही दुःख है, ऐसा न्यायसे निश्चित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[येषां] जिन्हें [विषयेषु रतिः] विषयोंमें रति है, [तेषां] उन्हें [दुःख] दुःख [स्वाभावं] स्वाभाविक [विजानीहि] जानो; [हि] क्योंकि [यदि] यदि [तद्] वह दुःख [स्वभावं न] स्वभाव न हो तो [विषयार्थं] विषयार्थमें [व्यापारः] व्यापार [न अस्ति] न हो॥६४॥

विषयो विषे रति जेमने, दुःख छे स्वभाविक तेमने;
जो ते न होय स्वभाव तो व्यापार नहि विषयो विषे. ६४.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

येषां जीवदवस्थानि हतकानीन्द्रियाणि, न नाम तेषामुपाधिप्रत्ययं दुःखम्, किंतु स्वाभाविकमेव, विषयेषु रतेरवलोकनात्। अवलोक्यते हि तेषां स्तम्बेरमस्य करेणुकुट्टनीगात्र-स्पर्श इव, सफरस्य बडिशामिषस्वाद इव, इन्दिरस्य संकोचसंमुखारविन्दामोद इव, पतंगस्य प्रदीपार्चीरूप इव, कुरंगस्य मृगयुगेयस्वर इव, दुर्निवारेन्द्रियवेदनावशीकृतानामासन्ननिपातेष्वपि विषयेष्वभिपातः। यदि पुनर्न तेषां दुःखं स्वाभाविकमभ्युपगम्येत तदोपशान्तशीतज्वरस्य संस्वेदनमिव, प्रहीणदाहज्वरस्यारनालपरिषेक इव, निवृत्तनेत्रसंरम्भस्य च वटाचूर्णावचूर्णनमिव, विनष्टकर्णशूलस्य बस्तमूत्रपूरणमिव, रूढव्रणस्यालेपनदानमिव, विषयव्यापारो न दृश्येत। दृश्यते चासौ। ततः स्वभावभूतदुःखयोगिन एव जीवदिन्द्रियाः परोक्षज्ञानिनः॥६४॥

कस्मादिति चेत्। पञ्चेन्द्रियविषयेषु रतेरवलोकनात्। **जइ तं ण सब्भावं** यदि तद्दुःखं स्वभावेन नास्ति हि **स्फुटं वावारो णत्थि विसयत्थं** तर्हि विषयार्थं व्यापारो नास्ति न घटते। व्याधिस्थानामौषधेष्विव

टीका :—जिनकी हत (निकृष्ट, निंद्य) इन्द्रियाँ जीवित (-विद्यमान) हैं, उन्हें उपाधिके कारण (बाह्य संयोगोंके कारण, औपाधिक) दुःख नहीं है किन्तु स्वाभाविक ही है, क्योंकि उनकी विषयोंमें रति देखी जाती है। जैसे–हाथी हथिनीरूपी कुट्टनीके शरीर-स्पर्शकी ओर, मछली बंसीमें फँसे हुए मांसके स्वादकी ओर, भ्रमर बन्द हो जानेवाले कमलके गंधकी ओर, पतंगा दीपककी ज्योतिके रूपकी ओर और हिरन शिकारीके संगीतके स्वरकी ओर दौड़ते हुए दिखाई देते हैं उसीप्रकार–दुर्निवार इन्द्रियवेदनाके वशीभूत होते हुए वे यद्यपि विषयोंका नाश अति निकट है (अर्थात् विषय क्षणिक हैं) तथापि, विषयोंकी ओर दौड़ते दिखाई देते हैं। और यदि 'उनका दुःख स्वाभाविक है' ऐसा स्वीकार न किया जाये तो जैसे—जिसका शीतज्वर उपशांत हो गया है, वह पसीना आनेके लिये उपचार करता तथा जिसका दाहज्वर उतर गया है वह काँजीसे शरीरके तापको उतारता तथा जिसकी आँखोंका दुःख दूर हो गया है वह वटाचूर्ण (-शंख इत्यादिका चूर्ण) आँजता तथा जिसका कर्णशूल नष्ट हो गया हो वह कानमें फिर बकरेका मूत्र डालता दिखाई नहीं देता और जिसका घाव भर जाता है वह फिर लेप करता दिखाई नहीं देता—इसीप्रकार उनके विषय व्यापार देखनेमें नहीं आना चाहिये; किन्तु उनके वह (विषयप्रवृत्ति) तो देखी जाती है। इससे (सिद्ध हुआ कि) जिनके इन्द्रियाँ जीवित हैं ऐसे परोक्षज्ञानियोंके दुःख स्वाभाविक ही है।

भावार्थ :—परोक्षज्ञानियोंके स्वभावसे ही दुःख है, क्योंकि उनके विषयोंमें रति वर्तती है; कभी-कभी तो वे, असह्य तृष्णाकी दाहसे (-तीव्र इच्छारूपी दुःखके कारण)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ मुक्तात्मसुखप्रसिद्धये शरीरस्य सुखसाधनतां प्रतिहन्ति—

पप्पा इट्ठे विसये फासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहो॥६५॥

प्राप्येष्टान् विषयान् स्पर्शैः समाश्रितान् स्वभावेन।
परिणममान आत्मा स्वयमेव सुखं न भवति देहः॥६५॥

अस्य खल्वात्मनः सशरीरावस्थायामपि न शरीरं सुखसाधनतामापद्यमानं पश्यामः, यतस्तदापि पीतोन्मत्तकरसैरिव प्रकृष्टमोहवशवर्तिभिरिन्द्रियैरिमेऽस्माकमिष्टा इति क्रमेण

विषयार्थं व्यापारो दृश्यते चेत्तत एव ज्ञायते दुःखमस्तीत्यभिप्रायः॥६४॥ एवं परमार्थेनेन्द्रियसुखस्य दुःखस्थापनार्थं गाथाद्वयं गतम्। अथ मुक्तात्मनां शरीराभावेऽपि सुखमस्तीति ज्ञापनार्थं शरीरं सुख-कारणं न स्यादिति व्यक्तीकरोति—**पप्पा** प्राप्य। कान्। **इट्ठे विसए** इष्टपञ्चेन्द्रियविषयान्। कथंभूतान्।

मरने तककी परवाह न करके क्षणिक इन्द्रियविषयोंमें कूद पड़ते हैं। यदि उन्हें स्वभावसे ही दुःख न हो तो विषयोंमें रति ही न होनी चाहिये। जिसके शरीरका दाह दुःख नष्ट हो गया हो वह बाह्य शीतोपचारमें रति क्यों करेगा? इससे सिद्ध हुआ कि परोक्षज्ञानियोंके दुःख स्वाभाविक ही है॥६४॥

अब, मुक्त आत्माके सुखकी प्रसिद्धिके लिये, शरीर सुखका साधन होनेकी बातका खंडन करते हैं। (सिद्ध भगवानके शरीरके बिना भी सुख होता है यह बात स्पष्ट समझानेके लिये, संसारावस्थामें भी शरीर सुखका–इन्द्रियसुखका–साधन नहीं है, ऐसा निश्चित करते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[**स्पर्शैः समाश्रितान्**] स्पर्शनादिक इन्द्रियाँ जिनका आश्रय लेती हैं ऐसे [**इष्टान् विषयान्**] इष्ट विषयोंको [**प्राप्य**] पाकर [**स्वभावेन**] (अपने शुद्ध) स्वभावसे [**परिणममानः**] परिणमन करता हुआ [आत्मा] आत्मा [**स्वयमेव**] स्वयं ही [**सुख**] सुखरूप (-इन्द्रियसुखरूप) होता है [**देहः न भवति**] देह सुखरूप नहीं होती॥६५॥

टीका :—वास्तवमें इस आत्माके लिये सशरीर अवस्थामें भी शरीर सुखका साधन हो ऐसा हमें दिखाई नहीं देता; क्योंकि तब भी, मानों उन्मादजनक मदिराका पान किया हो

इन्द्रियसमाश्रित इष्ट विषयो पामीने, निज भावथी
जीव प्रणमतो स्वयमेव सुखरूप थाय, देह थतो नथी. ६५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

विषयानभिपतद्भिरसमीचीनवृत्तितामनुभवन्नुपरुद्धशक्तिसारेणापि ज्ञानदर्शनवीर्यात्मकेन निश्चय-कारणतामुपागतेन स्वभावेन परिणममानः स्वयमेवायमात्मा सुखतामापद्यते। शरीरं त्वचेतन-त्वादेव सुखत्वपरिणतेर्निश्चयकारणतामनुपगच्छन्न जातु सुखतामुपढौकत इति॥६५॥

अथैतदेव दृढयति—

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणदि सग्गे वा।
विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा॥६६॥

फासेहिं समस्सिदे स्पर्शनादीन्द्रियरहितशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणैः स्पर्शनादिभिरिन्द्रियैः समाश्रितान् सम्यक् प्राप्यान् ग्राह्यान्, इत्थंभूतान् विषयान् प्राप्य। स कः। **अप्पा** आत्मा कर्ता। किंविशिष्टः। **सहावेण परिणममाणो** अनन्तसुखोपादानभूतशुद्धात्मस्वभावविपरीतेनाशुद्धसुखोपादानभूतेनाशुद्धात्मस्वभावेन परिणममानः। इत्थंभूतः सन् **सयमेव सुहं** स्वयमेवेन्द्रियसुखं भवति परिणमति। **ण हवदि देहो** देहः

ऐसी, प्रबल मोहके वश वर्तनेवाली, 'यह (विषय) हमें इष्ट है' इसप्रकार विषयोंकी ओर दौड़ती हुई इन्द्रियोंके द्वारा असमीचीन (अयोग्य) परिणतिका अनुभव करनेसे जिसकी [१]शक्तिकी उत्कृष्टता (-परम शुद्धता) रुक गई है ऐसे भी (अपने) ज्ञान-दर्शन-वीर्यात्मक स्वभावमें—जो कि (सुखके) निश्चयकारणरूप है—परिणमन करता हुआ यह आत्मा स्वयमेव सुखत्वको प्राप्त करता है, (-सुखरूप होता है;) और शरीर तो अचेतन ही होनेसे सुखत्वपरिणतिका निश्चय-कारण न होता हुआ किंचित् मात्र भी सुखत्वको प्राप्त नहीं करता।

भावार्थ :—सशरीर अवस्थामें भी आत्मा ही सुखरूप (-इन्द्रियसुखरूप) परिणतिमें परिणमन करता है, शरीर नहीं; इसलिये सशरीर अवस्थामें भी सुखका निश्चय कारण आत्मा ही है अर्थात् इन्द्रियसुखका भी वास्तविक कारण आत्माका ही अशुद्ध स्वभाव है। अशुद्ध स्वभावमें परिणमित आत्मा ही स्वयमेव इन्द्रियसुखरूप होता है उसमें शरीर कारण नहीं है; क्योंकि सुखरूप परिणति और शरीर सर्वथा भिन्न होनेके कारण सुख और शरीरमें निश्चयसे किंचित्मात्र भी कार्यकारणता नहीं है॥६५॥

अब, इसी बातको दृढ़ करते हैं :—

---

१. इन्द्रियसुखरूप परिणमन करनेवाले आत्माकी ज्ञानदर्शन-वीर्यात्मक स्वभावकी उत्कृष्ट शक्ति रुक गई है अर्थात् स्वभाव अशुद्ध हो गया है।

अेकांतथी स्वर्गेय देह करे नहीं सुख देहीने,
पण विषयवश स्वयमेव आत्मा सुख वा दुःख थाय छे. ६६.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एकान्तेन हि देहः सुखं न देहिनः करोति स्वर्गे वा।
विषयवशेन तु सौख्यं दुःखं वा भवति स्वयमात्मा॥६६॥

अयमत्र सिद्धान्तो यद्दिव्यवैक्रियिकत्वेऽपि शरीरं न खलु सुखाय कल्प्येतेतीष्टानाम-निष्टानां वा विषयाणां वशेन सुखं वा दुःखं वा स्वयमेवात्मा स्यात्॥६६॥

अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विषयाणामकिंचित्करत्वं द्योतयति—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कायव्वं।
तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति॥६७॥

पुनरचेतनत्वात्सुखं न भवतीति। अयमत्रार्थः—कर्मावृतसंसारिजीवानां यदिन्द्रियसुखं तत्रापि जीव उपादानकारणं, न च देहः। देहकर्मरहितमुक्तात्मनां पुनर्यदनन्तातीन्द्रियसुखं तत्र विशेषेणात्मैव कारणमिति॥६५॥ अथ मनुष्यशरीरं मा भवतु, देवशरीरं दिव्यं तत्किल सुखकारणं भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति—एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणदि एकान्तेन हि स्फुटं देहः कर्ता सुखं न करोति। कस्य। देहिनः संसारिजीवस्य। क्व। सग्गे वा आस्तां तावन्मनुष्याणां मनुष्यदेहः सुखं न करोति, स्वर्गे

अन्वयार्थ :—[एकान्तेन हि] एकांतसे अर्थात् नियमसे [स्वर्गे वा] स्वर्गमें भी [देहः] शरीर [देहिनः] शरीरी (-आत्माको) [सुखं न करोति] सुख नहीं देता [विषयवशेन तु] परन्तु विषयोंके वशसे [सौख्यं दुःखं वा] सुख अथवा दुःखरूप [स्वयं आत्मा भवति] स्वयं आत्मा होता है॥६६॥

टीका :—यहाँ यह सिद्धांत है कि—भले ही दिव्य वैक्रियिकता प्राप्त हो तथापि 'शरीर सुख नहीं दे सकता'; इसलिये, आत्मा स्वयं ही इष्ट अथवा अनिष्ट विषयोंके वशसे सुख अथवा दुःखरूप स्वयं ही होता है।

भावार्थ :—शरीर सुख-दुःख नहीं देता। देवोंका उत्तम वैक्रियिक शरीर सुखका कारण नहीं है और नारकियोंका शरीर दुःखका कारण नहीं है। आत्मा स्वयं ही इष्ट-अनिष्ट विषयोंके वश होकर सुख-दुःखकी कल्पनारूपमें परिणमित होता है॥६६॥

अब, आत्मा स्वयं ही सुखपरिणामकी शक्तिवाला होनेसे विषयोंकी अकिंचित्करता बतलाते हैं :—

जो दृष्टि प्राणीनी तिमिरहर, तो कार्य छे नहि दीपथी;
ज्यां जीव स्वयं सुख परिणमे, विषयो करे छे शुं तहीं? .६७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

तिमिरहरा यदि दृष्टिर्जनस्य दीपेन नास्ति कर्तव्यम्।
तथा सौख्यं स्वयमात्मा विषयाः किं तत्र कुर्वन्ति।।६७।।

यथा हि केषांचिन्नक्तंचराणां चक्षुषः स्वयमेव तिमिरविकरणशक्तियोगित्वान्न तदपाकरणप्रवणेन प्रदीपप्रकाशादिना कार्यं, एवमस्यात्मनः संसारे मुक्तौ वा स्वयमेव सुखतया परिणममानस्य सुखसाधनधिया अबुधैर्मुधाध्यास्यमाना अपि विषयाः किं हि नाम कुर्युः।।६७।।

वा योऽसौ दिव्यो देवदेहः सोऽप्युपचारं विहाय सुखं न करोति। विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा किंतु निश्चयेन निर्विषयामूर्तस्वाभाविकसदानन्दैकसुखस्वभावोऽपि व्यवहारेणानादि-कर्मबन्धवशाद्विषयाधीनत्वेन परिणम्य सांसारिकसुखं दुःखं वा स्वयमात्मैव भवति, न च देह इत्यभिप्रायः।।६६।। एवं मुक्तात्मनां देहाभावेऽपि सुखमस्तीति परिज्ञानार्थं संसारिणामपि देहः सुखकारणं न भवतीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम्। अथात्मनः स्वयमेव सुखस्वभावत्वान्निश्चयेन यथा देहः सुखकारणं न भवति तथा विषया अपीति प्रतिपादयति—जइ यदि दिट्ठी नक्तंचरजनस्य दृष्टिः तिमिरहरा अन्धकारहरा भवति जणस्स जनस्य दीवेण णत्थि कायव्वं दीपेन नास्ति कर्तव्यं। तस्य प्रदीपादीनां यथा प्रयोजनं नास्ति तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति तथा

अन्वयार्थ :—[यदि] यदि [जनस्य दृष्टिः] प्राणीकी दृष्टि [तिमिरहरा] तिमिरनाशक हो तो [दीपेन नास्ति कर्तव्यं] दीपकसे कोई प्रयोजन नहीं है, अर्थात् दीपक कुछ नहीं कर सकता, [तथा] उसीप्रकार जहाँ [आत्मा] आत्मा [स्वयं] स्वयं [सौख्यं] सुखरूप परिणमन करता है [तत्र] वहाँ [विषयाः] विषय [किं कुर्वन्ति] क्या कर सकते हैं? ।।६७।।

टीका :—जैसे किन्हीं निशाचरोंके (उल्लू, सर्प, भूत इत्यादि) नेत्र स्वयमेव अन्धकारको नष्ट करनेकी शक्तिवाले होते हैं इसलिये उन्हें अंधकार नाशक स्वभाववाले दीपक-प्रकाशादिसे कोई प्रयोजन नहीं होता, (उन्हें दीपक-प्रकाश कुछ नहीं करता,) इसीप्रकार—यद्यपि अज्ञानी 'विषय सुखके साधन हैं' ऐसी बुद्धिके द्वारा व्यर्थ ही विषयोंका अध्यास (-आश्रय) करते हैं तथापि-संसारमें या मुक्तिमें स्वयमेव सुखरूप परिणमित इस आत्माको विषय क्या कर सकते हैं?

भावार्थ :—संसारमें या मोक्षमें आत्मा अपने आप ही सुखरूप परिणमित होता है; उसमें विषय अकिंचित्कर हैं अर्थात् कुछ नहीं कर सकते। अज्ञानी विषयोंको सुखका कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवलंबन लेते हैं।।६७।।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति—

सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि।
सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च लोगे तहा देवो॥६८॥

स्वयमेव यथादित्यस्तेजः उष्णश्च देवता नभसि।
सिद्धोऽपि तथा ज्ञानं सुखं च लोके तथा देवः॥६८॥

यथा खलु नभसि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव प्रभाकरः प्रभूतप्रभाभारभास्वर-स्वरूपविकस्वरप्रकाशशालितया तेजः, यथा च कादाचित्कौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवन्नित्य-मेवौष्ण्यपरिणामापन्नत्वादुष्णः, यथा च देवगतिनामकर्मोदयानुवृत्तिवशवर्तिस्वभावतया देवः;

निर्विषयामूर्तसर्वप्रदेशाह्लादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति, न किमपीति भावः॥६७॥ अथात्मनः सुखस्वभावत्वं ज्ञानस्वभावत्वं च पुनरपि दृष्टान्तेन दृढयति—**सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि** कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वयमेव यथादित्यः स्वपरप्रकाशरूपं तेजो भवति, तथैव च स्वयमेवोष्णो भवति, तथा चाज्ञानिजनानां देवता भवति। क्व स्थितः। नभसि आकाशे। **सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च** सिद्धोऽपि भगवांस्तथैव कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वभावेनैव स्वपरप्रकाशकं केवलज्ञानं, तथैव परमतृप्तिरूपमनाकुलत्वलक्षणं सुखम्। क्व। **लोगे**

अब, आत्माका सुखस्वभावत्व दृष्टान्त देकर दृढ़ करते हैं :

अन्वयार्थ :—[**यथा**] जैसे [**नभसि**] आकाशमें [**आदित्यः**] सूर्य [**स्वयमेव**] अपने आप ही [**तेजः**] तेज, [**उष्णः**] उष्ण [च] और [**देवता**] देव है, [**तथा**] उसीप्रकार [**लोके**] लोकमें [**सिद्धः अपि**] सिद्ध भगवान भी (स्वयमेव) [**ज्ञानं**] ज्ञान [**सुखं च**] सुख [**तथा देवः**] और देव हैं॥६८॥

टीका :—जैसे आकाशमें अन्य कारणकी अपेक्षा रखे बिना ही सूर्य (१) स्वयमेव अत्यधिक प्रभासमूहसे चमकते हुए स्वरूपके द्वारा विकसित प्रकाशयुक्त होनेसे तेज है, (२) कभी [१]उष्णतारूप परिणमित लोहेके गोलेकी भाँति सदा उष्णता-परिणामको प्राप्त होनेसे उष्ण है, और (३) देवगतिनामकर्मके धारावाहिक उदयके वशवर्ती स्वभावसे देव है; इसीप्रकार

---

१. जैसे लोहेका गोला कभी उष्णतापरिणामसे परिणमता है वैसे सूर्य सदा ही उष्णतापरिणामसे परिणमा हुआ है।

ज्यम आभमां स्वयमेव भास्कर उष्ण, देव, प्रकाश छे,
स्वयमेव लोके सिद्ध पण त्यम ज्ञान, सुख ने देव छे. ६८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

तथैव लोके कारणांतरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव भगवानात्मापि स्वपरप्रकाशनसमर्थनिर्वितथानन्त-शक्तिसहजसंवेदनतादात्म्यात् ज्ञानं, तथैव चात्मतृप्तिसमुपजातपरिनिर्वृत्तिप्रवर्तितानाकुलत्व-सुस्थितत्वात् सौख्यं, तथैव चासन्नात्मतत्त्वोपलम्भलब्धवर्णजनमानसशिलास्तम्भोत्कीर्ण-समुदीर्णद्युतिस्तुतियोगिदिव्यात्मस्वरूपत्वाद्देवः। अतोऽस्यात्मनः सुखसाधनाभासैर्विषयैः पर्याप्तम् ॥६८॥ —इति आनन्दप्रपंचः।

जगति। तहा देवो निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्न-सुन्दरानन्दस्यन्दिसुखामृतपानपिपासितानां गणधरदेवादिपरमयोगिनां देवेन्द्रादीनां चासन्नभव्यानां मनसि निरन्तरं परमाराध्यं, तथैवानन्तज्ञानादिगुणस्तवनेन स्तुत्यं च यद्दिव्यमात्मस्वरूपं तत्स्वभावत्वात्तथैव देवश्चेति। ततो ज्ञायते मुक्तात्मनां विषयैरपि प्रयोजनं नास्तीति॥६८॥ एवं स्वभावेनैव सुखस्वभावत्वाद्विषया अपि मुक्तात्मनां सुखकारणं न भवन्तीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम्। अथेदानीं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवाः पूर्वोक्तलक्षणानन्तसुखाधारभूतं सर्वज्ञं वस्तुस्तवेन नमस्कुर्वन्ति—

लोकमें अन्य कारणकी अपेक्षा रखे बिना ही भगवान आत्मा स्वयमेव ही (१) स्वपरको प्रकाशित करनेमें समर्थ निर्वितथ (–सच्ची) अनन्त शक्तियुक्त सहज संवेदनके साथ तादात्म्य होनेसे ज्ञान है, (२) आत्मतृप्तिसे उत्पन्न होनेवाली जो [१]परिनिवृत्ति है; उसमें प्रवर्तमान अनाकुलतामें सुस्थितताके कारण सौख्य है, और (३) जिन्हें आत्मतत्त्वकी उपलब्धि निकट है ऐसे बुध जनोंके मनरूपी [२]शिलास्तंभमें जिसकी अतिशय [३]द्युति स्तुति उत्कीर्ण है ऐसा दिव्य आत्मस्वरूपवान होनेसे देव है। इसलिये इस आत्माको सुखसाधनाभास (–जो सुखके साधन नहीं हैं परन्तु सुखके साधन होनेका आभासमात्र जिनमें होता है ऐसे) विषयोंसे बस हो।

भावार्थ :—सिद्ध भगवान किसी बाह्य कारणकी अपेक्षाके बिना अपने आप ही स्वपरप्रकाशक ज्ञानरूप हैं, अनन्त आत्मिक आनन्दरूप हैं और अचिंत्य दिव्यतारूप हैं। सिद्ध भगवानकी भाँति ही सर्व जीवोंका स्वभाव है; इसलिये सुखार्थी जीवोंको विषयालम्बी भाव छोड़कर निरालम्बी परमानन्दस्वभावरूप परिणमन करना चाहिये।

–: इसप्रकार **आनन्द-अधिकार** पूर्ण हुआ :-

---

१. परिनिर्वृत्ति = मोक्ष; परिपूर्णता; अन्तिम सम्पूर्ण सुख. (परिनिर्वृत्ति आत्मतृप्तिसे होती है अर्थात् आत्मतृप्तिकी पराकाष्ठा ही परिनिर्वृत्ति है।)

२. शिलास्तंभ = पत्थरका खंभा।

३. द्युति = दिव्यता; भव्यता, महिमा (गणधरदेवादि बुध जनोंके मनमें शुद्धात्मस्वरूपकी दिव्यताका स्तुतिगान उत्कीर्ण हो गया है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ शुभपरिणामाधिकारप्रारम्भः।

अथेन्द्रियसुखस्वरूपविचारमुपक्रममाणस्तत्साधनस्वरूपमुपन्यस्यति—

देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा॥६९॥

देवतायतिगुरुपूजासु चैव दाने वा सुशीलेषु।
उपवासादिषु रक्तः शुभोपयोगात्मक आत्मा॥६९॥

तेजो दिट्ठी णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं।
तिहुवणपहाणदइयं माहप्पं जस्स सो अरिहो॥*३॥

तेजो दिट्ठी णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं तिहुवणपहाणदइयं तेजः प्रभामण्डलं, जगत्त्रयकालत्रयवस्तुगतयुगपत्सामान्यास्तित्वग्राहकं केवलदर्शनं, तथैव समस्तविशेषास्तित्वग्राहकं केवलज्ञानं, ऋद्धिशब्देन समवसरणादिलक्षणा विभूतिः, सुखशब्देनाव्याबाधानन्तसुखं, तत्पदाभिलाषेण इन्द्रादयोऽपि भृत्यत्वं कुर्वन्तीत्येवंलक्षणमैश्वर्यं, त्रिभुवनाधीशानामपि वल्लभत्वं दैवं भण्यते। माहप्पं जस्स सो अरिहो इत्थंभूतं माहात्म्यं यस्य सोऽर्हन् भण्यते। इति वस्तुस्तवनरूपेण नमस्कारं कृतवन्तः॥३॥ अथ तस्यैव भगवतः सिद्धावस्थायां गुणस्तवनरूपेण नमस्कारं कुर्वन्ति—

तं गुणदो अधिगदरं अविच्छिदं मणुवदेवपदिभावं।
अपुणब्भावणिबद्धं पणमामि पुणो पुणो सिद्धं॥*४॥

पणमामि नमस्करोमि पुणो पुणो पुनः पुनः। कम्। तं सिद्धं परमागमप्रसिद्धं सिद्धम्। कथंभूतम्। गुणदो अधिगदरं अव्याबाधानन्तसुखादिगुणैरधिकतरं समधिकतरगुणम्। पुनरपि कथं-

---

-: अब, यहाँ **शुभ परिणामका** अधिकार प्रारम्भ होता है :-

अब, इन्द्रियसुखस्वरूप सम्बन्धी विचारोंको लेकर, उसके (इन्द्रिय सुखके) साधनका (-शुभोपयोगका) स्वरूप कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[देवतायतिगुरुपूजासु] देव, गुरु और यतिकी पूजामें, [दाने च एव] दानमें [सुशीलेषु वा] एवं सुशीलोंमें [उपवासादिषु] और उपवासादिकमें [रक्तः आत्मा] लीन आत्मा [शुभोपयोगात्मकः] शुभोपयोगात्मक है॥६९॥

गुरु-देव-यतिपूजा विषे, वळी दान ने सुशीलो विषे,
जीव रक्त उपवासादिके, शुभ-उपयोगस्वरूप छे. ६९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

यदायमात्मा दुःखस्य साधनीभूतां द्वेषरूपामिन्द्रियार्थानुरागरूपां चाशुभोपयोग-भूमिकामतिक्रम्य देवगुरुयतिपूजादानशीलोपवासप्रीतिलक्षणं धर्मानुरागमंगीकरोति तदेन्द्रिय-सुखस्य साधनीभूतां शुभोपयोगभूमिकामधिरूढोऽभिलप्येत।।६९।।

भूतम्। अविच्छिदं मणुवदेवपदिभावं यथा पूर्वमर्हदवस्थायां मनुजदेवेन्द्रादयः समवशरणे समागत्य नमस्कुर्वन्ति तेन प्रभुत्वं भवति, तदतिक्रान्तत्वादतिक्रान्तमनुजदेवपतिभावम्। पुनश्च किंविशिष्टम्। अपुणब्भावणिबद्धं द्रव्यक्षेत्रादिपञ्चप्रकारभवाद्विलक्षणः शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजात्मोपलम्भलक्षणो योऽसौ मोक्षस्तस्याधीनत्वादपुनर्भावनिबद्धमिति भावः।।*४।। एवं नमस्कारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्। इति गाथाष्टकेन पञ्चमस्थलं ज्ञातव्यम्। एवमष्टादशगाथाभिः स्थलपञ्चकेन सुखप्रपञ्चनामान्तराधिकारो गतः। इति पूर्वोक्तप्रकारेण 'एस सुरासुर' इत्यादि चतुर्दशगाथाभिः पीठिका गता, तदनन्तरं सप्तगाथाभिः सामान्यसर्वज्ञसिद्धिः, तदनन्तरं त्रयस्त्रिंशद्गाथाभिः ज्ञानप्रपञ्चः, तदनन्तर-मष्टादशगाथाभिः सुखप्रपञ्च इति समुदायेन द्वासप्ततिगाथाभिरन्तराधिकारचतुष्टयेन शुद्धोपयोगाधिकारः समाप्तः।। इत ऊर्द्ध्वं पञ्चविंशतिगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्डिकाचतुष्टयाभिधानोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र पञ्चविंशतिगाथामध्ये प्रथमं तावच्छुभाशुभविषये मूढत्वनिराकरणार्थं 'देवदजदिगुरु' इत्यादि दशगाथापर्यन्तं प्रथमज्ञानकण्डिका कथ्यते। तदनन्तरमात्मस्वरूपपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं 'चत्ता पावारंभं' इत्यादि सप्तगाथापर्यन्तं द्वितीयज्ञानकण्डिका। अथानन्तरं द्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं 'दव्वादीएसु' इत्यादि गाथाषट्कपर्यन्तं तृतीयज्ञानकण्डिका। तदनन्तरं स्वपर-तत्त्वपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं 'णाणप्पगं' इत्यादि गाथाद्वयेन चतुर्थज्ञानकण्डिका। इति ज्ञानकण्डिकाचतुष्टयाभिधानाधिकारे समुदायपातनिका। अथेदानीं प्रथमज्ञानकण्डिकायां स्वतन्त्र-व्याख्यानेन गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरं पुण्यं जीवस्य विषयतृष्णामुत्पादयतीति कथनरूपेण गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरमुपसंहाररूपेण गाथाद्वयं, इति स्थलत्रयपर्यन्तं क्रमेण व्याख्यानं क्रियते। तद्यथा--अथ यद्यपि पूर्वं गाथाषट्केनेन्द्रियसुखस्वरूपं भणितं तथापि पुनरपि तदेव विस्तरेण कथयन् सन् तत्साधकं शुभोपयोगं प्रतिपादयति, अथवा द्वितीयपातनिका--पीठिकायां यच्छुभोपयोगस्वरूपं सूचितं तस्येदानीमिन्द्रियसुखविशेषविचारप्रस्तावे तत्साधकत्वेन विशेषविवरणं करोति---**देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु** देवतायतिगुरुपूजासु चैव दाने वा सुशीलेषु **उववासादिसु रत्तो** तथैवोपवासादिषु च रक्त आसक्तः **अप्पा** जीवः **सुहोवओगप्पगो** शुभोपयोगात्मको भण्यते इति। तथाहि–देवता

टीका :–जब यह आत्मा दुःखकी साधना भूत ऐसी द्वेषरूप तथा इन्द्रिय विषयकी अनुरागरूप अशुभोपयोग भूमिकाका उल्लंघन करके, देव-गुरु-यतिकी पूजा, दान, शील और उपवासादिकके प्रीतिस्वरूप धर्मानुरागको अंगीकार करता है तब वह इन्द्रियसुखकी साधनभूत शुभोपयोगभूमिकामें आरूढ़ कहलाता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ शुभोपयोगसाध्यत्वेनेन्द्रियसुखमाख्याति—

जुत्तो सुहेण आदा तिरिओ वा माणुसो व देवो वा।
भूदो तावदि कालं लहदि सुहं इंदियं विविहं॥७०॥

युक्तः शुभेन आत्मा तिर्यग्वा मानुषो वा देवो वा।
भूतस्तावत्कालं लभते सुखमैन्द्रियं विविधम्॥७०॥

अयमात्मेन्द्रियसुखसाधनीभूतस्य शुभोपयोगस्य सामर्थ्यात्तदधिष्ठानभूतानां तिर्यग्मानुष-

---

निर्दोषिपरमात्मा, इन्द्रियजयेन शुद्धात्मस्वरूपप्रयलपरो यतिः, स्वयं भेदाभेदरलत्रयाराधकस्तदर्थिनां भव्यानां जिनदीक्षादायको गुरुः, पूर्वोक्तदेवतायतिगुरूणां तत्प्रतिबिम्बादीनां च यथासंभवं द्रव्यभावरूपा पूजा, आहारादिचतुर्विधदानं च आचारादिकथितशीलव्रतानि तथैवोपवासादिजिनगुणसंपत्त्यादिविधि-विशेषाश्च। एतेषु शुभानुष्ठानेषु योऽसौ रतः द्वेषरूपे विषयानुरागरूपे चाशुभानुष्ठाने विरतः, स जीवः

भावार्थ :–सर्व दोष रहित परमात्मा वह देव हैं; भेदाभेद रत्नत्रयके स्वयं आराधक तथा उस आराधनाके अर्थी अन्य भव्य जीवोंको जिनदीक्षा देनेवाले वे गुरु हैं; इन्द्रियजय करके शुद्धात्मस्वरूपमें प्रयत्नपरायण वे यति हैं। ऐसे देव-गुरु-यतिकी अथवा उनकी प्रतिमाकी पूजामें, आहारादिक चतुर्विध दानमें, आचारांगादि शास्त्रोंमें कहे हुए शीलव्रतोंमें तथा उपवासादिक तपमें प्रीतिका होना वह धर्मानुराग है। जो आत्मा द्वेषरूप और विषयानुरागरूप अशुभोपयोगको पार करके धर्मानुरागको अंगीकार करता है वह शुभोपयोगी है॥६९॥

अब, इन्द्रियसुखको शुभोपयोगके साध्यके रूपमें (अर्थात् शुभोपयोग साधन है और उनका साध्य इन्द्रियसुख है ऐसा) कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**शुभेन युक्तः**] शुभोपयोगयुक्त [**आत्मा**] आत्मा [**तिर्यक् वा**] तिर्यंच, [**मानुषः वा**] मनुष्य [**देवः वा**] अथवा देव [**भूतः**] होकर, [**तावत्कालं**] उतने समय तक [**विविधं**] विविध [**ऐन्द्रियं सुखं**] इन्द्रियसुख [**लभते**] प्राप्त करता है॥७०॥

टीका :—यह आत्मा इन्द्रियसुखके साधनभूत शुभोपयोगकी सामर्थ्यसे उसके अधिष्ठानभूत (-इन्द्रियसुखके स्थानभूत-आधारभूत ऐसी) तिर्यंच, मनुष्य और देवत्वकी

शुभयुक्त आत्मा देव वा तिर्यंच वा मानव बने;
ते पर्यये तावत्समय इन्द्रियसुख विधविध लहे. ७०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

देवत्वभूमिकानामन्यतमां भूमिकामवाप्य यावत्कालमवतिष्ठते, तावत्कालमनेकप्रकारमिन्द्रियसुखं समासादयतीति ।।७०।।

अथैवमिन्द्रियसुखमुत्क्षिप्य दुःखत्वे प्रक्षिपति—

सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणं पि सिद्धमुवदेसे।
ते देहवेदणट्टा रमंति विसएसु रम्मेसु ।।७१।।

सौख्यं स्वभावसिद्धं नास्ति सुराणामपि सिद्धमुपदेशे।
ते देहवेदनार्ता रमन्ते विषयेषु रम्येषु ।।७१।।

शुभोपयोगी भवतीति सूत्रार्थः ।।६९।। अथ पूर्वोक्तशुभोपयोगेन साध्यमिन्द्रियसुखं कथयति---**सुहेण जुत्तो** आदा यथा निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन युक्तो मुक्तो भूत्वाऽयं जीवोऽनन्तकालमतीन्द्रियसुखं लभते, तथा पूर्वसूत्रोक्तलक्षणशुभोपयोगेन युक्तः परिणतोऽयमात्मा **तिरिओ वा माणुसो व देवो वा भूदो** तिर्यग्मनुष्यदेवरूपो भूत्वा **तावदि कालं** तावत्कालं स्वकीयायुःपर्यन्तं **लहदि सुहं इंदियं विविहं** इन्द्रियजं विविधं सुखं लभते, इति सूत्राभिप्रायः ।।७०।। अथ पूर्वोक्तमिन्द्रियसुखं निश्चयनयेन दुःखमेवेत्युपदिशति---**सोक्खं सहावसिद्धं** रागाद्युपाधिरहितं चिदानन्दैकस्वभावेनोपादानकारणभूतेन सिद्धमुत्पन्नं यत्स्वाभाविकसुखं तत्स्वभावसिद्धं भण्यते। तच्च **णत्थि सुराणं पि** आस्तां मनुष्यादीनां सुखं देवेन्द्रादीनामपि नास्ति **सिद्धमुवदेसे** इति सिद्धमुपदिष्टमुपदेशे परमागमे। **ते देहवेदणट्टा रमंति विसएसु रम्मेसु** तथाभूतसुखाभावात्ते देवादयो देहवेदनार्ताः पीडिताः कदर्थिताः सन्तो रमन्ते विषयेषु रम्याभासेष्विति। अथ विस्तरः---अधोभागे सप्तनरकस्थानीयमहाऽजगरप्रसारितमुखे, कोणचतुष्के तु क्रोधमानमाया-

---

भूमिकाओंमेंसे किसी एक भूमिकाको प्राप्त करके जितने समय तक (उसमें) रहता है, उतने समय तक अनेक प्रकारका इन्द्रियसुख प्राप्त करता है ।।७०।।

इसप्रकार इन्द्रियसुखकी बात उठाकर अब इन्द्रियसुखको दुःखपनेमें डालते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**उपदेशे सिद्धं**] (जिनेन्द्रदेवके) उपदेशसे सिद्ध है कि [**सुराणाम् अपि**] देवोंके भी [**स्वभावसिद्धं**] स्वभावसिद्ध [**सौख्यं**] सुख [**नास्ति**] नहीं है; [**ते**] वे [**देहवेदनार्ता**] (पंचेन्द्रियमय) देहकी वेदनासे पीड़ित होनेसे [**रम्येसु विषयेसु**] रम्य विषयोंमें [**रमन्ते**] रमते हैं ।।७१।।

सुरनेय सौख्य स्वभावसिद्ध न—सिद्ध छे आगम विषे,
ते देहवेदनथी पीडित रमणीय विषयोमां रमे. ७१.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इन्द्रियसुखभाजनेषु हि प्रधाना दिवौकसः। तेषामपि स्वाभाविकं न खलु सुखमस्ति, प्रत्युत तेषां स्वाभाविकं दुःखमेवावलोक्यते, यतस्ते पंचेन्द्रियात्मकशरीरपिशाचपीडया परवशा भृगुप्रपातस्थानीयान् मनोज्ञविषयानभिपतन्ति॥७१॥

अथैवमिन्द्रियसुखस्य दुःखतायां युक्त्यावतारितायामिन्द्रियसुखसाधनीभूतपुण्यनिर्वर्तक-शुभोपयोगस्य दुःखसाधनीभूतपापनिर्वर्तकाशुभोपयोगविशेषादविशेषत्वमवतारयति—

णरणारयतिरियसुरा भजंति जदि देहसंभवं दुक्खं।
किह सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं॥७२॥

नरनारकतिर्यक्सुरा भजन्ति यदि देहसंभवं दुःखम्।
कथं स शुभो वाऽशुभ उपयोगो भवति जीवानाम्॥७२॥

लोभस्थानीयसर्पचतुष्कप्रसारितवदने देहस्थानीयमहान्धकूपे पतितः सन् कश्चित् पुरुषविशेषः, संसार-स्थानीयमहारण्ये मिथ्यात्वादिकुमार्गे नष्टः सन् मृत्युस्थानीयहस्तिभयेनायुष्कर्मस्थानीये साटिकविशेषे शुक्लकृष्णपक्षस्थानीयशुक्लकृष्णमूषकद्वयछेद्यमानमूले व्याधिस्थानीयमधुमक्षिकावेष्टिते लग्नस्तेनैव

टीका :—इन्द्रियसुखके भाजनोंमें प्रधान देव हैं; उनके भी वास्तवमें स्वाभाविक सुख नहीं है, उलटा उनके स्वाभाविक दुःख ही देखा जाता है; क्योंकि वे पंचेन्द्रियात्मक शरीररूपी पिशाचकी पीड़ासे परवश होनेसे [१]भृगुप्रपातके समान मनोज्ञ विषयोंकी ओर दौंड़ते है॥७१॥

इसप्रकार युक्तिपूर्वक इन्द्रियसुखको दुःखरूप प्रगट करके, अब इन्द्रियसुखके साधनभूत पुण्यको उत्पन्न करनेवाले शुभोपयोगकी, दुःखके साधनभूत पापको उत्पन्न करनेवाले अशुभोपयोगसे अविशेषता प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :-[**नरनारकतिर्यक्सुराः**] मनुष्य, नारकी, तिर्यंच और देव (-सभी) [**यदि**] यदि [**देहसंभवं**] देहोत्पन्न [**दुःखं**] दुःखको [**भजंति**] अनुभव करते हैं, [**जीवानां**] तो जीवोंका [**सः उपयोगः**] वह (शुद्धोपयोगसे विलक्षण-अशुद्ध) उपयोग [**शुभः वा अशुभः**] शुभ और अशुभ—दो प्रकारका [**कथं भवति**] कैसे है? (अर्थात् नहीं है)॥७२॥

---

१. भृगुप्रपात = अत्यंत दुःखसे घबराकर आत्मघात करनेके लिये पर्वतके निराधार उच्च शिखरसे गिरना। (भृगु = पर्वतका निराधार उच्चस्थान-शिखर; प्रपात = गिरना)

तिर्यंच-नारक-सुर-नरो जो देहगत दुःख अनुभवे,
तो जीवनो उपयोग अे शुभ ने अशुभ कई रीत छे?. ७२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

यदि शुभोपयोगजन्यसमुदीर्णपुण्यसंपदस्त्रिदशादयोऽशुभोपयोगजन्यपर्यागतपातकापदो वा नारकादयश्च, उभयेऽपि स्वाभाविकसुखाभावादविशेषेण पंचेन्द्रियात्मकशरीरप्रत्ययं दुःख-मेवानुभवन्ति, ततः परमार्थतः शुभाशुभोपयोगयोः पृथक्त्वव्यवस्था नावतिष्ठते॥७२॥

अथ शुभोपयोगजन्यं फलवत्पुण्यं विशेषेण दूषणार्थमभ्युपगम्योत्थापयति—

कुलिसाउहचक्कधरा सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहिं।
देहादीणं विद्धिं करेंति सुहिदा इवाभिरदा॥७३॥

हस्तिना हन्यमाने सति विषयसुखस्थानीयमधुबिन्दुसुस्वादेन यथा सुखं मन्यते, तथा संसारसुखम्। पूर्वोक्तमोक्षसुखं तु तद्विपरीतमिति तात्पर्यम्॥७१॥ अथ पूर्वोक्तप्रकारेण शुभोपयोगसाध्यस्येन्द्रिय-सुखस्य निश्चयेन दुःखत्वं ज्ञात्वा तत्साधकशुभोपयोगस्याप्यशुभोपयोगेन सह समानत्वं व्यवस्थापयति—णरणारयतिरियसुरा भजंति जदि देहसंभवं दुक्खं सहजातीन्द्रियामूर्तसदानन्दैकलक्षणं वास्तवसुखमलभमानाः सन्तो नरनारकतिर्यक्सुरा यदि चेदविशेषेण पूर्वोक्तपरमार्थसुखाद्विलक्षणं पञ्चेन्द्रियात्मकशरीरोत्पन्नं निश्चयनयेन दुःखमेव भजन्ते सेवन्ते, किह सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि

टीका :—यदि शुभोपयोगजन्य उदयगत पुण्यकी सम्पत्तिवाले देवादिक (अर्थात् शुभोपयोगजन्य पुण्यके उदयसे प्राप्त होनेवाली ऋद्धिवाले देव इत्यादि) और अशुभोपयोगजन्य उदयगत पापकी आपदावाले नारकादिक—यह दोनों स्वाभाविक सुखके अभावके कारण अविशेषरूपसे (-बिना अन्तरके) पंचेन्द्रियात्मक शरीर सम्बन्धी दुःखका ही अनुभव करते हैं, तब फिर परमार्थसे शुभ और अशुभ उपयोगकी पृथक्त्वव्यवस्था नहीं रहती।

भावार्थ :—शुभोपयोगजन्य पुण्यके फलरूपमें देवादिककी सम्पदायें मिलती हैं और अशुभोपयोगजन्य पापके फलरूपमें नारकादिककी आपदायें मिलती हैं। किन्तु वे देवादिक तथा नारकादिक दोनों परमार्थसे दुःखी ही हैं। इसप्रकार दोनोंका फल समान होनेसे शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों परमार्थसे समान ही हैं अर्थात् उपयोगमें—अशुद्धोपयोगमें—शुभ और अशुभ नामक भेद परमार्थसे घटित नहीं होते॥७२॥

(जैसे इन्द्रियसुखको दुःखरूप और शुभोपयोगको अशुभोपयोगके समान बताया है इसीप्रकार) अब, शुभोपयोगजन्य फलवाला जो पुण्य है उसे विशेषतः दूषण देनेके लिये (अर्थात् उसमें दोष दिखानेके लिये) उस पुण्यको (-उसके अस्तित्वको) स्वीकार करके उसकी (पुण्यकी) बातका खंडन करते हैं :—

चक्री अने देवेंद्र शुभ-उपयोगमूलक भोगथी
पुष्टि करे देहादिनी, सुखी सम दीसे अभिरत रही. ७३.

कुलिशायुधचक्रधराः शुभोपयोगात्मकैः भोगैः।
देहादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति सुखिता इवाभिरताः ॥७३॥

यतो हि शक्राश्चक्रिणश्च स्वेच्छोपगतैर्भोगैः शरीरादीन् पुष्णन्तस्तेषु दुष्टशोणित इव जलौकसोऽत्यन्तमासक्ताः सुखिता इव प्रतिभासन्ते, ततः शुभोपयोगजन्यानि फलवन्ति पुण्यान्यवलोक्यन्ते ॥७३॥

जीवाणं व्यवहारेण विशेषेऽपि निश्चयेन सः प्रसिद्धः शुद्धोपयोगाद्विलक्षणः शुभाशुभोपयोगः कथं भिन्नत्वं लभते, न कथमपीति भावः॥७२॥ एवं स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन प्रथमस्थलं गतम्। अथ पुण्यानि देवेन्द्रचक्रवर्त्यादिपदं प्रयच्छन्ति इति पूर्वं प्रशंसां करोति। किमर्थम्। तत्फलाधारेणाग्रे तृष्णोत्पत्तिरूपदुःखदर्शनार्थं। कुलिसाउहचक्कधरा देवेन्द्राश्चक्रवर्तिनश्च कर्तारः। सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहिं शुभोपयोगजन्यभोगैः कृत्वा देहादीणं विद्धिं करेंति विकुर्वणारूपेण देहपरिवारादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति। कथंभूताः सन्तः। सुहिदा इवाभिरदा सुखिता इवाभिरता आसक्ता इति। अयमत्रार्थः—यत्परमातिशय-तृप्तिसमुत्पादकं विषयतृष्णाविच्छित्तिकारकं च स्वाभाविकसुखं तदलभमाना दुष्टशोणिते जलयूका इवासक्ताः सुखाभासेन देहादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति। ततो ज्ञायते तेषां स्वाभाविकं सुखं नास्तीति॥७३॥ अथ पुण्यानि जीवस्य विषयतृष्णामुत्पादयन्तीति प्रतिपादयति—**जदि संति हि पुण्णाणि य यदि**

अन्वयार्थ :—[**कुलिशायुधचक्रधराः**] वज्रधर और चक्रधर (-इन्द्र और चक्रवर्ती) [**शुभोपयोगात्मकैः भोगैः**] शुभोपयोगमूलक (पुण्योंके फलरूप) भोगोंके द्वारा [**देहादीनां**] देहादिकी [**वृद्धिं कुर्वन्ति**] पुष्टि करते हैं और [**अभिरताः**] (इसप्रकार) भोगोंमें रत वर्तते हुए [**सुखिताः इव**] सुखी जैसे भासित होते हैं। (इसलिये पुण्य विद्यमान अवश्य है) ॥७३॥

टीका :—शक्रेन्द्र और चक्रवर्ती अपनी इच्छानुसार प्राप्त भोगोंके द्वारा शरीरादिको पुष्ट करते हुए—जैसे गोंच (जोंक) दूषित रक्तमें अत्यन्त आसक्त वर्तती हुई सुखी जैसी भासित होती है, उसीप्रकार—उन भोगोंमें अत्यन्त आसक्त वर्तते हुए सुखी जैसे भासित होते हैं; इसलिये शुभोपयोगजन्य फलवाले पुण्य दिखाई देते हैं (अर्थात् शुभोपयोगजन्य फलवाले पुण्योंका अस्तित्व दिखाई देता है)।

भावार्थ :—जो भोगोंमें आसक्त वर्तते हुए इन्द्र इत्यादि गोंच (जोंक)की भाँति सुखी जैसे मालूम होते हैं, वे भोग पुण्यके फल हैं; इसलिये पुण्यका अस्तित्व अवश्य है। (इसप्रकार इस गाथामें पुण्यकी विद्यमानता स्वीकार करके आगेकी गाथाओंमें पुण्यको दुःखका कारणरूप बतायेंगे) ॥७३॥

अथैवमभ्युपगतानां पुण्यानां दुःखबीजहेतुत्वमुद्भावयति—

जदि संति हि पुण्णाणि य परिणामसमुब्भवाणि विविहाणि।
जणयंति विसयतण्हं जीवाणं देवदंताणं॥७४॥

यदि सन्ति हि पुण्यानि च परिणामसमुद्भवानि विविधानि।
जनयन्ति विषयतृष्णां जीवानां देवतान्तानाम्॥७४॥

यदि नामैवं शुभोपयोगपरिणामकृतसमुत्पत्तीन्यनेकप्रकाराणि पुण्यानि विद्यन्त इत्यभ्युपगम्यते, तदा तानि सुधाशनानप्यवधिं कृत्वा समस्तसंसारिणां विषयतृष्णामवश्यमेव समुत्पादयन्ति। न खलु तृष्णामन्तरेण दुष्टशोणित इव जलूकानां समस्तसंसारिणां विषयेषु प्रवृत्तिरवलोक्यते। अवलोक्यते च सा। ततोऽस्तु पुण्यानां तृष्णायतनत्वमबाधितमेव॥७४॥

चेन्निश्चयेन पुण्यपापरहितपरमात्मनो विपरीतानि पुण्यानि सन्ति। पुनरपि किंविशिष्टानि। **परिणामसमुब्भवाणि** निर्विकारस्वसंवित्तिविलक्षणशुभपरिणामसमुद्भवानि **विविहाणि** स्वकीयानन्तभेदेन बहुविधानि। तदा तानि किं कुर्वन्ति। **जणयंति विसयतण्हं** जनयन्ति। काम्। विषयतृष्णाम्। केषाम्।

अब, इसप्रकार स्वीकार किये गये पुण्य दुःखके बीजके कारण हैं, (अर्थात् तृष्णाके कारण हैं) इसप्रकार न्यायसे प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यदि हि**] (पूर्वोक्त प्रकारसे) यदि [**परिणामसमुद्भवानी**] (शुभोपयोगरूप) परिणामसे उत्पन्न होनेवाले [**विविधानि पुण्यानि च**] विविध पुण्य [**संति**] विद्यमान हैं, [**देवतान्तानां जीवानां**] तो वे देवों तकके जीवोंको [**विषयतृष्णां**] विषयतृष्णा [**जनयन्ति**] उत्पन्न करते हैं॥७४॥

टीका :—यदि इसप्रकार शुभोपयोगपरिणामसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके पुण्य विद्यमान हैं ऐसा स्वीकार किया है, तो वे (-पुण्य) देवों तकके समस्त संसारियोंको विषयतृष्णा अवश्यमेव उत्पन्न करते हैं (ऐसा भी स्वीकार करना पड़ता है) वास्तवमें तृष्णाके बिना; जैसे जोंक (गोंच)को दूषित रक्तमें उसीप्रकार समस्त संसारियोंको विषयोंमें प्रवृत्ति दिखाई न दे; किन्तु वह तो दिखाई देती है। इसलिये पुण्योंकी तृष्णायतनता अबाधित ही है (अर्थात् पुण्य तृष्णाके घर हैं, ऐसा अविरोधरूपसे सिद्ध होता है)।

परिणामजन्य अनेकविध जो पुण्यनुं अस्तित्व छे,
तो पुण्य अे देवान्त जीवने विषयतृष्णोद्भव करे. ७४.

अथ पुण्यस्य दुःखबीजविजयमाघोषयति—

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि।
इच्छंति अणुभवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता॥७५॥

ते पुनरुदीर्णतृष्णाः दुःखितास्तृष्णाभिर्विषयसौख्यानि।
इच्छन्त्यनुभवन्ति च आमरणं दुःखसंतप्ताः॥७५॥

अथ ते पुनस्त्रिदशावसानाः कृत्स्नसंसारिणः समुदीर्णतृष्णाः पुण्यनिर्वर्तिताभिरपि

जीवाणं देवदंताणं दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपनिदानबन्धप्रभृतिनानामनोरथहयरूपविकल्पजालरहित-परमसमाधिसमुत्पन्नसुखामृतरूपां सर्वात्मप्रदेशेषु परमाह्लादोत्पत्तिभूतामेकाकारपरमसमरसीभावरूपां विषयाकाङ्क्षाग्निजनितपरमदाहविनाशिकां स्वरूपतृप्तिमलभमानानां देवेन्द्रप्रभृतिबहिर्मुखसंसारि-जीवानामिति। इदमत्र तात्पर्यम्—यदि तथाविधा विषयतृष्णा नास्ति तर्हि दुष्टशोणिते जलयूका इव कथं ते विषयेषु प्रवृत्तिं कुर्वन्ति। कुर्वन्ति चेत् पुण्यानि तृष्णोत्पादकत्वेन दुःखकारणानि इति ज्ञायन्ते॥७४॥ अथ पुण्यानि दुःखकारणानीति पूर्वोक्तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति—**ते पुण उदिण्णतण्हा** सहजशुद्धात्म-तृप्तेरभावात्ते निखिलसंसारिजीवाः पुनरुदीर्णतृष्णाः सन्तः **दुहिदा तण्हाहिं** स्वसंवित्तिसमुत्पन्नपारमार्थिक-सुखाभावात्पूर्वोक्ततृष्णाभिर्दुःखिताः सन्तः। किं कुर्वन्ति। **विसयसोक्खाणि इच्छंति** निर्विषयपरमात्म-

---

भावार्थ :—जैसा कि ७३ वीं गाथामें कहा गया है उसप्रकार अनेक तरहके पुण्य विद्यमान हैं, सो भले रहें। वे सुखके साधन नहीं किन्तु दुःखके बीजरूप तृष्णाके ही साधन हैं॥७४॥

अब, पुण्यमें दुःखके बीजकी विजय घोषित करते हैं। (अर्थात् पुण्यमें तृष्णाबीज दुःखवृक्षरूपसे वृद्धिको प्राप्त होता है—फैलता है ऐसा घोषित करते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[**पुनः**] और, [**उदीर्णतृष्णाः ते**] जिनकी तृष्णा उदित है ऐसे वे जीव [**तृष्णाभिः दुःखिताः**] तृष्णाओंके द्वारा दुःखी होते हुए, [**आमरणं**] मरणपर्यंत [**विषय सौख्यानि इच्छन्ति**] विषयसुखोंको चाहते हैं [**च**] और [**दुःखसन्तप्ताः**] दुःखोंसे संतप्त होते हुए (-दुःखदाहको सहन न करते हुए) [**अनुभवंति**] उन्हें भोगते हैं॥७५॥

टीका :—जिनके तृष्णा उदित है ऐसे देवपर्यंत समस्त संसारी, तृष्णा दुःखका बीज

ते उदिततृष्ण जीवो, दुःखित तृष्णाथी, विषयिक सुखने
इच्छे अने आमरण दुःखसंतप्त तेने भोगवे. ७५.

तृष्णाभिर्दुःखबीजतयाऽत्यन्तदुःखिताः सन्तो मृगतृष्णाभ्य इवाम्भांसि विषयेभ्यः सौख्यान्यभिलषन्ति। तद्दुःखसंतापवेगमसहमाना अनुभवन्ति च विषयान्, जलायुका इव, तावद्यावत् क्षयं यान्ति। यथा हि जलायुकास्तृष्णाबीजेन विजयमानेन दुःखांकुरेण क्रमतः समाक्रम्यमाणा दुष्टकीलालमभिलषन्त्यस्तदेवानुभवन्त्यश्चाप्रलयात् क्लिश्यन्ते, एवममी अपि पुण्यशालिनः पापशालिन इव तृष्णाबीजेन विजयमानेन दुःखांकुरेण क्रमतः समाक्रम्यमाणा विषयानभिलषन्तस्तानेवानुभवन्तश्चाप्रलयात् क्लिश्यन्ते। अतः पुण्यानि सुखाभासस्य दुःखस्यैव साधनानि स्युः ॥७५॥

सुखाद्विलक्षणानि विषयसुखानि इच्छन्ति। न केवलमिच्छन्ति, अणुभवंति य अनुभवन्ति च। किंपर्यन्तम्। आमरणं मरणपर्यन्तम्। कथंभूताः। दुक्खसंतत्ता दुःखसंतप्ता इति। अयमत्रार्थः—यथा तृष्णोद्रेकेण

होनेसे पुण्यजनित तृष्णाओंके द्वारा भी अत्यन्त दुःखी होते हुए [१]मृगतृष्णामेंसे जलकी भाँति विषयोंमेंसे सुख चाहते हैं और उस [२]दुःखसंतापके वेगको सहन न कर सकनेसे विषयोंको तब -तक भोगते हैं, जब तक कि विनाशको [-मरणको] प्राप्त नहीं होते। जैसे जोंक (गोंच) तृष्णा जिसका बीज है ऐसे विजयको प्राप्त होती हुई दुःखांकुरसे क्रमशः आक्रान्त होनेसे दूषित रक्तको चाहती है और उसीको भोगती हुई मरणपर्यन्त क्लेशको पाती है, उसीप्रकार यह पुण्यशाली जीव भी, पापशाली जीवोंकी भाँति, तृष्णा जिसका बीज है ऐसे विजय प्राप्त दुःखांकुरोंके द्वारा क्रमशः आक्रांत होनेसे, विषयोंको चाहते हुए और उन्हींको भोगते हुए विनाशपर्यंत (-मरणपर्यन्त) क्लेश पाते हैं।

इससे पुण्य सुखाभास ऐसे दुःखका ही साधन है।

भावार्थ :—जिन्हें समस्तविकल्पजाल रहित परमसमाधिसे उत्पन्न सुखामृतरूप सर्व आत्मप्रदेशोंमें परमआह्लादभूत स्वरूपतृप्ति नहीं वर्तती ऐसे समस्त संसारी जीवोंके निरन्तर विषयतृष्णा व्यक्त या अव्यक्तरूपसे अवश्य वर्तती है। वे तृष्णारूपी बीज क्रमशः अंकुररूप होकर दुःखवृक्षरूपसे वृद्धिको प्राप्त होकर, इसप्रकार दुःखदाहका वेग असह्य होने पर, वे जीव विषयोंमें प्रवृत्त होते हैं। इसलिये जिनकी विषयोंमें प्रवृत्ति देखी जाती है ऐसे देवों तकके समस्त संसारी जीव दुःखी ही हैं।

इसप्रकार दुःखभाव ही पुण्योंका—पुण्यजनित सामग्रीका—आलम्बन करता है इसलिये पुण्य सुखाभास ऐसे दुःखका ही अवलम्बन-साधन है॥७५॥

---

१. जैसे मृगजलमेंसे जल नहीं मिलता वैसे ही इन्द्रियविषयोंमेंसे सुख प्राप्त नहीं होता।

२. दुःखसंताप = दुःखदाह; दुःखकी जलन-पीड़ा।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ पुनरपि पुण्यजन्यस्येन्द्रियसुखस्य बहुधा दुःखत्वमुद्योतयति—

सपरं बाधासहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा॥७६॥

सपरं बाधासहितं विच्छिन्नं बन्धकारणं विषमम्।
यदिन्द्रियैर्लब्धं तत्सौख्यं दुःखमेव तथा॥७६॥

सपरत्वात् बाधासहितत्वात् विच्छिन्नत्वात् बन्धकारणत्वात् विषमत्वाच्च पुण्यजन्यमपीन्द्रियसुखं दुःखमेव स्यात्। सपरं हि सत् परप्रत्ययत्वात् पराधीनतया, बाधासहितं

प्रेरिताः जलौकसः कीलालमभिलषन्त्यस्तदेवानुभवन्त्यश्चामरणं दुःखिता भवन्ति, तथा निजशुद्धात्मसंवित्तिपराङ्मुखा जीवा अपि मृगतृष्णाभ्योऽम्भांसीव विषयानभिलषन्तस्तथैवानुभवन्तश्चामरणं दुःखिता भवन्ति। तत एतदायातं तृष्णातङ्कोत्पादकत्वेन पुण्यानि वस्तुतो दुःखकारणानि इति॥७५॥ अथ पुनरपि पुण्योत्पन्नस्येन्द्रियसुखस्य बहुधा दुःखत्वं प्रकाशयति—**सपरं** सह परद्रव्यापेक्षया वर्तते सपरं भवतीन्द्रियसुखं, पारमार्थिकसुखं तु परद्रव्यनिरपेक्षत्वादात्माधीनं भवति। **बाधासहितं** तीव्रक्षुधातृष्णाद्यनेकबाधासहितत्वाद्बाधासहितमिन्द्रियसुखं, निजात्मसुखं तु पूर्वोक्तसमस्तबाधारहितत्वादव्याबाधम्। **विच्छिण्णं** प्रतिपक्षभूतासातोदयेन सहितत्वाद्विच्छिन्नं सान्तरितं भवतीन्द्रियसुखं, अतीन्द्रियसुखं तु प्रतिपक्षभूतासातोदयाभावान्निरन्तरम्। **बंधकारणं** दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षा-

---

अब, पुनः पुण्यजन्य इन्द्रियसुखको अनेक प्रकारसे दुःखरूप प्रकाशित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यत्] जो [इन्द्रियैः लब्धं] इन्द्रियोंसे प्राप्त होता है [तत् सौख्यं] वह सुख [सपरं] परसम्बन्धयुक्त, [बाधासहितं] बाधासहित [विच्छिन्नं] विच्छिन्न [बंधकारणं] बंधका कारण [विषमं] और विषम है; [तथा] इसप्रकार [दुःखम् एव] वह दुःख ही है॥७६॥

टीका :—परसम्बन्धयुक्त होनेसे, बाधा सहित होनेसे, विच्छन्न होनेसे, बन्धका कारण होनेसे, और विषम होनेसे, इन्द्रियसुख—पुण्यजन्य होने पर भी—दुःख ही है।

इन्द्रियसुख (१) 'परके सम्बन्धवाला' होता हुआ पराश्रयताके कारण पराधीन है,

---

परयुक्त, बाधासहित, खंडित, बंधकारण, विषम छे;
जे इन्द्रियोथी लब्ध ते सुख अे रीते दुःख ज खरे. ७६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

हि सदशनायोदन्यावृषस्यादिभिस्तृष्णाव्यक्तिभिरुपेतत्वात् अत्यन्ताकुलतया, विच्छिन्नं हि सदसद्वेद्योदयप्रच्यावितसद्वेद्योदयप्रवृत्ततयाऽनुभवत्वादुद्भूतविपक्षतया, बन्धकारणं हि सद्विषयोपभोगमार्गानुलग्नरागादिदोषसेनानुसारसंगच्छमानघनकर्मपांसुपटलत्वादुदर्कदुःसहतया, विषमं हि सदभिवृद्धिपरिहाणिपरिणतत्वादत्यन्तविसंष्ठुलतया च दुःखमेव भवति। अथैवं पुण्यमपि पापवद् दुःखसाधनमायातम् ।।७६।।

प्रभृत्यनेकापध्यानवशेन भाविनरकादिदुःखोत्पादककर्मबन्धोत्पादकत्वाद्बन्धकारणमिन्द्रियसुखं, अतीन्द्रियसुखं तु सर्वापध्यानरहितत्वादबन्धकारणम्। **विसमं** विगतः शमः परमोपशमो यत्र तद्विषममतृप्तिकरं हानिवृद्धिसहितत्वाद्वा विषमं, अतीन्द्रियसुखं तु परमतृप्तिकरं हानिवृद्धिरहितम्। **जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा** यदिन्द्रियैर्लब्धं संसारसुखं तत्सुखं यथा पूर्वोक्तपञ्चविशेषणविशिष्टं भवति तथैव दुःखमेवेत्यभिप्रायः।।७६।। एवं पुण्यानि जीवस्य तृष्णोत्पादकत्वेन दुःखकारणानि भवन्तीति कथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्। अथ निश्चयेन पुण्यपापयोर्विशेषो नास्तीति कथयन् पुण्य-

---

(२) 'बाधासहित' होता हुआ खाने, पीने और मैथुनकी इच्छा इत्यादि तृष्णाकी व्यक्तियोंसे (-तृष्णाकी प्रगटताओंसे) युक्त होनेसे अत्यन्त आकुल है, (३)'विच्छिन्न' होता हुआ असातावेदनीयका उदय जिसे [१]च्युत कर देता है ऐसे सातावेदनीयके उदयसे प्रवर्तमान होता हुआ अनुभवमें आता है, इसलिये विपक्षकी उत्पत्तिवाला है, (४) 'बन्धका कारण' होता हुआ विषयोपभोगके मार्गमें लगी हुई रागादि दोषोंकी सेनाके अनुसार कर्मरजके [२]घन पटलका सम्बन्ध होनेके कारण परिणामसे दुःसह है, और (५) 'विषम' होता हुआ हानि-वृद्धिमें परिणमित होनेसे अत्यन्त अस्थिर है; इसलिये वह (इन्द्रियसुख) दुःख ही है।

जब कि ऐसा है (इन्द्रियसुख दुःख ही है) तो पुण्य भी, पापकी भाँति, दुःखका साधन है ऐसा फलित हुआ।

भावार्थ :—इन्द्रियसुख दुःख ही है, क्योंकि वह पराधीन है, अत्यन्त आकुल है, विपक्षकी (-विरोधकी) उत्पत्तिवाला है, परिणामसे दुःस्सह है, और अत्यन्त अस्थिर है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पुण्य भी दुःखका ही साधन है।।७६।।

---

१. च्युत करना = हटा देना; पदभ्रष्ट करना; (सातावेदनीयका उदय उसकी स्थिति अनुसार रहकर हट जाता है और असाता वेदनीयका उदय आता है)

२. घन पटल = सघन (गाढ़) पर्त, बड़ा झुण्ड।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ पुण्यपापयोरविशेषत्वं निश्चिन्वन्नुपसंहरति—

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥७७॥

न हि मन्यते य एवं नास्ति विशेष इति पुण्यपापयोः।
हिण्डति घोरमपारं संसारं मोहसंछन्नः ॥७७॥

एवमुक्तक्रमेण शुभाशुभोपयोगद्वैतमिव सुखदुःखद्वैतमिव च न खलु परमार्थतः पुण्यपापद्वैतमवतिष्ठते, उभयत्राप्यनात्मधर्मत्वाविशेषत्वात्। यस्तु पुनरनयोः कल्याणकालायस-

---

पापयोर्व्याख्यानमुपसंहरति—**ण हि मण्णदि जो एवं** न हि मन्यते य एवम्। किम्। **णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं** पुण्यपापयोर्निश्चयेन विशेषो नास्ति। स किं करोति। **हिंडदि घोरमपारं संसारं** हिण्डति भ्रमति। कम्। संसारम्। कथंभूतम्। घोरम् अपारं चाभव्यापेक्षया। कथंभूतः। **मोहसंछण्णो** मोहप्रच्छादित इति। तथाहि–द्रव्यपुण्यपापयोर्व्यवहारेण भेदः, भावपुण्यपापयोस्तत्फलभूतसुखदुःखयोश्चाशुद्धनिश्चयेन भेदः,

---

अब, पुण्य और पापकी अविशेषताका निश्चय करते हुए (इस विषयका) उपसंहार करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[एवं] इसप्रकार [पुण्यपापयोः] पुण्य और पापमें [विशेषः नास्ति] अन्तर नहीं है [इति] ऐसा [यः] जो [न हि मन्यते] नहीं मानता, [मोहसंछन्नः] वह मोहाच्छादित होता हुआ [घोर अपारं संसारं] घोर अपार संसारमें [हिण्डति] परिभ्रमण करता है ॥७७॥

टीका :— यों पूर्वोक्त प्रकारसे, शुभाशुभ उपयोगके द्वैतकी भाँति और सुखदुःखके द्वैतकी भाँति, परमार्थसे पुण्यपापका द्वैत नहीं टिकता–नहीं रहता, क्योंकि दोनोंमें अनात्मधर्मत्व अविशेष अर्थात् समान है। (परमार्थसे जैसे शुभोपयोग और अशुभोपयोगरूप द्वैत विद्यमान नहीं है, जैसे [१]सुख और दुःखरूप द्वैत विद्यमान नहीं है, उसीप्रकार पुण्य और पापरूप द्वैतका भी अस्तित्व नहीं है; क्योंकि पुण्य और पाप दोनों आत्माके धर्म न होनेसे निश्चयसे समान ही हैं।)

---

१. सुख = इन्द्रियसुख

नहि मानतो—अे रीत पुण्ये पापमां न विशेष छे,
ते मोहथी आच्छन्न घोर अपार संसारे भमे. ७७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

निगडयोरिवाहंकारिकं विशेषमभिमन्यमानोऽहमिन्द्रपदादिसंपदां निदानमिति निर्भरतरं धर्मानुरागमवलम्बते स खलूपरक्तचित्तभित्तितया तिरस्कृतशुद्धोपयोगशक्तिरासंसारं शारीरं दुःखमेवानुभवति।।७७।।

अथैवमवधारितशुभाशुभोपयोगाविशेषः समस्तमपि रागद्वेषद्वैतमपहासयन्नशेषदुःखक्षयाय सुनिश्चितमनाः शुद्धोपयोगमधिवसति—

एवं विदिदत्थो जो दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा।
उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भवं दुक्खं।।७८।।

शुद्धनिश्चयेन तु शुद्धात्मनो भिन्नत्वाद्भेदो नास्ति। एवं शुद्धनयेन पुण्यपापयोरभेदं योऽसौ न मन्यते स देवेन्द्रचक्रवर्तिबलदेववासुदेवकामदेवादिपदनिमित्तं निदानबन्धेन पुण्यमिच्छन्निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वविपरीतदर्शनचारित्रमोहप्रच्छादितः सुवर्णलोहनिगडद्वयसमानपुण्यपापद्वयबद्धः सन् संसाररहितशुद्धात्मनो विपरीतं संसारं भ्रमतीत्यर्थः।।७७।। अथैवं शुभाशुभयोः समानत्वपरिज्ञानेन निश्चितशुद्धात्मतत्त्वः सन्

ऐसा होने पर भी, जो जीव उन दोनोंमें—सुवर्ण और लोहेकी बेड़ीकी भाँति—[१]अहंकारिक अन्तर मानता हुआ, अहमिन्द्रपदादि सम्पदाओंके कारणभूत धर्मानुराग पर अत्यन्त निर्भरमयरूपसे (-गाढरूपसे) अवलम्बित है, वह जीव वास्तवमें चित्तभूमिके उपरक्त होनेसे (-चित्तकी भूमि कर्मोपाधिके निमित्तसे रंगी हुई-मलिन विकृत होनेसे) जिसने शुद्धोपयोग शक्तिका तिरस्कार किया है, ऐसा वर्तता हुआ संसारपर्यन्त (-जबतक इस संसारका अस्तित्व है तबतक अर्थात् सदाके लिये) शारीरिक दुःखका ही अनुभव करता है।

भावार्थ :—जैसे सोनेकी बेडी और लोहेकी बेडी दोनों अविशेषरूपसे बाँधनेका ही काम करती हैं उसीप्रकार पुण्य-पाप दोनों अविशेषरूपसे बन्धन ही हैं। जो जीव पुण्य और पापकी अविशेषताको कभी नहीं मानता उसका उस भयंकर संसारमें परिभ्रमणका कभी अन्त नहीं आता।।७७।।

अब, इसप्रकार शुभ और अशुभ उपयोगकी अविशेषता अवधारित करके, समस्त रागद्वेषके द्वैतको दूर करते हुए, अशेष दुःखका क्षय करनेका मनमें दृढ़ निश्चय करके शुद्धोपयोगमें निवास करता है (-उसे अंगीकार करता है) :—

---

१. पुण्य और पापमें अन्तर होनेका मत अहंकारजन्य (अविद्याजन्य, अज्ञानजन्य है)।

विदितार्थ अे रीत, रागद्वेष लहे न जे द्रव्यो विषे,
शुद्धोपयोगी जीव ते क्षय देहगत दुःखनो करे. ७८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एवं विदितार्थो यो द्रव्येषु न रागमेति द्वेषं वा।
उपयोगविशुद्धः सः क्षपयति देहोद्भवं दुःखम् ॥७८॥

यो हि नाम शुभानामशुभानां च भावानामविशेषदर्शनेन सम्यक्परिच्छिन्न-वस्तुस्वरूपः स्वपरविभागावस्थितेषु समग्रेषु ससमग्रपर्यायेषु द्रव्येषु रागं द्वेषं चाशेषमेव परिवर्जयति स किलैकान्तेनोपयोगविशुद्धतया परित्यक्तपरद्रव्यालम्बनोऽग्निरिवायःपिण्डादननुष्ठितायःसारः प्रचण्डघनघातस्थानीयं शारीरं दुःखं क्षपयति। ततो ममायमेवैकः शरणं शुद्धोपयोगः ॥७८॥

दुःखक्षयाय शुद्धोपयोगानुष्ठानं स्वीकरोति—**एवं विदिदत्थो जो** एवं चिदानन्दैकस्वभावं परमात्मतत्त्व-मेवोपादेयमन्यदशेषं हेयमिति हेयोपादेयपरिज्ञानेन विदितार्थतत्त्वो भूत्वा यः **दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा** निजशुद्धात्मद्रव्यादन्येषु शुभाशुभसर्वद्रव्येषु रागं द्वेषं वा न गच्छति **उवओगविसुद्धो सो** रागादिरहित-शुद्धात्मानुभूतिलक्षणेन शुद्धोपयोगेन विशुद्धः सन् सः **खवेदि देहुब्भवं दुक्खं** तप्तलोहपिण्डस्थानीय-देहादुद्भवं अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्विलक्षणं परमाकुलत्वोत्पादकं लोहपिण्डरहितोऽग्निरिव घनघातपरंपरास्थानीयदेहरहितो भूत्वा शारीरं दुःखं क्षपयतीत्यभिप्रायः ॥७८॥ एवमुपसंहाररूपेण तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम्। इति शुभाशुभमूढत्वनिरासार्थं गाथादशकपर्यन्तं स्थलत्रयसमुदायेन

अन्वयार्थ :—[एवं] इसप्रकार [विदितार्थः] वस्तुस्वरूपको जानकर [यः] जो [द्रव्येषु] द्रव्योंके प्रति [रागं द्वेषं वा] राग या द्वेषको [न एति] प्राप्त नहीं होता, [स] वह [उपयोगविशुद्धः] उपयोगविशुद्ध होता हुआ [देहोद्भवं दुःखं] दोहोत्पन्न दुःखका [क्षपयति] क्षय करता है ॥७८॥

टीका :—जो जीव शुभ और अशुभ भावोंके अविशेषदर्शनसे (-समानताकी श्रद्धासे) वस्तुस्वरूपको सम्यक्प्रकारसे जानता है, स्व और पर दो विभागोंमें रहनेवाली, समस्त पर्यायों सहित समस्त द्रव्योंके प्रति राग और द्वेषको निरवशेषरूपसे छोड़ता है, वह जीव, एकान्तसे उपयोगविशुद्ध (-सर्वथा शुद्धोपयोगी) होनेसे जिसने परद्रव्यका आलम्बन छोड़ दिया है ऐसा वर्तता हुआ—लोहेके गोलेमेंसे लोहेके [१]सारका अनुसरण न करनेवाली अग्निकी भाँति—प्रचंड घनके आघात समान शारीरिक दुःखका क्षय करता है। (जैसे अग्नि लोहेके तप्त गोलेमेंसे लोहेके सत्वको धारण नहीं करती इसलिये अग्नि पर प्रचंड घनके प्रहार नहीं होते, उसीप्रकार परद्रव्यका आलम्बन न करनेवाले आत्माको शारीरिक दुःखका वेदन नहीं होता।) इसलिये यही एक शुद्धोपयोग मेरी शरण है ॥७८॥

---

१. सार = सत्व, घनता, कठिनता।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ यदि सर्वसावद्ययोगमतीत्य चरित्रमुपस्थितोऽपि शुभोपयोगानुवृत्तिवशतया मोहादीन्नोन्मूलयामि, ततः कुतो मे शुद्धात्मलाभ इति सर्वारम्भेणोत्तिष्ठते—

चत्ता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि।
ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं॥७९॥

त्यक्त्वा पापारम्भं समुत्थितो वा शुभे चरित्रे।
न जहाति यदि मोहादीन्न लभते स आत्मकं शुद्धम्॥७९॥

यः खलु समस्तसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणं परमसामायिकं नाम चारित्रं प्रतिज्ञायापि शुभोपयोगवृत्त्या बकाभिसारिकयेवाभिसार्यमाणो न मोहवाहिनीविधेयतामवकिरति स किल

प्रथमज्ञानकण्डिका समाप्ता। अथ शुभाशुभोपयोगनिवृत्तिलक्षणशुद्धोपयोगेन मोक्षो भवतीति पूर्वसूत्रे भणितम्। अत्र तु द्वितीयज्ञानकण्डिकाप्रारम्भे शुद्धोपयोगाभावे शुद्धात्मानं न लभते इति तमेवार्थं

अब, सर्व सावद्ययोगको छोड़कर चारित्र अङ्गीकार किया होने पर भी यदि मैं शुभोपयोगपरिणतिके वश होकर मोहादिका [१]उन्मूलन न करूँ, तो मुझे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति कहाँसे होगी?—इसप्रकार विचार करके मोहादिके उन्मूलनके प्रति सर्वारम्भ (-सर्वउद्यम) पूर्वक कटिबद्ध होता है :—

अन्वयार्थ :—[**पापारम्भं**] पापरम्भको [**त्यक्त्वा**] छोड़कर [**शुभे चरित्रे**] शुभ चारित्रमें [**समुत्थितः वा**] उद्यत होने पर भी [**यदि**] यदि जीव [**मोहादीन्**] मोहादिको [**न जहाति**] नहीं छोड़ता, तो [**सः**] वह [**शुद्धं आत्मकं**] शुद्ध आत्माको [**न लभते**] प्राप्त नहीं होता॥७९॥

टीका :—जो जीव समस्त सावद्ययोगके प्रत्याख्यानस्वरूप परमसामायिक नामक चारित्रकी प्रतिज्ञा करके भी धूर्त [२]अभिसारिका (नायिका) की भाँति शुभोपयोगपरिणतिसे [३]अभिसार (-मिलन) को प्राप्त होता हुआ (अर्थात् शुभोपयोगपरिणतिके प्रेममें फँसता हुआ)

---

१. उन्मूलन = जड़मूलसे निकाल देना; निकन्दन।
२. अभिसारिका = संकेत अनुसार प्रेमीसे मिलने जानेवाली स्त्री।
३. अभिसार = प्रेमीसे मिलने जाना।

जीव छोडी पापारंभने शुभ चरितमां उद्यत भले,
जो नव तजे मोहादिने तो नव लहे शुद्धात्मने. ७९.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

समासन्नमहादुःखसंकटः कथमात्मानमविप्लुतं लभते। अतो मया मोहवाहिनीविजयाय बद्धा कक्षेयम्॥७९॥

अथ कथं मया विजेतव्या मोहवाहिनीत्युपायमालोचयति—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥

यो जानात्यर्हन्तं द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः।
स जानात्यात्मानं मोहः खलु याति तस्य लयम्॥८०॥

यो हि नामार्हन्तं द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः परिच्छिनत्ति स खल्वात्मानं परिच्छिनत्ति,

---

व्यतिरेकरूपेण दृढयति—**चत्ता पावारंभं** पूर्वं गृहवासादिरूपं पापारम्भं त्यक्त्वा **समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्हि** सम्यगुपस्थितो वा पुनः। क्व। शुभचरित्रे। **ण जहदि जदि मोहादी** न त्यजति यदि चेन्मोहरागद्वेषान् **ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं** न लभते स आत्मानं शुद्धमिति। इतो विस्तरः—कोऽपि मोक्षार्थी परमोपेक्षालक्षणं परमसामायिकं पूर्वं प्रतिज्ञाय पश्चाद्विषयसुखसाधकशुभोपयोगपरिणत्या मोहितान्तरङ्गः सन् निर्विकल्पसमाधिलक्षणपूर्वोक्तसामायिकचारित्राभावे सति निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतान् मोहादीन्न त्यजति यदि चेत्तर्हि जिनसिद्धसदृशं निजशुद्धात्मानं न लभत इति सूत्रार्थः॥७९॥

मोहकी सेनाके वशवर्तनपनेको दूर नहीं कर डालता–जिसके महा दुःख संकट निकट हैं ऐसा वह, शुद्ध (-विकार रहित, निर्मल) आत्माको कैसे प्राप्त कर सकता है? (नहीं प्राप्त कर सकता) इसलिये मैंने मोहकी सेना पर विजय प्राप्त करनेको कमर कसी है।

अब, 'मैं मोहकी सेनाको कैसे जीतूं'—ऐसा उपाय विचारता है :—

अन्वयार्थ :—[**यः**] जो [**अर्हन्तं**] अरहन्तको [**द्रव्यत्व-गुणत्वपर्ययत्वैः**] द्रव्यपने गुणपने और पर्यायपने [**जानाति**] जानता है, [**सः**] वह [**आत्मानं**] (अपने) आत्माको [**जानाति**] जानता है और [**तस्य मोहः**] उसका मोह [**खलु**] अवश्य [**लयं याति**] लयको प्राप्त होता है॥८०॥

टीका :—जो वास्तवमें अरहंतको द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे और पर्यायरूपसे जानता है

जे जाणतो अर्हंतने गुण, द्रव्य ने पर्ययपणे,
ते जीव जाणे आत्मने, तसु मोह पामे लय खरे. ८०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

उभयोरपि निश्चयेनाविशेषात्। अर्हतोऽपि पाककाष्ठागतकार्तस्वरस्येव परिस्पष्टमात्मरूपं, ततस्तत्परिच्छेदे सर्वात्मपरिच्छेदः। तत्रान्वयो द्रव्यं, अन्वयविशेषणं गुणः, अन्वयव्यतिरेकाः पर्यायाः। तत्र भगवत्यर्हति सर्वतो विशुद्धे त्रिभूमिकमपि स्वमनसा समयमुत्पश्यति।

अथ शुद्धोपयोगाभावे यादृशं जिनसिद्धस्वरूपं न लभते तमेव कथयति—

तवसंजमप्पसिद्धो सुद्धो सग्गापवग्गमग्गकरो।
अमरासुरिंदमहिदो देवो सो लोयसिहरत्थो॥*५॥

तवसंजमप्पसिद्धो समस्तरागादिपरभावेच्छात्यागेन स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं तपः, बहिरङ्गेन्द्रिय प्राणसंयमबलेन स्वशुद्धात्मनि संयमनात्समरसीभावेन परिणमनं संयमः, ताभ्यां प्रसिद्धो जात उत्पन्नस्तपःसंयमप्रसिद्धः, **सुद्धो** क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितः, **सग्गापवग्गमग्गकरो** स्वर्गः प्रसिद्धः केवल-ज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयलक्षणोऽपवर्गो मोक्षस्तयोर्मार्गं करोत्युपदिशति स्वर्गापवर्गमार्गकरः, **अमरासुरिंदमहिदो** तत्पदाभिलाषिभिरमरासुरेन्द्रैर्महितः पूजितोऽमरासुरेन्द्रमहितः, **देवो सो** स एवंगुणविशिष्टोऽर्हन् देवो भवति। **लोयसिहरत्थो** स एव भगवान् लोकाग्रशिखरस्थः सन् सिद्धो भवतीति जिनसिद्धस्वरूपं ज्ञातव्यम्॥*५॥ अथ तमित्थंभूतं निर्दोषिपरमात्मानं ये श्रद्दधति मन्यन्ते तेऽक्षयसुखं लभन्त इति प्रज्ञापयति—

तं देवदेवदेवं जदिवरवसहं गुरुं तिलोयस्स।
पणमंति जे मणुस्सा ते सोक्खं अक्खयं जंति॥*६॥

तं देवदेवदेवं देवदेवाः सौधर्मेन्द्रप्रभृतयस्तेषां देव आराध्यो देवदेवदेवस्तं देवदेवदेवं, **जदिवरवसहं** जितेन्द्रियत्वेन निजशुद्धात्मनि यत्नपरास्ते यतयस्तेषां वरा गणधरदेवादयस्तेभ्योऽपि वृषभः प्रधानो यतिवरवृषभस्तं यतिवरवृषभं, **गुरुं तिलोयस्स** अनन्तज्ञानादिगुरुगुणैस्त्रैलोक्यस्यापि गुरुस्तं त्रिलोकगुरुं, **पणमंति जे मणुस्सा** तमित्थंभूतं भगवन्तं ये मनुष्यादयो द्रव्यभावनमस्काराभ्यां प्रणमन्त्याराधयन्ति **ते सोक्खं अक्खयं जंति** ते तदाराधनाफलेन परंपरयाऽक्षयानन्तसौख्यं यान्ति लभन्त इति सूत्रार्थः॥*६॥ अथ 'चत्ता पावारंभं' इत्यादिसूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादि-

---

वह वास्तवमें आत्माको जानता है, क्योंकि दोनोंमें निश्चयसे अन्तर नहीं है; और अरहन्तका स्वरूप, अन्तिम तावको प्राप्त सोनेके स्वरूपकी भाँति, परिस्पष्ट (-सर्वप्रकारसे स्पष्ट) है, इसलिये उसका ज्ञान होनेपर सर्व आत्माका ज्ञान होता है। वहाँ अन्वय वह द्रव्य है, अन्वयका विशेषण वह गुण है और अन्वयके व्यतिरेक(-भेद) वे पर्यायें हैं। सर्वतः विशुद्ध भगवान अरहंतमें (-अरहंतके स्वरूपका ख्याल करने पर) जीव तीनों प्रकारयुक्त समयको (-द्रव्यगुणपर्यायमय निज आत्माको) अपने मनसे जान लेता है—समझ लेता है। यथा 'यह

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यश्चेतनोऽयमित्यन्वयस्तद्द्रव्यं, यच्चान्वयाश्रितं चैतन्यमिति विशेषणं स गुणः, ये चैकसमय-मात्रावधृतकालपरिमाणतया परस्परपरावृत्ता अन्वयव्यतिरेकास्ते पर्यायाश्चिद्विवर्तनग्रन्थय इति यावत्। अथैवमस्य त्रिकालमप्येककालमाकलयतो मुक्ताफलानीव प्रलम्बे प्रालम्बे चिद्विवर्तांश्चेतन एव संक्षिप्य विशेषणविशेष्यत्ववासनान्तर्धानाद्धवलिमानमिव प्रालम्बे चेतन एव चैतन्यमन्तर्हितं विधाय केवलं प्रालम्बमिव केवलमात्मानं परिच्छिन्दतस्त-

---

विनाशाभावे शुद्धात्मलाभो न भवति, तदर्थमेवेदानीमुपायं समालोचयति—जो जाणदि अरहंतं यः कर्ता जानाति। कम्। अर्हन्तम्। कैः कृत्वा। दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं द्रव्यत्वगुणत्वपर्यायत्वैः। सो जाणदि अप्पाणं स पुरुषोऽर्हत्परिज्ञानात्पश्चादात्मानं जानाति, मोहो खलु जादि तस्स लयं तत आत्मपरिज्ञानात्तस्य मोहो दर्शनमोहो लयं विनाशं क्षयं यातीति। तद्यथा—केवलज्ञानादयो विशेषगुणा, अस्तित्वादयः सामान्यगुणाः, परमौदारिकशरीराकारेण यदात्मप्रदेशानामवस्थानं स व्यञ्जनपर्यायः, अगुरुलघुकगुण-षड्वृद्धिहानिरूपेण प्रतिक्षणं प्रवर्तमाना अर्थपर्यायाः, एवंलक्षणगुणपर्यायाधारभूतममूर्तमसंख्यातप्रदेशं

---

[१]चेतन है' इसप्रकारका अन्वय वह द्रव्य है, अन्वयके आश्रित रहनेवाला 'चैतन्य' विशेषण वह गुण है, और एक समय मात्रकी मर्यादावाला कालपरिमाण होनेसे परस्पर अप्रवृत्त [२]अन्वयव्यतिरेक वे पर्यायें हैं—जो कि चिद्विवर्तनकी [-आत्माके परिणमनकी] ग्रन्थियाँ [गांठें] हैं।

अब, इसप्रकार त्रैकालिकको भी [-त्रैकालिक आत्माको भी] एक कालमें समझ लेनेवाला वह जीव, जैसे मोतियोंको झूलते हुए हारमें अन्तर्गत माना जाता है, उसी प्रकार चिद्विवर्तोंका चेतनमें ही संक्षेपण [-अंतर्गत] करके, तथा [३]विशेषणविशेष्यताकी वासनाका [४]अन्तर्धान होनेसे—जैसे सफेदीको हारमें [५]अन्तर्हित किया जाता है, उसी प्रकार—चैतन्यको चेतनमें ही अन्तर्हित करके, जैसे मात्र [६]हारको जाना जाता है, उसीप्रकार केवल आत्माको

---

१. चेतन = आत्मा।

२. अन्वयव्यतिरेक = एक दूसरेमें नहीं प्रवर्तते ऐसे जो अन्वयके व्यतिरेक।

३. विशेषण गुण है और विशेष्य वो द्रव्य है।

४. अंतर्धान = अदृश्य हो जाना।

५. अंतर्हित = गुप्त; अदृश्य।

६. हारको खरीदनेवाला मनुष्य हारको खरीदते समय हार, उसकी सफेदी और उनके मोतियों इत्यादिकी परीक्षा करता है, किन्तु बादमें सफेदी और मोतियोंको हारमें ही समाविष्ट करके उनका लक्ष छोड़कर वह मात्र हारको ही जानता है। यदि ऐसा न करे तो हारके पहिनने पर भी उसकी सफेदी आदिके विकल्प बने रहनेसे हारको पहननेके सुखका वेदन नहीं कर सकेगा।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

दुत्तरोत्तरक्षणक्षीयमाणकर्तृकर्मक्रियाविभागतया निष्क्रियं चिन्मात्रं भावमधिगतस्य जातस्य मणेरिवाकम्पप्रवृत्तनिर्मलालोकस्यावश्यमेव निराश्रयतया मोहतमः प्रलीयते। यद्येवं लब्धो मया मोहवाहिनीविजयोपायः ॥८०॥

शुद्धचैतन्यान्वयरूपं द्रव्यं चेति। इत्थंभूतं द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं पूर्वमर्हदभिधाने परमात्मनि ज्ञात्वा पश्चान्निश्चयनयेन तदेवागमसारपदभूतयाऽध्यात्मभाषया निजशुद्धात्मभावनाभिमुखरूपेण सविकल्पस्व-संवेदनज्ञानेन तथैवागमभाषयाधःप्रवृत्तिकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसंज्ञदर्शनमोहक्षपणसमर्थपरिणाम-विशेषबलेन पश्चादात्मनि योजयति। तदनन्तरमविकल्पस्वरूपे प्राप्ते, यथा पर्यायस्थानीयमुक्ताफलानि गुणस्थानीयं धवलत्वं चाभेदनयेन हार एव, तथा पूर्वोक्तद्रव्यगुणपर्याया अभेदनयेनात्मैवेति भावयतो दर्शनमोहान्धकारः प्रलीयते। इति भावार्थः ॥८०॥ अथ प्रमादोत्पादकचारित्रमोहसंज्ञश्चौरोऽस्तीति मत्वाऽऽत्मपरिज्ञानादुपलब्धस्य शुद्धात्मचिन्तामणेः रक्षणार्थं जागर्तीति कथयति—जीवो जीवः कर्ता।

जानने पर, उसके उत्तरोत्तर क्षणमें कर्ता-कर्म-क्रियाका विभाग क्षयको प्राप्त होता जाता है इसलिये निष्क्रिय चिन्मात्र भावको प्राप्त होता है; और इसप्रकार मणिकी भाँति जिसका निर्मल प्रकाश अकम्परूपसे प्रवर्तमान है ऐसे उस (चिन्मात्र भावको प्राप्त) जीवके मोहान्धकार निराश्रयताके कारण अवश्यमेव प्रलयको प्राप्त होता है।

यदि ऐसा है तो मैंने मोहकी सेनाको जीतनेका उपाय प्राप्त कर लिया है।

भावार्थ :—अरहंत भगवान और अपना आत्मा निश्चयसे समान है। अरहंत भगवान मोह-राग-द्वेषरहित होनेसे उनका स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है, इसलिये यदि जीव द्रव्य-गुण-पर्याय रूपसे उस (अरहंत भगवानके) स्वरूपको मनके द्वारा प्रथम समझ ले तो "यह जो आत्मा, आत्माका एकरूप (-कथंचित् सदृश) त्रैकालिक प्रवाह है सो द्रव्य है, उसका जो एकरूप रहनेवाला चैतन्यरूप विशेषण है सो गुण है और उस प्रवाहमें जो क्षणवर्ती व्यतिरेक हैं सो पर्यायें हैं" इसप्रकार अपना आत्मा भी द्रव्य-गुण-पर्यायरूपसे मनके द्वारा ज्ञानमें आता है। इसप्रकार त्रैकालिक निज आत्माको मनके द्वारा ज्ञानमें लेकर—जैसे मोतियोंको और सफेदीको हारमें ही अन्तर्गत करके मात्र हार ही जाना जाता है, उसीप्रकार—आत्मपर्यायोंको और चैतन्य-गुणको आत्मामें ही अन्तर्गर्भित करके केवल आत्माको जानने पर परिणामी-परिणाम-परिणतिके भेदका विकल्प नष्ट हो जाता है, इसलिये जीव निष्क्रिय चिन्मात्र भावको प्राप्त होता है, और उससे दर्शनमोह निराश्रय होता हुआ नष्ट हो जाता है। यदि ऐसा है तो मैंने मोहकी सेना पर विजय प्राप्त करनेका उपाय प्राप्त कर लिया है, —ऐसा कहा है॥८०॥

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथैवं प्राप्तचिन्तामणेरपि मे प्रमादो दस्युरिति जागर्ति—

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।
जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं॥८१॥

जीवो व्यपगतमोह उपलब्धवांस्तत्त्वमात्मनः सम्यक्।
जहाति यदि रागद्वेषौ स आत्मानं लभते शुद्धम्॥८१॥

एवमुपवर्णितस्वरूपेणोपायेन मोहमपसार्यापि सम्यगात्मतत्त्वमुपलभ्यापि यदि नाम रागद्वेषौ निर्मूलयति तदा शुद्धमात्मानमनुभवति। यदि पुनः पुनरपि तावनुवर्तते तदा प्रमादतन्त्रतया लुण्ठितशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भचिन्तारत्नोऽन्तस्ताम्यति। अतो मया रागद्वेष-निषेधायात्यन्तं जागरितव्यम्॥८१॥

किंविशिष्टः। ववगदमोहो शुद्धात्मतत्त्वरुचिप्रतिबन्धकविनाशितदर्शनमोहः। पुनरपि किंविशिष्टः। उवलद्धो उपलब्धवान् ज्ञातवान्। किम्। तच्चं परमानन्दैकस्वभावात्मतत्त्वम्। कस्य संबन्धि। अप्पणो निजशुद्धात्मनः। कथम्। सम्मं सम्यक् संशयादिरहितत्वेन जहदि जदि रागदोसे शुद्धात्मानुभूति-लक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चारित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ यदि त्यजति सो अप्पाणं लहदि सुद्धं स

अब, इसप्रकार मैंने चिंतामणि-रत्न प्राप्त कर लिया है तथापि प्रमाद चोर विद्यमान है, ऐसा विचार कर जागृत रहता है :—

अन्वयार्थ :—[व्यपगतमोहः] जिसने मोहको दूर किया है और [सम्यक् आत्मनः तत्त्वं] आत्माके सम्यक् तत्त्वको (-सच्चे स्वरूपको) [उपलब्धवान्] प्राप्त किया है ऐसा [जीवः] जीव [यदि] यदि [रागद्वेषौ] रागद्वेषको [जहाति] छोड़ता है, [सः] तो वह [शुद्धं आत्मानं] शुद्ध आत्माको [लभते] प्राप्त करता है॥८१॥

टीका :—इसप्रकार जिस उपायका स्वरूप वर्णन किया है, उस उपायके द्वारा मोहको दूर करके भी सम्यक् आत्मतत्त्वको (यथार्थ स्वरूपको) प्राप्त करके भी यदि जीव रागद्वेषको निर्मूल करता है, तो शुद्ध आत्माका अनुभव करता है। (किन्तु) यदि पुनः-पुनः उनका अनुसरण करता है,—रागद्वेषरूप परिणमन करता है, तो प्रमादके अधीन होनेसे शुद्धात्मतत्त्वके अनुभवरूप चिंतामणि-रत्नके चुराये जानेसे अन्तरंगमें खेदको प्राप्त होता है। इसलिये मुझे

जीव मोहने करी दूर, आत्मस्वरूप सम्यक् पामीने,
जो रागद्वेष परिहरे तो पामतो शुद्धात्मने. ८१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथायमेवैको भगवद्भिः स्वयमनुभूयोपदर्शितो निःश्रेयसस्य पारमार्थिकः पन्था इति मतिं व्यवस्थापयति—

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं॥८२॥

सर्वेऽपि चार्हन्तस्तेन विधानेन क्षपितकर्मांशाः।
कृत्वा तथोपदेशं निर्वृतास्ते नमस्तेभ्यः॥८२॥

एवमभेदरत्नत्रयपरिणतो जीवः शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं लभते मुक्तो भवतीति। किंच पूर्वं ज्ञानकण्डिकायां 'उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भवं दुक्खं' इत्युक्तं, अत्र तु 'जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं' इति भणितम्, उभयत्र मोक्षोऽस्ति। को विशेषः। प्रत्युत्तरमाह—तत्र शुभाशुभयोर्निश्चयेन समानत्वं ज्ञात्वा पश्चाच्छुद्धे शुभरहिते निजस्वरूपे स्थित्वा मोक्षं लभते, तेन कारणेन शुभाशुभमूढत्वनिरासार्थं ज्ञानकण्डिका भण्यते। अत्र तु द्रव्यगुणपर्यायैरात्तस्वरूपं ज्ञात्वा पश्चात्तद्रूपे स्वशुद्धात्मनि स्थित्वा मोक्षं प्राप्नोति, ततः कारणादियमात्तात्ममूढत्वनिरासार्थं ज्ञानकण्डिका

रागद्वेषको दूर करनेके लिये अत्यन्त जागृत रहना चाहिये।

भावार्थ :—८० वीं गाथामें बताये गये उपायसे दर्शनमोहको दूर करके, अर्थात् सम्यक्दर्शन प्राप्त करके जो जीव शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप वीतरागचारित्रके प्रतिबन्धक राग-द्वेषको छोड़ता है, पुनः-पुनः रागद्वेषभावमें परिणमित नहीं होता, वही अभेदरत्नत्रयपरिणत जीव शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव आत्माको प्राप्त करता है—मुक्त होता है। इसलिये जीवको सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भी सराग चारित्र प्राप्त करके भी, रागद्वेषके निवारणार्थ अत्यन्त सावधान रहना चाहिये॥८१॥

अब, यही एक (-पूर्वोक्त गाथाओंमें वर्णित यही एक), भगवन्तोंने स्वयं अनुभव करके प्रगट किया हुआ [१]निःश्रेयसका पारमार्थिकपन्थ है—इसप्रकार मतिको [२]व्यवस्थित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**सर्वे अपि च**] सभी [**अर्हन्तः**] अरहन्त भगवान [**तेन विधानेन**] उसी विधिसे [**क्षपितकर्मांशाः**] कर्मांशोंका क्षय करके [**तथा**] तथा उसीप्रकारसे [**उपदेशं**

---

१. निःश्रेयस = मोक्ष।

२. व्यवस्थित = निश्चित; स्थिर।

अर्हंत सौ कर्मो तणो करी नाश अे ज विधि वडे,
उपदेश पण अेम ज करी, निर्वृत थया; नमुं तेमने. ८२.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यतः खल्वतीतकालानुभूतक्रमप्रवृत्तयः समस्ता अपि भगवन्तस्तीर्थकराः, प्रकारान्तरस्यासंभवादसंभावितद्वैतेनामुनैवैकेन प्रकारेण क्षपणं कर्मांशानां स्वयमनुभूय, परमाप्ततया परेषामप्यायत्यामिदानींत्वे वा मुमुक्षूणां तथैव तदुपदिश्य, निःश्रेयसमध्याश्रिताः। ततो नान्यद्वर्त्म निर्वाणस्येत्यवधार्यते। अलमथवा प्रलपितेन। व्यवस्थिता मतिर्मम। नमो भगवद्भ्यः ॥८२॥

इत्येतावान् विशेषः ॥८१॥ अथ पूर्वं द्रव्यगुणपर्यायैराप्तस्वरूपं विज्ञाय पश्चात्तथाभूते स्वात्मनि स्थित्वा सर्वेऽप्यर्हन्तो मोक्षं गता इति स्वमनसि निश्चयं करोति—**सव्वे वि य अरहंता** सर्वेऽपि चार्हन्तः **तेण विधाणेण** द्रव्यगुणपर्यायैः पूर्वमर्हत्परिज्ञानात्पश्चात्तथाभूतस्वात्मावस्थानरूपेण तेन पूर्वोक्तप्रकारेण **खविदकम्मंसा** क्षपितकर्मांशा विनाशितकर्मभेदा भूत्वा, **किच्चा तधोवदेसं** अहो भव्या अयमेव निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धात्मोपलम्भलक्षणो मोक्षमार्गो नान्य इत्युपदेशं कृत्वा **णिव्वादा** निर्वृता अक्षयानन्तसुखेन तृप्ता जाताः, **ते ते** भगवन्तः। **णमो तेसिं** एवं मोक्षमार्गनिश्चयं कृत्वा श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवास्तस्मै निजशुद्धात्मानुभूतिस्वरूपमोक्षमार्गाय तदुपदेशकेभ्योऽर्हद्भ्यश्च तदुभयस्वरूपाभिलाषिणः सन्तो 'नमोस्तु तेभ्य' इत्यनेन पदेन नमस्कारं कुर्वन्तीत्यभिप्रायः ॥८२॥ अथ रत्नत्रयाराधका एव पुरुषा दानपूजागुणप्रशंसानमस्कारार्हा भवन्ति नान्या इति कथयति—

कृत्वा] उपदेश करके [निर्वृताः ते] मोक्षको प्राप्त हुए हैं [नमः तेभ्यः] उन्हें नमस्कार हो ॥८२॥

टीका :—अतीत कालमें क्रमशः हुए समस्त तीर्थंकर भगवान, [१]प्रकारान्तरका असंभव होनेसे जिसमें द्वैत संभव नहीं है; ऐसे इसी एकप्रकारसे कर्मांशों (ज्ञानावरणादि कर्म भेदों)का क्षय स्वयं अनुभव करके (तथा) [२]परमाप्तताके कारण भविष्यकालमें अथवा इस (वर्तमान) कालमें अन्य मुमुक्षुओंको भी इसीप्रकारसे उसका (-कर्म क्षयका) उपदेश देकर निःश्रेयस (मोक्ष)को प्राप्त हुए हैं; इसलिये निर्वाणका अन्य (कोई) मार्ग नहीं है ऐसा निश्चित होता है। अथवा अधिक प्रलापसे बस होओ! मेरी मति व्यवस्थित हो गई है। भगवन्तोंको नमस्कार हो।

भावार्थ :—८० और ८१ वीं गाथाके कथनानुसार सम्यक्दर्शन प्राप्त करके वीतरागचारित्रके विरोधी राग-द्वेषको दूर करना अर्थात् निश्चयरत्नत्रयात्मक शुद्धानुभूतिमें लीन होना ही एक मात्र मोक्षमार्ग है; त्रिकालमें भी कोई दूसरा मोक्षका मार्ग नहीं है। समस्त

---

१. प्रकारान्तर = अन्य प्रकार (कर्मक्षय एक ही प्रकारसे होता है, अन्य-प्रकारसे नहीं होता, इसलिये उस कर्मक्षयके प्रकारमें द्वैत अर्थात् दो-रूपपना नहीं है)।

२. परमाप्त = परम आप्त; परम विश्वासपात्र (तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ और वीतराग होनेसे परम आप्त है, अर्थात् उपदेष्टा हैं)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ शुद्धात्मलाभपरिपन्थिनो मोहस्य स्वभावं भूमिकाश्च विभावयति—

दव्वादिएसु मूढो भावो जीवस्स हवदि मोहो त्ति।
खुब्भदि तेणुच्छण्णो पप्पा रागं व दोसं वा॥८३॥

द्रव्यादिकेषु मूढो भावो जीवस्य भवति मोह इति।
क्षुभ्यति तेनावच्छन्नः प्राप्य रागं वा द्वेषं वा॥८३॥

यो हि द्रव्यगुणपर्यायेषु पूर्वमुपवर्णितेषु पीतोन्मत्तकस्येव जीवस्य तत्त्वाप्रतिपत्तिलक्षणो

दंसणसुद्धा पुरिसा णाणपहाणा समग्गचरियत्था।
पूजासक्काररिहा दाणस्स य हि ते णमो तेसिं॥*७॥

दंसणसुद्धा निजशुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वसाधकेन मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितेन तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणेन दर्शनेन शुद्धा दर्शनशुद्धाः। **पुरिसा** पुरुषा जीवाः। पुनरपि कथंभूताः। **णाणपहाणा** निरुपरागस्वसंवेदनज्ञानसाधकेन वीतरागसर्वज्ञप्रणीतपरमागमाभ्यासलक्षणज्ञानेन प्रधानाः समर्थाः प्रौढा ज्ञानप्रधानाः। पुनश्च कथंभूताः। **समग्गचरियत्था** निर्विकारनिश्चलात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रसाधकेनाचारादिशास्त्रकथितमूलोत्तरगुणानुष्ठानादिरूपेण चारित्रेण समग्राः परिपूर्णाः समग्रचारित्रस्थाः **पूजासक्काररिहा** द्रव्यभावलक्षणपूजा गुणप्रशंसा सत्कारस्तयोरर्हा योग्या भवन्ति। **दाणस्स य हि**

अरहन्तोंने इसी मार्गसे मोक्ष प्राप्त किया है और अन्य मुमुक्षुओंको भी इसी मार्गका उपदेश दिया है। उन भगवन्तोंको नमस्कार हो॥८२॥

अब, शुद्धात्मलाभके [१]परिपंथी-मोहका स्वभाव और उसमें प्रकारोंको (-भेदोंको) व्यक्त करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[जीवस्य] जीवके [द्रव्यादिकेषु मूढः भावः] द्रव्यादि सम्बन्धी मूढ़ भाव (-द्रव्यगुणपर्यायसम्बन्धी जो मूढ़तारूप परिणाम) [मोहः इति भवति] वह मोह है [तेन अवच्छन्नः] उससे आच्छादित वर्तता हुआ जीव [रागं वा द्वेषं वा प्राप्य] राग अथवा द्वेषको प्राप्त करके [क्षुभ्यति] क्षुब्ध होता है॥८३॥

टीका :—धतूरा खाये हुए मनुष्यकी भाँति, जीवके जो पूर्व वर्णित द्रव्य-गुण-

---

१. परिपंथी = शत्रु; मार्गमें लूटनेवाला।

द्रव्यादिके मूढ़ भाव वर्ते जीवने, ते मोह छे;
ते मोहथी आच्छन्न रागी-द्वेषी थई क्षोभित बने. ८३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मूढो भावः स खलु मोहः। तेनावच्छन्नात्मरूपः सन्नयमात्मा परद्रव्यमात्मद्रव्यत्वेन परगुण-मात्मगुणतया परपर्यायानात्मपर्यायभावेन प्रतिपद्यमानः, प्ररूढदृढतरसंस्कारतया परद्रव्य-मेवाहरहरुपाददानो, दग्धेन्द्रियाणां रुचिवशेनाद्वैतेऽपि प्रवर्तितद्वैतो, रुचितारुचितेषु विषयेषु रागद्वेषावुपश्लिष्य, प्रचुरतराम्भोभाररयाहतः सेतुबन्ध इव द्वेधा विदार्यमाणो नितरां क्षोभमुपैति। अतो मोहरागद्वेषभेदात्त्रिभूमिको मोहः॥८३॥

दानस्य च हि स्फुटं ते ते पूर्वोक्तरत्नत्रयाधाराः। णमो तेसिं नमस्तेभ्य इति नमस्कारस्यापि त एव योग्याः॥*७॥ एवमात्मात्मस्वरूपविषये मूढत्वनिरासार्थं गाथासप्तकेन द्वितीयज्ञान-कण्डिका गता। अथ शुद्धात्मोपलम्भप्रतिपक्षभूतमोहस्य स्वरूपं भेदांश्च प्रतिपादयति—दव्वादिएसु शुद्धात्मादिद्रव्येषु, तेषां द्रव्याणामनन्तज्ञानाद्यस्तित्वादिविशेषसामान्यलक्षणगुणेषु, शुद्धात्मपरिणति-लक्षणसिद्धत्वादिपर्यायेषु च यथासंभवं पूर्वोपवर्णितेषु वक्ष्यमाणेषु च मूढो भावो एतेषु पूर्वोक्तद्रव्यगुणपर्यायेषु विपरीताभिनिवेशरूपेण तत्त्वसंशयजनको मूढो भावः जीवस्स हवदि मोहो त्ति इत्थंभूतो भावो जीवस्य दर्शनमोह इति भवति। खुब्भदि तेणुच्छण्णो तेन दर्शनमोहेनावच्छन्नो झम्पितः सन्नक्षुभितात्मतत्त्वविपरीतेन क्षोभेण क्षोभं स्वरूपचलनं विपर्ययं गच्छति। किं कृत्वा। पप्पा रागं व दोसं वा निर्विकारशुद्धात्मनो विपरीतमिष्टानिष्टेन्द्रियविषयेषु हर्षविषादरूपं चारित्रमोहसंज्ञं रागद्वेषं वा प्राप्य चेति। अनेन किमुक्तं भवति। मोहो दर्शनमोहो रागद्वेषद्वयं चारित्रमोहश्चेति त्रिभूमिको मोह इति॥८३॥ अथ दुःखहेतुभूतबन्धस्य कारणभूता रागद्वेषमोहा निर्मूलनीया इत्याघोषयति—

पर्याय हैं उनमें होनेवाला [१]तत्त्व-अप्रतिपत्तिलक्षण मूढ़ भाव वह वास्तवमें मोह है। उस मोहसे निजरूप आच्छादित होनेसे यह आत्मा परद्रव्यको स्वद्रव्यरूपसे, परगुणको स्वगुणरूपसे, और पर-पर्यायोंको स्वपर्यायरूप समझकर-अंगीकार करके, अति रूढ-दृढ़तर संस्कारके कारण परद्रव्यको ही सदा ग्रहण करता हुआ, [२]दग्ध इन्द्रियोंकी रुचिके वशसे [३]अद्वैतमें भी द्वैत प्रवृत्ति करता हुआ, रुचिकर-अरुचिकर विषयोंमें रागद्वेष करके अति प्रचुर जलसमूहके वेगसे प्रहारको प्राप्त सेतुबन्ध (पुल) की भाँति दो भागोंमें खंडित होता हुआ अत्यन्त क्षोभको प्राप्त होता है। इससे मोह, राग और द्वैष—इन भेदोंके कारण मोह तीन प्रकारका है॥८३॥

---

१. तत्त्व अप्रतिपत्तिलक्षण = तत्त्वकी अप्रतिपत्ति (-अप्राप्ति, अज्ञान, अनिर्णय) जिसका लक्षण है ऐसा।

२. दग्ध = जली हुई; हलकी; शापित। ('दग्ध' तिरस्कारवाचक शब्द है)

३. इन्द्रियविषयोंमें-पदार्थोंमें 'यह अच्छे हैं और यह बुरे' इसप्रकारका द्वैत नहीं है; तथापि वहाँ भी मोहाच्छादित जीव अच्छे-बूरेका द्वैत उत्पन्न कर लेते हैं।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथानिष्टकार्यकारणत्वमभिधाय त्रिभूमिकस्यापि मोहस्य क्षयमासूत्रयति—

मोहेण व रागेण व दोसेण व परिणदस्स जीवस्स।
जायदि विविहो बंधो तम्हा ते संखवइदव्वा॥८४॥

मोहेन वा रागेण वा द्वेषेण वा परिणतस्य जीवस्य।
जायते विविधो बन्धस्तस्मात्ते संक्षपयितव्याः॥८४॥

एवमस्य तत्त्वाप्रतिपत्तिनिमीलितस्य, मोहेन वा रागेण वा द्वेषेण वा परिणतस्य, तृणपटलावच्छन्नगर्तसंगतस्य करेणुकुट्टनीगात्रासक्तस्य प्रतिद्विरददर्शनोद्धतप्रविधावितस्य च सिन्धुरस्येव, भवति नाम नानाविधो बन्धः। ततोऽमी अनिष्टकार्यकारिणो मुमुक्षुणा मोहरागद्वेषाः सम्यग्निर्मूलकाषं कषित्वा क्षपणीयाः॥८४॥

मोहेण व रागेण व दोसेण व परिणदस्स जीवस्स मोहरागद्वेषपरिणतस्य मोहादिरहितपरमात्मस्वरूपपरिणतिच्युतस्य बहिर्मुखजीवस्य जायदि विविहो बंधो शुद्धोपयोगलक्षणो भावमोक्षस्तद्बलेन जीवप्रदेशकर्मप्रदेशानामत्यन्तविश्लेषो द्रव्यमोक्षः, इत्थंभूतद्रव्यभावमोक्षाद्विलक्षणः सर्वप्रकारोपादेयभूतस्वाभाविकसुखविपरीतस्य नारकादिदुःखस्य कारणभूतो विविधबन्धो जायते। तम्हा ते संखवइदव्वा यतो

अब, तीनों प्रकारके मोहको अनिष्ट कार्यका कारण कहकर उसका (-तीन प्रकारके मोहका) क्षय करनेको सूत्र द्वारा कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**मोहेन वा**] मोहरूप [**रागेण वा**] रागरूप [**द्वेषेण वा**] अथवा द्वेषरूप [**परिणतस्य जीवस्य**] परिणमित जीवके [**विविधः बंधः**] विविध बंध [**जायते**] होता है; [**तस्मात्**] इसलिये [**ते**] वे (मोह-राग-द्वेष) [**संक्षपयितव्याः**] सम्पूर्णतया क्षय करने योग्य हैं॥८४॥

टीका :—इसप्रकार तत्त्व-अप्रतिपत्ति (-वस्तुस्वरूपके अज्ञान) से बंद हुअे, मोह-रूप-रागरूप या द्वेषरूप परिणमित होते हुए इस जीवको—घासके ढेरसे ढँके हुए खड्डेका संग करनेवाले हाथीकी भाँति, हथिनीरूपी कुट्टनीके शरीरमें आसक्त हाथीकी भाँति और विरोधी हाथीको देखकर, उत्तेजित होकर (उसकी ओर) दौड़ते हुए हाथीकी भाँति—विविध प्रकारका बंध होता है; इसलिये मुमुक्षु जीवको अनिष्ट कार्य करनेवाले इस मोह, राग और द्वेषका यथावत्

रे! मोहरूप वा रागरूप वा द्वेषपरिणत जीवने
विधविध थाये बंध, तेथी सर्व ते क्षययोग्य छे. ८४.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथामी अमीभिर्लिङ्गैरुपलभ्योद्भवन्त एव निशुम्भनीया इति विभावयति—

अट्ठे अजधागहणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु।
विसएसु य प्पसंगो मोहस्सेदाणि लिंगाणि॥८५॥

अर्थे अयथाग्रहणं करुणाभावश्च तिर्यङ्मनुजेषु।
विषयेषु च प्रसङ्गो मोहस्यैतानि लिङ्गानि॥८५॥

रागद्वेषमोहपरिणतस्य जीवस्येत्थंभूतो बन्धो भवति ततो रागादिरहितशुद्धात्मध्यानेन ते रागद्वेष-मोहा सम्यक् क्षपयितव्या इति तात्पर्यम्॥८४॥ अथ स्वकीयस्वकीयलिङ्गै रागद्वेषमोहान् ज्ञात्वा

निर्मूल नाश हो इसप्रकार क्षय करना चाहिये।

भावार्थ :— (१) हाथीको पकड़नेके लिये धरतीमें खड्डा बनाकर उसे घाससे ढक दिया जाता है, वहाँ खड्डा होनेके कारण उस खड्डे पर जानेसे हाथी गिर पडता है और वह इसप्रकार पकड़ा जाता है। (२) हाथीको पकड़नेके लिये सिखाई हुई हथिनी भेजी जाती है; उसके शारीरिक रागमें फँसनेसे हाथी पकड़ा जाता है। (३) हाथी पकड़नेकी तीसरी रीति यह है कि उस हाथीके सामने दूसरा पालित हाथी भेजा जाता है; उसके पीछे वह हाथी उत्तेजित होकर लड़नेके लिये दौड़ता है और इसप्रकार वह पकड़नेवालोंके जालमें फँस जाता है।

उपर्युक्त प्रकारसे जैसे हाथी (१) अज्ञानसे, (२) रागसे (३) द्वेषसे अनेक प्रकारके बन्धनको प्राप्त होता है, उसीप्रकार जीव (१) मोहसे, (२) रागसे या (३) द्वेषसे अनेक प्रकारके बन्धनको प्राप्त होता है, इसलिये मोक्षार्थीको मोह-राग-द्वेषका भलीभाँति-सम्पूर्णतया मूलसे ही क्षय कर देना चाहिये॥८४॥

अब, इस मोहरागद्वेषको इन (आगामी गाथामें कहे गये) चिह्नों-लक्षणोंके द्वारा पहिचान कर उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिये, एसा प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अर्थे अयथाग्रहणं**] पदार्थका अयथाग्रहण (अर्थात् पदार्थोको जैसे हैं वैसे सत्यस्वरूप न मानकर उनके विषयमें अन्यथा समझ) [**च**] और [**तिर्यङ्मनुजेषु करुणाभावः**] तिर्यंच-मनुष्योंके प्रति करुणाभाव, [**विषयेषु प्रसंगः च**] तथा विषयोंकी संगति (इष्ट विषयोंमें प्रीति और अनिष्ट विषयोंमें अप्रीति)—[**एतानि**] यह सब [**मोहस्य लिंगानि**] मोहके चिह्न-लक्षण हैं॥८५॥

अर्थो तणुं अयथाग्रहण, करुणा मनुज-तिर्यंचमां,
विषयो तणो वळी संग,-लिंगो जाणवां आ मोहनां. ८५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अर्थानामयाथातथ्यप्रतिपत्त्या तिर्यग्मनुष्येषु प्रेक्षार्हेष्वपि कारुण्यबुद्ध्या च मोहमभीष्ट-विषयप्रसंगेन रागमनभीष्टविषयाप्रीत्या द्वेषमिति त्रिभिर्लिंगैरधिगम्य झगिति संभवन्नापि त्रिभूमिकोऽपि मोहो निहन्तव्यः ॥८५॥

अथ मोहक्षपणोपायान्तरमालोचयति—

जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा।
खीयदि मोहोवचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥८६॥

यथासंभवं त एव विनाशयितव्या इत्युपदिशति–अट्ठे अजथागहणं शुद्धात्मादिपदार्थे यथास्वरूपस्थितेऽपि विपरीताभिनिवेशरूपेणायथाग्रहणं करुणाभावो य शुद्धात्मोपलब्धिलक्षणपरमोपेक्षासंयमाद्विपरीतः करुणाभावो दयापरिणामश्च अथवा व्यवहारेण करुणाया अभावः। केषु विषयेषु। मणुवतिरिएसु मनुष्यतिर्यग्जीवेषु इति दर्शनमोहचिह्नम्। विसएसु य प्पसंगो निर्विषयसुखास्वादरहितबहिरात्मजीवानां मनोज्ञामनोज्ञविषयेषु च योऽसौ प्रकर्षेण सङ्गः संसर्गस्तं दृष्ट्वा प्रीत्यप्रीतिलिङ्गाभ्यां चारित्रमोहसंज्ञौ

टीका :—[१]पदार्थोंकी अयथातथ्यरूप प्रतिपत्तिके द्वारा और तिर्यंच-मनुष्य [२]प्रेक्षायोग्य होने पर भी उनके प्रति करुणाबुद्धिसे मोहको (जानकर), इष्ट विषयोंकी आसक्तिसे रागको और अनिष्ट विषयोंकी अप्रीतिसे द्वेषको (जानकर) —इसप्रकार तीन लिंगोंके द्वारा (तीन प्रकारके मोहको) पहिचानकर तत्काल ही उत्पन्न होते ही तीनो प्रकारका मोह नष्ट कर देने योग्य है।

भावार्थ :—मोहके तीन भेद हैं—दर्शनमोह, राग और द्वेष। पदार्थोंके स्वरूपसे विपरीत मान्यता तथा तिर्यंचों और मनुष्योंके प्रति तन्मयतासे करुणाभाव वे दर्शनमोहके चिह्न हैं, इष्ट विषयोंमें प्रीति रागका चिह्न है और अनिष्ट विषयोंमें अप्रीति द्वेषका चिह्न है। इन चिह्नोंसे तीनों प्रकारके मोहको पहिचानकर मुमुक्षुओंको उसे तत्काल ही नष्ट कर देना चाहिये ॥८५॥

अब मोहक्षय करनेका उपायान्तर (-दूसरा उपाय) विचारते हैं :—

---

१. पदार्थोंकी अयथातथ्यरूप प्रतिपत्ति = पदार्थ जैसे नहीं है उन्हें वैसा समझना अर्थात् उन्हें अन्यथा स्वरूपसे अंगीकार करना।

२. प्रेक्षायोग्य = मात्र प्रेक्षकभावसे-दृष्टाज्ञातारूपसे-मध्यस्थभावसे देखने योग्य।

शास्त्रो वडे प्रत्यक्षआदिथी जाणतो जे अर्थ ने,
तसु मोह पामे नाश निश्चय; शास्त्र समध्ययनीय छे. ८६.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

जिनशास्त्रादर्थान् प्रत्यक्षादिभिर्बुध्यमानस्य नियमात्।
क्षीयते मोहोपचयः तस्मात् शास्त्रं समध्येतव्यम्॥८६॥

यत्किल द्रव्यगुणपर्यायस्वभावेनार्हतो ज्ञानादात्मनस्तथाज्ञानं मोहक्षपणोपायत्वेन प्राक् प्रतिपन्नं, तत् खलूपायान्तरमिदमपेक्षते। इदं हि विहितप्रथमभूमिकासंक्रमणस्य सर्वज्ञोपज्ञतया सर्वतोऽप्यबाधितं शाब्दं प्रमाणमाक्रम्य क्रीडतस्तत्संस्कारस्फुटीकृतविशिष्टसंवेदनशक्तिसंपदः सहृदयहृदयानंदोद्भेददायिना प्रत्यक्षेणान्येन वा तदविरोधिना प्रमाणजातेन

रागद्वेषौ च ज्ञायेते विवेकिभिः, ततस्तत्परिज्ञानानन्तरमेव निर्विकारस्वशुद्धात्मभावनया रागद्वेषमोहा निहन्तव्या इति सूत्रार्थः॥८५॥ अथ द्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानाभावे मोहो भवतीति यदुक्तं पूर्वं तदर्थमागमाभ्यासं कारयति। अथवा द्रव्यगुणपर्यायत्वैरर्हत्परिज्ञानादात्मपरिज्ञानं भवतीति यदुक्तं तदात्मपरिज्ञानमिममागमाभ्यासमपेक्षत इति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति— जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा जिनशास्त्रात्सकाशाच्छुद्धात्मादिपदार्थान् प्रत्यक्षादि-

अन्वयार्थ :—[जिनशास्त्रात्] जिनशास्त्र द्वारा [प्रत्यक्षादिभिः] प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे [अर्थान्] पदार्थोंको [बुध्यमानस्य] जाननेवालेके [नियमात्] नियमसे [मोहोपचयः] [१]मोहोपचय [क्षीयते] क्षय हो जाता है [तस्मात्] इसलिये [शास्त्रं] शास्त्रका [समध्येतव्यम्] सम्यक् प्रकारसे अध्ययन करना चाहिये॥८६॥

टीका :—द्रव्य-गुण-पर्यायस्वभावसे अर्हंतके ज्ञान द्वारा आत्माका उस प्रकारका ज्ञान मोहक्षयके उपायके रूपमें पहले (८०वीं गाथामें) प्रतिपादित किया गया था, वह वास्तवमें इस (निम्नलिखित) उपायान्तरकी अपेक्षा रखता है। (वह उपायान्तर क्या है सो कहा जाता है) :—

जिसने प्रथम भूमिकामें गमन किया है ऐसे जीवको, जो [२]सर्वज्ञोपज्ञ होनेसे सर्व प्रकारसे अबाधित है ऐसे शाब्द प्रमाणको (-द्रव्य श्रुतप्रमाणको) प्राप्त करके क्रीड़ा करने पर, उसके संस्कारसे विशिष्ट [३]संवेदनशक्तिरूप सम्पदा प्रगट करने पर, [४]सहृदयजनोंके हृदयको आनन्दका [५]उद्भेद देनेवाले प्रत्यक्ष प्रमाणसे अथवा [६]उससे अविरुद्ध अन्य प्रमाणसमूहसे

१. मोहोपचय = मोहका उपचय। (उपचय = संचय; समूह)

२. सर्वज्ञोपज्ञ = सर्वज्ञ द्वारा स्वयं जाना हुआ (और कहा हुआ)। ३. संवेदन = ज्ञान।

४. सहृदय = भावुक; शास्त्रमें जिस समय जिस भावका प्रसंग होय उस भावको हृदयमें ग्रहण करनेवाला; बुध; पंडित।

५. उद्भेद = स्फुरण; प्रगटता; फुवारा। ६. उससे = प्रत्यक्ष प्रमाणसे।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

तत्त्वतः समस्तमपि वस्तुजातं परिच्छिन्दतः क्षीयत एवातत्त्वाभिनिवेशसंस्कारकारी मोहोपचयः। अतो हि मोहक्षपणे परमं शब्दब्रह्मोपासनं भावज्ञानावष्टम्भदृढीकृतपरिणामेन सम्यगधीयमानमुपायान्तरम् ॥८६॥

अथ कथं जैनेन्द्रे शब्दब्रह्मणि किलार्थानां व्यवस्थितिरिति वितर्कयति—

दव्वाणि गुणा तेसिं पज्जाया अट्ठसण्णया भणिया।
तेसु गुणपज्जयाणं अप्पा दव्व त्ति उवदेसो॥८७॥

द्रव्याणि गुणास्तेषां पर्याया अर्थसंज्ञया भणिताः।
तेषु गुणपर्यायाणामात्मा द्रव्यमित्युपदेशः॥८७॥

प्रमाणैर्बुध्यमानस्य जानतो जीवस्य नियमान्निश्चयात्। किं फलं भवति। **खीयदि मोहोवचयो** दुरभिनिवेशसंस्कारकारी मोहोपचयः क्षीयते प्रलीयते क्षयं याति। **तम्हा सत्थं समधिदव्वं** तस्माच्छास्त्रं सम्यगध्येतव्यं पठनीयमिति। तद्यथा–वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशास्त्रात् 'एगो मे सस्सदो अप्पा' इत्यादि परमात्मोपदेशकश्रुतज्ञानेन तावदात्मानं जानीते कश्चिद्भव्यः, तदनन्तरं विशिष्टाभ्यासवशेन परमसमाधिकाले रागादिविकल्परहितमानसप्रत्यक्षेण च तमेवात्मानं परिच्छिनत्ति, तथैवानुमानेन वा।

---

[१]तत्त्वतः समस्त वस्तुमात्रको जानने पर [२]अतत्त्वअभिनिवेशके संस्कार करनेवाला मोहोपचय (मोहसमूह) अवश्य ही क्षयको प्राप्त होता है। इसलिये मोहका क्षय करनेमें, परम शब्दब्रह्मकी उपासनाका भावज्ञानके अवलम्बन द्वारा दृढ़ किये गये परिणामसे सम्यक् प्रकार अभ्यास करना सो उपायान्तर है। (जो परिणाम भावज्ञानके अवलम्बनसे दृढ़ीकृत हो ऐसे परिणामसे द्रव्य श्रुतका अभ्यास करना सो मोहक्षय करनेके लिये उपायान्तर है) ॥८६॥

अब, जिनेन्द्रके शब्द ब्रह्ममें अर्थोंकी व्यवस्था (-पदार्थोंकी स्थिति) किस प्रकार है सो विचार करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**द्रव्याणि**] द्रव्य, [**गुणाः**] गुण [**तेषां पर्यायाः**] और उनकी पर्यायें [**अर्थसंज्ञया**] 'अर्थ' नामसे [**भणिताः**] कही गई हैं। [**तेषु**] उनमें, [**गुणपर्यायाणाम् आत्मा द्रव्यम्**] गुण-पर्यायोंका आत्मा द्रव्य है (गुण और पर्यायोंका स्वरूप-सत्त्व द्रव्य ही है, वे भिन्न वस्तु नहीं हैं) [**इति उपदेशः**] इसप्रकार (जिनेन्द्रका) उपदेश है॥८७॥

---

१. तत्त्वतः = यथार्थ स्वरूपसे। २. अतत्त्व–अभिनिवेश = यथार्थ वस्तुस्वरूपसे विपरीत अभिप्राय।

द्रव्यो, गुणो ने पर्ययो सौ 'अर्थ' संज्ञाथी कह्यां;
गुण-पर्ययोनो आतमा छे द्रव्य जिन–उपदेशमां. ८७.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

द्रव्याणि च गुणाश्च पर्यायाश्च अभिधेयभेदेऽप्यभिधानाभेदेन अर्थाः। तत्र गुण-पर्यायानियृति गुणपर्यायैरर्यन्त इति वा अर्था द्रव्याणि, द्रव्याण्याश्रयत्वेनेयृति द्रव्यैराश्रय-भूतैरर्यन्त इति वा अर्था गुणाः, द्रव्याणि क्रमपरिणामेनेयृति द्रव्यैः क्रमपरिणामेनार्यन्त इति वा अर्थाः पर्यायाः। यथा हि सुवर्णं पीततादीन् गुणान् कुण्डलादींश्च पर्यायानियर्ति तैरर्यमाणं वा अर्थो द्रव्यस्थानीयं, यथा च सुवर्णमाश्रयत्वेनेयृति तेनाश्रयभूतेनार्यमाणा वा अर्थाः

तथाहि—अत्रैव देहे निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मास्ति। कस्माद्धेतोः। निर्विकारस्वसंवेदन-प्रत्यक्षत्वात् सुखादिवत् इति, तथैवान्येऽपि पदार्था यथासंभवमागमाभ्यासबलोत्पन्नप्रत्यक्षेणानुमानेन वा ज्ञायन्ते। ततो मोक्षार्थिना भव्येनागमाभ्यासः कर्तव्य इति तात्पर्यम्॥८६॥ अथ द्रव्यगुणपर्याया-णामर्थसंज्ञां कथयति—**दव्वाणि गुणा तेसिं पज्जाया अट्ठसण्णया भणिया** द्रव्याणि गुणास्तेषां द्रव्याणां पर्यायाश्च त्रयोऽप्यर्थसंज्ञया भणिताः कथिता अर्थसंज्ञा भवन्तीत्यर्थः। **तेसु** तेषु त्रिषु द्रव्यगुणपर्यायेषु मध्ये **गुणपज्जयाणं अप्पा** गुणपर्यायाणां संबंधी आत्मा स्वभावः। **कः** इति पृष्टे। **दव्व त्ति उवदेसो** द्रव्यमेव स्वभाव इत्युपदेशः, अथवा द्रव्यस्य कः स्वभाव इति पृष्टे गुणपर्यायाणामात्मा

टीका :— द्रव्य, गुण और पर्यायोंमें अभिधेयभेद होने पर भी अभिधानका अभेद होनेसे वे 'अर्थ' हैं [अर्थात् द्रव्यों, गुणों और पर्यायोंमें वाच्यका भेद होने पर भी वाचकमें भेद न दंखें तो 'अर्थ' ऐसे एक ही वाचक (-शब्द) से ये तीनों पहिचाने जाते हैं]। उसमें (इन द्रव्यों, गुणों और पर्यायोंमेंसे), जो गुणोंको और पर्यायोंको प्राप्त करते हैं—पहुँचते हैं अथवा जो गुणों और पर्यायोंके द्वारा प्राप्त किये जाते है—पहुँचे जाते हैं ऐसे [१]'अर्थ' वे द्रव्य हैं, जो द्रव्योंको आश्रयके रूपमें प्राप्त करते हैं—पहुँचते हैं–अथवा जो आश्रयभूत द्रव्योंके द्वारा प्राप्त किये जाते हैं—पहुँचे जाते हैं ऐसे 'अर्थ' वे गुण हैं, जो द्रव्योंको क्रमपरिणामसे प्राप्त करते हैं—पहुँचते हैं अथवा जो द्रव्योंके द्वारा क्रमपरिणामसे (क्रमशः होनेवाले परिणामके कारण) प्राप्त किये जाते हैं—पहुँचे जाते हैं ऐसे 'अर्थ' वे पर्याय है।

जैसे द्रव्यस्थानीय (-द्रव्यके समान, द्रव्यके दृष्टान्तरूप) सुवर्ण, पीलापन इत्यादि गुणोंको और कुण्डल इत्यादि पर्यायोंको प्राप्त करता है–पहुँचता है अथवा (सुवर्ण) उनके द्वारा (-पीलापनादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों द्वारा) प्राप्त किया जाता है—पहुँचा जाता है इसलिये द्रव्यस्थानीय सुवर्ण 'अर्थ' है, जैसे पीलापन इत्यादि गुण सुवर्णको आश्रयके रूपमें प्राप्त करते हैं—पहुँचते हैं अथवा (वे) आश्रयभूत सुवर्णके द्वारा प्राप्त किये जाते हैं—पहुँचे जाते हैं इसलिये पीलापन इत्यादि गुण 'अर्थ' हैं; और जैसे कुण्डल इत्यादि पर्यायें सुवर्णको

---

१. 'ऋ' धातुमेंसे 'अर्थ' शब्द बना है। 'ऋ' अर्थात् पाना, प्राप्त करना, पहुँचना, जाना। 'अर्थ' अर्थात् (१) जो पाये–प्राप्त करे–पहुँचे, अथवा (२) जिसे पाया जाये–प्राप्त किया जाये–पहुँचा जाये।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पीततादयो गुणाः, यथा च सुवर्णं क्रमपरिणामेनेयृति तेन क्रमपरिणामेनार्यमाणा वा अर्थाः कुण्डलादयः पर्यायाः। एवमन्यत्रापि। यथा चैतेषु सुवर्णपीततादिगुणकुण्डलादिपर्यायेषु पीततादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां सुवर्णादपृथग्भावात् सुवर्णमेवात्मा तथा च तेषु द्रव्यगुणपर्यायेषु गुणपर्यायाणां द्रव्यादपृथग्भावाद्द्रव्यमेवात्मा ॥८७॥

एव स्वभाव इति। अथ विस्तरः—अनन्तज्ञानसुखादिगुणान् तथैवामूर्तत्वातीन्द्रियत्वसिद्धत्वादिपर्यायांश्च इयर्ति गच्छति परिणमत्याश्रयति येन कारणेन तस्मादर्थो भण्यते। किम्। शुद्धात्मद्रव्यम्। तच्छुद्धात्मद्रव्यमाधारभूतमियृति गच्छन्ति परिणमन्त्याश्रयन्ति येन कारणेन ततोऽर्था भण्यन्ते। के ते। ज्ञानत्वसिद्धत्वादिगुणपर्यायाः। ज्ञानत्वसिद्धत्वादिगुणपर्यायाणामात्मा स्वभावः क इति पृष्टे शुद्धात्म-

---

क्रमपरिणामसे प्राप्त करती हैं—पहुँचती हैं अथवा (वे) सुवर्णके द्वारा क्रमपरिणामसे प्राप्त की जाती हैं—पहुँची जाती हैं इसलिये कुण्डल इत्यादि पर्यायें 'अर्थ' हैं; इसीप्रकार [१]अन्यत्र भी है, (इस दृष्टान्तकी भाँति सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायोंमें भी समझना चाहिये)।

और जैसे इन सुवर्ण, पीलापन इत्यादि गुण और कुण्डल इत्यादि पर्यायोंमें (-इन तीनोंमें, पीलापन इत्यादि गुणोंका और कुण्डल पर्यायोंका) सुवर्णसे अपृथक्त्व होनेसे उनका (-पीलापन इत्यादि गुणोंका और कुण्डल इत्यादि पर्यायोंका) सुवर्ण ही आत्मा है, उसीप्रकार उन द्रव्य-गुण-पर्यायोंमें गुण-पर्यायोंका द्रव्यसे अपृथक्त्व होनेसे उनका द्रव्य ही आत्मा है (अर्थात् द्रव्य ही गुण और पर्यायोंका आत्मा-स्वरूप-सर्वस्व-सत्य है)।

भावार्थ :—८६वीं गाथामें कहा है कि जिनशास्त्रोंका सम्यक् अभ्यास मोहक्षयका उपाय है। यहाँ संक्षेपमें यह बताया है कि उन जिनशास्त्रोंमें पदार्थोंकी व्यवस्था किसप्रकार कही गई है। जिनेन्द्रदेवने कहा कि—अर्थ (पदार्थ) अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय। इसके अतिरिक्त विश्वमें दूसरा कुछ नहीं है, और इन तीनोंमें गुण और पर्यायोंका आत्मा (-उसका सर्वस्व) द्रव्य ही है। ऐसा होनेसे किसी द्रव्यके गुण और पर्याय अन्य द्रव्यके गुण और पर्यायरूप किंचित् मात्र नहीं होते, समस्त द्रव्य अपने-अपने गुण और पर्यायोंमें रहते हैं।—ऐसी पदार्थोंकी स्थिति मोहक्षयके निमित्तभूत पवित्र जिनशास्त्रोंमें कही है॥८७॥

---

१ जैसे सुवर्ण, पीलापन आदिको और कुण्डल आदिको प्राप्त करता है अथवा पीलापन आदि और कुण्डल आदिके द्वारा प्राप्त किया जाता है (अर्थात् पीलापन आदि और कुण्डल आदिक सुवर्णको प्राप्त करते हैं) इसलिये सुवर्ण 'अर्थ' है, वैसे द्रव्य 'अर्थ'; जैसे पीलापन आदि आश्रयभूत सुवर्णको प्राप्त करता है अथवा आश्रयभूत सुवर्णद्वारा प्राप्त किये जाते है (अर्थात् आश्रयभूत सुवर्ण पीलापन आदिको प्राप्त करता है) इसलिये पीलापन आदि 'अर्थ' हैं, वैसे गुण 'अर्थ' हैं; जैसे कुण्डल आदि सुवर्णको क्रमपरिणामसे प्राप्त करते हैं अथवा सुवर्ण द्वारा क्रमपरिणामसे प्राप्त किया जाता है (अर्थात् सुवर्ण कुण्डल आदिको क्रमपरिणामसे प्राप्त करता है) इसलिये कुण्डल आदि 'अर्थ' हैं, वैसे पर्यायें 'अर्थ' हैं।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथैवं मोहक्षपणोपायभूतजिनेश्वरोपदेशलाभेऽपि पुरुषकारोऽर्थक्रियाकारीति पौरुषं व्यापारयति—

जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलब्भ जोण्हमुवदेसं।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण॥८८॥

यो मोहरागद्वेषान्निहन्ति उपलभ्य जैनमुपदेशम्।
स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेन॥८८॥

इह हि द्राघीयसि सदाजवंजवपथे कथमप्यमुं समुपलभ्यापि जैनेश्वरं निशिततर-वारिधारापथस्थानीयमुपदेशं य एव मोहरागद्वेषाणामुपरि दृढतरं निपातयति स एव निखिल-

---

द्रव्यमेव स्वभावः, अथवा शुद्धात्मद्रव्यस्य कः स्वभाव इति पृष्टे पूर्वोक्तगुणपर्याया एव। एवं शेषद्रव्यगुणपर्यायाणामप्यर्थसंज्ञा बोद्धव्येत्यर्थः॥८७॥ अथ दुर्लभजैनोपदेशं लब्ध्वापि य एव मोहराग-द्वेषान्निहन्ति स एवाशेषदुःखक्षयं प्राप्नोतीत्यावेदयति—**जो मोहरागदोसे णिहणदि** य एव मोहराग-द्वेषान्निहन्ति। किं कृत्वा। **उपलब्भ** उपलभ्य प्राप्य। **कम्**। **जोण्हमुवदेसं** जैनोपदेशम्। **सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि** स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोति। केन। **अचिरेण कालेण** स्तोककालेनेति। तद्यथा—एकेन्द्रियविकलेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियादिदुर्लभपरंपरया जैनोपदेशं प्राप्य मोहरागद्वेषविलक्षणं निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूतिलक्षणं

अब, इसप्रकार मोहक्षयके उपायभूत जिनेश्वरके उपदेशकी प्राप्ति होने पर भी पुरुषार्थ [१]अर्थक्रियाकारी है इसलिये पुरुषार्थ करता हैं :—

अन्वयार्थ :—[यः] जो [जैनं उपदेशं] जिनेन्द्रके उपदेशको [उपलभ्य] प्राप्त करके [मोहरागद्वेषान्] मोह-राग-द्वेषको [निहंति] हनता है, [सः] वह [अचिरेण कालेन] अल्प कालमें [सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोति] सर्व दुःखोंसे मुक्त हो जाता है॥८८॥

टीका :—इस अति दीर्घ, सदा उत्पातमय संसारमार्गमें किसी भी प्रकारसे जिनेन्द्रदेवके इस तीक्ष्ण असिधारा समान उपदेशको प्राप्त करके भी जो मोह-राग-द्वेष पर अति दृढता पूर्वक उसका प्रहार करता है वही हाथमें तलवार लिये हुए मनुष्यकी भाँति शीघ्र ही समस्त दुःखोंसे परिमुक्त होता है; अन्य (कोई) व्यापार (प्रयत्न; क्रिया) समस्त दुःखोंसे

---

१. अर्थक्रियाकारी = प्रयोजनभूत क्रियाका (सर्वदुःखपरिमोक्षका) करनेवाला।

जे पामी जिन-उपदेश हणतो राग-द्वेष-विमोहने,
ते जीव पामे अल्प काले सर्वदुःखविमोक्षने. ८८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

दुःखपरिमोक्षं क्षिप्रमेवाप्नोति, नापरो व्यापारः करवालपाणिरिव। अत एव सर्वारम्भेण मोह-क्षपणाय पुरुषकारे निषीदामि॥८८॥

अथ स्वपरविवेकसिद्धेरेव मोहक्षपणं भवतीति स्वपरविभागसिद्धये प्रयतते—

णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तणाहिसंबद्धं।
जाणदि जदि णिच्छयदो जो सो मोहक्खयं कुणदि॥८९॥

ज्ञानात्मकमात्मानं परं च द्रव्यत्वेनाभिसंबद्धम्।
जानाति यदि निश्चयतो यः स मोहक्षयं करोति॥८९॥

निश्चयसम्यक्त्वज्ञानद्वयाविनाभूतं वीतरागचारित्रसंज्ञं निशितखड्गं य एव मोहरागद्वेषशत्रूणामुपरि दृढतरं पातयति स एव पारमार्थिकानाकुलत्वलक्षणसुखविलक्षणानां दुःखानां क्षयं करोतीत्यर्थः॥८८॥ एवं द्रव्यगुणपर्यायविषये मूढत्वनिराकरणार्थं गाथाषट्केन तृतीयज्ञानकण्डिका गता। अथ स्वपरात्मनोर्भेद-ज्ञानात् मोहक्षयो भवतीति प्रज्ञापयति—**णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तणाहिसंबद्धं जाणदि जदि ज्ञानात्मक-**

परिमुक्त नहीं करता। (जैसे मनुष्यके हाथमें तीक्ष्ण तलवार होने पर भी वह शत्रुओं पर अत्यन्त वेगसे उसका प्रहार करे तभी वह शत्रु सम्बन्धी दुःखसे मुक्त होता है अन्यथा नहीं, उसीप्रकार इस अनादि संसारमें महाभाग्यसे जिनेश्वरदेवके उपदेशरूपी तीक्ष्ण तलवारको प्राप्त करके भी जो जीव मोह-राग-द्वेषरूपी शत्रुओं पर अतिदृढ़ता पूर्वक उसका प्रहार करता है वही सर्व दुःखोंसे मुक्त होता है अन्यथा नहीं) इसीलिये सम्पूर्ण आरम्भसे (-प्रयत्नपूर्वक) मोहका क्षय करनेके लिये मैं पुरुषार्थका आश्रय ग्रहण करता हूँ॥८८॥

अब, स्व-परके विवेककी (-भेदज्ञानकी) सिद्धिसे ही मोहका क्षय हो सकता है, इसलिये स्व-परके विभागकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यः] जो [निश्चयतः] निश्चयसे [ज्ञानात्मकं आत्मानं] ज्ञानात्मक ऐसे अपनेको [च] और [परं] परको [द्रव्यत्वेन अभिसंबद्धम्] निज निज द्रव्यत्वसे संबद्ध (-संयुक्त) [यदि जानाति] जानता है, [सः] वह [मोह क्षयं करोति] मोहका क्षय करता है॥८९॥

जे ज्ञानरूप निज आत्मने, परने वळी निश्चय वडे
द्रव्यत्वथी संबद्ध जाणे, मोहनो क्षय ते करे. ८९.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

य एव स्वकीयेन चैतन्यात्मकेन द्रव्यत्वेनाभिसंबद्धमात्मानं परं च परकीयेन यथोचितेन द्रव्यत्वेनाभिसंबद्धमेव निश्चयतः परिच्छिनत्ति, स एव सम्यगवाप्तस्वपरविवेकः सकलं मोहं क्षपयति। अतः स्वपरविवेकाय प्रयतोऽस्मि ॥८९॥

अथ सर्वथा स्वपरविवेकसिद्धिरागमतो विधातव्येत्युपसंहरति—

तम्हा जिणमग्गादो गुणेहिं आदं परं च दव्वेसु।
अभिगच्छदु णिम्मोहं इच्छदि जदि अप्पणो अप्पा ॥९०॥

तस्माज्जिनमार्गाद्गुणैरात्मानं परं च द्रव्येषु।
अभिगच्छतु निर्मोहमिच्छति यद्यात्मन आत्मा ॥९०॥

मात्मानं जानाति यदि। कथंभूतम्। स्वकीयशुद्धचैतन्यद्रव्यत्वेनाभिसंबद्धं, न केवलमात्मानम्, परं च यथोचितचेतनाचेतनपरकीयद्रव्यत्वेनाभिसंबद्धम्। कस्मात्। णिच्छयदो निश्चयतः निश्चयनयानुकूलं

टीका :— जो निश्चयसे अपनेको स्वकीय (अपने) चैतन्यात्मक द्रव्यत्वसे संबद्ध (-संयुक्त) और परको परकीय (दूसरेके) [१]यथोचित द्रव्यत्वसे संबद्ध जानता है, वही (जीव), जिसने कि सम्यक्त्वरूपसे स्व-परके विवेकको प्राप्त किया है, सम्पूर्ण मोहका क्षय करता है। इसलिये मैं स्व-परके विवेकके लिये प्रयत्नशील हूँ ॥८९॥

अब, सब प्रकारसे स्वपरके विवेककी सिद्धि आगमसे करने योग्य है, ऐसा उपसंहार करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**तस्मात्**] इसलिये (स्व-परके विवेकसे मोहका क्षय किया जा सकता है इसलिये) [**यदि**] यदि [**आत्मा**] आत्मा [**आत्मनः**] अपनी [**निर्मोहं**] निर्मोहता [**इच्छति**] चाहता हो तो [**जिनमार्गात्**] जिनमार्गसे [**गुणैः**] गुणोंके द्वारा [**द्रव्येषु**] द्रव्योंमें [**आत्मानं परं च**] स्व और परको [**अभिगच्छतु**] जानो (अर्थात् जिनागमके द्वारा विशेष गुणोंसे ऐसा विवेक करो कि-अनन्त द्रव्योंमेंसे यह स्व है और यह पर है) ॥९०॥

---

१. यथोचित = यथायोग्य-चेतन या अचेतन (पुद्गलादि द्रव्य परकीय अचेतन द्रव्यत्वसे और अन्य आत्मा परकीय चेतन द्रव्यत्वसे संयुक्त हैं)।

तेथी यदि जीव इच्छतो निर्मोहता निज आत्मने,
जिनमार्गथी द्रव्यो महीं जाणो स्व-परने गुण वडे. ९०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इह खल्वागमनिगदितेष्वनन्तेषु गुणेषु कैश्चिद् गुणैरन्ययोगव्यवच्छेदकतयासाधारणतामुपादाय विशेषणतामुपगतैरनन्तायां द्रव्यसंततौ स्वपरविवेकमुपगच्छन्तु मोहप्रहाणप्रवणबुद्धयो लब्धवर्णाः। तथाहि–यदिदं सदकारणतया स्वतःसिद्धमन्तर्बहिर्मुखप्रकाशशालितया स्वपरपरिच्छेदकं मदीयं मम नाम चैतन्यमहमनेन तेन समानजातीयमसमानजातीयं वा द्रव्यमन्यदपहाय ममात्मन्येव वर्तमानेनात्मीयमात्मानं सकलत्रिकालकलितध्रौव्यं द्रव्यं जानामि। एवं

भेदज्ञानमाश्रित्य। जो यः कर्ता सो स मोहक्खयं कुणदि निर्मोहपरमानन्दैकस्वभावशुद्धात्मनो विपरीतस्य मोहस्य क्षयं करोतीति सूत्रार्थः।।८९।। अथ पूर्वसूत्रे यदुक्तं स्वपरभेदविज्ञानं तदागमतः सिद्ध्यतीति प्रतिपादयति—तम्हा जिणमग्गादो यस्मादेवं भणितं पूर्वं स्वपरभेदविज्ञानाद् मोहक्षयो भवति, तस्मात्कारणाज्जिनमार्गाज्जिनागमात् गुणेहिं गुणैः आदं आत्मानं, न केवलमात्मानं परं च परद्रव्यं च। केषु मध्ये। दव्वेसु शुद्धात्मादिषड्द्रव्येषु अभिगच्छदु अभिगच्छतु जानातु। यदि किम्। णिम्मोहं इच्छदि जदि निर्मोहभावमिच्छति यदि चेत्। स कः। अप्पा आत्मा। कस्य संबन्धित्वेन।

टीका :—मोहका क्षय करनेके प्रति [१]प्रवण बुद्धिवाले बुधजन इस जगतमें आगममें कथित अनन्त गुणोंमेंसे किन्हीं गुणोंके द्वारा—जो गुण [२]अन्यके साथ योग रहित होनेसे असाधारणता धारण करके विशेषत्वको प्राप्त हुए हैं उनके द्वारा—अनन्त द्रव्यपरम्परामें स्व-परके विवेकको प्राप्त करो। (अर्थात् मोहका क्षय करनेके इच्छुक पंडितजन आगम कथित अनन्त गुणोंमेंसे असाधारण और भिन्नलक्षणभूत गुणोंके द्वारा अनन्त द्रव्य परम्परामें 'यह स्वद्रव्य हैं और यह परद्रव्य हैं' ऐसा विवेक करो), जोकि इसप्रकार हैं :—

[३]सत् और [४]अकारण होनेसे स्वतःसिद्ध, अन्तर्मुख और बहिर्मुख प्रकाशवाला होनेसे स्व-परका ज्ञायक–ऐसा जो यह, मेरे साथ सम्बन्धवाला, मेरा चैतन्य है उसके द्वारा—जो (चैतन्य) समानजातीय अथवा असमानजातीय अन्य द्रव्यको छोड़कर मेरे आत्मामें ही वर्तता है उसके द्वारा—मैं अपने आत्माको [५]सकल-त्रिकालमें ध्रुवत्वका धारक द्रव्य जानता हूँ। इसप्रकार पृथक्रूपसे वर्तमान स्वलक्षणोंके द्वारा—जो अन्य द्रव्यको छोड़कर उसी द्रव्यमें

---

१. प्रवण = ढलती हुई; अभिमुख; रत।

२. कितने ही गुण अन्य द्रव्योंके साथ सम्बन्ध रहित होनेसे अर्थात् अन्य द्रव्योंमें न होनेसे असाधारण हैं और इसलिये विशेषणभूत–भिन्न लक्षणभूत है; उसके द्वारा द्रव्योंकी भिन्नता निश्चित की जा सकती है।

३. सत् = अस्तित्ववाला; सत्रूप; सत्तावाला।

४. अकारण = जिसका कोई कारण न हो ऐसा अहेतुक, (चैतन्य सत् और अहेतुक होनेसे स्वयंसे सिद्ध है।)

५. सकल = पूर्ण, समस्त, निरवशेष (आत्मा कोई कालको बाकी रखे बिना संपूर्ण तीनों काल ध्रुव रहता ऐसा द्रव्य है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पृथक्त्ववृत्तस्वलक्षणैर्द्रव्यमन्यदपहाय तस्मिन्नेव च वर्तमानैः सकलत्रिकालकलितध्रौव्यं द्रव्यमाकाशं धर्ममधर्मं कालं पुद्गलमात्मान्तरं च निश्चिनोमि। ततो नाहमाकाशं न धर्मो नाधर्मो न च कालो न पुद्गलो नात्मान्तरं च भवामि; यतोऽमीष्वेकापवरकप्रबोधितानेक-दीपप्रकाशेष्विव संभूयावस्थितेष्वपि मच्चैतन्यं स्वरूपादप्रच्युतमेव मां पृथगवगमयति। एवमस्य निश्चितस्वपरविवेकस्यात्मनो न खलु विकारकारिणो मोहांकुरस्य प्रादुर्भूतिः स्यात् ॥९०॥

अप्पणो आत्मन इति। तथाहि—यदिदं मम चैतन्यं स्वपरप्रकाशकं तेनाहं कर्ता विशुद्धज्ञानदर्शन-स्वभावं स्वकीयमात्मानं जानामि, परं च पुद्गलादिपञ्चद्रव्यरूपं शेषजीवान्तरं च पररूपेण जानामि, ततः कारणादेकापवरकप्रबोधितानेकप्रदीपप्रकाशेष्विव संभूयावस्थितेष्वपि सर्वद्रव्येषु मम सहजशुद्ध-चिदानन्दैकस्वभावस्य केनापि सह मोहो नास्तीत्यभिप्रायः ॥९०॥ एवं स्वपरपरिज्ञानविषये मूढत्व-निरासार्थं गाथाद्वयेन चतुर्थज्ञानकण्डिका गता। इति पञ्चविंशतिगाथाभिर्ज्ञानकण्डिकाचतुष्टयाभिधानो द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः। अथ निर्दोषिपरमात्मप्रणीतपदार्थश्रद्धानमन्तरेण श्रमणो न भवति,

---

वर्तते हैं उनके द्वारा—आकाश, धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और अन्य आत्माको सकल त्रिकालमें ध्रुवत्व धारक द्रव्यके रूपमें निश्चित करता हूँ (जैसे चैतन्य लक्षणके द्वारा आत्माको ध्रुव द्रव्यके रूपमें जाना, उसीप्रकार अवगाहहेतुत्व, गतिहेतुत्व इत्यादि लक्षणोंसे–जो कि स्व-लक्ष्यभूत द्रव्यके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंमें नहीं पाये जाते उनके द्वारा—आकाश धर्मास्तिकाय इत्यादिको भिन्न-भिन्न ध्रुव द्रव्योंके रूपमें जानता हूँ) इसलिये मैं आकाश नहीं हूँ, मैं धर्म नहीं हूँ, अधर्म नहीं हूँ, काल नहीं हूँ, पुद्गल नहीं हूँ, और आत्मान्तर नहीं हूँ; क्योंकि—मकानके [१]एक कमरेमें जलाये गये अनेक दीपकोंके प्रकाशोंकी भाँति यह द्रव्य इकट्ठे होकर रहते हुए भी मेरा चैतन्य निजस्वरूपसे अच्युत ही रहता हुआ मुझे पृथक् बतलाता है।

इसप्रकार जिसने स्व-परका विवेक निश्चित किया है ऐसे इस आत्माको विकारकारी मोहांकुरका प्रादुर्भाव नहीं होता।

भावार्थ :—स्व-परके विवेकसे मोहका नाश किया जा सकता है। वह स्व-परका विवेक, जिनागमके द्वारा स्व-परके लक्षणोंको यथार्थतया जानकर किया जा सकता है॥९०॥

---

१. जैसे किसी एक कमरेमें अनेक दीपक जलाये जायें तो स्थूलदृष्टिसे देखने पर उनका प्रकाश एक दूसरेमें मिला हुआ मालूम होता है, किन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे विचारपूर्वक देखने पर वे सब प्रकाश भिन्न-भिन्न ही हैं; (क्योंकि उनमेंसे एक दीपक बुझ जाने पर उसी दीपकका प्रकाश नष्ट होता है; अन्य दीपकोंके प्रकाश नष्ट नहीं होते) उसीप्रकार जीवादिक अनेक द्रव्य एक ही क्षेत्रमें रहते हैं फिर भी सूक्ष्मदृष्टिसे देखने पर वे सब भिन्न-भिन्न ही हैं, एकमेक नहीं होते।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ जिनोदितार्थश्रद्धानमन्तरेण धर्मलाभो न भवतीति प्रतर्कयति—

सत्तासंबद्धेदे सविसेसे जो हि णेव सामण्णे।
सद्दहदि ण सो समणो तत्तो धम्मो ण संभवदि॥९१॥

सत्तासंबद्धानेतान् सविशेषान् यो हि नैव श्रामण्ये।
श्रद्दधाति न स श्रमणः ततो धर्मो न संभवति॥९१॥

यो हि नामैतानि सादृश्यास्तित्वेन सामान्यमनुव्रजन्त्यपि स्वरूपास्तित्वेनाश्लिष्ट-विशेषाणि द्रव्याणि स्वपरावच्छेदेनापरिच्छिन्दन्नश्रद्दधानो वा एवमेव श्रामण्येनात्मानं दमयति

तस्माच्छुद्धोपयोगलक्षणधर्मोऽपि न संभवतीति निश्चिनोति–**सत्तासंबद्धे** महासत्तासंबन्धेन सहितान् **एदे** एतान् पूर्वोक्तशुद्धजीवादिपदार्थान्। पुनरपि किंविशिष्टान्। **सविसेसे** विशेषसत्तावान्तरसत्ता स्वकीय-स्वकीयस्वरूपसत्ता तया सहितान् **जो हि णेव सामण्णे सद्दहदि** यः कर्ता द्रव्यश्रामण्ये स्थितोऽपि न श्रद्धत्ते

अब, न्यायपूर्वक ऐसा विचार करते हैं कि–जिनेन्द्रोक्त अर्थोंके श्रद्धान बिना धर्मलाभ (शुद्धात्मअनुभवरूप धर्मप्राप्ति) नहीं होता —

अन्वयार्थ :—[यः हि] जो (जीव) [श्रामण्ये] श्रमणावस्थामें [एतान् सत्ता-संबद्धान् सविशेषतान्] इन [१]सत्तासंयुक्त [२]सविशेष पदार्थोंकी [न एव श्रद्दधाति] श्रद्धा नहीं करता, [सः] वह [श्रमणः न] श्रमण नहीं है; [ततः धर्मः न संभवति] उससे धर्मका उद्भव नहीं होता (अर्थात् उस श्रमणाभासके धर्म नहीं होता।) ॥९१॥

टीका :—जो (जीव) इन द्रव्योंको—कि जो (द्रव्य) [३]सादृश्य-अस्तित्वके द्वारा समानताको धारण करते हुए स्वरूप-अस्तित्वके द्वारा विशेषयुक्त हैं उन्हें—स्व-परके भेदपूर्वक न जानता हुआ और श्रद्धा न करता हुआ यों ही (ज्ञान-श्रद्धाके बिना) मात्र श्रमणतासे (द्रव्यमुनित्वसे) आत्माका दमन करता है वह वास्तवमें श्रमण नहीं है; इसलिये, जैसे जिसे

---

१. सत्तासंयुक्त = अस्तित्ववाले।

२. सविशेष = विशेषसहित; भेदवाले; भिन्न-भिन्न।

३. अस्तित्व दो प्रकारका है :—सादृश्य-अस्तित्व और स्वरूप-अस्तित्व। सादृश्य-अस्तित्वकी अपेक्षासे सर्व द्रव्योंमें समानता है, और स्वरूप-अस्तित्वकी अपेक्षासे समस्त द्रव्योंमें विशेषता है

श्रामण्यमां सत्तामयी सविशेष आ द्रव्यो तणी
श्रद्धा नहि, ते श्रमण ना; तेमांथी धर्मोद्भव नहीं. ९१.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

स खलु न नाम श्रमणः। यतस्ततोऽपरिच्छिन्नरेणुकनककणिकाविशेषाद्धूलिधावकात्कनकलाभ इव निरुपरागात्मतत्त्वोपलम्भलक्षणो धर्मोपलम्भो न संभूतिमनुभवति॥९१॥

अथ 'उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती' इति प्रतिज्ञाय 'चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो' इति साम्यस्य धर्मत्वं निश्चित्य 'परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं ति पण्णत्तं, तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो' इति यदात्मनो

हि स्फुटं ण सो समणो निजशुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वपूर्वकपरमसामायिकसंयमलक्षणश्रामण्याभावात्स श्रमणो न भवति। इत्थंभूतभावश्रामण्याभावात् **तत्तो धम्मो ण संभवदि** तस्मात्पूर्वोक्तद्रव्यश्रमणात्सकाशान्निरुपरागशुद्धात्मानुभूतिलक्षणधर्मोऽपि न संभवतीति सूत्रार्थः॥९१॥ अथ 'उवसंपयामि सम्मं' इत्यादि नमस्कारगाथायां यत्प्रतिज्ञातं, तदनन्तरं 'चारित्तं खलु धम्मो' इत्यादिसूत्रेण चारित्रस्य धर्मत्वं व्यवस्थापितम्। अथ 'परिणमदि जेण दव्वं' इत्यादिसूत्रेणात्मनो धर्मत्वं भणित-

---

रेती और स्वर्णकणोंका अन्तर ज्ञात नहीं है, उसे धूलधोयेको–उसमेंसे स्वर्णलाभ नहीं होता, इसीप्रकार उसमेंसे (-श्रमणाभासमेंसे) [१]निरुपराग आत्मतत्त्वकी उपलब्धि (प्राप्ति) लक्षणवाले धर्मलाभका उद्भव नहीं होता।

भावार्थ :—जो जीव द्रव्यमुनित्वका पालन करता हुआ भी स्व-परके भेद सहित पदार्थोंकी श्रद्धा नहीं करता, वह निश्चय सम्यक्त्वपूर्वक परमसामायिकसंयमरूप मुनित्वके अभावके कारण मुनि नहीं है; इसलिये जैसे जिसे रेती और स्वर्णकणका विवेक नहीं है ऐसे धूलको धोनेवालेको, चाहे जितना परिश्रम करने पर भी, स्वर्णकी प्राप्ति नहीं होती, उसीप्रकार जिसे स्व और परका विवेक नहीं है ऐसे उस द्रव्यमुनिको, चाहे जितनी द्रव्यमुनित्वकी क्रियाओंका कष्ट उठाने पर भी, धर्मकी प्राप्ति नहीं होती॥९१॥

[२]'उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती' इसप्रकार (पाँचवीं गाथामें) प्रतिज्ञा करके, [३]'चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो' इसप्रकार (७वीं गाथामें) साम्यका धर्मत्व (साम्य ही धर्म है) निश्चित करके [४]'परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं ति पण्णत्तं, तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो' इसप्रकार (८वीं गाथामें) जो आत्माका धर्मत्व

---

१. निरुपराग = उपराग (-मलिनता, विकार) रहित।

२. अर्थ–मैं साम्यको प्राप्त करता हूँ, जिससे निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

३. अर्थ–चारित्र वास्तवमें धर्म है जो धर्म है वह साम्य है ऐसा (शास्त्रोंमें) कहा है।

४. अर्थ–द्रव्य जिस कालमें जिस भावरूप परिणमित होता है उस कालमें उस-मय है ऐसा (जिनेन्द्रदेवने) कहा है; इसलिये धर्मपरिणत आत्माको धर्म जानना चाहिये।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

धर्मत्वमासूत्रयितुमुपक्रान्तं, यत्प्रसिद्धये च 'धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो पावदि णिव्वाणसुहं' इति निर्वाणसुखसाधनशुद्धोपयोगोऽधिकर्तुमारब्धः, शुभाशुभोपयोगौ च विरोधिनौ निर्ध्वस्तौ, शुद्धोपयोगस्वरूपं चोपवर्णितं, तत्प्रसादजौ चात्मनो ज्ञानानन्दौ सहजौ समुद्योतयता संवेदनस्वरूपं सुखस्वरूपं च प्रपंचितम्, तदधुना कथं कथमपि शुद्धोपयोगप्रसादेन प्रसाध्य परमनिस्पृहामात्मतृप्तां पारमेश्वरीप्रवृत्तिमभ्युपगतः कृतकृत्यतामवाप्य नितान्तमनाकुलो भूत्वा प्रलीनभेदवासनोन्मेषः स्वयं साक्षाद्धर्म एवास्मीत्यवतिष्ठते—

मित्यादि। तत्सर्वं शुद्धोपयोगप्रसादात्प्रसाध्येदानीं निश्चयरत्नत्रयपरिणत आत्मैव धर्म इत्यवतिष्ठते। अथवा द्वितीयपातनिका—सम्यक्त्वाभावे श्रमणो न भवति, तस्मात् श्रमणाद्धर्मोऽपि न भवति। तर्हि कथं श्रमणो भवति, इति पृष्टे प्रत्युत्तरं प्रयच्छन् ज्ञानाधिकारमुपसंहरति—जो णिहदमोहदिट्ठी तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणव्यवहारसम्यक्त्वोत्पन्नेन निजशुद्धात्मरुचिरूपेण निश्चयसम्यक्त्वेन परिणतत्वान्निहतमोहदृष्टिर्विध्वंसितदर्शनमोहो यः। पुनश्च किंरूपः। आगमकुसलो निर्दोषिपरमात्मप्रणीतपरमागमाभ्यासेन निरुपाधिस्वसंवेदनज्ञानकुशलत्वादागमकुशल आगमप्रवीणः। पुनश्च किंरूपः। विरागचरियम्हि अब्भुट्ठिदो व्रतसमितिगु प्त्यादिबहिरङ्गचारित्रानुष्ठानवशेन स्वशुद्धात्मनिश्चलपरिणतिरूपवीतरागचारित्र-

---

कहना प्रारम्भ किया और [१]जिसकी सिद्धिके लिये [२]'धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो, पावदि णिव्वाणसुहं' इसप्रकार (११वीं गाथामें) निर्वाणसुखके साधनभूत शुद्धोपयोगका अधिकार प्रारम्भ किया, विरोधी शुभाशुभ उपयोगको नष्ट किया (-हेय बताया), शुद्धोपयोगका स्वरूप वर्णन किया, शुद्धोपयोगके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाले ऐसे आत्माके सहज ज्ञान और आनन्दको समझाते हुए ज्ञानके स्वरूपका और सुखके स्वरूपका विस्तार किया, उसे (-आत्माके धर्मत्वको) अब किसी भी प्रकार शुद्धोपयोगके प्रसादसे [३]सिद्ध करके, [४]परम निस्पृह, आत्मतृप्त (ऐसी) पारमेश्वरी प्रवृत्तिको प्राप्त होते हुये, कृतकृत्यताको प्राप्त करके अत्यन्त अनाकुल होकर, जिनके [५]भेदवासना की प्रगटताका प्रलय हुआ है, ऐसे होते हुए, (आचार्य भगवान) 'मैं स्वयं साक्षात् धर्म ही हूँ' इसप्रकार रहते हैं, (-ऐसे भावमें निश्चल स्थित होते हैं) :—

---

१. जिसकी सिद्धिके लिये = आत्माको धर्मरूप बनवानेका जो कार्य साधनाके लिये।

२. अर्थ–धर्मपरिणत स्वरूपवाला आत्मा यदि शुद्ध उपयोगमें युक्त हो तो मोक्षके सुखको पाता है।

३. सिद्ध करके = साधकर। (आत्माको धर्मरूप रचनेका जो कार्य साधना था उस कार्यको, महापुरुषार्थ करके शुद्धोपयोग द्वारा आचार्य भगवानने सिद्ध किया।)।

४. परकी स्पृहासे रहित और आत्मामें ही तृप्त, निश्चयरत्नत्रयमें लीनतारूप प्रवृत्ति।

५. भेदवासना = भेदरूप वृत्ति; विकल्प–परिणाम।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्हि।
अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मो त्ति विसेसिदो समणो॥९२॥

यो निहतमोहदृष्टिरागमकुशलो विरागचरिते।
अभ्युत्थितो महात्मा धर्म इति विशेषितः श्रमणः॥९२॥

यदयं स्वयमात्मा धर्मो भवति स खलु मनोरथ एव। तस्य त्वेका बहिर्मोहदृष्टिरेव विहन्त्री। सा चागमकौशलेनात्मज्ञानेन च निहता, नात्र मम पुनर्भावमापत्स्यते। ततो वीतरागचारित्रसूत्रितावतारो ममायमात्मा स्वयं धर्मो भूत्वा निरस्तसमस्तप्रत्यूहतया नित्यमेव

परिणतत्वात् परमवीतरागचारित्रे सम्यगभ्युत्थितः उद्यतः। पुनरपि कथंभूतः। **महप्पा** मोक्षलक्षण-महार्थसाधकत्वेन महात्मा **धम्मो त्ति विसेसिदो समणो** जीवितमरणलाभालाभादिसमताभावनापरिणतात्मा स श्रमण एवाभेदनयेन धर्म इति विशेषितो मोहक्षोभविहीनात्मपरिणामरूपो निश्चयधर्मो भणित इत्यर्थः॥९२॥ अथैवंभूतनिश्चयरत्नत्रयपरिणतमहातपोधनस्य योऽसौ भक्तिं करोति तस्य फलं दर्शयति—

जो तं दिट्ठा तुट्ठो अब्भुट्टित्ता करेदि सक्कारं।
वंदणणमंसणादिहिं तत्तो सो धम्ममादियदि॥★८॥

जो तं दिट्ठा तुट्ठो यो भव्यवरपुण्डरीको निरुपरागशुद्धात्मोपलम्भलक्षणनिश्चयधर्मपरिणतं

अन्वयार्थ :—[**यः आगमकुशलः**] जो आगममें कुशल हैं, [**निहतमोहदृष्टिः**] जिसकी मोहदृष्टि हत हो गई है और [**विरागचरिते अभ्युत्थितः**] जो वीतरागचारित्रमें आरूढ़ है, [**महात्मा श्रमणः**] उस महात्मा श्रमणको [**धर्मः इति विशेषितः**] (शास्त्रमें) 'धर्म' कहा हैं॥९२॥

टीका :—यह आत्मा स्वयं धर्म हो, यह वास्तवमें मनोरथ है। उसमें विघ्न डालनेवाली एक [१]बहिर्मोहदृष्टि ही है। और वह (बहिर्मोहदृष्टि) तो [२]आगमकौशल्य तथा आत्मज्ञानसे नष्ट हो जानेके कारण अब मुझमें पुनः उत्पन्न नहीं होगी। इसलिये वीतरागचारित्ररूपसे प्रगटताको प्राप्त (-वीतरागचारित्ररूप पर्यायमें परिणत) मेरा यह आत्मा

---

१. बहिर्मोहदृष्टि = बहिर्मुख ऐसी मोहदृष्टि। (आत्माको धर्मरूप होनेमें विघ्न डालनेवाली एक बहिर्मोहदृष्टि ही है।) २. आगमकौशल्य = आगममें कुशलता-प्रवीणता।

आगम विषे कौशल्य छे ने मोहदृष्टि विनष्ट छे
वीतराग-चरितारूढ छे, ते मुनि-महात्मा 'धर्म' छे. ९२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

निष्कम्प एवावतिष्ठते। अलमतिविस्तरेण। स्वस्ति स्याद्वादमुद्रिताय जैनेन्द्राय शब्दब्रह्मणे। स्वस्ति तन्मूलायात्मतत्त्वोपलम्भाय च, यत्प्रसादादुद्ग्रन्थितो झगित्येवासंसारबद्धो मोहग्रन्थिः। स्वस्ति च परमवीतरागचारित्रात्मने शुद्धोपयोगाय, यत्प्रसादादयमात्मा स्वयमेव धर्मो भूतः॥९२॥

(मन्दाक्रान्ता)

आत्मा धर्मः स्वयमिति भवन् प्राप्य शुद्धोपयोगं
नित्यानन्दप्रसरसरसे ज्ञानतत्त्वे निलीय।
प्राप्स्यत्युच्चैरविचलतया निष्प्रकम्पप्रकाशां
स्फूर्जज्योतिःसहजविलसद्रत्नदीपस्य लक्ष्मीम्॥५॥

पूर्वसूत्रोक्तं मुनीश्वरं दृष्ट्वा तुष्टो निर्भरगुणानुरागेण संतुष्टः सन्। किं करोति। **अब्भुट्ठित्ता करेदि सक्कारं** अभ्युत्थानं कृत्वा मोक्षसाधकसम्यक्त्वादिगुणानां सत्कारं प्रशंसां करोति **वंदणणमंसणादिहिं तत्तो सो धम्ममादियदि** 'तवसिद्धे णयसिद्धे' इत्यादि वन्दना भण्यते, नमोऽस्त्विति नमस्कारो भण्यते, तत्प्रभृतिभक्तिविशेषैः तस्माद्यतिवरात्स भव्यः पुण्यमादत्ते पुण्यं गृह्णाति इत्यर्थः॥८॥ अथ तेन पुण्येन भवान्तरे किं फलं भवतीति प्रतिपादयति—

तेण णरा व तिरिच्छा देविं वा माणुसिं गदिं पप्पा।
विहविस्सरियेहिं सया संपुण्णमणोरहा होंति॥*९॥

स्वयं धर्म होकर, समस्त विघ्नोंका नाश हो जानेसे सदा निष्कंप ही रहता है। अधिक विस्तारसे बस हो! जयवंत वर्तो [१]स्याद्वादमुद्रित जैनेन्द्र शब्दब्रह्म; जयवंत वर्तो [२]शब्दब्रह्ममूलक आत्मतत्त्वोपलब्धि—कि जिसके प्रसादसे, अनादि संसारसे बंधी हुई मोहग्रंथि तत्काल ही छूट गई है; और जयवंत वर्तो परम वीतरागचारित्रस्वरूप शुद्धोपयोग कि जिसके प्रसादसे यह आत्मा स्वयमेव धर्म हुआ है॥९२॥

[अब श्लोक द्वारा ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन अधिकारकी पूर्णाहुति की जाती है।]

अर्थ :—इसप्रकार शुद्धोपयोगको प्राप्त करके आत्मा स्वयं धर्म होता हुआ अर्थात् स्वयं धर्मरूप परिणमित होता हुआ नित्य आनन्दके प्रसारसे सरस (अर्थात् जो शाश्वत आनन्दके प्रसारसे रसयुक्त) ऐसे ज्ञानतत्त्वमें लीन होकर, अत्यन्त अविचलताके कारण, दैदीप्यमान ज्योतिमय और सहजरूपसे विलसित (-स्वभावसे ही प्रकाशित) रत्नदीपककी निष्कंप-प्रकाशमय शोभाको पाता है। (अर्थात् रत्नदीपककी भाँति स्वभावसे ही निष्कंपतया अत्यन्त प्रकाशित होता—जानता—रहता है)।

---

१. स्याद्वादमुद्रित जैनेन्द्र शब्दब्रह्म = स्याद्वादकी छापवाला जिनेन्द्रका द्रव्यश्रुत।

२. शब्दब्रह्ममूलक = शब्दब्रह्म जिसका मूल कारण है।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

(मन्दाक्रान्ता)

निश्चित्यात्मन्यधिकृतमिति ज्ञानतत्त्वं यथावत्
तत्सिद्ध्यर्थं प्रशमविषयं ज्ञेयतत्त्वं बुभुत्सुः।
सर्वानर्थान् कलयति गुणद्रव्यपर्याययुक्त्या
प्रादुर्भूतिर्न भवति यथा जातु मोहांकुरस्य॥६॥

इति प्रवचनसारवृत्तौ तत्त्वदीपिकायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनो नाम प्रथमः श्रुतस्कन्धः समाप्तः॥

तेण णरा व तिरिच्छा तेन पूर्वोक्तपुण्येनात्र वर्तमानभवे नरा वा तिर्यञ्चो वा देविं वा माणुसिं गदिं पप्पा भवान्तरे दैवीं वा मानुषीं वा गतिं प्राप्य विहविस्सरियेहिं सया संपुण्णमणोरहा होंति राजाधिराजरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रादिपरिपूर्णविभूतिर्विभवो भण्यते, आज्ञाफलमैश्वर्यं भण्यते, ताभ्यां विभवैश्वर्याभ्यां संपूर्णमनोरथा भवन्तीति। तदेव पुण्यं भोगादिनिदानरहितत्वेन यदि सम्यक्त्वपूर्वकं भवति तर्हि तेन परंपरया मोक्षं च लभन्ते इति भावार्थः॥*९॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ पूर्वोक्तप्रकारेण 'एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं' इतीमां गाथामादिं कृत्वा द्वासप्ततिगाथाभिः शुद्धोपयोगाधिकारः, तदनन्तरं 'देवदजदिगुरुपूजासु' इत्यादि पञ्चविंशतिगाथाभिर्ज्ञानकण्डिकाचतुष्टयाभिधानो द्वितीयोऽधिकारः, ततश्च 'सत्तासंबद्धेदे' इत्यादि सम्यकत्वकथनरूपेण प्रथमा गाथा, रत्नत्रयाधारपुरुषस्य धर्मः संभवतीति 'जो णिहदमोदिट्ठी' इत्यादि द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयम्, तस्य निश्चयधर्मसंज्ञतपोधनस्य योऽसौ भक्तिं करोति तत्फलकथनेन 'जो तं दिट्ठा' इत्यादि गाथाद्वयम्। इत्यधिकारद्वयेन पृथग्भूतगाथाचतुष्टयसहितेनैकोत्तरशतगाथाभिः ज्ञानतत्त्वप्रतिपादकनामा प्रथमो महाधिकारः समाप्तः॥१॥

[अब श्लोक द्वारा ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन नामक प्रथम अधिकारकी और ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन नामक दूसरे अधिकारकी संधि बतायी जाती है।]

अर्थ :—आत्मारूपी अधिकरणमें रहनेवाले अर्थात् आत्माके आश्रित रहनेवाले ज्ञानतत्त्वका इसप्रकार यथार्थतया निश्चय करके, उसकी सिद्धिके लिये (–केवलज्ञान प्रगट करनेके लिये) प्रशमके लक्षसे (–उपशम प्राप्त करनेके हेतुसे) ज्ञेयतत्त्वको जाननेका इच्छुक (जीव) सर्व पदार्थोंको द्रव्य-गुण-पर्याय सहित जानता है, जिससे कभी मोहांकुरकी किंचित् मात्र भी उत्पत्ति न हो।

इस प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्रीप्रवचनसार शास्त्रकी श्रीमद्अमृतचंद्राचार्यदेवविरचित तत्त्वदीपिका नामक टीकामें **ज्ञानतत्त्व–प्रज्ञापन** नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

*

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

-२-
ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन

अथ ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनम्। तत्र पदार्थस्य सम्यग्द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपमुपवर्णयति—

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया॥९३॥

अर्थः खलु द्रव्यमयो द्रव्याणि गुणात्मकानि भणितानि।
तैस्तु पुनः पर्यायाः पर्ययमूढा हि परसमयाः॥९३॥

इह किल यः कश्चनापि परिच्छिद्यमानः पदार्थः स सर्व एव विस्तारायतसामान्य-

---

इतः ऊर्ध्वं 'सत्तासंबद्धेदे' इत्यादिगाथासूत्रेण पूर्वं संक्षेपेण यद्व्याख्यातं सम्यग्दर्शनं तस्येदानीं विषयभूतपदार्थव्याख्यानद्वारेण त्रयोदशाधिकशतप्रमितगाथापर्यन्तं विस्तरव्याख्यानं करोति। अथवा द्वितीयपातनिका—पूर्वं यद्व्याख्यातं ज्ञानं तस्य ज्ञेयभूतपदार्थान् कथयति। तत्र त्रयोदशाधिकशतगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् 'तम्हा तस्स णमाइं' इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पञ्चत्रिंशद्-गाथापर्यन्तं सामान्यज्ञेयव्याख्यानं, तदनन्तरं 'दव्वं जीवमजीवं' इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं विशेषज्ञेयव्याख्यानं, अथानन्तरं 'सपदेसेहिं समग्गो लोगो' इत्यादिगाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना,

---

अब, ज्ञेयतत्त्वका प्रज्ञापन करते हैं अर्थात् ज्ञेयतत्त्व बतलाते हैं। उसमें (प्रथम) पदार्थका सम्यक् (—यथार्थ) द्रव्यगुणपर्यायस्वरूप वर्णन करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अर्थः खलु**] पदार्थ [**द्रव्यमयः**] द्रव्यस्वरूप है; [**द्रव्याणि**] द्रव्य [**गुणात्मकानि**] गुणात्मक [**भणितानि**] कहे गये हैं; [**तैः तु पुनः**] और द्रव्य तथा गुणोंसे [**पर्यायाः**] पर्यायें होती हैं। [**पर्ययमूढा हि**] पर्यायमूढ़ जीव [**परसमयाः**] परसमय (अर्थात् मिथ्यादृष्टि) हैं॥९३॥

टीका :—इस विश्वमें जो कोई जाननेमें आनेवाला पदार्थ है वह समस्त ही

छे अर्थ द्रव्यस्वरूप, गुण-आत्मक कह्यां छे द्रव्यने,
वळी द्रव्य-गुणथी पर्ययो; पर्यायमूढ परसमय छे. ९३.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

समुदायात्मना द्रव्येणाभिनिर्वृत्तत्वाद् द्रव्यमयः। द्रव्याणि तु पुनरेकाश्रयविस्तारविशेषात्मकैर्गुणैरभिनिर्वृत्तत्वाद्गुणात्मकानि। पर्यायास्तु पुनरायतविशेषात्मका उक्तलक्षणैर्द्रव्यैरपि गुणैरप्यभिनिर्वृत्तत्वाद् द्रव्यात्मका अपि गुणात्मका अपि। तत्रानेकद्रव्यात्मकैक्यप्रतिपत्तिनिबन्धनो द्रव्यपर्यायः। स द्विविधः, समानजातीयोऽसमानजातीयश्च। तत्र समानजातीयो नाम यथा अनेकपुद्गलात्मको द्व्यणुकस्त्र्यणुक इत्यादि; असमानजातीयो नाम यथा जीवपुद्गलात्मको देवो

ततश्च 'अत्थित्तणिच्छिदस्स हि' इत्याद्येकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावना चेति द्वितीयमहाधिकारे समुदायपातनिका। अथेदानीं सामान्यज्ञेयव्याख्यानमध्ये प्रथमा नमस्कारगाथा, द्वितीया द्रव्यगुणपर्यायव्याख्यानगाथा, तृतीया स्वसमयपरसमयनिरूपणगाथा, चतुर्थी द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयसूचनगाथा चेति पीठिकाभिधाने प्रथमस्थले स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयम्। तदनन्तरं 'सब्भावो हि सहावो' इत्यादिगाथाचतुष्टयपर्यन्तं सत्तालक्षणव्याख्यानमुख्यत्वं, तदनन्तरं 'ण भवो भंगविहीणो' इत्यादिगाथात्रयपर्यन्तमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणकथनमुख्यता, ततश्च 'पाडुब्भवदि य अण्णो' इत्यादिगाथाद्वयेन

---

[१]विस्तारसामान्यसमुदायात्मक और [२]आयतसामान्यसमुदायात्मक द्रव्यसे रचित होनेसे द्रव्यमय (-द्रव्यस्वरूप) है। और [३]द्रव्य एक जिनका आश्रय है ऐसे विस्तारविशेषस्वरूप गुणोंसे रचित (-गुणोंसे बने हुवे) होनेसे गुणात्मक है। और पर्यायें—जो कि आयत-विशेषस्वरूप हैं वे—जिनके लक्षण (ऊपर) कहे गये हैं ऐसे द्रव्योंसे तथा गुणोंसे रचित होनेसे द्रव्यात्मक भी हैं गुणात्मक भी हैं। उसमें, अनेकद्रव्यात्मक एकताकी [४]प्रतिपत्तिकी कारणभूत द्रव्यपर्याय है। वह दो प्रकार है। (१) समानजातीय और (२) असमानजातीय। उसमें (१) समानजातीय वह है—जैसे कि अनेकपुद्गलात्मक [५]द्विअणुक, त्रिअणुक इत्यादि; (२) असमानजातीय वह

---

१. विस्तारसामान्य समुदाय = विस्तारसामान्यरूप समुदाय। विस्तारका अर्थ है कि चौड़ाई। द्रव्यकी चौड़ाईकी अपेक्षाके (एकसाथ रहनेवाले सहभावी) भेदोंको (विस्तारविशेषोंको) गुण कहा जाता है; जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र इत्यादि जीवद्रव्यके विस्तारविशेष अर्थात् गुण हैं। उन विस्तारविशेषोंमें रहनेवाले विशेषत्वको गौण करें तो इन सबमें एक आत्मस्वरूप सामान्यत्व भासित होता है। यह विस्तारसामान्य (अथवा विस्तारसामान्यसमुदाय) वह द्रव्य है।

२. आयतसामान्यसमुदाय = आयतसामान्यरूप समुदाय। आयतका अर्थ है लम्बाई अर्थात् कालापेक्षितप्रवाह। द्रव्यके लम्बाईकी अपेक्षाके (एकके बाद एक प्रवर्तमान, क्रमभावी, कालापेक्षित) भेदोंको (आयत विशेषोंको) पर्याय कहा जाता है। उन क्रमभावी पर्यायोंमें प्रवर्तमान विशेषत्वको गौण करें तो एक द्रव्यत्वरूप सामान्यत्व ही भासित होता है। यह आयतसामान्य (अथवा आयतसामान्य समुदाय) वह द्रव्य है।

३. अनन्तगुणोंका आश्रय एक द्रव्य है।

४. प्रतिपत्ति = प्राप्ति; ज्ञान; स्वीकार। ५. द्विअणुक = दो अणुओंसे बना हुआ स्कंध।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

मनुष्य इत्यादि। गुणद्वारेणायतानैक्यप्रतिपत्तिनिबन्धनो गुणपर्यायः। सोऽपि द्विविधः, स्वभावपर्यायो विभावपर्यायश्च। तत्र स्वभावपर्यायो नाम समस्तद्रव्याणामात्मीयात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण प्रतिसमयसमुदीयमानषट्स्थानपतितवृद्धिहानिनानात्वानुभूतिः, विभावपर्यायो नाम रूपादीनां ज्ञानादीनां वा स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिः। अथेदं दृष्टान्तेन द्रढयति—यथैव हि सर्व एव पटोऽवस्थायिना विस्तारसामान्यसमुदायेनाभिधावताऽऽयतसामान्यसमुदायेन चाभिनिर्वर्त्यमानस्तन्मय एव, तथैव हि सर्व एव पदार्थोऽवस्थायिना विस्तारसामान्यसमुदायेनाभिधावताऽऽयतसामान्यसमुदायेन च

द्रव्यपर्यायगुणपर्यायनिरूपणमुख्यता। अथानन्तरं 'ण हवदि जदि सद्दव्वं' इत्यादिगाथाचतुष्टयेन सत्ताद्रव्ययोरभेदविषये युक्तिं कथयति, तदनन्तरं 'जो खलु दव्वसहावो' इत्यादि सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिकथनेन प्रथमगाथा, द्रव्येण सह गुणपर्याययोरभेदमुख्यत्वेन 'णत्थि गुणो त्ति व कोई' इत्यादि द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयं, तदनन्तरं द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन सदुत्पादो भवति, पर्यायार्थिकनयेनासदित्यादिकथनरूपेण 'एवंविहं' इतिप्रभृति गाथाचतुष्टयं, ततश्च 'अत्थि त्ति य' इत्याद्येकसूत्रेण नयसप्तभङ्गीव्याख्यानमिति समुदायेन चतुर्विंशतिगाथाभिरष्टभिः स्थलैर्द्रव्यनिर्णयं करोति। तद्यथा—अथ सम्यक्त्वं कथयति—

है—जैसे कि जीवपुद्गलात्मक देव, मनुष्य इत्यादि। गुण द्वारा आयतकी अनेकताकी प्रतिपत्तिकी कारणभूत गुणपर्याय है। वह भी दो प्रकार है। (१) स्वभावपर्याय और (२) विभावपर्याय। उसमें समस्त द्रव्योंके अपने-अपने अगुरुलघुगुण द्वारा प्रतिसमय प्रगट होनेवाली षट्स्थानपतित हानि-वृद्धिरूप अनेकत्वकी अनुभूति वह स्वभावपर्याय है; (२) रूपादिके या ज्ञानादिके [१]स्व-परके कारण प्रवर्तमान [२]पूर्वोत्तर अवस्थामें होनेवाले तारतम्यके कारण देखनेमें आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्वकी [३]आपत्ति विभावपर्याय है।

अब यह (पूर्वोक्त कथन) दृष्टान्तसे दृढ़ करते हैं :—

जैसे सम्पूर्ण [४]पट, अवस्थायी (-स्थिर) विस्तारसामान्यसमुदायसे और दौड़ते (-बहते, प्रवाहरूप) हुये ऐसे आयतसामान्यसमुदायसे रचित होता हुआ तन्मय ही है, उसीप्रकार सम्पूर्ण पदार्थ 'द्रव्य' नामक अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदायसे और दौड़ते हुये आयतसामान्यसमुदायसे रचित होता हुआ द्रव्यमय ही है। और जैसे पटमें, अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय या दौड़ते हुये आयतसामान्यसमुदाय गुणोंसे रचित होता हुआ गुणोंसे

---

१. स्व उपादान और पर निमित्त है। २. पूर्वोत्तर = पहलेकी और बादकी।
३. आपत्ति = आपतित, आपड़ना। ४. पट = वस्त्र

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

द्रव्यनाम्नाभिनिर्वर्त्यमानो द्रव्यमय एव। यथैव च पटेऽवस्थायी विस्तारसामान्य-समुदायोऽभिधावन्नायतसामान्यसमुदायो वा गुणैरभिनिर्वर्त्यमानो गुणेभ्यः पृथगनुपलम्भाद् गुणात्मक एव, तथैव च पदार्थेष्ववस्थायी विस्तारसामान्यसमुदायोऽभिधावन्नायत-सामान्यसमुदायो वा द्रव्यनामा गुणैरभिनिर्वर्त्यमानो गुणेभ्यः पृथगनुपलम्भाद् गुणात्मक एव। यथैव चानेकपटात्मको द्विपटिका त्रिपटिकेति समानजातीयो द्रव्यपर्यायः, तथैव चानेकपुद्गलात्मको द्व्यणुकस्त्र्यणुक इति समानजातीयो द्रव्यपर्यायः। यथैव चानेककौशेयककार्पासमयपटात्मको द्विपटिका त्रिपटिकेत्यसमानजातीयो द्रव्यपर्यायः, तथैव चानेकजीवपुद्गलात्मको देवो मनुष्य इत्यसमानजातीयो द्रव्यपर्यायः। यथैव च क्वचित्पटे स्थूलात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण कालक्रमप्रवृत्तेन नानाविधेन परिणमनान्नानात्व-प्रतिपत्तिर्गुणात्मकः स्वभावपर्यायः, तथैव च समस्तेष्वपि द्रव्येषु सूक्ष्मात्मीयात्मीयागुरु-

---

तम्हा तस्स णमाइं किच्चा णिच्चं पि तम्मणो होज्ज।
वोच्छामि संगहादो परमट्ठविणिच्छयाधिगमं॥*१०॥

तम्हा तस्स णमाइं किच्चा यस्मात्सम्यक्त्वं विना श्रमणो न भवति तस्मात्कारणात्तस्य सम्यक्चारित्रयुक्तस्य पूर्वोक्ततपोधनस्य नमस्यां नमस्क्रियां नमस्कारं कृत्वा **णिच्चं पि तम्मणो होज्ज** नित्यमपि तद्गतमना भूत्वा **वोच्छामि** वक्ष्याम्यहं कर्ता **संगहादो** संग्रहात्संक्षेपात् सकाशात्। किम्। **परमट्ठ-**

पृथक् अप्राप्त होनेसे गुणात्मक ही है, उसीप्रकार पदार्थोंमें, अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय या दौड़ता हुआ आयतसामान्यसमुदाय—जिसका नाम 'द्रव्य' है वह—गुणोंसे रचित होता हुआ गुणोंसे पृथक् अप्राप्त होनेसे गुणात्मक ही है। और जैसे अनेकपटात्मक (-एकसे अधिक वस्त्रोंसे निर्मित) [१]द्विपटिक, त्रिपटिक ऐसे समानजातीय द्रव्यपर्याय है, उसीप्रकार अनेक पुद्गलात्मक द्वि-अणुक, त्रि-अणुक ऐसी समानजातीय द्रव्यपर्याय है; और जैसे अनेक रेशमी और सूती पटोंके बने हुए द्विपटिक, त्रिपटिक ऐसी असमानजातीय द्रव्यपर्याय है, उसीप्रकार अनेक जीवपुद्गलात्मक देव, मनुष्य ऐसी असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। और जैसे कभी पटमें अपने स्थूल अगुरुलघुगुण द्वारा कालक्रमसे प्रवर्तमान अनेक प्रकाररूपसे परिणमित होनेके कारण अनेकत्वकी प्रतिपत्ति गुणात्मक स्वभावपर्याय है, उसीप्रकार समस्त द्रव्योंमें अपने-अपने सूक्ष्म अगुरुलघुगुण द्वारा प्रतिसमय प्रगट होनेवाली षट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूप अनेकत्वकी अनुभूति वह गुणात्मक स्वभावपर्याय है; और जैसे पटमें,

---

१. द्विपटिक = दो थानोंको जोड़कर (सींकर) बनाया गया एक वस्त्र [यदि दोनों थान एक ही जातिके हों तो समानजातीय द्रव्यपर्याय कहलाता है, और यदि दो थान भिन्न जातिके हों (जैसे एक रेशमी दूसरा सूती) तो असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहलाता है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

लघुगुणद्वारेण प्रतिसमयसमुदीयमानषट्स्थानपतितवृद्धिहानिनानात्वानुभूतिः गुणात्मकः स्वभावपर्यायः। यथैव च पटे रूपादीनां स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्यो-पदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिः गुणात्मको विभावपर्यायः, तथैव च समस्तेष्वपि द्रव्येषु रूपादीनां ज्ञानादीनां वा स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभाव-विशेषानेकत्वापत्तिः गुणात्मको विभावपर्यायः। इयं हि सर्वपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायस्वभाव-प्रकाशिका पारमेश्वरी व्यवस्था साधीयसी, न पुनरितरा। यतो हि बहवोऽपि पर्याय-

---

विणिच्छयाधिगमं परमार्थविनिश्चयाधिगमं सम्यक्त्वमिति। परमार्थविनिश्चयाधिगमशब्देन सम्यक्त्वं कथं भण्यत इति चेत्–परमोऽर्थः परमार्थः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा, परमार्थस्य विशेषेण संशयादिरहितत्वेन निश्चयः परमार्थविनिश्चयरूपोऽधिगमः शङ्काद्यष्टदोषरहितश्च यः परमार्थतोऽर्थावबोधो यस्मात्सम्यक्त्वात्तत् परमार्थविनिश्चयाधिगमम्। अथवा परमार्थविनिश्चयोऽनेकान्तात्मकपदार्थसमूह-स्तस्याधिगमो यस्मादिति।।*१०।। अथ पदार्थस्य द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं निरूपयति—अत्थो खलु दव्वमओ अर्थो ज्ञानविषयभूतः पदार्थः खलु स्फुटं द्रव्यमयो भवति। कस्मात्। तिर्यक्-सामान्योर्द्ध्वतासामान्यलक्षणेन द्रव्येण निष्पन्नत्वात्। तिर्यक्सामान्योर्द्ध्वतासामान्यलक्षणं कथ्यते–एककाले नानाव्यक्तिगतोऽन्वयस्तिर्यक्सामान्यं भण्यते। तत्र दृष्टान्तो यथा–नानासिद्धजीवेषु सिद्धोऽयं सिद्धोऽयमित्यनुगताकारः सिद्धजातिप्रत्ययः। नानाकालेष्वेकव्यक्तिगतोन्वय ऊर्ध्वतासामान्यं भण्यते। तत्र दृष्टांतः यथा–य एव केवलज्ञानोत्पत्तिक्षणे मुक्तात्मा द्वितीयादिक्षणेष्वपि स एवेति प्रतीतिः। अथवा नानागोशरीरेषु गौरयं गौरयमिति गोजातिप्रतीतिस्तिर्यक्सामान्यम्। यथैव चैकस्मिन् पुरुषे बालकुमाराद्यवस्थासु स एवायं देवदत्त इति प्रत्यय ऊर्ध्वतासामान्यम्। दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि द्रव्याणि गुणात्मकानि भणितानि। अन्वयिनो गुणा अथवा सहभुवो गुणा इति गुणलक्षणम्। यथा अनन्तज्ञानसुखादिविशेषगुणेभ्यस्तथैवागुरुलघुकादिसामान्यगुणेभ्यश्चाभिन्नत्वाद्गुणात्मकं भवति सिद्धजीवद्रव्यं, तथैव स्वकीयस्वकीयविशेषसामान्यगुणेभ्यः सकाशादभिन्नत्वात् सर्वद्रव्याणि गुणात्मकानि भवन्ति। तेहिं पुणो पज्जाया तैः पूर्वोक्तलक्षणैर्द्रव्यैर्गुणैश्च पर्याया भवन्ति। व्यतिरेकिणः पर्याया अथवा क्रमभुवः पर्याया इति पर्यायलक्षणम्। यथैकस्मिन् मुक्तात्मद्रव्ये किंचिदूनचरम-

---

रूपादिकके स्व-परके कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर अवस्थामें होनेवाले तारतम्यके कारण देखनेमें आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्वकी आपत्ति वह गुणात्मक विभावपर्याय है, उसीप्रकार समस्त द्रव्योंमें, रूपादिकके या ज्ञानादिके स्व-परके कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर अवस्थामें होनेवाले तारतम्यके कारण देखनेमें आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्वकी आपत्ति वह गुणात्मक विभावपर्याय है।

वास्तवमें यह, सर्व पदार्थोंके द्रव्यगुणपर्यायस्वभावकी प्रकाशक [१]पारमेश्वरी व्यवस्था भली-उत्तम-पूर्ण-योग्य है, दूसरी कोई नहीं; क्योंकि बहुतसे (जीव) पर्यायमात्रका ही अवलम्बन

१. परमेश्वरकी कही हुई।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मात्रमेवावलम्ब्य तत्त्वाप्रतिपत्तिलक्षणं मोहमुपगच्छन्तः परसमया भवन्ति॥९३॥

अथानुषंगिकीमिमामेव स्वसमयपरसमयव्यवस्थां प्रतिष्ठाप्योपसंहरति—

जे पज्जएसु णिरदा जीवा परसमइग त्ति णिद्दिट्ठा।
आदसहावम्हि ठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा॥९४॥

ये पर्यायेषु निरता जीवाः परसमयिका इति निर्दिष्टाः।
आत्मस्वभावे स्थितास्ते स्वकसमया ज्ञातव्याः॥९४॥

शरीराकारगतिमार्गणाविलक्षणः सिद्धगतिपर्यायः तथाऽगुरुलघुकगुणषड्वृद्धिहानिरूपाः साधारणस्वभाव-गुणपर्यायाश्च, तथा सर्वद्रव्येषु स्वभावद्रव्यपर्यायाः स्वजातीयविजातीयविभावद्रव्यपर्यायाश्च, तथैव स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च 'जेसिं अत्थि सहाओ' इत्यादिगाथायां, तथैव 'भावा जीवादीया' इत्यादि-गाथायां च **पञ्चास्तिकाये** पूर्वं कथितक्रमेण यथासंभवं ज्ञातव्याः। **पज्जयमूढा हि परसमया** यस्मादित्थंभूत-

---

करके, तत्त्वकी अप्रतिपत्ति जिसका लक्षण है ऐसे मोहको प्राप्त होते हुये परसमय होते हैं।

भावार्थ :—पदार्थ द्रव्यस्वरूप है। द्रव्य अनन्तगुणमय है। द्रव्यों और गुणोंसे पर्यायें होती हैं। पर्यायोंके दो प्रकार हैं :—१-द्रव्यपर्याय, २-गुणपर्याय। इनमेंसे द्रव्यपर्यायके दो भेद हैं :—१-समानजातीय—जैसे द्वि-अणुक, त्रि-अणुक, इत्यादि स्कन्ध; २-असमानजातीय—जैसे मनुष्य देव इत्यादि। गुणपर्यायके भी दो भेद हैं :—१-स्वभाव-पर्याय—जैसे सिद्धके गुणपर्याय २-विभावपर्याय—जैसे स्वपरहेतुक मतिज्ञानपर्याय।

ऐसा जिनेन्द्र भगवानकी वाणीसे कथित सर्व पदार्थोंका द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप ही यथार्थ है। जो जीव द्रव्य-गुणको न जानते हुये मात्र पर्यायका ही आलम्बन लेते हैं वे निज स्वभावको न जानते हुये परसमय हैं॥९३॥

अब [१]आनुषंगिक ऐसी यह ही स्वसमय-परसमयकी व्यवस्था (अर्थात् स्वसमय और परसमयका भेद) निश्चित करके (उसका) उपसंहार करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**ये जीवाः**] जो जीव [**पर्यायेषु निरताः**] पर्यायोंमें लीन हैं [**परसमयिकाः इति निर्दिष्टाः**] उन्हें परसमय कहा गया है [**आत्मस्वभावे स्थिताः**] जो जीव आत्मस्वभावमें स्थित हैं [**ते**] वे [**स्वकसमयाः ज्ञातव्याः**] स्वसमय जानने॥९४॥

---

१. आनुषंगिक = पूर्व गाथाके कथनके साथ सम्बन्धवाली।

पर्यायमां रत जीव जे ते 'परसमय' निर्दिष्ट छे;
आत्मस्वभावे स्थित जे ते 'स्वकसमय' ज्ञातव्य छे. ९४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

ये खलु जीवपुद्गलात्मकमसमानजातीयद्रव्यपर्यायं सकलाविद्यानामेकमूलमुपगता यथोदितात्मस्वभावसंभावनक्लीबाः तस्मिन्नेवाशक्तिमुपव्रजन्ति, ते खलूच्छलितनिरर्गलैकान्त-दृष्टयो मनुष्य एवाहमेष ममैवैतन्मनुष्यशरीरमित्यहंकारममकाराभ्यां विप्रलभ्यमाना अविचलित-चेतनाविलासमात्रादात्मव्यवहारात् प्रच्युत्य क्रोडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहारमाश्रित्य रज्यन्तो द्विषन्तश्च परद्रव्येण कर्मणा संगतत्वात्परसमया जायन्ते।

ये तु पुनरसंकीर्ण-द्रव्यगुणपर्यायसुस्थितं भगवन्तमात्मनः स्वभावं सकलविद्यानामेकमूलमुपगम्य यथोदितात्मस्वभावसंभावनसमर्थतया पर्यायमात्राशक्ति-

द्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानमूढा अथवा नारकादिपर्यायरूपो न भवाम्यहमिति भेदविज्ञानमूढाश्च परसमया मिथ्यादृष्टयो भवन्तीति। तस्मादियं पारमेश्वरी द्रव्यगुणपर्यायव्याख्या समीचीना भद्रा भवतीत्यभि-प्रायः ।।९३।। अथ प्रसंगायातां परसमयस्वसमयव्यवस्थां कथयति—**जे पञ्चएसु णिरदा जीवा** ये पर्यायेषु

टीका :—जो जीव पुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्यायका—जो कि सकल अविद्याओंका एक मूल है उसका—आश्रय करते हुए [१]यथोक्त आत्मस्वभावकी [२]संभावना करनेमें नपुंसक होनेसे उसीमें बल धारण करते हैं (अर्थात् उन असमानजातीय द्रव्य-पर्यायोंके प्रति ही बलवान हैं), वे—जिनकी [३]निरर्गल एकान्तदृष्टि उछलती है ऐसे—'यह मैं मनुष्य ही हूँ, मेरा ही यह मनुष्य शरीर है' इसप्रकार अहंकार-ममकारसे ठगाये जाते हुये, अविचलितचेतनाविलासमात्र [४]आत्मव्यवहारसे च्युत होकर, जिसमें समस्त क्रियाकलापको छातीसे लगाया जाता है ऐसे [५]मनुष्यव्यवहारका आश्रय करके रागी-द्वेषी होते हुए पर द्रव्यरूप कर्मके साथ संगतताके कारण (-परद्रव्यरूप कर्मके साथ युक्त हो जानेसे) वास्तवमें [६]परसमय होते हैं अर्थात् परसमयरूप परिणमित होते हैं।

और जो [७]असंकीर्ण द्रव्य गुण-पर्यायोंसे सुस्थित भगवान आत्माके स्वभावका—जो कि सकल विद्याओंका एक मूल है उसका—आश्रय करके यथोक्त आत्मस्वभावकी संभावनामें समर्थ होनेसे पर्यायमात्र प्रतिके बलको दूर करके आत्माके स्वभावमें ही स्थिति करते

१. यथोक्त = पूर्व गाथामें कहा जैसा। २. संभावना = संचेतन; अनुभव; मान्यता; आदर।

३. निरर्गल = अंकुश बिना की; बेहद (जो मनुष्यादि पर्यायमें लीन हैं, वे बेहद एकांतदृष्टिरूप है।)

४. आत्मव्यवहार = आत्मारूप वर्तन, आत्मारूप कार्य, आत्मारूप व्यापार।

५. मनुष्यव्यवहार = मनुष्यरूप वर्तन (मैं मनुष्य ही हूँ। ऐसी मान्यतापूर्वक वर्तन)।

६. जो जीव परके साथ एकत्वकी मान्यतापूर्वक युक्त होता है, उसे परसमय कहते हैं।

७. असंकीर्ण = एकमेक नहीं ऐसे; स्पष्टतया भिन्न [भगवान आत्मस्वभाव स्पष्ट भिन्न-परके साथ एकमेक नहीं–ऐसे द्रव्यगुणपर्यायोंसे सुस्थित है]।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मत्यस्यात्मनः स्वभाव एव स्थितिमासूत्रयन्ति, ते खलु सहजविजृम्भितानेकान्तदृष्टिप्रक्षपित-समस्तैकान्तदृष्टिपरिग्रहग्रहा मनुष्यादिगतिषु तद्विग्रहेषु चाविहिताहंकारममकारा अनेकापवरकसंचारितरत्नप्रदीपमिवैकरूपमेवात्मानमुपलभमाना अविचलितचेतनाविलास-मात्रमात्मव्यवहारमुररीकृत्य क्रोडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहारमनाश्रयन्तो विश्रान्त-रागद्वेषोन्मेषतया परममौदासीन्यमवलंबमाना निरस्तसमस्तपरद्रव्यसंगतितया स्वद्रव्येणैव केवलेन संगतत्वात्स्वसमया जायन्ते।

अतः स्वसमय एवात्मन-स्तत्त्वम् ॥९४॥

निरताः जीवाः परसमइग त्ति णिद्दिट्ठा ते परसमया इति निर्दिष्टाः कथिताः। तथाहि—मनुष्यादिपर्यायरूपोऽहमित्यहङ्कारो भण्यते, मनुष्यादिशरीरं तच्छरीराधारोत्पन्नपञ्चेन्द्रियविषयसुखस्वरूपं च ममेति ममकारो भण्यते, ताभ्यां परिणताः ममकाराहङ्काररहितपरमचैतन्यचमत्कारपरिणतेश्च्युता ये ते कर्मोदयजनितपरपर्यायनिरतत्वात्परसमया मिथ्यादृष्टयो भण्यन्ते। आदसहावम्हि ठिदा ये पुनरात्मस्वरूपे स्थितास्ते सगसमया मुणेदव्वा स्वसमया मन्तव्या ज्ञातव्या इति। तद्यथा—अनेकापवरकसंचारितैक-रत्नप्रदीप इवानेकशरीरेष्वप्येकोऽहमिति दृढसंस्कारेण निजशुद्धात्मनि स्थिता ये ते कर्मोदयजनित-पर्यायपरिणतिरहितत्वात्स्वसमया भवन्तीत्यर्थः ॥९४॥ अथ द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयं सूचयति—

हैं (-लीन होते हैं), वे—जिन्होंने सहज-विकसित अनेकान्तदृष्टि से समस्त एकान्तदृष्टिके [१]परिग्रहके आग्रह प्रक्षीण कर दिये हैं, ऐसे—मनुष्यादि गतियोंमें और उन गतियोंके शरीरोंमें अहंकार-ममकार न करके अनेक कक्षों (कमरों) में [२]संचारित रत्नदीपककी भाँति एकरूप ही आत्माको उपलब्ध (-अनुभव) करते हुये, अविचलित-चेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहारको अंगीकार करके, जिसमें समस्त क्रियाकलापसे भेंट की जाती है ऐसे मनुष्यव्यवहारका आश्रय नहीं करते हुये, रागद्वेषका उन्मेष (प्राकट्य) रुक जानेसे परम उदासीनताका आलम्बन लेते हुये, समस्त परद्रव्योंकी संगति दूर कर देनेसे मात्र स्वद्रव्यके साथ ही संगतता होनेसे वास्तवमें [३]स्वसमय होते हैं अर्थात् स्वसमयरूप परिणमित होते हैं।

इसलिये स्वसमय ही आत्माका तत्त्व है।

---

१. परिग्रह = स्वीकार; अंगीकार।

२. संचारित = लेजाये गये। (जैसे भिन्न-भिन्न कमरोंमें लेजाया गया रत्नदीपक एकरूप ही है, वह किंचित्मात्र भी कमरेके रूपमें नहीं होता, और न कमरेकी क्रिया करता है, उसीप्रकार भिन्न-भिन्न शरीरोंमें प्रविष्ट होनेवाला आत्मा एकरूप ही है, वह किंचित्मात्र भी शरीररूप नहीं होता और न शरीरकी क्रिया करता है—इसप्रकार ज्ञानी जानता है।)

३. जो जीव स्वके साथ एकत्वकी मान्यतापूर्वक (स्वके साथ) युक्त होता है उसे स्व-समय कहा जाता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ द्रव्यलक्षणमुपलक्षयति—

अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।
गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वं ति वुच्चंति॥९५॥

अपरित्यक्तस्वभावेनोत्पादव्ययध्रुवत्वसंबद्धम्।
गुणवच्च सपर्यायं यत्तद्द्रव्यमिति ब्रुवन्ति॥९५॥

अपरिच्चत्तसहावेण अपरित्यक्तस्वभावमस्तित्वेन सहाभिन्नं **उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं** उत्पादव्ययध्रौव्यैः सह संयुक्तं **गुणवं च सपज्जायं** गुणवत्पर्यायसहितं च **जं** यदित्थंभूतं **सत्तादिलक्षणत्रयसंयुक्तं तं दव्वं ति वुच्चंति** तद्द्रव्यमिति ब्रुवन्ति सर्वज्ञाः। इदं द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यैर्गुणपर्यायैश्च सह लक्ष्यलक्षणभेदे अपि सति सत्ताभेदं न गच्छति। तर्हि किं करोति। स्वरूपतयैव तथाविधत्वमवलम्बते। तथाविधत्वमवलम्बते कोऽर्थः। उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपं गुणपर्यायस्वरूपं च परिणमति शुद्धात्मवदेव। तथाहि—

भावार्थ :—'मैं मनुष्य हूँ, शरीरादिक समस्त क्रियाओंको मैं करता हूँ, स्त्री-पुत्र-धनादिके ग्रहण-त्यागका मैं स्वामी हूँ' इत्यादि मानना सो मनुष्यव्यवहार (मनुष्यरूप प्रवृत्ति) है; 'मात्र अचलित चेतना वह ही मैं हूँ' ऐसा मानना—परिणमित होना सो आत्मव्यवहार (आत्मारूप प्रवृत्ति) है।

जो मनुष्यादिपर्यायमें लीन हैं, वे एकान्तदृष्टिवाले लोग मनुष्यव्यवहारका आश्रय करते हैं, इसलिये रागी-द्वेषी होते हैं और इसप्रकार परद्रव्यरूप कर्मके साथ सम्बन्ध करते होनेसे वे परसमय हैं; और जो भगवान आत्मस्वभावमें ही स्थित हैं वे अनेकान्तदृष्टिवाले लोग मनुष्यव्यवहारका आश्रय नहीं करके आत्मव्यवहारका आश्रय करते हैं, इसलिये रागी-द्वेषी नहीं होते अर्थात् परम उदासीन रहते हैं और इसप्रकार परद्रव्यरूप कर्मके साथ सम्बन्ध न करके मात्र स्वद्रव्यके साथ ही सम्बन्ध करते हैं, इसलिये वे स्वसमय हैं॥९४॥

अब द्रव्यका लक्षण बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[अपरित्यक्तस्वभावेन] स्वभावको छोड़े बिना [यत्] जो [उत्पादव्ययध्रुवत्वसंबद्धम्] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसंयुक्त है [च] तथा [गुणवत् सपर्यायं] गुणयुक्त और पर्यायसहित है, [तत्] उसे [द्रव्यम् इति] 'द्रव्य' [ब्रुवन्ति] कहते हैं॥९५॥

छोड्या विना ज स्वभावने उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त छे,
वळी गुण ने पर्यय सहित जे, 'द्रव्य' भाख्युं तेहने. ९५.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इह खलु यदनारब्धस्वभावभेदमुत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण गुणपर्यायद्वयेन च यल्लक्ष्यते तद् द्रव्यम्। तत्र हि द्रव्यस्य स्वभावोऽस्तित्वसामान्यान्वयः। अस्तित्वं हि वक्ष्यति द्विविधं –स्वरूपास्तित्वं सादृश्यास्तित्वं चेति। तत्रोत्पादः प्रादुर्भावः, व्ययः प्रच्यवनं, ध्रौव्यमवस्थितिः। गुणा विस्तारविशेषाः। ते द्विविधाः सामान्यविशेषात्मकत्वात्। तत्रास्तित्वं नास्तित्व-मेकत्वमन्यत्वं द्रव्यत्वं पर्यायत्वं सर्वगतत्वमसर्वगतत्वं सप्रदेशत्वमप्रदेशत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं सक्रियत्वमक्रियत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं कर्तृत्वमकर्तृत्वं भोक्तृत्वमभोक्तृत्वमगुरुलघुत्वं चेत्यादयः सामान्यगुणाः, अवगाहहेतुत्वं गतिनिमित्तता स्थितिकारणत्वं वर्तनायतनत्वं रूपादिमत्ता चेतनत्वमित्यादयो विशेषगुणाः। पर्याया आयतविशेषाः। ते पूर्वमेवोक्ताश्चतुर्विधाः।

केवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे शुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशे सति शुद्धात्मोपलम्भव्यक्तिरूपकार्यसमयसारस्योत्पादः कारणसमयसारस्य व्ययस्तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्य-त्वेन ध्रौव्यं च। तथानन्तज्ञानादिगुणाः, गतिमार्गणाविपक्षभूतसिद्धगतिः, इन्द्रियमार्गणाविपक्ष-भूतातीन्द्रियत्वादिलक्षणाः शुद्धपर्यायाश्च भवन्तीति। यथा शुद्धसत्तया सहाभिन्नं परमात्मद्रव्यं पूर्वोक्तोत्पादव्ययध्रौव्यैर्गुणपर्यायैश्च सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि सति तैः सह सत्ताभेदं न

टीका :—यहाँ (इस विश्वमें) जो, स्वभावभेद किये बिना, [१]उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्रयसे और [२]गुणपर्यायद्वयसे [३]लक्षित होता है, वह द्रव्य है। इनमेंसे (-स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्यायमेंसे) द्रव्यका स्वभाव वह [४]अस्तित्वसामान्यरूप अन्वय है; अस्तित्व दो प्रकारका कहेंगे :—१-स्वरूप-अस्तित्व। २-सादृश्य-अस्तित्व। उत्पाद वह प्रादुर्भाव (प्रगट होना-उत्पन्न होना) है; व्यय वह प्रच्युति (अर्थात् भ्रष्ट,-नष्ट होना) है; ध्रौव्य वह अवस्थिति (ठिकाना) है; गुण वह विस्तारविशेष हैं। वे सामान्यविशेषात्मक होनेसे दो प्रकारके हैं। इनमें, अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, द्रव्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व, सप्रदेशत्व, अप्रदेशत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, सक्रियत्व, अक्रियत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व, इत्यादि सामान्यगुण हैं; अवगाहहेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिकारणत्व, वर्तनायतनत्व, रूपादिमत्त्व, चेतनत्व इत्यादि विशेष गुण हैं। पर्याय आयतविशेष हैं। वे पूर्व ही (९३ वीं गाथा की टीकामें) कथित चार प्रकारकी हैं।

१. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्रय = उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य-यह त्रिपुटी (तीनोंका समूह)।

२. गुणपर्यायद्वय = गुण और पर्याय-यह युगल (दोनोंका समूह)

३. लक्षित होता है = लक्ष्यरूप होता है, पहिचाना जाता है। [(१) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तथा (२) गुणपर्याय वे लक्षण हैं और द्रव्य वह लक्ष्य है।]

४. अस्तित्वसामान्यरूप अन्वय = 'है, है, है' ऐसा एकरूप भाव द्रव्यका स्वभाव है। (अन्वय = एकरूपता सदृशभाव।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

न च तैरुत्पादादिभिर्गुणपर्यायैर्वा सह द्रव्यं लक्ष्यलक्षणभेदेऽपि स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव द्रव्यस्य तथाविधत्वादुत्तरीयवत्।

यथा खलूत्तरीयमुपात्तमलिनावस्थं प्रक्षालितममलावस्थयोत्पद्यमानं तेनोत्पादेन लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते, तथा द्रव्यमपि समुपात्तप्राक्तनावस्थं समुचितबहिरंगसाधनसन्निधिसद्भावे विचित्रबहुतरावस्थानं स्वरूपकर्तृकरण-सामर्थ्यस्वभावेनान्तरंगसाधनतामुपागतेनानुगृहीतमुत्तरावस्थयोत्पद्यमानं तेनोत्पादेन लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। यथा च तदेवोत्तरीय-ममलावस्थयोत्पद्यमानं मलिनावस्थया व्ययमानं तेन व्ययेन लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेद-

---

करोति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। तथाविधत्वं कोऽर्थः। उत्पादव्ययध्रौव्यगुणपर्यायस्वरूपेण परिणमति, तथा सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीययथोचितोत्पादव्ययध्रौव्यैस्तथैव गुणपर्यायैश्च सह यद्यपि संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभिर्भेदं कुर्वन्ति तथापि सत्तास्वरूपेण भेदं न कुर्वन्ति, स्वभावत एव तथाविधत्वमवलम्बन्ते। तथाविधत्वं कोऽर्थः। उत्पादव्ययादिस्वरूपेण परिणमन्ति। अथवा यथा वस्त्रं

द्रव्यका उन उत्पादादिके साथ अथवा गुणपर्यायोंके साथ लक्ष्य-लक्षण भेद होने पर भी स्वरूपभेद नहीं है। स्वरूपसे ही द्रव्य वैसा (उत्पादादि अथवा गुणपर्यायवाला) है—वस्त्रके समान।

जैसे मलिन अवस्थाको प्राप्त वस्त्र, धोने पर निर्मल अवस्थासे (-निर्मल अवस्थारूप, निर्मल अवस्थाकी अपेक्षासे) उत्पन्न होता हुआ उस उत्पादसे लक्षित होता है; किन्तु उसका उस उत्पादके साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूपसे ही वैसा है (अर्थात् स्वयं उत्पादरूपसे ही परिणत है); उसीप्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है ऐसा द्रव्य भी—जो कि उचित बहिरंग साधनोंके सान्निध्य (निकटता; हाजरी) के सद्भावमें अनेक प्रकारकी बहुतसी अवस्थायें करता है वह—[१]अन्तरंगसाधनभूत स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरणके सामर्थ्यरूप स्वभावसे अनुगृहीत होने पर, उत्तर अवस्थासे उत्पन्न होता हुआ वह उत्पादसे लक्षित होता है; किन्तु उसका उस उत्पादके साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूपसे ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र निर्मल अवस्थासे उत्पन्न होता हुआ और मलिन अवस्थासे व्ययको प्राप्त होता हुआ उस व्ययसे लक्षित होता है, परन्तु उसका उस व्ययके साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूपसे ही वैसा है; उसीप्रकार वही द्रव्य भी उत्तर अवस्थासे उत्पन्न होता हुआ और पूर्व अवस्थासे व्ययको प्राप्त होता हुआ उस व्ययसे लक्षित होता है; परन्तु उसका उस व्ययके

---

१. द्रव्यमें निजमें ही स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण होनेकी सामर्थ्य है। यह सामर्थ्यस्वरूप स्वभाव ही अपने परिणमनमें (अवस्थांतर करनेमें) अन्तरंग साधन है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते, तथा तदेव द्रव्यमप्युत्तरावस्थयोत्पद्यमानं प्राक्तनावस्थया व्ययमानं तेन व्ययेन लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। यथैव च तदेवोत्तरीयमेककालममलावस्थयोत्पद्यमानं मलिनावस्थया व्ययमानमवस्थायिन्योत्तरीयत्वावस्थया ध्रौव्यमालम्बमानं ध्रौव्येण लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते, तथैव तदेव द्रव्यमप्येककाल-मुत्तरावस्थयोत्पद्यमानं प्राक्तनावस्थया व्ययमानमवस्थायिन्या द्रव्यत्वावस्थया ध्रौव्यमालम्बमानं ध्रौव्येण लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते।

यथैव च तदेवोत्तरीयं विस्तारविशेषात्मकैर्गुणैर्लक्ष्यते, न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते, तथैव तदेव द्रव्यमपि विस्तारविशेषात्मकैर्गुणैर्लक्ष्यते, न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वम-वलम्बते। यथैव च तदेवोत्तरीयमायतविशेषात्मकैः पर्यायवर्तिभिस्तन्तुभिर्लक्ष्यते, न च तैः सह स्वरूप-भेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते; तथैव तदेव द्रव्यमप्यायतविशेषात्मकैः पर्यायैर्लक्ष्यते, न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते।।९५।।

निर्मलपर्यायेणोत्पन्नं मलिनपर्यायेण विनष्टं तदुभयाधारभूतवस्त्ररूपेण ध्रुवमविनश्वरं, तथैव शुक्ल-वर्णादिगुणनवजीर्णादिपर्यायसहितं च सत् तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैस्तथैव च स्वकीयगुणपर्यायैः सह संज्ञादिभेदेऽपि सति सत्तारूपेण भेदं न करोति। तर्हि किं करोति। स्वरूपत एवोत्पादादिरूपेण

साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूपसे ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र एक ही समयमें निर्मल अवस्थासे उत्पन्न होता हुआ, मलिन अवस्थासे व्ययको प्राप्त होता हुआ और टिकनेवाली ऐसी वस्त्रत्व-अवस्थासे ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्यसे लक्षित होता है; परन्तु उसका उस ध्रौव्यके साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूपसे ही वैसा है; इसीप्रकार वही द्रव्य भी एक ही समय उत्तर अवस्थासे उत्पन्न होता हुआ, पूर्व अवस्थासे व्यय होता हुआ, और टिकनेवाली ऐसी द्रव्यत्वअवस्थासे ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्यसे लक्षित होता है। किन्तु उसका उस ध्रौव्यके साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूपसे ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र विस्तारविशेषस्वरूप (शुक्लत्वादि) गुणोंसे लक्षित होता है; किन्तु उसका उन गुणोंके साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूपसे ही वह वैसा है; इसीप्रकार वही द्रव्य भी विस्तारविशेषस्वरूप गुणोंसे लक्षित होता है; किन्तु उसका उन गुणोंके साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूपसे ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र आयतविशेषस्वरूप पर्यायवर्ती (-पर्यायस्थानीय) तंतुओंसे लक्षित होता है; किन्तु उसका उन तंतुओंके साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूपसे ही वैसा है। उसीप्रकार वही द्रव्य भी आयतविशेषस्वरूप पर्यायोंसे लक्षित होता है, परन्तु उसका उन पर्यायोंके साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूपसे ही वैसा है।।९५।।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ क्रमेणास्तित्वं द्विविधमभिदधाति—स्वरूपास्तित्वं सादृश्यास्तित्वं चेति। तत्रेदं स्वरूपास्तित्वाभिधानम्—

सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं॥९६॥

सद्भावो हि स्वभावो गुणैः स्वकपर्यायैश्चित्रैः।
द्रव्यस्य सर्वकालमुत्पादव्ययध्रुवत्वैः॥९६॥

अस्तित्वं हि किल द्रव्यस्य स्वभावः। तत्पुनरन्यसाधननिरपेक्षत्वादनाद्यनन्ततया-हेतुकयैकरूपया वृत्त्या नित्यप्रवृत्तत्वाद् विभावधर्मवैलक्षण्याच्च भावभाववद्भावान्नानात्वेऽपि

परिणमति, तथा सर्वद्रव्याणीत्यभिप्रायः॥९५॥ एवं नमस्कारगाथा द्रव्यगुणपर्यायकथनगाथा स्वसमयपरसमयनिरूपणगाथा सत्तादिलक्षणत्रयसूचनगाथा चेति स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन पीठिकाभिधानं प्रथमस्थलं गतम्। अथ प्रथमं तावत्स्वरूपास्तित्वं प्रतिपादयति—सहावो हि स्वभावः स्वरूपं भवति हि स्फुटम्। कः कर्ता। सब्भावो सद्भावः शुद्धसत्ता शुद्धास्तित्वम्। कस्य स्वभावो भवति। दव्वस्स मुक्तात्मद्रव्यस्य। तच्च स्वरूपास्तित्वं यथा मुक्तात्मनः सकाशात्पृथग्भूतानां पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणां

अब अनुक्रमसे दो प्रकारका अस्तित्व कहते हैं। स्वरूप-अस्तित्व और सादृश्य अस्तित्व। इनमेंसे यह स्वरूपास्तित्वका कथन है :—

अन्वयार्थ :—[सर्वकालं] सर्वकालमें [गुणैः] गुण तथा [चित्रैः स्वकपर्यायैः] अनेक प्रकारकी अपनी पर्यायोंसे [उत्पादव्ययध्रुवत्वैः] और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसे [द्रव्यस्य सद्भावः] द्रव्यका जो अस्तित्व है, [हि] वह वास्तवमें [स्वभावः] स्वभाव है॥९६॥

टीका :—अस्तित्व वास्तवमें द्रव्यका स्वभाव है; और वह (अस्तित्व) अन्य साधनसे [१]निरपेक्ष होनेके कारण अनादि-अनन्त होनेसे तथा [२]अहेतुक, एकरूप [३]वृत्तिसे सदा ही प्रवर्तता होनेके कारण विभावधर्मसे विलक्षण होनेसे, भाव और [४]भाववानताके कारण

---

१. अस्तित्व अन्य साधनकी अपेक्षासे रहित-स्वयंसिद्ध है इसलिये अनादि-अनन्त है।

२. अहेतुक = अकारण, जिसका कोई कारण नहीं है ऐसी।

३. वृत्ति = वर्तन; वर्तना वह; परिणति। (अकारणिक एकरूप परिणतिसे सदाकाल परिणमता होनेसे अस्तित्व विभावधर्मसे भिन्न लक्षणवाला है।)

४. अस्तित्व तो (द्रव्यका) भाव है और द्रव्य भाववान् है।

उत्पाद-ध्रौव्य-विनाशथी, गुण ने विविध पर्यायथी
अस्तित्व द्रव्यनुं सर्वदा जे, तेह द्रव्यस्वभाव छे. ९६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

प्रदेशभेदाभावाद् द्रव्येण सहैकत्वमवलम्बमानं द्रव्यस्य स्वभाव एव कथं न भवेत्। तत्तु द्रव्यान्तराणामिव द्रव्यगुणपर्यायाणां न प्रत्येकं परिसमाप्यते, यतो हि परस्परसाधित-सिद्धियुक्तत्वात्तेषामस्तित्वमेकमेव, कार्तस्वरवत्।

यथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कार्तस्वरात् पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण पीततादिगुणानां कुण्डलादिपर्यायाणां च स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमान-प्रवृत्तियुक्तस्य कार्तस्वरास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैः पीततादिगुणैः कुण्डलादिपर्यायैश्च यदस्तित्वं कार्तस्वरस्य स स्वभावः, तथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा द्रव्यात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण गुणानां पर्यायाणां च स्वरूपमुपादाय

शेषजीवानां च भिन्नं भवति न च तथा। कैः सह। गुणेहिं सगपज्जएहिं केवलज्ञानादिगुणैः किञ्चिदूनचरमशरीराकारादिस्वकपर्यायैश्च सह। कथंभूतैः। चित्तेहिं सिद्धगतित्वमतीन्द्रियत्वमकायत्वम-योगत्वमवेदत्वमित्यादिबहुभेदभिन्नैः। न केवलं गुणपर्यायैः सह भिन्नं न भवति। उप्पादव्वयधुवत्तेहिं शुद्धात्मप्राप्तिरूपमोक्षपर्यायस्योत्पादो रागादिविकल्परहितपरमसमाधिरूपमोक्षमार्गपर्यायस्य व्ययस्तथा मोक्षमोक्षमार्गाधारभूतान्वयद्रव्यत्वलक्षणं ध्रौव्यं चेत्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यैश्च सह भिन्नं न भवति। कथम्। सव्वकालं सर्वकालपर्यन्तं यथा भवति। कस्मात्तैः सह भिन्नं न भवतीति चेत्। यतः कारणाद्गुणपर्यायास्तित्वेनोत्पादव्ययध्रौव्यास्तित्वेन च कर्तृभूतेन शुद्धात्मद्रव्यास्तित्वं साध्यते,

---

अनेकत्व होने पर भी प्रदेशभेद न होनेसे द्रव्यके साथ एकत्वको धारण करता हुआ, द्रव्यका स्वभाव ही क्यों न हो? (अवश्य हो।) वह अस्तित्व—जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें प्रत्येकमें समाप्त हो जाता है उसीप्रकार—द्रव्य-गुण-पर्यायमें प्रत्येकमें समाप्त नहीं हो जाता, क्योंकि उनकी सिद्धि परस्पर होती है, इसलिये (अर्थात् द्रव्य-गुण और पर्याय एक दूसरेसे परस्पर सिद्ध होते हैं इसलिये—यदि एक न हो तो दूसरे दो भी सिद्ध नहीं होते इसलिये) उनका अस्तित्व एक ही है;—सुवर्णकी भाँति।

जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल या भावसे [१]सुवर्णसे जो पृथक् दिखाई नहीं देते; कर्ता-करण-अधिकरणरूपसे पीतत्वादिगुणोंके और कुण्डलादिपर्यायोंके स्वरूपको धारण करके प्रवर्तमान सुवर्णके अस्तित्वसे जिनकी उत्पत्ति होती है,—ऐसे पीतत्वादिगुणों और कुण्डलादि पर्यायोंसे जो सुवर्णका अस्तित्व है, वह सुवर्णका स्वभाव है; उसीप्रकार द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे जो द्रव्यसे पृथक् दिखाई नहीं देते, कर्ता-करण-[२]अधिकरणरूपसे गुणोंके और पर्यायोंके

---

१. पीतत्वादि गुण और कुण्डलादि पर्यायें।

२. द्रव्य ही गुण-पर्यायोंका कर्ता (करनेवाला), उनका करण (साधन) और उनका अधिकरण (आधार) है; इसलिये द्रव्य ही गुण-पर्यायका स्वरूप धारण करता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य द्रव्यास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैर्गुणैः पर्यायैश्च यदस्तित्वं द्रव्यस्य स स्वभावः। यथा वा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा पीतत्तादिगुणेभ्यः कुण्डलादिपर्यायेभ्यश्च पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कार्तस्वरस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैः पीतत्तादिगुणैः कुण्डलादिपर्यायैश्च निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य कार्तस्वरस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः, तथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा गुणेभ्यः पर्यायेभ्यश्च पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण

शुद्धात्मद्रव्यास्तित्वेन च गुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यास्तित्वं साध्यत इति। तद्यथा–यथा स्वकीय-द्रव्यक्षेत्रकालभावैः सुवर्णादभिन्नानां पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव सुवर्णस्य सद्भावः, तथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परमात्मद्रव्यादभिन्नानां केवलज्ञानादिगुणकिंचिदून-चरमशरीराकारादिपर्यायाणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव मुक्तात्मद्रव्यस्य सद्भावः। यथा स्वकीय-द्रव्यक्षेत्रकालभावैः पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायेभ्यः सकाशादभिन्नस्य सुवर्णस्य सम्बन्धि यदस्तित्वं स

स्वरूपको धारण करके प्रवर्तमान द्रव्यके अस्तित्वसे जिनकी उत्पत्ति होती है,—ऐसे गुणों और पर्यायोंसे जो द्रव्यका अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे सुवर्णसे भिन्न न दिखाई देनेवाले पीतत्वादिक और कुण्डलादिकका अस्तित्व वह सुवर्णका ही अस्तित्व है, क्योंकि पीतत्वादिकके और कुण्डलादिकके स्वरूपको सुवर्ण ही धारण करता है, इसलिये सुवर्णके अस्तित्वसे ही पीतत्वादिककी और कुण्डलादिककी निष्पत्ति—सिद्ध—होती है; सुवर्ण न हो तो पीतत्वादिक और कुण्डलादिक भी न हों, इसीप्रकार द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे द्रव्यसे भिन्न नहीं दिखाई देनेवाले गुणों और पर्यायोंका अस्तित्व वह द्रव्यका ही अस्तित्व है, क्योंकि गुणों और पर्यायोंके स्वरूपको द्रव्य ही धारण करता है, इसलिये द्रव्यके अस्तित्वसे ही गुणोंकी और पर्यायोंकी निष्पत्ति होती है, द्रव्य न हो तो गुण और पर्यायें भी न हों। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्यका स्वभाव है।)

अथवा, जैसे द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे [१]जो पीतत्वादि गुणोंसे और कुण्डलादि पर्यायोंसे पृथक् नहीं दिखाई देता; कर्ता-करण-अधिकरणरूपसे सुवर्णके स्वरूपको धारण करके प्रवर्तमान पीतत्वादिगुणों और कुण्डलादिपर्यायोंसे जिसकी निष्पत्ति होती है,—ऐसे सुवर्णका, मूलसाधनपनेसे [२]उनसे निष्पन्न होता हुआ, जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है; उसीप्रकार द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे गुणोंसे और पर्यायोंसे जो पृथक् नहीं दिखाई देता, कर्ता-

---

१. जो = जो सुवर्ण।

२. उनसे = पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायोंसे। (सुवर्णका अस्तित्व निष्पन्न होनेमें, उपजनेमें, या सिद्ध होनेमें मूलसाधन पीतत्वादि गुण और कुण्डलादि पर्यायें हैं।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

द्रव्यस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैर्गुणैः पर्यायैश्च निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य द्रव्यस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः।

किंच—यथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कार्तस्वरात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कुण्डलांगदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्याणां स्वरूप-

---

एव पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां स्वभावो भवति, तथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः केवलज्ञानादिगुणकिंचिदूनचरमशरीराकारपर्यायेभ्यः सकाशादभिन्नस्य मुक्तात्मद्रव्यस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव केवलज्ञानादिगुणकिंचिदूनचरमशरीराकारपर्यायाणां स्वभावो ज्ञातव्यः। अथेदानीमुत्पादव्ययध्रौव्याणामपि द्रव्येण सहाभिन्नास्तित्वं कथ्यते। यथा स्वकीयद्रव्यादिचतुष्टयेन सुवर्णादभिन्नानां कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायविनाशसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्याणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव सुवर्णसद्भावः,

---

करण-[१]अधिकरणरूपसे द्रव्यके स्वरूपको धारण करके प्रवर्तमान गुणों और पर्यायोंसे जिसकी निष्पत्ति होती है,—ऐसे द्रव्यका, मूलसाधनपनेसे उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (पीतत्वादिकसे और कुण्डलादिकसे भिन्न न दिखाई देनेवाले सुवर्णका अस्तित्व वह पीतत्वादिक और कुण्डलादिकका ही अस्तित्व है, क्योंकि सुवर्णके स्वरूपको पीतत्वादिक और कुण्डलादिक ही धारण करते हैं, इसलिये पीतत्वादिक और कुण्डलादिकके अस्तित्वसे ही सुवर्णकी निष्पत्ति होती है, पीतत्वादिक और कुण्डलादिक न हों तो सुवर्ण भी न हो; इसीप्रकार गुणोंसे और पर्यायोंसे भिन्न न दिखाई देनेवाले द्रव्यका अस्तित्व वह गुणों और पर्यायोंका ही अस्तित्व है, क्योंकि द्रव्यके स्वरूपको गुण और पर्यायें ही धारण करती हैं इसलिये गुणों और पर्यायोंके अस्तित्वसे ही द्रव्यकी निष्पत्ति होती है। यदि गुण और पर्यायें न हो तो द्रव्य भी न हो। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्यका स्वभाव है।)

(जिसप्रकार द्रव्यका और गुण-पर्यायका एक ही अस्तित्व है ऐसा सुवर्णके दृष्टान्त पूर्वक समझाया, उसीप्रकार अब सुवर्णके दृष्टान्त पूर्वक ऐसा बताया जा रहा है कि द्रव्यका और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका भी एक ही अस्तित्व है।)

जैसे द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे, सुवर्णसे [२]जो पृथक् नहीं दिखाई देते, कर्ता-करण-[३]अधिकरणरूपसे कुण्डलादि उत्पादोंके, बाजूबंधादि व्ययोंके और पीतत्वादि

---

१. गुण-पर्यायें ही द्रव्यकी कर्ता, करण और अधिकरण हैं; इसलिये गुण-पर्यायें ही द्रव्यका स्वरूप धारण करती हैं।

२. जो = जो कुण्डलादि उत्पाद, बाजूबंधादि व्यय आर पीतादि ध्रौव्य।

३. सुवर्ण ही कुण्डलादि-उत्पाद, बाजूबंधादि-व्यय और पीतत्वादि ध्रौव्यका कर्ता, करण तथा अधिकरण है; जइसलिये सुवर्ण ही उनका स्वरूप धारण करता है। (सुवर्ण ही कुण्डलादिरूपसे उत्पन्न होता है, बाजूबंधादिरूपसे नष्ट होता है और पीतत्वादिरूपसे अवस्थित रहता है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य कार्तस्वरास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैः कुण्डलांगद-पीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्यैर्यदस्तित्वं कार्तस्वरस्य स स्वभावः, तथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा द्रव्यात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेणोत्पादव्ययध्रौव्याणां स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य द्रव्यास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैरुत्पादव्यय-ध्रौव्यैर्यदस्तित्वं द्रव्यस्य स स्वभावः। यथा वा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कुण्डलांगदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्येभ्यः पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कार्तस्वर-स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैः कुण्डलांगदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्यैर्निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य कार्तस्वरस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः, तथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा

तथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन परमात्मद्रव्यादभिन्नानां मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्यायव्ययतदुभयाधार-भूतपरमात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्याणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव मुक्तात्मद्रव्यसद्भावः। यथा स्वद्रव्यादि-चतुष्टयेन कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायव्ययसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्येभ्यः सकाशादभिन्नस्य सुवर्णस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्याणां स्वभावः, तथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतमुक्तात्मद्रव्यत्वलक्षण-ध्रौव्येभ्यः सकाशादभिन्नस्य परमात्मद्रव्यस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्ग-

---

ध्रौव्योंके स्वरूपको धारण करके प्रवर्तमान सुवर्णके अस्तित्वसे जिनकी निष्पत्ति होती है,—ऐसे कुण्डलादि–उत्पाद, बाजूबंधादि–व्यय और पीतत्वादि ध्रौव्योंसे जो सुवर्णका अस्तित्व है, वह (सुवर्णका) स्वभाव है; उसीप्रकार द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे, जो द्रव्यसे पृथक् दिखाई नहीं देते, कर्ता-करण-अधिकरणरूपसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्योंके स्वरूपको धारण करके प्रवर्तमान द्रव्यके अस्तित्वसे जिनकी निष्पत्ति होती है,—ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्योंसे जो द्रव्यका अस्तित्व है वह स्वभाव है। (द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे द्रव्यसे भिन्न दिखाई न देनेवाले उत्पाद, व्यय और ध्रौव्योंका अस्तित्व है वह द्रव्यका ही अस्तित्व है; क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्योंके स्वरूपको द्रव्य ही धारण करता है, इसलिए द्रव्यके अस्तित्वसे ही उत्पाद, व्यय और ध्रौव्योंकी निष्पत्ति होती है। यदि द्रव्य न हो तो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भी न हों। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्यका स्वभाव है।)

अथवा जैसे द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे कुण्डलादि-उत्पादोंसे बाजूबंधादि व्ययोंसे और पीतत्वादि ध्रौव्योंसे जो पृथक् नहीं दिखाई देता; कर्ता-करण-अधिकरणरूपसे सुवर्णके स्वरूपको धारण करके प्रवर्तमान कुण्डलादि-उत्पादों, बाजूबंधादि व्ययों और पीतत्वादि ध्रौव्योंसे जिसकी निष्पत्ति होती है,—ऐसे सुवर्णका, मूलसाधनपनेसे उनसे निष्पन्न होता हुआ, जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। उसीप्रकार द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे या भावसे

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

कालेन वा भावेन वोत्पादव्ययध्रौव्येभ्यः पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण द्रव्यस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य द्रव्यस्य मूल-साधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः ॥९६॥

इदं तु सादृश्यास्तित्वाभिधानमस्तीति कथयति—

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।
उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं ॥९७॥

पर्यायव्ययतदुभयाधारभूतमुक्तात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्याणां स्वभाव इति। एवं यथा मुक्तात्मद्रव्यस्य स्वकीयगुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यैः सह स्वरूपास्तित्वाभिधानमवान्तरास्तित्वमभिन्नं व्यवस्थापितं तथैव

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्योंसे जो पृथक् दिखाई नहीं देता, कर्ता-करण-[१]अधिकरणरूपसे द्रव्यके स्वरूपको धारण करके प्रवर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्योंसे जिसकी निष्पत्ति होती है,—ऐसे द्रव्यका मूलसाधनपनेसे उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (उत्पादोंसे, व्ययोंसे और ध्रौव्योंसे भिन्न न दिखाई देनेवाले द्रव्यका अस्तित्व वह उत्पादों, व्ययों और ध्रौव्योंका ही अस्तित्व है; क्योंकि द्रव्यके स्वरूपको उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ही धारण करते हैं, इसलिये उत्पाद-व्यय और ध्रौव्योंके अस्तित्वसे ही द्रव्यकी निष्पत्ति होती है। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हों तो द्रव्य भी न हो। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्यका स्वभाव है।)

भावार्थ :—अस्तित्वके और द्रव्यके प्रदेशभेद नहीं है; और वह अस्तित्व अनादि-अनन्त है तथा अहेतुक एकरूप परिणतिसे सदा परिणमित होता है, इसलिये विभावधर्मसे भी भिन्न प्रकारका है; ऐसा होनेसे अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव ही है।

गुण-पर्यायोंका और द्रव्यका अस्तित्व भिन्न नहीं है; एक ही है; क्योंकि गुण-पर्यायें द्रव्यसे ही निष्पन्न होती हैं, और द्रव्य गुण-पर्यायोंसे ही निष्पन्न होता है। और इसीप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका और द्रव्यका अस्तित्व भी एक ही है; क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्यसे ही उत्पन्न होते हैं, और द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्योंसे ही उत्पन्न होता है।

इसप्रकार स्वरूपास्तित्वका निरूपण हुआ ॥९६॥

---

१. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ही द्रव्यके कर्ता, करण और अधिकरण हैं, इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ही द्रव्यके स्वरूपको धारण करते हैं।

विधविधलक्षणीनुं सरव-गत 'सत्त्व' लक्षण एक छे,
–अे धर्मने उपदेशता जिनवरवृषभ निर्दिष्ट छे. ९७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इह विविधलक्षणानां लक्षणमेकं सदिति सर्वगतम्।
उपदिशता खलु धर्मं जिनवरवृषभेण प्रज्ञप्तम्॥९७॥

इह किल प्रपंचितवैचित्र्येण द्रव्यान्तरेभ्यो व्यावृत्य वृत्तेन प्रतिद्रव्यं सीमानमासूत्रयता विशेषलक्षणभूतेन च स्वरूपास्तित्वेन लक्ष्यमाणानामपि सर्वद्रव्याणामस्तमितवैचित्र्यप्रपंच प्रवृत्य वृत्तं प्रतिद्रव्यमासूत्रितं सीमानं भिन्दत्सदिति सर्वगतं सामान्यलक्षणभूतं सादृश्यास्तित्वमेकं खल्ववबोधव्यम्। एवं सदित्यभिधानं सदिति परिच्छेदनं च सर्वार्थपरामर्शि स्यात्। यदि पुनरिदमेवं न स्यात्तदा किंचित्सदिति किंचिदसदिति किंचित्सच्चासच्चेति किंचिदवाच्यमिति च स्यात्। तत्तु विप्रतिषिद्धमेव। प्रसाध्यं चैतदनोकहवत्। यथा हि बहूनां बहुविधानामनो-

---

समस्तशेषद्रव्याणामपि व्यवस्थापनीयमित्यर्थः॥९६॥ अथ सादृश्यास्तित्वशब्दाभिधेयां महासत्तां प्रज्ञापयति—इह विविहलक्खणाणं इह लोके प्रत्येकसत्ताभिधानेन स्वरूपास्तित्वेन विविधलक्षणानां भिन्नलक्षणानां चेतनाचेतनमूर्तामूर्तपदार्थानां लक्खणमेगं तु एकमखण्डलक्षणं भवति। किं कर्तृ। सदित्ति सर्वं सदिति महासत्तारूपम्। किंविशिष्टम्। सव्वगयं संकरव्यतिकरपरिहाररूपस्वजात्यविरोधेन

अब यह (नीचे अनुसार) सादृश्य-अस्तित्वका कथन है :—

अन्वयार्थ :—[धर्मं] धर्मका [खलु] वास्तवमें [उपदिशता] उपदेश करते हुये [जिनवरवृषभेण] [१]जिनवरवृषभने [इह] इस विश्वमें [विविधलक्षणानां] विविध लक्षणवाले (भिन्न भिन्न स्वरूपास्तित्ववाले सर्व) द्रव्योंका [सत् इति] 'सत्' ऐसा [सर्वगतं] [२]सर्वगत [लक्षणं] लक्षण (सादृश्यास्तित्व) [एकं] एक [प्रज्ञप्तम्] कहा है॥९७॥

टीका :—इस विश्वमें, विचित्रताको विस्तारित करते हुए (विविधता-अनेकताको दिखाते हुए), अन्य द्रव्योंसे [३]व्यावृत्त रहकर प्रवर्तमान, और प्रत्येक द्रव्यकी सीमाको बाँधते हुए ऐसे विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्वसे (समस्त द्रव्य) लक्षित होते हैं फिर भी सर्व द्रव्योंका, विचित्रताके विस्तारको अस्त करता हुआ, सर्व द्रव्योंमें प्रवृत्त होकर रहनेवाला, और प्रत्येक द्रव्यकी बँधी हुई सीमाकी अवगणना करता हुआ, 'सत्' ऐसा जो सर्वगत सामान्यलक्षणभूत सादृश्यास्तित्व है वह वास्तवमें एक ही जानना चाहिए। इसप्रकार 'सत्' ऐसा कथन और 'सत्' ऐसा ज्ञान सर्व पदार्थोंका [४]परामर्श करनेवाला है। यदि वह ऐसा (सर्वपदार्थपरामर्शी) न हो तो कोई पदार्थ सत्, (अस्तित्ववाला) कोई असत् (अस्तित्व रहित), कोई सत् तथा असत् और कोई अवाच्य होना चाहिये; किन्तु वह तो विरुद्ध ही है, और यह ('सत्' ऐसा कथन और ज्ञानके सर्वपदार्थपरामर्शी होनेकी बात) तो सिद्ध हो सकती है, वृक्षकी भाँति।

---

१. जिनवरवृषभ = जिनवरोंमें श्रेष्ठ; तीर्थंकर।
२. सर्वगत = सर्वमें व्यापनेवाला।
३. व्यावृत्त = पृथक्; अलग; भिन्न।
४. परामर्श = स्पर्श; विचार; लक्ष; स्मरण।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

कहानामात्मीयात्मीयस्य विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वं सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिनानोकहत्वेनोत्थापितमेकत्वं तिरियति, तथा बहूनां बहुविधानां द्रव्याणामात्मीयात्मीयस्य विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वं सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिना सदित्यस्य भावेनोत्थापितमेकत्वं तिरियति। यथा च तेषामनोकहानां सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिनानोकहत्वेनोत्थापितेनैकत्वेन तिरोहितमपि विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वमुच्चकास्ति, तथा सर्वद्रव्याणामपि सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिना सदित्यस्य भावेनोत्थापितेनैकत्वेन तिरोहितमपि विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वमुच्चकास्ति ॥९७॥

शुद्धसंग्रहनयेन सर्वगतं सर्वपदार्थव्यापकम्। इदं केनोक्तम्। उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं धर्मं वस्तुस्वभावसंग्रहमुपदिशता खलु स्फुटं जिनवरवृषभेण प्रज्ञप्तमिति। तद्यथा–यथा सर्वे मुक्तात्मनः सन्तीत्युक्ते सति परमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादभरितावस्थलोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयात्मप्रदेशै-

जैसे बहुतसे, अनेक प्रकारके वृक्षोंको अपने अपने विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्वके अवलम्बनसे उत्पन्न होनेवाले अनेकत्वको, सामान्य लक्षणभूत [१]सादृश्यदर्शक वृक्षत्वसे उत्पन्न होनेवाला एकत्व [२]तिरोहित (अदृश्य) कर देता है, इसीप्रकार बहुतसे, अनेकप्रकारके द्रव्योंको अपने-अपने विशेष लक्षणभूत स्वरूपास्तित्वके अवलम्बनसे उत्पन्न होनेवाले अनेकत्वको, सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक 'सत्' पनेसे (-'सत्' ऐसे भावसे, अस्तित्वसे, 'है' पनेसे) उत्पन्न होनेवाला एकत्व तिरोहित कर देता है। और जैसे उन वृक्षोंके विषयमें सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक वृक्षत्वसे उत्पन्न होनेवाले एकत्वसे तिरोहित होने पर भी (अपने-अपने) विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्वके अवलम्बनसे उत्पन्न होनेवाला अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान रहता है, (बना रहता है, नष्ट नहीं होता); उसीप्रकार सर्व द्रव्योंके विषयमें भी सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक 'सत्' पनेसे उत्पन्न होनेवाले एकत्वसे तिरोहित होने पर भी (अपने-अपने) विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्वके अवलम्बनसे उत्पन्न होनेवाला अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान रहता है।

[बहुतसे (संख्यापेक्षासे अनेक) और अनेक प्रकारके (अर्थात् आम्र, अशोकादि) वृक्षोंका अपना-अपना स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न है, इसलिये स्वरूपास्तित्वकी अपेक्षासे उनमें अनेकत्व है, परन्तु वृक्षत्व जो कि सर्व वृक्षोंका सामान्यलक्षण है और जो सर्व वृक्षोंमें सादृश्य बतलाता है, उसकी अपेक्षासे सर्व वृक्षोंमें एकत्व है। जब इस एकत्वको मुख्य करते हैं तब अनेकत्व गौण हो जाता है; इसीप्रकार बहुतसे (अनन्त) और अनेक (छह) प्रकारके द्रव्योंका

१. सादृश्य = समानत्व। २. तिरोहित = तिरोभूत; आच्छादित; अदृश्य।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ द्रव्यैर्द्रव्यान्तरस्यारम्भं द्रव्यादर्थान्तरत्वं च सत्तायाः प्रतिहन्ति—

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा।
सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ॥९८॥

द्रव्यं स्वभावसिद्धं सदिति जिनास्तत्त्वतः समाख्यातवन्तः।
सिद्धं तथा आगमतो नेच्छति यः स हि परसमयः॥९८॥

स्तथा किंचिदूनचरमशरीराकारादिपर्यायैश्च संकरव्यतिकरपरिहाररूपजातिभेदेन भिन्नानामपि सर्वेषां सिद्धजीवानां ग्रहणं भवति, तथा 'सर्वं सत्' इत्युक्ते संग्रहनयेन सर्वपदार्थानां ग्रहणं भवति। अथवा सेनेयं वनमिदमित्युक्ते अश्वहस्त्यादिपदार्थानां निम्बाम्रादिवृक्षाणां स्वकीयस्वकीयजातिभेदभिन्नानां युगपद्ग्रहणं भवति, तथा सर्वं सदित्युक्ते सति सादृश्यसत्ताभिधानेन महासत्तारूपेण शुद्धसंग्रहनयेन सर्वपदार्थानां स्वजात्यविरोधेन ग्रहणं भवतीत्यर्थः॥९७॥ अथ यथा द्रव्यं स्वभावसिद्धं तथा

अपना-अपना स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न है इसलिये स्वरूपास्तित्वकी अपेक्षासे उनमें अनेकत्व है, परन्तु सत्पना (-अस्तित्वपना, 'है' ऐसा भाव) जो कि सर्व द्रव्योंका सामान्य लक्षण है और जो सर्वद्रव्योंमें सादृश्य बतलाता है उसकी अपेक्षासे सर्वद्रव्योंमें एकत्व है। जब इस एकत्वको मुख्य करते हैं तब अनेकत्व गौण हो जाता है। और इसप्रकार जब सामान्य सत्पनेको मुख्यतासे लक्षमें लेने पर सर्व द्रव्योंके एकत्वकी मुख्यता होनेसे अनेकत्व गौण हो जाता है, तब भी वह (समस्त द्रव्योंका स्वरूप-अस्तित्व संबंधी) अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान ही रहता है।]

(इसप्रकार सादृश्य अस्तित्वका निरूपण हुआ) ॥९७॥

अब, द्रव्योंसे द्रव्यान्तरकी उत्पत्ति होनेका और द्रव्यसे सत्ताका [१]अर्थान्तरत्व होनेका खण्डन करते हैं। (अर्थात् ऐसा निश्चित करते हैं कि किसी द्रव्यसे अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती और द्रव्यसे अस्तित्व कोई पृथक् पदार्थ नहीं है) :—

अन्वयार्थ :—[**द्रव्यं**] द्रव्य [**स्वभावसिद्धं**] स्वभावसे सिद्ध और [**सत् इति**] (स्वभावसे ही) 'सत्' है, ऐसा [**जिनाः**] जिनेन्द्रदेवने [**तत्त्वतः**] यथार्थतः [**समाख्यातवन्तः**] कहा है; [**तथा**] इसप्रकार [**आगमतः**] आगमसे [**सिद्धं**] सिद्ध है; [**यः**] जो [**न इच्छति**] इसे नहीं मानता [**सः**] वह [**हि**] वास्तवमें [**परसमयः**] परसमय है॥९८॥

---

१. अर्थान्तरत्व = अन्यपदार्थपना।

द्रव्यो स्वभावे सिद्ध ने 'सत्'—तत्त्वतः श्री जिनो कहे;
अे सिद्ध छे आगम थकी, माने न ते परसमय छे. ९८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

न खलु द्रव्यैर्द्रव्यान्तराणामारम्भः, सर्वद्रव्याणां स्वभावसिद्धत्वात्। स्वभावसिद्धत्वं तु तेषामनादिनिधनत्वात्। अनादिनिधनं हि न साधनान्तरमपेक्षते। गुणपर्यायात्मानमात्मनः स्वभावमेव मूलसाधनमुपादाय स्वयमेव सिद्धसिद्धिमद्भूतं वर्तते। यत्तु द्रव्यैरारभ्यते न तद् द्रव्यान्तरं, कादाचित्कत्वात् स पर्यायः, द्व्यणुकादिवन्मनुष्यादिवच्च। द्रव्यं पुनरनवधि त्रिसमयावस्थायि न तथा स्यात्। अथैवं यथा सिद्धं स्वभावत एव द्रव्यं, तथा सदित्यपि तत्स्वभावत एव सिद्धमित्यवधार्यताम्, सत्तात्मनात्मनः स्वभावेन निष्पन्ननिष्पत्तिमद्भाव-युक्तत्वात्। न च द्रव्यादर्थान्तरभूता सत्तोपपत्तिमभिप्रपद्यते, यतस्तत्समवायात्तत्सदिति स्यात्।

तत्सदपि स्वभावत एवेत्याख्याति—**दव्वं सहावसिद्धं** द्रव्यं परमात्मद्रव्यं स्वभावसिद्धं भवति। कस्मात्। अनाद्यनन्तेन परहेतुनिरपेक्षेण स्वतः सिद्धेन केवलज्ञानादिगुणाधारभूतेन सदानन्दैकरूपसुखसुधारसपरम-समरसीभावपरिणतसर्वशुद्धात्मप्रदेशभरितावस्थेन शुद्धोपादानभूतेन स्वकीयस्वभावेन निष्पन्नत्वात्। यच्च स्वभावसिद्धं न भवति तद्द्रव्यमपि न भवति। द्व्यणुकादिपुद्गलस्कन्धपर्यायवत् मनुष्यादिजीवपर्यायवच्च। **सदिति** यथा स्वभावतः सिद्धं तद्द्रव्यं तथा सदिति सत्तालक्षणमपि स्वभावत

टीका :—वास्तवमें द्रव्योंसे द्रव्यान्तरोंकी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सर्व द्रव्य स्वभावसिद्ध हैं। (उनकी) स्वभावसिद्धता तो उनकी अनादिनिधनतासे है; क्योंकि [१]अनादिनिधन साधनान्तरकी अपेक्षा नहीं रखता। वह गुणपर्यायात्मक ऐसे अपने स्वभावको ही—जो कि मूल साधन है उसे—धारण करके स्वयमेव सिद्ध हुआ वर्तता है।

जो द्रव्योंसे उत्पन्न होता है वह तो द्रव्यान्तर नहीं है, [२]कादाचित्कपनेके कारण पर्याय है; जैसे–द्विअणुक इत्यादि तथा मनुष्य इत्यादि। द्रव्य तो अनवधि (मर्यादा रहित) त्रिसमय–अवस्थायी (त्रिकालस्थायी) होनेसे उत्पन्न नहीं होता।

अब इसप्रकार–जैसे द्रव्य स्वभावसे ही सिद्ध है उसीप्रकार '(वह) सत् है' ऐसा भी उसके स्वभावसे ही सिद्ध है, ऐसा निर्णय हो; क्योंकि सत्तात्मक ऐसे अपने स्वभावसे निष्पन्न हुए भाववाला है (–द्रव्यका 'सत् है' ऐसा भाव द्रव्यके सत्तास्वरूप स्वभावका ही बना हुआ है)।

द्रव्यसे अर्थान्तरभूत सत्ता उत्पन्न नहीं है (–नहीं बन सकती, योग्य नहीं है) कि जिसके समवायसे वह (–द्रव्य) 'सत्' हो। (इसीको स्पष्ट समझाते हैं) :—

---

१. अनादिनिधन = आदि और अन्तसे रहित। (जो अनादिअनन्त हो उसकी सिद्धिके लिये अन्य साधनकी आवश्यकता नहीं है।)

२. कादाचित्क = कदाचित्–किसीसमय हो ऐसा; अनित्य।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सतः सत्तायाश्च न तावद्युतसिद्धत्वेनार्थान्तरत्वं, तयोर्दण्डदण्डिवद्युतसिद्धस्यादर्शनात्। अयुत-सिद्धत्वेनापि न तदुपपद्यते। इहेदमिति प्रतीतेरुपपद्यत इति चेत् किंनिबन्धना हीहेदमिति प्रतीतिः। भेदनिबन्धनेति चेत् को नाम भेदः। प्रादेशिक अताद्भाविको वा। न तावत्प्रादेशिकः, पूर्वमेव युतसिद्धत्वस्यापसारणात्। अताद्भाविकश्चेत् उपपन्न एव, यद् द्रव्यं तन्न गुण इति वचनात्। अयं तु न खल्वेकान्तेनेहेदमिति प्रतीतेर्निबन्धनं,

एव भवति, न च भिन्नसत्तासमवायात्। अथवा यथा द्रव्यं स्वभावतः सिद्धं तथा तस्य योऽसौ सत्तागुणः सोऽपि स्वभावसिद्ध एव। कस्मादिति चेत्। सत्ताद्रव्ययोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि दण्डदण्डिवद्भिन्नप्रदेशाभावात्। इदं के कथितवन्तः। **जिणा तच्चदो समक्खादा** जिनाः कर्तारः तत्त्वतः सम्यगाख्यातवन्तः कथितवन्तः **सिद्धं तह आगमदो** सन्तानापेक्षया द्रव्यार्थिकनयेनानादिनिधनागमादपि तथा **सिद्धं णेच्छदि जो सो हि परसमओ** नेच्छति न मन्यते य इदं वस्तुस्वरूपं स हि स्फुटं परसमयो

प्रथम तो [१]सत्से [२]सत्ताकी [३]युतसिद्धतासे अर्थान्तरत्व नहीं है, क्योंकि दण्ड और दण्डीकी भाँति उनके सम्बन्धमें युतसिद्धता दिखाई नहीं देती। (दूसरे) अयुतसिद्धतासे भी वह (अर्थान्तरत्व) नहीं बनता। 'इसमें यह है (अर्थात् द्रव्यमें सत्ता है)' ऐसी प्रतीति होती है इसलिये वह बन सकता है, —ऐसा कहा जाय तो (पूछते हैं कि) 'इसमें यह है' ऐसी प्रतीति किसके आश्रय (-कारण) से होती है? यदि ऐसा कहा जाय कि भेदके आश्रयसे (अर्थात् द्रव्य और सत्तामें भेद होनेसे) होती है तो, वह कौनसा भेद है? प्रादेशिक या अताद्भाविक? [४]प्रादेशिक तो है नहीं, क्योंकि युतसिद्धत्व पहले ही रद्द (नष्ट, निरर्थक) कर दिया गया है, और यदि [५]अताद्भाविक कहा जाय तो वह उपपन्न ही (ठीक ही) है, क्योंकि ऐसा (शास्त्रका) वचन है कि 'जो द्रव्य है वह गुण नहीं है।' परन्तु (यहाँ भी यह ध्यानमें रखना कि) यह अताद्भाविक भेद 'एकान्तसे इसमें यह है' ऐसी प्रतीतिका आश्रय (कारण) नहीं है, क्योंकि वह

१. सत् = अस्तित्ववान् अर्थात् द्रव्य। २. सत्ता = अस्तित्व (गुण)।

३. युतसिद्ध = जुड़कर सिद्ध हुआ; समवायसे–संयोगसे सिद्ध हुआ। [जैसे लाठी और मनुष्यके भिन्न होने पर भी लाठीके योगसे मनुष्य 'लाठीवाला' होता है, इसीप्रकार सत्ता और द्रव्यके अलग होने पर भी सत्ताके योगसे द्रव्य 'सत्तावाला' ('सत्') हुआ है ऐसा नहीं है। लाठी और मनुष्यकी भाँति सत्ता और द्रव्य अलग दिखाई ही नहीं देते। इसप्रकार 'लाठी' और लाठीवाले' की भाँति 'सत्ता' और 'सत्'के संबंधमें युतसिद्धता नहीं है।]

४. द्रव्य और सत्तामें प्रदेशभेद नहीं है; क्योंकि प्रदेशभेद हो तो युतसिद्धत्व आये, जिसको पहले ही रद्द करके बताया है।

५. द्रव्य वह गुण नहीं है और गुण वह द्रव्य नहीं है,–ऐसे द्रव्य-गुणके भेदको (गुण-गुणी-भेदको) अताद्भाविक (तद्रूप न होनेरूप) भेद कहते हैं। यदि द्रव्य और सत्तामें ऐसा भेद कहा जाय तो वह योग्य ही है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

स्वयमेवोन्मग्ननिमग्नत्वात्। तथा हि—यदैव पर्यायेणार्प्यते द्रव्यं तदैव गुणवदिदं द्रव्यमयमस्य गुणः, शुभ्रमिदमुत्तरीयमयमस्य शुभ्रो गुण इत्यादिवदताद्भाविको भेद उन्मज्जति। यदा तु द्रव्येणार्प्यते द्रव्यं तदास्तमितसमस्तगुणवासनोन्मेषस्य तथाविधं द्रव्यमेव शुभ्रमुत्तरीयमित्यादिवत्प्रपश्यतः समूल एवाताद्भाविको भेदो निमज्जति। एवं हि भेदे निमज्जति तत्प्रत्यया प्रतीतिर्निमज्जति। तस्यां निमज्जत्यामयुतसिद्धत्वोत्थमर्थान्तरत्वं निमज्जति। ततः समस्तमपि द्रव्यमेवैकं भूत्वावतिष्ठते। यदा तु भेद उन्मज्जति, तस्मिन्नुन्मज्जति तत्प्रत्यया प्रतीतिरुन्मज्जति, तस्यामुन्मज्जत्यामयुतसिद्धत्वोत्थमर्थान्तरत्वमुन्मज्जति, तदापि तत्पर्यायत्वेनोन्मज्जज्जलराशेर्जलकल्लोल इव द्रव्यान्न व्यतिरिक्तं स्यात्। एवं सति स्वयमेव सद् द्रव्यं भवति। यस्त्वेवं

मिथ्यादृष्टिर्भवति। एवं यथा परमात्मद्रव्यं स्वभावतः सिद्धमवबोद्धव्यं तथा सर्वद्रव्याणीति। अत्र द्रव्यं केनापि पुरुषेण न क्रियते। सत्तागुणोऽपि द्रव्याद्भिन्नो नास्तीत्यभिप्रायः।।९८।। अथोत्पादव्ययध्रौव्यत्वे

(अताद्भाविक भेद) स्वयमेव [१]उन्मग्न और [२]निमग्न होता है। वह इसप्रकार है :—जब द्रव्यको पर्याय प्राप्त कराई जाय (अर्थात् जब द्रव्यको पर्याय प्राप्त करती है—पहुँचती है इसप्रकार पर्यायार्थिकनयसे देखा जाय) तब ही—'शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है' इत्यादिकी भाँति—'गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है' इसप्रकार अताद्भाविक भेद उन्मग्न होता है; परन्तु जब द्रव्यको द्रव्य प्राप्त कराया जाय (अर्थात् द्रव्यको द्रव्य प्राप्त करता है;—पहुँचता है इसप्रकार द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाय), तब जिसके समस्त [३]गुणवासनाके उन्मेष अस्त हो गये हैं ऐसे उस जीवको—'शुक्लवस्त्र ही है' इत्यादिकी भाँति—'ऐसा द्रव्य ही है' इसप्रकार देखने पर समूल ही अताद्भाविक भेद निमग्न होता है। इसप्रकार भेदके निमग्न होने पर उसके आश्रयसे (-कारणसे) होती हुई प्रतीति निमग्न होती है। उसके निमग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना निमग्न होता है, इसलिये समस्त ही एक द्रव्य ही होकर रहता है। और जब भेद उन्मग्न होता है, वह उन्मग्न होने पर उसके आश्रय (कारण) से होती हुई प्रतीति उन्मग्न होती है, उसके उन्मग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना उन्मग्न होता है, तब भी (वह) द्रव्यके पर्यायरूपसे उन्मग्न होनेसे,—जैसे जलराशिसे जलतरंगें व्यतिरिक्त नहीं हैं (अर्थात् समुद्रसे तरंगें अलग नहीं हैं) उसीप्रकार—द्रव्यसे व्यतिरिक्त नहीं होता।

---

१. उन्मग्न होना = ऊपर आना; तैर आना; प्रगट होना (मुख्य होना)।

२. निमग्न होना = डूब जाना (गौण होना)।

३. गुणवासनाके उन्मेष = द्रव्यमें अनेक गुण होनेके अभिप्रायकी प्रगटता; गुणभेद होनेरूप मनोवृत्तिके (अभिप्रायके) अंकुर।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

नेच्छति स खलु परसमय एव द्रष्टव्यः ॥९८॥

अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वेऽपि सद् द्रव्यं भवतीति विभावयति—

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो ॥९९॥

सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः।
अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवनाशसंबद्धः ॥९९॥

इह हि स्वभावे नित्यमवतिष्ठमानत्वात्सदिति द्रव्यम्। स्वभावस्तु द्रव्यस्य ध्रौव्योत्पादोच्छेदैक्यात्मकपरिणामः। यथैव हि द्रव्यवास्तुनः सामस्त्येनैकस्यापि विष्कम्भक्रम-

---

सति सत्तैव द्रव्यं भवतीति प्रज्ञापयति—सदवट्ठिदं सहावे दव्वं द्रव्यं मुक्तात्मद्रव्यं भवति। किं कर्तृ। सदिति शुद्धचेतनान्वयरूपमस्तित्वम्। किंविशिष्टम्। अवस्थितम्। क्व। स्वभावे। स्वभावं कथयति—दव्वस्स जो हि परिणामो तस्य परमात्मद्रव्यस्य संबन्धी हि स्फुटं यः परिणामः। केषु विषयेषु। अत्थेसु

ऐसा होनेसे (यह निश्चित हुआ कि) द्रव्य स्वयमेव सत् है। जो ऐसा नहीं मानता वह (उसे) वास्तवमें 'परसमय' (मिथ्यादृष्टि) ही मानना ॥९८॥

अब, यह बतलाते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने पर भी द्रव्य 'सत्' है :—

अन्वयार्थ :—[**स्वभावे**] स्वभावमें [**अवस्थितं**] अवस्थित (होनेसे) [**द्रव्यं**] द्रव्य [**सत्**] 'सत्' है; [**द्रव्यस्य**] द्रव्यका [**यः हि**] जो [**स्थितिसंभवनाशसंबद्धः**] उत्पादव्ययध्रौव्य सहित [**परिणामः**] परिणाम है [**सः**] वह [**अर्थेषु स्वभावः**] पदार्थोंका स्वभाव है ॥९९॥

टीका :—यहाँ (विश्वमें) स्वभावमें नित्य अवस्थित होनेसे द्रव्य 'सत्' है। स्वभाव द्रव्यका ध्रौव्य-उत्पाद-विनाशकी एकतास्वरूप परिणाम है।

जैसे [१]द्रव्यका वास्तु समग्रपने द्वारा (अखण्डता द्वारा) एक होनेपर भी, विस्ताक्रममें

---

१. द्रव्यका वास्तु = द्रव्यका स्व-विस्तार, द्रव्यका स्व-क्षेत्र, द्रव्यका स्व-आकार, द्रव्यका स्व-दल। (वास्तु = घर, निवासस्थान, आश्रय, भूमि।)

द्रव्यो स्वभाव विषे अवस्थित, तेथी 'सत्' सौ द्रव्य छे;
उत्पाद-ध्रौव्य-विनाशयुत परिणाम द्रव्यस्वभाव छे. ९९.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

प्रवृत्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः प्रदेशाः, तथैव हि द्रव्यवृत्तेः सामस्त्येनैकस्यापि प्रवाहक्रमप्रवृत्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः परिणामाः। यथा च प्रदेशानां परस्परव्यतिरेकनिबन्धनो विष्कम्भक्रमः, तथा परिणामानां परस्परव्यतिरेकनिबन्धनः प्रवाहक्रमः। यथैव च ते प्रदेशाः स्वस्थाने स्वरूप-पूर्वरूपाभ्यामुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकवास्तुतयानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूति-संहारध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति, तथैव ते परिणामाः स्वावसरे स्वरूपपूर्वरूपाभ्या-मुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहतयानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहारध्रौव्या-त्मकमात्मानं धारयन्ति। यथैव च य एव हि पूर्वप्रदेशोच्छेदनात्मको वास्तुसीमान्तः स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकवास्तुतयातदुभयात्मक इति; तथैव

परमात्मपदार्थस्य धर्मत्वादभेदनयेनार्था भण्यन्ते। के ते। केवलज्ञानादिगुणाः सिद्धत्वादिपर्यायाश्च, तेष्वर्थेषु विषयेषु योऽसौ परिणामः। सो सहावो केवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वादिपर्यायरूपस्तस्य परमात्मद्रव्यस्य स्वभावो भवति। स च कथंभूतः। ठिदिसंभवणाससंबद्धो स्वात्मप्राप्तिरूपमोक्षपर्यायस्य संभवस्तस्मिन्नेव क्षणे परमागमभाषयैकत्ववितर्कावीचारद्वितीयशुक्लध्यानसंज्ञस्य शुद्धोपादानभूतस्य

प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं वे प्रदेश हैं, इसीप्रकार द्रव्यकी [१]वृत्ति समग्रपने द्वारा एक होनेपर भी, प्रवाहक्रममें प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं वे परिणाम है। जैसे विस्ताक्रमका कारण प्रदेशोंका परस्पर व्यतिरेक है, उसीप्रकार प्रवाहक्रमका कारण परिणामोंका परस्पर [२]व्यतिरेक है।

जैसे वे प्रदेश अपने स्थानमें स्व-रूपसे उत्पन्न और पूर्व-रूपसे विनष्ट होनेसे तथा सर्वत्र परस्पर [३]अनुस्यूतिसे रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होनेसे उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं, उसीप्रकार वे परिणाम अपने अवसरमें स्व-रूपसे उत्पन्न और पूर्वरूपसे विनष्ट होनेसे तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूतिसे रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होनेसे उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं। और जैसे वास्तुका जो छोटेसे छोटा अंश पूर्वप्रदेशके विनाशस्वरूप है वही (अंश) उसके बादके प्रदेशका उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूतिसे रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुभय स्वरूप है (अर्थात् दोमेंसे एक भी स्वरूप नहीं है), इसीप्रकार प्रवाहका जो छोटेसे छोटा अंश पूर्वपरिणामके विनाशस्वरूप है वही उसके

---

१. वृत्ति = वर्तना वह; होना वह; अस्तित्व।

२. व्यतिरेक = भेद; (एकका दूसरेमें) अभाव, (एक परिणाम दूसरे परिणामरूप नहीं है, इसलिये द्रव्यके प्रवाहमें क्रम है)।

३. अनुस्यूति = अन्वयपूर्वक जुड़ान। [सर्व परिणाम परस्पर अन्वयपूर्वक (सादृश्य सहित) गुंथित (जुड़े) होनेसे, वे सब परिणाम एक प्रवाहरूपसे हैं, इसलिये वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

य एव हि पूर्वपरिणामोच्छेदात्मकः प्रवाहसीमान्तः स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहतयातदुभयात्मक इति। एवमस्य स्वभावत एव त्रिलक्षणायां परिणामपद्धतौ दुर्ललितस्य स्वभावानतिक्रमात्त्रिलक्षणमेव सत्त्वमनुमोदनीयम्; मुक्ताफलदामवत्। यथैव हि परिगृहीतद्राघिम्नि प्रलम्बमाने मुक्ताफलदामनि समस्तेष्वपि स्वधामसूच्चकासत्सु मुक्ताफलेषूत्तरोत्तरेषु धामसूत्तरोत्तरमुक्ताफलानामुदयनात्पूर्वपूर्वमुक्ताफलानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य सूत्रकस्यावस्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति, तथैव हि परिगृहीतनित्यवृत्तिनिवर्तमाने द्रव्ये समस्तेष्वपि स्वावसरेषूच्चकासत्सु परिणामेषूत्तरोत्तरेष्ववसरेषूत्तरोत्तरपरिणामानामुदयनात्पूर्वपूर्वपरिणामानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य प्रवाहस्यावस्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति॥९९॥

समस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनज्ञानपर्यायस्य नाशस्तस्मिन्नेव समये तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यस्य स्थितिरित्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण संबन्धो भवतीति। एवमुत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेणैकसमये

बादके परिणामके उत्पादस्वरूप है, तथा वही परस्पर अनुस्यूतिसे रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।

इसप्रकार स्वभावसे ही त्रिलक्षण परिणामपद्धतिमें (परिणामोंकी परम्परामें) प्रवर्तमान द्रव्य स्वभावका [१]अतिक्रम नहीं करता इसलिये [२]सत्त्वको [३]त्रिलक्षण ही [४]अनुमोदना चाहिये– मोतियोंके हारकी भाँति।

जैसे–जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है ऐसे लटकते हुये मोतियोंके हारमें, अपने-अपने स्थानोंमें प्रकाशित होते हुये समस्त मोतियोंमें, पीछे-पीछेके स्थानोंमें पीछे-पीछेके मोती प्रगट होते हैं इसलिये, और पहले-पहलेके मोती प्रगट नहीं होते इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूतिका रचयिता सूत्र अवस्थित होनेसे त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धिको प्राप्त होता है। इसीप्रकार जिसने [५]नित्यवृत्ति ग्रहण की है ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्यमें अपने अपने अवसरोंमें प्रकाशित (प्रगट) होते हुये समस्त परिणामोंमें पीछे-पीछेके अवसरों पर पीछे पीछेके परिणाम प्रगट होते हैं इसलिये, और पहले-पहलेके परिमाम नहीं प्रगट होते हैं इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह अवस्थित होनेसे त्रिलक्षणपना प्रसिद्धिको प्राप्त होता है।

१. अतिक्रम = उल्लंघन; त्याग।

२. सत्त्व = सत्पना; (अभेदनयसे) द्रव्य।

३. त्रिलक्षण = उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनों लक्षणवाला; त्रिस्वरूप; त्रयात्मक।

४. अनुमोदना = आनंदमें सम्मत करना।

५. नित्यवृत्ति = नित्यस्थायित्व; नित्य अस्तित्व; सदा वर्तना।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्पराविनाभावं दृढयति—

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।
उप्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण॥१००॥

न भवो भङ्गविहीनो भङ्गो वा नास्ति संभवविहीनः।
उत्पादोऽपि च भङ्गो न विना ध्रौव्येणार्थेन॥१००॥

यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन परमात्मद्रव्यं परिणतं, तथापि द्रव्यार्थिकनयेन सत्तालक्षणमेव भवति। त्रिलक्षणमपि सत्सत्तालक्षणं कथं भण्यत इति चेत् "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" इति वचनात्। यथेदं परमात्मद्रव्यमेकसमयेनोत्पादव्ययध्रौव्यैः परिणतमेव सत्तालक्षणं भण्यते तता सर्वद्रव्याणीत्यर्थः॥९९॥ एवं स्वरूपसत्तारूपेण प्रथमगाथा, महासत्तारूपेण द्वितीया, यथा द्रव्यं स्वतःसिद्धं तथा सत्तागुणोऽपीति कथनेन तृतीया, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वेऽपि सत्तैव द्रव्यं भण्यत इति कथनेन चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन

भावार्थ :—प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभावमें रहता है इसलिये 'सत्' है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। जैसे द्रव्यके विस्तारका छोटेसे छोटा अंश वह प्रदेश है, उसीप्रकार द्रव्यके प्रवाहका छोटेसे छोटा अंश वह परिणाम है। प्रत्येक परिणाम स्व-कालमें अपने रूपसे उत्पन्न होता है, पूर्वरूपसे नष्ट होता है और सर्व परिणामोंमें एकप्रवाहपना होनेसे प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाशसे रहित एकरूप-ध्रुव रहता है। और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें समयभेद नहीं है, तीनों ही एक ही समयमें हैं। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामोंकी परम्परामें द्रव्य स्वभावसे ही सदा रहता है, इसलिये द्रव्य स्वयं भी, मोतियोंके हारकी भाँति, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है॥९९॥

अब, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका परस्पर [१]अविनाभाव दृढ़ करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**भवः**] उत्पाद [**भङ्गविहीनः**] [२]भंग रहित [**न**] नहीं होता, [**वा**] और [**भङ्गः**] भंग [**संभवविहीनः**] विना उत्पादके [**नास्ति**] नहीं होता; [**उत्पादः**] उत्पाद [**अपि च**] तथा [**भङ्गः**] भंग [**ध्रौव्येण अर्थेन विना**] ध्रौव्य पदार्थके बिना [**न**] नहीं होते॥१००॥

---

१. अविनाभाव = एकके बिना दूसरेका नहीं होना वह; एक-दूसरे बिना हो ही नहीं सके ऐसा भाव।

२. भंग = व्यय; नाश।

उत्पाद भंग विना नहीं, संहार सर्ग विना नहीं;
उत्पाद तेम ज भंग, ध्रौव्य-पदार्थ विण वर्ते नहीं. १००.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

न खलु सर्गः संहारमन्तरेण, न संहारो वा सर्गमन्तरेण, न सृष्टिसंहारौ स्थितिमन्तरेण, न स्थितिः सर्गसंहारमन्तरेण। य एव हि सर्गः स एव संहारः, य एव संहारः स एव सर्गः, यावेव सर्गसंहारौ सैव स्थितिः, यैव स्थितिस्तावेव सर्गसंहाराविति। तथा हि— य एव कुम्भस्य सर्गः स एव मृत्पिण्डस्य संहारः, भावस्य भावान्तराभावस्वभावेनावभासनात्। य एव च मृत्पिण्डस्य संहारः स एव कुम्भस्य सर्गः, अभावस्य भावान्तरभावस्वभावेनावभासनात्। यौ च कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ सैव मृत्तिकायाः स्थितिः, *व्यतिरेकाणामन्वया-

---

सत्तालक्षणविवरणमुख्यतया द्वितीयस्थलं गतम्। अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्परसापेक्षत्वं दर्शयति— ण भवो भंगविहीणो निर्दोषपरमात्मरुचिरूपसम्यक्त्वपर्यायस्य भव उत्पादः तद्विपरीतमिथ्यात्वपर्यायस्य भङ्गं विना न भवति। कस्मात्। उपादानकारणाभावात्, मृत्पिण्डभङ्गाभावे घटोत्पाद इव। द्वितीयं च कारणं मिथ्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वपर्यायरूपेण प्रतिभासनात्। तदपि कस्मात्। ''भावान्तरस्वभावरूपो भवत्यभाव'' इति वचनात्। घटोत्पादरूपेण मृत्पिण्डभङ्ग इव। यदि पुनर्मिथ्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वोपादानकारणभूतस्याभावेऽपि शुद्धात्मानुभूतिरुचिरूपसम्यक्त्वस्योत्पादो भवति, तर्ह्युपादानकारणरहितानां खपुष्पादीनामप्युत्पादो भवतु। न च तथा। **भंगो वा णत्थि संभवविहीणो**

टीका :—वास्तवमें [१]सर्ग [२]संहारके बिना नहीं होता और संहार सर्गके बिना नहीं होता; [३]सृष्टि और संहार [४]स्थिति (ध्रौव्य) के बिना नहीं होते, स्थिति सर्ग और संहारके बिना नहीं होती।

जो सर्ग है वही संहार है, जो संहार है वही सर्ग है; जो सर्ग और संहार है वही स्थिति है; जो स्थिति है वही सर्ग और संहार है। वह इसप्रकार :—जो कुम्भका सर्ग है वही [५]मृतिकापिण्डका संहार है; क्योंकि भावका भावान्तरके अभावस्वभावसे अवभासन है। (अर्थात् भाव अन्यभावके अभावरूप स्वभावसे प्रकाशित है–दिखाई देता है।) और जो मृत्तिकापिण्डका संहार है वही कुम्भका सर्ग है, क्योंकि अभावका भावान्तरके भावस्वभावसे अवभासन है; (अर्थात् नाश अन्यभावके उत्पादरूप स्वभावसे प्रकाशित है।)

और जो कुम्भका सर्ग और पिण्डका संहार है वही मृत्तिकाकी स्थिति है, क्योंकि

---

* 'व्यतिरेकमुखेन.....क्रमणात्' के स्थान पर निम्न प्रकार पाठ चाहिये ऐसा लगता है, ''व्यतिरेकाणामन्वयानतिक्रमणात्। यैव च मृत्तिकायाः स्थितिस्तावेव कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ, व्यतिरेकमुखेनैवान्वयस्य प्रकाशनात्।'' हिन्दी अनुवाद इस संशोधित पाठानुसार किया है।

१. सर्ग = उत्पाद, उत्पत्ति। २. संहार = व्यय, नाश।

३. सृष्टि = उत्पत्ति। ४. स्थिति = स्थित रहना; ध्रुव रहना, ध्रौव्य।

५. मृत्तिकापिण्ड = मिट्टीका पिण्ड।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

नतिक्रमणात्। यैव च मृत्तिकायाः स्थितिस्तावेव कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ, व्यतिरेक-मुखेनैवान्वयस्य प्रकाशनात्। यदि पुनर्नेदमेवमिष्येत तदान्यः सर्गोऽन्यः संहारः अन्या स्थितिरित्यायाति। तथा सति हि केवलं सर्गं मृगयमाणस्य कुम्भस्योत्पादनकारणाभावाद-भवनिरेव भवेत्, असदुत्पाद एव वा। तत्र कुम्भस्याभवनौ सर्वेषामेव भावानामभवनिरेव भवेत्; असदुत्पादे वा व्योमप्रसवादीनामप्युत्पादः स्यात्। तथा केवलं संहारमारभमाणस्य मृत्पिण्डस्य संहारकारणाभावादसंहरणिरेव भवेत्, सदुच्छेद एव वा। तत्र मृत्पिण्डस्यासंहरणौ

परद्रव्योपादेयरुचिरूपमिथ्यात्वस्य भङ्गो नास्ति। कथंभूतः। पूर्वोक्तसम्यक्त्वपर्यायसंभवरहितः। कस्मादिति चेत्। भङ्गकारणाभावात्, घटोत्पादाभावे मृत्पिण्डस्येव। द्वितीयं च कारणं सम्यक्त्वपर्यायोत्पादस्य मिथ्यात्वपर्यायाभावरूपेण दर्शनात्। तदपि कस्मात्। पर्यायस्य पर्यायान्तराभावरूपत्वात्, घटपर्यायस्य मृत्पिण्डाभावरूपेणेव। यदि पुनः सम्यक्त्वोत्पादनिरपेक्षो भवति मिथ्यात्वपर्यायाभावस्तर्ह्यभाव एव न स्यात्। कस्मात्। अभावकारणाभावादिति, घटोत्पादाभावे

---

[१]व्यतिरेक अन्वयका अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं करते, और जो मृत्तिकाकी स्थिति है वही कुम्भका सर्ग और पिण्डका संहार है, क्योंकि व्यतिरेकोंके द्वारा [२]अन्वय प्रकाशित होता है। और यदि ऐसा ही (ऊपर समझाया तदनुसार) न माना जाय तो ऐसा सिद्ध होगा कि 'सर्ग अन्य है, संहार अन्य है, स्थिति अन्य है।' (अर्थात् तीनों पृथक् हैं ऐसा माननेका प्रसंग आ जायगा।) ऐसा होने पर (क्या दोष आता है, सो समझाते हैं) :—

केवल सर्ग-शोधक कुम्भकी (-व्यय और ध्रौव्यसे भिन्न मात्र उत्पाद करनेको जानेवाले कुम्भकी) [३]उत्पादन कारणका अभाव होनेसे उत्पत्ति ही नहीं होगी; अथवा तो असत्का ही उत्पाद होगा। और वहाँ, (१) यदि कुम्भकी उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावोंकी उत्पत्ति ही नहीं होगी। (अर्थात् जैसे कुम्भकी उत्पत्ति नहीं होगी उसीप्रकार विश्वके किसी भी द्रव्यमें किसी भी भावका उत्पाद ही नहीं होगा,–यह दोष आयगा); अथवा (२) यदि असत्का उत्पाद हो तो [४]व्योम-पुष्प इत्यादिका भी उत्पाद होगा, (अर्थात् शून्यमेंसे भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे,–यह दोष आयगा।)

और केवल व्ययारम्भक (उत्पाद और ध्रौव्यसे रहित केवल व्यय करनेको उद्यत मृत्तिकापिण्डका) संहारकारणका अभाव होनेसे संहार ही नहीं होगा; अथवा तो सत्का ही उच्छेद होगा। वहाँ, (१) यदि मृत्तिकापिण्डका व्यय न होगा तो समस्त ही भावोंका संहार

---

१. व्यतिरेक = भेद; एक दूसरेरूप न होना वह; 'यह वह नहीं है' ऐसे ज्ञानका निमित्तभूत भिन्नरूपत्व।

२. अन्वय = एकरूपता; सादृश्यता; 'यह वही है' ऐसे ज्ञानका कारणभूत एकरूपत्व।

३. उत्पादनकारण = उत्पत्तिका कारण।

४. व्योमपुष्प = आकाशके फूल।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

सर्वेषामेव भावानामसंहरणिरेव भवेत्; सदुच्छेदे वा संविदादीनामप्युच्छेदः स्यात्। तथा केवलां स्थितिमुपगच्छन्त्या मृत्तिकाया व्यतिरेकाक्रान्तस्थित्यन्वयाभावादस्थानिरेव भवेत्, क्षणिक-नित्यत्वमेव वा। तत्र मृत्तिकाया अस्थानौ सर्वेषामेव भावानामस्थानिरेव भवेत्; क्षणिकनित्यत्वे वा चित्तक्षणानामपि नित्यत्वं स्यात्। तत उत्तरोत्तरव्यतिरेकाणां सर्गेण पूर्वपूर्वव्यतिरेकाणां संहारेणान्वयस्यावस्थानेनाविनाभूतमुद्योतमाननिर्विघ्नत्रैलक्षण्यलांछनं द्रव्य-मवश्यमनुमन्तव्यम्॥१००॥

मृत्पिण्डाभावस्य इव। उप्पादो वि य भंगो ण विणा दव्वेण अत्थेण परमात्मरुचिरूपसम्यक्त्व-स्योत्पादस्तद्विपरीतमिथ्यात्वस्य भङ्गो वा नास्ति। कं विना। तदुभयाधारभूतपरमात्मरूपद्रव्यपदार्थं विना। कस्मात्। द्रव्याभावे व्ययोत्पादाभावान्मृत्तिकाद्रव्याभावे घटोत्पादमृत्पिण्डभङ्गाभाववदिति। यथा सम्यक्त्वमिथ्यात्वपर्यायद्वये परस्परसापेक्षमुत्पादादित्रयं दर्शितं तथा सर्वद्रव्यपर्यायेषु द्रष्टव्य-

---

ही न होगा, (अर्थात् जैसे मृत्तिकापिण्डका संहार नहीं होगा उसीप्रकार विश्वके किसी भी द्रव्यमें किसी भावका संहार ही नहीं होगा,–यह दोष आयगा); अथवा (२) यदि सत्का उच्छेद होगा तो चैतन्य इत्यादिका भी उच्छेद हो जायगा, (अर्थात् समस्त द्रव्योंका सम्पूर्ण विनाश हो जायगा –यह दोष आयगा।)

और [१]केवल स्थिति प्राप्त करनेको जानेवाली मृत्तिकाकी, व्यतिरेकों सहित स्थितिका—अन्वयका—उससे अभाव होनेसे, स्थिति ही नहीं होगी; अथवा तो क्षणिकको ही नित्यत्व आ जायगा। वहाँ (१) यदि मृत्तिकाकी स्थिति न हो तो समस्त ही भावोंकी स्थिति नहीं होगी, (अर्थात् यदि मिट्टी ध्रुव न रहे तो मिट्टीकी ही भाँति विश्वका कोई भी द्रव्य ध्रुव नहीं रहेगा,–टिकेगा ही नहीं यह दोष आयगा।) अथवा (२) यदि क्षणिकका नित्यत्व हो तो चित्तके क्षणिक-भावोंका भी नित्यत्व होगा; (अर्थात् मनका प्रत्येक विकल्प भी त्रैकालिक ध्रुव हो जाय, –यह दोष आयगा।)

इसलिये द्रव्यको [२]उत्तर उत्तर व्यतिरेकोंके सर्गके साथ, पूर्व पूर्वके व्यतिरेकोंके संहारके साथ और अन्वयके अवस्थान (ध्रौव्य)के साथ अविनाभाववाला, जिसको निर्विघ्न (अबाधित) त्रिलक्षणतारूप [३]लांछन प्रकाशमान है ऐसा अवश्य सम्मत करना॥१००॥

---

१. केवल स्थिति = (उत्पाद और व्यय रहित) अकेला ध्रुवपना, केवल स्थितिपना; अकेला अवस्थान। [अन्वय व्यतिरेकों सहित ही होता है, इसलिये ध्रौव्य उत्पाद-व्ययसहित ही होगा, अकेला नहीं हो सकता। जैसे उत्पाद (या व्यय) द्रव्यका अंश है–समग्र द्रव्य नहीं, इसप्रकार ध्रौव्य भी द्रव्यका अंश है;–समग्र द्रव्य नहीं।]

२. उत्तर उत्तर = बाद बादके।

३. लांछन = चिह्न।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथोत्पादादीनां द्रव्यादर्थान्तरत्वं संहरति—

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।
दव्वम्हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं॥१०१॥

उत्पादस्थितिभङ्गा विद्यन्ते पर्यायेषु पर्यायाः।
द्रव्ये हि सन्ति नियतं तस्माद्द्रव्यं भवति सर्वम्॥१०१॥

उत्पादव्ययध्रौव्याणि हि पर्यायानालम्बन्ते, ते पुनः पर्याया द्रव्यमालम्बन्ते। ततः समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं, न पुनर्द्रव्यान्तरम्। द्रव्यं हि तावत्पर्यायैरालम्ब्यते, समुदायिनः समुदायात्मकत्वात्; पादपवत्। यथा हि समुदायी पादपः स्कन्धमूलशाखासमुदायात्मकः

मित्यर्थः॥१००॥ अथोत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्येण सह परस्पराधाराधेयभावत्वादन्वयद्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यमेव भवतीत्युपदिशति—उप्पादट्ठिदिभंगा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञान-रूपेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे स्वसंवेदनज्ञानविलक्षणाज्ञानपर्यायरूपेण भङ्ग, तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वा-वस्थारूपेण स्थितिरित्युक्तलक्षणास्त्रयो भङ्गाः कर्तारः। विज्जंते विद्यन्ते तिष्ठन्ति। केषु। पज्जएसु

अब, उत्पादादिका द्रव्यसे अर्थान्तरत्वको नष्ट करते हैं; (अर्थात् यह सिद्ध करते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्यसे पृथक् पदार्थ नहीं हैं) :—

अन्वयार्थ :—[**उत्पादस्थितिभङ्गाः**] उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय [**पर्यायेषु**] पर्यायोंमें [**विद्यन्ते**] वर्तते हैं; [**पर्यायाः**] पर्यायें [**नियतं**] नियमसे [**द्रव्ये हि सन्ति**] द्रव्यमें होती हैं, [**तस्मात्**] इसलिये [**सर्वं**] वह सब [**द्रव्यं भवति**] द्रव्य है॥१०१॥

टीका :—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तवमें पर्यायों का आलम्बन करते हैं, और वे पर्यायें द्रव्यका आलम्बन करती हैं, (अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायोंके आश्रयसे हैं और पर्यायें द्रव्यके आश्रयसे हैं); इसलिये यह सब एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं।

प्रथम तो द्रव्य पर्यायोंके द्वारा आलम्बित है (अर्थात् पर्यायें द्रव्याश्रित हैं), क्योंकि [१]समुदायी समुदायस्वरूप होता है; वृक्षकी भाँति। जैसे समुदायी वृक्ष स्कंध, मूल और

---

१. समुदायी = समुदायवान समुदाय (समूह) का बना हुआ। (द्रव्य समुदायी है क्योंकि पर्यायोंके समुदायस्वरूप है।)

उत्पाद तेम ज ध्रौव्य ने संहार वर्ते पर्यये,
ने पर्ययो द्रव्ये नियमथी, सर्व तेथी द्रव्य छे. १०१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

स्कन्धमूलशाखाभिरालम्बित एव प्रतिभाति, तथा समुदायि द्रव्यं पर्यायसमुदायात्मकं पर्यायैरालम्बितमेव प्रतिभाति। पर्यायास्तूत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्ब्यन्ते, उत्पादव्ययध्रौव्याणामंश-धर्मत्वात्; बीजांकुरपादपत्ववत्। यथा किलांशिनः पादपस्य बीजांकुरपादपत्व-लक्षणास्त्रयोंऽशा भंगोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति, तथांशिनो द्रव्यस्योच्छिद्यमानोत्पद्यमानावतिष्ठमानभावलक्षणास्त्रयोंऽशा भंगोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरा-लम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति। यदि पुनर्भंगोत्पादध्रौव्याणि द्रव्यस्यैवेष्यन्ते तदा समग्रमेव विप्लवते। तथा हि—भंगे तावत् क्षणभंगकटाक्षितानामेकक्षण एव सर्वद्रव्याणां संहरणाद् द्रव्यशून्यतावतारः सदुच्छेदो वा। उत्पादे तु प्रतिसमयोत्पादमुद्रितानां प्रत्येकं द्रव्याणा-

सम्यक्त्वपूर्वकनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपर्याये तावदुत्पादस्तिष्ठति स्वसंवेदनज्ञानविलक्षणाज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्यायेण ध्रौव्यं चेत्युक्तलक्षणस्वकीयस्वकीयपर्यायेषु। पज्जाया दव्वम्हि संति ते चोक्तलक्षणज्ञानाज्ञानतदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्याया हि स्फुटं द्रव्यं सन्ति। णियदं

शाखाओंका समुदायस्वरूप होनेसे स्कंध, मूल और शाखाओंसे आलम्बित ही (भासित) दिखाई देता है, इसीप्रकार समुदायी द्रव्य पर्यायोंका समुदायस्वरूप होनेसे पर्यायोंके द्वारा आलम्बित ही भासित होता है। (अर्थात् जैसे स्कंध, मूल शाखायें वृक्षाश्रित ही हैं—वृक्षसे भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं, उसीप्रकार पर्यायें द्रव्याश्रित ही हैं,—द्रव्यसे भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं।)

और पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके द्वारा आलम्बित हैं (अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायाश्रित हैं) क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशोंके धर्म हैं (-[१]अंशीके नहीं); बीज, अंकुर और वृक्षत्वकी भाँति। जैसे अंशी-वृक्षके बीज अंकुर-वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश, व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मोंसे आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं, उसीप्रकार अंशी-द्रव्यके, नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव, और अवस्थित रहनेवाला भाव;—यह तीनों अंश व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निजधर्मोंके द्वारा आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं। किन्तु यदि (१) भंग, (२) उत्पाद और (३) ध्रौव्यको (अंशीका न मानकर) द्रव्यका ही माना जाय तो सारा [२]विप्लव को प्राप्त होगा। यथा-(१) पहले, यदि द्रव्यका ही भंग माना जाय तो [३]क्षणभंगसे लक्षित समस्त द्रव्योंका एक क्षणमें ही संहार हो जानेसे द्रव्यशून्यता आ जायगी, अथवा सत्का उच्छेद हो जायगा। (२) यदि द्रव्यका उत्पाद माना जाय तो समय-समय पर होनेवाले उत्पादके द्वारा चिह्नित ऐसे द्रव्योंको प्रत्येकको अनन्तता आ जायगी। (अर्थात् समय-

१. अंशी = अंशोंवाला; अंशोंका बना हुआ। (द्रव्य अंशी है।)

२. विप्लव = अंधाधुंधी = उथलपुथल; घोटाला; विरोध।

३. क्षण = विनाश जिनका लक्षण हो ऐसे।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मानन्त्यमसदुत्पादो वा। ध्रौव्ये तु क्रमभुवां भावानामभावाद् द्रव्यस्याभावः क्षणिकत्वं वा। अत उत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्ब्यन्तां पर्यायाः पर्यायैश्च द्रव्यमालम्ब्यन्तां, येन समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं भवति॥१०१॥

अथोत्पादादीनां क्षणभेदमुदस्य द्रव्यत्वं द्योतयति—

समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं।
एक्कम्हि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं॥१०२॥

निश्चितं प्रदेशाभेदेऽपि स्वकीयस्वकीयसंज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन। **तम्हा दव्वं हवदि सव्वं** यतो निश्चयाधाराधेयभावेन तिष्ठन्त्युत्पादादयस्तस्मात्कारणादुत्पादादित्रयं स्वसंवेदनज्ञानादिपर्यायत्रयं चान्वय-

---

समय पर होनेवाला उत्पाद जिसका चिह्न हो ऐसा प्रत्येक द्रव्य अनंत द्रव्यत्वको प्राप्त हो जायगा) अथवा असत्का उत्पाद हो जायगा; (३) यदि द्रव्यका ही ध्रौव्य माना जाय तो क्रमशः होनेवाले भावोंके अभावके कारण द्रव्यका अभाव आयगा, अथवा क्षणिकपना होगा।

इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके द्वारा पर्यायें आलम्बित हों, और पर्यायोंके द्वारा द्रव्य आलम्बित हो, कि जिससे यह सब एक ही द्रव्य है।

भावार्थ :—बीज, अंकुर और वृक्षत्व, यह वृक्षके अंश हैं। बीजका नाश, अंकुरका उत्पाद और वृक्षत्वका ध्रौव्य–तीनों एक ही साथ होते हैं। इसप्रकार नाश बीजके आश्रित है, उत्पाद अंकुरके आश्रित है, और ध्रौव्य वृक्षत्वके आश्रित है; नाश, उत्पाद और ध्रौव्य बीज अंकुर और वृक्षत्वसे भिन्न पदार्थरूप नहीं है। तथा बीज, अंकुर और वृक्षत्व भी वृक्षसे भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। इसलिये यह सब एक वृक्ष ही हैं। इसीप्रकार नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और ध्रौव्य भाव सब द्रव्यके अंश हैं। नष्ट होते हुये भावका नाश, उत्पन्न होते हुये भावका उत्पाद और स्थायी भावका ध्रौव्य एक ही साथ है। इसप्रकार नाश नष्ट होते भावके आश्रित है, उत्पाद उत्पन्न होते भावके आश्रित है और ध्रौव्य स्थायी भावके आश्रित है। नाश, उत्पाद और ध्रौव्य उन भावोंसे भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। और वे भाव भी द्रव्यसे भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। इसलिये यह सब, एक द्रव्य ही हैं॥१०१॥

अब, उत्पादादिका क्षणभेद [१]निरस्त करके वे द्रव्य हैं यह समझाते हैं :—

---

१. निरस्त करके = दूर करके; नष्ट करके; खण्डित करके; निराकृत करके।

उत्पाद–ध्रौव्य–विनाशसंज्ञित अर्थ सह समवेत छे
अेक ज समयमां द्रव्य निश्चय, तेथी अे त्रिक द्रव्य छे. १०२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

समवेतं खलु द्रव्यं संभवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः।
एकस्मिन् चैव समये तस्माद्द्रव्यं खलु तत्त्रितयम् ॥१०२॥

इह हि यो नाम वस्तुनो जन्मक्षणः स जन्मनैव व्याप्तत्वात् स्थितिक्षणो नाशक्षणश्च न भवति; यश्च स्थितिक्षणः स खलूभयोरन्तरालदुर्ललितत्वाज्जन्मक्षणो नाशक्षणश्च न भवति; यश्च नाशक्षणः स तूत्पद्यावस्थाय च नश्यतो जन्मक्षणः स्थितिक्षणश्च न भवति; —इत्युत्पादादीनां वितर्क्यमाणः क्षणभेदो हृदयभूमिमवतरति। अवतरत्येवं यदि द्रव्यमात्मनैवोत्पद्यते आत्मनैवावतिष्ठते आत्मनैव नश्यतीत्यभ्युपगम्यते। तत्तु नाभ्युपगतम्। पर्यायाणा-

द्रव्यार्थिकनयेन सर्वं द्रव्यं भवति। पूर्वोक्तोत्पादादित्रयस्य तथैव स्वसंवेदनज्ञानादिपर्यायत्रयस्य चानुगताकारेणान्वयरूपेण यदाधारभूतं तदन्वयद्रव्यं भण्यते, तद्विषयो यस्य स भवत्यन्वयद्रव्यार्थिकनयः। यथेदं ज्ञानाज्ञानपर्यायद्वये भङ्गत्रयं व्याख्यातं तथापि सर्वद्रव्यपर्यायेषु यथासंभवं ज्ञातव्यमित्यभिप्रायः॥१०१॥ अथोत्पादादीनां पुनरपि प्रकारान्तरेण द्रव्येण सहाभेदं समर्थयति समयभेदं च निराकरोति—समवेदं खलु दव्वं समवेतमेकीभूतमभिन्नं भवति खलु स्फुटम्। किम्। आत्मद्रव्यम्। कैः सह। संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं सम्यक्त्वज्ञानपूर्वकनिश्चलनिर्विकारनिजात्मानुभूतिलक्षणवीतरागचारित्रपर्यायेणोत्पादः तथैव रागादिपरद्रव्यैकत्वपरिणतिरूपचारित्रपर्यायेण नाशस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्था-

अन्वयार्थ :—[द्रव्यं] द्रव्य [एकस्मिन् च एव समये] एक ही समयमें [संभवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः] उत्पाद, स्थिति और नाश नामक [१]अर्थोंके साथ [खलु] वास्तवमें [समवेतं] [२]समवेत (एकमेक) है; [तस्मात्] इसलिये [तत् त्रितयं] यह [३]त्रितय [खलु] वास्तवमें [द्रव्यं] द्रव्य है॥१०२॥

टीका :—(प्रथम शंका उपस्थित की जाती है :—) यहाँ, (विश्वमें) वस्तुका जो जन्मक्षण है वह जन्मसे ही व्याप्त होनेसे स्थितिक्षण और नाशक्षण नहीं है, (-वह पृथक् ही होता है); जो स्थितिक्षण हो वह दोनोंके अन्तरालमें (उत्पादक्षण और नाशक्षणके बीच) दृढ़तया रहता है, इसलिये (वह) जन्मक्षण और नाशक्षण नहीं है; और जो नाशक्षण है वह,-वस्तु उत्पन्न होकर और स्थिर रहकर फिर नाशको प्राप्त होती है इसलिये,-जन्मक्षण और स्थितिक्षण नहीं है;—इसप्रकार तर्क पूर्वक विचार करने पर उत्पादादिका क्षणभेद हृदयभूमिमें उतरता है (अर्थात् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका समय

१. अर्थ = पदार्थ (८७ वीं गाथामें समझाया गया है, तदनुसार पर्याय भी अर्थ है।)

२. समवेत = समवायवाला, तादात्म्यसहित जुड़ा हुवा, एकमेक।

३. त्रितय = तीनका समुदाय। (उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, इन तीनोंका समुदाय वास्तवमें द्रव्य ही है।)

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मेवोत्पादादयः, कुतः क्षणभेदः। तथा हि—यथा कुलालदण्डचक्रचीवरारोप्यमाणसंस्कार-सन्निधौ य एव वर्धमानस्य जन्मक्षणः, स एव मृत्पिण्डस्य नाशक्षणः, स एव च कोटिद्वयाधि-रूढस्य मृत्तिकात्वस्य स्थितिक्षणः, तथा अन्तरंगबहिरंगसाधनारोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एवोत्तरपर्यायस्य जन्मक्षणः, स एव प्राक्तनपर्यायस्य नाशक्षणः, स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य द्रव्यत्वस्य स्थितिक्षणः। यथा च वर्धमानमृत्पिण्डमृत्तिकात्वेषु प्रत्येकवर्तीन्युत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिस्वभावस्पर्शिन्यां मृत्तिकायां सामस्त्येनैकसमय एवावलोक्यन्ते, तथा उत्तरप्राक्तन-

रूपपर्यायेण स्थितिरित्युक्तलक्षणसंज्ञित्वोत्पादव्ययध्रौव्यैः सह। तर्हि किं बौद्धमतवद्भिन्नभिन्नसमये त्रयं भविष्यति। नैवम्। एक्कम्मि चेव समये अङ्गुलिद्रव्यस्य वक्रपर्यायवत्संसारिजीवस्य मरणकाले ऋजुगतिवत् क्षीणकषायचरमसमये केवलज्ञानोत्पत्तिवदयोगिचरमसमये मोक्षवच्चेत्येकस्मिन्समय एव। तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेणैकसमये भङ्गत्रयेण परिणमति तस्मात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशा-नामभेदात्त्रयमपि खु स्फुटं द्रव्यं भवति। यथेदं चारित्राचारित्रपर्यायद्वये भङ्गत्रयमभेदेन दर्शितं तथा

भिन्न-भिन्न होता है, एक नहीं होता,—ऐसी बात हृदयमें जमती है।)

(यहाँ उपरोक्त शंकाका समाधान किया जाता है :—इसप्रकार उत्पादादिका क्षणभेद हृदयभूमिमें तभी उतर सकता है जब यह माना जाय कि 'द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही ध्रुव रहता है और स्वयं ही नाशको प्राप्त होता है!' किन्तु ऐसा तो माना नहीं गया है; (क्योंकि यह स्वीकार और सिद्ध किया गया है कि) पर्यायोंके ही उत्पादादि हैं; (तब फिर) वहाँ क्षणभेद-कहाँसे हो सकता है? यह समझते हैं :—

जैसे कुम्हार, दण्ड, चक्र और डोरी द्वारा आरोपित किये जानेवाले संस्कारकी उपस्थितिमें जो रामपात्रका जन्मक्षण होता है वही मृत्तिकापिण्डका नाशक्षण होता है, और वही दोनों [१]कोटियोंमें रहनेवाला मिट्टीपनका स्थितिक्षण होता है; इसीप्रकार अन्तरंग और बहिरंग साधनों द्वारा किये जानेवाले संस्कारोंकी उपस्थितिमें, जो उत्तर पर्यायका जन्मक्षण होता है वही पूर्व पर्यायका नाश क्षण होता है, और वही दोनों कोटियोंमें रहनेवाले द्रव्यत्वका स्थितिक्षण होता है।

और जैसे रामपात्रमें, मृत्तिकापिण्डमें और मिट्टीपनमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येक रूपमें (प्रत्येक पृथक् पृथक्) वर्तते होने पर भी त्रिस्वभावस्पर्शी मृत्तिकामें वे सम्पूर्णतया (सभी एक साथ) एक समयमें ही देखे जाते हैं; इसीप्रकार उत्तर पर्यायमें, पूर्व पर्यायमें और द्रव्यत्वमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येकतया (एक-एक) प्रवर्तमान होने पर भी

१. कोटि = प्रकार (मिट्टीपन तो पिण्डरूप तथा रामपात्ररूप–दोनों प्रकारोंमें विद्यमान है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पर्यायद्रव्यत्वेषु प्रत्येकवर्तीन्यप्युत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिस्वभावस्पर्शिनि द्रव्ये सामस्त्येनैक-समय एवावलोक्यन्ते। यथैव च वर्धमानपिण्डमृत्तिकात्ववर्तीन्युत्पादव्ययध्रौव्याणि मृत्तिकैव, न वस्त्वन्तरं; तथैवोत्तरप्राक्तनपर्यायद्रव्यत्ववर्तीन्यप्युत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्यमेव, न खल्वर्थान्तरम् ॥१०२॥

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्यनेकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति—

पाडुब्भवदि य अण्णो पज्जाओ पज्जओ वयदि अण्णो।
दव्वस्स तं पि दव्वं णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं॥१०३॥

प्रादुर्भवति चान्यः पर्यायः पर्यायो व्येति अन्यः।
द्रव्यस्य तदपि द्रव्यं नैव प्रणष्टं नोत्पन्नम्॥१०३॥

सर्वद्रव्यपर्यायेष्ववबोद्धव्यमित्यर्थः॥१०२॥ एवमुत्पादव्ययध्रौव्यरूपलक्षणव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण तृतीयस्थलं गतम्। अथ द्रव्यपर्यायेणोत्पादव्ययध्रौव्याणि दर्शयति—**पाडुब्भवदि य** प्रादुर्भवति च जायते। **अण्णो** अन्यः कश्चिदपूर्वानन्तज्ञानसुखादिगुणास्पदभूतः शाश्वतिकः। स कः। **पज्जाओ**

---

[१]त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्यमें वे संपूर्णतया (तीनों एकसाथ) एक समयमें ही देखे जाते हैं।

और जैसे रामपात्र, मृत्तिकापिण्ड तथा मिट्टीपनमें प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य मिट्टी ही हैं, अन्य वस्तु नहीं; उसीप्रकार उत्तर पर्याय, पूर्व पर्याय, और द्रव्यत्वमें प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य द्रव्य ही हैं, अन्य पदार्थ नहीं॥१०२॥

अब, द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको [२]अनेकद्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**द्रव्यस्य**] द्रव्यकी [**अन्यः पर्यायः**] अन्य पर्याय [**प्रादुर्भवति**] उत्पन्न होती है [**च**] और [**अन्यः पर्यायः**] कोई अन्य पर्याय [**व्येति**] नष्ट होती है; [**तदपि**] फिर भी [**द्रव्यं**] द्रव्य [**प्रणष्टं न एव**] न तो नष्ट है, [**उत्पन्नं न**] न उत्पन्न है (-वह ध्रुव है।)॥१०३॥

---

१. त्रिस्वभावस्पर्शी = तीनों स्वभावोंको स्पर्श करनेवाला। (द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य–इन तीनों स्वभावोंको धारण करता है।)

२. अनेकद्रव्यपर्याय = एकसे अधिक द्रव्योंके संयोगसे होनेवाली पर्याय।

उपजे दरवनो अन्य पर्यय, अन्य को विणसे वळी,
पण द्रव्य तो नथी नष्ट के उत्पन्न द्रव्य नथी तहीं. १०३.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इह हि यथा किलैकस्त्र्यणुकः समानजातीयोऽनेकद्रव्यपर्यायो विनश्यत्यन्यश्चतुरणुकः प्रजायते, ते तु त्रयश्चत्वारो वा पुद्गला अविनष्टानुत्पन्ना एवावतिष्ठन्ते, तथा सर्वेऽपि समानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च, समानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते। यथा चैको मनुष्यत्वलक्षणोऽसमानजातीयो द्रव्यपर्यायो विनश्यत्यन्यस्त्रिदशत्वलक्षणः प्रजायते, तौ च जीवपुद्गलौ अविनष्टानुत्पन्नावेवावतिष्ठेते, तथा सर्वेऽप्यसमानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च, असमानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते। एवमात्मना ध्रुवाणि द्रव्यपर्यायद्वारेणोत्पादव्ययीभूतान्युत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्याणि भवन्ति॥१०३॥

परमात्मावाप्तिरूपः स्वभावद्रव्यपर्यायः। पञ्चओ वयदि अण्णो पर्यायो व्येति विनश्यति। कथंभूतः। अन्यः पूर्वोक्तमोक्षपर्यायाद्भिन्नो निश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपस्यैव मोक्षपर्यायस्योपादानकारणभूतः। कस्य संबन्धी पर्यायः। दव्वस्स परमात्मद्रव्यस्य। तं पि दव्वं तदपि परमात्मद्रव्यं णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नैव नष्टं न चोत्पन्नम्। अथवा संसारिजीवापेक्षया देवादिरूपो विभावद्रव्यपर्यायो जायते मनुष्यादिरूपो विनश्यति तदेव जीवद्रव्यं निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टं, पुद्गलद्रव्यं वा द्व्यणुकादिस्कन्धरूपस्वजातीयविभावद्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेऽपि निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टमिति। ततः स्थितं यतः कारणादुत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण द्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेऽपि द्रव्यस्य

टीका :—यहाँ (विश्वमें) जैसे एक त्रि-अणुक समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है और दूसरी [१]चतुरणुक (समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है; परन्तु वे तीन या चार पुद्गल (परमाणु) तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं (-ध्रुव हैं); इसीप्रकार सभी समानजातीय द्रव्यपर्यायें विनष्ट होती हैं और उत्पन्न होती हैं, किन्तु समानजातीय द्रव्य तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं (-ध्रुव हैं)।

और, जैसे एक मनुष्यत्वस्वरूप असमानजातीय द्रव्य-पर्याय विनष्ट होती है और दूसरी देवत्वस्वरूप (असमानजातीय द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है, परन्तु वह जीव और पुद्गल तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं, इसीप्रकार सभी असमानजातीय द्रव्य-पर्यायें विनष्ट हो जाती हैं और उत्पन्न होती हैं, परन्तु असमानजातीय द्रव्य तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं।

इस प्रकार अपनेसे ([२]द्रव्यरूपसे) ध्रुव और द्रव्यपर्यायों द्वारा उत्पाद-व्ययरूप ऐसे द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं॥१०३॥

---

१. चतुरणुक = चार अणुओंका (परमाणुओंका) बना हुआ स्कंध।

२. 'द्रव्य' शब्द मुख्यतया दो अर्थोंमें प्रयुक्त होता है : (१) एक तो सामान्य-विशेषके पिण्डको अर्थात् वस्तुको द्रव्य कहा जाता है; जैसे-'द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है'; (२) दूसरे-वस्तुके सामान्य अंशको भी द्रव्य कहा जाता है; जैसे-'द्रव्यार्थिक नय' अर्थात् सामान्यांशग्राही नय। जहाँ जो अर्थ घटित होता हो वहाँ वह अर्थ समझना चाहिये।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति—

परिणमदि सयं दव्वं गुणदो य गुणंतरं सदविसिट्ठं।
तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेव त्ति॥१०४॥

परिणमति स्वयं द्रव्यं गुणतश्च गुणान्तरं सदविशिष्टम्।
तस्माद्गुणपर्याया भणिताः पुनः द्रव्यमेवेति॥१०४॥

एकद्रव्यपर्याया हि गुणपर्यायाः, गुणपर्यायाणामेकद्रव्यत्वात्। एकद्रव्यत्वं हि तेषां सहकारफलवत्। यथा किल सहकारफलं स्वयमेव हरितभावात् पाण्डुभावं परिणम-त्पूर्वोत्तरप्रवृत्तहरितापाण्डुभावाभ्यामनुभूतात्मसत्ताकं हरितपाण्डुभावाभ्यां सममविशिष्टसत्ताक-

---

विनाशो नास्ति, ततः कारणाद्द्रव्यपर्याया अपि द्रव्यलक्षणं भवन्तीत्यभिप्रायः॥१०३॥ अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याणि गुणपर्यायमुख्यत्वेन प्रतिपादयति—**परिणमदि सयं दव्वं** परिणमति स्वयं स्वयमेवोपादानकारणभूतं जीवद्रव्यं कर्तृ। **कं** परिणमति। **गुणदो य गुणंतरं** निरुपरागस्वसंवेदनज्ञान-

---

अब, द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एकद्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**सदविशिष्टं**] सत्तापेक्षासे अविशिष्टरूपसे, [**द्रव्यं स्वयं**] द्रव्य स्वयं ही [**गुणतः च गुणान्तरं**] गुणसे गुणान्तररूप [**परिणमते**] परिणमित होता है, अर्थात् द्रव्य स्वयं ही एक गुणपर्यायमेंसे अन्य गुणपर्यायरूप परिणमित होता है, और उसकी सत्ता गुणपर्यायोंकी सत्ताके साथ अविशिष्ट—अभिन्न—एक ही रहती है), [**तस्मात् पुनः**] और उनसे [**गुणपर्यायाः**] गुणपर्यायें [**द्रव्यम् एव इति भणिताः**] द्रव्य ही कही गई हैं॥१०४॥

टीका :—गुणपर्यायें एक द्रव्यपर्यायें हैं, क्योंकि गुणपर्यायोंको एक द्रव्यपना है, (अर्थात् गुणपर्यायें एकद्रव्यकी पर्यायें हैं, क्योंकि वे एक ही द्रव्य हैं—भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं।) उनका एकद्रव्यत्व आम्रफलकी भाँति है। जैसे-आम्रफल स्वयं ही हरितभावमेंसे पीतभावरूप परिणमित होता हुआ, प्रथम और पश्चात् प्रवर्तमान हरितभाव और पीतभावके द्वारा अपनी सत्ताका अनुभव करता है, इसलिये हरितभाव और पीतभावके साथ [१]अविशिष्ट

---

१. अविशिष्ट सत्तावाला = अभिन्न सत्तावाला; एक सत्तावाला; (आमकी सत्ता हरे और पीले भावकी सत्तासे अभिन्न है, इसलिये आम और हरितभाव तथा पीतभाव एक ही वस्तु हैं, भिन्न नहीं।)

अविशिष्टसत्त्व स्वयं दरव गुणथी गुणांतर परिणमे,
तेथी वळी द्रव्य ज कह्या छे सर्वगुणपर्यायने. १०४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

तयैकमेव वस्तु, न वस्त्वन्तरं, तथा द्रव्यं स्वयमेव पूर्वावस्थावस्थितगुणादुत्तरावस्थावस्थित-गुणं परिणमत्पूर्वोत्तरावस्थावस्थितगुणाभ्यां ताभ्यामनुभूतात्मसत्ताकं पूर्वोत्तरावस्थावस्थित-गुणाभ्यां सममविशिष्टसत्ताकतयैकमेव द्रव्यं, न द्रव्यान्तरम्। यथैव चोत्पद्यमानं पाण्डुभावेन व्ययमानं हरितभावेनावतिष्ठमानं सहकारफलत्वेनोत्पादव्ययध्रौव्याण्येकवस्तुपर्यायद्वारेण सहकारफलं, तथैवोत्पद्यमानमुत्तरावस्थावस्थितगुणेन व्ययमानं पूर्वावस्थावस्थितगुणेनावतिष्ठमानं द्रव्यत्वगुणेनोत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण द्रव्यं भवति॥१०४॥

गुणात् केवलज्ञानोत्पत्तिबीजभूतात्सकाशात्सकलविमलकेवलज्ञानगुणान्तरम्। कथंभूतं सत्परिणमति। सदविसिट्ठं स्वकीयस्वरूपत्वाच्चिद्रूपास्तित्वादविशिष्टमभिन्नम्। तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेव त्ति तस्मात् कारणान्न केवलं पूर्वसूत्रोदिताः द्रव्यपर्यायाः द्रव्यं भवन्ति, गुणरूपपर्याया गुणपर्याया भण्यन्ते तेऽपि द्रव्यमेव भवन्ति। अथवा संसारिजीवद्रव्यं मतिस्मृत्यादिविभावगुणं त्यक्त्वा श्रुतज्ञानादि-

---

सत्तावाला होनेसे एक ही वस्तु है, अन्य वस्तु नहीं; इसीप्रकार द्रव्य स्वयं ही [१]पूर्व अवस्थामें अवस्थित गुणमेंसे उत्तर अवस्थामें अवस्थित गुणरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर अवस्थामें अवस्थित उन गुणोंके द्वारा अपनी सत्ताका अनुभव करता है, इसलिये पूर्व और उत्तर अवस्थामें अवस्थित गुणोंके साथ अवशिष्ट सत्तावाला होनेसे एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं।

(आमके दृष्टान्तकी भाँति, द्रव्य स्वयं ही गुणकी पूर्व पर्यायमेंसे उत्तरपर्यायरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर गुणपर्यायोंके द्वारा अपने अस्तित्वका अनुभव करता है, इसलिये पूर्व और उत्तर गुणपर्यायोंके साथ अभिन्न अस्तित्व होनेसे एक ही द्रव्य है द्रव्यान्तर नहीं; अर्थात् वे वे गुणपर्यायें और द्रव्य एक ही द्रव्यरूप हैं, भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं हैं।)

और, जैसे पीतभावसे उत्पन्न होता हरितभावसे नष्ट होता और आम्रफलरूपसे स्थिर रहता होनेसे आम्रफल एक वस्तुकी पर्यायों द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है, उसीप्रकार उत्तर अवस्थामें अवस्थित गुणसे उत्पन्न, पूर्व अवस्थामें अवस्थित गुणसे नष्ट और द्रव्यत्व गुणसे स्थिर होनेसे, द्रव्य एकद्रव्यपर्यायके द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

भावार्थ :—इससे पूर्वकी गाथामें द्रव्यपर्यायके द्वारा (अनेक द्रव्यपर्यायोंके द्वारा) द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये थे। इस गाथामें गुणपर्यायके द्वारा (एक-द्रव्यपर्यायके द्वारा) द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये हैं॥१०४॥

---

१. पूर्व अवस्थामें अवास्थित गुण = पहलेकी अवस्थामें रहा हुआ गुण; गुणकी पूर्व पर्याय; पूर्व गुणपर्याय।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ सत्ताद्रव्ययोरनर्थान्तरत्वे युक्तिमुपन्यस्यति—

ण हवदि जदि सद्दव्वं असद्धुवं हवदि तं कधं दव्वं।
हवदि पुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता॥१०५॥

न भवति यदि सद्द्रव्यमसद्ध्रुवं भवति तत्कथं द्रव्यम्।
भवति पुनरन्यद्वा तस्माद्द्रव्यं स्वयं सत्ता॥१०५॥

यदि हि द्रव्यं स्वरूपत एव सन्न स्यात्तदा द्वितयी गतिः असद्वा भवति, सत्तातः पृथग्वा भवति। तत्रासद्भवद् ध्रौव्यस्यासंभवादात्मानमधारयद् द्रव्यमेवास्तं गच्छेत्; सत्तातः

विभावगुणान्तरं परिणमति, पुद्गलद्रव्यं वा पूर्वोक्तशुक्लवर्णादिगुणं त्यक्त्वा रक्तादिगुणान्तरं परिणमति, हरितगुणं त्यक्त्वा पाण्डुरगुणान्तरमाम्रफलमिवेति भावार्थः॥१०४॥ एवं स्वभावविभावरूपा द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च नयविभागेन द्रव्यलक्षणं भवन्ति इति कथनमुख्यतया गाथाद्वयेन चतुर्थस्थलं गतम्। अथ

अब, सत्ता और द्रव्य अर्थान्तर (भिन्न पदार्थ, अन्य पदार्थ) नहीं होनेके सम्बन्धमें युक्ति उपस्थित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यदि**] यदि [**द्रव्यं**] द्रव्य [**सत् न भवति**] (स्वरूपसे ही) सत् न हो तो—(१) [**ध्रुवं असत् भवति**] निश्चयसे वह असत् होगा; [**तत् कथं द्रव्यं**] (जो असत् होगा) वह द्रव्य कैसे हो सकता है? [**पुनः वा**] अथवा (यदि असत् न हो) तो (२) [**अन्यत् भवति**] वह सत्तासे अन्य (पृथक्) हो! (सो भी कैसे हो सकता है?) [**तस्मात्**] इसलिये [**द्रव्यं स्वयं**] द्रव्य स्वयं ही [**सत्ता**] है॥१०५॥

टीका :—यदि द्रव्य स्वरूपसे ही [१]सत् न हो तो दूसरी गति यह हो कि वह—(१) [२]असत् होगा, अथवा (२) सत्तासे पृथक् होगा। वहाँ, (१) यदि वह असत् होगा तो, ध्रौव्यके असंभवके कारण स्वयं स्थिर न होता हुआ द्रव्यका ही [३]अस्त हो जायगा; और

---

१. सत् = मौजूद।

२. असत् = नहीं मौजूद ऐसा।

३. अस्त = नष्ट। [जो असत् हो उसका टिकना-मौजूद रहना कैसा? इसलिये द्रव्यको असत् माननेसे, द्रव्यके अभावका प्रसंग आता है अर्थात् द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता।]

जो द्रव्य होय न सत्, टरे ज असत्, वने क्यम द्रव्य अे?
वा भिन्न ठरतुं सत्त्वथी! तेथी स्वयं ते सत्त्व छे. १०५.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पृथग्भवत्सत्तामन्तरेणात्मानं धारयत्तावन्मात्रप्रयोजनां सत्तामेवास्तं गमयेत्। स्वरूपतस्तु-सद्भवद् ध्रौव्यस्य संभवादात्मानं धारयद्द्रव्यमुद्गच्छेत्; सत्तातोऽपृथग्भूत्वा चात्मानं धारयत्ता-वन्मात्रप्रयोजनां सत्तामुद्गमयेत्। ततः स्वयमेव द्रव्यं सत्त्वेनाभ्युपगन्तव्यं, भावभाव-वतोरपृथक्त्वेनानन्यत्वात् ॥१०५॥

सत्ताद्रव्ययोरभेदविषये पुनरपि प्रकारान्तरेण युक्तिं दर्शयति—**ण हवदि जदि सद्दव्वं** परमचैतन्यप्रकाशरूपेण स्वरूपेण स्वरूपसत्तास्तित्वगुणेन यदि चेत् सन्न भवति। किं कर्तृ। परमात्मद्रव्यं। तदा **असद्धुवं होदि** असदविद्यमानं भवति ध्रुवं निश्चितम्। अविद्यमानं सत् तं कथं दव्वं तत्परमात्मद्रव्यं कथं भवति, किंतु नैव। स च प्रत्यक्षविरोधः। कस्मात्। स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यमानत्वात्। अथाविचारितरमणीयन्यायेन सत्तागुणाभावेऽप्यस्तीति चेत्, तत्र विचार्यते–यदि केवलज्ञानदर्शनगुणाविनाभूतस्वकीयस्वरूपास्ति-त्वात्पृथग्भूता तिष्ठति तदा स्वरूपास्तित्वं नास्ति, स्वरूपास्तित्वाभावे द्रव्यमपि नास्ति। अथवा स्वकीयस्वरूपास्तित्वात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशरूपेणाभिन्नं तिष्ठति तदा संमतमेव। अत्रावसरे सौगतमतानुसारी कश्चिदाह–सिद्धपर्यायसत्तारूपेण शुद्धात्मद्रव्यमुपचारेणास्ति, न च मुख्यवृत्त्येति। परिहारमाह—सिद्धपर्यायोपादानकारणभूतपरमात्मद्रव्याभावे सिद्धपर्यायसत्तैव न संभवति, वृक्षाभावे फलमिव। अत्र प्रस्तावे नैयायिकमतानुसारी कश्चिदाह—**हवदि पुणो अण्णं वा** तत्परमात्मद्रव्यं भवति पुनः किंतु सत्तायाः सकाशादन्यद्भिन्नं भवति पश्चात्सत्तासमवायात्सद्भवति। आचार्याः परिहारमाहुः—सत्तासमवायात्पूर्वं द्रव्यं सदसद्वा, यदि सत्तदा सत्तासमवायो वृथा, पूर्वमेवास्तित्वं तिष्ठति; अथासत्तर्हि

---

(२) यदि सत्तासे पृथक् हो तो सत्ताके बिना भी स्वयं रहता हुआ, इतना ही मात्र जिसका प्रयोजन है ऐसी [१]सत्ताको ही अस्त कर देगा।

किन्तु यदि द्रव्य स्वरूपसे ही सत् हो तो—(१) ध्रौव्यके सद्भावके कारण स्वयं स्थिर रहता हुआ, द्रव्य उदित होता है, (अर्थात् सिद्ध होता है); और (२) सत्तासे अपृथक् रहकर स्वयं स्थिर (-विद्यमान) रहता हुआ, इतना ही मात्र जिसका प्रयोजन है ऐसी सत्ताको उदित (सिद्ध) करता है।

इसलिये द्रव्य स्वयं ही सत्त्व (सत्ता) है ऐसा स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि भाव और [२]भाववान्का अपृथक्त्व द्वारा अनन्यत्व है॥१०५॥

---

१. सत्ताका कार्य इतना ही है कि वह द्रव्यको विद्यमान रखे। यदि द्रव्य सत्तासे भिन्न रहकर भी स्थिर रहे तो फिर सत्ताका प्रयोजन ही नहीं रहता, अर्थात् सत्ताके अभावका प्रसंग आ जायगा।

२. भाववान् = भाववाला। [द्रव्य भाववाला है और सत्ता उसका भाव है। वे अपृथक् हैं, इस अपेक्षासे अनन्य हैं। पृथक्त्व और अन्यत्वका भेद जिस अपेक्षासे है उस अपेक्षाको लेकर विशेषार्थ आगामी गाथामें कहेंगे, उन्हें यहाँ नहीं लगाना चाहिये, किन्तु यहाँ अनन्यत्वको अपृथक्त्वके अर्थमें ही समझना चाहिये।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ पृथक्त्वान्यत्वलक्षणमुन्मुद्रयति—

पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स।
अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं होदि कधमेगं॥१०६॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं पृथक्त्वमिति शासनं हि वीरस्य।
अन्यत्वमतद्भावो न तद्भवत् भवति कथमेकम्॥१०६॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं हि पृथक्त्वस्य लक्षणम्। तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्न संभाव्यते, गुणगुणिनोः प्रविभक्तप्रदेशत्वाभावात्, शुक्लोत्तरीयवत्। तथा हि—यथा य एव शुक्लस्य गुणस्य प्रदेशास्त

खपुष्पवदविद्यमानद्रव्येण सह कथं सत्ता समवायं करोति, करोतीति चेत्तर्हि खपुष्पेणापि सह सत्ता कर्तृ समवायं करोतु, न च तथा। तम्हा दव्वं सयं सत्ता तस्मादभेदनयेन शुद्धचैतन्यस्वरूपसत्तैव परमात्मद्रव्यं भवतीति। यथेदं परमात्मद्रव्येण सह शुद्धचेतनासत्तायाः अभेदव्याख्यानं कृतं तथा सर्वेषां चेतनाचेतनद्रव्याणां स्वकीयस्वकीयसत्तया सहाभेदव्याख्यानं कर्तव्यमित्यभिप्रायः॥१०५॥

अथ पृथक्त्वलक्षणं किमन्यत्वलक्षणं च किमिति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति—**पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तं** पृथक्त्वं भवति पृथक्त्वाभिधानो भेदो भवति। किंविशिष्टम्। प्रकर्षेण विभक्तप्रदेशत्वं भिन्नप्रदेशत्वम्। किंवत्। दण्डदण्डिवत्। इत्थंभूतं पृथक्त्वं शुद्धात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोर्न घटते।

अब, पृथक्त्वका और अन्यत्वका लक्षण स्पष्ट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**प्रविभक्तप्रदेशत्वं**] विभक्तप्रदेशत्व वह [**पृथक्त्वं**] पृथक्त्व है, [**इति हि**] ऐसा [**वीरस्य शासनं**] वीरका उपदेश है। [**अतद्भावः**] अतद्भाव (उसरूप न होना) वह [**अन्यत्व**] अन्यत्व है। [**न तत् भवत्**] जो उसरूप न हो [**कथं एकम् भवति**] वह एक कैसे हो सकता है? (कथंचित् सत्ता द्रव्यरूप नहीं है और द्रव्य सत्तारूप नहीं है, इसलिये वे एक नहीं हैं।)॥१०६॥

टीका :—विभक्त प्रदेशत्व (भिन्न प्रदेशत्व) पृथक्त्वका लक्षण है। वह तो सत्ता और द्रव्यमें सम्भव नहीं है, क्योंकि गुण और गुणीमें विभक्तप्रदेशत्वका अभाव होता है—शुक्लत्व और वस्त्रकी भाँति। वह इसप्रकार है कि जैसे–जो शुक्लत्वके–गुणके–प्रदेश हैं वे

जिन वीरनो उपदेश अेम—पृथक्त्व भिन्नप्रदेशता,
अन्यत्व जाण अतत्पणुं; नहि ते-पणे ते अेक क्यां? १०६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एवोत्तरीयस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, तथा य एव सत्ताया गुणस्य प्रदेशास्त एव द्रव्यस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः। एवमपि तयोरन्यत्वमस्ति तल्लक्षणसद्भावात्। अतद्भावो ह्यन्यत्वस्य लक्षणं, तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्विद्यत एव, गुणगुणिनोस्तद्भावस्याभावात्, शुक्लोत्तरीयवदेव। तथा हि—यथा यः किलैकचक्षुरिन्द्रियविषयमापद्यमानः समस्तेतरेन्द्रिय-ग्रामगोचरमतिक्रान्तः शुक्लो गुणो भवति, न खलु तदखिलेन्द्रियग्रामगोचरीभूतमुत्तरीयं भवति, यच्च किलाखिलेन्द्रियग्रामगोचरीभूतमुत्तरीयं भवति, न खलु स एकचक्षुरिन्द्रियविषयमापद्यमानः समस्तेतरेन्द्रियग्रामगोचरमतिक्रान्तः शुक्लो गुणो भवतीति तयोस्तद्भावस्याभावः; तथा या

कस्माद्धेतोः। भिन्नप्रदेशाभावात्। कयोरिव। शुक्लवस्त्रशुक्लगुणयोरिव। **इदि सासणं हि वीरस्स** इति शासनमुपदेश आज्ञेति। कस्य। वीरस्य वीराभिधानान्तिमतीर्थंकरपरमदेवस्य। **अण्णत्तं** तथापि प्रदेशाभेदेऽपि मुक्तात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोरन्यत्वं भिन्नत्वं भवति। कथंभूतम्। **अतब्भावो** अतद्भावरूपं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदस्वभावम्। यथा प्रदेशरूपेणाभेदस्तथा संज्ञादिलक्षणरूपेणाप्यभेदो भवतु, को दोष इति चेत्। नैवम्। ण तब्भवं होदि तन्मुक्तात्मद्रव्यं शुद्धात्मसत्तागुणेन सह प्रदेशाभेदेऽपि

ही वस्त्रके–गुणीके–हैं, इसलिये उनमें प्रदेशभेद नहीं है; इसीप्रकार जो सत्ताके–गुणके–प्रदेश हैं वे ही द्रव्यके–गुणीके–हैं, इसलिये उनमें प्रदेशभेद नहीं है।

ऐसा होने पर भी उनमें (–सत्ता और द्रव्यमें) अन्यत्व है, क्योंकि (उनमें) अन्यत्वके लक्षणका सद्भाव है। [१]अतद्भाव अन्यत्वका लक्षण है। वह तो सत्ता और द्रव्यके है ही, क्योंकि गुण और गुणीके [२]तद्भावका अभाव होता है—शुक्लत्व और वस्त्रकी भाँति। वह इस प्रकार है कि :—जैसे एक चक्षुइन्द्रियके विषयमें आनेवाला और अन्य सब इन्द्रियोंके समूहको गोचर न होनेवाला शुक्लत्व गुण है वह समस्त इन्द्रिय समूहको गोचर होनेवाला ऐसा वस्त्र नहीं है; और जो समस्त इन्द्रियसमूहको गोचर होनेवाला वस्त्र है वह एक चक्षुइन्द्रियके विषयमें आनेवाला तथा अन्य समस्त इन्द्रियोंके समूहको गोचर न होनेवाला ऐसा शुक्लत्व गुण नहीं है, इसलिये उनके तद्भावका अभाव है; इसीप्रकार, [३]किसीके आश्रय रहनेवाली,

---

१. अतद्भाव = (कथंचित्) उसका न होना; (कथंचित्) उसरूप न होना (कथंचित्) अतद्रूपता। द्रव्य कथंचित् सत्तास्वरूपसे नहीं है और सत्ता कथंचित् द्रव्यरूपसे नहीं है, इसलिये उनके अतद्भाव है।

२. तद्भाव = उसका होना, उसरूप होना, तद्रूपता।

३. सत्ता द्रव्यके आश्रयसे रहती है, द्रव्यको किसीका आश्रय नहीं है। [जैसे घड़ेमें घी रहता है, उसीप्रकार द्रव्यमें सत्ता नहीं रहती (क्योंकि घड़ेमें और घीमें तो प्रदेशभेद है) किन्तु जैसे आममें वर्ण गंधादि हैं उसीप्रकार द्रव्यमें सत्ता है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

किलाश्रित्य वर्तिनी निर्गुणैकगुणसमुदिता विशेषणं विधायिका वृत्तिस्वरूपा च सत्ता भवति, न खलु तदनाश्रित्य वर्ति गुणवदनेकगुणसमुदितं विशेष्यं विधीयमानं वृत्तिमत्स्वरूपं च द्रव्यं भवति; यत्तु किलानाश्रित्य वर्ति गुणवदनेकगुणसमुदितं विशेष्यं विधीयमानं वृत्तिमत्स्वरूपं च द्रव्यं भवति, न खलु साश्रित्य वर्तिनी निर्गुणैकगुणसमुदिता विशेषणं विधायिका वृत्तिस्वरूपा च सत्ता भवतीति तयोस्तद्भावस्याभावः। अत एव च सत्ताद्रव्ययोः कथंचिदनर्थान्तरत्वेऽपि

संज्ञादिरूपेण तन्मयं न भवति। कथमेगं तन्मयत्वं हि किलैकत्वलक्षणं। संज्ञादिरूपेण तन्मयत्वाभावे कथमेकत्वं, किंतु नानात्वमेव। यथेदं मुक्तात्मद्रव्ये प्रदेशाभेदेऽपि संज्ञादिरूपेण नानात्वं कथितं तथैव

[१]निर्गुण, एक गुणकी बनी हुई, [२]विशेषण [३]विधायक और [४]वृत्तिस्वरूप जो सत्ता है वह किसीके आश्रयके बिना रहनेवाला, गुणवाला, अनेक गुणोंसे निर्मित, [५]विशेष्य, [६]विधीयमान और [७]वृत्तिमानस्वरूप ऐसा द्रव्य नहीं है, तथा जो किसीके आश्रयके बिना रहनेवाला, गुणवाला, अनेक गुणोंसे निर्मित, विशेष्य, विधीयमान और वृत्तिमानस्वरूप ऐसा द्रव्य है वह किसीके आश्रित रहनेवाली, निर्गुण, एक गुणसे निर्मित, विशेषण, विधायक और वृत्तिस्वरूप ऐसी सत्ता नहीं है, इसलिये उनके तद्भावका अभाव है। ऐसा होनेसे ही, यद्यपि, सत्ता और द्रव्यके कथंचित् अनर्थान्तरत्व (-अभिन्नपदार्थत्व, अनन्यपदार्थत्व) है तथापि उनके सर्वथा

१. निर्गुण = गुणरहित [सत्ता निर्गुण है, द्रव्य गुणवाला है। जैसे आम वर्ण, गंध स्पर्शादि गुणयुक्त है, किन्तु वर्णगुण कहीं गंध, स्पर्श या अन्य किसी गुणवाला नहीं है, क्योंकि न तो वर्ण सूंघा जाता है और न स्पर्श किया जाता है। और जैसे आत्मा ज्ञानगुणवाला, वीर्यगुणवाला इत्यादि है, परन्तु ज्ञानगुण कहीं वीर्यगुणवाला या अन्य किसी गुणवाला नहीं है; इसीप्रकार द्रव्य अनन्त गुणोंवाला है, परन्तु सत्ता गुणवाली नहीं है। (यहाँ, जैसे दण्डी दण्डवाला है उसीप्रकार द्रव्यको गुणवाला नहीं समझना चाहिये; क्योंकि दण्डी और दण्डमें प्रदेशभेद है, किन्तु द्रव्य और गुण अभिन्नप्रदेशी हैं।]

२. विशेषण = विशेषता; लक्षण; भेदक धर्म। ३. विधायक = विधान करनेवाला; रचयिता।

४. वृत्ति = होना, अस्तित्व, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य।

५. विशेष्य = विशेषताको धारण करनेवाला पदार्थ; लक्ष्य; भेद्य पदार्थ—धर्मी। [जैसे मिठास, सफेदी, सचिक्कणता आदि मिश्रीके विशेष गुण हैं, और मिश्री इन विशेष गुणोंसे विशेषित होती हुई अर्थात् उन विशेषताओंसे ज्ञात होती हुई, उन भेदोंसे भेदित होती हुई एक पदार्थ है; और जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य इत्यादि आत्माके विशेषण है और आत्मा उन विशेषणोंसे विशेषित होता हुआ (लक्षित, भेदित, पहचाना जाता हुआ) पदार्थ है, उसीप्रकार सत्ता विशेषण है और द्रव्य विशेष्य है। (यहाँ यह नहीं भूलना चाहिये कि विशेष्य और विशेषणोंके प्रदेशभेद नहीं हैं।)

६. विधीयमान = रचित होनेवाला। (सत्ता इत्यादि गुण द्रव्यके रचयिता है और द्रव्य उनके द्वारा रचा जानेवाला पदार्थ है।)

७. वृत्तिमान = वृत्तिवाला, अस्तित्ववाला, स्थिर रहनेवाला। (सत्ता वृत्तिस्वरूप अर्थात् अस्तिस्वरूप है और द्रव्य अस्तित्व रहनेस्वरूप है।)

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सर्वथैकत्वं न शंकनीयं; तद्भावो ह्येकत्वस्य लक्षणम्। यत्तु न तद्भवद्विभाव्यते तत्कथमेकं स्यात्। अपि तु गुणगुणिरूपेणानेकमेवेत्यर्थः ॥१०६॥

अथातद्भावमुदाहृत्य प्रथयति—

सद्दव्वं सच्च गुणो सच्चेव य पज्जओ त्ति वित्थारो।
जो खलु तस्स अभावो सो तदभावो अतब्भावो ॥१०७॥

सर्वद्रव्याणां स्वकीयस्वकीयस्वरूपास्तित्वगुणेन सह ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥१०६॥ अथातद्भावं विशेषेण विस्तार्य कथयति—**सद्दव्वं सच्च गुणो सच्चेव य पज्जओ त्ति वित्थारो** सद्द्रव्यं संश्च गुणः संश्चैव पर्याय इति सत्तागुणस्य द्रव्यगुणपर्यायेषु विस्तारः। तथाहि—यथा मुक्ताफलहारे सत्तागुण-

---

एकत्व होगा ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि तद्भाव एकत्वका लक्षण है। जो उसरूप ज्ञात नहीं होता वह (सर्वथा) एक कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता; परन्तु गुण-गुणी-रूपसे अनेक ही है, ऐसा अर्थ है।

भावार्थ :—भिन्नप्रदेशत्व वह पृथक्त्वका लक्षण है, और अतद्भाव वह अन्यत्वका लक्षण है। द्रव्यमें और गुणमें पृथक्त्व नहीं है फिर भी अन्यत्व है।

प्रश्न :—जो अपृथक् होते हैं उनमें अन्यत्व कैसे हो सकता है?

उत्तर :—उनमें वस्त्र और शुभ्रता (सफेदी) की भाँति अन्यत्व हो सकता है। वस्त्रके और उसकी शुभ्रताके प्रदेश भिन्न नहीं हैं, इसलिये उनमें पृथक्त्व नहीं है। ऐसा होने पर भी शुभ्रता तो मात्र आँखोंसे ही दिखाई देती है, जीभ, नाक आदि शेष चार इन्द्रियोंसे ज्ञात नहीं होती। और वस्त्र पाँचों इन्द्रियोंसे ज्ञात होता है। इसलिये (कथंचित्) वस्त्र वह शुभ्रता नहीं है और शुभ्रता वह वस्त्र नहीं है। यदि ऐसा न हो तो वस्त्रकी भाँति शुभ्रता भी जीभ, नाक इत्यादि सर्व इन्द्रियोंसे ज्ञात होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिये वस्त्र और शुभ्रतामें अपृथक्त्व होने पर भी अन्यत्व है यह सिद्ध होता है।

इसीप्रकार द्रव्यमें और सत्तादि गुणोंमें अपृथक्त्व होने पर भी अन्यत्व है; क्योंकि द्रव्यके और गुणके प्रदेश अभिन्न होने पर भी द्रव्यमें और गुणमें संज्ञा-संख्या-लक्षणादि भेद होनेसे (कथंचित्) द्रव्य गुणरूप नहीं है और गुण वह द्रव्यरूप नहीं है ॥१०६॥

अब, अतद्भावको उदाहरण द्वारा स्पष्टरूपसे बतलाते हैं :—

'सत् द्रव्य', 'सत् पर्याय,' 'सत् गुण'—सत्त्वनो विस्तार छे;
नथी ते-पणे अन्योन्य तेह अतत्पणुं ज्ञातव्य छे. १०७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सद्द्रव्यं संश्च गुणः संश्चैव च पर्याय इति विस्तारः।
यः खलु तस्याभावः स तदभावोऽतद्भावः॥१०७॥

यथा खल्वेकं मुक्ताफलस्रग्दाम हार इति सूत्रमिति मुक्ताफलमिति त्रेधा विस्तार्यते, तथैकं द्रव्यं द्रव्यमिति गुण इति पर्याय इति त्रेधा विस्तार्यते। यथा चैकस्य मुक्ताफलस्रग्दाम्नः शुक्लो गुणः शुक्लो हारः शुक्लं सूत्रं शुक्लं मुक्ताफलमिति त्रेधा विस्तार्यते, तथैकस्य द्रव्यस्य सत्तागुणः सद्द्रव्यं सद्गुणः सत्पर्याय इति त्रेधा विस्तार्यते। यथा चैकस्मिन् मुक्ताफलस्रग्दाम्नि यः शुक्लो गुणः स न हारो न सूत्रं न मुक्ताफलं यश्च हारः सूत्रं मुक्ताफलं वा स न शुक्लो गुण इतीतरेतरस्य यस्तस्याभावः स तदभाव-लक्षणोऽतद्भावोऽन्यत्वनिबन्धनभूतः, तथैकस्मिन् द्रव्ये यः सत्तागुणस्तन्न द्रव्यं नान्यो गुणो

स्थानीयो योऽसौ शुक्लगुणः स प्रदेशाभेदेन किं किं भण्यते। शुक्लो हार इति शुक्लं सूत्रमिति शुक्लं मुक्ताफलमिति भण्यते, यश्च हारः सूत्रं मुक्ताफलं वा तैस्त्रिभिः प्रदेशाभेदेन शुक्लो गुणो भण्यत इति तद्भावस्य लक्षणमिदम्। तद्भावस्येति कोऽर्थः। हारसूत्रमुक्ताफलानां शुक्लगुणेन सह तन्मयत्वं प्रदेशाभिन्नत्वमिति। तथा मुक्तात्मपदार्थे योऽसौ शुद्धसत्तागुणः स प्रदेशाभेदेन किं किं भण्यते। सत्तालक्षणः परमात्मपदार्थ इति सत्तालक्षणः केवलज्ञानादिगुण इति सत्तालक्षणः सिद्धपर्याय

अन्वयार्थ :—[सत् द्रव्यं] 'सत् द्रव्य' [सत् च गुणः] 'सत् गुण' [च] और [सत् च एव पर्यायः] 'सत् पर्याय'—[इति] इस प्रकार [विस्तारः] (सत्तागुणका) विस्तार है। [यः खलु] (उनमें परस्पर) जो [तस्य अभावः] 'उसका अभाव' अर्थात् 'उसरूप होनेका अभाव' है [सः] वह [तद्भावः] 'तद्-अभाव' [अतद्भावः] अर्थात् अतद्भाव है॥१०७॥

टीका :—जैसे एक [१]मोतियोंकी माला 'हार'के रूपमें, 'सूत्र' (धागा) के रूपमें और 'मोती' के रूपमें—(त्रिधा) तीन प्रकारसे विस्तारित की जाती है, उसीप्रकार एक 'द्रव्य,' द्रव्यके रूपमें, 'गुण'के रूपमें और 'पर्याय'के रूपमें—तीन प्रकारसे विस्तारित किया जाता है।

और जैसे एक मोतियोंकी मालाका शुक्लत्व गुण, 'शुक्ल हार,' 'शुक्ल धागा', और 'शुक्ल मोती',—ऐसे तीन प्रकारसे विस्तारित किया जाता है, उसीप्रकार एक द्रव्यका सत्तागुण 'सत्द्रव्य', 'सत्गुण', और 'सत्पर्याय',—ऐसे तीन प्रकारसे विस्तारित किया जाता है।

और जिस प्रकार एक मोतियोंकी मालामें जो शुक्लत्वगुण है वह हार नहीं है, धागा नहीं है या मोती नहीं है, और जो हार, धागा या मोती है वह शुक्लत्वगुण नहीं है;—इसप्रकार

---

१ मोतियोंकी माला = मोती का हार, मौक्तिकमाला।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

न पर्यायो यच्च द्रव्यमन्यो गुणः पर्यायो वा स न सत्तागुण इतीतरेतरस्य यस्तस्याभावः स तदभावलक्षणोऽतद्भावोऽन्यत्वनिबन्धनभूतः ॥१०७॥

इति भण्यते। यश्च परमात्मपदार्थः केवलज्ञानादिगुणः सिद्धत्वपर्याय इति तैश्च त्रिभिः (प्रदेशाभेदेन ?) शुद्धसत्तागुणो भण्यत इति तद्भावस्य लक्षणमिदम्। तद्भावस्येति कोऽर्थः। परमात्मपदार्थ-केवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वपर्यायाणां शुद्धसत्तागुणेन सह संज्ञादिभेदेऽपि प्रदेशैस्तन्मयत्वमिति। **जो खलु तस्स अभावो** यस्तस्य पूर्वोक्तलक्षणतद्भावस्य खलु स्फुटं संज्ञादिभेदविवक्षायामभावः **सो तदभावो** स पूर्वोक्तलक्षणस्तदभावो भण्यते। स च तदभावः किं भण्यते। **अतब्भावो** न तद्भावस्तन्मयत्वम् किंच अतद्भावः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदः इत्यर्थः। तद्यथा—यथा मुक्ताफलहारे योऽसौ शुक्लगुणस्तद्वाचकेन शुक्लमित्यक्षरद्वयेन हारो वाच्यो न भवति सूत्रं वा मुक्ताफलं वा, हारसूत्रमुक्ताफलशब्दैश्च शुक्लगुणो वाच्यो न भवति। एवं परस्परं प्रदेशाभेदेऽपि योऽसौ संज्ञादिभेदः स तस्य पूर्वोक्तलक्षण-तद्भावस्याभावस्तदभावो भण्यते। स च तदभावः पुनरपि किं भण्यते। अतद्भावः संज्ञा-लक्षणप्रयोजनादिभेद इति। तथा मुक्तजीवे योऽसौ शुद्धसत्तागुणस्तद्वाचकेन सत्ताशब्देन मुक्तजीवो

एक-दूसरेमें जो 'उसका अभाव' अर्थात् 'तद्रूप होनेका अभाव' है वह 'तद्-अभाव' लक्षण 'अतद्भाव' है, जो कि अन्यत्वका कारण है। इसीप्रकार एक द्रव्यमें जो सत्तागुण है वह द्रव्य नहीं है, [१]अन्यगुण नहीं है, या पर्याय नहीं है; और जो द्रव्य अन्य गुण या पर्याय है वह सत्तागुण नहीं है,—इसप्रकार एक-दूसरेमें जो 'उसका अभाव' अर्थात् 'तद्रूप होनेका अभाव' है वह [२]'तद्-अभाव' लक्षण 'अतद्भाव' है जो कि अन्यत्वका कारण है।

भावार्थ :—एक आत्माका विस्तारकथनमें 'आत्मद्रव्य'के रूपमें 'ज्ञानादिगुण' के रूपमें और 'सिद्धत्वादि पर्याय' के रूपमें—तीन प्रकारसे वर्णन किया जाता है। इसीप्रकार सर्व द्रव्योंके सम्बन्धमें समझना चाहिये।

और एक आत्माके अस्तित्व गुणको 'सत् आत्मद्रव्य', सत् ज्ञानादिगुण' और 'सत् सिद्धत्वादि पर्याय'—ऐसे तीन प्रकारसे विस्तारित किया जाता है; इसीप्रकार सभी द्रव्योंके सम्बन्धमें समझना चाहिये।

और एक आत्माका जो अस्तित्व गुण है वह आत्मद्रव्य नहीं है, (सत्ता गुणके बिना) ज्ञानादिगुण नहीं है, या सिद्धत्वादि पर्याय नहीं है; और जो आत्मद्रव्य है, (अस्तित्वके सिवाय) ज्ञानादिगुण है या सिद्धत्वादि पर्याय है वह अस्तित्व गुण नहीं है—इसप्रकार उनमें परस्पर अतद्भाव है, जिसके कारण उनमें अन्यत्व है। इसीप्रकार सभी द्रव्योंके सम्बन्धमें समझना चाहिये।

---

१. अन्यगुण = सत्ता के अतिरिक्त दूसरा कोई भी गुण।

२. तद्-अभाव = उसका अभाव; (तद्-अभाव = तस्य अभावः) तद्भाव अतद्भावका लक्षण (स्वरूप) है; अतद्भाव अन्यत्वका कारण है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ सर्वथाऽभावलक्षणत्वमतद्भावस्य निषेधयति—

जं दव्वं तं ण गुणो जो वि गुणो सो ण तच्चमत्थादो।
एसो हि अतब्भावो णेव अभावो त्ति णिद्दिट्ठो॥१०८॥

यद्द्रव्यं तन्न गुणो योऽपि गुणः स न तत्त्वमर्थात्।
एष ह्यतद्भावो नैव अभाव इति निर्दिष्टः॥१०८॥

वाच्यो न भवति केवलज्ञानादिगुणो वा सिद्धपर्यायो वा, मुक्तजीवकेवलज्ञानादिगुणसिद्धपर्यायशब्दैश्च शुद्धसत्तागुणो वाच्यो न भवति। इत्येवं परस्परं प्रदेशाभेदेऽपि योऽसौ संज्ञादिभेदः स तस्य पूर्वोक्तलक्षणतद्भावस्याभावस्तदभावो भण्यते। स च तदभावः पुनरपि किं भण्यते। अतद्भावः संज्ञा-लक्षणप्रयोजनादिभेद इत्यर्थः। यथात्र शुद्धात्मनि शुद्धसत्तागुणेन सहाभेदः स्थापितस्तथा यथासंभवं सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्य इत्यभिप्रायः॥१०७॥ अथ गुणगुणिनोः प्रदेशभेदनिषेधेन तमेव संज्ञादि-भेदरूपमतद्भावं दृढयति—**जं दव्वं तं ण गुणो** यद्द्रव्यं स न गुणः, यन्मुक्तजीवद्रव्यं स शुद्धः सन् गुणो न भवति। मुक्तजीवद्रव्यशब्देन शुद्धसत्तागुणो वाच्यो न भवतीत्यर्थः। **जो वि गुणो सो ण तच्चमत्थादो**

इसप्रकार इस गाथामें सत्ताका उदाहरण देकर अतद्भावको स्पष्टतया समझाया है।

(यहाँ इतना विशेष है कि जो सत्ता गुणके सम्बन्धमें कहा है, वह अन्य गुणोंके विषयमें भी भलीभाँति समझ लेना चाहिये। जैसे कि :—सत्ता गुणकी भाँति एक आत्माके पुरुषार्थ गुणको 'पुरुषार्थी आत्मद्रव्य' 'पुरुषार्थी ज्ञानादिगुण' और 'पुरुषार्थी सिद्धत्वादि पर्याय'—इसप्रकार विस्तरित कर सकते हैं। अभिन्नप्रदेश होनेसे इसप्रकार विस्तार किया जाता है, फिर भी संज्ञा-लक्षण-प्रयोजनादि भेद होनेसे पुरुषार्थगुणको तथा आत्मद्रव्यको, ज्ञानादि अन्य गुण और सिद्धत्वादि पर्यायको अतद्भाव है, जो कि उनमें अन्यत्वका कारण है॥१०७॥

अब, सर्वथा अभाव वह अतद्भावका लक्षण है, इसका निषेध करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अर्थात्**] स्वरूप अपेक्षासे [**यद् द्रव्यं**] जो द्रव्य है [**तत् न गुणः**] वह गुण नहीं है, [**यः अपि गुणः**] और जो गुण है [**सः न तत्त्वं**] यह द्रव्य नहीं है। [**एषः हि अतद्भावः**] यह अतद्भाव है; [**न एव अभावः**] सर्वथा अभाव वह अतद्भाव नहीं है; [**इति निर्दिष्टः**] ऐसा (जिनेन्द्रदेव द्वारा) दरशाया गया है॥१०८॥

स्वरूपे नथी जे द्रव्य ते गुण, गुण ते नहि द्रव्य छे,
–आने अतत्पणुं जाणवुं, न अभावने; भाख्युं जिने. १०८.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एकस्मिन्द्रव्ये यद् द्रव्यं गुणो न तद्भवति, यो गुणः स द्रव्यं न भवतीत्येवं यद् द्रव्यस्य गुणरूपेण गुणस्य वा द्रव्यरूपेण तेनाभवनं सोऽतद्भावः, एतावतैवान्यत्वव्यवहारसिद्धेः। न पुनर्द्रव्यस्याभावो गुणो गुणस्याभावो द्रव्यमित्येवंलक्षणोऽभावोऽतद्भावः। एवं सत्येकद्रव्यस्यानेकत्वमुभयशून्यत्वमपोहरूपत्वं वा स्यात्। तथा हि—यथा खलु चेतनद्रव्यस्याभावोऽचेतनद्रव्यमचेतनद्रव्यस्याभावश्चेतनद्रव्यमिति तयोरनेकत्वं, तथा द्रव्यस्याभावो गुणो गुणस्याभावो द्रव्यमित्येकस्यापि द्रव्यस्यानेकत्वं स्यात्। यथा सुवर्णस्याभावे सुवर्णत्वस्याभावः सुवर्णत्वस्याभावे सुवर्णस्याभाव इत्युभयशून्यत्वं, तथा द्रव्यस्याभावे गुणस्याभावो

योऽपि गुणः स न तत्त्वं द्रव्यमर्थतः परमार्थतः, यः शुद्धसत्तागुणः स मुक्तात्मद्रव्यं न भवति। शुद्धसत्ताशब्देन मुक्तात्मद्रव्यं वाच्यं न भवतीत्यर्थः। एसो हि अतब्भावो एष उक्तलक्षणो हि स्फुटमतद्भावः। उक्तलक्षण इति कोऽर्थः। गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावः। णेव अभावो त्ति णिद्दिट्ठो नैवाभाव इति निर्दिष्टः। नैव अभाव इति कोऽर्थः। यथा सत्तावाचकशब्देन मुक्तात्मद्रव्यं वाच्यं न भवति तथा यदि सत्ताप्रदेशैरपि सत्तागुणात्सकाशाद्भिन्नं भवति तदा यथा

टीका :—एक द्रव्यमें, जो द्रव्य है वह गुण नहीं है, जो गुण है वह द्रव्य नहीं है;—इसप्रकार जो द्रव्यका गुणरूपसे अभवन (-न होना) अथवा गुणका द्रव्यरूपसे अभवन वह अतद्भाव है; क्योंकि इतनेसे ही अन्यत्वव्यवहार (-अन्यत्वरूप व्यवहार) सिद्ध होता है। परन्तु द्रव्यका अभाव गुण है, गुणका अभाव द्रव्य है;—ऐसे लक्षणवाला अभाव वह अतद्भाव नहीं है। यदि ऐसा हो तो (१) एक द्रव्यको अनेकत्व आ जायगा, (२) उभयशून्यता (दोनोंका अभाव) हो जायगी, अथवा (३) अपोहरूपता आ जायगी। इसी को समझाते हैं :—

(द्रव्यका अभाव वह गुण है और गुणका अभाव वह द्रव्य; वह ऐसा मानने पर प्रथम दोष इस प्रकार आयगा :—)

(१) जैसे चेतनद्रव्यका अभाव वह अचेतन द्रव्य है, अचेतनद्रव्यका अभाव वह चेतनद्रव्य है,—इसप्रकार उनके अनेकत्व (द्वित्व) है, उसीप्रकार द्रव्यका अभाव वह गुण, गुणका अभाव वह द्रव्य—इसप्रकार एक द्रव्यके भी अनेकत्व आ जायगा। (अर्थात् द्रव्यके एक होनेपर भी उसके अनेकत्वका प्रसंग आ जायगा।)

(अथवा उभयशून्यत्वरूप दूसरा दोष इस प्रकार आता है :—)

(२) जैसे सुवर्णके अभाव होने पर सुवर्णत्वका अभाव हो जाता है और सुवर्णत्वका अभाव होने पर सुवर्णका अभाव हो जाता है,—इसप्रकार उभयशून्यत्व–दोनोंका अभाव हो जाता है; उसीप्रकार द्रव्यका अभाव होने पर गुणका अभाव और गुणका अभाव होने पर द्रव्यका अभाव हो जायगा;—इसप्रकार उभयशून्यता हो जायगी। (अर्थात्

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

गुणस्याभावे द्रव्यस्याभाव इत्युभयशून्यत्वं स्यात्। यथा पटाभावमात्र एव घटो घटाभावमात्र एव पट इत्युभयोरपोहरूपत्वं, तथा द्रव्याभावमात्र एव गुणो गुणाभावमात्र एव द्रव्यमित्यत्राप्यपोहरूपत्वं स्यात्। ततो द्रव्यगुणयोरेकत्वमशून्यत्वमनपोहत्वं चेच्छता यथोदित एवातद्भावोऽभ्युपगन्तव्यः ॥१०८॥

अथ सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिभावं साधयति—

जो खलु दव्वसहावो परिणामो सो गुणो सदविसिट्ठो।
सदवट्ठिदं सहावे दव्वं ति जिणोवदेसोयं॥१०९॥

जीवप्रदेशेभ्यः पुद्गलद्रव्यं भिन्नं सद्द्रव्यान्तरं भवति तथा सत्तागुणप्रदेशेभ्यो मुक्तजीवद्रव्यं सत्तागुणाद्भिन्नं सत्पृथग्द्रव्यान्तरं प्राप्नोति। एवं किं सिद्धम्। सत्तागुणरूपं पृथग्द्रव्यं मुक्तात्मद्रव्यं च पृथगिति द्रव्यद्वयं जातं, न च तथा। द्वितीयं च दूषणं प्राप्नोति—यथा सुवर्णत्वगुणप्रदेशेभ्यो

द्रव्य तथा गुण दोनोंके अभावका प्रसंग आ जायगा।)

(अथवा [१]अपोहरूपता नामक तीसरा दोष इसप्रकार आता है :–)

(३) जैसे पटाभावमात्र ही घट है, घटाभावमात्र ही पट है, (अर्थात् वस्त्रके केवल अभाव जितना ही घट है, और घटके केवल अभाव जितना ही वस्त्र है)—इसप्रकार दोनोंके अपोहरूपता है, उसीप्रकार द्रव्याभावमात्र ही गुण और गुणाभावमात्र ही द्रव्य होगा;—इसप्रकार इसमें भी (द्रव्य-गुणमें भी) [१]अपोहरूपता आ जायगी, (अर्थात् केवल नकाररूपताका प्रसङ्ग आ जायगा।)

इसलिये द्रव्य और गुणका एकत्व, अशून्यत्व और [२]अनपोहत्व चाहनेवालेको यथोक्त ही (जैसा कहा वैसा ही) अतद्भाव मानना चाहिये॥१०८॥

अब, सत्ता और द्रव्यका गुण–गुणीपना सिद्ध करते हैं :—

---

१. अपोहरूपता = सर्वथा नकारात्मकता; सर्वथा भिन्नता। (द्रव्य और गुणमें एक-दूसरेका केवल नकार ही हो तो 'द्रव्य गुणवाला है' 'यह गुण इस द्रव्यका है'—इत्यादि कथनसे सूचित किसी प्रकारका सम्बन्ध ही द्रव्य और गुणके नहीं बनेगा।)

२. अनपोहत्व = अपोहरूपताका न होना; केवल नकारात्मकताका न होना।

परिणाम द्रव्यस्वभाव जे, ते गुण 'सत्'-अविशिष्ट छे;
'द्रव्यो स्वभावे स्थित सत् छे'–अे ज आ उपदेश छे. १०९.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यः खलु द्रव्यस्वभावः परिणामः स गुणः सदविशिष्टः।
सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यमिति जिनोपदेशोऽयम्॥१०९॥

द्रव्यं हि स्वभावे नित्यमवतिष्ठमानत्वात्सदिति प्राक् प्रतिपादितम्। स्वभावस्तु द्रव्यस्य परिणामोऽभिहितः। य एव द्रव्यस्य स्वभावभूतः परिणामः, स एव सदविशिष्टो गुण इतीह साध्यते। यदेव हि द्रव्यस्वरूपवृत्तिभूतमस्तित्वं द्रव्यप्रधाननिर्देशात्सदिति संशब्द्यते तदविशिष्टगुणभूत एव द्रव्यस्य स्वभावभूतः परिणामः, द्रव्यवृत्तेर्हि त्रिकोटिसमय-

---

भिन्नस्य सुवर्णस्याभावस्तथैव सुवर्णप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य सुवर्णत्वगुणस्याप्यभावः, तथा सत्तागुण-प्रदेशेभ्यो भिन्नस्य मुक्तजीवद्रव्यस्याभावस्तथैव मुक्तजीवद्रव्यप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य सत्तागुणस्याप्यभावः इत्युभयशून्यत्वं प्राप्नोति। यथेदं मुक्तजीवद्रव्ये संज्ञादिभेदभिन्नस्यातद्भावस्तस्य सत्तागुणेन सह प्रदेशाभेदव्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासंभवं ज्ञातव्यमित्यर्थः॥१०८॥ एवं द्रव्यस्यास्तित्व-कथनरूपेण प्रथमगाथा, पृथक्त्वलक्षणातद्भावाभिधानान्यत्वलक्षणयोः कथनेन द्वितीया, संज्ञालक्षण-प्रयोजनादिभेदरूपस्यातद्भावस्य विवरणरूपेण तृतीया, तस्यैव दृढीकरणार्थं च चतुर्थीति द्रव्यगुण-योरभेदविषये युक्तिकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन पञ्चमस्थलं गतम्। अथ सत्ता गुणो भवति, द्रव्यं

अन्वयार्थ :—[यः खलु] जो, [द्रव्यस्वभावः परिणामः] द्रव्यका स्वभावभूत (उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक) परिणाम है [सः] वह (परिणाम) [सदविशिष्टः गुणः] 'सत्' से अविशिष्ट (-सत्तासे अभिन्न है ऐसा) गुण है। [स्वभावे अवस्थितं] 'स्वभावमें अवस्थित (होनेसे) [द्रव्यं] द्रव्य [सत्] सत् है'—[इति जिनोपदेशः] ऐसा जो (९९ वीं गाथामें कथित) जिनोपदेश है [अयम्] वही यह है। (अर्थात् ९९वीं गाथाके कथनमेंसे इस गाथामें कथित भाव सहज ही निकलता है।) ॥१०९॥

टीका :—द्रव्य स्वभावमें नित्य अवस्थित होनेसे सत् है, —ऐसा पहले (९९वीं गाथामें) प्रतिपादित किया गया है; और (वहाँ) द्रव्यका स्वभाव परिणाम कहा गया है। यहाँ यह सिद्ध किया जा रहा है कि—जो द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है वही 'सत्' से अविशिष्ट (-अस्तित्वसे अभिन्न ऐसा–अस्तित्वसे कोई अन्य नहीं ऐसा) गुण है।

द्रव्यके स्वरूपका वृत्तिभूत ऐसा जो अस्तित्व द्रव्यप्रधान कथनके द्वारा 'सत्' शब्दसे कहा जाता है उससे अविशिष्ट (-उस अस्तित्वसे अनन्य) गुणभूत ही द्रव्यस्वभावभूत परिणाम है; क्योंकि द्रव्यकी [१]वृत्ति (अस्तित्व) तीन प्रकारके समयको स्पर्शित करती होनेसे

---

१. वृत्ति = वर्तना; अस्तित्व रहना वह; टिकना वह।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

स्पर्शिन्याः प्रतिक्षणं तेन तेन स्वभावेन परिणमनात्। द्रव्यस्वभावभूत एव तावत्परिणामः। स त्वस्तित्वभूतद्रव्यवृत्त्यात्मकत्वात्सदविशिष्टो द्रव्यविधायको गुण एवेति सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिभावः सिद्ध्यति॥१०९॥

अथ गुणगुणिनोर्नानात्वमुपहन्ति—

णत्थि गुणो त्ति व कोई पज्जाओ त्तीह वा विणा दव्वं।
दव्वत्तं पुण भावो तम्हा दव्वं सयं सत्ता॥११०॥

च गुणी भवतीति प्रतिपादयति—जो खलु दव्वसहावो परिणामो यः खलु स्फुटं द्रव्यस्य स्वभावभूतः परिणामः पञ्चेन्द्रियविषयानुभवरूपमनोव्यापारोत्पन्नसमस्तमनोरथरूपविकल्पजालाभावे सति यश्चिदानन्दैकानुभूतिरूपः स्वस्थभावस्तस्योत्पादः, पूर्वोक्तविकल्पजालविनाशो व्ययः, तदुभयाधारभूतजीवत्वं ध्रौव्यमित्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकजीवद्रव्यस्य स्वभावभूतो योऽसौ परिणामः सो गुणो स गुणो भवति। स परिणामः कथंभूतः सन्गुणो भवति। सदविसिट्ठो सतोऽस्तित्वादविशिष्टोऽभिन्नस्तदुत्पादादित्रयं तिष्ठत्यस्तित्वं चैकं तिष्ठत्यस्तित्वेन सह कथमभिन्नो भवतीति चेत्। "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" इति वचनात्। एवं सति सत्तैव गुणो भवतीत्यर्थः। इति गुणव्याख्यानं गतम्। सदवट्ठिदं सहावे दव्वं ति सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यमिति। द्रव्यं परमात्मद्रव्यं भवति। किं कर्तृ। सदिति। केन। अभेदनयेन। कथंभूतम्। सत् अवस्थितम्। क्व। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकस्वभावे। जिणोवदेसोयं अयं जिनोपदेश इति 'सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हु परिणामो' इत्यादिपूर्वसूत्रे यदुक्तं तदेवेदं व्याख्यानम्, गुणकथनं पुनरधिकमिति तात्पर्यम्। यथेदं जीवद्रव्ये गुणगुणिनोर्व्याख्यानं

(वह वृत्ति-अस्तित्व) प्रतिक्षण उस-उस स्वभावरूप परिणमित होती है।

(इसप्रकार) प्रथम तो द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है; और वह (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणाम) अस्तित्वभूत ऐसी द्रव्यकी वृत्तिस्वरूप होनेसे, 'सत्' से अविशिष्ट, द्रव्यविधायक (-द्रव्यका रचयिता) गुण ही है। —इसप्रकार सत्ता और द्रव्यका गुणगुणीपना सिद्ध होता है॥१०९॥

अब गुण और गुणीके अनेकत्वका खण्डन करते हैं :—

पर्याय के गुण अेवुं कोई न द्रव्य विण विश्वे दीसे;
द्रव्यत्व छे वळी भाव; तेथी द्रव्य पोते सत्त्व छे. ११०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

नास्ति गुण इति वा कश्चित् पर्याय इतीह वा विना द्रव्यम्।
द्रव्यत्वं पुनर्भावस्तस्माद्द्रव्यं स्वयं सत्ता॥११०॥

न खलु द्रव्यात्पृथग्भूतो गुण इति वा पर्याय इति वा कश्चिदपि स्यात्; यथा सुवर्णात्पृथग्भूतं तत्पीतत्वादिकमिति वा तत्कुण्डलत्वादिकमिति वा। अथ तस्य तु द्रव्यस्य स्वरूपवृत्तिभूतमस्तित्वाख्यं यद्द्रव्यत्वं स खलु तद्भावाख्यो गुण एव भवन् किं हि द्रव्यात्पृथग्भूतत्वेन वर्तते। न वर्तत एव। तर्हि द्रव्यं सत्ताऽस्तु स्वयमेव॥११०॥

अथ द्रव्यस्य सदुत्पादासदुत्पादयोरविरोधं साधयति—

एवंविहं सहावे दव्वं दव्वत्थपज्जयत्थेहिं।
सदसब्भावणिबद्धं पादुब्भावं सदा लभदि॥१११॥

कृतं तथा सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्यमिति॥१०९॥ अथ गुणपर्यायाभ्यां सह द्रव्यस्याभेदं दर्शयति—**णत्थि** नास्ति न विद्यते। स कः। **गुणो त्ति व कोई** गुण इति कश्चित्। न केवलं गुणः **पज्जाओ त्तीह वा** पर्यायो वेतीह। कथम्। **विणा** विना। किं विना। **दव्वं** द्रव्यम्। इदानीं द्रव्यं कथ्यते। **दव्वत्तं पुण भावो** द्रव्यत्वमस्तित्वम्। तत्पुनः किं भण्यते। भावः। भावः कोऽर्थः। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकसद्भावः। **तम्हा दव्वं सयं सत्ता** तस्मादभेदनयेन सत्ता स्वयमेव द्रव्यं भवतीति। तद्यथा—मुक्तात्मद्रव्ये परमावाप्तिरूपो

अन्वयार्थ :—[इह] इस विश्वमें [गुणः इति वा कश्चित्] गुण ऐसा कुछ [पर्यायः इति वा] या पर्याय ऐसा कुछ [द्रव्यं विना नास्ति] द्रव्यके बिना (-द्रव्यसे पृथक्) नहीं होता; [द्रव्यत्वं पुनः भावः] और द्रव्यत्व वह भाव है (अर्थात् अस्तित्व गुण है); [तस्मात्] इसलिये [द्रव्यं स्वयं सत्ता] द्रव्य स्वयं सत्ता (अस्तित्व) है॥११०॥

टीका :—वास्तवमें द्रव्यसे पृथग्भूत (भिन्न) ऐसा कोई गुण या ऐसी कोई पर्याय कुछ नहीं होता; जैसे—सुवर्णसे पृथग्भूत उसका पीलापन आदि या उसका कुण्डलत्वादि नहीं होता तदनुसार। अब, उस द्रव्यके स्वरूपकी वृत्तिभूत जो 'अस्तित्व' नामसे कहा जानेवाला द्रव्यत्व वह उसका 'भाव' नामसे कहा जानेवाला गुण ही होनेसे, क्या वह द्रव्यसे पृथक्रूप वर्तता है? नहीं ही वर्तता। तब फिर द्रव्य स्वयमेव सत्ता हो॥११०॥

अब, द्रव्यके सत्-उत्पाद और असत्-उत्पाद होनेमें अविरोध सिद्ध करते हैं :—

आवुं दरव द्रव्यार्थ-पर्यायार्थथी निजभावमां
सद्भाव-अणसद्भावयुत उत्पादने पामे सदा. १११.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एवंविधं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यार्थपर्यायार्थाभ्याम्।
सदसद्भावनिबद्धं प्रादुर्भावं सदा लभते॥१११॥

एवमेतद्यथोदितप्रकारसाकल्याकलंकलांछनमनादिनिधनं सत्स्वभावे प्रादुर्भावमास्कन्दति द्रव्यम्। स तु प्रादुर्भावो द्रव्यस्य द्रव्याभिधेयतायां सद्भावनिबद्ध एव स्यात्; पर्यायाभिधेयतायां त्वसद्भावनिबद्ध एव। तथा हि—यदा द्रव्यमेवाभिधीयते न पर्यायास्तदा प्रभवावसान-वर्जिताभिर्यौगपद्यप्रवृत्ताभिर्द्रव्यनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिः प्रभवावसानलांछनाः क्रमप्रवृत्ताः

मोक्षपर्यायः केवलज्ञानादिरूपो गुणसमूहश्च येन कारणेन तद्द्वयमपि परमात्मद्रव्यं विना नास्ति, न विद्यते। कस्मात्। प्रदेशाभेदादिति। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकशुद्धसत्तारूपं मुक्तात्मद्रव्यं भवति। तस्मादभेदेन सत्तैव द्रव्यमित्यर्थः। यथा मुक्तात्मद्रव्ये गुणपर्यायाभ्यां सहाभेदव्याख्यानं कृतं तथा यथासंभवं सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्यमिति॥११०॥ एवं गुणगुणिव्याख्यानरूपेण प्रथमगाथा, द्रव्यस्य गुणपर्यायाभ्यां सह भेदो नास्तीति कथनरूपेण द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयेन षष्ठस्थलं गतम्॥ अथ द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यां सदुत्पादासदुत्पादौ दर्शयति—एवंविहसब्भावे एवंविधसद्भावे सत्तालक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुणपर्यायलक्षणं द्रव्यं चेत्येवंविधपूर्वोक्तसद्भावे स्थितं, अथवा एवंविहं सहावे इति पाठान्तरम्। तत्रैवंविधं पूर्वोक्तलक्षणं स्वकीयसद्भावे स्थितम्। किम्। दव्वं द्रव्यं कर्तृ। किं

अन्वयार्थ :—[एवंविधं द्रव्यं] ऐसा (पूर्वोक्त) द्रव्य [स्वभावे] स्वभावमें [द्रव्यार्थपर्यायार्थाभ्यां] द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंके द्वारा [सदसद्भावनिबद्धं प्रादुर्भावं] सद्भावसंबद्ध और असद्भावसंबद्ध उत्पादको [सदा लभते] सदा प्राप्त करता है॥१११॥

टीका :—इसप्रकार यथोदित (पूर्वकथित) सर्व प्रकारसे [१]अकलंक लक्षणवाला, अनादिनिधन वह द्रव्य सत्-स्वभावमें (अस्तित्वस्वभावमें) उत्पादको प्राप्त होता है। द्रव्यका वह उत्पाद, द्रव्यकी [२]अभिधेयताके समय सद्भावसंबद्ध ही है और पर्यायोंकी अभिधेयताके समय असद्भावसंबद्ध ही है। इसे स्पष्ट समझाते हैं :—

जब द्रव्य ही कहा जाता है—पर्यायें नहीं, तब उत्पत्तिविनाश रहित, युगपत् प्रवर्तमान, द्रव्यको उत्पन्न करनेवाली [३]अन्वयशक्तियोंके द्वारा, उत्पत्तिविनाशलक्षणवाली, क्रमशः प्रवर्तमान,

---

१. अकलंक = निर्दोष (यह द्रव्य पूर्वकथित सर्वप्रकार निर्दोष लक्षणवाला है।)

२. अभिधेयता = कहने योग्यपना; विवक्षा; कथनी।

३. अन्वयशक्ति = अन्वयरूपशक्ति। (अन्वयशक्तियाँ उत्पत्ति और नाशसे रहित हैं, एक ही साथ प्रवृत्त होती हैं और द्रव्यको उत्पन्न करती हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र इत्यादि आत्मद्रव्यकी अन्वयशक्तियाँ हैं।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पर्यायनिष्पादिका व्यतिरेकव्यक्तीस्तास्ताः संक्रामतो द्रव्यस्य सद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः, हेमवत्। तथा हि—यदा हेमैवाभिधीयते नांगदादयः पर्यायास्तदा हेमसमानजीविताभिर्योग-पद्यप्रवृत्ताभिर्हेमनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिरंगदादिपर्यायसमानजीविताः क्रमप्रवृत्ता अंगदादि-पर्यायनिष्पादिका व्यतिरेकव्यक्तीस्तास्ताः संक्रामतो हेम्नः सद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः। यदा तु पर्याया एवाभिधीयन्ते न द्रव्यं, तदा प्रभवावसानलांछनाभिः क्रमप्रवृत्ताभिः पर्यायनिष्पादिकाभिर्व्यतिरेकव्यक्तिभिस्ताभिस्ताभिः प्रभवावसानवर्जिता यौगपद्यप्रवृत्ता द्रव्य-

करोति। **सदा लभदि** सदा सर्वकालं लभते। किं कर्मतापन्नम्। **पादुब्भावं** प्रादुर्भावमुत्पादम्। कथंभूतम्। **सदसब्भावणिबद्धं** सद्भावनिबद्धमसद्भावनिबद्धं च। **काभ्यां कृत्वा। दव्वत्थपज्जयत्थेहिं** द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यामिति। तथाहि—यथा यदा काले द्रव्यार्थिकनयेन विवक्षा क्रियते यदेव कटकपर्याये सुवर्णं तदेव कङ्कणपर्याये नान्यदिति, तदा काले सद्भावनिबद्ध एवोत्पादः। कस्मादिति चेत्। **द्रव्यस्य** द्रव्यरूपेणाविनष्टत्वात्। यदा पुनः पर्यायविवक्षा क्रियते कटकपर्यायात् सकाशादन्यो यः कङ्कणपर्यायः सुवर्णसम्बन्धी स एव न भवति, तदा पुनरसदुत्पादः। कस्मादिति चेत्। पूर्वपर्यायस्य विनष्टत्वात्। तथा यदा द्रव्यार्थिकनयविवक्षा क्रियते य एव पूर्वं गृहस्थावस्थायामेवमेवं गृहव्यापारं कृतवान् पश्चाज्जिनदीक्षां गृहीत्वा स एवेदानीं रामादिकेवलिपुरुषो निश्चयरलत्रयात्मकपरमात्मध्याने-

पर्यायोंकी उत्पादक उन-उन [१]व्यतिरेकव्यक्तियोंको प्राप्त होनेवाले द्रव्यको [२]सद्भावसंबद्ध ही उत्पाद है; सुवर्णकी भाँति। जैसे :—जब सुवर्ण ही कहा जाता है—बाजूबंधा आदि पर्यायें नहीं, तब सुवर्ण जितनी स्थायी, युगपत् प्रवर्तमान, सुवर्णकी उत्पादक अन्वयशक्तियोंके द्वारा बाजूबंध इत्यादि पर्याय जितने स्थायी, क्रमशः प्रवर्तमान, बाजूबंध इत्यादि पर्यायोंकी उत्पादक उन-उन व्यतिरेकव्यक्तियोंको प्राप्त होनेवाले सुवर्णका सद्भावसंबद्ध ही उत्पाद है।

और जब पर्यायें ही कही जाती हैं,—द्रव्य नहीं, तब उत्पत्तिविनाश जिनका लक्षण है ऐसी, क्रमशः प्रवर्तमान, पर्यायोंको उत्पन्न करनेवाली उन-उन व्यतिरेकव्यक्तियोंके द्वारा, उत्पत्तिविनाश रहित, युगपत् प्रवर्तमान, द्रव्यकी उत्पादक अन्वयशक्तियोंको प्राप्त होनेवाले

१. व्यतिरेकव्यक्ति = भेदरूप प्रगटता। [व्यतिरेकव्यक्तियाँ उत्पत्ति विनाशको प्राप्त होती हैं, क्रमशः प्रवृत्त होती हैं और पर्यायोंको उत्पन्न करती हैं। श्रुतज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि तथा स्वरूपाचरण चारित्र, यथाख्यातचारित्र इत्यादि आत्मद्रव्यकी व्यतिरेकव्यक्तियाँ हैं। व्यतिरेक और अन्वयके अर्थोंके लिये १९९वें पृष्ठका फुटनोट (टिप्पणी) देखें।]

२. सद्भावसंबद्ध = सद्भाव-अस्तित्वके साथ संबंध रखनेवाला,–संकलित। [द्रव्यकी विवक्षाके समय अन्वय शक्तियोंको मुख्य और व्यतिरेकव्यक्तियोंको गौण कर दिया जाता है, इसलिये द्रव्यके सद्भावसंबद्ध उत्पाद (सत्-उत्पाद, विद्यमानका उत्पाद) है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

निष्पादिका अन्वयशक्तीः संक्रामतो द्रव्यस्यासद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः, हेमवदेव। तथा हि—यदांगदादिपर्याया एवाभिधीयन्ते, न हेम, तदांगदादिपर्यायसमानजीविताभिः क्रमप्रवृत्ताभिरंगदादिपर्यायनिष्पादिकाभिर्व्यतिरेकव्यक्तिभिस्ताभिस्ताभिर्हेमसमानजीविता यौगपद्यप्रवृत्ता हेमनिष्पादिका अन्वयशक्तिः संक्रामतो हेम्नोऽसद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः। अथ पर्यायाभिधेयतायामप्यसदुत्पत्तौ पर्यायनिष्पादिकास्तास्ता व्यतिरेकव्यक्तयो यौगपद्यप्रवृत्तिमासाद्यान्वयशक्तित्वमापन्नाः पर्यायान् द्रवीकुर्युः, तथांगदादिपर्यायनिष्पादिकाभिस्ताभिस्ताभिर्व्यतिरेकव्यक्तिभिर्यौगपद्यप्रवृत्तिमासाद्यान्वयशक्तित्वमापन्नाभिरंगदादिपर्याया अपि हेमीक्रियेरन्। द्रव्याभिधेयतायामपि सदुत्पत्तौ द्रव्यनिष्पादिका अन्वयशक्तयः क्रमप्रवृत्तिमासाद्य तत्तद्व्यतिरेकव्यक्तित्वमापन्ना द्रव्यं पर्यायीकुर्युः, तथा हेमनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिः

नानन्तसुखामृततृप्तो जातः, न चान्य इति, तदा सद्भावनिबद्ध एवोत्पादः। कस्मादिति चेत्। पुरुषत्वेनाविनष्टत्वात्। यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते पूर्वं सरागावस्थायाः सकाशादन्योऽयं भरतसगररामपाण्डवादिकेवलिपुरुषाणां संबन्धी निरुपरागपरमात्मपर्यायः स एव न भवति, तदा

द्रव्यको [१]असद्भावसंबद्ध ही उत्पाद है; सुवर्णकी ही भाँति। वह इसप्रकार जब बाजूबंधादि पर्यायें ही कही जाती हैं—सुवर्ण नहीं, तब बाजूबंध इत्यादि पर्याय जितनी टिकनेवाली, क्रमशः प्रवर्तमान, बाजूबंध इत्यादि पर्यायोंकी उत्पादक उन-उन व्यतिरेक-व्यक्तियोंके द्वारा, सुवर्ण जितनी टिकनेवाली, युगपत् प्रवर्तमान, सुवर्णकी उत्पादक अन्वयशक्तियोंको प्राप्त सुवर्णके असद्भावयुक्त ही उत्पाद है।

अब, पर्यायोंकी अभिधेयता (कथनी) के समय भी, असत्-उत्पादमें पर्यायोंको उत्पन्न करनेवाली वे-वे व्यतिरेकव्यक्तियाँ युगपत् प्रवृत्ति प्राप्त करके अन्वयशक्तिपनेको प्राप्त होती हुई पर्यायोंको द्रव्य करता है (-पर्यायोंकी विवक्षाके समय भी व्यतिरेकव्यक्तियाँ अन्वयशक्तिरूप बनती हुई पर्यायोंको द्रव्यरूप करती हैं); जैसे बाजूबंध आदि पर्यायोंको उत्पन्न करनेवाली वे-वे व्यतिरेकव्यक्तियाँ युगपत् प्रवृत्ति प्राप्त करके अन्वयशक्तिपनेको प्राप्त करती हुई बाजुबंध इत्यादि पर्यायोंको सुवर्ण करता है तद्नुसार। द्रव्यकी अभिधेयताके समय भी, सत्-उत्पादमें द्रव्यकी उत्पादक अन्वयशक्तियाँ क्रमप्रवृत्तिको प्राप्त करके उस-उस व्यतिरेकव्यक्तित्वको प्राप्त होती हुई, द्रव्यको पर्यायें (-पर्यायरूप) करती हैं; जैसे सुवर्णकी उत्पादक अन्वयशक्तियाँ

---

१. असद्भावसंबद्ध = अनस्तित्वके साथ संबंधवाला—संकलित। [पर्यायोंकी विवक्षाके समय व्यतिरेकव्यक्तियोंको मुख्य और अन्वयशक्तियोंको गौण किया जाता है, इसलिये द्रव्यके असद्भावसंबद्ध उत्पाद (असत्-उत्पाद, अविद्यमानका उत्पाद) है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

क्रमप्रवृत्तिमासाद्य तत्तद्व्यतिरेकमापन्नाभिर्हेमांगदादिपर्यायमात्रीक्रियेत। ततो द्रव्यार्थादेशात्सदुत्पादः, पर्यायार्थादेशादसत् इत्यनवद्यम्॥१११॥

अथ सदुत्पादमनन्यत्वेन निश्चिनोति—

जीवो भवं भविस्सदि णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो।
किं दव्वत्तं पजहदि ण जहं अण्णो कहं होदि॥११२॥

पुनरसद्भावनिबद्ध एवोत्पादः। कस्मादिति चेत्। पूर्वपर्यायादन्यत्वादिति। यथेदं जीवद्रव्ये सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासंभवं ज्ञातव्यमिति॥१११॥ अथ पूर्वोक्तमेव सदुत्पादं द्रव्यादभिन्नत्वेन विवृणोति—जीवो जीवः कर्ता भवं भवन् परिणमन् सन् भविस्सदि भविष्यति तावत्।

क्रमप्रवृत्ति प्राप्त करके उस-उस व्यतिरेकव्यक्तित्वको प्राप्त होती हुई, सुवर्णको बाजूबंधादि पर्यायमात्र (-पर्यायमात्ररूप) करती हैं।

इसलिये द्रव्यार्थिक कथनसे सत्-उत्पाद है, पर्यायार्थिक कथनसे असत्-उत्पाद है—यह बात अनवद्य (निर्दोष, अबाध्य) है।

भावार्थ :—जो पहले विद्यमान हो उसीकी उत्पत्तिको सत्-उत्पाद कहते हैं और जो पहले विद्यमान न हो उसकी उत्पत्तिको असत्-उत्पाद कहते हैं। जब पर्यायोंको गौण करके द्रव्यका मुख्यतया कथन किया जाता है, तब तो जो विद्यमान था वही उत्पन्न होता है, (क्योंकि द्रव्य तो तीनों कालमें विद्यमान है); इसलिये द्रव्यार्थिक नयसे तो द्रव्यको सत्-उत्पाद है; और जब द्रव्यको गौण करके पर्यायोंका मुख्यतया कथन किया जाता है तब जो विद्यमान नहीं था वह उत्पन्न होता है (क्योंकि वर्तमान पर्याय भूतकालमें विद्यमान नहीं थी), इसलिये पर्यायार्थिक नयसे द्रव्यके असत्-उत्पाद है।

यहाँ यह लक्ष्यमें रखना चाहिये कि द्रव्य और पर्यायें भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं; इसलिये पर्यायोंकी विवक्षाके समय भी, असत्-उत्पादमें, जो पर्यायें हैं वे द्रव्य ही हैं, और द्रव्यकी विवक्षाके समय भी सत्-उत्पादमें, जो द्रव्य है वे ही पर्यायें ही हैं॥१११॥

अब (सर्व पर्यायोंमें द्रव्य अनन्य है अर्थात् वह का वही है, इसलिये उसके सत्-उत्पाद है-इसप्रकार) सत्-उत्पादको अनन्यत्व के द्वारा निश्चित करते हैं :—

जीव परिणमे तेथी नरादिक अे थशे; पण ते-रूपे
शुं छोडतो द्रव्यत्वने? नहि छोडतो क्यम अन्य अे? ११२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

जीवो भवन् भविष्यति नरोऽमरो वा परो भूत्वा पुनः।
किं द्रव्यत्वं प्रजहाति न जहदन्यः कथं भवति॥११२॥

द्रव्यं हि तावद् द्रव्यत्वभूतामन्वयशक्तिं नित्यमप्यपरित्यजद्भवति सदेव। यस्तु द्रव्यस्य पर्यायभूताया व्यतिरेकव्यक्तेः प्रादुर्भावः तस्मिन्नपि द्रव्यत्वभूताया अन्वयशक्तेरप्रच्यवनाद् द्रव्यमनन्यदेव। ततोऽनन्यत्वेन निश्चीयते द्रव्यस्य सदुत्पादः। तथा हि—जीवो द्रव्यं भवन्नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवसिद्धत्वानामन्यतमेन पर्यायेण द्रव्यस्य पर्यायदुर्ललितवृत्तित्वाद-वश्यमेव भविष्यति। स हि भूत्वा च तेन किं द्रव्यत्वभूतामन्वयशक्तिमुज्झति, नोज्झति।

किं किं भविष्यति। निर्विकारशुद्धोपयोगविलक्षणाभ्यां शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणम्य **णरोऽमरो वा परो** नरो देवः परस्तिर्यङ्नारकरूपो वा निर्विकारशुद्धोपयोगेन सिद्धो वा भविष्यति। **भवीय पुणो** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण पुनर्भूत्वापि। अथवा द्वितीयव्याख्यानम्। भवन् वर्तमानकालापेक्षया भविष्यति भाविकालापेक्षया भूत्वा भूतकालापेक्षया चेति कालत्रये चैवं भूत्वापि किं **दव्वत्तं पजहदि किं द्रव्यत्वं** परित्यजति। **ण चयदि** द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वं न त्यजति, द्रव्याद्भिन्नो न भवति। **अण्णो कहं हवदि**

अन्वयार्थ :—[जीवः] जीव [भवन्] परिणमित होता हुआ [नरः] मनुष्य, [अमरः] देव [वा] अथवा [परः] अन्य (-तिर्यंच, नारकी या सिद्ध) [भविष्यति] होगा, [पुनः] परन्तु [भूत्वा] मनुष्य देवादि होकर [किं] क्या वह [द्रव्यत्वं प्रजहाति] द्रव्यत्वको छोड़ देता है? [न जहत्] नहीं छोड़ता हुआ वह [अन्यः कथं भवति] अन्य कैसे हो सकता है? (अर्थात् वह अन्य नहीं, वहका वही है।)॥११२॥

टीका :—प्रथम तो द्रव्य द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिको कभी भी न छोड़ता हुआ सत् (विद्यमान) ही है। और द्रव्यके जो पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्तिका उत्पाद होता है उसमें भी द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिका अच्युतपना होनेसे द्रव्य अनन्य ही है, (अर्थात् उस उत्पादमें भी अन्वयशक्ति तो अपतित-अविनष्ट-निश्चल होनेसे द्रव्य वहका वही है, अन्य नहीं।) इसलिये अनन्यपनेके द्वारा द्रव्यका सत्-उत्पाद निश्चित होता है, (अर्थात् उपरोक्त कथनानुसार द्रव्यका द्रव्यापेक्षासे अनन्यपना होनेसे, उसके सत्-उत्पाद है,—ऐसा अनन्यपने द्वारा सिद्ध होता है।)

इसी बातको (उदाहरण से) स्पष्ट किया जाता है :—

जीव द्रव्य होनेसे और द्रव्य पर्यायोंमें वर्तनेसे जीव नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व, देवत्व और सिद्धत्वमेंसे किसी एक पर्यायमें अवश्यमेव (परिणमित) होगा। परन्तु वह जीव उस पर्यायरूप होकर क्या द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिको छोड़ता है? नहीं छोड़ता।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यदि नोज्झति कथमन्यो नाम स्यात्, येन प्रकटितत्रिकोटिसत्ताकः स एव न स्यात् ॥११२॥

अथासदुत्पादमन्यत्वेन निश्चिनोति—

मणुवो ण होदि देवो देवो वा माणुसो व सिद्धो वा।
एवं अहोज्झमाणो अणण्णभावं कधं लहदि॥११३॥

मनुजो न भवति देवो देवो वा मनुषो वा सिद्धो वा।
एवमभवन्ननन्यभावं कथं लभते॥११३॥

अन्यो भिन्नः कथं भवति। किंतु द्रव्यान्वयशक्तिरूपेण सद्भावनिबद्धोत्पादः स एवेति द्रव्यादभिन्न इति भावार्थः॥११२॥ अथ द्रव्यस्यासदुत्पादं पूर्वपर्यायादन्यत्वेन निश्चिनोति—मणुवो ण हवदि देवो आकुलत्वोत्पादकमनुजदेवादिविभावपर्यायविलक्षणमनाकुलत्वरूपस्वभावपरिणतिलक्षणं परमात्मद्रव्यं यद्यपि निश्चयेन मनुष्यपर्याये देवपर्याये च समानं तथापि मनुजो देवो न भवति। कस्मात्।

यदि नहीं छोड़ता तो वह अन्य कैसे हो सकता है कि जिसने त्रिकोटि सत्ता (-तीन प्रकारकी सत्ता) जिसके प्रगट है ऐसा वह (जीव), वही न हो?

भावार्थ :—जीव मनुष्य-देवादिक पर्यायरूप परिणमित होता हुआ भी अन्य नहीं हो जाता, अनन्य रहता है, वहका वही रहता है; क्योंकि 'वही यह देवका जीव है, जो पूर्वभवमें मनुष्य था और अमुक भवमें तिर्यंच था' ऐसा ज्ञान हो सकता है। इसप्रकार जीवकी भाँति प्रत्येक द्रव्य अपनी सर्व पर्यायोंमें वहका वही रहता है, अन्य नहीं हो जाता,—*अनन्य रहता है। इसप्रकार द्रव्यका अनन्यपना होनेसे द्रव्यका सत्-उत्पाद निश्चित होता है॥११२॥

अब, असत्-उत्पादको अन्यत्वके द्वारा निश्चित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[मनुजः] मनुष्य [देवः न भवति] देव नहीं है, [वा] अथवा [देवः] देव [मानुषः वा सिद्धः वा] मनुष्य या सिद्ध नहीं है; [एवं अभवन्] ऐसा न होता हुआ [अनन्य भावं कथं लभते] अनन्यभावको कैसे प्राप्त हो सकता है? ॥११३॥

---

* (अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक जीव, मनुष्यादि पर्यायोंरूप परिणमित होने पर भी, अन्वयशक्तिको नहीं छोड़ता होनेसे अनन्य-वहका वही-है।)

मानव नथी सुर, सुर पण नहि मनुज के नहि सिद्ध छे;
अे रीत नहि होतो थको क्यम ते अनन्यपणुं धरे? ११३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पर्याया हि पर्यायभूताया आत्मव्यतिरेकव्यक्तेः काल एव सत्त्वात्ततोऽन्यकालेषु भवन्त्यसन्त एव। यश्च पर्यायाणां द्रव्यत्वभूतयान्वयशक्त्यानुस्यूतः क्रमानुपाती स्वकाले प्रादुर्भावः तस्मिन्पर्यायभूताया आत्मव्यतिरेकव्यक्तेः पूर्वमसत्त्वात्पर्याया अन्य एव। ततः पर्यायाणामन्यत्वेन निश्चीयते पर्यायस्वरूपकर्तृकरणाधिकरणभूतत्वेन पर्यायेभ्योऽपृथग्भूतस्य द्रव्यस्यासदुत्पादः। तथा हि—न हि मनुजस्त्रिदशो वा सिद्धो वा स्यात्, न हि त्रिदशो मनुजो वा सिद्धो वा स्यात्। एवमसन् कथमनन्यो नाम स्यात्, येनान्य एव न स्यात्; येन च निष्पद्यमानमनुजादिपर्यायं जायमानवलयादिविकारं कांचनमिव जीवद्रव्यमपि प्रतिपद-मन्यन्न स्यात् ॥११३॥

देवपर्यायकाले मनुष्यपर्यायस्यानुपलम्भात्। देवो वा माणुसो व सिद्धो वा देवो वा मनुष्यो न भवति स्वात्मोपलब्धिरूपसिद्धपर्यायो वा न भवति। कस्मात्। पर्यायाणां परस्परं भिन्नकालत्वात्, सुवर्णद्रव्ये कुण्डलादिपर्यायाणामिव। एवं अहोज्झमाणो एवमभवन्सन् अणण्णभावं कधं लहदि अनन्यभाव-

---

टीका :—पर्यायें पर्यायभूत स्वव्यतिरेकव्यक्तिके कालमें ही सत् (-विद्यमान) होनेसे, उससे अन्य कालोंमें असत् (-अविद्यमान) ही हैं। और पर्यायोंका द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिके साथ गुंथा हुआ (-एकरूपतासे युक्त) जो क्रमानुपाती (क्रमानुसार) स्वकालमें उत्पाद होता है उसमें पर्यायभूत स्वव्यतिरेकव्यक्तिका पहले असत्पना होनेसे, पर्यायें अन्य ही हैं। इसीलिये पर्यायोंकी अन्यताके द्वारा द्रव्यका—जो कि पर्यायोंके स्वरूपका कर्ता, करण और अधिकरण होनेसे पर्यायोंसे अपृथक् है उसका—असत्-उत्पाद निश्चित होता है।

इस बातको (उदाहरण देकर) स्पष्ट करते हैं :—

मनुष्य वह देव या सिद्ध नहीं है, और देव, वह मनुष्य या सिद्ध नहीं है; इसप्रकार न होता हुआ अनन्य (-वहका वही) कैसे हो सकता है, कि जिससे अन्य ही न हो और जिससे मनुष्यादि पर्यायें उत्पन्न होती हैं ऐसा जीव द्रव्य भी—वलयादि विकार (कंकणादि पर्यायें) जिसके उत्पन्न होती हैं ऐसे सुवर्णकी भाँति—पद-पद पर (प्रति पर्याय पर) अन्य न हो? [जैसे कंकण, कुण्डल इत्यादि पर्यायें अन्य हैं, (-भिन्न-भिन्न हैं, वे की वे ही नहीं हैं) इसलिये उन पर्यायोंका कर्ता सुवर्ण भी अन्य है, इसीप्रकार मनुष्य, देव इत्यादि पर्यायें अन्य हैं, इसलिये उन पर्यायोंका कर्ता जीवद्रव्य भी पर्यायापेक्षासे अन्य है।]

भावार्थ :—जीवके अनादि अनन्त-होने पर भी, मनुष्य पर्यायकालमें देवपर्यायकी या स्वात्मोपलब्धिरूप सिद्धपर्यायकी अप्राप्ति है अर्थात् मनुष्य, देव या सिद्ध नहीं है, इसलिये वे पर्यायें अन्य अन्य हैं। ऐसा होनेसे, उन पर्यायोंका कर्त्ता, साधन और आधार जीव भी पर्यायापेक्षासे अन्यपनेको प्राप्त होता है। इसप्रकार जीवकी भाँति प्रत्येक द्रव्यके पर्यायापेक्षासे

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथैकद्रव्यस्यान्यत्वानन्यत्वविप्रतिषेधमुद्धुनोति—

दव्वट्ठिएण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्काले तम्मयत्तादो॥११४॥

द्रव्यार्थिकेन सर्वं द्रव्यं तत्पर्यायार्थिकेन पुनः।
भवति चान्यदनन्यत्तत्काले तन्मयत्वात्॥११४॥

सर्वस्य हि वस्तुनः सामान्यविशेषात्मकत्वात्तत्स्वरूपमुत्पश्यतां यथाक्रमं सामान्य-विशेषौ परिच्छिन्दती द्वे किल चक्षुषी, द्रव्यार्थिकं पर्यायार्थिकं चेति। तत्र पर्यायार्थिक-

मेकत्वं कथं लभते, न कथमपि। तत एतावदायाति असद्भावनिबद्धोत्पादः पूर्वपर्यायाद्भिन्नो भवतीति॥११३॥ अथैकद्रव्यस्य पर्यायैस्सहानन्यत्वाभिधानमेकत्वमन्यत्वाभिधानमनेकत्वं च नय-विभागेन दर्शयति, अथवा पूर्वोक्तसद्भावनिबद्धासद्भावनिबद्धमुत्पादद्वयं प्रकारान्तरेण समर्थयति—हवदि भवति। किं कर्तृ। सव्वं दव्वं सर्वं विवक्षिताविवक्षितजीवद्रव्यम्। किंविशिष्टं भवति। अण्णं अनन्यमभिन्नमेकं तन्मयमिति। केन सह। तेन नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवरूपविभावपर्यायसमूहेन केवल-ज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयशक्तिरूपसिद्धपर्यायेण च। केन कृत्वा। दव्वट्ठिएण शुद्धान्वयद्रव्यार्थिकनयेन। कस्मात्। कुण्डलादिपर्यायेषु सुवर्णस्येव भेदाभावात्। तं पज्जयट्ठिएण पुणो तद्द्रव्यं पर्यायार्थिकनयेन

अन्यपना है। इसप्रकार द्रव्यको अन्यपना होनेसे द्रव्यके असत्-उत्पाद है,–ऐसा निश्चित होता है॥११३॥

अब, एक ही द्रव्यके अनन्यपना और अनन्यपना होनेमें जो विरोध है, उसे दूर करते हैं। (अर्थात् उसमें विरोध नहीं आता, यह बतलाते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[**द्रव्यार्थिकेन**] द्रव्यार्थिक (नय) से [**सर्वं**] सब [**द्रव्यं**] द्रव्य है; [**पुनः च**] और [**पर्यायार्थिकेन**] पर्यायार्थिक (नय) से [**तत्**] वह (द्रव्य) [**अन्यत्**] अन्य-अन्य है, [**तत्काले तन्मयत्वात्**] क्योंकि उस समय तन्मय होनेसे [**अनन्यत्**] (द्रव्य पर्यायोंसे) अनन्य है॥११४॥

टीका :—वास्तवमें सभी वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होनेसे वस्तुका स्वरूप देखनेवालोंके क्रमशः (१) सामान्य और (२) विशेषको जाननेवाली दो आँखें हैं—(१) द्रव्यार्थिक और (२) पर्यायार्थिक।

द्रव्यार्थिके बधुं द्रव्य छे; ने ते ज पर्यायार्थिके
छे अन्य, जेथी ते समय तद्रूप होई अनन्य छे. ११४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

मेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन द्रव्यार्थिकेन यदावलोक्यते तदा नारकतिर्यङ्-मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकेषु विशेषेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यमेकमवलोकयतामनवलोकितविशेषाणां तत्सर्वं जीवद्रव्यमिति प्रतिभाति। यदा तु द्रव्यार्थिकमेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन पर्यायार्थिकेनावलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यवस्थितान्नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकान् विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्यदन्यत्प्रतिभाति, द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेनानन्यत्वात्, गणतृणपर्णदारुमयहव्यवाहवत्। यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदा नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते। तत्रैकचक्षुरव-

---

पुनः अण्णं अन्यद्भिन्नमनेकं पर्यायैः सह पृथग्भवति। कस्मादिति चेत्। तक्काले तम्मयत्तादो तृणाग्नि-काष्ठाग्निपत्राग्निवत् स्वकीयपर्यायैः सह तत्काले तन्मयत्वादिति। एतावता किमुक्तं भवति। द्रव्यार्थिक-नयेन यदा वस्तुपरीक्षा क्रियते तदा पर्यायसन्तानरूपेण सर्वं पर्यायकदम्बकं द्रव्यमेव प्रतिभाति। यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते तदा द्रव्यमपि पर्यायरूपेण भिन्नं भिन्नं प्रतिभाति। यदा च परस्परसापेक्ष-नयद्वयेन युगपत्समीक्ष्यते, तदैकत्वमनेकत्वं च युगपत्प्रतिभातीति। यथेदं जीवद्रव्ये व्याख्यानं कृतं तथा

इनमेंसे पर्यायार्थिक चक्षुको सर्वथा बन्द करके जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षुके द्वारा देखा जाता है तब नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना—वह पर्यायस्वरूप विशेषोंमें रहनेवाले एक जीवसामान्यको देखनेवाले और विशेषोंको न देखनेवाले जीवोंको 'वह सब जीव द्रव्य है' ऐसा भासित होता है। और जब द्रव्यार्थिक चक्षुको सर्वथा बन्द करके मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षुके द्वारा देखा जाता है तब जीवद्रव्यमें रहनेवाले नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना—वे पर्यायस्वरूप अनेक विशेषोंको देखनेवाले और सामान्यको न देखनेवाले जीवोंको (वह जीव द्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है, क्योंकि द्रव्य उन-उन विशेषोंके समय तन्मय होनेसे उन-उन विशेषोंसे अनन्य है—कण्डे, घास, पत्ते और काष्ठमय अग्निकी भाँति। (जैसे घास, लकड़ी इत्यादिकी अग्नि उस-उस समय घासमय, लकडीमय इत्यादि होनेसे घास, लकड़ी इत्यादिसे अनन्य है उसीप्रकार द्रव्य उन-उन पर्यायरूप विशेषोंके समय तन्मय होनेसे उनसे अनन्य है—पृथक् नहीं है।) और जब उन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों आँखोंको एक ही साथ खोलकर उनके द्वारा और इनके द्वारा (-द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक चक्षुओंके) देखा जाता है तब नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना पर्यायोंमें रहनेवाला जीवसामान्य तथा जीवसामान्यमें रहनेवाला नारकपना-तिर्यंचपना-मनुष्यपना-देवपना और सिद्धत्वपर्यायस्वरूप विशेष तुल्यकालमें ही (एक ही साथ) दिखाई देते हैं।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

लोकनमेकदेशावलोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकनम्। ततः सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वानन्यत्वं च न विप्रतिषिध्यते॥११४॥

अथ सर्वविप्रतिषेधनिषेधिकां सप्तभंगीमवतारयति—

अत्थि त्ति य णत्थि त्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं।
पज्जाएण दु केण वि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा॥११५॥

सर्वद्रव्येषु यथासंभवं ज्ञातव्यमित्यर्थः॥११४॥ एवं सदुत्पादासदुत्पादकथनेन प्रथमा, सदुत्पादविशेषविवरणरूपेण द्वितीया, तथैवासदुत्पादविशेषविवरणरूपेण तृतीया, द्रव्यपर्याययोरेकत्वानेकत्वप्रतिपादनेन चतुर्थीति सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन सप्तमस्थलं गतम्। अथ समस्तदुर्नयैकान्तरूपविवादनिषेधिकां नयसप्तभङ्गीं विस्तारयति—**अत्थि त्ति य** स्यादस्त्येव। स्यादिति

वहाँ, एक आँखसे देखा जाना वह एकदेश अवलोकन है और दोनों आँखोंसे देखना वह सर्वावलोकन (-सम्पूर्ण अवलोकन) है। इसलिये सर्वावलोकनमें द्रव्यके अन्यत्व और अनन्यत्व विरोधको प्राप्त नहीं होते।

भावार्थ :—प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेषात्मक है, इसलिये प्रत्येक द्रव्य वहका वही रहता है और बदलता भी है। द्रव्यका स्वरूप ही ऐसा उभयात्मक होनेसे द्रव्यके अनन्यत्वमें और अन्यत्वमें विरोध नहीं है। जैसे-मरीचि और भगवान महावीरका जीवसामान्यकी अपेक्षासे अनन्यत्व और जीव विशेषोंकी अपेक्षासे अन्यत्व होनेमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है।

द्रव्यार्थिकनयरूपी एक चक्षुसे देखने पर द्रव्यसामान्य ही ज्ञात होता है, इसलिये द्रव्य अनन्य अर्थात् वहका वही भासित होता है और पर्यायार्थिकनयरूपी दूसरी एक चक्षुसे देखने पर द्रव्यके पर्यायरूप विशेष ज्ञात होते हैं, इसलिये द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है। दोनों नयरूपी दोनों चक्षुओंसे देखने पर द्रव्यसामान्य और द्रव्यके विशेष दोनों ज्ञात होते हैं, इसलिये द्रव्य अनन्य तथा अन्य-अन्य दोनों भासित होता है॥११४॥

अब, समस्त विरोधोंको दूर करनेवाली सप्तभंगी प्रगट करते हैं :—

अस्ति, तथा छे नास्ति, तेम ज द्रव्य अणवक्तव्य छे,
वळी उभय को पर्यायथी, वा अन्यरूप कथाय छे. ११५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अस्तीति च नास्तीति च भवत्यवक्तव्यमिति पुनर्द्रव्यम्।
पर्यायेण तु केनचित् तदुभयमादिष्टमन्यद्वा॥११५॥

स्यादस्त्येव १, स्यान्नास्त्येव २, स्यादवक्तव्यमेव ३, स्यादस्तिनास्त्येव ४, स्यादस्त्यवक्तव्यमेव ५, स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव ६, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यमेवेति ७, स्वरूपेण १, पररूपेण २, स्वपररूपयौगपद्येन ३, स्वपररूपक्रमेण ४, स्वरूपस्वपररूपयौगपद्याभ्यां ५, पररूपस्वपररूपयौगपद्याभ्यां ६, स्वरूपपररूपस्वपररूपयौगपद्यैः ७, आदिश्यमानस्य स्वरूपेण

कोऽर्थः। कथंचित्। कथंचित्कोऽर्थः। विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन। तच्चतुष्टयं शुद्धजीवविषये कथ्यते। शुद्धगुणपर्यायाधारभूतं शुद्धात्मद्रव्यं द्रव्यं भण्यते, लोकाकाशप्रमिताः शुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमयः कालो भण्यते, शुद्धचैतन्यं भावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टय इति प्रथमभङ्गः १। णत्थि त्ति य स्यान्नास्त्येव। स्यादिति

अन्वयार्थ :—[द्रव्यं] द्रव्य [अस्ति इति च] किसी पर्यायसे 'अस्ति', [नास्ति इति च] किसी पर्यायसे 'नास्ति' [पुनः] और [अवक्तव्यम् इति भवति] किसी पर्यायसे 'अवक्तव्य' है, [केनचित् पर्यायेण तु तदुभयं] और किसी पर्यायसे 'अस्ति-नास्ति' [वा] अथवा [अन्यत् आदिष्टम्] किसी पर्यायसे अन्य तीन भंगरूप कहा गया है॥११५॥

टीका :—द्रव्य (१) स्वरूपापेक्षासे [१]'स्यात् अस्ति'; (२) पररूपकी अपेक्षासे 'स्यात् नास्ति'; (३) स्वरूप-पररूपकी युगपत् अपेक्षासे 'स्यात् [२]अवक्तव्य'; (४) स्वरूप-पररूपके क्रमकी अपेक्षासे 'स्यात् अस्ति-नास्ति'; (५) स्वरूपकी और स्वरूप-पररूपकी युगपत् अपेक्षासे 'स्यात् अस्ति-अवक्तव्य'; (६) पररूपकी और स्वरूप-पररूपकी युगपत् अपेक्षासे 'स्यात् नास्ति', अवक्तव्य; और (७) स्वरूपकी, पररूपकी तथा स्वरूप-पररूपकी युगपत् अपेक्षासे 'स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य' है।

---

१. 'स्यात्' = कथंचित्; किसीप्रकार; किसी अपेक्षासे। (प्रत्येक द्रव्य स्वचतुष्टयकी अपेक्षासे—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षासे—'अस्ति' है। शुद्ध जीवका स्वचतुष्टय इसप्रकार है :—शुद्ध गुण-पर्यायोंका आधारभूत शुद्धात्मद्रव्य वह द्रव्य है; लोकाकाशप्रमाण शुद्ध असंख्यप्रदेश वह क्षेत्र है, शुद्ध पर्यायरूपसे परिणत वर्तमान समय वह काल है, और शुद्ध चैतन्य वह भाव है।)

२. अवक्तव्य = जो कहा न जा सके। (एक ही साथ स्वरूप तथा पररूपकी अपेक्षासे द्रव्य कथनमें नहीं आ सकता, इसलिये 'अवक्तव्य है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सतः, पररूपेणासतः, स्वपररूपाभ्यां युगपद्वक्तुमशक्यस्य, स्वपररूपाभ्यां क्रमेण सतोऽसतश्च, स्वरूपस्वपररूपयौगपद्याभ्यां सतो वक्तुमशक्यस्य च, पररूपस्वपररूपयौगपद्याभ्यामसतो वक्तुमशक्यस्य च, स्वरूपपररूपस्वपररूपयौगपद्यैः सतोऽसतो वक्तुमशक्यस्य चानन्तधर्मणो द्रव्यस्यैकैकं धर्ममाश्रित्य विवक्षिताविवक्षितविधिप्रतिषेधाभ्यामवतरन्ती सप्तभंगिकैवकारविश्रान्तम-

---

कोऽर्थः। कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयेन २। ह्वदि भवति। कथंभूतम्। अवत्तव्वमिदि स्यादवक्तव्यमेव। स्यादिति कोऽर्थः। कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन ३। स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यं, स्यादस्तिनास्ति, स्यादस्त्येवावक्तव्यं, स्यान्नास्त्येवावक्तव्यं, स्यादस्तिनास्त्येवावक्तव्यम्। पुणो पुनः इत्थंभूतम् किं भवति। दव्वं परमात्मद्रव्यं कर्तृ। पुनरपि कथंभूतं भवति। तदुभयं स्यादस्तिनास्त्येव। स्यादिति कोऽर्थः। कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन ४। कथंभूतं सदित्थमित्थं भवति। आदिट्ठं आदिष्टं विवक्षितं सत्। केन कृत्वा। पज्जाएण दु पर्यायेण तु प्रश्नोत्तररूपनयविभागेन तु। कथंभूतेन। केण वि केनापि विवक्षितेन नैगमादिनयरूपेण। अण्णं वा अन्यद्वा संयोगभङ्गत्रयरूपेण। तत्कथ्यते—स्यादस्त्येवावक्तव्यं। स्यादिति कोऽर्थः। कथंचित् विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन च ५। स्यान्नास्त्येवावक्तव्यं। स्यादिति कोऽर्थः। कथंचित् विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयेन युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन च ६। स्यादस्तिनास्त्येवावक्तव्यं। स्यादिति कोऽर्थः। कथंचित् विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन च ७। पूर्वं पञ्चास्तिकाये स्यादस्तीत्यादिप्रमाणवाक्येन प्रमाणसप्तभङ्गी व्याख्याता, अत्र तु स्यादस्त्येव, यदेवकारग्रहणं तन्नयसप्तभङ्गीज्ञापनार्थमिति भावार्थः। यथेदं नयसप्तभङ्गीव्याख्यानं शुद्धात्मद्रव्ये दर्शितं तथा यथासंभवं

द्रव्यका कथन करनेमें, (१) जो स्वरूपसे 'सत्' है; (२) जो पररूपसे 'असत्' है; (३) जिसका स्वरूप और पररूपसे युगपत् 'कथन अशक्य' है; (४) जो स्वरूपसे और पररूपसे क्रमशः 'सत् और असत्' है; (५) जो स्वरूपसे, और स्वरूप-पररूपसे युगपत् 'सत् और अवक्तव्य' है; (६) जो पररूपसे, और स्वरूप-पररूपसे युगपत् 'असत् और अवक्तव्य' है; तथा (७) जो स्वरूपसे पर-रूप और स्वरूप-पररूपसे युगपत् 'सत्', 'असत्' और 'अवक्तव्य' है—ऐसे अनन्त धर्मोंवाले द्रव्यके एक एक धर्मका आश्रय लेकर [१]विवक्षित-अविवक्षितताके विधि-निषेधके द्वारा प्रगट होनेवाली

---

१. विवक्षित (कथनीय) धर्मको मुख्य करके उसका प्रतिपादन करनेसे और अविवक्षित (न कहने योग्य) धर्मको गौण करके उसका निषेध करनेसे सप्तभंगी प्रगट होती है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्रान्तसमुच्चार्यमाणस्यात्कारामोघमन्त्रपदेन समस्तमपि विप्रतिषेधविषमोहमुदस्यति॥११५॥

अथ निर्धार्यमाणत्वेनोदाहरणीकृतस्य जीवस्य मनुष्यादिपर्यायाणां क्रियाफलत्वेनान्यत्वं द्योतयति—

एसो त्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिप्फलो परमो॥११६॥

सर्वपदार्थेषु द्रष्टव्यमिति॥११५॥ एवं नयसप्तभङ्गीव्याख्यानगाथयाष्टमस्थलं गतम्। एवं पूर्वोक्त-प्रकारेण प्रथमा नमस्कारगाथा, द्रव्यगुणपर्यायकथनरूपेण द्वितीया, स्वसमयपरसमयप्रतिपादनेन तृतीया, द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयसूचनरूपेण चतुर्थीति स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन पीठिकास्थलम्। तदनन्तरमवान्तरसत्ताकथनरूपेण प्रथमा, महासत्तारूपेण द्वितीया, यथा द्रव्यं स्वभावसिद्धं तथा सत्तागुणोऽपीति कथनरूपेण तृतीया, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वेऽपि सत्तैव द्रव्यं भवतीति कथनेन चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन सत्तालक्षणविवरणमुख्यता। तदनन्तरमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणविवरणमुख्यत्वेन गाथात्रयं, तदनन्तरं द्रव्यपर्यायकथनेन गुणपर्यायकथनेन च गाथाद्वयं, ततश्च द्रव्यस्यास्तित्वस्थापनारूपेण प्रथमा,

---

सप्तभंगी सतत् सम्यक्तया उच्चारित करने पर [१]स्यात्काररूपी अमोघ मंत्र पदके द्वारा [२]'एव' कारमें रहनेवाले समस्त विरोधविषके मोहको दूर करती है॥११५॥

अब, जिसका निर्धार करना है, इसलिये जिसे उदाहरणरूप बनाया गया है ऐसे जीवकी मनुष्यादि पर्यायें क्रियाका फल हैं इसलिये उनका अन्यत्व (अर्थात् वे पर्यायें बदलती रहती हैं, इसप्रकार) प्रकाशित करते हैं :—

---

१. स्याद्वादमें अनेकान्तका सूचक 'स्यात्' शब्द सम्यक्तया प्रयुक्त होता है। वह 'स्यात् पद एकान्तवादमें रहनेवाले समस्त विरोधरूपी विषके भ्रमको नष्ट करनेके लिये रामबाण मंत्र है।

२. अनेकान्तात्मक वस्तुस्वभावकी अपेक्षासे रहित एकान्तवादमें मिथ्या एकान्तको सूचित करता हुआ जो 'एव' या 'ही' शब्द प्रयुक्त होता है वह वस्तुस्वभावसे विपरीत निरूपण करता है, इसलिये उसका यहाँ निषेध किया है। (अनेकान्तात्मक वस्तुस्वभावका ध्यान चूके बिना, जिस अपेक्षासे वस्तुका कथन चल रहा हो उस अपेक्षासे उसका निर्णीतत्त्व—नियमबद्धत्व—निरपवादत्व बतलानेके लिये 'एव' या 'ही' शब्द प्रयुक्त होता है, उसका यहाँ निषेध नहीं समझना चाहिये।)

नथी 'आ ज' अेवो कोई, ज्यां किरिया स्वभाव–निपन्न छे;
किरिया नथी फलहीन, जो निष्फळ धरम उत्कृष्ट छे. ११६.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एष इति नास्ति कश्चिन्न नास्ति क्रिया स्वभावनिर्वृत्ता।
क्रिया हि नास्त्यफला धर्मो यदि निःफलः परमः॥११६॥

इह हि संसारिणो जीवस्यानादिकर्मपुद्गलोपाधिसन्निधिप्रत्ययप्रवर्तमानप्रतिक्षण-विवर्तनस्य क्रिया किल स्वभावनिर्वृत्तैवास्ति। ततस्तस्य मनुष्यादिपर्यायेषु न कश्चनाप्येष एवेति टंकोत्कीर्णोऽस्ति, तेषां पूर्वपूर्वोपमर्दप्रवृत्तक्रियाफलत्वेनोत्तरोत्तरोपमर्द्यमानत्वात्; फल-

---

पृथक्त्वलक्षणस्यातद्भावाभिधानान्यत्वलक्षणस्य च कथनरूपेण द्वितीया, संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदरूप-स्यातद्भावस्य विवरणरूपेण तृतीया, तस्यैव दृढीकरणार्थं चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन सत्ताद्रव्ययोर-भेदविषये युक्तिकथनमुख्यता। तदनन्तरं सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिकथनेन प्रथमा, गुणपर्यायाणां द्रव्येण सहाभेदकथनेन द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयम्। तदनन्तरं द्रव्यस्य सदुत्पादासदुत्पादयोः सामान्यव्याख्यानेन विशेषव्याख्यानेन च गाथाचतुष्टयं, ततश्च सप्तभङ्गीकथनेन गाथैका चेति समुदायेन

अन्वयार्थ :—[**एषः इति कश्चित् नास्ति**] (मनुष्यादिपर्यायोंमें) 'यही' ऐसी कोई (शाश्वत पर्याय) नहीं हैं; [**स्वभावनिर्वृत्ता क्रिया नास्ति न**] (क्योंकि संसारी जीवके) स्वभावनिष्पन्न क्रिया नहीं हो सो बात नहीं है; (अर्थात् विभावस्वभावसे उत्पन्न होनेवाली राग-द्वेषमय क्रिया अवश्य है।) [**यदि**] और यदि [**परमः धर्मः निःफलः**] परमधर्म अफल है तो [**क्रिया हि अफला नास्ति**] क्रिया अवश्य अफल नहीं है; (अर्थात् एक वीतराग भाव ही मनुष्यादिपर्यायरूप फल उत्पन्न नहीं करती; राग-द्वेषमय क्रिया तो अवश्य वह फल उत्पन्न करती है।)॥११६॥

टीका :—यहाँ (इस विश्वमें), अनादिकर्मपुद्गलकी उपाधिके सद्भावके आश्रय (-कारण) से जिसके प्रतिक्षण [१]विवर्त्तन होता रहता है ऐसे संसारी जीवको क्रिया वास्तवमें स्वभाव निष्पन्न ही है; इसलिये उसके मनुष्यादिपर्यायोंमेंसे कोई भी पर्याय 'यही' है ऐसी टंकोत्कीर्ण नहीं है; क्योंकि वे पर्यायें पूर्व-पूर्व पर्यायोंके नाशमें प्रवर्तमान क्रिया फलरूप होनेसे [२]उत्तर-उत्तर पर्यायोंके द्वारा नष्ट होती हैं। और क्रियाका फल तो, मोहके साथ [३]मिलनका नाश

---

१. विवर्तन = विपरिणमन; पलटा (फेरफार) होते रहना।

२. उत्तर-उत्तर = बादकी। (मनुष्यादिपर्यायें रागद्वेषमय क्रियाकी फलरूप हैं, इसलिये कोई भी पर्याय पूर्व पर्यायको नष्ट करती है और बादकी पर्यायसे स्वयं नष्ट होती है।

३. मिलन = मिल जाना; मिश्रितपना; संबंध; जुड़ान।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

मभिलष्येत वा मोहसंवलनाविलयनात् क्रियायाः। क्रिया हि तावच्चेतनस्य पूर्वोत्तरदशा-विशिष्टचैतन्यपरिणामात्मिका। सा पुनरणोरण्वन्तरसंगतस्य परिणतिरिवात्मनो मोहसंवलितस्य द्व्यणुककार्यस्येव मनुष्यादिकार्यस्य निष्पादकत्वात्सफलैव। सैव मोहसंवलनविलयने पुन-

---

चतुर्विंशतिगाथाभिरष्टभिः स्थलैः सामान्यज्ञेयव्याख्यानमध्ये सामान्यद्रव्यप्ररूपणं समाप्तम्। अतः परं तत्रैव सामान्यद्रव्यनिर्णयमध्ये सामान्यभेदभावनामुख्यत्वेनैकादशगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तत्र क्रमेण पञ्चस्थलानि भवन्ति। प्रथमतस्तावद्वार्तिकव्याख्यानाभिप्रायेण सांख्यैकान्तनिराकरणं, अथवा शुद्धनिश्चयनयेन जैनमतमेवेति व्याख्यानमुख्यतया 'एसो त्ति णत्थि कोई' इत्यादि सूत्रगाथैका। तदनन्तरं मनुष्यादिपर्याया निश्चयनयेन कर्मफलं भवति, न च शुद्धात्मस्वरूपमिति तस्यैवाधिकारसूत्रस्य विवरणार्थं 'कम्मं णामसमक्खं' इत्यादिपाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, ततः परं रागादिपरिणाम एव द्रव्यकर्मकारणत्वाद्भावकर्म भण्यत इति परिणाममुख्यत्वेन 'आदा कम्ममलिमसो' इत्यादिसूत्रद्वयं, तदनन्तरं कर्मफलचेतना कर्मचेतना ज्ञानचेतनेति त्रिविधचेतनाप्रतिपादनरूपेण 'परिणमदि चेदणाए' इत्यादिसूत्रत्रयं, तदनन्तरं शुद्धात्मभेदभावनाफलं कथयन् सन् 'कत्ताकरणं' इत्याद्येकसूत्रेणोपसंहरति। एवं भेदभावनाधिकारे स्थलपञ्चकेन समुदायपातनिका। तद्यथा—अथ नरनारकादिपर्यायाः कर्माधीनत्वेन विनश्वरत्वादिति शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्वरूपं न भवतीति भेदभावनां कथयति—**एसो त्ति णत्थि कोई** टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मद्रव्यवत्संसारे मनुष्यादिपर्यायेषु मध्ये सर्वदैवैष एकरूप एव नित्यः कोऽपि नास्ति। तर्हि मनुष्यादिपर्यायनिर्वर्तिका संसारक्रिया सापि न भविष्यति। **ण णत्थि किरिया** न नास्ति क्रिया मिथ्यात्वरागादिपरिणतिस्संसारः कर्मेति यावत् इति पर्यायनामचतुष्टयरूपा क्रियास्त्येव। सा च कथंभूता। **सभावणिव्वत्ता** शुद्धात्मस्वभावाद्विपरीतापि नरनारकादिविभावपर्यायस्वभावेन निर्वृत्ता। तर्हि किं निष्फला भविष्यति। **किरिया हि णत्थि अफला** क्रिया हि नास्त्यफला सा मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपा क्रिया यद्यप्यनन्तसुखादिगुणात्मकमोक्षकार्यं प्रति निष्फला तथापि नानादुःखदायकस्वकीयकार्यभूतमनुष्यादिपर्यायनिर्वर्तकत्वात्सफलेति मनुष्यादि-पर्यायनिष्पत्तिरेवास्याः फलम्। कथं ज्ञायत इति चेत्। **धम्मो जदि णिप्फलो परमो** धर्मो यदि निष्फलः

न हुआ होनेसे मानना चाहिये; क्योंकि—प्रथम तो, क्रिया चेतनकी पूर्वोत्तरदशासे [१]विशिष्ट चैतन्यपरिणामस्वरूप है; और वह (क्रिया)—जैसे दूसरे अणुके साथ युक्त (किसी) अणुकी परिणति [२]द्विअणुककार्यकी निष्पादक है, उसी प्रकार—मोहके साथ मिलित आत्माके संबंधमें,

---

१. विशिष्ट-भेदयुक्त। (पूर्वकी और पश्चात्की अवस्थाके भेदसे भेदयुक्त ऐसे चैतन्यपरिणाम वह आत्माकी क्रिया है।)

२. द्विअणुककार्यकी निष्पादक = दो अणुओंसे बने हुये स्कंधरूप कार्यकी उत्पादक।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

रणोरुच्छिन्नाण्वन्तरसंगमस्य परिणतिरिव द्व्यणुककार्यस्येव मनुष्यादिकार्यस्यानिष्पादकत्वात् परमद्रव्यस्वभावभूततया परमधर्माख्या भवत्यफलैव।।११६।।

अथ मनुष्यादिपर्यायाणां जीवस्य क्रियाफलत्वं व्यनक्ति—

कम्मं णामसमक्खं सभावमध अप्पणो सहावेण।
अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि।।११७।।

परमः नीरागपरमात्मोपलम्भपरिणतिरूपः आगमभाषया परमयथाख्यातचारित्ररूपो वा योऽसौ परमो धर्मः, स केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकत्वात्सफलोऽपि नरनारकादि-पर्यायकारणभूतं ज्ञानावरणादिकर्मबन्धं नोत्पादयति, ततः कारणान्निष्फलः। ततो ज्ञायते नरनारकादिसंसारकार्यं मिथ्यात्वरागादिक्रियायाः फलमिति। अथवास्य सूत्रस्य द्वितीयव्याख्यानं क्रियते—यथा शुद्धनयेन रागादिविभावेन न परिणमत्ययं जीवस्तथैवाशुद्धनयेनापि न परिणमतीति यदुक्तं सांख्येन तन्निराकृतम्। कथमिति चेत्। अशुद्धनयेन मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणत-जीवानां नरनारकादिपर्यायपरिणतिदर्शनादिति। एवं प्रथमस्थले सूत्रगाथा गता।।११६।। अथ

मनुष्यादिकार्यकी निष्पादक होनेसे सफल ही है; और, जैसे दूसरे अणुके साथ संबंध जिसका नष्ट हो गया है ऐसे अणुकी परिणति द्विअणुक कार्यकी निष्पादक नहीं है उसीप्रकार, मोहके साथ मिलनका नाश होने पर वही क्रिया—द्रव्यकी परमस्वभावभूत होनेसे 'परमधर्म' नामसे कही जानेवाली ऐसी—मनुष्यादिकार्यकी निष्पादक न होनेसे अफल ही है।

भावार्थ :—चैतन्यपरिणति वह आत्माकी क्रिया है। मोह रहित क्रिया मनुष्यादि-पर्यायरूप फल उत्पन्न नहीं करती, और मोह सहित [१]क्रिया अवश्य मनुष्यादिपर्यायरूप फल उत्पन्न करती है। मोह सहित भाव एक प्रकारके नहीं होते, इसलिये उसके फलरूप मनुष्यादिपर्यायें भी टंकोत्कीर्ण–शाश्वत–एकरूप नहीं होतीं।। ११६।।

अब, यह व्यक्त करते हैं कि मनुष्यादिपर्यायें जीवको क्रियाके फल हैं :—

---

१. मूल गाथामें प्रयुक्त 'क्रिया' शब्दसे मोह सहित क्रिया समझनी चाहिये। मोह रहित क्रियाको तो 'परम धर्म' नाम दिया गया है।

नामाख्य कर्म स्वभावथी निज जीवद्रव्य-स्वभावने
अभिभूत करी तिर्यंच, देव, मनुष्य वा नारक करे. ११७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

कर्म नामसमाख्यं स्वभावमथात्मनः स्वभावेन।
अभिभूय नरं तिर्यञ्चं नैरयिकं वा सुरं करोति॥११७॥

क्रिया खल्वात्मना प्राप्यत्वात्कर्म। तन्निमित्तप्राप्तपरिणामः पुद्गलोऽपि कर्म। तत्कार्यभूता मनुष्यादिपर्याया जीवस्य क्रियाया मूलकारणभूतायाः प्रवृत्तत्वात् क्रियाफलमेव स्युः, क्रियाऽभावे पुद्गलानां कर्मत्वाभावात्तत्कार्यभूतानां तेषामभावात्। अथ कथं ते कर्मणः कार्यभावमायान्ति? कर्मस्वभावेन जीवस्वभावमभिभूय क्रियमाणत्वात्, प्रदीपवत्। तथा हि—यथा खलु ज्योतिस्वभावेन तैलस्वभावमभिभूय क्रियमाणः प्रदीपो ज्योतिष्कार्यं, तथा

मनुष्यादिपर्यायाः कर्मजनिता इति विशेषेण व्यक्तीकरोति—**कम्मं** कर्मरहितपरमात्मनो विलक्षणं कर्म कर्तृ। किंविशिष्टम्। **णामसमक्खं** निर्नामनिर्गोत्रमुक्तात्मनो विपरीतं नामेति सम्यगाख्या संज्ञा यस्य तद्भवति नामसमाख्यं नामकर्मेत्यर्थः। **सभावं** शुद्धबुद्धैकपरमात्मस्वभावं **अह** अथ **अप्पणो सहावेण** आत्मीयेन ज्ञानावरणादिस्वकीयस्वभावेन करणभूतेन **अभिभूय** तिरस्कृत्य प्रच्छाद्य **तं** पूर्वोक्तमात्मस्वभावम्। पश्चात्किं करोति। **णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि** नरतिर्यग्नारक-सुररूपं करोतीति। अयमत्रार्थः—यथाग्निः कर्ता तैलस्वभावं कर्मतापन्नमभिभूय तिरस्कृत्य

अन्वयार्थ :—[अथ] वहाँ [नामसमाख्यं कर्म] 'नाम' संज्ञावाला कर्म [स्वभावेन] अपने स्वभावसे [आत्मनः स्वभावं अभिभूय] जीवके स्वभावका पराभव करके, [नरं तिर्यञ्चं नैरयिकं वा सुरं] मनुष्य, तिर्यंच, नारक अथवा देव (-इन पर्यायोंको) [करोति] करता है॥११७॥

टीका :—क्रिया वास्तवमें आत्माके द्वारा प्राप्य होनेसे कर्म है, (अर्थात् आत्मा क्रियाको प्राप्त करता है—पहुँचता है इसलिये वास्तवमें क्रिया ही आत्माका कर्म है।) उसके निमित्तसे परिणमन को प्राप्त होता हुआ (-द्रव्यकर्मरूपसे परिणमन करता हुआ) पुद्गल भी कर्म है। उस (पुद्गलकर्म) की कार्यभूत मनुष्यादिपर्यायें मूलकारणभूत ऐसी जीवकी क्रियासे प्रवर्तमान होनेसे क्रियाफल ही हैं; क्योंकि क्रियाके अभावमें पुद्गलोंको कर्मपनेका अभाव होनेसे उस (-पुद्गलकर्म) की कार्यभूत मनुष्यादिपर्यायोंका अभाव होता है।

वहाँ, वे मनुष्यादिपर्यायें कर्मके कार्य कैसे हैं? (सो कहते हैं कि—) वे कर्मस्वभावके द्वारा जीवके स्वभावका पराभव करके की जाती हैं, इसलिये दीपककी भाँति। वह इस प्रकार :—जैसे [१]ज्योति (लौ) के स्वभावके द्वारा तेलके स्वभावका पराभव करके

---

१. ज्योति = ज्योत; अग्नि।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

कर्मस्वभावेन जीवस्वभावमभिभूय क्रियमाणा मनुष्यादिपर्यायाः कर्मकार्यम् ॥११७॥

अथ कुतो मनुष्यादिपर्यायेषु जीवस्य स्वभावाभिभवो भवतीति निर्धारयति—

णरणारयतिरियसुरा जीवा खलु णामकम्मणिव्वत्ता।
ण हि ते लद्धसहावा परिणममाणा सकम्माणि ॥११८॥

नरनारकतिर्यक्सुरा जीवाः खलु नामकर्मनिर्वृत्ताः।
न हि ते लब्धस्वभावाः परिणममानाः स्वकर्माणि ॥११८॥

वर्त्याधारेण दीपशिखारूपेण परिणमयति, तथा कर्माग्निः कर्ता तैलस्थानीयं शुद्धात्मस्वभावं तिरस्कृत्य वर्तिस्थानीयशरीराधारेण दीपशिखास्थानीयनरनारकादिपर्यायरूपेण परिणमयति। ततो ज्ञायते मनुष्यादिपर्यायाः निश्चयनयेन कर्मजनिता इति ॥११७॥ अथ नरनारकादिपर्यायेषु कथं जीवस्य स्वभावाभिभवो जातस्तत्र किं जीवाभाव इति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति—**णरणारयतिरियसुरा जीवा** नरनारकतिर्यक्सुरनामानो जीवाः सन्ति तावत्। **खलु** स्फुटम्। कथंभूताः। **णामकम्मणिव्वत्ता** नरनारकादिस्वकीयस्वकीयनामकर्मणा निर्वृत्ताः। **ण हि ते लद्धसहावा** किंतु यथा माणिक्यबद्धसुवर्ण-कङ्कणेषु माणिक्यस्य हि मुख्यता नास्ति, तथा ते जीवाश्चिदानन्दैकशुद्धात्मस्वभावमलभमानाः सन्तो

किया जानेवाला दीपक ज्योतिका कार्य है, उसीप्रकार कर्मस्वभावके द्वारा जीवके स्वभावका पराभव करके की जानेवाली मनुष्यादिपर्यायें कर्मके कार्य हैं।

भावार्थ :—मनुष्यादिपर्यायें ११६वीं गाथामें कही गई राग-द्वेषमय क्रियाके फल हैं; क्योंकि उस क्रियासे कर्मबन्ध होता है, और कर्म जीवके स्वभावका पराभव करके मनुष्यादिपर्यायोंको उत्पन्न करते हैं ॥११७॥

अब यह निर्णय करते हैं कि मनुष्यादिपर्यायोंमें जीवके स्वभावका पराभव किस कारणसे होता है? :—

अन्वयार्थ :—[**नरनारकतिर्यक्सुराः जीवाः**] मनुष्य, नारक, तिर्यंच और देवरूप जीव [**खलु**] वास्तवमें [**नामकर्म निर्वृत्ताः**] नामकर्मसे निष्पन्न हैं। [**हि**] वास्तवमें [**स्वकर्माणि**] वे अपने कर्मरूपसे [**परिणममानाः**] परिणमित होते हैं इसलिये [**ते न लब्धस्वभावाः**] उन्हें स्वभावकी उपलब्धि नहीं है ॥११८॥

तिर्यंच-सुर-नर-नारकी जीव नामकर्म-निपन्न छे;
निज कर्मरूप परिणमनथी ज स्वभावलब्धि न तेमने. ११८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अमी मनुष्यादयः पर्याया नामकर्मनिर्वृत्ताः सन्ति तावत्। न पुनरेतावतापि तत्र जीवस्य स्वभावाभिभवोऽस्ति, यथा कनकबद्धमाणिक्यकंकणेषु माणिक्यस्य। यत्तत्र नैव जीवः स्वभावमुपलभते तत् स्वकर्मपरिणमनात्, पयःपूरवत्। यथा खलु पयःपूरः प्रदेशस्वादाभ्यां पिचुमन्दचन्दनादिवनराजीं परिणमन्न द्रवत्वस्वादुत्वस्वभावमुपलभते, तथात्मापि प्रदेशभावाभ्यां कर्मपरिणमनान्नामूर्तत्वनिरुपरागविशुद्धिमत्त्वस्वभावमुपलभते॥११८॥

लब्धस्वभावा न भवन्ति, तेन कारणेन स्वभावाभिभवो भण्यते, न च जीवाभावः। **कथंभूताः** सन्तो लब्धस्वभावा न भवन्ति। **परिणममाणा सकम्माणि** स्वकीयोदयागतकर्माणि सुखदुःखरूपेण परिणममाना इति। अयमत्रार्थः—यथा वृक्षसेचनविषये जलप्रवाहश्चन्दनादिवनराजिरूपेण परिणतः सन्स्वकीय-

---

टीका :—प्रथम तो, यह मनुष्यादिपर्यायें नामकर्मसे निष्पन्न हैं, किन्तु इतनेसे भी वहाँ जीवके स्वभावका पराभव नहीं है; जैसे कनकबद्ध (सुवर्णमें जड़े हुये) माणिकवाले कंकणोंमें माणिकके स्वभावका पराभव नहीं होता तदनुसार। जो वहाँ जीव स्वभावको उपलब्ध नहीं करता–अनुभव नहीं करता सो स्वकर्मरूप परिणमित होनेसे है, पानीके पूर (बाढ़) की भाँति। जैसे पानीका पूर प्रदेशसे और स्वादसे निम्ब-चन्दनादिवनराजिरूप (नीम, चन्दन इत्यादि वृक्षोंकी लम्बी पंक्तिरूप) परिणमित होता हुआ (अपने [१]द्रवत्व और [२]स्वादुत्वरूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता, उसीप्रकार आत्मा भी प्रदेशसे और भावसे स्वकर्मरूप परिणमित होनेसे (अपने) अमूर्तत्व और [३]निरुपराग विशुद्धिमत्वरूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता।

भावार्थ :—मनुष्यादिपर्यायोंमें कर्म कहीं जीवके स्वभावको न तो हनता है और न आच्छादित करता है; परन्तु वहाँ जीव स्वयं ही अपने दोषसे कर्मानुसार परिणमन करता है, इसलिये उसे अपने स्वभावकी उपलब्धि नहीं है। जैसे पानीका पूर प्रदेशकी अपेक्षासे वृक्षोंके रूपसे परिणमित होता हुआ अपने प्रवाहीपनेरूप स्वभावको उपलब्ध करता हुआ अनुभव नहीं करता, और स्वादकी अपेक्षासे वृक्षरूप परिणमित होता हुआ अपने स्वादिष्टपनेरूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता, उसीप्रकार आत्मा भी प्रदेशकी अपेक्षासे स्वकर्मानुसार परिणमित होता हुआ अपने अमूर्तस्वरूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता और भावकी अपेक्षासे स्वकर्मरूप परिणमित होता हुआ उपरागसे रहित विशुद्धिवालापनारूप अपने स्वभावको उपलब्ध नहीं करता। इससे यह निश्चित होता है कि मनुष्यादिपर्यायोंमें जीवोंको अपने ही दोषसे अपने

---

१. द्रवत्व = प्रवाहीपना।

२. स्वादुत्व = स्वादिष्टपना।

३. निरुपराग-विशुद्धिमत्व = उपराग (-मलिनता, विकार) रहित विशुद्धिवालापना [अरूपीपना और निर्विकार -विशुद्धिवालापना आत्माका स्वभाव है।]

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ जीवस्य द्रव्यत्वेनावस्थितत्वेऽपि पर्यायैरनवस्थितत्वं द्योतयति—

जायदि णेव ण णस्सदि खणभंगसमुब्भवे जणे कोई।
जो हि भवो सो विलओ संभवविलय त्ति ते णाणा॥११९॥

जायते नैव न नश्यति क्षणभङ्गसमुद्भवे जने कश्चित्।
यो हि भवः स विलयः संभवविलयाविति तौ नाना॥११९॥

इह तावन्न कश्चिज्जायते न म्रियते च। अथ च मनुष्यदेवतिर्यङ्नारकात्मको जीवलोकः प्रतिक्षणपरिणामित्वादुत्संगितक्षणभंगोत्पादः। न च विप्रतिषिद्धमेतत्, संभवविलययोरेकत्व-

---

कोमलशीतलनिर्मलादिस्वभावं न लभते, तथायं जीवोऽपि वृक्षस्थानीयकर्मोदयपरिणतः सन्परमाह्लादैकलक्षणसुखामृतास्वादनैर्मल्यादिस्वकीयगुणसमूहं न लभत इति॥११८॥ अथ जीवस्य द्रव्येण नित्यत्वेऽपि पर्यायेण विनश्वरत्वं दर्शयति—**जायदि णेव ण णस्सदि** जायते नैव न नश्यति द्रव्यार्थिकनयेन। क्व। **खणभंगसमुब्भवे जणे कोई** क्षणभङ्गसमुद्भवे जने कोऽपि। क्षणं क्षणं प्रति

स्वभावकी अनुपलब्धि है, कर्मादिक अन्य किसी कारणसे नहीं। 'कर्म जीवके स्वभावका पराभव करता है' ऐसा कहना तो उपचार कथन है; परमार्थसे ऐसा नहीं है॥११८॥

अब, जीवकी द्रव्यरूपसे [१]अवस्थितता होने पर भी पर्यायोंसे अनवस्थितता (अनित्यता-अस्थिरता) प्रकाशते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**क्षणभङ्गसमुद्भवे जने**] प्रतिक्षण उत्पाद और विनाशवाले जीवलोकमें [**कश्चित्**] कोई [**न एव जायते**] उत्पन्न नहीं होता और [**न नश्यति**] न नष्ट होता है; [**हि**] क्योंकि [**यः भवः सः विलयः**] जो उत्पाद है वही विनाश है; [**संभव-विलयौ इति तौ नाना**] और उत्पाद तथा विनाश, इसप्रकार वे अनेक (भिन्न) भी हैं॥११९॥

टीका :—प्रथम तो यहाँ न कोई जन्म लेता है और न मरता है (अर्थात् इस लोकमें कोई न तो उत्पन्न होता है और न नाशको प्राप्त होता है)। और (ऐसा होने पर भी) मनुष्य-देव-तिर्यंच-नारकात्मक जीवलोक प्रतिक्षण परिणामी होनेसे क्षण-क्षणमें होनेवाले विनाश और

---

१. अवस्थितता = स्थिरपना; ठीक रहना।

नहि कोई ऊपजे विणसे क्षणभंगसंभवमय जगे,
कारण जनम ते नाश छे; वळी जन्म नाश विभिन्न छे. ११९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

नानात्वाभ्याम्। यदा खलु भंगोत्पादयोरेकत्वं तदा पूर्वपक्षः, यदा तु नानात्वं तदोत्तरः। तथा हि—यथा य एव घटस्तदेव कुण्डमित्युक्ते घटकुण्डस्वरूपयोरेकत्वासंभवात्तदुभयाधारभूता मृत्तिका संभवति, तथा य एव संभवः स एव विलय इत्युक्ते संभवविलय-स्वरूपयोरेकत्वासंभवात्तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यं संभवति; ततो देवादिपर्याये संभवति मनुष्यादि-पर्याये विलीयमाने च य एव संभवः स एव विलय इति कृत्वा तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यवज्जीवद्रव्यं संभाव्यत एव। ततः सर्वदा द्रव्यत्वेन जीवष्टंकोत्कीर्णोऽवतिष्ठते। अपि च यथाऽन्यो घटोऽन्यत्कुण्डमित्युक्ते तदुभयाधारभूताया मृत्तिकाया अन्यत्वासंभवात् घटकुण्ड-स्वरूपे संभवतः, तथान्यः संभवोऽन्यो विलय इत्युक्ते तदुभयाधारभूतस्य ध्रौव्यस्यान्यत्वा-

---

भङ्गसमुद्भवो यत्र संभवति क्षणभङ्गसमुद्भवस्तस्मिन्क्षणभङ्गसमुद्भवे विनश्वरे पर्यायार्थिकनयेन जने लोके जगति कश्चिदपि, तस्मान्नैव जायते न चोत्पद्यत इति हेतुं वदति। **जो हि भवो सो विलओ** द्रव्यार्थिकनयेन यो हि भवस्स एव विलयो यतः कारणात्। तथाहि–मुक्तात्मनां य एव सकलविमलकेवलज्ञानादिरूपेण मोक्षपर्यायेण भव उत्पादः स एव निश्चयरत्नत्रयात्मकनिश्चयमोक्षमार्गपर्यायेण विलयो विनाशस्तौ च मोक्षपर्यायमोक्षमार्गपर्यायौ कार्यकारणरूपेण भिन्नौ, तदुभयाधारभूतं यत्परमात्मद्रव्यं तदेव, मृत्पिण्ड-

---

उत्पादके साथ (भी) जुड़ा हुआ है। और यह विरोधको प्राप्त नहीं होता; क्योंकि उद्भव और विलयका एकपना और अनेकपना है। जब उद्भव और विलयका एकपना है तब पूर्वपक्ष है, और जब अनेकपना है तब उत्तरपक्ष है। (अर्थात्–जब उत्पाद और विनाशके एकपनेकी अपेक्षा ली जाय तब यह पक्ष फलित होता है कि–'न तो कोई उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है; और जब उत्पाद तथा विनाशके अनेकपनेकी अपेक्षा ली जाय तब प्रतिक्षण होनेवाले विनाश और उत्पादका पक्ष फलित होता है।) वह इसप्रकार है :—

जैसे :—'जो घड़ा है वही कूँडा है' ऐसा कहा जाने पर, घड़े और कूँडेके स्वरूपका एकपना असम्भव होनेसे, उन दोनोंकी आधारभूत मिट्टी प्रगट होती है, उसीप्रकार 'जो उत्पाद है वही विनाश है' ऐसा कहा जाने पर उत्पाद और विनाशके स्वरूपका एकपना असम्भव होनेसे उन दोनोंका आधारभूत ध्रौव्य प्रगट होता है; इसलिये देवादिपर्यायके उत्पन्न होने और मनुष्यादिपर्यायके नष्ट होने पर, 'जो उत्पाद है वही विलय है' ऐसा माननेसे (इस अपेक्षासे) उन दोनोंका आधारभूत ध्रौव्यवान् जीवद्रव्य प्रगट होता है (-लक्षमें आता है) इसलिये सर्वदा द्रव्यपनेसे जीव टंकोत्कीर्ण रहता है।

और फिर, जैसे 'अन्य घड़ा है और अन्य कूँडा है' ऐसा कहा जाने पर उन दोनोंकी आधारभूत मिट्टीका अन्यपना (-भिन्न-भिन्नपना) असंभवित होनेसे घड़ेका और कूँडेका (-दोनोंका भिन्न-भिन्न) स्वरूप प्रगट होता है, उसीप्रकार 'अन्य उत्पाद है और अन्य व्यय

संभवात्संभवविलयस्वरूपे संभवतः; ततो देवादिपर्याये संभवति मनुष्यादिपर्याये विलीयमाने चान्यः संभवोऽन्यो विलय इति कृत्वा संभवविलयवन्तौ देवादिमनुष्यादिपर्यायौ संभाव्येते एव ततः प्रतिक्षणं पर्यायैर्जीवोऽनवस्थितः ॥११९॥

अथ जीवस्यानवस्थितत्वहेतुमुद्योतयति—

तम्हा दु णत्थि कोई सहावसमवट्ठिदो त्ति संसारे।
संसारो पुण किरिया संसरमाणस्स दव्वस्स॥१२०॥

तस्मात्तु नास्ति कश्चित् स्वभावसमवस्थित इति संसारे।
संसारः पुनः क्रिया संसरतो द्रव्यस्य॥१२०॥

घटाधारभूतमृत्तिकाद्रव्यवत् मनुष्यपर्यायदेवपर्यायाधारभूतसंसारिजीवद्रव्यवद्वा। क्षणभङ्गसमुद्भवे हेतुः कथ्यते। संभवविलय त्ति ते णाणा संभवविलयौ द्वाविति तौ नाना भिन्नौ यतः कारणात्ततः पर्यायार्थिकनयेन भङ्गोत्पादौ। तथाहि–य एव पूर्वोक्तमोक्षपर्यायस्योत्पादो मोक्षमार्गपर्यायस्य विनाशस्तावेव भिन्नौ न च तदाधारभूतपरमात्मद्रव्यमिति। ततो ज्ञायते द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायरूपेण विनाशोऽस्तीति॥११९॥ अथ विनश्वरत्वे कारणमुपन्यस्यति, अथवा प्रथमस्थलेऽधिकारसूत्रेण मनुष्यादिपर्यायाणां कर्मजनितत्वेन यद्विनश्वरत्वं सूचितं तदेव गाथात्रयेण विशेषेण

है' ऐसा कहा जाने पर, उन दोनोंके आधारभूत ध्रौव्यका अन्यपना असंभवित होनेसे उत्पाद और व्ययका स्वरूप प्रगट होता है; इसलिये देवादिपर्यायके उत्पन्न होने पर और मनुष्यादिपर्यायके नष्ट होने पर, 'अन्य उत्पाद है और अन्य व्यय है' ऐसा माननेसे (इस अपेक्षासे) उत्पाद और व्ययवाली देवादिपर्याय और मनुष्यादिपर्याय प्रगट होती है (-लक्षमें आती है); इसलिये जीव प्रतिक्षण पर्यायोंसे अनवस्थित है॥११९॥

अब, जीवकी अनवस्थितताका हेतु प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[तस्मात् तु] इसलिये [संसारे] संसारमें [स्वभावसमवस्थितः इति] स्वभावसे अवस्थित ऐसा [कश्चित् न अस्ति] कोई नहीं है; (अर्थात् संसारमें किसीका स्वभाव केवल एकरूप रहनेवाला नहीं है); [संसारः पुनः] और संसार तो [संसरतः] संसरण करते हुये (गोल फिरते हुये, परिवर्तित होते हुये) [द्रव्यस्य] द्रव्यकी [क्रिया] क्रिया है॥१२०॥

तेथी स्वभावे स्थिर एवुं न कोई छे संसारमां;
संसार तो संसरण करता द्रव्य केरी छे क्रिया. १२०.

यतः खलु जीवो द्रव्यत्वेनावस्थितोऽपि पर्यायैरनवस्थितः, ततः प्रतीयते न कश्चिदपि संसारे स्वभावेनावस्थित इति। यच्चात्रानवस्थितत्वं तत्र संसार एव हेतुः, तस्य मनुष्यादि-पर्यायात्मकत्वात् स्वरूपेणैव तथाविधत्वात्। अथ यस्तु परिणममानस्य द्रव्यस्य पूर्वोत्तर-दशापरित्यागोपादानात्मकः क्रियाख्यः परिणामस्तत्संसारस्य स्वरूपम्॥१२०॥

अथ परिणामात्मके संसारे कुतः पुद्गलश्लेषो येन तस्य मनुष्यादिपर्यायात्मकत्व-मित्यत्र समाधानमुपवर्णयति—

आदा कम्ममलिमसो परिणामं लहदि कम्मसंजुत्तं।
तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो॥१२१॥

व्याख्यातमिदानीं तस्योपसंहारमाह—तम्हा दु णत्थि कोई सहावसमवट्ठिदो त्ति तस्मान्नास्ति कश्चित्स्व-भावसमवस्थित इति। यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेण मनुष्यादिपर्यायाणां विनश्वरत्वं व्याख्यातं तस्मादेव ज्ञायते परमानन्दैकलक्षणपरमचैतन्यचमत्कारपरिणतशुद्धात्मस्वभाववदवस्थितो नित्यः कोऽपि नास्ति। क्व। संसारे निस्संसारशुद्धात्मनो विपरीते संसारे। संसारस्वरूपं कथयति—संसारो पुण किरिया संसारः पुनः क्रिया। निष्क्रियनिर्विकल्पशुद्धात्मपरिणतेर्विसदृशी मनुष्यादिविभावपर्यायपरिणतिरूपा क्रिया संसार-स्वरूपम्। सा च कस्य भवति। संसरमाणस्स जीवस्स विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावमुक्तात्मनो विलक्षणस्य संसरतः परिभ्रमतः संसारिजीवस्येति। ततः स्थितं मनुष्यादिपर्यायात्मकः संसार एव विनश्वरत्वे कारणमिति॥१२०॥ एवं शुद्धात्मनो भिन्नानां कर्मजनितमनुष्यादिपर्यायाणां विनश्वरत्वकथनमुख्यतया

टीका :—वास्तवमें जीव द्रव्यपनेसे अवस्थित होने पर भी पर्यायोंसे अनवस्थित है; इससे यह प्रतीत होता है कि संसारमें कोई भी स्वभावसे अवस्थित नहीं है (अर्थात् किसीका स्वभाव केवल अविचल—एकरूप रहनेवाला नहीं है); और यहाँ जो अनवस्थितता है उसमें संसार ही हेतु है; क्योंकि वह (-संसार) मनुष्यादिपर्यायात्मक है, कारण कि वह स्वरूपसे ही वैसा है, (अर्थात् संसारका स्वरूप ही ऐसा है) उसमें परिणमन करते हुये द्रव्यका पूर्वोत्तरदशाका त्यागग्रहणात्मक ऐसा जो क्रिया नामका परिणाम है वह संसारका स्वरूप है॥१२०॥

अब परिणामात्मक संसारमें किस कारणसे पुद्गलका संबंध होता है कि जिससे वह (संसार) मनुष्यादिपर्यायात्मक होता है?—इसका यहाँ समाधान करते हैं :—

कर्मे मलिन जीव कर्मसंयुत पामतो परिणामने,
तेथी करम बंधाय छे; परिणाम तेथी कर्म छे. १२१.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

आत्मा कर्ममलीमसः परिणामं लभते कर्मसंयुक्तम्।
ततः श्लिष्यति कर्म तस्मात् कर्म तु परिणामः॥१२१॥

यो हि नाम संसारनामायमात्मनस्तथाविधः परिणामः स एव द्रव्यकर्मश्लेषहेतुः। अथ तथाविधपरिणामस्यापि को हेतुः। द्रव्यकर्म हेतुः, तस्य द्रव्यकर्मसंयुक्तत्वेनैवोपलम्भात्। एवं सतीतरेतराश्रयदोषः। न हि; अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसंबद्धस्यात्मनः प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात्। एवं कार्यकारणभूतनवपुराणद्रव्यकर्मत्वादात्मनस्तथाविधपरिणामो

गाथाचतुष्टयेन द्वितीयस्थलं गतम्। अथ संसारस्य कारणं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तस्य तु कारणं मिथ्यात्वरागादिपरिणाम इत्यावेदयति—**आदा** निर्दोषिपरमात्मा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावोऽपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशात् **कम्ममलिमसो** कर्ममलीमसो भवति। तथाभवन्सन् किं करोति। **परिणामं**

अन्वयार्थ :—[कर्ममलीमसः आत्मा] कर्मसे मलिन आत्मा [कर्मसंयुक्तं परिणामं] कर्मसंयुक्त परिणामको (-द्रव्यकर्मके संयोगसे होनेवाले अशुद्ध परिणामको) [लभते] प्राप्त करता है। [ततः] उससे [कर्म श्लिष्यति] कर्म चिपक जाता है (-द्रव्यकर्मका बंध होता है); [तस्मात् तु] इसलिये [परिणामः कर्म] परिणाम वह कर्म है॥१२१॥

टीका :—'संसार' नामक जो यह आत्माका तथाविध (-उसप्रकारका) परिणाम है वही द्रव्यकर्मके चिपकनेका हेतु है। अब, उस प्रकारके परिणामका हेतु कौन है? (इसके उत्तरमें कहते हैं कि:) द्रव्यकर्म उसका हेतु है, क्योंकि [१]द्रव्यकर्मकी संयुक्ततासे ही वह देखा जाता है।

(शंका :-) ऐसा होनेसे [२]इतरेतराश्रयदोष आयगा! (समाधान :-) नहीं आयगा; क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्मके साथ संबद्ध ऐसे आत्माका जो पूर्वका [३]द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतुरूपसे ग्रहण (-स्वीकार) किया गया है।

---

१. द्रव्यकर्मके संयोगसे ही अशुद्ध परिणाम होते हैं, द्रव्यकर्मके बिना वे कभी नहीं होते; इसलिये द्रव्यकर्म अशुद्ध परिणामका कारण है।

२. एक असिद्ध बातको सिद्ध करनेके लिये दूसरी असिद्ध बातका आश्रय लिया जाय, और फिर उस दूसरी बातको सिद्ध करनेके लिये पहलीका आश्रय लिया जाय,-सो इस तर्क-दोषको इतरेतराश्रयदोष कहा जाता है।

द्रव्यकर्मका कारण अशुद्ध परिणाम कहा है; फिर उस अशुद्ध परिणामके कारणके संबद्धमें पूछे जाने पर उसका कारण पुनः द्रव्यकर्म कहा है, इसलिये शंकाकारको शंका होती है कि इस बातमें इतरेतराश्रय दोष आता है।

३. नवीन द्रव्यकर्मका कारण अशुद्ध आत्मपरिणाम है, और उस अशुद्ध आत्मपरिणामका कारण वहका वही (नवीन) द्रव्यकर्म नहीं किन्तु पहलेका (पुराना) द्रव्यकर्म है; इसलिये इसमें इतरेतराश्रय दोष नहीं आता।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

द्रव्यकर्मैव, तथात्मा चात्मपरिणामकर्तृत्वाद् द्रव्यकर्मकर्तापुपचारात् ॥१२१॥

अथ परमार्थादात्मनो द्रव्यकर्माकर्तृत्वमुद्योतयति—

परिणामो सयमादा सा पुण किरिय त्ति होदि जीवमया।
किरिया कम्म त्ति मदा तम्हा कम्मस्स ण दु कत्ता॥१२२॥

परिणामः स्वयमात्मा सा पुनः क्रियेति भवति जीवमयी।
क्रिया कर्मेति मता तस्मात्कर्मणो न तु कर्ता॥१२२॥

आत्मपरिणामो हि तावत्स्वयमात्मैव, परिणामिनः परिणामस्वरूपकर्तृत्वेन परिणामादनन्यत्वात्। यश्च तस्य तथाविधः परिणामः सा जीवमय्येव क्रिया, सर्वद्रव्याणां परिणाम-

---

लहदि परिणामं लभते। कथंभूतम्। **कम्मसंजुत्तं** कर्मरहितपरमात्मनो विसदृशकर्मसंयुक्तं मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामं। **तत्तो सिलिसदि कम्मं** ततः परिणामात् श्लिष्यति बध्नाति। किम्। कर्म। यदि पुनर्निर्मलविवेकज्योतिःपरिणामेन परिणमति तदा तु कर्म मुञ्चति। **तम्हा कम्मं तु परिणामो** तस्मात् कर्म तु परिणामः। यस्माद्रागादिपरिणामेन कर्म बध्नाति, तस्माद्रागादिविकल्परूपो भावकर्मस्थानीयः सरागपरिणाम एव कर्मकारणत्वादुपचारेण कर्मेति भण्यते। ततः स्थितं रागादिपरिणामः कर्मबन्धकारणमिति॥१२१॥ अथात्मा निश्चयेन स्वकीयपरिणामस्यैव कर्ता, न च द्रव्यकर्मण इति प्रतिपादयति।

इसप्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा (आत्माका तथाविध परिणाम) होनेसे आत्माका तथाविध परिणाम उपचारसे द्रव्यकर्म ही है, और आत्मा भी अपने परिणामका कर्त्ता होनेसे द्रव्यकर्मका कर्त्ता भी उपचारसे है॥१२१॥

अब, परमार्थसे आत्माके द्रव्यकर्मका अकर्तृत्व प्रकाशित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[परिणामः] परिणाम [स्वयम्] स्वयं [आत्मा] आत्मा है, [सा पुनः] और वह [जीवमयी क्रिया इति भवति] जीवमय क्रिया है; [क्रिया] क्रियाको [कर्म इति मता] कर्म माना गया है; [तस्मात्] इसलिये आत्मा [कर्मणः कर्ता तु न] द्रव्यकर्मका कर्त्ता तो नहीं है॥१२२॥

टीका :—प्रथम तो आत्माका परिणाम वास्तवमें स्वयं आत्मा ही है, क्योंकि परिणामी

परिणाम पोते जीव छे, ने छे क्रिया अे जीवमयी;
किरिया गणी छे कर्म; तेथी कर्मनो कर्ता नथी. १२२.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

लक्षणक्रियाया आत्ममयत्वाभ्युपगमात्। या च क्रिया सा पुनरात्मना स्वतन्त्रेण प्राप्यत्वात्कर्म। ततस्तस्य परमार्थादात्मा आत्मपरिणामात्मकस्य भावकर्मण एव कर्ता, न तु पुद्गलपरिणामात्मकस्य द्रव्यकर्मणः। अथ द्रव्यकर्मणः कः कर्तेति चेत्। पुद्गलपरिणामो हि तावत्स्वयं पुद्गल एव, परिणामिनः परिणामस्वरूपकर्तृत्वेन परिणामादनन्यत्वात्। यश्च तस्य तथाविधः परिणामः सा पुद्गलमय्येव क्रिया, सर्व-द्रव्याणां परिणामलक्षणक्रियाया आत्ममयत्वाभ्युपगमात्। या च क्रिया सा पुनः पुद्गलेन स्वतन्त्रेण प्राप्यत्वात्कर्म। ततस्तस्य परमार्थात् पुद्गल आत्मपरिणामात्मकस्य

अथवा द्वितीयपातनिका–शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धनयेन यथैवाकर्ता तथैवाशुद्धनयेनापि सांख्येन यदुक्तं तन्निषेधार्थमात्मनो बन्धमोक्षसिद्ध्यर्थं कथंचित्परिणामित्वं व्यवस्थापयतीति पातनिकाद्वयं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति—**परिणामो सयमादा** परिणामः स्वयमात्मा, आत्म-परिणामस्तावदात्मैव। कस्मात्। परिणामपरिणामिनोस्तन्मयत्वात्। **सा पुण किरिय त्ति होदि सा पुनः** क्रियेति भवति, स च परिणामः क्रिया परिणतिरिति भवति। कथंभूता। **जीवमया** जीवेन निर्वृत्तत्वाज्जीवमयी। **किरिया कम्म त्ति मदा** जीवेन स्वतन्त्रेण स्वाधीनेन शुद्धाशुद्धोपादानकारणभूतेन प्राप्यत्वात्सा क्रिया कर्मेति मता संमता। कर्मशब्देनात्र यदेव चिद्रूपं जीवादभिन्नं भावकर्मसंज्ञं निश्चयकर्म तदेव ग्राह्यम्। तस्यैव कर्ता जीवः। **तम्हा कम्मस्स ण दु कत्ता** तस्माद्द्रव्यकर्मणो न कर्तेति। अत्रैतदायाति–यद्यपि कथंचित् परिणामित्वे सति जीवस्य कर्तृत्वं जातं तथापि निश्चयेन स्वकीय-परिणामानामेव कर्ता, पुद्गलकर्मणां व्यवहारेणेति। तत्र तु यदा शुद्धोपादानकारणरूपेण शुद्धोपयोगेन

परिणामके स्वरूपका कर्त्ता होनेसे परिणामसे अनन्य है; और जो उसका (-आत्माका) तथाविध परिणाम है वह जीवमयी ही क्रिया है, क्योंकि सर्व द्रव्योंकी परिणामलक्षणक्रिया आत्ममयता (निजमयता) से स्वीकार की गई है; और फिर, जो (जीवमयी) क्रिया है वह आत्माके द्वारा स्वतंत्रतया [१]प्राप्य होनेसे कर्म है। इसलिये परमार्थतः आत्मा अपने परिणामस्वरूप भावकर्मका ही कर्त्ता है; किन्तु पुद्गलपरिणामस्वरूप द्रव्यकर्मका नहीं।

अब यहाँ ऐसा प्रश्न होता है कि '(जीव भावकर्मका ही कर्त्ता है तब फिर) द्रव्यकर्मका कर्त्ता कौन है?' इसका उत्तर इसप्रकार है :—प्रथम तो पुद्गलका परिणाम वास्तवमें स्वयं पुद्गल ही है, क्योंकि परिणामी परिणामके स्वरूपका कर्त्ता होनेसे परिणामसे अनन्य है; और जो उसका (-पुद्गलका) तथाविधि परिणाम है वह पुद्गलमयी ही क्रिया है, क्योंकि सर्व द्रव्योंकी परिणामस्वरूप क्रिया निजमय होती है, ऐसा स्वीकार किया गया है; और फिर, जो (पुद्गलमयी) क्रिया है वह पुद्गलके द्वारा स्वतंत्रतया प्राप्य होनेसे कर्म है। इसलिये परमार्थतः पुद्गल अपने परिणामस्वरूप उस द्रव्यकर्मका ही कर्त्ता है, किन्तु

---

१. प्राप्य = प्राप्त होने योग्य, (जो स्वतंत्रपने करे सो कर्ता है; और कर्त्ता जिसे प्राप्त करे सो कर्म है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

द्रव्यकर्मण एव कर्ता, न त्वात्मपरिणामात्मकस्य भावकर्मणः। तत आत्मात्मस्वरूपेण परिणमति, न पुद्गलस्वरूपेण परिणमति॥१२२॥

अथ किं तत्स्वरूपं येनात्मा परिणमतीति तदावेदयति—

परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा॥१२३॥

परिणमति चेतनया आत्मा पुनः चेतना त्रिधाभिमता।
सा पुनः ज्ञाने कर्मणि फले वा कर्मणो भणिता॥१२३॥

यतो हि नाम चैतन्यमात्मनः स्वधर्मव्यापकत्वं ततश्चेतनैवात्मनः स्वरूपं, तया

परिणमति तदा मोक्षं साधयति, अशुद्धोपादानकारणेन तु बन्धमिति। पुद्गलोऽपि जीववन्निश्चयेन स्वकीयपरिणामानामेव कर्ता, जीवपरिणामानां व्यवहारेणेति॥१२२॥ एवं रागादिपरिणामाः कर्मबन्धकारणं, तेषामेव कर्ता जीव इतिकथनमुख्यतया गाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतम्। अथ येन परिणामेनात्मा परिणमति तं परिणामं कथयति—**परिणमदि चेदणाए आदा** परिणमति चेतनया करणभूतया। स कः। आत्मा। यः कोऽप्यात्मनः शुद्धाशुद्धपरिणामः स सर्वोऽपि चेतनां न त्यजति इत्यभिप्रायः। **पुण चेदणा तिधाभिमदा सा** सा चेतना पुनस्त्रिधाभिमता। कुत्र कुत्र। **णाणे** ज्ञानविषये **कम्मे** कर्मविषये **फलम्मि**

आत्माके परिणामस्वरूप भावकर्मका नहीं।

इससे (ऐसा समझना चाहिये कि) आत्मा आत्मस्वरूप परिणमित होता है, पुद्गलस्वरूप परिणमित नहीं होता॥१२२॥

अब, यह कहते हैं कि वह कौनसा स्वरूप है जिसरूप आत्मा परिणमित होता है? :–

अन्वयार्थ :—[आत्मा] आत्मा [चेतनतया] चेतनारूपे [परिणमति] परिणमित होता है। [पुनः] और [चेतना] चेतना [त्रिधा अभिमता] तीन प्रकारसे मानी गयी है; [पुनः] और [सा] वह [ज्ञाने] ज्ञानसंबंधी, [कर्मणि] कर्मसंबंधी [वा] अथवा [कर्मणः फले] कर्मफल संबंधी—[भणिता] ऐसी कही गयी है॥१२३॥

टीका :—जिससे चैतन्य वह आत्माका [१]स्वधर्मव्यापकपना है, उससे चेतना ही

---

१. स्वधर्मव्यापकपना = निजधर्मोंमें व्यापकपना।

जीव चेतनारूप परिणमे; वळी चेतना त्रिविधा गणी;
ते ज्ञानविषयक, कर्मविषयक, कर्मफळविषयक कही. १२३.

खल्वात्मा परिणमति। यः कश्चनाप्यात्मनः परिणामः स सर्वोऽपि चेतनां नातिवर्तत इति तात्पर्यम्। चेतना पुनर्ज्ञानकर्मकर्मफलत्वेन त्रेधा। तत्र ज्ञानपरिणतिर्ज्ञानचेतना, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतना ॥१२३॥

अथ ज्ञानकर्मकर्मफलस्वरूपमुपवर्णयति—

णाणं अट्ठवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारद्धं।
तमणेगविधं भणिदं फलं ति सोक्खं व दुक्खं वा ॥१२४॥

ज्ञानमर्थविकल्पः कर्म जीवेन यत्समारब्धम्।
तदनेकविधं भणितं फलमिति सौख्यं वा दुःखं वा ॥१२४॥

वा फले वा। कस्य फले। कम्मणो कर्मणः। भणिदा भणिता कथितेति। ज्ञानपरिणतिः ज्ञानचेतना अग्रे वक्ष्यमाणा, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतनेति भावार्थः ॥१२३॥ अथ ज्ञानकर्मकर्मफलरूपेण त्रिधा चेतनां विशेषेण विचारयति—णाणं अट्ठवियप्पं ज्ञानं मत्यादिभेदेनाष्टविकल्पं भवति। अथवा पाठान्तरम्—णाणं अट्ठवियप्पो ज्ञानमर्थविकल्पः। तथाहि—अर्थः परमात्मादिपदार्थः, अनन्तज्ञानसुखादिरूपोऽहमिति रागाद्यास्रवास्तु मत्तो भिन्ना इति स्वपराकारावभासेनादर्श इवार्थ-

---

आत्माका स्वरूप है; उस रूप (चेतनारूप) वास्तवमें आत्मा परिणमित होता है। आत्माका जो कुछ भी परिणाम हो वह सब ही चेतनाका उल्लंघन नहीं करता, (अर्थात् आत्माका कोई भी परिणाम चेतनाको किंचित्मात्र भी नहीं छोड़ता—बिना चेतनाके बिलकुल नहीं होता) —ऐसा तात्पर्य है। और चेतना ज्ञानरूप, कर्मरूप और कर्मफलरूपसे तीन प्रकारकी है। उसमें ज्ञानपरिणति (ज्ञानरूपसे परिणति) वह ज्ञानचेतना, कर्म परिणति वह कर्मचेतना और कर्मफलपरिणति वह कर्मफलचेतना है ॥१२३॥

अब ज्ञान, कर्म और कर्मफलका स्वरूप वर्णन करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अर्थविकल्पः**] अर्थविकल्प (अर्थात् स्व-पर पदार्थोंका भिन्नतापूर्वक युगपत् अवभासन) [**ज्ञानं**] वह ज्ञान है; [**जीवेन**] जीवके द्वारा [**यत् समारब्धं**] जो किया जा रहा हो [**कर्म**] वह कर्म है, [**तद् अनेकविधं**] वह अनेक प्रकारका है; [**सौख्यं वा दुःखं वा**] सुख अथवा दुःख [**फलं इति भणितम्**] वह कर्मफल कहा गया है ॥१२४॥

छे 'ज्ञान' अर्थविकल्प, ने जीवथी करातुं 'कर्म' छे,
—ते छे अनेक प्रकारनुं, 'फळ' सौख्य अथवा दुःख छे. १२४.

अर्थविकल्पस्तावत् ज्ञानम्। तत्र कः खल्वर्थः। स्वपरविभागेनावस्थितं विश्वम्। विकल्पस्तदाकारावभासनम्। यस्तु मुकुरुन्दहृदयाभोग इव युगपदवभासमानस्वपराकारोऽर्थ-विकल्पस्तद् ज्ञानम्। क्रियमाणमात्मना कर्म, क्रियमाणः खल्वात्मना प्रतिक्षणं तेन तेन भावेन भवता यः तद्भावः स एव कर्मात्मना प्राप्यत्वात्। तत्त्वेकविधमपि द्रव्यकर्मोपाधिसन्निधि-सद्भावासद्भावाभ्यामनेकविधम्। तस्य कर्मणो यन्निष्पाद्यं सुखदुःखं तत्कर्मफलम्। तत्र द्रव्यकर्मोपाधिसान्निध्यासद्भावात्कर्म तस्य फलमनाकुलत्वलक्षणं प्रकृतिभूतं सौख्यं, यत्तु द्रव्यकर्मोपाधिसान्निध्यसद्भावात्कर्म तस्य फलं सौख्यलक्षणाभावाद्विकृतिभूतं दुःखम्। एवं ज्ञानकर्मकर्मफलस्वरूपनिश्चयः ॥१२४॥

परिच्छित्तिसमर्थो विकल्पः विकल्पलक्षणमुच्यते। स एव ज्ञानं ज्ञानचेतनेति। कम्मं जीवेण जं समारद्धं कर्म जीवेन यत्समारब्धम्। बुद्धिपूर्वकमनोवचनकायव्यापाररूपेण जीवेन यत्सम्यक्कर्तृमारब्धं तत्कर्म

टीका :—प्रथम तो, अर्थविकल्प वह ज्ञान है। वहाँ, अर्थ क्या है? स्व-परके विभागपूर्वक अवस्थित [१]विश्व वह अर्थ है। उसके आकारोंका [२]अवभासन वह विकल्प है। और दर्पणके निज विस्तारकी भाँति (अर्थात् जैसे दर्पणके निज विस्तारमें स्व और पर आकार एक ही साथ प्रकाशित होते हैं, उसीप्रकार) जिसमें एक ही साथ स्व-पराकार अवभासित होते हैं, ऐसा अर्थविकल्प वह ज्ञान है।

जो आत्माके द्वारा किया जाता है वह कर्म है। प्रतिक्षण उस-उस भावसे होता हुआ आत्माके द्वारा वास्तवमें किया जानेवाला जो उसका भाव है वही, आत्माके द्वारा [३]प्राप्य होनेसे कर्म है। और वह (कर्म) एक प्रकारका होने पर भी, द्रव्यकर्मरूप उपाधिकी निकटताके सद्भाव और असद्भावके कारण अनेक प्रकारका है।

उस कर्मसे उत्पन्न किया जानेवाला सुख-दुःख वह कर्मफल है। वहाँ, द्रव्यकर्मरूप उपाधिकी निकटताके असद्भावके कारण जो कर्म होता है, उसका फल अनाकुलत्वलक्षण [४]प्रकृतिभूत सुख है; और द्रव्यकर्मरूप उपाधिकी निकटताके सद्भावके कारण जो कर्म होता है, उसका फल [५]विकृति-(विकार) भूत दुःख है, क्योंकि वहाँ सुखके लक्षणका अभाव है।

इस प्रकार ज्ञान, कर्म और कर्मफलका स्वरूप निश्चित हुआ।

---

१. विश्व = समस्त पदार्थ—द्रव्य-गुण-पर्याय। (पदार्थोंमें स्व और पर ऐसे दो विभाग हैं। जो जाननेवाले आत्माका अपना हो वह स्व है, और दूसरा सब, पर है।)

२. अवभासन = अवभासन; प्रकाशन; ज्ञात होना; प्रगट होना।

३. आत्मा अपने भावको प्राप्त करता है, इसलिये वह भाव ही आत्माका कर्म है।

४. प्रकृतिभूत = स्वभावभूत। (सुख स्वभावभूत है।)

५. विकृतिभूत = विकारभूत (दुःख विकारभूत है, स्वभावभूत नहीं है।)

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ ज्ञानकर्मकर्मफलान्यात्मत्वेन निश्चिनोति—

अप्पा परिणामप्पा परिणामो णाणकम्मफलभावी।
तम्हा णाणं कम्मं फलं च आदा मुणेदव्वो॥१२५॥

आत्मा परिणामात्मा परिणामो ज्ञानकर्मफलभावी।
तस्मात् ज्ञानं कर्म फलं चात्मा ज्ञातव्यः॥१२५॥

भण्यते। सैव कर्मचेतनेति। तमणेगविधं भणिदं तच्च कर्म शुभाशुभशुद्धोपयोगभेदेनानेकविधं त्रिविधं भणितम्। इदानीं फलचेतना कथ्यते—फलं ति सोक्खं व दुक्खं वा फलमिति सुखं वा दुःखं वा। विषयानुरागरूपं यदशुभोपयोगलक्षणं कर्म तस्य फलमाकुलत्वोत्पादकं नारकादिदुःखं, यच्च धर्मानुरागरूपं शुभोपयोगलक्षणं कर्म तस्य फलं चक्रवर्त्यादिपञ्चेन्द्रियभोगानुभवरूपं, तच्चाशुद्धनिश्चयेन सुखमप्याकुलोत्पादकत्वात् शुद्धनिश्चयेन दुःखमेव। यच्च रागादिविकल्परहितशुद्धोपयोगपरिणतिरूपं कर्म तस्य फलमनाकुलत्वोत्पादकं परमानन्दैकरूपसुखामृतमिति। एवं ज्ञानकर्मकर्मफलचेतनास्वरूपं ज्ञात-

---

भावार्थ :—जिसमें स्व, स्व-रूपसे और पर-रूपसे (परस्पर एकमेक हुये बिना, स्पष्ट भिन्नतापूर्वक) एक ही साथ प्रतिभासित हो सो ज्ञान है।

जीवके द्वारा किया जानेवाला भाव वह (जीवका) कर्म है। उसके मुख्य दो भेद हैं: (१) निरुपाधिक (स्वाभाविक) शुद्धभावरूप कर्म, और (२) औपाधिक शुभाशुभभावरूप कर्म।

इस कर्मके द्वारा उत्पन्न होनेवाला सुख अथवा दुःख कर्मफल है। वहाँ, द्रव्यकर्मरूप उपाधिमें युक्त न होनेसे जो निरुपाधिक शुद्धभावरूप कर्म होता है, उसका फल तो अनाकुलता जिसका लक्षण है ऐसा स्वभावभूत सुख है; और द्रव्यकर्मरूप उपाधिमें युक्त होनेसे जो औपाधिक शुभाशुभभावरूप कर्म होता है, उसका फल विकारभूत दुःख है, क्योंकि उसमें अनाकुलता नहीं, किन्तु आकुलता है।

इसप्रकार ज्ञान, कर्म और कर्मफलका स्वरूप कहा गया॥१२४॥

अब ज्ञान, कर्म और कर्मफलको आत्मारूपसे निश्चित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[आत्मा परिणामात्मा] आत्मा परिणामात्मक है; [परिणामः] परिणाम [ज्ञानकर्मफलभावी] ज्ञानरूप, कर्मरूप और कर्मफलरूप होता है; [तस्मात्] इसलिये [ज्ञानं

परिणाम-आत्मक जीव छे, परिणाम ज्ञानादिक बने;
तेथी करमफळ, कर्म तेम ज ज्ञान आत्मा जाणजे. १२५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

आत्मा हि तावत्परिणामात्मैव, परिणामः स्वयमात्मेति स्वयमुक्तत्वात्। परिणामस्तु चेतनात्मकत्वेन ज्ञानं कर्म कर्मफलं वा भवितुं शीलः, तन्मयत्वाच्चेतनायाः। ततो ज्ञानं कर्म कर्मफलं चात्मैव। एवं हि शुद्धद्रव्यनिरूपणायां परद्रव्यसंपर्कासंभवात्पर्यायाणां द्रव्यान्तः-प्रलयाच्च शुद्धद्रव्य एवात्मावतिष्ठते॥१२५॥

अथैवमात्मनो ज्ञेयतामापन्नस्य शुद्धत्वनिश्चयात् ज्ञानतत्त्वसिद्धौ शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भो

व्यम्॥१२४॥ अथ ज्ञानकर्मकर्मफलान्यभेदनयेनात्मैव भवतीति प्रज्ञापयति—**अप्पा परिणामप्पा** आत्मा भवति। कथंभूतः। परिणामात्मा परिणामस्वभावः। कस्मादिति चेत् 'परिणामो सयमादा' इति पूर्वं स्वयमेव भणितत्वात्। परिणामः कथ्यते—**परिणामो णाणकम्मफलभावी** परिणामो भवति। किंविशिष्टः। ज्ञानकर्मकर्मफलभावी; ज्ञानकर्मकर्मफलरूपेण भवितुं शील इत्यर्थः। **तम्हा** यस्मादेवं तस्मात्कारणात्। **णाणं** पूर्वसूत्रोक्ता ज्ञानचेतना। **कम्मं** तत्रैवोक्तलक्षणा कर्मचेतना। **फलं** च पूर्वोक्तलक्षणफलचेतना च। **आदा मुणेदव्वो** इयं चेतना त्रिविधाप्यभेदनयेनात्मैव मन्तव्यो ज्ञातव्य इति। एतावता किमुक्तं भवति। त्रिविधचेतनापरिणामेन परिणामी सन्नात्मा किं करोति। निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धपरिणामेन मोक्षं साधयति, शुभाशुभाभ्यां पुनर्बन्धमिति॥१२५॥ एवं त्रिविधचेतनाकथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थ-स्थलं गतम्। अथ सामान्यज्ञेयाधिकारसमाप्तौ पूर्वोक्तभेदभावनायाः शुद्धात्मप्राप्तिरूपं फलं दर्शयति—

कर्म फलं च] ज्ञान, कर्म और कर्मफल [**आत्मा ज्ञातव्यः**] आत्मा है ऐसा समझना॥१२५॥

टीका :—प्रथम तो आत्मा वास्तवमें परिणामस्वरूप ही है, क्योंकि 'परिणाम स्वयं आत्मा है' ऐसा (११२वीं गाथामें भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेवने) स्वयं कहा है; तथा परिणाम चेतनास्वरूप होनेसे ज्ञान, कर्म और कर्मफलरूप होनेके स्वभाववाला है, क्योंकि चेतना तन्मय (ज्ञानमय, कर्ममय अथवा कर्मफलमय) होती है। इसलिये ज्ञान, कर्म कर्मफल आत्मा ही है।

इसप्रकार वास्तवमें शुद्धद्रव्यके निरूपणमें परद्रव्यके संपर्कका (सम्बन्ध; संग) असंभव होनेसे और पर्यायें द्रव्यके भीतर [१]प्रलीन हो जानेसे आत्मा शुद्धद्रव्य ही रहता है॥१२५॥

अब, इसप्रकार [२]ज्ञेयपनेको प्राप्त आत्माकी शुद्धताके निश्चयसे ज्ञानतत्त्वकी सिद्धि होने पर शुद्ध आत्मतत्त्वकी उपलब्धि (-अनुभव, प्राप्ति) होती है; इसप्रकार उसका अभिनन्दन करते हुए (अर्थात् आत्माकी शुद्धताके निर्णयकी प्रशंसा करते हुए—धन्यवाद देते हुए), द्रव्यसामान्यके वर्णनका उपसंहार करते हैं :—

---

१. प्रलीन हो जाना = अत्यंत लीन हो जाना; मग्न हो जाना; डूब जाना; अदृश्य हो जाना।

२. ज्ञेयपनेको प्राप्त = ज्ञेयभूत। (आत्मा ज्ञानरूप भी और ज्ञेयरूप भी है, इस ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन अधिकारमें यहाँ द्रव्य सामान्यका निरूपण किया जा रहा है; उसमें आत्मा ज्ञेयभूतरूपसे समाविष्ट हुआ है।)

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

भवतीति तमभिनन्दन् द्रव्यसामान्यवर्णनामुपसंहरति—

कत्ता करणं कम्मं फलं च अप्प त्ति णिच्छिदो समणो।
परिणमदि णेव अण्णं जदि अप्पाणं लहदि सुद्धं॥१२६॥

कर्ता करणं कर्म कर्मफलं चात्मेति निश्चितः श्रमणः।
परिणमति नैवान्यद्यदि आत्मानं लभते शुद्धम्॥१२६॥

यो हि नामैवं कर्तारं करणं कर्म कर्मफलं चात्मानमेव निश्चित्य न खलु परद्रव्यं परिणमति स एव विश्रान्तपरद्रव्यसंपर्कं द्रव्यान्तःप्रलीनपर्यायं च शुद्धमात्मानमुपलभते, न

कत्ता स्वतन्त्रः स्वाधीनः कर्ता साधको निष्पादकोऽस्मि भवामि। स कः। अप्प त्ति आत्मेति। आत्मेति कोऽर्थः। अहमिति। कथंभूतः। एकः। कस्याः साधकः। निर्मलात्मानुभूतेः। किंविशिष्टः। निर्विकार-परमचैतन्यपरिणामेन परिणतः सन्। करणं अतिशयेन साधकं साधकतमं करणमुपकरणं करणकारकमहमेक एवास्मि भवामि। कस्याः साधकम्। सहजशुद्धपरमात्मानुभूतेः। केन कृत्वा।

अन्वयार्थ :—[यदि] यदि [श्रमणः] श्रमण [कर्ता करणं कर्म कर्मफलं च आत्मा] 'कर्ता, करण, कर्म और कर्मफल आत्मा है' [इति निश्चितः] ऐसा निश्चयवाला होता हुआ [अन्यत्] अन्यरूप [न एव परिणमति] परिणमित ही नहीं हो, [शुद्धं आत्मानं] तो वह शुद्ध आत्माको [लभते] उपलब्ध करता है॥१२६॥

टीका :—जो पुरुष इसप्रकार 'कर्ता, करण, कर्म और कर्मफल आत्मा ही है' यह निश्चय [१]करके वास्तवमें परद्रव्यरूप परिणमित नहीं होता, वही पुरुष, जिसका परद्रव्यके साथ संपर्क रुक गया है और जिसकी पर्यायें द्रव्यके भीतर प्रलीन हो गई हैं ऐसे शुद्धात्माको उपलब्ध करता है; परन्तु अन्य कोई (पुरुष) ऐसे शुद्ध आत्माको उपलब्ध नहीं करता।

इसीको स्पष्टतया समझाते हैं :—

---

१. 'कर्ता करण इत्यादि आत्मा ही है' ऐसा निश्चय होने पर दो बातें निश्चित हो जाती हैं। एक तो यह कि 'कर्ता, करण इत्यादि आत्मा ही है, पुद्गलादि नहीं अर्थात् आत्माका परद्रव्यके साथ संबंध नहीं है'; दूसरी–'अभेद दृष्टिमें कर्ता, करण इत्यादि भेद नहीं हैं, यह सब एक आत्मा ही है अर्थात् पर्यायें द्रव्यके भीतर लीन हो गई हैं।'

'कर्ता, करम, फळ, करण जीव छे' अेम जो निश्चय करी
मुनि अन्यरूप नव परिणमे, प्राप्ति करे शुद्धात्मनी. १२६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पुनरन्यः। तथा हि—यदा नामानादिप्रसिद्धपौद्गलिककर्मबन्धनोपाधिसंनिधिप्रधावितोपराग-रंजितात्मवृत्तिर्जपापुष्पसंनिधिप्रधावितोपरागरंजितात्मवृत्तिः स्फटिकमणिरिव परारोपित-विकारोऽहमासं संसारी, तदापि न नाम मम कोऽप्यासीत्। तदाप्यहमेक एवोपरक्तचित्स्वभावेन स्वतन्त्रः कर्तासम्। अहमेक एवोपरक्तचित्स्वभावेन साधकतमः करणमासम्। अहमेक एवोपरक्तचित्परिणमनस्वभावेनात्मना प्राप्यः कर्मासम्। अहमेक एव चोपरक्तचित्परिणमन-स्वभावस्य निष्पाद्यं सौख्यविपर्यस्तलक्षणं दुःखाख्यं कर्मफलमासम्। इदानीं पुनरनादि-

रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानपरिणतिबलेन। **कम्मं** शुद्धबुद्धैकस्वभावेन परमात्मना प्राप्यं व्याप्यमहमेक एव कर्मकारकमस्मि। **फलं च** शुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मनः साध्यं निष्पाद्यं निज-शुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपाभेदरत्नत्रयात्मकपरमसमाधिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादपरिणति-रूपमहमेक एव फलं चास्मि। **णिच्छिदो** एवमुक्तप्रकारेण निश्चितमतिः सन् **समणो** सुखदुःख-जीवितमरणशत्रुमित्रादिसमताभावनापरिणतः श्रमणः परममुनिः **परिणमदि णेव अण्णं जदि** परिणमति

''जब अनादिसिद्ध पौद्गलिक कर्मकी बन्धनरूप उपाधिकी निकटतासे उत्पन्न हुए [१]उपरागके द्वारा जिसकी स्वपरिणति रंजित (विकृत, मलिन) थी ऐसा मैं—जपाकुसुमकी निकटतासे उत्पन्न हुये उपरागसे (लालिमासे) जिसकी स्वपरिणति रंजित (-रँगी हुई) हो ऐसे स्फटिक मणिकी भाँति—परके द्वारा [२]आरोपित विकारवाला होनेसे, संसारी था, तब भी (अज्ञानदशामें भी) वास्तवमें मेरा कोई भी (संबंधी) नहीं था। तब भी मैं अकेला ही [३]कर्ता था, क्योंकि मैं अकेला ही उपरक्त चैतन्यरूप स्वभावसे स्वतंत्र था (अर्थात् स्वाधीनतया कर्ता था); मैं अकेला ही करण था, क्योंकि मैं अकेला ही उपरक्त चैतन्यरूप स्वभावके द्वारा साधकतम (-उत्कृष्टसाधन) था; मैं अकेला ही कर्म था, क्योंकि मैं अकेला ही उपरक्त चैतन्यरूप परिणमित होनेके स्वभावके कारण आत्मासे प्राप्य (-प्राप्त होने योग्य) था; और मैं अकेला ही सुखसे विपरीत लक्षणवाला, 'दुःख' नामक कर्मफल था—जो कि (फल) उपरक्त चैतन्यरूप (फल) परिणमित होनेके स्वभावसे उत्पन्न किया जाता था।

और अब, अनादिसिद्ध पौद्गलिक कर्म की बंधनरूप उपाधिकी निकटताके नाशसे जिसकी सुविशुद्ध सहज (-स्वाभाविक) स्वपरिणति प्रगट हुई है ऐसा मैं-जपाकुसुमकी

१. उपराग = किसी पदार्थमें, अन्य उपाधिकी समीपताके निमित्तसे होनेवाला उपाधिके अनुरूप विकारी भाव; औपाधिकभाव; विकार; मलिनता।

२. आरोपित = (नवीन अर्थात् औपाधिकरूपसे) किये गये। [विकार स्वभावभूत नहीं थे, किन्तु उपाधिके निमित्तसे औपाधिकरूपसे (नवीन) हुए थे।]

३. कर्ता, करण और कर्मके अर्थोंके लिये १६ वीं गाथाका भावार्थ देखना चाहिये।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

प्रसिद्धपौद्गलिककर्मबन्धनोपाधिसन्निधिध्वंसविस्फुरितसुविशुद्धसहजात्मवृत्तिर्जपापुष्पसंनिधिध्वंस-विस्फुरितसुविशुद्धसहजात्मवृत्तिः स्फटिकमणिरिव विश्रान्तपरारोपितविकारोऽहमेकान्तेनास्मि मुमुक्षुः। इदानीमपि न नाम मम कोऽप्यस्ति। इदानीमप्यहमेक एव सुविशुद्धचित्स्वभावेन स्वतन्त्रः कर्तास्मि; अहमेक एव च सुविशुद्धचित्स्वभावेन साधकतमः करणमस्मि; अहमेक एव च सुविशुद्धचित्परिणमनस्वभावेनात्मना प्राप्यः कर्मास्मि; अहमेक एव च सुविशुद्ध-चित्परिणमनस्वभावस्य निष्पाद्यमनाकुलत्वलक्षणं सौख्याख्यं कर्मफलमस्मि। एवमस्य बन्धपद्धतौ मोक्षपद्धतौ चात्मानमेकमेव भावयतः परमाणोरिवैकत्वभावनोन्मुखस्य

नैवान्यं रागादिपरिणामं यदि चेत्, अप्पाणं लहदि सुद्धं तदात्मानं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितत्वेन शुद्धं शुद्धबुद्धैकस्वभावं लभते प्राप्नोति इत्यभिप्रायो भगवतां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवानाम्।।१२६।। एवमेक-

---

निकटताके नाशसे जिसकी सुविशुद्ध सहज स्वपरिणति प्रगट हुई हो ऐसे स्फटिकमणिकी भाँति—जिसका परके द्वारा आरोपित विकार रुक गया है ऐसा होनेसे एकान्ततः मुमुक्षु (केवल मोक्षार्थी) हूँ; अभी भी (-मुमुक्षुदशामें अर्थात् ज्ञानदशामें भी) वास्तवमें मेरा कोई भी नहीं है। अभी भी मैं अकेला ही कर्ता हूँ; क्योंकि मैं अकेला ही सुविशुद्ध चैतन्यस्वरूप स्वभावसे स्वतन्त्र हूँ, (अर्थात् स्वाधीनतया कर्ता हूँ); मैं अकेला ही करण हूँ, क्योंकि मैं अकेला ही सुविशुद्ध चैतन्यरूप स्वभावसे साधकतम हूँ; मैं अकेला ही कर्म हूँ, क्योंकि मैं अकेला ही सुविशुद्ध चैतन्यरूप परिणमित होनेके स्वभावके कारण आत्मासे प्राप्य हूँ और मैं अकेला ही अनाकुलता लक्षणवाला, 'सुख' नामक कर्मफल हूँ—जो कि (फल) [१]सुविशुद्ध चैतन्यरूप परिणमित होनेके स्वभावसे उत्पन्न किया जाता है।''

—इसप्रकार बंधमार्गमें तथा मोक्षमार्गमें आत्मा अकेला ही है इसप्रकार [२]भानेवाला यह पुरुष परमाणुकी भाँति एकत्वभावनामें उन्मुख होनेसे, (अर्थात् एकत्वके भानेमें तत्पर होनेसे), उसे परद्रव्यरूप परिणति किंचित् नहीं होती; और परमाणुकी भाँति (जैसे

---

१. सुविशुद्धचैतन्यपरिणमनस्वभाव आत्माका कर्म है, और वह कर्म अनाकुलतास्वरूप सुखको उत्पन्न करता है, इसलिये सुख वह कर्मफल है। सुख आत्माकी अवस्था होनेसे आत्म ही कर्मफल है।

२. भाना = अनुभव करना; समझना; चिन्तवन करना ['किसी जीवका—अज्ञानी या ज्ञानीका—परके साथ सम्बन्ध नहीं है। बंधमार्गमें आत्मा स्वयं निजको निजसे बाँधता था और निजको (अर्थात् अपने दुःखपर्यायरूप फलको) भोगता था। अब मोक्षमार्गमें आत्मा स्वयं निजको निजसे मुक्त करता है और निजको (अर्थात् अपने सुखपर्यायरूप फलको) भोगता है।—ऐसे एकत्वको सम्यग्दृष्टि जीव भाता है–अनुभव करता है–समझता है–चिन्तवन करता है। मिथ्यादृष्टि इससे विपरीतभावनावाला होता है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

परद्रव्यपरिणतिर्न जातु जायते। परमाणुरिव भावितैकत्वश्च परेण नो संपृच्यते। ततः परद्रव्यासंपृक्तत्वात्सुविशुद्धो भवति। कर्तृकरणकर्मकर्मफलानि चात्मत्वेन भावयन् पर्यायैर्न संकीर्यते; ततः पर्यायासंकीर्णत्वाच्च सुविशुद्धो भवतीति॥१२६॥

(वसंततिलका छंद)

[+]द्रव्यान्तरव्यतिकरादपसारितात्मा
सामान्यमज्जितसमस्तविशेषजातः।
इत्येष शुद्धनय उद्धतमोहलक्ष्मी-
लुण्टाक उत्कटविवेकविविक्ततत्त्वः॥७॥

सूत्रेण पञ्चमस्थलं गतम्। इति सामान्यज्ञेयाधिकारमध्ये स्थलपञ्चकेन भेदभावना गता। इत्युक्त-प्रकारेण 'तम्हा तस्स णमाइं' इत्यादिपञ्चत्रिंशत्सूत्रैः सामान्यज्ञेयाधिकारव्याख्यानं समाप्तम्। इत ऊर्ध्वमेकोनविंशतिगाथाभिर्जीवाजीवद्रव्यादिविवरणरूपेण विशेषज्ञेयव्याख्यानं करोति। तत्राष्टस्थलानि भवन्ति। तेष्वादौ जीवाजीवत्वकथनेन प्रथमगाथा, लोकालोकत्वकथनेन द्वितीया, सक्रियनिःक्रियत्व-

---

एकत्वभावसे परिणमित परमाणु परके साथ संगको प्राप्त नहीं होता; उसी प्रकार–) एकत्वको भानेवाला पुरुष परके साथ [१]संपृक्त नहीं होता, इसलिये परद्रव्यके साथ असंबद्धताके कारण वह सुविशुद्ध होता है। और कर्ता, करण, कर्म तथा कर्मफलको [२]आत्मारूपसे भाता हुआ वह पुरुष पर्यायोंसे संकीर्ण (-खंडित) नहीं होता; और इसलिये पर्यायोंके द्वारा संकीर्ण न होनेसे सुविशुद्ध होता है॥१२६॥

[अब, श्लोक द्वारा इसी आशयको व्यक्त करके शुद्धनयकी महिमा करते हैं :—]

अर्थ :—जिसने अन्य द्रव्यसे भिन्नताके द्वारा आत्माको एक ओर हटा लिया है (अर्थात् परद्रव्योंसे अलग दिखाया है) तथा जिसने समस्त विशेषोंके समूहको सामान्यमें लीन किया है (अर्थात् समस्त पर्यायोंको द्रव्यके भीतर डूबा हुआ दिखाया है)—ऐसा जो यह, उद्धत मोहकी लक्ष्मीको (-ऋद्धिको, शोभाको) लूँट लेनेवाला शुद्धनय है, उसने उत्कट विवेकके द्वारा तत्त्वको (आत्मस्वरूपको) [३]विविक्त किया है।

[अब शुद्धनयके द्वारा शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त करनेवाले आत्माकी महिमा श्लोक द्वारा कहकर, द्रव्यसामान्यके वर्णनकी पूर्णाहुति की जाती है :—]

---

१. संपृक्त = संपर्कवाला; संबंधवाला; संगवाला।

२. सम्यग्दृष्टि जीव भेदोंको न भाकर अभेद आत्माको ही भाता—अनुभव करता है।

३. विविक्त = शुद्ध; अकेला; अलग।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

(मंदाक्रान्ता छंद)

इत्युच्छेदात्परपरिणतेः कर्तृकर्मादिभेद-
भ्रान्तिध्वंसादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः।
संचिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं
स्थास्यत्युद्यत्सहजमहिमा सर्वदा मुक्त एव॥८॥

(अनुष्टुप छंद)

द्रव्यसामान्यविज्ञाननिम्नं कृत्वेति मानसम्।
तद्विशेषपरिज्ञानप्राग्भारः क्रियतेऽधुना॥९॥

इति प्रवचनसारवृत्तौ तत्त्वदीपिकायां श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायां ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापने द्रव्यसामान्यप्रज्ञापनं समाप्तम्॥

व्याख्यानेन तृतीया चेति। 'दव्वं जीवमजीवं' इत्यादिगाथात्रयेण प्रथमस्थलम्। तदनन्तरं ज्ञानादि-विशेषगुणानां स्वरूपकथनेन 'लिंगेहिं जेहिं' इत्यादिगाथाद्वयेन द्वितीयस्थलम्। अथानन्तरं स्वकीय-स्वकीयविशेषगुणोपलक्षितद्रव्याणां निर्णयार्थं 'वण्णरस' इत्यादिगाथात्रयेण तृतीयस्थलम्। अथ पञ्चास्तिकायकथनमुख्यत्वेन 'जीवा पोग्गलकाया' इत्यादिगाथाद्वयेन चतुर्थस्थलम्। अतः परं द्रव्याणां लोकाकाशमाधार इति कथनेन प्रथमा, यदेवाकाशद्रव्यस्य प्रदेशलक्षणं तदेव शेषाणामिति कथनरूपेण द्वितीया चेति 'लोगालोगेसु' इत्यादिसूत्रद्वयेन पञ्चमस्थलम्। तदनन्तरं कालद्रव्यस्याप्रदेशत्वस्थापनरूपेण प्रथमा, समयरूपः पर्यायकालः कालाणुरूपो द्रव्यकाल इति कथनरूपेण द्वितीया चेति 'समओ दु अप्पदेसो' इत्यादिगाथाद्वयेन षष्ठस्थलम्। अथ प्रदेशलक्षणकथनेन प्रथमा, तिर्यक्प्रचयोर्ध्वप्रचयस्वरूप-

---

अर्थ :—इसप्रकार परपरिणतिके उच्छेदसे (अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमनके नाशसे) तथा कर्ता, कर्म इत्यादि भेदोंकी भ्रांतिके भी नाशसे अन्तमें जिसने शुद्ध आत्मतत्त्वको उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल) तेजमें लीन होता हुआ, अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमाके प्रकाशमानरूपसे सर्वदा मुक्त ही रहेगा।

[अब, श्लोक द्वारा नवीन विषयको—द्रव्यविशेषके वर्णनको—सूचित किया जाता है :—]

अर्थ :—इसप्रकार द्रव्यसामान्यके ज्ञानसे मनको गंभीर करके, अब द्रव्यविशेषके [१]परिज्ञानका प्रारंभ किया जाता है।

इसप्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार शास्त्रकी श्रीमद् अमृतचंद्राचार्यदेव विरचित तत्त्वदीपिका नामकी टीकामें ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापनमें **द्रव्यसामान्यप्रज्ञापन** समाप्त हुआ।

---

१. परिज्ञान = विस्तारपूर्वक ज्ञान।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ द्रव्यविशेषप्रज्ञापनम्। तत्र द्रव्यस्य जीवाजीवत्वविशेषं निश्चिनोति—

दव्वं जीवमजीवं जीवो पुण चेदणोवओगमओ।
पोग्गलदव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि य अजीवं॥१२७॥

द्रव्यं जीवोऽजीवो जीवः पुनश्चेतनोपयोगमयः।
पुद्गलद्रव्यप्रमुखोऽचेतनो भवति चाजीवः॥१२७॥

इह हि द्रव्यमेकत्वनिबन्धनभूतं द्रव्यत्वसामान्यमनुज्झदेव तदधिरूढविशेषलक्षण-सद्भावादन्योन्यव्यवच्छेदेन जीवाजीवत्वविशेषमुपढौकते। तत्र जीवस्यात्मद्रव्यमेवैका व्यक्तिः। अजीवस्य पुनः पुद्गलद्रव्यं धर्मद्रव्यमधर्मद्रव्यं कालद्रव्यमाकाशद्रव्यं चेति पंच व्यक्तयः।

कथनेन द्वितीया चेति 'आगासमणुणिविट्ठं' इत्यादिसूत्रद्वयेन सप्तमस्थलम्। तदनन्तरं कालाणुरूपद्रव्यकाल-स्थापनरूपेण 'उप्पादो पद्धंसो' इत्यादिगाथात्रयेणाष्टमस्थलमिति विशेषज्ञेयाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा—अथ जीवाजीवलक्षणमावेदयति—**दव्वं जीवमजीवं** द्रव्यं जीवाजीवलक्षणं भवति। **जीवो पुण चेदणो** जीवः पुनश्चेतनः स्वतःसिद्धया बहिरङ्गकारणनिरपेक्षया बहिरन्तश्च प्रकाशमानया नित्यरूपया निश्चयेन परमशुद्धचेतनया, व्यवहारेण पुनरशुद्धचेतनया च युक्तत्वाच्चेतनो भवति। पुनरपि किंविशिष्टः।

अब, द्रव्यविशेषका प्रज्ञापन करते हैं (अर्थात् द्रव्यविशेषोंको–द्रव्यको भेदोंको–बतलाते हैं)। उसमें (प्रथम), द्रव्यके जीव-अजीवपनेरूप विशेषको निश्चित करते हैं, (अर्थात् द्रव्यके जीव और अजीव–ऐसे दो भेद बतलाते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[**द्रव्यं**] द्रव्य [**जीवः अजीवः**] जीव और अजीव है। [**पुनः**] उसमें [**चेतनोपयोगमयः**] चेतनामय तथा उपयोगमय सो [**जीवः**] जीव है, [**च**] और [**पुद्गलद्रव्यप्रमुखः अचेतनः**] पुद्गलद्रव्यादिक अचेतन द्रव्य वे [**अजीवः भवति**] अजीव हैं॥१२७॥

टीका :—यहाँ (इस विश्वमें) द्रव्य, एकत्वके कारणभूत द्रव्यत्वसामान्यको छोड़े बिना ही, उसमें रहे हुए विशेषलक्षणोंके सद्भावके कारण एक-दूसरेसे पृथक् किये जानेपर जीवत्वरूप और अजीवत्वरूप विशेषको प्राप्त होता है। उसमें, जीवका आत्मद्रव्य ही एक भेद है; और अजीवके पुद्गल द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य तथा आकाशद्रव्य—यह पाँच भेद हैं। जीवका विशेषलक्षण चेतना-उपयोगमयत्व (चेतनामयपना और उपयोगमयपना) है;

छे द्रव्य जीव, अजीव; चित-उपयोगमय ते जीव छे;
पुद्गलप्रमुख जे छे अचेतन द्रव्य, तेह अजीव छे. १२७.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

विशेषलक्षणं जीवस्य चेतनोपयोगमयत्वं; अजीवस्य पुनरचेतनत्वम्। तत्र यत्र स्वधर्मव्यापकत्वात्स्वरूपत्वेन द्योतमानयानपायिन्या भगवत्या संवित्तिरूपया चेतनया, तत्परिणामलक्षणेन द्रव्यवृत्तिरूपेणोपयोगेन च निर्वृत्तत्वमवतीर्णं प्रतिभाति स जीवः। यत्र पुनरुपयोगसहचरिताया यथोदितलक्षणायाश्चेतनाया अभावाद् बहिरन्तश्चाचेतनत्वमवतीर्णं प्रतिभाति सोऽजीवः ॥१२७॥

अथ लोकालोकत्वविशेषं निश्चिनोति—

पोग्गलजीवणिबद्धो धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो।
वट्टदि आगासे जो लोगो सो सव्वकाले दु॥१२८॥

उवओगमओ उपयोगमयः अखण्डैकप्रतिभासमयेन सर्वविशुद्धेन केवलज्ञानदर्शनलक्षणेनार्थग्रहणव्यापाररूपेण निश्चयनयेनेत्थंभूतशुद्धोपयोगेन, व्यवहारेण पुनर्मतिज्ञानाद्यशुद्धोपयोगेन च निर्वृत्तत्वान्निष्पन्नत्वादुपयोगमयः। **पोग्गलदव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि अज्जीवं** पुद्गलद्रव्यप्रमुखमचेतनं भवत्यजीवद्रव्यं; पुद्गलधर्माधर्माकाशकालसंज्ञं द्रव्यपञ्चकं पूर्वोक्तलक्षणचेतनाया उपयोगस्य चाभावादजीवमचेतनं

और अजीवका, (विशेष लक्षण) अचेतनपना है। वहाँ (जीवके) स्वधर्मोंमें व्यापनेवाली होनेसे (जीवके) स्वस्वरूपसे प्रकाशित होती हुई, अविनाशिनी, भगवती, संवेदनरूप चेतनाके द्वारा तथा चेतनापरिणामलक्षण, [१]द्रव्यपरिणतिरूप उपयोगके द्वारा जिसमें निष्पन्नपना (-रचनारूपपना) अवतरित प्रतिभासित होता है, वह जीव है और जिसमें उपयोगके साथ रहनेवाली, [२]यथोक्त लक्षणवाली चेतनाका अभाव होनेसे बाहर तथा भीतर अचेतनपना अवतरित प्रतिभासित होता है, वह अजीव है।

भावार्थ :—द्रव्यत्वरूप सामान्यकी अपेक्षासे द्रव्योंमें एकत्व है तथापि विशेष लक्षणोंकी अपेक्षासे उनके जीव और अजीव ऐसे दो भेद हैं। जो (द्रव्य) भगवती चेतनाके द्वारा और चेतनाके परिणामस्वरूप उपयोग द्वारा रचित है वह जीव है, और जो (द्रव्य) चेतनारहित होनेसे अचेतन है वह अजीव है। जीवका एक ही भेद है; अजीवके पांच भेद हैं, इन सबका विस्तृत विवेचन आगे किया जायगा ॥१२७॥

अब (द्रव्यके) लोकालोकस्वरूप विशेष (-भेद) निश्चित करते हैं :—

---

१. चेतनाका परिणामस्वरूप उपयोग जीवद्रव्यकी परिणति है।

२. यथोक्त लक्षणवाली = ऊपर कहे अनुसार लक्षणवाली (चेतनाका लक्षण ऊपर ही कहनेमें आया है।)

आकाशमां जे भाग धर्म-अधर्म-काळ सहित छे,
जीव-पुद्गलोथी युक्त छे, ते सर्वकाळे लोक छे. १२८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पुद्गलजीवनिबद्धो धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः।
वर्तते आकाशे यो लोकः स सर्वकाले तु॥१२८॥

अस्ति हि द्रव्यस्य लोकालोकत्वेन विशेषविशिष्टत्वं स्वलक्षणसद्भावात्। स्वलक्षणं हि लोकस्य षड्द्रव्यसमवायात्मकत्वं, अलोकस्य पुनः केवलाकाशात्मकत्वम्। तत्र सर्वद्रव्य-व्यापिनि परममहत्याकाशे यत्र यावति जीवपुद्गलौ गतिस्थितिधर्माणौ गतिस्थिती आस्कन्दतः तद्गतिस्थितिनिबन्धनभूतौ च धर्माऽधर्मावभिव्याप्यावस्थितौ, सर्वद्रव्यवर्तनानिमित्तभूतश्च कालो नित्यदुर्ललितस्तत्तावदाकाशं शेषाण्यशेषाणि द्रव्याणि चेत्यमीषां समवाय आत्मत्वेन स्वलक्षणं

भवतीत्यर्थः॥१२७॥ अथ लोकालोकरूपेण पदार्थस्य द्वैविध्यमाख्याति—**पोग्गलजीवणिबद्धो** अणु-स्कन्धभेदभिन्नाः पुद्गलास्तावत्तथैवामूर्तत्वातीन्द्रियज्ञानमयत्वनिर्विकारपरमानन्दैकसुखमयत्वादिलक्षणा जीवाश्चेत्थंभूतजीवपुद्गलैर्निबद्धः संबद्धो भृतः पुद्गलजीवनिबद्धः। **धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो** धर्मा-धर्मास्तिकायौ च कालश्च धर्माधर्मास्तिकायकालास्तैराढ्यो भृतो धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः। **जो** यः एतेषां पञ्चानामित्थंभूतसमुदायो राशिः समूहः। **वट्टदि** वर्तते। **कस्मिन्**। **आगासे** अनन्ता-नन्ताकाशद्रव्यस्य मध्यवर्तिनि लोकाकाशे। **सो लोगो** स पूर्वोक्तपञ्चानां समुदायस्तदाधारभूतं लोकाकाशं चेति षड्द्रव्यसमूहो लोको भवति। **क्व**। **सव्वकाले दु** सर्वकाले तु। तद्बहिर्भूतमनन्तानन्ताकाशमलोक इत्यभिप्रायः॥१२८॥ अथ द्रव्याणां सक्रियनिःक्रियत्वेन भेदं दर्शयतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु जीवपुद्गलयोरर्थव्यञ्जनपर्यायौ द्वौ शेषद्रव्याणां तु

अन्वयार्थ :—[आकाशे] आकाशमें [यः] जो भाग [पुद्गलजीवनिबद्धः] जीव और पुद्गलसे संयुक्त [धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः वर्तते] तथा धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय और कालसे समृद्ध है, [सः] वह [सर्वकाले तु] सर्वकालमें [लोकः] लोक है। (शेष केवल आकाश वह अलोक है।)

टीका :—वास्तवमें द्रव्य लोकत्व और अलोकत्वके भेदसे विशेषवान है, क्योंकि अपने-अपने लक्षणोंका सद्भाव है। लोकका स्वलक्षण षड्द्रव्यसमवायात्मकपना (-छह द्रव्योंका समुदायस्वरूपपना) है और अलोकका केवल आकाशात्मकपना (-मात्र आकाशस्वरूपपना) है। वहाँ, सर्व द्रव्योंमें व्याप्त होने वाले परम महान आकाशमें, जहाँ जितनेमें गतिस्थिति धर्मवाले जीव तथा पुद्गल गति-स्थितिको प्राप्त होते हैं, (जहाँ जितनेमें) उन्हें, गति-स्थितिमें निमित्तभूत धर्म तथा अधर्म व्याप्त होकर रहते हैं और (जहाँ जितनेमें) सर्व द्रव्योंको वर्तनामें निमित्तभूत काल सदा वर्तता है, वह उतना आकाश तथा शेष समस्त

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यस्य स लोकः। यत्र यावति पुनराकाशे जीवपुद्गलयोर्गतिस्थिती न संभवतो, धर्माधर्मौ नावस्थितौ, न कालो दुर्ललितस्तावत्केवलमाकाशमात्मत्वेन स्वलक्षणं यस्य सोऽलोकः ॥१२८॥

अथ क्रियाभावतद्भावविशेषं निश्चिनोति—

उप्पादट्ठिदिभंगा पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स।
परिणामा जायंते संघादादो व भेदादो॥१२९॥

उत्पादस्थितिभङ्गाः पुद्गलजीवात्मकस्य लोकस्य।
परिणामाज्जायन्ते संघाताद्वा भेदात् ॥१२९॥

मुख्यवृत्त्यार्थपर्याय इति व्यवस्थापयति—**जायंते** जायन्ते। के कर्तारः। **उप्पादट्ठिदिभंगा** उत्पाद-स्थितिभङ्गाः। कस्य संबन्धिनः। **लोगस्स** लोकस्य। किंविशिष्टस्य। **पोग्गलजीवप्पगस्स** पुद्गल-जीवात्मकस्य, पुद्गलजीवावित्युपलक्षणं षड्द्रव्यात्मकस्य। कस्मात्सकाशात् जायन्ते। **परिणामादो** परिणामात् एकसमयवर्तिनोऽर्थपर्यायात्। **संघादादो व भेदादो** न केवलमर्थपर्यायात्सकाशाज्जायन्ते जीव-पुद्गलानामुत्पादादयः संघाताद्वा, भेदाद्वा व्यञ्जनपर्यायादित्यर्थः। तथाहि—धर्माधर्माकाशकालानां मुख्यवृत्त्यैकसमयवर्तिनोऽर्थपर्याया एव, जीवपुद्गलानामर्थपर्यायव्यञ्जनपर्यायाश्च। कथमिति चेत्।

द्रव्य—उनका समुदाय जिसका [१]स्वपनेसे स्वलक्षण है, वह लोक है; और जहाँ जितने आकाशमें जीव तथा पुद्गलकी गति-स्थिति नहीं होती, धर्म तथा अधर्म नहीं रहते और काल नहीं वर्तता, उतना केवल आकाश जिसका स्व-पनेसे स्वलक्षण है, वह अलोक है॥१२८॥

अब, 'क्रिया' रूप और 'भाव' रूप ऐसे जो द्रव्यके भाव हैं उनकी अपेक्षासे द्रव्यका विशेष (-भेद) निश्चित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**पुद्गलजीवात्मकस्य लोकस्य**] पुद्गल-जीवात्मक लोकके [**परिणामात्**] परिणमनसे और [**संघातात् वा भेदात्**] संघात (मिलने) और भेद (पृथक् होने) से [**उत्पादस्थितिभंगाः**] उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय [**जायन्ते**] होते हैं॥१२९॥

---

१. स्वपनेसे = निजरूपसे (षड्द्रव्यसमुदाय ही लोक है, अर्थात् वही लोकका स्वत्व है—स्वरूप है। इसलिये लोकके स्वपनेसे षट्द्रव्योंका समुदाय लोकका स्वलक्षण है।)

उत्पाद, व्यय ने ध्रुवता जीवपुद्गलात्मक लोकने
परिणाम द्वारा, भेद वा संघात द्वारा थाय छे. १२९

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

क्रियाभाववत्त्वेन केवलभाववत्त्वेन च द्रव्यस्यास्ति विशेषः। तत्र भाववन्तौ क्रियावन्तौ च पुद्गलजीवौ, परिणामाद्भेदसंघाताभ्यां चोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानत्वात्। शेषद्रव्याणि तु भाववन्त्येव, परिणामादेवोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानत्वादिति निश्चयः। तत्र परिणाम-मात्रलक्षणो भावः, परिस्पन्दनलक्षणा क्रिया। तत्र सर्वाण्यपि द्रव्याणि परिणामस्वभावत्वात् परिणामेनोपात्तान्वयव्यतिरेकाण्यवतिष्ठमानोत्पद्यमानभज्यमानानि भाववन्ति भवन्ति। पुद्गलास्तु परिस्पन्दस्वभावत्वात्परिस्पन्देन भिन्नाः संघातेन, संहताः पुनर्भेदेनोत्पद्यमानाव-तिष्ठमानभज्यमानाः क्रियावन्तश्च भवन्ति। तथा जीवा अपि परिस्पन्दस्वभावत्वात्परिस्पन्देन

प्रतिसमयपरिणतिरूपा अर्थपर्याया भण्यन्ते। यदा जीवोऽनेन शरीरेण सह भेदं वियोगं त्यागं कृत्वा भवान्तरशरीरेण सह संघातं मेलापकं करोति तदा विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति, तस्मादेव भवान्तरसंक्रमणात्सक्रियत्वं भण्यते। पुद्गलानां तथैव विवक्षितस्कन्धविघटनात्सक्रियत्वेन स्कन्धान्तर-संयोगे सति विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति। मुक्तजीवानां तु निश्चयरत्नत्रयलक्षणेन परमकारणसमय-सारसंज्ञेन निश्चयमोक्षमार्गबलेनायोगिचरमसमये नखकेशान्विहाय परमौदारिकशरीरस्य विलीयमान-रूपेण विनाशे सति केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिलक्षणेन परमकार्यसमयसाररूपेण स्वभावव्यञ्जन-पर्यायेण कृत्वा योऽसावुत्पादः स भेदादेव भवति, न संघातात्। कस्मादिति चेत् शरीरान्तरेण सह

टीका :—कोई द्रव्य 'भाव' तथा 'क्रियावाले' होनेसे और कोई द्रव्य केवल 'भाव' वाले होनेसे,–इस अपेक्षासे द्रव्यका विशेष (भेद) है। वहाँ पुद्गल तथा जीव (१) भाववाले तथा (२) क्रियावाले हैं, क्योंकि (१) परिणाम द्वारा तथा (२) संघात और भेदके द्वारा वे उत्पन्न होते हैं, टिकते हैं और नष्ट होते हैं। शेष द्रव्य तो भाववाले ही हैं, क्योंकि वे परिणामके द्वारा ही उत्पन्न होते हैं, टिकते है और नष्ट होते हैं—ऐसा निश्चय है।

उसमें, 'भाव'का लक्षण परिणाममात्र है; 'क्रिया' का लक्षण परिस्पंद (-कम्पन) है। वहाँ समस्त ही द्रव्य भाववाले हैं, क्योंकि परिणामस्वभाववाले होनेसे परिणामके द्वारा [१]अन्वय और व्यतिरेकोंको प्राप्त होते हुए वे उत्पन्न होते हैं, टिकते हैं और नष्ट होते हैं। पुद्गल तो (भाववाले होनेके अतिरिक्त) क्रियावाले भी होते हैं, क्योंकि परिस्पंदस्वभाववाले होनेसे परिस्पंदके द्वारा [२]पृथक् पुद्गल एकत्रित हो जाते हैं, इसलिये और एकत्रित–मिले हुए पुद्गल पुनः पृथक् हो जाते हैं, इसलिये (इस अपेक्षासे) वे उत्पन्न होते हैं, टिकते हैं और नष्ट होते हैं। तथा जीव भी भाववाले होनेके अतिरिक्त) क्रियावाले भी होते हैं, क्योंकि

---

१. अन्वय, स्थायीपनेको और व्यतिरेक, उत्पाद तथा व्ययपनेको बतलाते हैं।

२. पृथक् पुद्गल कंपनके द्वारा एकत्रित होते हैं। वहाँ वे भिन्नपनेसे नष्ट हुए, पुद्गलपनेसे टिके और एकत्रपनेसे उत्पन्न हुए।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

नूतनकर्मनोकर्मपुद्गलेभ्यो भिन्नास्तैः सह संघातेन, संहताः पुनर्भेदेनोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानाः क्रियावन्तश्च भवन्ति॥१२९॥

अथ द्रव्यविशेषो गुणविशेषादिति प्रज्ञापयति—

लिंगेहिं जेहिं दव्वं जीवमजीवं च हवदि विण्णादं।
तेऽतब्भावविसिट्ठा मुत्तामुत्ता गुणा णेया॥१३०॥

लिङ्गैर्यैर्द्रव्यं जीवोऽजीवश्च भवति विज्ञातम्।
तेऽतद्भावविशिष्टा मूर्तामूर्ता गुणा ज्ञेयाः॥१३०॥

संबन्धाभावादिति भावार्थः॥१२९॥ एवं जीवाजीवत्वलोकालोकत्वसक्रियनिःक्रियत्वकथनक्रमेण प्रथमस्थले गाथात्रयं गतम्। अथ ज्ञानादिविशेषगुणभेदेन द्रव्यभेदमावेदयति—**लिंगेहिं जेहिं** लिङ्गैर्यैः सहजशुद्धपरमचैतन्यविलासरूपैस्तथैवाचेतनैर्जडरूपैर्वा लिङ्गैश्चिह्नैर्विशेषगुणैर्यैः करणभूतैर्जीवेन कर्तृभूतेन **हवदि विण्णादं** विशेषेण ज्ञातं भवति। किं कर्मतापन्नम्। **दव्वं** द्रव्यम्। कथंभूतम्। **जीवमजीवं च** जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च। **ते मुत्तामुत्ता गुणा णेया** ते तानि पूर्वोक्तचेतनाचेतनलिङ्गानि मूर्तामूर्तगुणा ज्ञेया

परिस्पन्दनस्वभाववाले होनेसे परिस्पंदके द्वारा नवीन कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलोंसे भिन्न जीव उनके साथ एकत्रित होनेसे और [१]कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलोंके साथ एकत्रित हुए जीव बादमें पृथक् होनेसे (इस अपेक्षासे) वे उत्पन्न होते हैं, टिकते हैं और नष्ट होते हैं॥१२९॥

अब, यह बतलाते हैं कि-गुण विशेषसे (गुणोंके भेदसे) द्रव्य विशेष (द्रव्योंका भेद) होता है :—

अन्वयार्थ :—[**यैः लिंगैः**] जिन लिंगोंसे [**द्रव्यं**] द्रव्य [**जीवः अजीवः च**] जीव और अजीवके रूपमें [**विज्ञातं भवति**] ज्ञात होता है, [**ते**] वे [**अतद्भावविशिष्टाः**] अतद्भाव विशिष्ट (-द्रव्यसे अतद्भावके द्वारा भिन्न ऐसे) [**मूर्तामूर्ताः**] मूर्त-अमूर्त [**गुणाः**] गुण [**ज्ञेयाः**] जानने चाहिये॥१३०॥

---

१. ज्ञानावरणादि कर्मरूप और शरीरादि नोकर्मरूप पुद्गलोंके साथ मिला हुआ जीव कंपनसे पुनः पृथक् हो जाता है। वहाँ (उन पुद्गलोंके साथ) एकत्ररूपसे वह नष्ट हुआ, जीवरूपसे स्थिर हुआ और (उनसे) पृथक्रूपसे उत्पन्न हुआ।

जे लिंगथी द्रव्यो महीं 'जीव' 'अजीव' अेम जणाय छे,
ते जाण मूर्त-अमूर्त गुण, अतत्पणाथी विशिष्ट जे. १३०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

द्रव्यमाश्रित्य परानाश्रयत्वेन वर्तमानैर्लिंग्यते गम्यते द्रव्यमेतैरिति लिंगानि गुणाः। ते च यद्द्रव्यं भवति न तद् गुणा भवन्ति, ये गुणा भवन्ति ते न द्रव्यं भवतीति द्रव्यादतद्भावेन विशिष्टाः सन्तो लिंगलिंगिप्रसिद्धौ तल्लिंगत्वमुपढौकन्ते। अथ ते द्रव्यस्य जीवोऽयम-जीवोऽयमित्यादिविशेषमुत्पादयन्ति, स्वयमपि तद्भावविशिष्टत्वेनोपात्तविशेषत्वात्। यतो हि यस्य यस्य द्रव्यस्य यो यः स्वभावस्तस्य तस्य तेन तेन विशिष्टत्वात्तेषामस्ति विशेषः। अत एव च मूर्तानाममूर्तानां च द्रव्याणां मूर्तत्वेनामूर्तत्वेन च तद्भावेन विशिष्टत्वादिमे मूर्ता गुणा इमे अमूर्ता इति तेषां विशेषो निश्चेयः॥१३०॥

अथ मूर्तामूर्तगुणानां लक्षणसंबन्धमाख्याति—

ज्ञातव्याः। ते च कथंभूताः। अतद्भावविसिट्ठा अतद्भावविशिष्टाः। तद्यथा–शुद्धजीवद्रव्ये ये केवलज्ञानादिगुणास्तेषां शुद्धजीवप्रदेशैः सह यदेकत्वमभिन्नत्वं तन्मयत्वं स तद्भावो भण्यते, तेषामेव गुणानां तैः प्रदेशैः सह यदा संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदः क्रियते तदा पुनरतद्भावो भण्यते, तेनातद्भावेन संज्ञादिभेदरूपेण स्वकीयस्वकीयद्रव्येण सह विशिष्टा भिन्ना इति, द्वितीयव्याख्यानेन पुनः स्वकीय-द्रव्येण सह तद्भावेन तन्मयत्वेनान्यद्रव्याद्विशिष्टा भिन्ना इत्यभिप्रायः। एवं गुणभेदेन द्रव्यभेदो

टीका :—द्रव्यका आश्रय लेकर और परके आश्रयके बिना प्रवर्तमान होनेसे जिनके द्वारा द्रव्य 'लिंगित' (-प्राप्त) होता है–पहिचाना जा सकता है, ऐसे लिंग गुण हैं। वे (गुण), 'जो द्रव्य हैं वे गुण नहीं हैं, जो गुण हैं वे द्रव्य नहीं हैं'—इस अपेक्षासे द्रव्यसे [१]अतद्भावके द्वारा विशिष्ट (-भिन्न) वर्तते हुए, लिंग और [२]लिंगीके रूपमें प्रसिद्धि (ख्याति) के समय द्रव्यके लिंगत्वको प्राप्त होते हैं। अब, वे द्रव्यमें 'यह जीव है, यह अजीव है' ऐसा विशेष (-भेद) उत्पन्न करते हैं, क्योंकि स्वयं भी [३]तद्भावके द्वारा [४]विशिष्ट होनेसे विशेषको प्राप्त हैं। जिस-जिस द्रव्यका जो-जो स्वभाव हो उस-उसका उस-उसके द्वारा विशिष्टत्व होनेसे उनमें विशेष (-भेद) हैं; और इसीलिये मूर्त तथा अमूर्त द्रव्योंका मूर्तत्व-अमूर्तत्वरूप तद्भावके द्वारा विशिष्टत्व होनेसे उनमें इस प्रकारके भेद निश्चित करना चाहिये कि 'यह मूर्त गुण हैं और यह अमूर्तगुण हैं' ॥१३०॥

अब, मूर्त और अमूर्त गुणोंके लक्षण तथा संबंध (अर्थात् उनका किन द्रव्योंके साथ संबंध है यह) कहते हैं :—

---

१. अतद्भाव = (कथंचित्) उसरूप नहीं होना वह;

२. लिंगी = लिंगवाला, (विशेषगुण वह लिंग–चिह्न–लक्षण है और लिंगी वह द्रव्य है)।

३. तद्भाव = उसरूप, उसपना; उसपनेसे होना; स्वरूप।

४. विशिष्ट = विशेषतावाला; खास; भिन्न।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मुत्ता इंदियगेज्झा पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविधा।
दव्वाणममुत्ताणं गुणा अमुत्ता मुणेदव्वा॥१३१॥

मूर्ता इन्द्रियग्राह्याः पुद्गलद्रव्यात्मका अनेकविधाः।
द्रव्याणाममूर्तानां गुणा अमूर्ता ज्ञातव्याः॥१३१॥

मूर्तानां गुणानामिन्द्रियग्राह्यत्वं लक्षणम्। अमूर्तानां तदेव विपर्यस्तम्। ते च मूर्ताः पुद्गलद्रव्यस्य, तस्यैवैकस्य मूर्तत्वात्। अमूर्ताः शेषद्रव्याणां, पुद्गलादन्येषां सर्वेषामप्यमूर्तत्वात्॥१३१॥

अथ मूर्तस्य पुद्गलद्रव्यस्य गुणान् गृणाति—

वण्णरसगंधफासा विज्जंते पोग्गलस्स सुहुमादो।
पुढवीपरियंतस्स य सद्दो सो पोग्गलो चित्तो॥१३२॥

ज्ञातव्यः॥१३०॥ अथ मूर्तामूर्तगुणानां लक्षणं संबन्धं च निरूपयति—मुत्ता इंदियगेज्झा मूर्ता गुणा इन्द्रियग्राह्या भवन्ति, अमूर्ताः पुनरिन्द्रियविषया न भवन्ति इति मूर्तामूर्तगुणानामिन्द्रियानिन्द्रयविषयत्वं लक्षणमुक्तम्। इदानीं मूर्तगुणाः कस्य संबन्धिनो भवन्तीति संबन्धं कथयति। पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविधा मूर्तगुणाः पुद्गलद्रव्यात्मका अनेकविधा भवन्ति; पुद्गलद्रव्यसंबन्धिनो भवन्तीत्यर्थः। अमूर्तगुणानां

अन्वयार्थ :—[इन्द्रियग्राह्याः मूर्ताः] इन्द्रियग्राह्य ऐसे मूर्तगुण [पुद्गलद्रव्यात्मकाः] पुद्गलद्रव्यात्मक [अनेक विधाः] अनेक प्रकारके हैं; [अमूर्तानां द्रव्याणां] अमूर्त द्रव्योंके [गुणाः] गुण [अमूर्ताः ज्ञातव्याः] अमूर्त जानना चाहिये॥१३१॥

टीका :—मूर्त गुणोंका लक्षण इन्द्रियग्राह्यत्व है; और अमूर्तगुणोंका उससे विपरीत है; (अर्थात् अमूर्त गुण इन्द्रियोंसे ज्ञात नहीं होते।) और मूर्त गुण पुद्गलद्रव्यके हैं, क्योंकि वही (पुद्गल ही) एक मूर्त है; और अमूर्त गुण शेष द्रव्योंके हैं, क्योंकि पुद्गलके अतिरिक्त शेष सभी द्रव्य अमूर्त हैं॥१३१॥

अब, मूर्त पुद्गलद्रव्यके गुण कहते हैं :—

गुण मूर्त इन्द्रियग्राह्य ते पुद्गलमयी बहुविध छे;
द्रव्यो अमूर्तिक जेह तेना गुण अमूर्तिक जाणजे. १३१.
छे वर्ण तेम ज गंध वळी रस-स्पर्श पुद्गलद्रव्यने,
—अतिसूक्ष्मथी पृथ्वी सुधी; वळी शब्द पुद्गल, विविध जे. १३२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

वर्णरसगंधस्पर्शा विद्यन्ते पुद्गलस्य सूक्ष्मात्।
पृथिवीपर्यन्तस्य च शब्दः स पुद्गलश्चित्रः॥१३२॥

इन्द्रियग्राह्याः किल स्पर्शरसगन्धवर्णास्तद्विषयत्वात्। ते चेन्द्रियग्राह्यत्वव्यक्तिशक्ति-वशात् गृह्यमाणा अगृह्यमाणाश्च आ-एकद्रव्यात्मकसूक्ष्मपर्यायात्परमाणोः आ-अनेक-द्रव्यात्मकस्थूलपर्यायात्पृथिवीस्कन्धाच्च सकलस्यापि पुद्गलस्याविशेषेण विशेषगुणत्वेन विद्यन्ते। ते च मूर्तत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवन्तः पुद्गलमधिगमयन्ति। शब्दस्यापीन्द्रियग्राह्यत्वाद् गुणत्वं न खल्वाशंकनीयं, तस्य वैचित्र्यप्रपंचितवैश्वरूपस्याप्यनेकद्रव्यात्मकपुद्गलपर्यायत्वेनाभ्युप-

---

संबन्धं प्रतिपादयति। **दव्वाणममुत्ताणं** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रभृतीनाममूर्तद्रव्याणां संबन्धिनो भवन्ति। ते के। **गुणा अमुत्ता** अमूर्ताः गुणाः, केवलज्ञानादय इत्यर्थः। इति मूर्तामूर्तगुणानां लक्षणसंबन्धौ ज्ञातव्यौ॥१३१॥ एवं ज्ञानादिविशेषगुणभेदेन द्रव्यभेदो भवतीति कथनरूपेण द्वितीय-स्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ मूर्तपुद्गलद्रव्यस्य गुणानावेदयति—**वण्णरसगंधफासा विज्जंते पोग्गलस्स** वर्णरसगन्धस्पर्शा विद्यन्ते। कस्य। पुद्गलस्य। कथंभूतस्य। **सुहुमादो पुढवीपरियंतस्स य** "पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू। छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं"॥ इति

अन्वयार्थ :—[**वर्णरसगंधस्पर्शाः**] वर्ण, रस, गंध और स्पर्श (-गुण) [**सूक्ष्मात्**] सूक्ष्मसे लेकर [**पृथ्वीपर्यंतस्य च**] पृथ्वी पर्यन्तके [**पुद्गलस्य**] (सर्व) पुद्गलके [**विद्यन्ते**] होते हैं; [**चित्रः शब्दः**] जो विविध प्रकारका शब्द है [**सः**] वह [**पुद्गल**] पुद्गल अर्थात् पौद्गलिक पर्याय है॥१३२॥

टीका :—स्पर्श, रस, गंध और वर्ण इन्द्रियग्राह्य हैं, क्योंकि वे इन्द्रियोंके विषय हैं। वे इन्द्रियग्राह्यताकी [१]व्यक्ति और शक्तिके वशसे भले ही इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किये जाते हों या न किये जाते हों तथापि वे एकद्रव्यात्मक सूक्ष्मपर्यायरूप परमाणुसे लेकर अनेकद्रव्यात्मक स्थूलपर्यायरूप पृथ्वीस्कंध तकके समस्त पुद्गलके, अविशेषतया विशेष गुणोंके रूपमें होते हैं; और उनके मूर्त होनेके कारण ही, (पुद्गलके अतिरिक्त) शेष द्रव्योंके न होनेसे वे पुद्गलको बतलाते हैं।

ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये कि शब्द भी इन्द्रियग्राह्य होनेसे गुण होगा; क्योंकि वह (शब्द) [२]विचित्रताके द्वारा विश्वरूपपना (अनेकानेकप्रकारपना) दरशाता होनेपर भी उसे अनेकद्रव्यात्मक पुद्गलपर्यायके रूपमें स्वीकार किया जाता है।

---

१. परमाणु, कार्मणवर्गणा इत्यादिमें इन्द्रियग्राह्यता व्यक्त नहीं है तथापि शक्तिरूपसे अवश्य होती है; इसीलिये बहुतसे परमाणु स्कंधरूप होकर स्थूलता धारण करके इन्द्रियोंसे ज्ञात होते हैं।

२. विचित्रता = विविधता (शब्द भाषात्मक, अभाषात्मक, प्रायोगिक, वैश्रसिक–ऐसे अनेक प्रकारके हैं।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

गम्यमानत्वात्। गुणत्वे वा, न तावदमूर्तद्रव्यगुणः शब्दः, गुणगुणिनोरविभक्तप्रदेशत्वेनैकवेदन-वेद्यत्वादमूर्तद्रव्यस्यापि श्रवणेन्द्रियविषयत्वापत्तेः। पर्यायलक्षणेनोत्खातगुणलक्षणत्वान्मूर्तद्रव्य-गुणोऽपि न भवति। पर्यायलक्षणं हि कादाचित्कत्वं, गुणलक्षणं तु नित्यत्वम्। ततः कादाचित्कत्वोत्खातनित्यत्वस्य न शब्दस्यास्ति गुणत्वम्। यत्तु तत्र नित्यत्वं तत्तदारम्भक-पुद्गलानां तद्गुणानां च स्पर्शादीनामेव, न शब्दपर्यायस्येति दृढतरं ग्राह्यम्। न च पुद्गल-

---

गाथाकथितक्रमेण परमाणुलक्षणसूक्ष्मस्वरूपादेः पृथ्वीस्कन्धलक्षणस्थूलस्वरूपपर्यन्तस्य च। तथाहि— यथानन्तज्ञानादिचतुष्टयं विशेषलक्षणभूतं यथासंभवं सर्वजीवेषु साधारणं तथा वर्णादिचतुष्टयं विशेष-लक्षणभूतं यथासंभवं सर्वपुद्गलेषु साधारणम्। यथैव चानन्तज्ञानादिचतुष्टयं मुक्तजीवेऽतीन्द्रियज्ञान-विषयमनुमानगम्यमागमगम्यं च, तथा शुद्धपरमाणुद्रव्ये वर्णादिचतुष्टयमप्यतीन्द्रियज्ञानविषयमनुमान-गम्यमागमगम्यं च। यथा वानन्तचतुष्टयस्य संसारिजीवे रागादिस्नेहनिमित्तेन कर्मबन्धवशादशुद्धत्वं भवति तथा वर्णादिचतुष्टयस्यापि स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तेन द्वि-अणुकादिबन्धावस्थायामशुद्धत्वम्। यथा वानन्तज्ञानादिचतुष्टयस्य रागादिस्नेहरहितशुद्धात्मध्यानेन शुद्धत्वं भवति तथा वर्णादिचतुष्टयस्यापि स्निग्धगुणाभावे बन्धनेऽसति परमाणुपुद्गलावस्थायां शुद्धत्वमिति। **सद्दो सो पोग्गलो यस्तु शब्दः स**

यदि शब्दको (पर्याय न मानकर) गुण माना जाय तो वह क्यों योग्य नहीं है उसका समाधान :—

प्रथम तो, शब्द अमूर्त द्रव्यका गुण नहीं है क्योंकि गुण-गुणीमें अभिन्न प्रदेशपना होनेसे वे (गुण-गुणी) [१]एक वेदनसे वेद्य होनेसे अमूर्त द्रव्यको भी श्रवणेन्द्रियका विषयभूतपना आ जायगा।

(दूसरे, शब्दमें) पर्यायके लक्षणद्वारा गुणका लक्षण उत्थापित होनेसे शब्द मूर्त द्रव्यका गुण भी नहीं है। पर्यायका लक्षण कादाचित्कपना (अनित्यपना) है, और गुणका लक्षण नित्यपना है; इसलिये (शब्दमें) अनित्यपनेसे नित्यपनेके उत्थापित होनेसे (अर्थात् शब्द कभी-कभी ही होता है, और नित्य नहीं है, इसलिये) शब्द वह गुण नहीं है। जो वहाँ नित्यपना है वह उसे (शब्दको) उत्पन्न करनेवाले पुद्गलोंका और उनके स्पर्शादिक गुणोंका ही है, शब्दपर्यायका नहीं—इसप्रकार अति दृढ़तापूर्वक ग्रहण करना चाहिये।

---

१. एक वेदनसे वेद्य = एक ज्ञानसे ज्ञात होने योग्य (नैयायिक शब्दको आकाशका गुण मानते हैं किन्तु यह मान्यता अप्रमाण है। गुण-गुणीके प्रदेश अभिन्न होते हैं, इसलिये जिस इन्द्रियसे गुण ज्ञात होता है उसीसे गुणी-भी ज्ञात होना चाहिए। शब्द कर्णेन्द्रियसे जाना जाता है, इसलिये आकाश भी कर्णेन्द्रियसे ज्ञात होना चाहिये। किन्तु वह तो किसी भी इन्द्रियसे ज्ञात होता नहीं है। इसलिये शब्द आकाशादि अमूर्तिक द्रव्योंका गुण नहीं है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पर्यायत्वे शब्दस्य पृथिवीस्कन्धस्येव स्पर्शनादीन्द्रियविषयत्वम्; अपां घ्राणेन्द्रियाविषयत्वात्, ज्योतिषो घ्राणरसनेन्द्रियाविषयत्वात्, मरुतो घ्राणरसनचक्षुरिन्द्रियाविषयत्वाच्च। न चागन्धागन्धरसागन्धरसवर्णाः एवमप्ज्योतिर्मारुतः, सर्वपुद्गलानां स्पर्शादिचतुष्कोपेतत्वाभ्युपगमात्; व्यक्तस्पर्शादिचतुष्कानां च चन्द्रकान्तारणियवानामारम्भकैरेव पुद्गलैरव्यक्तगन्धाव्यक्तगन्धरसाव्यक्तगन्धरसवर्णानामप्ज्योतिरुदरमरुतामारम्भदर्शनात्। न च क्वचित्कस्यचित् गुणस्य व्यक्ता-

---

पौद्गलः। यथा जीवस्य नरनारकादिविभावपर्यायाः तथायं शब्दः पुद्गलस्य विभावपर्यायो, न च गुणः। कस्मात्। गुणस्याविनश्वरत्वात्, अयं च विनश्वरो। नैयायिकमतानुसारी कश्चिद्वदत्याकाशगुणोऽयं शब्दः। परिहारमाह–आकाशगुणत्वे सत्यमूर्तो भवति। अमूर्तश्च श्रवणेन्द्रियविषयो न भवति, दृश्यते च श्रवणेन्द्रियविषयत्वम्। शेषेन्द्रियविषयः कस्मान्न भवतीति चेत्—

और ''यदि शब्द पुद्गलकी पर्याय हो तो वह पृथ्वीस्कंधकी भाँति स्पर्शनादिक इद्रियोंका विषय होना चाहिये, अर्थात् जैसे पृथ्वीस्कंधरूप पुद्गलपर्याय सर्व इन्द्रियोंसे ज्ञात होती है उसीप्रकार शब्दरूप पुद्गलपर्याय भी सभी इन्द्रियोंसे ज्ञात होनी चाहिये'' (ऐसा तर्क किया जाय तो) ऐसा भी नहीं है; क्योंकि पानी (पुद्गलकी पर्याय होने पर भी) घ्राणेन्द्रियका विषय नहीं है; अग्नि (पुद्गलकी पर्याय होने पर भी) घ्राणेन्द्रिय तथा रसनेन्द्रियका विषय नहीं है और वायु (पुद्गलकी पर्याय होने परभी) घ्राण, रसना तथा चक्षुइन्द्रियका विषय नहीं है। और ऐसा भी नहीं है कि पानी गंध रहित है (इसलिये नाकसे अग्राह्य है), अग्नि गंध तथा रस रहित है (इसलिये नाक, जीभसे अग्राह्य है) और वायु गंध, रस तथा वर्ण रहित है (इसलिये नाक, जीभ तथा आँखोंसे अग्राह्य है); क्योंकि सभी पुद्गल स्पर्शादि [१]चतुष्कयुक्त स्वीकार किये गये हैं क्योंकि जिनके स्पर्शादि चतुष्क व्यक्त हैं ऐसे (१) चन्द्रकांतमणिको, (२) अरणिको और (३) जौ को जो पुद्गल उत्पन्न करते हैं उन्हींके द्वारा (१) जिसकी गंध अव्यक्त है ऐसे पानीकी, (२) जिसकी गंध तथा रस अव्यक्त है ऐसी अग्निकी और (३) जिसकी गंध, रस तथा वर्ण अव्यक्त है ऐसी उदरवायुकी उत्पत्ति होती देखी जाती है।

---

१. चतुष्क = चतुष्टय, चारका समूह। [समस्त पुद्गलोंमें—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन सबहीमें—स्पर्शादि चारों गुण होते हैं। मात्र अन्तर इतना ही हैं कि पृथ्वीमें चारों गुण व्यक्त हैं, पानीमें गंध अव्यक्त है, अग्निमें गंध तथा रस अव्यक्त है, और वायुमें गंध, रस, तथा वर्ण अव्यक्त हैं। इस बातकी सिद्धिके लिये युक्ति इसप्रकार है :–चन्द्रकान्तमणिरूप पृथ्वीमेंसे पानी झरता है; अरणिकी-लकड़ीमेंसे अग्नि प्रगट होती है और जौ खानेसे पेटमें वायु उत्पन्न होती है; इसलिये (१) चन्द्रकांतमणिमें, (२) अरणि-लकड़ीमें और (३) जौ में रहनेवाले चारों गुण (१) पानीमें, (२) अग्निमें और (३) वायुमें होने चाहिये। मात्र अन्तर इतना ही है कि उन गुणोंमेंसे कुछ अप्रगटरूपसे परिणमित हुये हैं। और फिर, पानीमेंसे मोतीरूप पृथ्वीकाय अथवा अग्निमेंसे काजलरूप पृथ्वीकायके उत्पन्न होने पर चारों गुण प्रगट होते हुये देखे जाते हैं।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

व्यक्तत्वं कादाचित्कपरिणामवैचित्र्यप्रत्ययं नित्यद्रव्यस्वभावप्रतिघाताय। ततोऽस्तु शब्दः पुद्गलपर्याय एवेति॥१३२॥

अथामूर्तानां शेषद्रव्याणां गुणान् गृणाति—

आगासस्सवगाहो धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं।
धम्मेदरदव्वस्स दु गुणो पुणो ठाणकारणदा॥१३३॥
कालस्स वट्टणा से गुणोवओगो त्ति अप्पणो भणिदो।
णेया संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणाणं॥१३४॥

अन्येन्द्रियविषयोऽन्येन्द्रियस्य न भवति वस्तुस्वभावादेव, रसादिविषयवत्। पुनरपि कतंभूतः। चित्तो चित्रः भाषात्मकाभाषात्मकरूपेण प्रायोगिकवैश्रसिकरूपेण च नानाप्रकारः। तच्च "सद्दो खंधप्पभवो" इत्यादिगाथायां पञ्चास्तिकाये व्याख्यातं तिष्ठत्यत्रालं प्रसङ्गेन॥१३२॥ अथाकाशाद्यमूर्तद्रव्याणां विशेषगुणान्प्रतिपादयति—**आगासस्सवगाहो** आकाशस्यावगाहहेतुत्वं, **धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं** धर्मद्रव्यस्य गमनहेतुत्वं, **धम्मेदरदव्वस्स दु गुणो पुणो ठाणकारणदा** धर्मेतरद्रव्यस्य तु पुनः स्थानकारणतागुणो भवतीति प्रथमगाथा गता। **कालस्स वट्टणा से** कालस्य वर्तना स्याद्गुणः, **गुणोवओगो त्ति अप्पणो भणिदो** ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयमित्यात्मनो गुणो भणितः। **णेया संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणाणं** एवं संक्षेपादमूर्तद्रव्याणां गुणा ज्ञेया इति। तथाहि—सर्वद्रव्याणां साधारणमवगाहहेतुत्वं

और कहीं (किसी पर्यायमें) किसी गुणकी कादाचित्क परिणामकी विचित्रताके कारण होनेवाला व्यक्तपना या अव्यक्तपना नित्य द्रव्यस्वभावका प्रतिघात नहीं करता। (अर्थात् अनित्यपरिणामके कारण होनेवाली गुणकी प्रगटता और अप्रगटता नित्य द्रव्यस्वभावके साथ कहीं विरोधको प्राप्त नहीं होती।)

इसलिये शब्द पुद्गलकी पर्याय ही हो॥१३२॥

अब, शेष अमूर्त द्रव्योंके गुण कहते हैं :—

अवगाह गुण आकाशनो, गतिहेतुता छे धर्मनो,
वळी स्थानकारणतारूपी गुण जाण द्रव्य अधर्मनो. १३३.
छे काळनो गुण वर्तना उपयोग भाख्यो जीवमां,
अे रीत मूर्तिविहीनना गुण जाणवा संक्षेपमां. १३४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

आकाशस्यावगाहो धर्मद्रव्यस्य गमनहेतुत्वम्।
धर्मेतरद्रव्यस्य तु गुणः पुनः स्थानकारणता॥१३३॥
कालस्य वर्तना स्यात् गुण उपयोग इति आत्मनो भणितः।
ज्ञेयाः संक्षेपाद्गुणा हि मूर्तिप्रहीणानाम्॥१३४॥

विशेषगुणो हि युगपत्सर्वद्रव्याणां साधारणावगाहहेतुत्वमाकाशस्य, सकृत्सर्वेषां गमनपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गमनहेतुत्वं धर्मस्य, सकृत्सर्वेषां स्थानपरिणामिनां जीवपुद्गलानां स्थानहेतुत्वमधर्मस्य, अशेषशेषद्रव्याणां प्रतिपर्यायं समयवृत्तिहेतुत्वं कालस्य, चैतन्यपरिणामो जीवस्य। एवममूर्तानां विशेषगुणसंक्षेपाधिगमे लिंगम्। तत्रैककालमेव

विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसंभवत्सदाकाशं निश्चिनोति। गतिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामेकसमये साधारणं गमनहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसंभवत्सद्धर्मद्रव्यं निश्चिनोति। तथैव च स्थितिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामेकसमये साधारणं स्थितिहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसंभवत्सदधर्मद्रव्यं निश्चिनोति। सर्वद्रव्याणां युगपत्पर्यायपरिणतिहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसंभवत्सत्कालद्रव्यं निश्चिनोति। सर्वजीवसाधारणं सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनद्वयं विशेषगुणत्वादेवान्याचेतनपञ्चद्रव्याणामसंभवत्सच्छुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मद्रव्यं निश्चिनोति। अयमत्रार्थः—यद्यपि पञ्चद्रव्याणि जीवस्योपकारं कुर्वन्ति तथापि तानि दुःखकारणान्येवेति ज्ञात्वाक्षयानन्तसुखादिकारणं

अन्वयार्थ :—[आकाशस्यावगाहः] आकाशका अवगाह, [धर्मद्रव्यस्य गमनहेतुत्वं] धर्मद्रव्यका गमनहेतुत्व [तु पुनः] और [धर्मेतरद्रव्यस्य गुणः] अधर्म द्रव्यका गुण [स्थानकारणता] स्थानकारणता है। [कालस्य] कालका गुण [वर्तता स्यात्] वर्तना है, [आत्मनः गुणः] आत्माका गुण [उपयोगः इति भणितः] उपयोग कहा है। [मूर्तिप्रहीणानां गुणाः हि] इसप्रकार अमूर्त द्रव्योंके गुण [संक्षेपात्] संक्षेपसे [ज्ञेयाः] जानना चाहिये॥१३३-१३४॥

टीका :—युगपत् सर्वद्रव्योंके साधारण अवगाहका हेतुपना आकाशका विशेष गुण है। एक ही साथ सर्व गमनपरिणामी (गतिरूप परिणमित) जीव-पुद्गलोंके गमनका हेतुपना धर्मका विशेष गुण है। एक ही साथ सर्व स्थानपरिणामी (स्थितिरूप परिणमित) जीव-पुद्गलोंके स्थिर होनेका हेतुत्व स्थितिका अर्थात् स्थिर होनेका निमित्तपना अधर्मका विशेषगुण है। (कालके अतिरिक्त) शेष समस्त द्रव्योंकी प्रति-पर्यायमें समयवृत्तिका हेतुपना (समय-समयकी परिणतिका निमित्तत्व) कालका विशेष गुण है। चैतन्यपरिणाम जीवका विशेष गुण है। इसप्रकार अमूर्त द्रव्योंके विशेष गुणोंका संक्षिप्त ज्ञान होने पर अमूर्त द्रव्योंको जाननेके लिंग (चिह्न, लक्षण, साधन) प्राप्त होते हैं; अर्थात् उन-उन विशेष गुणोंके द्वारा उन-उन अमूर्त

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सकलद्रव्यसाधारणावगाहसंपादनमसर्वगतत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवदाकाशमधिगमयति। तथैकवारमेव गतिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामालोकाद्गमनहेतुत्वमप्रदेशत्वात्कालपुद्गलयोः, समुद्घातादन्यत्र लोकासंख्येयभागमात्रत्वाज्जीवस्य, लोकालोकसीम्नोऽचलितत्वादाकाशस्य, विरुद्धकार्यहेतुत्वादधर्मस्यासंभवद्धर्ममधिगमयति। तथैकवारमेव स्थितिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामालोकात्स्थानहेतुत्वमप्रदेशत्वात्कालपुद्गलयोः, समुद्घातादन्यत्र लोकासंख्येयभागमात्रत्वाज्जीवस्य, लोकालोकसीम्नोऽचलितत्वादाकाशस्य, विरुद्धकार्यहेतुत्वाद्धर्मस्य चासंभवदधर्ममधि-

---

विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावं परमात्मद्रव्यं तदेव मनसा ध्येयं वचसा वक्तव्यं कायेन तत्साधकमनुष्ठानं च कर्तव्यमिति।।१३३। १३४।। एवं कस्य द्रव्यस्य के विशेषगुणा भवन्तीति कथनरूपेण

द्रव्योंका अस्तित्व ज्ञात होता है—सिद्ध होता है। (इसीको स्पष्टतापूर्वक समझाते हैं :—)

वहाँ एक ही कालमें समस्त द्रव्योंको साधारण [१]अवगाहका संपादन (-अवगाहहेतुपनेरूप लिंग) आकाशको बतलाता है; क्योंकि शेष द्रव्योंके सर्वगत (सर्वव्यापक) न होनेसे उनके वह संभव नहीं है।

इसीप्रकार एक ही कालमें गतिपरिणत (गतिरूपसे परिणमित हुए) समस्त जीव-पुद्गलोंको लोक तक गमनका हेतुपना धर्मको बतलाता है; क्योंकि काल और पुद्गल अप्रदेशी हैं इसलिये उनके वह संभव नहीं है; जीव समुद्घातको छोड़कर अन्यत्र लोकके असंख्यातवें भाग मात्र है, इसलिये उसके वह संभव नहीं है, लोक-अलोककी सीमा अचलित होनेसे आकाशको वह संभव नहीं है और विरुद्ध कार्यका हेतु होनेसे अधर्मको वह संभव नहीं है। (काल और पुद्गल एकप्रदेशी हैं, इसलिये वे लोक तक गमनमें निमित्त नहीं हो सकते; जीव समुद्घातको छोड़कर अन्य कालमें लोकके असंख्यातवें भागमें ही रहता है, इसलिये वह भी लोक तक गमनमें निमित्त नहीं हो सकता; यदि आकाश गतिमें निमित्त हो तो जीव और पुद्गलोंकी गति अलोकमें भी होने लगे, जिससे लोकाकाशकी मर्यादा ही न रहेगी; इसलिये गतिहेतुत्व आकाशका भी गुण नहीं है; अधर्म द्रव्य तो गतिसे विरुद्ध स्थितिकार्यमें निमित्तभूत है, इसलिये वह भी गतिमें निमित्त नहीं हो सकता। इसप्रकार गतिहेतुत्वगुण धर्मनामक द्रव्यका अस्तित्व बतलाता है।)

इसीप्रकार एक ही कालमें स्थितिपरिणत समस्त जीव-पुद्गलोंको लोक तक स्थितिका हेतुपना अधर्मको बतलाता है; क्योंकि काल और पुद्गल अप्रदेशी होनेसे उनके वह संभव नहीं है; जीव समुद्घातको छोड़कर अन्यत्र लोकके असंख्यातवें भाग मात्र है, इसलिये उसके वह संभव नहीं है; लोक और अलोककी सीमा अचलित होनेसे आकाशके वह संभव नहीं है, और

---

१. अवगाह = लीन होना; मज्जित होना, अवकाश प्राप्त करना। (एक ही कालमें सर्व द्रव्योंको सामान्य अवकाशकी प्राप्तिमें आकाशद्रव्य निमित्तभूत है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

गमयति। तथा अशेषशेषद्रव्याणां प्रतिपर्यायं समयवृत्तिहेतुत्वं कारणान्तरसाध्यत्वात्समय-विशिष्टाया वृत्तेः स्वतस्तेषामसंभवत्कालमधिगमयति। तथा चैतन्यपरिणामोऽचेतनत्वादेव शेष-द्रव्याणामसंभवन् जीवमधिगमयति। एवं गुणविशेषाद् द्रव्यविशेषोऽधिगन्तव्यः ॥१३३। १३४॥

अथ द्रव्याणां प्रदेशवत्त्वाप्रदेशवत्त्वविशेषं प्रज्ञापयति—

तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम्। अथ कालद्रव्यं विहाय जीवादिपञ्चद्रव्याणामस्तिकायत्वं व्याख्याति—

विरुद्ध कार्यका हेतु होनेसे धर्मको वह संभव नहीं है।

इसीप्रकार (कालके अतिरिक्त) शेष समस्त द्रव्योंके प्रत्येक पर्यायमें समयवृत्तिका हेतुपना कालको बतलाता है, क्योंकि उनके [१]समयविशिष्ट वृत्ति कारणान्तरसे सधती होनेसे (अर्थात् उनके समयसे विशिष्ट ऐसी परिणति अन्य कारणसे होती है,) इसलिये स्वतः उनके वह (समयवृत्तिहेतुपना) संभवित नहीं है।

इसीप्रकार चैतन्यपरिणाम जीवको बतलाता है, क्योंकि वह चेतन होनेसे शेष द्रव्योंके संभव नहीं है।

इसप्रकार गुणविशेषसे द्रव्यविशेष जानना चाहिये।

भावार्थ :—जैसा कि पहले बताया गया है,–स्पर्श, रस, गंध, वर्णसे पुद्गल द्रव्योंका अस्तित्व ज्ञात होता है। यहाँ अमूर्त द्रव्योंका अस्तित्व उनके विशेष लक्षणोंसे प्रगट किया गया है।

चैतन्यपरिणामरूप लक्षण अनुभवमें आता है इसलिये अनन्त जीवद्रव्योंका अस्तित्व ज्ञात होता है। जीवादि समस्त द्रव्य जिसके निमित्तसे अवगाह (अवकाश) को प्राप्त करते हैं ऐसा कोई द्रव्य होना चाहिये; वह द्रव्य लोकालोकव्यापी आकाश है। जीव और पुद्गल गति करते हुए मालूम होते हैं, इसलिये जैसे मछलीको गति करनेमें निमित्तभूत जल है उसी प्रकार जीव और पुद्गलोंको गति करनेमें निमित्तभूत कोई द्रव्य होना चाहिये; वह द्रव्य लोकव्यापी धर्मद्रव्य है। जैसे मनुष्यको स्थितिमें निमित्तभूत पृथ्वी है उसीप्रकार जीव और पुद्गलोंकी स्थितिमें निमित्तभूत कोई द्रव्य होना चाहिये। वह द्रव्य लोकव्यापी अधर्मद्रव्य है। जैसे कुम्हारके चक्रके चलनेमें कील निमित्तभूत है उसीप्रकार (कालके अतिरिक्त) सर्व द्रव्योंके परिणमनमें निमित्तभूत कोई द्रव्य होना चाहिये; वह द्रव्य असंख्यात कालाणु हैं, जिनकी पर्यायें समय, घड़ी, दिन, वर्ष इत्यादिरूपसे व्यक्त होती हैं।

इसप्रकार गुणभेदसे द्रव्यभेद निश्चित हुआ ॥१३३-१३४॥

अब, द्रव्यका [२]प्रदेशवत्व और अप्रदेशवत्वरूप विशेष (-भेद) बतलाते हैं :—

---

१. कालके अतिरिक्त द्रव्योंकी परिणति 'एक समयमें यह परिणति हुई है' इसप्रकार समयसे विशिष्ट है अर्थात् व्यवहारसे उसमें समयकी अपेक्षा आती है, इसलिये उसमें कोई द्रव्य—कालद्रव्य—निमित्त होना चाहिये।

२. प्रदेशवत्व = प्रदेशवानपना।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा पुणो य आगासं।
सपदेसेहिं असंखा णत्थि पदेस त्ति कालस्स॥१३५॥

जीवाः पुद्गलकाया धर्माधर्मौ पुनश्चाकाशम्।
स्वप्रदेशैरसंख्याता न सन्ति प्रदेशा इति कालस्य॥१३५॥

प्रदेशवन्ति हि जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानि अनेकप्रदेशवत्त्वात्। अप्रदेशः कालाणुः प्रदेशमात्रत्वात्। अस्ति च संवर्तविस्तारयोरपि लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशापरित्यागाज्जीवस्य, द्रव्येण प्रदेशमात्रत्वादप्रदेशत्वेऽपि द्विप्रदेशादिसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशपर्यायेणानवधारित-प्रदेशत्वात्पुद्गलस्य, सकललोकव्याप्यसंख्येयप्रदेशप्रस्ताररूपत्वाद् धर्मस्य, सकललोकव्याप्य-

---

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा पुणो य आगासं जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मौ पुनश्चाकाशम्। एते पञ्चास्तिकायाः किंविशिष्टाः। सपदेसेहिं असंखा स्वप्रदेशैरसंख्येयाः। अत्रासंख्येयप्रदेशशब्देन प्रदेशबहुत्वं ग्राह्यम्। तच्च यथासंभवं योजनीयम्। जीवस्य तावत्संसारावस्थायां विस्तारोपसंहारयोरपि प्रदीप-वत्प्रदेशानां हानिवृद्ध्योरभावाद्व्यवहारेण देहमात्रेऽपि निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वम्।

अन्वयार्थ :—[जीवाः] जीव [पुद्गलकायाः] पुद्गलकाय, [धर्माधर्मौ] धर्म, अधर्म [पुनः च] और [आकाशं] आकाश [स्वप्रदेशैः] स्वप्रदेशोंकी अपेक्षासे [असंख्याताः] असंख्यात अर्थात् अनेक हैं; [कालस्य] कालके [प्रदेशाः इति] प्रदेश [न सन्ति] नहीं हैं॥१३५॥

टीका :—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश अनेक प्रदेशवाले होनेसे प्रदेशवान् हैं। कालाणु प्रदेशमात्र (एकप्रदेशी) होनेसे अप्रदेशी है।

[उपरोक्त बातको स्पष्ट करते हैं :—] संकोच-विस्तारके होने पर भी जीव लोकाकाश तुल्य असंख्य प्रदेशोंको नहीं छोड़ता, इसलिये वह प्रदेशवान् है; पुद्गल यद्यपि द्रव्य अपेक्षासे प्रदेशमात्र (-एकप्रदेशी) होनेसे अप्रदेशी है तथापि, दो प्रदेशोंसे लेकर संख्यात, असंख्यात, और अनन्तप्रदेशोंवाली पर्यायोंकी अपेक्षासे अनिश्चित प्रदेशवाला होनेसे प्रदेशवान् है; सकल लोकव्यापी असंख्य प्रदेशोंके [१]प्रस्ताररूप होनेसे धर्म प्रदेशवान है; सकललोकव्यापी असंख्य

---

१. प्रस्तार = फैलाव; विस्तार।

जीवद्रव्य, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म वळी आकाशने
छे स्वप्रदेश अनेक, नहि वर्ते प्रदेशो काळने. १३५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

संख्येयप्रदेशप्रस्तारूपत्वादधर्मस्य, सर्वव्याप्यनन्तप्रदेशप्रस्तारूपत्वादाकाशस्य च प्रदेशवत्त्वम्। कालाणोस्तु द्रव्येण प्रदेशमात्रत्वात्पर्यायेण तु परस्परसंपर्कासंभवादप्रदेशत्वमेवास्ति। ततः कालद्रव्यमप्रदेशं, शेषद्रव्याणि प्रदेशवन्ति॥१३५॥

अथ क्वामी प्रदेशिनोऽप्रदेशाश्चावस्थिता इति प्रज्ञापयति—

लोगालोगेसु णभो धम्माधम्मेहिं आददो लोगो।
सेसे पडुच्च कालो जीवा पुण पोग्गला सेसा॥१३६॥

लोकालोकयोर्नभो धर्माधर्माभ्यामाततो लोकः।
शेषौ प्रतीत्य कालो जीवाः पुनः पुद्गलाः शेषौ॥१३६॥

धर्माधर्मयोः पुनरवस्थितरूपेण लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वम्। स्कन्धाकारपरिणतपुद्गलानां तु संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशत्वम्। किंतु पुद्गलव्याख्याने प्रदेशशब्देन परमाणवो ग्राह्या, न च क्षेत्र-प्रदेशाः। कस्मात्। पुद्गलानामनन्तप्रदेशक्षेत्रेऽवस्थानाभावादिति। परमाणोर्व्यक्तिरूपेणैकप्रदेशत्वं शक्तिरूपेणोपचारेण बहुप्रदेशत्वं च। आकाशस्यानन्ता इति। णत्थि पदेस त्ति कालस्स न सन्ति प्रदेशा इति कालस्य। कस्मात्। द्रव्यरूपेणैकप्रदेशत्वात्, परस्परबन्धाभावात्पर्यायरूपेणापीति॥१३५॥ अथ तमेवार्थं द्रढयति—

एदाणि पंचदव्वाणि उज्झियकालं तु अत्थिकाय त्ति।
भण्णंते काया पुण बहुप्पदेसाण पचयत्तं॥*११॥

प्रदेशोंके प्रस्ताररूप होनेसे अधर्म प्रदेशवान् है; और सर्वव्यापी अनन्तप्रदेशोंके प्रस्ताररूप होनेसे आकाश प्रदेशवान् है। कालाणु तो द्रव्यसे प्रदेशमात्र होनेसे और पर्यायसे परस्पर संपर्क न होनेसे अप्रदेशी ही है।

इसलिये कालद्रव्य अप्रदेशी है और शेष द्रव्य प्रदेशवान् हैं॥१३५॥

अब, यह बतलाते हैं कि प्रदेशी और अप्रदेशी द्रव्य कहाँ रहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[नभः] आकाश [लोकालोकयोः] लोकालोकमें है, [लोकः] लोक [धर्माधर्माभ्याम् आततः] धर्म और अधर्मसे व्याप्त है, [शेषौ प्रतीत्य] शेष दो द्रव्योंका आश्रय लेकर [कालः] काल है, [पुनः] और [शेषौ] शेष दो द्रव्य [जीवाः पुद्गलाः] जीव और पुद्गल हैं॥१३६॥

लोके अलोके आभ, लोक अधर्म-धर्मथी व्याप्त छे,
छे शेष-आश्रित काळ, ने जीव-पुद्गलो ते शेष छे. १३६.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

आकाशं हि तावत् लोकालोकयोरपि, षड्द्रव्यसमवायासमवाययोरविभागेन वृत्तत्वात्। धर्माधर्मौ सर्वत्र लोके, तन्निमित्तगमनस्थानानां जीवपुद्गलानां लोकाद्बहिस्तदेकदेशे च गमनस्थानासंभवात्। कालोऽपि लोके, जीवपुद्गलपरिणामव्यज्यमानसमयादिपर्यायत्वात्; स तु लोकैकप्रदेश एवाप्रदेशत्वात्। जीवपुद्गलौ तु युक्तित एव लोके, षड्द्रव्यसमवायात्मकत्वाल्लोकस्य। किंतु जीवस्य प्रदेशसंवर्तविस्तारधर्मत्वात्, पुद्गलस्य बन्धहेतुभूतस्निग्धरूक्षगुण-

एदाणि पंचदव्वाणि एतानि पूर्वसूत्रोक्तानि जीवादिषड्द्रव्याण्येव उज्झिय कालं तु कालद्रव्यं विहाय अत्थिकाय त्ति भण्णंते अस्तिकायाः पञ्चास्तिकाया इति भण्यन्ते। काया पुण कायाः कायशब्देन पुनः। किं भण्यते। बहुप्पदेसाण पचयत्तं बहुप्रदेशानां संबन्धि प्रचयत्वं समूह इति। अत्र पञ्चास्तिकायमध्ये जीवास्तिकाय उपादेयस्तत्रापि पञ्चपरमेष्ठिपर्यायावस्था, तस्यामप्यर्हत्सिद्धावस्था, तत्रापि सिद्धावस्था। वस्तुतस्तु रागादिसमस्तविकल्पजालपरिहारकाले सिद्धजीवसदृशा स्वकीयशुद्धात्मावस्थेति भावार्थः ॥*११॥ एवं पञ्चास्तिकायसंक्षेपसूचनरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ द्रव्याणां लोकाकाशेऽवस्थानमाख्याति—लोगालोगेसु णभो लोकालोकयोरधिकरणभूतयोर्णभ आकाशं तिष्ठति। धम्माधम्मेहिं आददो लोगो धर्माधर्मास्तिकायाभ्यामाततो व्याप्तो भृतो लोकः। किं कृत्वा। सेसे पडुच्च शेषौ जीवपुद्गलौ प्रतीत्याश्रित्य। अयमत्रार्थः—जीवपुद्गलौ तावल्लोके तिष्ठतस्तयोर्गतिस्थित्योः कारणभूतौ धर्माधर्मावपि लोके। कालो कालोऽपि शेषौ जीवपुद्गलौ प्रतीत्य लोके। कस्मादिति चेत्। जीवपुद्गलाभ्यां नवजीर्णपरिणत्या व्यज्यमानसमयघटिकादिपर्यायत्वात्। शेषशब्देन किं भण्यते। जीवा पुण पोग्गला सेसा जीवाः पुद्गलाश्च पुनः शेषा भण्यन्त इति। अयमत्र भावः—यथा सिद्धा भगवन्तो यद्यपि निश्चयेन लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयप्रदेशे केवलज्ञानादिगुणाधारभूते स्वकीयस्वकीयभावे तिष्ठन्ति तथापि व्यवहारेण मोक्षशिलायां तिष्ठन्तीति भण्यन्ते। तथा सर्वे पदार्था यद्यपि निश्चयेन

टीका :—प्रथम तो आकाश लोक तथा अलोकमें है, क्योंकि छह द्रव्योंके समवाय और असमवायमें बिना विभागके रहता है। धर्म और अधर्म द्रव्य सर्वत्र लोकमें है, क्योंकि उनके निमित्तसे जिनकी गति और स्थिति होती है ऐसे जीव और पुद्गलोंकी गति या स्थिति लोकसे बाहर नहीं होती, और न लोकके एक देशमें होती है, (अर्थात् लोकमें सर्वत्र होती है)। काल भी लोकमें है, क्योंकि जीव और पुद्गलोंके परिणामोंके द्वारा (कालकी) समयादि पर्यायें व्यक्त होती हैं; और वह काल लोकके एक प्रदेशमें ही है क्योंकि वह अप्रदेशी है। जीव और पुद्गल तो युक्तिसे ही लोकमें हैं, क्योंकि लोक छह द्रव्योंका समवायस्वरूप है।

और इसके अतिरिक्त (इतना विशेष जानना चाहिये कि), प्रदेशोंका संकोच-विस्तार होना वह जीवका धर्म है, और बंधके हेतुभूत स्निग्ध-रुक्ष (–चिकने-रूखे) गुण पुद्गलका धर्म होनेसे जीव और पुद्गलका समस्त लोकमें या उसके एकदेशमें रहनेका

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

धर्मत्वाच्च तदेकदेशसर्वलोकनियमो नास्ति। कालजीवपुद्गलानामित्येकद्रव्यापेक्षया एकदेश अनेकद्रव्यापेक्षया पुनरंजनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेन सर्वलोक एवेति॥१३६॥

अथ प्रदेशवत्त्वाप्रदेशवत्त्वसंभवप्रकारमासूत्रयति—

जध ते णभप्पदेसा तधप्पदेसा हवंति सेसाणं।
अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो॥१३७॥

यथा ते नभःप्रदेशास्तथा प्रदेशा भवन्ति शेषाणाम्।
अप्रदेशः परमाणुस्तेन प्रदेशोद्भवो भणितः॥१३७॥

स्वकीयस्वकीयस्वरूपे तिष्ठन्ति तथापि व्यवहारेण लोकाकाशे तिष्ठन्तीति। अत्र यद्यप्यनन्तजीवद्रव्येभ्योऽनन्तगुणपुद्गलास्तिष्ठन्ति तथाप्येकदीपप्रकाशे बहुदीपप्रकाशवद्विशिष्टावगाहशक्तियोगेनासंख्येयप्रदेशेऽपि लोकेऽवस्थानं न विरुध्यते॥१३६॥ अथ यदेवाकाशस्य परमाणुव्याप्तक्षेत्रं प्रदेशलक्षणमुक्तं शेषद्रव्यप्रदेशानां तदेवेति सूचयति—**जध ते णभप्पदेसा** यथा ते प्रसिद्धाः परमाणुव्याप्तक्षेत्रप्रमाणाकाशप्रदेशाः **तधप्पदेसा हवंति सेसाणं** तेनैवाकाशप्रदेशप्रमाणेन प्रदेशा भवन्ति। केषाम्। शुद्धबुद्धैकस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रभृतिशेषद्रव्याणाम्। **अपदेसो परमाणू** अप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो योऽसौ पुद्गलपरमाणुः **तेण पदेसुब्भवो भणिदो** तेन परमाणुना प्रदेशस्योद्भव

नियम नहीं है। (और) काल, जीव तथा पुद्गल एक द्रव्यकी अपेक्षासे लोकके एकदेशमें रहते हैं और अनेक द्रव्योंकी अपेक्षासे अंजनचूर्ण (काजल) से भरी हुई डिबियाके न्यायानुसार समस्त लोकमें ही हैं॥१३६॥

अब, यह कहते हैं कि प्रदेशवत्त्व और अप्रदेशवत्त्व किस प्रकारसे संभव है :—

अन्वयार्थ :—[**यथा**] जैसे [**ते नभः प्रदेशाः**] वे आकाशप्रदेश हैं, [**तथा**] उसीप्रकार [**शेषाणां**] शेष द्रव्योंके [**प्रदेशाः भवन्ति**] प्रदेश हैं (अर्थात् जैसे–आकाशके प्रदेश परमाणुरूपी गजसे नापे जाते है। उसीप्रकार शेष द्रव्योंके प्रदेश भी इसीप्रकार नापे जाते हैं)। [**परमाणुः**] परमाणु [**अप्रदेशः**] अप्रदेशी है; [**तेन**] उसके द्वारा [**प्रदेशोद्भवः भणितः**] प्रदेशोद्भव कहा है॥१३७॥

जे रीत आभ-प्रदेश, ते रीत शेष द्रव्य-प्रदेश छे;
अप्रदेश परमाणु वडे उद्भव प्रदेश तणो बने. १३७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सूत्रयिष्यते हि स्वयमाकाशस्य प्रदेशलक्षणमेकाणुव्याप्यत्वमिति। इह तु यथाकाशस्य प्रदेशास्तथा शेषद्रव्याणामिति प्रदेशलक्षणप्रकारैकत्वमासूत्र्यते। ततो यथैकाणुव्याप्येनांशेन गण्यमानस्याकाशस्यानन्तांशत्वादनन्तप्रदेशत्वं तथैकाणुव्याप्येनांशेन गण्यमानानां धर्माधर्मैक-जीवानामसंख्येयांशत्वात् प्रत्येकमसंख्येयप्रदेशत्वम्। यथा चावस्थितप्रमाणयोर्धर्माधर्मयोस्तथा संवर्तविस्ताराभ्यामनवस्थितप्रमाणस्यापि शुष्कार्द्रत्वाभ्यां चर्मण इव जीवस्य स्वांशाल्प-बहुत्वाभावादसंख्येयप्रदेशत्वमेव। अमूर्तसंवर्तविस्तारसिद्धिश्च स्थूलकृशशिशुकुमारशरीरव्यापि-त्वादस्ति स्वसंवेदनसाध्यैव। पुद्गलस्य तु द्रव्येणैकप्रदेशमात्रत्वादप्रदेशत्वे यथोदिते सत्यपि

उत्पत्तिर्भणिता। परमाणुव्याप्तक्षेत्रं प्रदेशो भवति। तदग्रे विस्तरेण कथयति इह तु सूचितमेव।।१३७।। एवं पञ्चमस्थले स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतम्। अथ कालद्रव्यस्य द्वितीयादिप्रदेशरहितत्वेनाप्रदेशत्वं व्यवस्थापयति—**समओ** समयपर्यायस्योपादानकारणत्वात्समयः कालाणुः। **दु** पुनः। स च कथंभूतः।

टीका :—(भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य) स्वयं ही (१४० वें) सूत्र द्वारा कहेंगे कि आकाशके प्रदेशका लक्षण एकाणुव्याप्यत्व है (अर्थात् एक परमाणुसे व्याप्त होना वह प्रदेशका लक्षण है); और यहाँ (इस सूत्र या गाथामें) 'जिस प्रकार आकाशके प्रदेश हैं उसीप्रकार शेष द्रव्योंके प्रदेश हैं' इसप्रकार प्रदेशके लक्षणकी एकप्रकारता कही जाती है।

इसलिये, जैसे एकाणुव्याप्य (-एक परमाणुसे व्याप्त हो ऐसे) अंशके द्वारा गिने जाने पर आकाशके अनन्त अंश होनेसे आकाश अनन्तप्रदेशी है, उसीप्रकार एकाणुव्याप्य (-एक परमाणुसे व्याप्त होने योग्य) अंशके द्वारा गिने जाने पर धर्म, अधर्म और एक जीवके असंख्यात अंश होनेसे वे-प्रत्येक असंख्यातप्रदेशी है। और जैसे [१]अवस्थित प्रमाणवाले धर्म तथा अधर्म असंख्यातप्रदेशी हैं, उसीप्रकार संकोचविस्तारके कारण [२]अनवस्थित प्रमाणवाले जीवके—सूखे-गीले चमड़ेकी भाँति—निज अंशोंका अल्पबहुत्व नहीं होता इसलिये असंख्यातप्रदेशीपना ही है। (यहाँ यह प्रश्न होता है कि अमूर्त ऐसे जीवका संकोचविस्तार कैसे संभव है? उसका समाधान किया जाता है :—) अमूर्तके संकोचविस्तारकी सिद्धि तो अपने अनुभवसे ही साध्य है, क्योंकि (सबको स्वानुभवसे स्पष्ट है कि) जीव स्थूल तथा कृश शरीरमें, तथा बालक और कुमारके शरीरमें व्याप्त होता है।

पुद्गल तो द्रव्यतः एकप्रदेशमात्र होनेसे यथोक्त (पूर्वकथित) प्रकारसे अप्रदेशी है

---

१. अवस्थित प्रमाण = नियत परिमाण, निश्चित माप; (धर्म तथा अधर्म द्रव्यका माप लोक जितना नियत है।)

२. अनवस्थित = अनियत; अनिश्चित; (सूखे-गीले चर्मकी भाँति जीव परक्षेत्रकी अपेक्षासे संकोच विस्तारको प्राप्त होनेसे अनिश्चित मापवाला है। ऐसा होने पर भी, जैसे चमड़ेके निज-अंश कम-बढ़ नहीं होते, उसीप्रकार जीवके निज-अंश कम-बढ़ नहीं होते; इसलिये वह सदा नियत असंख्यप्रदेशी ही है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

द्विप्रदेशाद्युद्भवहेतुभूततथाविधस्निग्धरूक्षगुणपरिणामशक्तिस्वभावात्प्रदेशोद्भवत्वमस्ति। ततः पर्यायेणानेकप्रदेशत्वस्यापि संभवात् द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशत्वमपि न्याय्यं पुद्गलस्य ॥१३७॥

अथ कालाणोरप्रदेशत्वमेवेति नियमयति—

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स ॥१३८॥

समयस्त्वप्रदेशः प्रदेशमात्रस्य द्रव्यजातस्य।
व्यतिपततः स वर्तते प्रदेशमाकाशद्रव्यस्य ॥१३८॥

अप्पदेसो अप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो भवति। स च किं करोति। **सो वट्टदि** स पूर्वोक्तकालाणुः परमाणोर्गतिपरिणतेः सहकारित्वेन वर्तते। कस्य संबन्धी योऽसौ परमाणुः। **पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स** प्रदेशमात्रपुद्गलजातिरूपपरमाणुद्रव्यस्य। किं कुर्वतः। **वदिवददो** व्यतिपततो मन्दगत्या गच्छतः। कं प्रति। **पदेसं** कालाणुव्याप्तमेकप्रदेशम्। कस्य संबन्धिनम्। **आगासदव्वस्स** आकाशद्रव्यस्येति। तथाहि– कालाणुरप्रदेशो भवति। कस्मात्। द्रव्येणैकप्रदेशत्वात्। अथवा यथा स्नेहगुणेन पुद्गलानां

तथापि दो [१]प्रदेशादिके उद्भवके हेतुभूत तथाविध (उस प्रकारके) स्निग्ध-रूक्षगुणरूप परिणमित होनेकी शक्तिरूप स्वभावके कारण उसके प्रदेशोंका उद्भव है; इसलिये पर्यायसे अनेकप्रदेशीपनेका भी संभव होनेसे पुद्गलको द्विप्रदेशीपनेसे लेकर संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशीपना भी न्याययुक्त है ॥१३७॥

अब, 'कालाणु अप्रदेशी ही है' ऐसा नियम करते हैं (अर्थात् दरशाते हैं :—)

अन्वयार्थ :—[समयः तु] काल तो [अप्रदेशः] अप्रदेशी है, [प्रदेशमात्रस्य द्रव्यजातस्य] प्रदेशमात्र पुद्गल-परमाणु [आकाशद्रव्यस्य प्रदेशं] आकाश द्रव्यके प्रदेशको [व्यतिपततः] मंद गतिसे उल्लंघन कर रहा हो तब [सः वर्तते] वह वर्तता है अर्थात् निमित्तभूततया परिणमित होता है ॥१३८॥

---

१. द्विप्रदेशी इत्यादि स्कन्धोंकी उत्पत्तिके कारणभूत जो स्निग्ध-रूक्ष गुण हैं उनरूप परिणमित होनेकी शक्ति पुद्गलका स्वभाव है।

छे काळ तो अप्रदेश; अेकप्रदेश परमाणु यदा
आकाशद्रव्य तणो प्रदेश अतिक्रमे, वर्ते तदा. १३८.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अप्रदेश एव समयो, द्रव्येण प्रदेशमात्रत्वात्। न च तस्य पुद्गलस्येव पर्यायेणाप्यनेकप्रदेशत्वं, यतस्तस्य निरन्तरं प्रस्तारविस्तृतप्रदेशमात्रासंख्येयद्रव्यत्वेऽपि परस्परसंपर्कासंभवादेकैकमाकाशप्रदेशमभिव्याप्य तस्थुषः प्रदेशमात्रस्य परमाणोस्तदभिव्याप्तमेकमाकाशप्रदेशं मन्दगत्या व्यतिपतत एव वृत्तिः॥१३८॥

अथ कालपदार्थस्य द्रव्यपर्यायौ प्रज्ञापयति—

परस्परबन्धो भवति तथाविधबन्धाभावात्पर्यायेणापि। अयमत्रार्थः—यस्मात्पुद्गलपरमाणोरेकप्रदेशगमनपर्यन्तं सहकारित्वं करोति न चाधिकं तस्मादेव ज्ञायते सोऽप्येकप्रदेश इति॥१३८॥ अथ पूर्वोक्तकालपदार्थस्य पर्यायस्वरूपं द्रव्यस्वरूपं च प्रतिपादयति—वदिवददो तस्य पूर्वसूत्रोदित-

---

टीका :—काल, द्रव्यसे प्रदेशमात्र होनेसे, अप्रदेशी ही है। और उसे पुद्गलकी भाँति पर्यायसे भी अनेकप्रदेशीपना नहीं है; क्योंकि परस्पर अन्तरके बिना [१]प्रस्ताररूप विस्तृत प्रदेशमात्र असंख्यात कालद्रव्य होने पर भी परस्पर संपर्क न होनेसे एक-एक आकाशप्रदेशको व्याप्त करके रहनेवाले कालद्रव्यकी वृत्ति तभी होती है (अर्थात् कालाणुकी परिणति तभी निमित्तभूत होती है) कि जब [२]प्रदेशमात्र परमाणु उस (कालाणु) से व्याप्त एक आकाशप्रदेशको मन्दगतिसे उल्लंघन करता हो।

भावार्थ :—लोकाकाशके असंख्यातप्रदेश हैं। एक-एक प्रदेशमें एक-एक कालाणु रहा हुआ है। वे कालाणु स्निग्ध-रूक्षगुणके अभावके कारण रत्नोंकी राशिकी भाँति पृथक्-पृथक् ही रहते हैं; पुद्गल-परमाणुओंकी भाँति परस्पर मिलते नहीं हैं।

जब पुद्गलपरमाणु आकाशके एक प्रदेशको मन्द गतिसे उल्लंघन करता है (अर्थात् एक प्रदेशसे दूसरे अनन्तर-निकटतम प्रदेश पर मन्द गतिसे जाता है) तब उस (उल्लंघित किये जानेवाले) प्रदेशमें रहनेवाला कालाणु उसमें निमित्तभूतरूपसे रहता है। इसप्रकार प्रत्येक कालाणु पुद्गलपरमाणुके एकप्रदेश तकके गमन पर्यंत ही सहकारीरूपसे रहता है, अधिक नहीं; इससे स्पष्ट होता है कि कालद्रव्य पर्यायसे भी अनेकप्रदेशी नहीं है॥१३८॥

अब, कालपदार्थके द्रव्य और पर्यायको बतलाते हैं :-

---

१. प्रस्तार = विस्तार। (असंख्यात कालद्रव्य समस्त लोकाकाशमें फैले हुए हैं। उनके परस्पर अन्तर नहीं है, क्योंकि प्रत्येक आकाशप्रदेशमें एक-एक कालद्रव्य रह रहा है।)

२. प्रदेशमात्र = एकप्रदेशी। (जब एकप्रदेशी ऐसा परमाणु किसी एक आकाशप्रदेशको मन्दगतिसे उल्लंघन कर रहा हो तभी उस आकाशप्रदेशमें रहनेवाले कालद्रव्यकी परिणति उसमें निमित्तभूतरूपसे वर्तती है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

वदिवददो तं देसं तस्सम समओ तदो परो पुव्वो।
जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी॥१३९॥

व्यतिपततस्तं देशं तत्समः समयस्ततः परः पूर्वः।
योऽर्थः स कालः समय उत्पन्नप्रध्वंसी॥१३९॥

यो हि येन प्रदेशमात्रेण कालपदार्थेनाकाशस्य प्रदेशोऽभिव्याप्तस्तं प्रदेशं मन्दगत्यातिक्रमतः परमाणोस्तत्प्रदेशमात्रातिक्रमणपरिमाणेन तेन समो यः कालपदार्थसूक्ष्मवृत्तिरूपसमयः स तस्य कालपदार्थस्य पर्यायस्ततः एवंविधात्पर्यायात्पूर्वोत्तरवृत्तिवृत्तत्वेन-

---

पुद्गलपरमाणोर्व्यतिपततो मन्दगत्या गच्छतः। कं कर्मतापन्नम्। तं देसं तं पूर्वगाथोदितं कालाणुव्याप्तमाकाशप्रदेशम्। **तस्सम** तेन कालाणुव्याप्तैकप्रदेशपुद्गलपरमाणुमन्दगतिगमनेन समः समानः सदृशस्तत्समः **समओ** कालाणुद्रव्यस्य सूक्ष्मपर्यायभूतः समयो व्यवहारकालो भवतीति पर्यायव्याख्यानं गतम्। **तदो परो पुव्वो** तस्मात्पूर्वोक्तसमयरूपकालपर्यायात्परो भाविकाले पूर्वमतीतकाले च **जो अत्थो** यः पूर्वापरपर्यायेष्वन्वयरूपेण दत्तपदार्थो द्रव्यं **सो कालो** स कालः कालपदार्थो भवतीति द्रव्यव्याख्यानम्। **समओ उप्पण्णपद्धंसी** स पूर्वोक्तसमयपर्यायो यद्यपि पूर्वापरसमयसन्तानापेक्षया

अन्वयार्थ :—[तं देशं व्यतिपततः] परमाणु एक आकाशप्रदेशका (मन्दगतिसे) उल्लंघन करता है तब [तत्समः] उसके बराबर जो काल (लगता है) वह [समयः] 'समय' है; [ततः पूर्वः परः] उस (समय) से पूर्व तथा पश्चात् ऐसा (नित्य) [यः अर्थः] जो पदार्थ है [सः कालः] वह कालद्रव्य है; [समयः उत्पन्नप्रध्वंसी] 'समय उत्पन्नध्वंसी है॥१३९॥

टीका :—किसी प्रदेशमात्र कालपदार्थके द्वारा आकाशका जो प्रदेश व्याप्त हो उस प्रदेशको जब परमाणु मन्द गतिसे अतिक्रम (उल्लंघन) करता है तब उस प्रदेशमात्र [१]अतिक्रमणके [२]परिमाणके बराबर जो कालपदार्थकी सूक्ष्मवृत्तिरूप 'समय' है वह, उस काल पदार्थकी पर्याय है; और ऐसी उस पर्यायसे पूर्वकी तथा बादकी [३]वृत्तिरूपसे प्रवर्तमान होनेसे

---

१. अतिक्रमण = उल्लंघन करना। २. परिमाण = माप।

३. वृत्ति = वर्तना सो परिणति है (काल पदार्थ वर्तमान समयसे पूर्वकी परिणतिरूप तथा उसके बादकी परिणतिरूपसे परिणमित होता है, इसलिये उसका नित्यत्व प्रगट है।)

ते देशना अतिक्रमण सम छे 'समय', तत्पूर्वापरे
जे अर्थ छे ते काळ छे, उत्पन्नध्वंसी 'समय' छे. १३९.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

व्यंजितनित्यत्वे योऽर्थः तत्तु द्रव्यम्। एवमनुत्पन्नाविध्वस्तो द्रव्यसमयः, उत्पन्नप्रध्वंसी पर्याय-समयः। अनंशः समयोऽयमाकाशप्रदेशस्यानंशत्वान्यथानुपपत्तेः। न चैकसमयेन परमाणोरा-लोकान्तगमनेऽपि समयस्य सांशत्वं, विशिष्टगतिपरिणामाद्विशिष्टावगाहपरिणामवत्। तथा हि—यथा विशिष्टावगाहपरिणामादेकपरमाणुपरिमाणोऽनन्तपरमाणुस्कन्धः परमाणोरनंशत्वात् पुनरप्यनन्तांशत्वं न साधयति, तथा विशिष्टगतिपरिणामादेककालाणुव्याप्तैकाकाशप्रदेशाति-

---

संख्येयासंख्येयानन्तसमयो भवति, तथापि वर्तमानसमयं प्रत्युत्पन्नप्रध्वंसी। यस्तु पूर्वोक्तद्रव्यकालः स त्रिकालस्थायित्वेन नित्य इति। एवं कालस्य पर्यायस्वरूपं द्रव्यस्वरूपं च ज्ञातव्यम्।। अथवानेन गाथाद्वयेन समयरूपव्यवहारकालव्याख्यानं क्रियते। निश्चयकालव्याख्यानं तु 'उप्पादो पद्धंसो' इत्यादि गाथात्रयेणाग्रे करोति। तद्यथा—**समओ** परमार्थकालस्य पर्यायभूतसमयः। **अवप्पदेसो** अपगतप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो निरंश इत्यर्थः। कथं निरंश इति चेत्। **पदेसमेत्तस्स** **दवियजादस्स** प्रदेशमात्रपुद्गलद्रव्यस्य संबन्धी योऽसौ परमाणुः **वदिवादादो** वट्टदि व्यतिपातात् मन्दगति-गमनात्सकाशात्स परमाणुस्तावद्गमनरूपेण वर्तते। कं प्रति। **पदेसमागासदवियस्स** विवक्षितै-काकाशप्रदेशं प्रति। इति प्रथमगाथाव्याख्यानम्। **वदिवददो तं देसं** स परमाणुस्तमाकाशप्रदेशं यदा व्यतिपतितोऽतिक्रान्तो भवति **तस्सम समओ** तेन पुद्गलपरमाणुमन्दगतिगमनेन समः समानः समयो भवतीति निरंशत्वमिति वर्तमानसमयो व्याख्यातः। इदानीं पूर्वापरसमयौ कथयति—**तदो परो पुव्वो** तस्मात्पूर्वोक्तवर्तमानसमयात्परो भावी कोऽपि समयो भविष्यति पूर्वमपि कोऽपि गतः **अत्थो जो एवं** यः समयत्रयरूपोर्थः **सो कालो** सोऽतीतानागतवर्तमानरूपेण त्रिविधव्यवहारकालो भण्यते। **समओ उप्पण्णपद्धंसी** तेषु त्रिषु मध्ये योऽसौ वर्तमानः स उत्पन्नप्रध्वंसी अतीतानागतौ तु संख्येयासंख्ये-

---

जिसका नित्यत्व प्रगट होता है ऐसा पदार्थ वह द्रव्य है। इसप्रकार द्रव्यसमय (कालद्रव्य) अनुत्पन्न-अविनष्ट है और पर्यायसमय उत्पन्नध्वंसी है (अर्थात् 'समय' पर्याय उत्पत्ति-विनाशवाली है।) यह 'समय' निरंश है, क्योंकि यदि ऐसा न हो तो आकाशके प्रदेशका निरंशत्व न बने।

और एक समयमें परमाणु लोकके अन्त तक जाता है फिर भी 'समय' के अंश नहीं होते; क्योंकि जैसे (परमाणुके) विशिष्ट (खास प्रकारका) अवगाहपरिणाम होता है उसीप्रकार (परमाणुके) विशिष्ट गतिपरिणाम होता है। इसे समझाते हैं :—जैसे विशिष्ट अवगाहपरिणामके कारण एक परमाणुके परिमाणके बराबर अनन्त परमाणुओंका स्कंध बनता है तथापि वह स्कंध परमाणुके अनन्त अंशोंको सिद्ध नहीं करता, क्योंकि परमाणु निरंश है; उसीप्रकार जैसे एक कालाणुसे व्याप्त एक आकाशप्रदेशके अतिक्रमणके मापके बराबर एक 'समय' में परमाणु विशिष्ट गतिपरिणामके कारण लोकके एक छोरसे दूसरे छोर तक जाता है तब (उस परमाणुके

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

क्रमणपरिमाणावच्छिन्नेनैकसमयेनैकस्माल्लोकान्ताद् द्वितीयं लोकान्तमाक्रामतः परमाणोरसंख्येयाः कालाणवः समयस्यानंशत्वादसंख्येयांशत्वं न साधयन्ति॥१३९॥

यानन्तसमयावित्यर्थः। एवमुक्तलक्षणे काले विद्यमानेऽपि परमात्मतत्त्वमलभमानोऽतीतानन्तकाले संसारसागरे भ्रमितोऽयं जीवो यतस्ततः कारणात्तदेव निजपरमात्मतत्त्वं सर्वप्रकारोपादेयरूपेण श्रद्धेयं, स्वसंवेदनज्ञानरूपेण ज्ञातव्यमाहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञास्वरूपप्रभृतिसमस्तरागादिविभावत्यागेन ध्येयमिति तात्पर्यम्॥१३९॥ एवं कालव्याख्यानमुख्यत्वेन षष्ठस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ पूर्वं

द्वारा उल्लंघित होनेवाले) असंख्य कालाणु 'समय' के असंख्य अंशोंको सिद्ध नहीं करते, क्योंकि 'समय' निरंश है।

भावार्थ :—परमाणुको एक आकाशप्रदेशसे दूसरे अनंतर (अन्तररहित) आकाशप्रदेश पर मन्द गतिसे जानेमें जितना काल लगता है उसे 'समय' कहते हैं। वह समय कालद्रव्यकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्याय है। कालद्रव्य नित्य है; 'समय' उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। जैसे आकाशप्रदेश आकाश द्रव्यका छोटेसे छोटा अंश है, उसके भाग नहीं होते, उसीप्रकार 'समय' कालद्रव्यकी छोटीसे छोटी निरंश पर्याय है, उसके भाग नहीं होते। यदि 'समय' के भाग हों तो परमाणुके द्वारा एक 'समय' में उल्लंघन किये जानेवाले आकाशप्रदेशके भी उतने ही भाग होने चाहिये; किन्तु आकाशप्रदेश तो निरंश है; इसलिये 'समय' भी निरंश ही है।

यहाँ प्रश्न होता है कि ''जब पुद्गल-परमाणु शीघ्र गतिके द्वारा एक 'समय' में लोकके एक छोरसे दूसरे छोर तक पहुँच जाता है तब वह चौदह राजू तक आकाशप्रदेशोंमें श्रेणिबद्ध जितने कालाणु हैं उन सबको स्पर्श करता है; इसलिये असंख्य कालाणुओंको स्पर्श करनेसे 'समय'के असंख्य अंश होना चाहिये'' इसका समाधान यह है :—

जैसे अनन्त परमाणुओंका कोई स्कंध आकाशके एक प्रदेशमें समाकर परिमाणमें (कदमें) एक परमाणु जितना ही होता है, सो वह परमाणुओंके विशेष (खास) प्रकारके अवगाहपरिणामके कारण ही है; (परमाणुओंमें ऐसी ही कोई विशिष्ट प्रकारकी [१]अवगाहपरिणामकी शक्ति है, जिसके कारण ऐसा होता है,) इससे कहीं परमाणुके अनन्त अंश नहीं होते; इसीप्रकार कोई परमाणु एक समयमें असंख्य कालाणुओंको उल्लंघन करके लोकके एक छोरसे दूसरे छोर तक पहुँच जाता है, सो वह परमाणुके विशेष प्रकारके गतिपरिणामके कारण ही है; (परमाणुमें ऐसी ही कोई विशिष्ट प्रकारकी गतिपरिणामकी शक्ति है, जिसके कारण ऐसा होता है;) इससे कहीं 'समय'के असंख्य अंश नहीं होते॥१३९॥

१. आकाशमें अवगाहहेतुत्वके कारण ऐसी शक्ति है कि उसका एक प्रदेश भी अनन्त परमाणुओंको अवकाश देनेमें समर्थ है।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथाकाशस्य प्रदेशलक्षणं सूत्रयति—

आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेससण्णया भणिदं।
सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवगासं॥१४०॥

आकाशमणुनिविष्टमाकाशप्रदेशसंज्ञया भणितम्।
सर्वेषां चाणूनां शक्नोति तद्दातुमवकाशम्॥१४०॥

आकाशस्यैकाणुव्याप्योंऽशः किलाकाशप्रदेशः, स खल्वेकोऽपि शेषपंचद्रव्यप्रदेशानां परमसौक्ष्म्यपरिणतानन्तपरमाणुस्कन्धानां चावकाशदानसमर्थः। अस्ति चाविभागैकद्रव्यत्वेऽप्यंश-कल्पनमाकाशस्य, सर्वेषामणूनामवकाशदानस्यान्यथानुपपत्तेः। यदि पुनराकाशस्यांशा न स्युरिति मतिस्तदाङ्गुलीयुगलं नभसि प्रसार्य निरूप्यतां किमेकं क्षेत्रं किमनेकम्। एकं

यत्सूचितं प्रदेशस्वरूपं तदिदानीं विवृणोति—**आगासमणुणिविट्ठं** आकाशं अणुनिविष्टं पुद्गल-परमाणुव्याप्तम्। **आगासपदेससण्णया भणिदं** आकाशप्रदेशसंज्ञया भणितं कथितम्। **सव्वेसिं च अणूणं**

अब, आकाशके प्रदेशका लक्षण सूत्र द्वारा कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[अणुनिविष्टं आकाशं] एक परमाणु जितने आकाशमें रहता है उतने आकाशको [आकाशप्रदेशसंज्ञया] 'आकाशप्रदेश' ऐसे नामसे [भणितम्] कहा गया है। [च] और [तत्] वह [सर्वेषां अणूनां] समस्त परमाणुओंको [अवकाशं दातुं शक्नोति] अवकाश देनेको समर्थ है॥१४०॥

टीका :—आकाशका एक परमाणुसे व्याप्य अंश वह आकाशप्रदेश है; और वह एक (आकाशप्रदेश) भी शेष पाँच द्रव्योंके प्रदेशोंको तथा परम सूक्ष्मतारूपसे परिणमित अनन्त परमाणुओंके स्कंधोंको अवकाश देनेमें समर्थ है। आकाश अविभाग (अखंड) एक द्रव्य है, फिर भी उसमें (प्रदेशरूप) अंशकल्पना हो सकती है, क्योंकि यदि ऐसा न हो तो सर्व परमाणुओंको अवकाश देना नहीं बन सकेगा।

ऐसा होने पर भी यदि 'आकाशके अंश नहीं होते' (अर्थात् अंशकल्पना नहीं की जाती), ऐसी (किसीकी) मान्यता हो, तो आकाशमें दो अंगुलियाँ फैलाकर बताइये कि 'दो अंगुलियोंका

आकाश जे अणुव्याप्य, 'आभप्रदेश' संज्ञा तेहने;
ते अेक सौ परमाणुने अवकाशदानसमर्थ छे. १४०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

चेत्किमभिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन किं वा भिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन। अभिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन चेत् येनांशेनैकस्या अंगुलेः क्षेत्रं तेनांशेनेतरस्या इत्यन्यतरांशाभावः। एवं द्व्याद्यंशानामभावादाकाशस्य परमाणोरिव प्रदेशमात्रत्वम्। भिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन चेत् अविभागैकद्रव्यस्यांशकल्पनमायातम्। अनेकं चेत् किं सविभागानेकद्रव्यत्वेन किं वाऽविभागैकद्रव्यत्वेन। सविभागानेकद्रव्यत्वेन चेत् एकद्रव्यस्याकाशस्यानन्तद्रव्यत्वं, अविभागैकद्रव्यत्वेन चेत् अविभागैकद्रव्यस्यांशकल्पनमायातम् ॥१४०॥

सर्वेषामणूनां चकारात्सूक्ष्मस्कन्धानां च **सक्कदि तं देदुमवगासं** शक्नोति स आकाशप्रदेशो दातुमवकाशम्। तस्याकाशप्रदेशस्य यदीत्थंभूतमवकाशदानसामर्थ्यं न भवति तदानन्तानन्तो जीवराशिस्तस्मादप्यनन्तगुणपुद्गलराशिश्चासंख्येयप्रदेशलोके कथमवकाशं लभते। तच्च विस्तरेण पूर्वं भणितमेव। अथ मतम्–अखण्डाकाशद्रव्यस्य प्रदेशविभागः कथं घटते। परिहारमाह–चिदानन्दैकस्वभावनिजात्मतत्त्वपरमैकाग्र्यलक्षणसमाधिसंजातनिर्विकाराह्लादैकरूपसुखसुधारसास्वादतृप्तमुनियुगलस्यावस्थितक्षेत्रं किमेकमनेकं वा। यद्येकं तर्हि द्वयोरप्येकत्वं प्राप्नोति। न च तथा। भिन्नं चेत्तदा अखण्डस्याप्याकाशद्रव्यस्य प्रदेशविभागो न विरुध्यत इत्यर्थः ॥१४०॥ अथ तिर्यक्प्रचयोर्ध्वप्रचयौ

एक क्षेत्र है या अनेक?' यदि एक है तो (प्रश्न होता है कि :—), (१) आकाश अभिन्न अंशोवाला अविभाग एक द्रव्य है, इसलिये दो अंगुलियोंका एक क्षेत्र है या (२) भिन्न अंशोंवाला अविभाग एक द्रव्य है, इसलिये? (१) यदि 'आकाश अभिन्न अंशवाला अविभाग एक द्रव्य है इसलिये दो अंगुलियोंका एक क्षेत्र है' ऐसा कहा जाय तो, जो अंश एक अंगुलिका क्षेत्र है वही अंश दूसरी अंगुलिका भी क्षेत्र है, इसलिये दोमेंसे एक अंशका अभाव हो गया। इस प्रकार दो इत्यादि (एकसे अधिक) अंशोंका अभाव होनेसे आकाश परमाणुकी भाँति प्रदेशमात्र सिद्ध हुआ! (इसलिये यह तो घटित नहीं होता); (२) यदि यह कहा जाय कि 'आकाश भिन्न अंशोंवाला अविभाग एक द्रव्य है' (इसलिये दो अंगुलियोंका एक क्षेत्र है) तो (यह योग्य ही है, क्योंकि) अविभाग एक द्रव्यमें अंश–कल्पना फलित हुई।

यदि ऐसा कहा जाय कि (दो अंगुलियोंके) 'अनेक क्षेत्र हैं' (अर्थात् एकसे अधिक क्षेत्र हैं, एक नहीं) तो (प्रश्न होता है कि–), (१) 'आकाश सविभाग (खंडखंडरूप) अनेक द्रव्य है इसलिये दो अंगुलियोंके अनेक क्षेत्र हैं या (२) 'आकाश अविभाग एक द्रव्य' होनेपर भी दो अंगुलियोंके अनेक (एक से अधिक) क्षेत्र हैं? (१) 'आकाश सविभाग अनेक द्रव्य होनेसे दो अंगलियोंके अनेक क्षेत्र हैं' ऐसा माना जाय तो, आकाश जो कि एक द्रव्य है उसे अनन्तद्रव्यत्व आजायगा'; (इसलिये यह तो घटित नहीं होता) (२) 'आकाश अविभाग एक द्रव्य होनेसे दो अंगुलियोंका अनेक क्षेत्र है' ऐसा माना जाय तो (यह योग्य ही है क्योंकि) अविभाग एक द्रव्यमें अंशकल्पना फलित हुई ॥१४०॥

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ तिर्यगूर्ध्वप्रचयावावेदयति—

एक्को व दुगे बहुगा संखातीदा तदो अणंता य।
दव्वाणं च पदेसा संति हि समय त्ति कालस्स॥१४१॥

एको वा द्वौ बहवः संख्यातीतास्ततोऽनन्ताश्च।
द्रव्याणां च प्रदेशाः सन्ति हि समया इति कालस्य॥१४१॥

प्रदेशप्रचयो हि तिर्यक्प्रचयः समयविशिष्टवृत्तिप्रचयस्तदूर्ध्वप्रचयः। तत्राकाशस्यावस्थितानन्तप्रदेशत्वाद्धर्माधर्मयोरवस्थितासंख्येयप्रदेशत्वाज्जीवस्यानवस्थितासंख्येयप्रदेशत्वात्पुद्गलस्य

निरूपयति—एक्को व दुगे बहुगा संखातीदा तदो अणंता य एको वा द्वौ बहवः संख्यातीतास्ततोऽनन्ताश्च। दव्वाणं च पदेसा संति हि कालद्रव्यं विहाय पञ्चद्रव्याणां संबन्धिन एते प्रदेशा यथासंभवं सन्ति हि स्फुटम्। समय त्ति कालस्स कालस्य पुनः पूर्वोक्तसंख्योपेताः समयाः सन्तीति। तद्यथा—एकाकारपरमसमरसीभावपरिणतपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतभरितावस्थानां केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपानन्तगुणाधारभूतानां लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयप्रदेशानां मुक्तात्मपदार्थे योऽसौ प्रचयः समूहः समुदायो राशिः स। किं किं भण्यते। तिर्यक्प्रचय इति तिर्यक्सामान्यमिति विस्तारसामान्यमिति अक्रमानेकान्त इति च

अब, [१]तिर्यक्प्रचय तथा [२]ऊर्ध्वप्रचय बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[द्रव्याणां च] द्रव्योंके [एकः] एक, [द्वौ] दो, [बहवः] बहुतसे, [संख्यातीताः] असंख्य, [वा] अथवा [ततः अनन्ताः च] अनन्त [प्रदेशाः] प्रदेश [सन्ति हि] हैं। [कालस्य] कालसे [समयाः इति] 'समय' हैं॥१४१॥

टीका :—प्रदेशोंका प्रचय (समूह) तिर्यक्प्रचय और समयविशिष्ट [३]वृत्तियोंका समूह वह ऊर्ध्वप्रचय है।

वहाँ आकाश अवस्थित (-निश्चल, स्थिर) अनन्त प्रदेशी होनेसे धर्म तथा अधर्म अवस्थित असंख्य प्रदेशी होनेसे जीव अनवस्थित (अस्थिर) असंख्यप्रदेशी है और पुद्गल

---

१. तिर्यक् = तिरछा; आडा; क्षेत्र-अपेक्षित (प्रदेशोंका फैलाव)।

२. ऊर्ध्व = ऊँचा; काल-अपेक्षित।

३. वृत्ति = वर्तना; परिणति; पर्याय; उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य; अस्तित्व।

वर्ते प्रदेशो द्रव्यने, जे अेक अथवा बे अने
बहु वा असंख्य, अनंत छे; वळी होय समयो काळने. १४१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

द्रव्येणानेकप्रदेशत्वशक्तियुक्तैकप्रदेशत्वात्पर्यायेण द्विबहुप्रदेशत्वाच्चास्ति तिर्यक्प्रचयः। न पुनः कालस्य, शक्त्या व्यक्त्या चैकप्रदेशत्वात्। ऊर्ध्वप्रचयस्तु त्रिकोटिस्पर्शित्वेन सांशत्वाद् द्रव्यवृत्तेः सर्वद्रव्याणामनिवारित एव। अयं तु विशेषः—समयविशिष्टवृत्तिप्रचयः शेषद्रव्याणामूर्ध्वप्रचयः, समयप्रचय एव कालस्योर्ध्वप्रचयः। शेषद्रव्याणां वृत्तेर्हि समयादर्थान्तरभूतत्वादस्ति समय-विशिष्टत्वम्। कालवृत्तेस्तु स्वतः समयभूतत्वात्तन्नास्ति॥१४१॥

अथ कालपदार्थोर्ध्वप्रचयनिरन्वयत्वमुपहन्ति—

भण्यते। स च प्रदेशप्रचयलक्षणस्तिर्यक्प्रचयो यथा मुक्तात्मद्रव्ये भणितस्तथा कालं विहाय स्वकीय-स्वकीयप्रदेशसंख्यानुसारेण शेषद्रव्याणां स भवतीति तिर्यक्प्रचयो व्याख्यातः। प्रतिसमयवर्तिनां पूर्वोत्तरपर्यायाणां मुक्ताफलमालावत्सन्तान ऊर्द्ध्वप्रचय इत्यूर्ध्वसामान्यमित्यायतसामान्यमिति क्रमानेकान्त इति च भण्यते। स च सर्वद्रव्याणां भवति। किंतु पञ्चद्रव्याणां संबन्धी पूर्वापरपर्यायसन्तानरूपो योऽसावूर्ध्वताप्रचयस्तस्य स्वकीयस्वकीयद्रव्यमुपादानकारणम्। कालस्तु प्रतिसमयं सहकारिकारणं भवति। यस्तु कालस्य समयसन्तानरूप ऊर्ध्वताप्रचयस्तस्य काल एवोपादानकारणं सहकारिकारणं च। कस्मात्। कालस्य भिन्नसमयाभावात्पर्याया एव समया

द्रव्यसे अनेक प्रदेशीपनेकी शक्तिसे युक्त एकप्रदेशवाला है तथा पर्यायसे दो अथवा बहुत (-संख्यात, असंख्यात और अनन्त) प्रदेशवाला है, इसलिये उनके तिर्यक्प्रचय है; परन्तु कालके (तिर्यक्प्रचय) नहीं है, क्योंकि वह शक्ति तथा व्यक्ति (की अपेक्षा) से एक प्रदेशवाला है।

ऊर्ध्वप्रचय तो सर्व द्रव्योंके अनिवार्य ही है, क्योंकि द्रव्यकी वृत्ति तीन कोटियोंको (-भूत, वर्तमान, और भविष्य ऐसे तीनों कालोंको) स्पर्श करती है, इसलिये अंशोंसे युक्त है। परन्तु इतना अन्तर है कि [१]समयविशिष्ट वृत्तियोंका प्रचय वह (कालको छोड़कर) शेष द्रव्योंका ऊर्ध्वप्रचय है, और समयोंका प्रचय वही कालद्रव्यका ऊर्ध्वप्रचय है; क्योंकि शेष द्रव्योंकी वृत्ति समयसे अर्थान्तरभूत (-अन्य) होनेसे वह (वृत्ति) समय विशिष्ट है, और कालद्रव्यकी वृत्ति तो स्वतः समयभूत है, इसलिये वह समयविशिष्ट नहीं है॥१४१॥

अब, कालपदार्थका ऊर्ध्वप्रचय [२]निरन्वय है, इस बातका खंडन करते हैं :—

---

१. समयविशिष्ट = समयसे विशिष्ट; समयके निमित्तभूत होनेसे व्यवहारसे जिसमें समयकी अपेक्षा होती है।

२. निरन्वय = अन्वय रहित, एक प्रवाहरूप न होनेवाला, खंडित; एकरूपता-सदृशतासे रहित।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

उप्पादो पद्धंसो विज्जदि जदि जस्स एगसमयम्हि।
समयस्स सो वि समओ सभावसमवट्ठिदो हवदि॥१४२॥

उत्पादः प्रध्वंसो विद्यते यदि यस्यैकसमये।
समयस्य सोऽपि समयः स्वभावसमवस्थितो भवति॥१४२॥

समयो हि समयपदार्थस्य वृत्त्यंशः। तस्मिन् कस्याप्यवश्यमुत्पादप्रध्वंसौ संभवतः, परमाणोर्व्यतिपातोत्पद्यमानत्वेन कारणपूर्वत्वात्। तौ यदि वृत्त्यंशस्यैव, किं यौगपद्येन किं

भवन्तीत्यभिप्रायः॥१४१॥ एवं सप्तमस्थले स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतम्। अथ समयसन्तानरूपस्योर्ध्व-प्रचयस्यान्वयिरूपेणाधारभूतं कालद्रव्यं व्यवस्थापयति–**उप्पादो पद्धंसो विज्जदि जदि** उत्पादः प्रध्वंसो विद्यते यदि चेत्। कस्य। **जस्स** यस्य कालाणोः। क्व। **एगसमयम्हि** एकसमये वर्तमानसमये। **समयस्स** समयोत्पादकत्वात्समयः कालाणुस्तस्य। **सो वि समओ** सोऽपि कालाणुः **सभावसमवट्ठिदो हवदि** स्वभावसमवस्थितो भवति। पूर्वोक्तमुत्पादप्रध्वंसद्वयं तदाधारभूतं कालाणुद्रव्यरूपं ध्रौव्यमिति

अन्वयार्थ :—[यदि यस्य समयस्य] यदि कालका [एक समये] एक समयमें [उत्पादः प्रध्वंसः] उत्पाद और विनाश [विद्यते] पाया जाता है, [सः अपि समयः] तो वह भी काल [स्वभावसमवस्थितः] स्वभावमें अवस्थित अर्थात् ध्रुव [भवति] (सिद्ध) है।

टीका :—समय कालपदार्थका [१]वृत्त्यंश है; उसमें (-उस वृत्त्यंशमें) किसीके भी अवश्य उत्पाद तथा विनाश संभवित हैं; क्योंकि परमाणुके अतिक्रमणके द्वारा (समयरूपी वृत्त्यंश) उत्पन्न होता है, इसलिये वह कारणपूर्वक है। (परमाणुके द्वारा एक आकाशप्रदेशका मंदगतिसे उल्लंघन करना वह कारण है और समयरूपी वृत्त्यंश उस कारणका कार्य है, इसलिये उसमें किसी पदार्थके उत्पाद तथा विनाश होते होना चाहिये।) ॥१४२॥

('किसी पदार्थके उत्पाद-विनाश होनेकी क्या आवश्यकता है? उसके स्थान पर उस वृत्त्यंशको ही उत्पाद-विनाश होते मान लें तो क्या आपत्ति है?' इस तर्कका समाधान करते हैं—)

यदि उत्पाद और विनाश वृत्त्यंशके ही माने जायें तो, (प्रश्न होता है कि) (१) वे

---

१. वृत्त्यंश = वृत्तिका अंश; सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिणति अर्थात् पर्याय।

એક જ સમયમાં ધ્વંસ ને ઉત્પાદનો સદ્‌ભાવ છે
જો કાળને, તો કાળ તેહ સ્વભાવ-સમવસ્થિત છે. ૧૪૨.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

क्रमेण। यौगपद्येन चेत्, नास्ति यौगपद्यं, सममेकस्य विरुद्धधर्मयोरनवतारात्। क्रमेण चेत्, नास्ति क्रमः, वृत्त्यंशस्य सूक्ष्मत्वेन विभागाभावात्। ततो वृत्तिमान् कोऽप्यवश्यमनुसर्तव्यः। स च समयपदार्थ एव। तस्य खल्वेकस्मिन्नपि वृत्त्यंशे समुत्पादप्रध्वंसौ संभवतः। यो हि यस्य वृत्तिमतो यस्मिन् वृत्त्यंशे तद्वृत्यंशविशिष्टत्वेनोत्पादः, स एव तस्यैव वृत्तिमतस्तस्मिन्नेव वृत्त्यंशे पूर्ववृत्त्यंशविशिष्टत्वेन प्रध्वंसः। यद्येवमुत्पादव्ययावेकस्मिन्नपि वृत्त्यंशे संभवतः समयपदार्थस्य कथं नाम निरन्वयत्वं, यतः पूर्वोत्तरवृत्त्यंशविशिष्टत्वाभ्यां युगपदुपात्तप्रध्वंसोत्पादस्यापि स्वभावेनाप्रध्वस्तानुत्पन्नत्वादवस्थितत्वमेव न भवेत्। एवमेकस्मिन् वृत्त्यंशे समयपदार्थ-

त्रयात्मकः स्वभावः सत्तास्तित्वमिति यावत्। तत्र सम्यगवस्थितः स्वभावसमवस्थितो भवति। तथाहि– यथाङ्गुलिद्रव्ये यस्मिन्नेव वर्तमानक्षणे वक्रपर्यायस्योत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैवाङ्गुलिद्रव्यस्य पूर्वर्जुपर्यायेण प्रध्वंसस्तदाधारभूताङ्गुलिद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः। अथवा स्वस्वभावरूप-सुखेनोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैवात्मद्रव्यस्य पूर्वानुभूताकुलत्वदुःखरूपेण प्रध्वंसस्तदुभयाधारभूत-परमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः। अथवा मोक्षपर्यायरूपेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे रत्नत्रयात्मक-निश्चयमोक्षमार्गपर्यायरूपेण प्रध्वंसस्तदुभयाधारपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः। तथा वर्तमानसमयरूपपर्यायेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैव कालाणुद्रव्यस्य पूर्वसमयरूपपर्यायेण प्रध्वंसस्त-

(उत्पाद तथा विनाश) युगपद् हैं या (२) क्रमशः? (१) यदि 'युगपत्' कहा जाय तो युगपत्पना घटित नहीं होता, क्योंकि एक ही समय एकके दो विरोधी धर्म नहीं होते। (एक ही समय एक वृत्त्यंशके प्रकाश और अन्धकारकी भाँति उत्पाद और विनाश दो विरुद्ध धर्म नहीं होते।) (२) यदि 'क्रमशः है' ऐसा कहा जाय तो, क्रम नहीं बनता, (अर्थात् क्रम भी घटता नहीं) क्योंकि वृत्त्यंशके सूक्ष्म होनेसे उसमें विभागका अभाव है। इसलिये (समयरूपी वृत्त्यंशके उत्पाद तथा विनाश होना अशक्य होनेसे) कोई [१]वृत्तिमान् अवश्य ढूँढ़ना चाहिये। और वह (वृत्तिमान्) काल पदार्थ ही है। उसको (-उस कालपदार्थको) वास्तवमें एक वृत्त्यंशमें भी उत्पाद और विनाश संभव है; क्योंकि जिस वृत्तिमान्के जिस वृत्त्यंशमें उस वृत्त्यंशकी अपेक्षासे जो उत्पाद है, वही (उत्पाद) उसी वृत्तिमान्के उसी वृत्त्यंशमें पूर्व वृत्त्यंशकी अपेक्षासे विनाश है। (अर्थात् कालपदार्थको जिस वर्तमान पर्यायकी अपेक्षासे उत्पाद है, वही पूर्व पर्यायकी अपेक्षासे विनाश है।)

यदि इसप्रकार उत्पाद और विनाश एक वृत्त्यंशमें भी संभवित है, तो कालपदार्थ निरन्वय कैसे हो सकता है, कि जिससे पूर्व और पश्चात् वृत्त्यंशकी अपेक्षासे युगपत् विनाश और उत्पादको प्राप्त होता हुआ भी स्वभावसे अविनष्ट और अनुत्पन्न होनेसे वह (काल पदार्थ)

१. वृत्तिमान् = वृत्तिवाला; वृत्तिको धारण करनेवाला पदार्थ।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

स्योत्पादव्ययध्रौव्यवत्त्वं सिद्धम् ॥१४२॥

अथ सर्ववृत्त्यंशेषु समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यवत्त्वं साधयति—

एगम्हि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा।
समयस्स सव्वकालं एस हि कालाणुसब्भावो ॥१४३॥

एकस्मिन् सन्ति समये संभवस्थितिनाशसंज्ञिता अर्थाः।
समयस्य सर्वकालं एष हि कालाणुसद्भावः ॥१४३॥

अस्ति हि समस्तेष्वपि वृत्त्यंशेषु समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वमेकस्मिन् वृत्त्यंशे तस्य दर्शनात्। उपपत्तिमच्चैतत्, विशेषास्तित्वस्य सामान्यास्तित्वमन्तरेणानुपपत्तेः। अयमेव च

दुभयाधारभूताङ्गुलिद्रव्यस्थानीयेन कालाणुद्रव्यरूपेण ध्रौव्यमिति कालद्रव्यसिद्धिरित्यर्थः ॥१४२॥ अथ पूर्वोक्तप्रकारेण यथा वर्तमानसमये कालद्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वं स्थापितं तथा सर्वसमयेष्वस्तीति निश्चिनोति—**एगम्हि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा** एकस्मिन्समये सन्ति विद्यन्ते। के।

अवस्थित न हो? (काल पदार्थके एक वृत्त्यंशमें भी उत्पाद और विनाश युगपत् होते हैं, इसलिये वह निरन्वय अर्थात् खंडित नहीं है, इसलिये स्वभावतः अवश्य ध्रुव है।)

इसप्रकार एक वृत्त्यंशमें कालपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है, ऐसा सिद्ध हुआ ॥१४२॥

अब, (जैसे एक वृत्त्यंशमें कालपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला सिद्ध किया है उसीप्रकार) सर्व वृत्त्यंशोंमें कालपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है ऐसा सिद्ध करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[एकस्मिन् समये] एक-एक समयमें [संभवस्थितिनाशसंज्ञिताः अर्थाः] उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय नामक अर्थ [समयस्य] कालके [सर्वकालं] सदा [संति] होते हैं। [एषः हि] यही [कालाणुसद्भावः] कालाणुका सद्भाव है; (यही कालाणुके अस्तित्वकी सिद्धि है।)।१४३॥

टीका :—कालपदार्थके सभी वृत्त्यंशोमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं, क्योंकि (१४२वीं गाथामें जैसा सिद्ध हुआ है तदनुसार) एक वृत्त्यंशमें वे (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) देखे जाते हैं। और यह योग्य ही है, क्योंकि विशेष अस्तित्व सामान्य अस्तित्वके बिना नहीं हो

प्रत्येक समये जन्म-ध्रौव्य-विनाश अर्थो काळने
वर्ते सरवदा; आ ज बस काळाणुनो सद्भाव छे. १४३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

समयपदार्थस्य सिद्ध्यति सद्भावः। यदि विशेषसामान्यास्तित्वे सिद्ध्यतस्तदा त अस्तित्व-मन्तरेण न सिद्ध्यतः कथंचिदपि॥१४३॥

अथ कालपदार्थस्यास्तित्वान्यथानुपपत्त्या प्रदेशमात्रत्वं साधयति—

जस्स ण संति पदेसा पदेसमेत्तं व तच्चदो णादुं।
सुण्णं जाण तमत्थं अत्थंतरभूदमत्थीदो॥१४४॥

यस्य न सन्ति प्रदेशाः प्रदेशमात्रं वा तत्त्वतो ज्ञातुम्।
शून्यं जानीहि तमर्थमर्थान्तरभूतमस्तित्वात्॥१४४॥

संभवस्थितिनाशसंज्ञिता अर्थाः धर्माः स्वभावा इति यावत्। कस्य संबन्धिनः। **समयस्स** समयरूपपर्यायस्योत्पादकत्वात् समयः कालाणुस्तस्य। **सव्वकालं** यद्येकस्मिन् वर्तमानसमये सर्वदा तथैव। **एस हि कालाणुसब्भावो** एषः प्रत्यक्षीभूतो हि स्फुटमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मककालाणुसद्भाव इति। तद्यथा—यथा पूर्वमेकसमयोत्पादप्रध्वंसाधारेणाङ्गुलिद्रव्यादिदृष्टान्तेन वर्तमानसमये कालद्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वं स्थापितं तथा सर्वसमयेषु ज्ञातव्यमिति। अत्र यद्यप्यतीतानन्तकाले दुर्लभायाः सर्वप्रकारोपादेयभूतायाः सिद्धगतेः काललब्धिरूपेण बहिरङ्गसहकारी भवति कालस्तथापि निश्चयनयेन निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानसमस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणतपश्चरणरूपा या तु निश्चयचतुर्विधाराधना सैव तत्रोपादानकारणं, न च कालस्तेन कारणेन स हेय इति भावार्थः॥१४३॥

सकता। यही कालपदार्थके सद्भावकी (अस्तित्वकी) सिद्धि है; (क्योंकि) यदि विशेष अस्तित्व और सामान्य अस्तित्व सिद्ध होते हैं तो वे अस्तित्वके बिना किसी भी प्रकारसे सिद्ध नहीं होते॥१४३॥

अब, कालपदार्थके अस्तित्वकी अन्यथा अनुपपत्ति होनेसे (अर्थात् काल पदार्थका अस्तित्व अन्य किसी प्रकार नहीं बन सकनेके कारण) उसका प्रदेशमात्रपना सिद्ध करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यस्य**] जिस पदार्थके [**प्रदेशाः**] प्रदेश [**प्रदेशमात्रं वा**] अथवा एकप्रदेश भी [**तत्त्वतः**] परमार्थतः [**ज्ञातुम् न संति**] ज्ञात नहीं होते, [**तम् अर्थम्**] उस पदार्थको [**शून्यं जानीहि**] शून्य जानो—[**अस्तित्वात् अर्थान्तरभूतम्**] जो कि अस्तित्वसे अर्थान्तरभूत (-अन्य) है॥१४४॥

જે અર્થને ન વહુ પ્રદેશ, ન એક વા પરમાર્થથી,
તે અર્થ જાણો શૂન્ય કેવળ—અન્ય જે અસ્તિત્વથી. ૧૪૪.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अस्तित्वं हि तावदुत्पादव्ययध्रौव्यैक्यात्मिका वृत्तिः। न खलु सा प्रदेशमन्तरेण सूत्र्यमाणा कालस्य संभवति, यतः प्रदेशाभावे वृत्तिमदभावः। स तु शून्य एव, अस्तित्वसंज्ञाया वृत्तेरर्थान्तरभूतत्वात्। न च वृत्तिरेव केवला कालो भवितुमर्हति, वृत्तेर्हि वृत्तिमन्तमन्तरेणानुपपत्तेः। उपपत्तौ वा कथमुत्पादव्ययध्रौव्यैक्यात्मकत्वम्। अनाद्यन्त-निरन्तरानेकांशवशीकृतैकात्मकत्वेन पूर्वपूर्वांशप्रध्वंसादुत्तरोत्तरांशोत्पादादेकात्मध्रौव्यादिति चेत्; नैवम्। यस्मिन्नंशे प्रध्वंसो यस्मिंश्चोत्पादस्तयोः सहप्रवृत्त्यभावात् कुतस्त्यमैक्यम्। तथा प्रध्वस्तांशस्य सर्वथास्तमितत्वादुत्पद्यमानांशस्य वासम्भवितात्मलाभत्वात्प्रध्वंसोत्पादैक्य-

अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकास्तित्वावष्टम्भेन कालस्यैकप्रदेशत्वं साधयति—जस्स ण संति यस्य पदार्थस्य न सन्ति न विद्यन्ते। के। पदेसा प्रदेशाः। पदेसमेत्तं तु प्रदेशमात्रमेकप्रदेशप्रमाणं पुनस्तद्वस्तु तच्चदो णादुं तत्त्वतः परमार्थतो ज्ञातुं शक्यते। सुण्णं जाण तमत्थं यस्यैकोऽपि प्रदेशो नास्ति तमर्थं पदार्थं शून्यं

टीका :—प्रथम तो अस्तित्व वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यकी ऐक्यस्वरूपवृत्ति है। वह (वृत्ति अर्थात् विद्यमानता) कालके प्रदेश बिना ही होती है यह कथन संभवित नहीं है, क्योंकि प्रदेशके अभावमें वृत्तिमान्का अभाव होता है। वह तो शून्य ही है, क्योंकि अस्तित्व नामक वृत्तिसे अर्थान्तरभूत है—अन्य है।

और (यदि यहाँ यह तर्क किया जाय कि 'मात्र समयपर्यायरूपवृत्ति ही माननी चाहिये; वृत्तिमान् कालाणु पदार्थकी क्या आवश्यकता है?' तो उसका समाधान किया जाता है:—) मात्र वृत्ति (समयरूप परिणति) ही काल नहीं हो सकती, क्योंकि वृत्ति वृत्तिमान्के बिना नहीं हो सकती। यदि यह कहा जाय कि वृत्तिमान् के बिना भी वृत्ति हो सकती है तो, (पूछते हैं कि—वृत्ति तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी एकतास्वरूप होनी चाहिये;) अकेली वृत्ति उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी एकतारूप कैसे हो सकती है? यदि यह कहा जाय कि—'अनादि-अनन्त, अनन्तर (-परस्पर अन्तर हुए बिना एकके बाद एक प्रवर्तमान) अनेक अंशोंके कारण [१]एकात्मकता होती है इसलिये, पूर्व-पूर्वके अंशोंका नाश होता है और उत्तर-उत्तरके अंशोंका उत्पाद होता है तथा एकात्मकतारूप ध्रौव्य रहता है,—इसप्रकार मात्र (अकेली) वृत्ति भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी एकतास्वरूप हो सकती है' तो ऐसा नहीं है। (क्योंकि उस अकेली वृत्तिमें तो) जिस अंशमें नाश है और जिस अंशमें उत्पाद है वे दो अंश एक साथ प्रवृत्त नहीं होते, इसलिये (उत्पाद और व्ययका) ऐक्य कहाँसे हो सकता है? तथा नष्ट अंशके सर्वथा अस्त होनेसे और उत्पन्न होनेवाला अंश अपने स्वरूपको प्राप्त न होनेसे (अर्थात् उत्पन्न नहीं हुआ है

१. एकात्मकता = एकस्वरूपता (कालद्रव्यके बिना भी अनादि कालसे अनन्त काल तक समय एकके बाद एक परस्पर अन्तरके बिना ही प्रवर्तित होते हैं, इसलिये एकप्रवाहरूप बन जानेसे उसमें एकरूपत्व आता है—इसप्रकार शंकाकारका तर्क है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

वर्तिध्रौव्यमेव कुतस्त्यम्। एवं सति नश्यति त्रैलक्षण्यं, उल्लसति क्षणभंगः, अस्तमुपैति नित्यं द्रव्यं, उदीयन्ते क्षणक्षयिणो भावाः। ततस्तत्त्वविप्लवभयात्कश्चिदवश्यमाश्रयभूतो वृत्तेर्वृत्तिमाननुसर्तव्यः। स तु प्रदेश एवाप्रदेशस्यान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वासिद्धेः। एवं सप्रदेशत्वे हि कालस्य कुत एकद्रव्यनिबन्धनं लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वं नाभ्युपगम्येत। पर्यायसमयाप्रसिद्धेः। प्रदेशमात्रं हि द्रव्यसमयमतिक्रामतः परमाणोः पर्यायसमयः प्रसिद्ध्यति। लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वे तु द्रव्यसमयस्य कुतस्त्या तत्सिद्धिः। लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशैकद्रव्यत्वेऽपि तस्यैकं प्रदेशमतिक्रामतः परमाणोस्तत्सिद्धिरिति चेन्नैवं; एकदेशवृत्तेः

जानीहि हे शिष्य। कस्माच्छून्यमिति चेत्। अत्यंतरभूदं एकप्रदेशाभावे सत्यर्थान्तरभूतं भिन्नं भवति यतः कारणात्। कस्याः सकाशाद्भिन्नम्। अत्थीदो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकसत्ताया इति। तथाहि–कालपदार्थस्य तावत्पूर्वसूत्रोदितप्रकारेणोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमस्तित्वं विद्यते; तच्चास्तित्वं प्रदेशं विना न

इसलिये) नाश और उत्पादकी एकतामें प्रवर्तमान ध्रौव्य कहाँसे हो सकता है? ऐसा होनेपर त्रिलक्षणता (उत्पादव्ययध्रौव्यता) नष्ट हो जाती है, क्षणभंग (बौद्धसम्मत क्षणविनाश) उल्लसित हो उठता है, नित्य द्रव्य अस्त हो जाता है और क्षणविध्वंसी भाव उत्पन्न होते हैं। इसलिये [१]तत्त्वविप्लवके भयसे अवश्य ही वृत्तिका आश्रयभूत कोई वृत्तिमान् ढूँढ़ना–स्वीकार करना योग्य है। वह तो प्रदेश ही है (अर्थात् वह वृत्तिमान् सप्रदेश ही होता है), क्योंकि अप्रदेशके अन्वय तथा व्यतिरेकका अनुविधायित्व असिद्ध है। (जो अप्रदेश होता है वह अन्वय तथा व्यतिरेकोंका अनुसरण नहीं कर सकता, अर्थात् उसमें ध्रौव्य तथा उत्पाद–व्यय नहीं हो सकते।)

(प्रश्न :—) इसप्रकार काल सप्रदेश है तो उसके एकद्रव्यके कारणभूत लोकाकाश तुल्य असंख्यप्रदेश क्यों न मानने चाहिये?

(उत्तर :—) ऐसा हो तो पर्यायसमय प्रसिद्ध नहीं होता, इसलिये असंख्य प्रदेश मानना योग्य नहीं है। परमाणुके द्वारा प्रदेशमात्र द्रव्यसमयका उल्लंघन करने पर (अर्थात्–परमाणुके द्वारा एकप्रदेशमात्र कालाणुसे निकटके दूसरे प्रदेशमात्र कालाणु तक मंदगतिसे गमन करने पर) पर्यायसमय प्रसिद्ध होता है। यदि द्रव्यसमय लोकाकाशतुल्य असंख्यप्रदेशी हो तो पर्यायसमयकी सिद्धि कहाँसे होगी?

'यदि द्रव्यसमय अर्थात् कालपदार्थ लोकाकाश जितने असंख्य प्रदेशवाला एक द्रव्य हो तो भी परमाणुके द्वारा उसका एक प्रदेश उल्लंघित होनेपर पर्यायसमयकी सिद्धि हो' ऐसा कहा जाय तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि (उसमें दो दोष आते हैं) :—

---

१. तत्त्वविप्लव = वस्तुस्वरूपमें अंधाधुन्धी।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सर्ववृत्तित्वविरोधात्। सर्वस्यापि हि कालपदार्थस्य यः सूक्ष्मो वृत्त्यंशः स समयो, न तु तदेकदेशस्य। तिर्यक्प्रचयस्योर्ध्वप्रचयत्वप्रसंगाच्च। तथा हि—प्रथममेकेन प्रदेशेन वर्तते, ततोऽन्येन, ततोऽप्यन्यतरेणेति तिर्यक्प्रचयोऽप्यूर्ध्वप्रचयीभूय प्रदेशमात्रं द्रव्यमवस्थापयति। ततस्तिर्यक्प्रचयस्योर्ध्वप्रचयत्वमनिच्छता प्रथममेव प्रदेशमात्रं कालद्रव्यं व्यवस्थापयितव्यम् ॥१४४॥

अथैवं ज्ञेयतत्त्वमुक्त्वा ज्ञानज्ञेयविभागेनात्मानं निश्चिन्वन्नात्मनोऽत्यन्तविभक्तत्वाय व्यवहारजीवत्वहेतुमालोचयति—

घटते। यश्च प्रदेशवान् स कालपदार्थ इति। अथ मतं कालद्रव्याभावेऽप्युत्पादव्ययध्रौव्यत्वं घटते। नैवम्। अङ्गुलिद्रव्याभावे वर्तमानवक्रपर्यायोत्पादो भूतर्जुपर्यायस्य विनाशस्तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यं कस्य भविष्यति। न कस्यापि। तथा कालद्रव्याभावे वर्तमानसमयरूपोत्पादो भूतसमयरूपो विनाशस्तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यं कस्य भविष्यति। न कस्यापि। एवं सत्येतदायाति–अन्यस्य भङ्गोऽन्यस्योत्पादोऽन्यस्य ध्रौव्यमिति सर्वं वस्तुस्वरूपं विप्लवते। तस्माद्वस्तुविप्लवभयादुत्पादव्ययध्रौव्याणां कोऽप्येक आधारभूतोऽस्तीत्यभ्युपगन्तव्यम्। स चैकप्रदेशरूपः कालाणुपदार्थ एवेति। अत्रातीतानन्तकाले ये केचन सिद्धसुखभाजनं जाताः, भाविकाले च 'आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्' इत्यादिविशेषणविशिष्टसिद्धसुखस्य भाजनं भविष्यन्ति ते सर्वेऽपि काललब्धिवशेनैव। तथापि तत्र निजपरमात्मोपादेयरुचिरूपं वीतरागचारित्राविनाभूतं यन्निश्चयसम्यक्त्वं तस्यैव मुख्यत्वं, न च कालस्य, तेन स हेय इति। तथा चोक्तम्—"किं पलविएण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गये काले सिज्झहहि जे

---

(१) [द्रव्यके एक देशकी परिणतिको सम्पूर्ण द्रव्यकी परिणति माननेका प्रसंग आता है।] एक देशकी वृत्तिको सम्पूर्ण द्रव्यकी वृत्ति माननेमें विरोध है। सम्पूर्ण काल पदार्थका जो सूक्ष्म वृत्त्यंश है वह समय है, परन्तु उसके एक देशका वृत्त्यंश वह समय नहीं।

तथा, (२) तिर्यक्प्रचयको ऊर्ध्वप्रचयपनेका प्रसंग आता है। वह इसप्रकार है कि :—प्रथम, कालद्रव्य एक प्रदेशसे वर्ते, फिर दूसरे प्रदेशसे वर्ते और फिर अन्यप्रदेशसे वर्ते (ऐसा प्रसंग आता है) इसप्रकार तिर्यक्प्रचय ऊर्ध्वप्रचय बनकर द्रव्यको प्रदेशमात्र स्थापित करता है। (अर्थात् तिर्यक्प्रचय ही ऊर्ध्वप्रचय है, ऐसा माननेका प्रसंग आता है, इसलिये द्रव्यप्रदेशमात्र ही सिद्ध होता है।) इसलिये तिर्यक्प्रचयको ऊर्ध्वप्रचयपना न मानने (चाहने)वालेको प्रथम ही कालद्रव्यको प्रदेशमात्र निश्चित करना चाहिये ॥१४४॥

(इसप्रकार ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमें द्रव्यविशेषप्रज्ञापन समाप्त हुआ।)

अब, इसप्रकार ज्ञेयतत्त्व कहकर, ज्ञान और ज्ञेयके विभाग द्वारा आत्माको निश्चित करते हुए, आत्माको अत्यन्त विभक्त (भिन्न) करनेके लिये व्यवहारजीवत्वके हेतुका विचार करते हैं :–

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

सपदेसेहिं समग्गो लोगो अट्ठेहिं णिट्ठिदो णिच्चो।
जो तं जाणदि जीवो पाणचदुक्काभिसंबद्धो॥१४५॥

सप्रदेशैः समग्रो लोकोऽर्थैर्निष्ठितो नित्यः।
यस्तं जानाति जीवः प्राणचतुष्काभिसम्बद्धः॥१४५॥

एवमाकाशपदार्थादाकालपदार्थाच्च समस्तैरेव संभावितप्रदेशसद्भावैः पदार्थैः समग्र एव यः समाप्तिं नीतो लोकस्तं खलु तदन्तःपातित्वेऽप्यचिन्त्यस्वपरपरिच्छेदशक्तिसंपदा जीव एव जानीते, नत्वितरः। एवं शेषद्रव्याणि ज्ञेयमेव, जीवद्रव्यं तु ज्ञेयं ज्ञानं चेति ज्ञान-ज्ञेयविभागः। अथास्य जीवस्य सहजविजृम्भितानन्तज्ञानशक्तिहेतुके त्रिसमयावस्थायित्वलक्षणे

वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं''॥१४४॥ एवं निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टमस्थले गाथात्रयं गतम्। इति पूर्वोक्तप्रकारेण 'दव्वं जीवमजीवं' इत्याद्येकोनविंशतिगाथाभिः स्थलाष्टकेन विशेष-ज्ञेयाधिकारः समाप्तः॥ अतः परं शुद्धजीवस्य द्रव्यभावप्राणैः सह भेदनिमित्तं 'सपदेसेहिं समग्गो'

अन्वयार्थ :—[**सप्रदेशैः अर्थैः**] सप्रदेश पदार्थोंके द्वारा [**निष्ठितः**] समाप्तिको [१]प्राप्त [**समग्रः लोकः**] सम्पूर्ण लोक [**नित्यः**] नित्य है, [**तं**] उसे [**यः जानाति**] जो जानता है [**जीवः**] वह जीव है,—[**प्राणचतुष्काभिसंबद्धः**] जो कि (संसार दशामें) चार प्राणोंसे संयुक्त है॥१४५॥

टीका :—इसप्रकार जिन्हें प्रदेशका सद्भाव फलित हुआ है ऐसे आकाशपदार्थसे लेकर काल पदार्थ तकके सभी पदार्थोंसे समाप्तिको प्राप्त जो समस्त लोक है उसे वास्तवमें, उसमें [२]अंतःपाती होनेपर भी, अचिन्त्य ऐसी स्वपरको जाननेकी शक्तिरूप सम्पदाके द्वारा जीव ही जानता है, दूसरा कोई नहीं। इसप्रकार शेष द्रव्य ज्ञेय ही हैं और जीवद्रव्य तो ज्ञेय तथा ज्ञान है;—इसप्रकार ज्ञान और ज्ञेयका विभाग है।

अब, इस जीवको, सहजरूपसे (स्वभावसे ही) प्रगट अनन्तज्ञानशक्ति जिसका हेतु है और तीनों कालमें अवस्थायिपना (टिकना) जिसका लक्षण है ऐसा, वस्तुका स्वरूपभूत होनेसे

---

१. छह द्रव्योंसे ही सम्पूर्ण लोक समाप्त हो जाता है, अर्थात् उनके अतिरिक्त लोकमें दूसरा कुछ नहीं है।

२. अंतःपाती = अन्दर आ जानेवाला; अन्दर समा जानेवाला (–जीव लोकके भीतर आ जाता है।)

सप्रदेश अर्थोथी समाप्त समग्र लोक सुनित्य छे;
तसु जाणनारो जीव, प्राणचतुष्कथी संयुक्त जे. १४५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

वस्तुस्वरूपभूततया सर्वदानपायिनि निश्चयजीवत्वे सत्यपि संसारावस्थायामनादि-प्रवाहप्रवृत्तपुद्गलसंश्लेषदूषितात्मतया प्राणचतुष्काभिसंबद्धत्वं व्यवहारजीवत्वहेतुर्विभक्त-व्योऽस्ति ।।१४५।।

अथ के प्राणा इत्यावेदयति—

इत्यादि यथाक्रमेण गाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावनाव्याख्यानं करोति। तद्यथा। अथ ज्ञानज्ञेयज्ञापनार्थं तथैवात्मनः प्राणचतुष्केन सह भेदभावनार्थं वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति—**लोगो** लोको भवति। कथंभूतः। **णिट्ठिदो** निष्ठितः समाप्तिं नीतो भृतो वा। कैः कर्तृभूतैः। **अट्ठेहिं** सहजशुद्धबुद्धैकस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतयो येऽर्थास्तैः। पुनरपि किंविशिष्टः। **सपदेसेहिं समग्गो** स्वकीयप्रदेशैः समग्रः परिपूर्णः। अथवा पदार्थैः। कथंभूतैः। सप्रदेशैः प्रदेशसहितैः। पुनरपि किंविशिष्टो लोकः। **णिच्चो** द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः लोकाकाशापेक्षया वा। अथवा नित्यो, न केनापि पुरुषविशेषेण कृतः। **जो तं जाणदि** यः कर्ता तं ज्ञेयभूतं लोकं जानाति **जीवो** स जीवपदार्थो भवति। एतावता किमुक्तं भवति। योऽसौ विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावो जीवः स ज्ञानं ज्ञेयश्च भण्यते। शेषपदार्थास्तु ज्ञेया एवेति ज्ञातृज्ञेयविभागः। पुनरपि किंविशिष्टो जीवः। **पाणचदुक्केण संबद्धो** यद्यपि निश्चयेन स्वतःसिद्धपरमचैतन्यस्वभावेन निश्चयप्राणेन जीवति तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशादा-युराद्यशुद्धप्राणचतुष्केनापि संबद्धः सन् जीवति। तच्च शुद्धनयेन जीवस्वरूपं न भवतीति भेदभावना ज्ञातव्येत्यभिप्रायः ।।१४५।। अथेन्द्रियादिप्राणचतुष्कस्वरूपं प्रतिपादयति—अतीन्द्रियानन्तसुखस्व-भावात्मनो विलक्षण इन्द्रियप्राणः, मनोवाक्कायव्यापाररहितात्परमात्मद्रव्याद्विसदृशो बलप्राणः,

---

सर्वदा अविनाशी निश्चयजीवत्व होनेपर भी, संसारावस्थामें अनादिप्रवाहरूपसे प्रवर्तमान पुद्गल संश्लेषके द्वारा स्वयं दूषित होनेसे उसके चार प्राणोंसे संयुक्तपना है—जो कि (संयुक्तपना) व्यवहारजीवत्वका हेतु है, और विभक्त करने योग्य है।

भावार्थ :—षट् द्रव्योंका समुदाय वह लोक है। जीव उसे (अपनी) अचिन्त्य ज्ञानशक्तिसे जानता है; इसलिये जीवके अतिरिक्त शेष द्रव्य ज्ञेय हैं और जीव ज्ञान तथा ज्ञेय है। उस जीवको वस्तुके स्वरूपभूत होनेसे जो कभी नष्ट नहीं होता, ऐसा निश्चयजीवत्व सदा ही है। उस निश्चय जीवत्वका कारण स्वाभाविक अनन्तज्ञानशक्ति है। ऐसा निश्चयजीवत्व जीवके सदा होने पर भी वह, संसार दशामें स्वयं पुद्गलके संबंधसे दूषित होनेसे चार प्राणोंसे संयुक्त है, और इसलिये उसके व्यवहारजीवत्व भी है। उस व्यवहारजीवत्वको कारणरूप जो चार प्राणोंसे संयुक्तपना उससे जीवको भिन्न करना चाहिये ।।१४५।।

अब, प्राण कौन-कौनसे हैं, सो बतलाते हैं :—

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

इंदियपाणो य तधा बलपाणो तह य आउपाणो य।
आणप्पाणप्पाणो जीवाणं होंति पाणा ते॥१४६॥

इन्द्रियप्राणश्च तथा बलप्राणस्तथा चायुःप्राणश्च।
आनपानप्राणो जीवानां भवन्ति प्राणास्ते॥१४६॥

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रपंचकमिन्द्रियप्राणाः, कायवाङ्मस्त्रयं बलप्राणाः, भवधारणनिमित्तमायुःप्राणः, उदंचनन्यंचनात्मको मरुदानपानप्राणः॥१४६॥

अथ प्राणानां निरुक्त्या जीवत्वहेतुत्वं पौद्गलिकत्वं च सूत्रयति—

अनाद्यनन्तस्वभावात्परमात्मपदार्थाद्विपरीतः साद्यन्त आयुःप्राणः, उच्छ्वासनिश्वासजनितखेदरहिताच्छुद्धात्मतत्त्वात्प्रतिपक्षभूत आनपानप्राणः। एवमायुरिन्द्रियबलोच्छ्वासरूपेणाभेदनयेन जीवानां संबन्धिनश्चत्वारः प्राणा भवन्ति। ते च शुद्धनयेन जीवाद्भिन्ना भावयितव्या इति॥१४६॥ अथ त एव प्राणा भेदनयेन दशविधा भवन्तीत्यावेदयति—

पंच वि इंदियपाणा मणवचिकाया य तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणो आउगपाणेण होंति दसपाणा॥*१२॥

अन्वयार्थ :—[इन्द्रियप्राणः च] इन्द्रियप्राण, [तथा बलप्राणः] बलप्राण, [तथा च आयुःप्राणः] आयुप्राण [च] और [आनपानप्राणः] श्वासोच्छ्वास प्राण—[ते] ये (चार) [जीवानां] जीवोंके [प्राणाः] प्राण [भवन्ति] हैं॥१४६॥

टीका :—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र—यह पाँच इन्द्रियप्राण हैं; काय, वचन और मन,—यह तीन बलप्राण हैं, भव धारणका निमित्त (अर्थात् मनुष्यादि पर्यायकी स्थितिका निमित्त) आयुप्राण है; नीचे और ऊपर जाना जिसका स्वरूप है ऐसी वायु (श्वास) श्वासोच्छ्वास प्राण है॥१४६॥

अब, व्युत्पत्तिसे प्राणोंको जीवत्वका हेतुपना और उनका पौद्गलिकपना सूत्र द्वारा कहते हैं (अर्थात् प्राण जीवत्वके हेतु है ऐसा व्युत्पत्तिसे दरशाते हैं तथा प्राण पौद्गलिक हैं ऐसा कहते हैं) :—

इन्द्रियप्राण, तथा वळी बळप्राण, आयुप्राण ने
वळी प्राण श्वासोच्छ्वास–अे सौ, जीव केरा प्राण छे. १४६.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हि जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण पोग्गलदव्वेहिं णिव्वत्ता॥१४७॥

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीविष्यति यो हि जीवितः पूर्वम्।
स जीवः प्राणाः पुनः पुद्गलद्रव्यैर्निर्वृत्ताः॥१४७॥

प्राणसामान्येन जीवति जीविष्यति जीवितवांश्च पूर्वमिति जीवः। एवमनादि-संतानप्रवर्तमानतया त्रिसमयावस्थत्वात्प्राणसामान्यं जीवस्य जीवत्वहेतुरस्त्येव। तथापि तन्न जीवस्य स्वभावत्वमवाप्नोति पुद्गलद्रव्यनिर्वृत्तत्वात्॥१४७॥

इन्द्रियप्राणः पञ्चविधः, त्रिधा बलप्राणः, पुनश्चैक आनपानप्राणः, आयुःप्राणश्चेति भेदेन दश प्राणास्तेऽपि चिदानन्दैकस्वभावात्परमात्मनो निश्चयेन भिन्ना ज्ञातव्या इत्यभिप्रायः॥"१२॥ अथ प्राणशब्दव्युत्पत्त्या जीवस्य जीवत्वं प्राणानां पुद्गलस्वरूपत्वं च निरूपयति—**पाणेहिं चदुहिं जीवदि** यद्यपि निश्चयेन सत्ताचैतन्यसुखबोधादिशुद्धभावप्राणैर्जीवति तथापि व्यवहारेण वर्तमानकाले द्रव्यभाव-रूपैश्चतुर्भिरशुद्धप्राणैर्जीवति **जीविस्सदि** जीविष्यति भाविकाले **जो हि जीविदो** यो हि स्फुटं जीवितः **पुव्वं** पूर्वकाले **सो जीवो** स जीवो भवति। **ते पाणा** ते पूर्वोक्ताः प्राणाः **पोग्गलदव्वेहिं णिव्वत्ता** उदयागत-पुद्गलकर्मणा निर्वृत्ता निष्पन्ना इति। तत एव कारणात्पुद्गलद्रव्यविपरीतादनन्तज्ञानदर्शनसुख-

---

अन्वयार्थ :—[यः हि] जो [चतुर्भिः प्राणैः] चार प्राणोंसे [जीवति] जीता है, [जीविष्यति] जियेगा [जीवितः पूर्वं] और पहले जीता था, [सः जीवः] वह जीव है। [पुनः] फिर भी [प्राणाः] प्राण तो [पुद्गलद्रव्यैः निर्वृत्ताः] पुद्गल द्रव्योंसे निष्पन्न (रचित) हैं॥१४७॥

टीका :—(व्युत्पत्तिके अनुसार) प्राणसामान्यसे जीता है, जियेगा, और पहले जीता था, वह जीव है। इसप्रकार (प्राणसामान्य) अनादि संतानरूप (-प्रवाहरूप)से प्रवर्तमान होनेसे (संसारदशामें) त्रिकाल स्थायी होनेसे प्राणसामान्य जीवके जीवत्वका हेतु है ही। तथापि वह (प्राण सामान्य) जीवका स्वभाव नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्यसे निष्पन्न—रचित है।

भावार्थ :—यद्यपि निश्चयसे जीव सदा ही भावप्राणसे जीता है, तथापि संसारदशामें व्यवहारसे उसे व्यवहारजीवत्वके कारणभूत इन्द्रियादि द्रव्यप्राणोंसे जीवित कहा जाता है। ऐसा

जे चार प्राणे जीवतो पूर्वे, जीवे छे, जीवशे,
ते जीव छे; पण प्राण तो पुद्गलदरवनिष्पन्न छे. १४७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ प्राणानां पौद्गलिकत्वं साधयति—

जीवो पाणणिबद्धो बद्धो मोहादिएहिं कम्मेहिं।
उवभुंजं कम्मफलं बज्झदि अण्णेहिं कम्मेहिं॥१४८॥

जीवः प्राणनिबद्धो बद्धो मोहादिकैः कर्मभिः।
उपभुंजानः कर्मफलं बध्यतेऽन्यैः कर्मभिः॥१४८॥

यतो मोहादिभिः पौद्गलिककर्मभिर्बद्धत्वाज्जीवः प्राणनिबद्धो भवति, यतश्च प्राणनिबद्धत्वात्पौद्गलिककर्मफलमुपभुंजानः पुनरप्यन्यैः पौद्गलिककर्मभिर्बध्यते, ततः

वीर्याद्यनन्तगुणस्वभावात्परमात्मतत्त्वाद्भिन्ना भावयितव्या इति भावः॥१४७॥ अथ प्राणानां यत्पूर्वसूत्रोदितं पौद्गलिकत्वं तदेव दर्शयति—**जीवो पाणणिबद्धो** जीवः कर्ता चतुर्भिः प्राणैर्निबद्धः संबद्धो भवति। कथंभूतः सन्। **बद्धो** शुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षाद्विलक्षणैर्बद्धः। **कैर्बद्धः। मोहादिएहिं कम्मेहिं** मोहनीयादिकर्मभिर्बद्धस्ततो ज्ञायते मोहादिकर्मभिर्बद्धः सन् प्राणनिबद्धो भवति, न च कर्मबन्धरहित इति। तत एव ज्ञायते प्राणाः पुद्गलकर्मोदयजनिता इति। तथाविधः सन् किं करोति। **उवभुंजदि कम्मफलं** परमसमाधिसमुत्पन्ननित्यानन्दैकलक्षणसुखामृतभोजनमलभमानः सन् कटुकविषसमानमपि कर्मफलमुपभुङ्क्ते। **बज्झदि अण्णेहिं कम्मेहिं** तत्कर्मफलमुपभुञ्जानः सन्नयं जीवः कर्मरहितात्मनो विसदृशैरन्यकर्मभिर्नवतरकर्मभिर्बध्यते। यतः कारणात्कर्मफलं भुञ्जानो नवतर कर्माणि बध्नाति,

---

होनेपर भी वे द्रव्यप्राण आत्माका स्वरूप किंचित् मात्र नहीं हैं क्योंकि वे पुद्गल द्रव्यसे निर्मित हैं॥१४७॥

अब, प्राणोंका पौद्गलिकपना सिद्ध करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**मोहादिकैः कर्मभिः**] मोहादिक कर्मोंसे [**बद्धः**] बँधा हुआ होनेसे [**जीवः**] जीव [**प्राणनिबद्धः**] प्राणोंसे संयुक्त होता हुआ [**कर्मफलं उपभुंजानः**] कर्मफलको भोगता हुआ [**अन्यैः कर्मभिः**] अन्य कर्मोंसे [**बध्यते**] बँधता है॥१४८॥

टीका :—(१) मोहादिक पौद्गलिक कर्मोंसे बँधा हुआ होनेसे जीव प्राणोंसे संयुक्त होता है और (२) प्राणोंसे संयुक्त होनेके कारण पौद्गलिक कर्मफलको (मोही–रागी–द्वेषी जीव मोह–राग–द्वेषपूर्वक) भोगता हुआ पुनः भी अन्य पौद्गलिक कर्मोंसे बंधता है, इसलिये

मोहादिकर्मनिबंधथी संबंध पामी प्राणनो,
जीव कर्मफळ-उपभोग करतां, बंध पामे कर्मनो. १४८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पौद्गलिककर्मकार्यत्वात्पौद्गलिककर्मकारणत्वाच्च पौद्गलिका एव प्राणा निश्चीयन्ते॥१४८॥

अथ प्राणानां पौद्गलिककर्मकारणत्वमुन्मीलयति—

पाणाबाधं जीवो मोहपदेसेहिं कुणदि जीवाणं।
जदि सो हवदि हि बंधो णाणावरणादिकम्मेहिं॥१४९॥

प्राणाबाधं जीवो मोहप्रद्वेषाभ्यां करोति जीवयोः।
यदि स भवति हि बन्धो ज्ञानावरणादिकर्मभिः॥१४९॥

ततो ज्ञायते प्राणा नवतरपुद्गलकर्मणां कारणभूता इति॥१४८॥ अथ प्राणा नवतरपुद्गलकर्मबन्धस्य कारणं भवन्तीति पूर्वोक्तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति—**पाणाबाधं** आयुरादिप्राणानां बाधां पीडां **कुणदि** करोति। स कः। **जीवो** जीवः। काभ्यां कृत्वा। **मोहपदेसेहिं** सकलविमलकेवलज्ञानप्रदीपेन मोहान्धकार-विनाशकात्परमात्मनो विपरीताभ्यां मोहप्रद्वेषाभ्यां। केषां प्राणबाधां करोति। **जीवाणं** एकेन्द्रियप्रमुखजीवानाम्। **जदि** यदि चेत् **सो हवदि बंधो** तदा स्वात्मोपलम्भप्राप्तिरूपान्मोक्षाद्विपरीतो मूलोत्तरप्रकृत्यादिभेदभिन्नः स परमागमप्रसिद्धो हि स्फुटं बन्धो भवति। कैः कृत्वा। **णाणावरणादिकम्मेहिं** ज्ञानावरणादिकर्मभिरिति। ततो ज्ञायते प्राणाः पुद्गलकर्मबन्धकारणं भवन्तीति। अयमत्रार्थः—यथा कोऽपि तप्तलोहपिण्डेन परं हन्तुकामः सन् पूर्वं तावदात्मानमेव हन्ति, पश्चादन्यघाते नियमो नास्ति, तथायमज्ञानी जीवोऽपि तप्तलोहपिण्डस्थानीयमोहादिपरिणामेन परिणतः सन् पूर्वं निर्विकारस्वसंवेदन-

---

(१) पौद्गलिक कर्मके कार्य होनेसे और (२) पौद्गलिक कर्मके कारण होनेसे प्राण पौद्गलिक ही निश्चित होते हैं॥१४८॥

अब, प्राणोंके पौद्गलिक कर्मका कारणपना (अर्थात् प्राण पौद्गलिक कर्मके कारण किस प्रकार हैं वह) प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यदि**] यदि [**जीवः**] जीव [**मोहप्रद्वेषाभ्यां**] मोह और द्वेषके द्वारा [**जीवयोः**] जीवोंके (-स्वजीवके तथा परजीवके) [**प्राणाबाधं करोति**] प्राणोंको बाधा पहुँचाते हैं, [**सः हि**] तो पूर्वकथित [**ज्ञानावरणादिकर्मभिः बंधः**] ज्ञानावरणादिक कर्मोंके द्वारा बंध [**भवति**] होता है॥१४९॥

जीव मोह-द्वेष वडे करे बाधा जीवोना प्राणने,
तो बंध ज्ञानावरण-आदिक कर्मनो ते थाय छे. १४९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

प्राणैर्हि तावज्जीवः कर्मफलमुपभुंक्ते; तदुपभुंजानो मोहप्रद्वेषावाप्नोति; ताभ्यां स्वजीव-परजीवयोः प्राणाबाधं विदधाति। तदा कदाचित्परस्य द्रव्यप्राणानाबाध्य कदाचिदनाबाध्य स्वस्य भावप्राणानुपरक्तत्वेन बाधमानो ज्ञानावरणादीनि कर्माणि बध्नाति। एवं प्राणाः पौद्गलिककर्मकारणतामुपयान्ति॥१४९॥

अथ पुद्गलप्राणसन्ततिप्रवृत्तिहेतुमन्तरंगमासूत्रयति—

आदा कम्ममलिमसो धरेदि पाणे पुणो पुणो अण्णे।
ण चयदि जाव ममत्तिं देहपधाणेसु विसयेसु॥१५०॥

ज्ञानस्वरूपं स्वकीयशुद्धप्राणं हन्ति, पश्चादुत्तरकाले परप्राणघाते नियमो नास्तीति॥१४९॥ अथेन्द्रियादिप्राणोत्पत्तेरन्तरङ्गहेतुमुपदिशति—आदा कम्ममलिमसो अयमात्मा स्वभावेन भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलरहितत्वेनात्यन्तनिर्मलोऽपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशान्मलीमसो भवति। तथाभूतः सन् किं करोति। धरेदि पाणे पुणो पुणो अण्णे धारयति प्राणान् पुनःपुनः अन्यान्नवतरान्। यावत्किम्। ण चयदि

टीका :—प्रथम तो प्राणोंसे जीव कर्मफलको भोगता है; उसे भोगता हुआ मोह तथा द्वेषको प्राप्त होता है; मोह तथा द्वेषसे स्वजीव तथा परजीवके प्राणोंको [१]बाधा पहुँचाता है। वहाँ कदाचित् (-किसी समय) परके द्रव्य प्राणोंको बाधा पहुँचाकर और कदाचित् (परके द्रव्य प्राणोंको) बाधा न पहुँचाकर, अपने भावप्राणोंको तो [२]उपरक्तपनेसे (अवश्य ही) बाधा पहुँचाता हुआ जीव ज्ञानावरणादि कर्मोंको बाँधता है। इसप्रकार प्राण पौद्गलिक कर्मोंके कारणपनेको प्राप्त होते हैं॥१४९॥

अब पौद्गलिक प्राणोंकी संततिकी (-प्रवाहकी-परम्पराकी) प्रवृत्तिका अन्तरंग हेतु सूत्र द्वारा कहते हैं :—

---

१. बाधा = पीडा, उपद्रव, विघ्न।

२. उपरक्तपना = मलिनपना; विकारीपना; मोहादिपरिणामरूप परिणमित होना। [जैसे कोई पुरुष तप्त लोहेके गोलेसे दूसरेको जलानेकी इच्छा करता हुआ प्रथम तो स्वयं अपनेको ही जलाता है; (-स्वयं अपने ही हाथको जलाता है) फिर दूसरा जले या न जले—इसका कोई नियम नहीं है; उसीप्रकार जीव मोहादिपरिणामरूप परिणमित होता हुआ प्रथम तो निर्विकार स्वसंवेदनज्ञानस्वरूप निज शुद्ध भावप्राणोंको ही हानि पहुँचाता है, फिर दूसरेके द्रव्यप्राणोंकी हानि हो या न हो—इसका कोई नियम नहीं है।

कर्मे मलिन जीव त्यां लगी प्राणो धरे छे फरी फरी,
ममता शरीरप्रधान विषये ज्यां लगी छोडे नहीं. १५०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

आत्मा कर्ममलीमसो धारयति प्राणान् पुनः पुनरन्यान्।
न त्यजति यावन्ममत्वं देहप्रधानेषु विषयेषु॥१५०॥

येयमात्मनः पौद्गलिकप्राणानां संतानेन प्रवृत्तिः, तस्या अनादिपौद्गलकर्ममूलं शरीरादिममत्वरूपमुपरक्तत्वमन्तरंगो हेतुः॥१५०॥

अथ पुद्गलप्राणसंततिनिवृत्तिहेतुमन्तरंग ग्राहयति—

जो इंदियादिविजई भवीय उवओगमप्पगं झादि।
कम्मेहिं सो ण रज्जदि किह तं पाणा अणुचरंति॥१५१॥

जाव **ममत्तिं** निस्नेहचिच्चमत्कारपरिणतेर्विपरीतां ममतां यावत्कालं न त्यजति। केषु विषयेषु। **देहपधाणेसु विसयेसु** देहविषयरहितपरमचैतन्यप्रकाशपरिणतेः प्रतिपक्षभूतेषु देहप्रधानेषु पञ्चेन्द्रियविषयेष्विति। ततः स्थितमेतत्—इन्द्रियादिप्राणोत्पत्तेर्देहादिममत्वमेवान्तरङ्गकारणमिति॥१५०॥ अथेन्द्रियादिप्राणानामभ्यन्तरं विनाशकारणमावेदयति—**जो इंदियादिविजई भवीय** यः कर्तातीन्द्रियात्मोत्थसुखामृतसंतोषबलेन जितेन्द्रियत्वेन निःकषायनिर्मलानुभूतिबलेन कषायजयेन चेन्द्रियादिविजयी भूत्वा **उवओगमप्पगं झादि**

अन्वयार्थ :—[यावत्] जब तक [देहप्रधानेषु विषयेषु] देहप्रधान विषयोंमें [ममत्वं] ममत्वको [न त्यजति] नहीं छोड़ता, [कर्ममलीमसः आत्मा] तब तक कर्मसे मलिन आत्मा [पुनः पुनः] पुनः-पुनः [अन्यान् प्राणान्] अन्य-अन्य प्राणोंको [धारयति] धारण करता है॥१५०॥

टीका :—जो इस आत्माको पौद्गलिक प्राणोंकी संतानरूप प्रवृत्ति है, उसका अन्तरंग हेतु शरीरादिका ममत्वरूप उपरक्तपना है, जिसका मूल (-निमित्त) अनादि पौद्गलिक कर्म है।

भावार्थ :—द्रव्यप्राणोंकी परम्परा चलते रहनेका अन्तरंग कारण अनादि पुद्गलकर्मके निमित्तसे होनेवाला जीवका विकारी परिणमन है। जबतक जीव देहादि विषयोंके ममत्वरूप विकारी परिणमनको नहीं छोड़ता तब तक उसके निमित्तसे पुनः-पुनः पुद्गलकर्म बँधते रहते हैं और उससे पुनः-पुनः द्रव्यप्राणोंका सम्बन्ध होता रहता है॥१५०॥

अब पौद्गलिक प्राणोंकी संततिकी निवृत्तिका अन्तरङ्ग हेतु समझाते हैं :—

करी इन्द्रियादिक-विजय, ध्यावे आत्मने—उपयोगने,
ते कर्मथी रंजित नहि; क्यम प्राण तेने अनुसरे? १५१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

य इन्द्रियादिविजयी भूत्वोपयोगमात्मकं ध्यायति।
कर्मभिः स न रज्यते कथं तं प्राणा अनुचरन्ति॥१५१॥

पुद्गलप्राणसंततिनिवृत्तेरन्तरंगो हेतुर्हि पौद्गलिककर्ममूलस्योपरक्तत्वस्याभावः। स तु समस्तेन्द्रियादिपरद्रव्यानुवृत्तिविजयिनो भूत्वा समस्तोपाश्रयानुवृत्तिव्यावृत्तस्य स्फटिकमणेरिवात्यन्तविशुद्धमुपयोगमात्रमात्मानं सुनिश्चलं केवलमधिवसतः स्यात्। इदमत्र तात्पर्यं—आत्मनोऽत्यन्तविभक्तत्वसिद्धये व्यवहारजीवत्वहेतवः पुद्गलप्राणा एवमुच्छेत्तव्याः॥१५१॥

केवलज्ञानदर्शनोपयोगं निजात्मानं ध्यायति, कम्मेहिं सो ण रज्जदि कर्मभिश्चिन्मत्कारात्मनः प्रतिबन्धकैर्ज्ञानावरणादिकर्मभिः स न रज्यते, न बध्यते। किंच तं पाणा अणुचरंति कर्मबन्धाभावे सति तं पुरुषं

अन्वयार्थ :—[यः] जो [इन्द्रियादिविजयीभूत्वा] इन्द्रियादिका विजयी होकर [उपयोगं आत्मकं] उपयोगमात्र आत्माका [ध्यायति] ध्यान करता है, [सः] वह [कर्मभिः] कर्मोंके द्वारा [न रज्यते] रंजित नहीं होता; [तं] उसे [प्राणाः] प्राण [कथं] कैसे [अनुचरंति] अनुसरेंगे? (अर्थात् उसके प्राणोंका सम्बन्ध नहीं होता।) ॥१५१॥

टीका :—वास्तवमें पौद्गलिक प्राणोंके संततिकी निवृत्तिका अन्तरङ्ग हेतु पौद्गलिक कर्म जिसका कारण (–निमित्त) है ऐसे [१]उपरक्तपनेका अभाव है। और वह अभाव जो जीव समस्त इन्द्रियादिक परद्रव्योंके अनुसार परिणतिका विजयी होकर, (अनेक वर्णोवाले) [२]आश्रयानुसार सारी परिणतिसे व्यावृत्त (पृथक्, अलग) हुए स्फटिक मणिकी भाँति, अत्यन्त विशुद्ध उपयोगमात्र अकेले आत्मामें सुनिश्चलतया वसता है, उस जीवके होता है।

यहाँ यह तात्पर्य है कि—आत्माकी अत्यन्त विभक्तता सिद्ध करनेके लिये व्यवहारजीवत्वके हेतुभूत पौद्गलिक प्राण इसप्रकार उच्छेद करनेयोग्य हैं।

भावार्थ :—जैसे अनेक रंगयुक्त आश्रयभूत वस्तुके अनुसार जो (स्फटिक मणिका) अनेकरंगी परिणमन है उससे सर्वथा व्यावृत्त हुये स्फटिकमणिके उपरक्तपनेका अभाव है, उसीप्रकार अनेकप्रकारके कर्म व इन्द्रियादिके अनुसार जो (आत्माका) अनेक प्रकारका विकारी परिणमन है उससे सर्वथा व्यावृत्त हुये आत्माके (–जो एक उपयोगमात्र

---

१. उपरक्तपना = विकृतपना; मलिनपना; रंजितपना; उपरागयुक्तपना, (उपरागके अर्थके लिये गाथा १२६का फुटनोट देखो)

२. आश्रय = जिसमें स्फटिकमणि रखा हो वह वस्तु।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ पुनरप्यात्मनोऽत्यन्तविभक्तत्वसिद्धये गतिविशिष्टव्यवहारजीवत्वहेतुपर्यायस्वरूपमुपवर्णयति—

अत्थित्तणिच्छिदस्स हि अत्थस्सत्थंतरम्हि संभूदो।
अत्थो पज्जाओ सो संठाणादिप्पभेदेहिं॥१५२॥

अस्तित्वनिश्चितस्य ह्यर्थस्यार्थान्तरे संभूतः।
अर्थः पर्यायः स संस्थानादिप्रभेदैः॥१५२॥

प्राणाः कर्तारः कथमनुचरन्ति कथमाश्रयन्ति। न कथमपीति। ततो ज्ञायते कषायेन्द्रियविजय एव पञ्चेन्द्रियादिप्राणानां विनाशकारणमिति॥१५१॥ एवं 'सपदेसेहिं समग्गो' इत्यादि गाथाष्टकेन सामान्यभेदभावनाधिकारः समाप्तः। अथानन्तरमेकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावनाधिकारः कथ्यते। तत्र विशेषान्तराधिकारचतुष्टयं भवति। तेषु चतुर्षु मध्ये शुभाद्युपयोगत्रयमुख्यत्वेनैकादशगाथापर्यन्तं प्रथमविशेषान्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र चत्वारि स्थलानि भवन्ति। तस्मिन्नादौ नरादिपर्यायैः सह शुद्धात्मस्वरूपस्य पृथक्त्वपरिज्ञानार्थं 'अत्थित्तणिच्छिदस्स हि' इत्यादि यथाक्रमेण गाथात्रयम्। तदनन्तरं तेषां संयोगकारणं 'अप्पा उवओगप्पा' इत्यादि गाथाद्वयम्। तदनन्तरं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुख्यत्वेन 'जो जाणादि जिणिंदे' इत्यादि गाथात्रयम्। तदनन्तरं कायवाङ्मनसां शुद्धात्मना सह भेदकथनरूपेण 'णाहं देहो' इत्यादि गाथात्रयम्। एवमेकादशगाथाभिः

आत्मामें सुनिश्चलतया बसता है उसके-) उपरक्तपनेका अभाव होता है। उस अभावसे पौद्गलिक प्राणोंकी परम्परा अटक जाती है।

इसप्रकार पौद्गलिक प्राणोंका उच्छेद करने योग्य है॥१५१॥

अब फिर भी, आत्माकी अत्यन्त विभक्तता सिद्ध करनेके लिये, व्यवहार जीवत्वके हेतु ऐसी जो गतिविशिष्ट (देव-मनुष्यादि) पर्यायोंका स्वरूप कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अस्तित्वनिश्चितस्य अर्थस्य हि**] अस्तित्वसे निश्चित अर्थका (द्रव्यका) [**अर्थान्तरे संभूतः**] अन्य अर्थमें (द्रव्यमें) उत्पन्न [**अर्थः**] जो अर्थ (-भाव) [**स पर्यायः**] वह पर्याय है—[**संस्थानादिप्रभेदैः**] कि जो संस्थानादि भेदों सहित होती है॥१५२॥

अस्तित्वनिश्चित अर्थनो को अन्य अर्थे ऊपजतो
जे अर्थ ते पर्याय छे, ज्यां भेद संस्थानादिनो. १५२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

स्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चितस्यैकस्यार्थस्य स्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चित एवान्यस्मिन्नर्थे विशिष्टरूपतया संभावितात्मलाभोऽर्थोऽनेकद्रव्यात्मकः पर्यायः। स खलु पुद्गलस्य पुद्गलान्तर इव जीवस्य पुद्गले संस्थानादिविशिष्टतया समुपजायमानः संभाव्यत एव। उपपन्नश्चैवंविधः पर्यायः, अनेकद्रव्यसंयोगात्मत्वेन केवलजीवव्यतिरेकमात्रस्यैकद्रव्यपर्यायस्यास्खलितस्यान्तरवभासनात् ॥१५२॥

अथ पर्यायव्यक्तीर्दर्शयति—

प्रथमविशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा—अथ पुनरपि शुद्धात्मनो विशेषभेदभावनार्थं नरनारकादिपर्यायरूपं व्यवहारजीवत्वहेतुं दर्शयति—**अत्थित्तणिच्छिदस्स** हि चिदानन्दैकलक्षणस्वरूपास्तित्वेन निश्चितस्य ज्ञातस्य हि स्फुटम्। कस्य। **अत्थस्स** परमात्मपदार्थस्य **अत्थंतरम्हि** शुद्धात्मार्थादन्यस्मिन् ज्ञानावरणादिकर्मरूपे अर्थान्तरे **संभूदो** संजात उत्पन्नः **अत्थो** यो नरनारकादिरूपोऽर्थः, **पज्जाओ सो** निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिलक्षणस्वभावव्यञ्जनपर्यायादन्यादृशः सन् विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति स **इत्थंभूतपर्यायो** जीवस्य। **कैः** कृत्वा जातः। **संठाणादिप्पभेदेहिं** संस्थानादिरहितपरमात्मद्रव्यविलक्षणैः संस्थानसंहननशरीरादिप्रभेदैरिति ॥१५२॥ अथ तानेव पर्यायभेदान् व्यक्तीकरोति—**णरणारयतिरियसुरा**

टीका :—स्वलक्षणभूत स्वरूप-अस्तित्वसे निश्चित एक अर्थका (द्रव्यका), स्वलक्षणभूत स्वरूप-अस्तित्वसे ही निश्चित ऐसे अन्य अर्थमें (द्रव्यमें) विशिष्टरूपसे (-भिन्न-भिन्न रूपसे) उत्पन्न होता हुआ जो अर्थ (-भाव), वह अनेकद्रव्यात्मक पर्याय है वह अनेकद्रव्यात्मक पर्याय वास्तवमें, जैसे पुद्गलकी अन्य पुद्गलमें (अनेकद्रव्यात्मक उत्पन्न होती हुई देखी जाती है उसीप्रकार, जीवकी पुद्गलमें संस्थानादिसे विशिष्टतया (-संस्थान इत्यादिके भेद सहित) उत्पन्न होती हुई अनुभवमें अवश्य आती है। और ऐसी पर्याय उपपन्न (-योग्य घटित, न्याययुक्त) है; क्योंकि जो केवल जीवकी व्यतिरेकमात्र है ऐसी अस्खलित एकद्रव्यपर्याय ही अनेक द्रव्योंके संयोगात्मकरूपसे भीतर अवभासित होती है।

भावार्थ :—यद्यपि प्रत्येक द्रव्यका स्वरूप-अस्तित्व सदा ही भिन्न-भिन्न रहता है तथापि, जैसे पुद्गलोंकी अन्य पुद्गलके संबंधसे स्कंधरूप पर्याय होती है उसीप्रकार जीवकी पुद्गलोंके संबंधसे देवादिक पर्याय होती है। जीवकी ऐसी अनेकद्रव्यात्मक देवादिपर्याय अयुक्त नहीं है; क्योंकि भीतर देखने पर, अनेक द्रव्योंका संयोग होने पर भी, जीव कहीं पुद्गलोंके साथ एकरूप पर्याय नहीं करता, परन्तु वहाँ भी मात्र जीवकी (-पुद्गलपर्यायसे भिन्न-) अस्खलित (-अपनेसे च्युत न होनेवाली) एकद्रव्यपर्याय ही सदा प्रवर्तमान रहती है॥१५२॥

अब पर्यायके भेद बतलाते हैं :—

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

णरणारयतिरियसुरा संठाणादीहिं अण्णहा जादा।
पज्जाया जीवाणं उदयादिहिं णामकम्मस्स॥१५३॥

नरनारकतिर्यक्सुराः संस्थानादिभिरन्यथा जाताः।
पर्याया जीवानामुदयादिभिर्नामकर्मणः॥१५३॥

नारकस्तिर्यङ्मनुष्यो देव इति किल पर्याया जीवानाम्। ते खलु नामकर्मपुद्गल-विपाककारणत्वेनानेकद्रव्यसंयोगात्मकत्वात् कुकूलांगारादिपर्याया जातवेदसः क्षोदखिल्व-संस्थानादिभिरिव संस्थानादिभिरन्यथैव भूता भवन्ति॥१५३॥

नरनारकतिर्यग्देवरूपा अवस्थाविशेषाः। संठाणादीहिं अण्णहा जादा संस्थानादिभिरन्यथा जाताः, मनुष्यभवे यत्समचतुरस्रादिसंस्थानमौदारिकशरीरादिकं च तदपेक्षया भवान्तरेऽन्यद्विसदृशं संस्थानादिकं भवति। तेन कारणेन ते नरनारकादिपर्याया अन्यथा जाता भिन्ना भण्यन्ते; न च शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मद्रव्यत्वेन। कस्मात्। तृणकाष्ठपत्राकारादिभेदभिन्नस्याग्नेरिव स्वरूपं तदेव। पज्जाया जीवाणं ते च नरनारकादयो जीवानां विभावव्यञ्जनपर्याया भण्यन्ते। कैः कृत्वा। उदयादिहिं णामकम्मस्स उदयादिभिर्नामकर्मणो निर्दोषपरमात्मशब्दवाच्यान्निर्णामनिर्गोत्रादिलक्षणाच्छुद्धात्मद्रव्याद-न्यादृशैर्नामकर्मजनितैर्बन्धोदयोदीरणादिभिरिति। यत एव ते कर्मोदयजनितास्ततो ज्ञायते

अन्वयार्थ :—[नरनारकतिर्यक्सुराः] मनुष्य, नारक, तिर्यंच और देव—ये [नामकर्मणः उदयादिभिः] नामकर्मके उदयादिकके कारण [जीवानां पर्यायाः] जीवोंकी पर्यायें हैं—[संस्थानादिभिः] जो कि संस्थानादिके द्वारा [अन्यथा जाताः] अन्य-अन्य प्रकारकी होती हैं॥१५३॥

टीका :—नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव—ये जीवोंकी पर्यायें हैं। वे नामकर्मरूप पुद्गलके विपाकके कारण अनेक द्रव्योंकी संयोगात्मक हैं; इसलिये जैसे तृषकी अग्नि और अंगार इत्यादि अग्निकी पर्यायें चूरा और डली इत्यादि आकारोंसे अन्य-अन्य प्रकारकी होती हैं, उसीप्रकार जीवकी वे नारकादि पर्यायें संस्थानादिके द्वारा अन्य-अन्य प्रकारकी ही होती हैं॥१५३॥

तिर्यंच, नारक, देव, नर—अे नामकर्मोदय वडे
छे जीवना पर्याय, जेह विशिष्ट संस्थानादिके. १५३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथात्मनोऽन्यद्रव्यसंकीर्णत्वेऽप्यर्थनिश्चायकमस्तित्वं स्वपरविभागहेतुत्वेनोद्योतयति—

तं सब्भावणिबद्धं दव्वसहावं तिहा समक्खादं।
जाणदि जो सवियप्पं ण मुहदि सो अण्णदवियम्हि॥१५४॥

तं सद्भावनिबद्धं द्रव्यस्वभावं त्रिधा समाख्यातम्।
जानाति यः सविकल्पं न मुह्यति सोऽन्यद्रव्ये॥१५४॥

यत्खलु स्वलक्षणभूतं स्वरूपास्तित्वमर्थनिश्चायकमाख्यातं स खलु द्रव्यस्य स्वभाव एव, सद्भावनिबद्धत्वाद् द्रव्यस्वभावस्य। अथासौ द्रव्यस्वभावो द्रव्यगुणपर्यायत्वेन स्थित्युत्पादव्ययत्वेन च त्रितयीं विकल्पभूमिकामधिरूढः परिज्ञायमानः परद्रव्ये मोहमपोह्य स्वपरविभागहेतुर्भवति,

---

शुद्धात्मस्वरूपं न संभवन्तीति॥१५३॥ अथ स्वरूपास्तित्वलक्षणं परमात्मद्रव्यं योऽसौ जानाति स परद्रव्ये मोहं न करोतीति प्रकाशयति—**जाणदि** जानाति। **जो** यः कर्ता। **कम्**। **तं** पूर्वोक्तं **दव्वसहावं** परमात्मद्रव्यस्वभावम्। किंविशिष्टम्। **सब्भावणिबद्धं** स्वभावः स्वरूपसत्ता तत्र निबद्धमाधीनं तन्मयं

अब, आत्माका अन्य द्रव्यके साथ संयुक्तपना होने पर भी [१]अर्थ निश्चायक अस्तित्वको स्व-पर विभागके हेतुके रूपमें समझाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यः] जो जीव [तं] उस (पूर्वोक्त) [सद्भावनिबद्धं] अस्तित्वनिष्पन्न, [त्रिधा समाख्यातं] तीन प्रकारसे कथित, [सविकल्पं] भेदोंवाले [द्रव्यस्वभावं] द्रव्यस्वभावको [जानाति] जानता है, [सः] वह [अन्यद्रव्ये] अन्य द्रव्यमें [न मुह्यति] मोहको प्राप्त नहीं होता॥१५४॥

टीका :—जो, द्रव्यको निश्चित करनेवाला, स्वलक्षणभूत स्वरूप-अस्तित्व कहा गया है वह वास्तवमें द्रव्यका स्वभाव ही है; क्योंकि द्रव्यका स्वभाव अस्तित्वनिष्पन्न (अस्तित्वका बना हुआ) है। द्रव्य-गुण-पर्यायरूपसे तथा ध्रौव्य-उत्पाद-व्ययरूपसे [२]त्रयात्मक भेदभूमिकामें आरूढ़ ऐसा यह द्रव्यस्वभाव ज्ञात होता हुआ, परद्रव्यके प्रति मोहको दूर करके

---

१. अर्थ निश्चायक = द्रव्यका निश्चय करनेवाला; (द्रव्यका निर्णय करनेका साधन जो स्वरूपास्तित्व है वह स्व-परका भेद करनेमें साधनभूत है, इसप्रकार इस गाथामें समझाते हैं।)

२. त्रयात्मक = तीनस्वरूप; तीनके समूहरूप (द्रव्यका स्वभाव द्रव्य, गुण और पर्याय ऐसे तीन भेदोंवाला तथा ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय ऐसे तीन भेदोंवाला है।)

अस्तित्वथी निष्पन्न द्रव्यस्वभावने त्रिविकल्पने
जे जाणतो, ते आतमा नहि मोह परद्रव्ये लहे. १५४.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

ततः स्वरूपास्तित्वमेव स्वपरविभागसिद्धये प्रतिपदमवधार्यम्। तथा हि—यच्चेतनत्वान्वयलक्षणं द्रव्यं, यश्चेतनाविशेषत्वलक्षणो गुणो, यश्चेतनत्वव्यतिरेकलक्षणः पर्यायस्तत्त्रयात्मकं, या पूर्वोत्तरव्यतिरेकस्पर्शिना चेतनत्वेन स्थितिर्यावुत्तरपूर्वव्यतिरेकत्वेन चेतनस्योत्पादव्ययौ तत्त्रयात्मकं च स्वरूपास्तित्वं यस्य नु स्वभावोऽहं स खल्वयमन्यः। यच्चाचेतनत्वान्वयलक्षणं द्रव्यं, योऽचेतनाविशेषत्वलक्षणो गुणो, योऽचेतनत्वव्यतिरेकलक्षणः पर्यायस्तत्त्रयात्मकं, या पूर्वोत्तरव्यतिरेकस्पर्शिनाचेतनत्वेन स्थितिर्यावुत्तरपूर्वव्यतिरेकत्वेनाचेतनस्योत्पादव्ययौ तत्त्रयात्मकं च स्वरूपास्तित्वं यस्य तु स्वभावः पुद्गलस्य स खल्वयमन्यः। नास्ति मे मोहोऽस्ति स्वपरविभागः॥१५४॥

सद्भावनिबद्धम्। पुनरपि किंविशिष्टम्। तिहा समक्खादं त्रिधा समाख्यातं कथितम्। केवलज्ञानादयो गुणाः सिद्धत्वादिविशुद्धपर्यायास्तदुभयाधारभूतं परमात्मद्रव्यत्वमित्युक्तलक्षणत्रयात्मकं तथैव शुद्धोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयात्मकं च यत्पूर्वोक्तं स्वरूपास्तित्वं तेन कृत्वा त्रिधा सम्यगाख्यातं कथितं प्रतिपादितम्। पुनरपि कथंभूतं आत्मस्वभावम्। सवियप्पं सविकल्पं पूर्वोक्तद्रव्यगुणपर्यायरूपेण सभेदम्। य इत्थंभूतमात्मस्वभावं जानाति, ण मुहदि सो अण्णदवियम्हि न मुह्यति सोऽन्यद्रव्ये, स तु

स्व-परके विभागका हेतु होता है, इसलिये स्वरूप-अस्तित्व ही स्व-परके विभागकी सिद्धिके लिये पद-पद पर अवधारना (लक्ष्ययें लेना) चाहिये। वह इसप्रकार है :—

(१) चेतनत्वका अन्वय जिसका लक्षण है ऐसा जो द्रव्य, (२) चेतनाविशेषत्व (चेतनाका विशेषपना) जिसका लक्षण है ऐसा जो गुण और (३) चेतनत्वका व्यतिरेक जिसका लक्षण है ऐसी जो पर्याय—यह त्रयात्मक (ऐसा स्वरूप-अस्तित्व), तथा (१) [१]पूर्व और उत्तर व्यतिरेकको स्पर्शकरनेवाले चेतनत्वरूपसे जो ध्रौव्य और (२-३) चेतनके उत्तर तथा पूर्व व्यतिरेकरूपसे जो उत्पाद और व्यय—यह त्रयात्मक (ऐसा) स्वरूप-अस्तित्व जिसका स्वभाव है ऐसा मैं वास्तवमें यह अन्य हूँ, (अर्थात् मैं पुद्गलसे ये भिन्न रहा)। और (१) अचेतनत्वका अन्वय जिसका लक्षण है ऐसा जो द्रव्य, (२) अचेतना विशेषत्व जिसका लक्षण है ऐसा जो गुण और (३) अचेतनत्वका व्यतिरेक जिसका लक्षण है ऐसी जो पर्याय—यह त्रयात्मक (ऐसा स्वरूपअस्तित्व) तथा (१) पूर्व और उत्तर व्यतिरेकको स्पर्शकरनेवाले अचेतनत्वरूपसे जो ध्रौव्य और (२-३) अचेतनके उत्तर तथा पूर्व व्यतिरेकरूपसे जो उत्पाद और व्यय—यह त्रयात्मक ऐसा स्वरूप-अस्तित्व जिस पुद्गलका स्वभाव है वह वास्तवमें (मुझसे) अन्य है। (इसलिये) मुझे मोह नहीं है; स्व-परका विभाग है।

---

१. पूर्व अर्थात् पहलेका; और उत्तर अर्थात् बादका। (चेतन पूर्व और उत्तरकी दोनों पर्यायोंको स्पर्श करता है; इस अपेक्षासे ध्रौव्य है; बादकी अर्थात् वर्तमान पर्यायकी अपेक्षासे उत्पाद है और पहलेकी पर्यायकी अपेक्षासे व्यय है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथात्मनोऽत्यन्तविभक्तत्वाय परद्रव्यसंयोगकारणस्वरूपमालोचयति—

अप्पा उवओगप्पा उवओगो णाणदंसणं भणिदो।
सो वि सुहो असुहो वा उवओगो अप्पणो हवदि॥१५५॥

आत्मा उपयोगात्मा उपयोगो ज्ञानदर्शनं भणितः।
सोऽपि शुभोऽशुभो वा उपयोग आत्मनो भवति॥१५५॥

भेदज्ञानी विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावमात्मतत्त्वं विहाय देहरागादिपरद्रव्ये मोहं न गच्छतीत्यर्थः॥१५४॥ एवं नरनारकादिपर्यायैः सह परमात्मनो विशेषभेदकथनरूपेण प्रथमस्थले गाथात्रयं गतम्। अथात्मनः पूर्वोक्तप्रकारेण नरनारकादिपर्यायैः सह भिन्नत्वपरिज्ञानं जातं, तावदिदानीं तेषां संयोगकारणं कथ्यते—**अप्पा** आत्मा भवति। कथंभूतः। **उवओगप्पा** चैतन्यानुविधायी योऽसावुपयोगस्तेन निर्वृत्तत्वादुपयोगात्मा। **उवओगो णाणदंसणं भणिदो** स चोपयोगः सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनमिति भणितः। **सो वि सुहो** सोऽपि ज्ञानदर्शनोपयोगो धर्मानुरागरूपः **शुभः**, **असुहो** विषयानुरागरूपो

भावार्थ :—मनुष्य, देव इत्यादि अनेकद्रव्यात्मक पर्यायोंमें भी जीवका स्वरूपअस्तित्व और प्रत्येक परमाणुका स्वरूप-अस्तित्व सर्वथा भिन्न-भिन्न है। सूक्ष्मतासे देखने पर वहाँ जीव और पुद्गलका स्वरूप-अस्तित्व (अर्थात् अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय) स्पष्टतया भिन्न जाना जा सकता है। स्व-परका भेद करनेके लिये जीवको इस स्वरूपास्तित्वको पद-पद पर लक्ष्यमें लेना योग्य है। यथा-यह (जाननेमें आता हुआ) चेतन द्रव्य-गुण-पर्याय और चेतन ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय जिसका स्वभाव है ऐसा मैं इस (पुद्गल) से भिन्न रहा; और यह अचेतन द्रव्य-गुण-पर्याय तथा अचेतन ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय जिसका स्वभाव है ऐसा पुद्गल यह (मुझसे) भिन्न रहा। इसलिये मुझे परके प्रति मोह नहीं है; स्व-परका भेद है॥१५४॥

अब, आत्माको अत्यन्त विभक्त करनेके लिये परद्रव्यके संयोगके कारणका स्वरूप कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**आत्मा उपयोगात्मा**] आत्मा उपयोगात्मक है; [**उपयोगः**] उपयोग [**ज्ञानदर्शनं भणितः**] ज्ञान-दर्शन कहा गया है; [**अपि**] और [**आत्मनः**] आत्माका [**सः उपयोगः**] वह उपयोग [**शुभः अशुभः वा**] शुभ अथवा अशुभ [**भवति**] होता है॥१५५॥

छे आतमा उपयोगरूप, उपयोग दर्शन-ज्ञान छे;
उपयोग अे आत्मा तणो शुभ वा अशुभरूप होय छे. १५५.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

आत्मनो हि परद्रव्यसंयोगकारणमुपयोगविशेषः। उपयोगो हि तावदात्मनः स्वभाव-श्चैतन्यानुविधायिपरिणामत्वात्। स तु ज्ञानं दर्शनं च, साकारनिराकारत्वेनोभयरूपत्वा-च्चैतन्यस्य। अथायमुपयोगो द्वेधा विशिष्यते शुद्धाशुद्धत्वेन। तत्र शुद्धो निरुपरागः, अशुद्धः सोपरागः। स तु विशुद्धिसंक्लेशरूपत्वेन द्वैविध्यादुपरागस्य द्विविधः शुभोऽशुभश्च॥१५५॥

अथात्र क उपयोगः परद्रव्यसंयोगकारणमित्यावेदयति—

उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचयं जादि।
असुहो वा तध पावं तेसिमभावे ण चयमत्थि॥१५६॥

द्वेषमोहरूपश्चाशुभः। वा वा शब्देन शुभाशुभानुरागरहितत्वेन शुद्धः। उवओगो अप्पणो हवदि इत्थं-भूतस्त्रिलक्षण उपयोग आत्मनः संबन्धी भवतीत्यर्थः॥१५५॥ अथोपयोगस्तावन्नरनारकादिपर्याय-कारणभूतस्य कर्मरूपस्य परद्रव्यस्य संयोगकारणं भवति। तावदिदानीं कस्य कर्मणः क उपयोगः कारणं

टीका :—वास्तवमें आत्माको परद्रव्यके संयोगका कारण [१]उपयोगविशेष है। प्रथम तो उपयोग वास्तवमें आत्माका स्वभाव है क्योंकि वह चैतन्य-अनुविधायी (उपयोग चैतन्यका अनुसरण करके होनेवाला) परिणाम है। और वह उपयोग ज्ञान तथा दर्शन है, क्योंकि चैतन्य [२]साकार और [३]निराकार ऐसा उभयरूप है। अब इस उपयोगके शुद्ध और अशुद्ध ऐसे दो भेद किये गये हैं। उसमें, शुद्ध उपयोग निरुपराग (-निर्विकार) है; और अशुद्ध उपयोग सोपराग (-सविकार) है। और वह अशुद्ध उपयोग शुभ और अशुभ ऐसे दो प्रकारका है, क्योंकि उपराग विशुद्धिरूप और संक्लेशरूप ऐसा दो प्रकारका है (अर्थात् विकार मन्दकषायरूप और तीव्रकषायरूप ऐसा दो प्रकारका है)।

भावार्थ :—आत्मा उपयोगस्वरूप है। प्रथम तो उपयोगके दो भेद हैं—शुद्ध और अशुद्ध। और फिर अशुद्ध उपयोगके दो भेद हैं, शुभ तथा अशुभ॥१५५॥

अब कहते हैं कि इनमें कौनसा उपयोग परद्रव्यके संयोगका कारण है :—

---

१. उपयोगविशेष = उपयोगका भेद, प्रकार या अमुक प्रकारका उपयोग। (अशुद्धोपयोग परद्रव्यके संयोगका कारण है; यह १५६ वीं गाथामें कहेंगे।)

२. साकार = आकारवाला या भेदवाला; सविकल्प; विशेष।

३. निराकार = आकार रहित; भेदरहित; निर्विकल्प; सामान्य।

उपयोग जो शुभ होय, संचय थाय पुण्य तणो तहीं,
ने पापसंचय अशुभथी; ज्यां उभय नहि संचय नहीं. १५६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

उपयोगो यदि हि शुभः पुण्यं जीवस्य संचयं याति।
अशुभो वा तथा पापं तयोरभावे न चयोऽस्ति॥१५६॥

उपयोगो हि जीवस्य परद्रव्यसंयोगकारणमशुद्धः। स तु विशुद्धिसंक्लेशरूपोपरागवशात् शुभाशुभत्वेनोपात्तद्वैविध्यः, पुण्यपापत्वेनोपात्तद्वैविध्यस्य परद्रव्यस्य संयोगकारणत्वेन निर्वर्तयति। यदा तु द्विविधस्याप्यस्याशुद्धस्याभावः क्रियते तदा खलूपयोगः शुद्ध एवावतिष्ठते। स पुनरकारणमेव परद्रव्यसंयोगस्य॥१५६॥

अथ शुभोपयोगस्वरूपं प्ररूपयति—

भवतीति विचारयति—उवओगो जदि हि सुहो उपयोगो यदि चेत् हि स्फुटं शुभो भवति। पुण्णं जीवस्स संचयं जादि तदा काले द्रव्यपुण्यं कर्तृ जीवस्य संचयमुपचयं वृद्धिं याति बध्यत इत्यर्थः। असुहो वा तह पावं अशुभोपयोगो वा तथा तेनैव प्रकारेण पुण्यवद्द्रव्यपापं संचयं याति। तेसिमभावे ण चयमत्थि तयोरभावे न चयोऽस्ति। निर्दोषिनिजपरमात्मभावनारूपेण शुद्धोपयोगबलेन यदा तयोर्द्वयोः शुभाशुभोपयोगयोरभावः क्रियते तदोभयः संचयः कर्मबन्धो नास्तीत्यर्थः॥१५६॥ एवं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयस्य सामान्यकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ विशेषेण शुभोपयोगस्वरूपं

अन्वयार्थ :—[उपयोगः] उपयोग [यदि हि] यदि [शुभः] शुभ हो [जीवस्य] तो जीवके [पुण्यं] पुण्य [संचयं याति] संचयको प्राप्त होता है [तथा वा अशुभः] और यदि अशुभ हो [पापं] तो पाप संचय होता है। [तयोः अभावे] उनके (दोनोंके) अभावमें [चयः नास्ति] संचय नहीं होता॥१५६॥

टीका :—जीवको परद्रव्यके संयोगका कारण अशुद्ध उपयोग है। और वह विशुद्धि तथा संक्लेशरूप उपरागके कारण शुभ और अशुभरूपसे द्विविधताको प्राप्त होता हुआ, जो पुण्य और पापरूपसे द्विविधताको प्राप्त होता है ऐसा जो परद्रव्य उसके संयोगके कारणरूपसे काम करता है। (उपराग मन्दकषायरूप और तीव्रकषायरूपसे दो प्रकारका है, इसलिये अशुद्ध उपयोग भी शुभ-अशुभके भेदसे दो प्रकारका है; उसमेंसे शुभोपयोग पुण्यरूप परद्रव्यके संयोगका कारण होता है और अशुभोपयोग पापरूप परद्रव्यके संयोगका कारण होता है।) किन्तु जब दोनों प्रकारके अशुद्धोपयोगका अभाव किया जाता है तब वास्तवमें उपयोग शुद्ध ही रहता है; और वह तो परद्रव्यके संयोगका अकारण ही है। (अर्थात् शुद्धोपयोग परद्रव्यके संयोगका कारण नहीं है)॥१५६॥

अब शुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं :—

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स॥१५७॥

यो जानाति जिनेन्द्रान् पश्यति सिद्धांस्तथैवानागारान्।
जीवेषु सानुकम्प उपयोगः स शुभस्तस्य॥१५७॥

विशिष्टक्षयोपशमदशाविश्रान्तदर्शनचारित्रमोहनीयपुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिगृहीत-शोभनोपरागत्वात् परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरार्हत्सिद्धसाधुश्रद्धाने समस्तभूतग्रामानुकम्पाचरणे च प्रवृत्तः शुभ उपयोगः॥१५७॥

अथाशुभोपयोगस्वरूपं प्ररूपयति—

व्याख्याति—जो जाणादि जिणिंदे यः कर्ता जानाति। कान्। अनन्तज्ञानादिचतुष्टयसहितान् क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितांश्च जिनेन्द्रान्। पेच्छदि सिद्धे पश्यति। कान्। ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मरहितान्सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भूतानन्तगुणसहितांश्च सिद्धान्। तहेव अणगारे तथैवानागारान्। अनागारशब्दवाच्यान्निश्चयव्यवहारपञ्चाचारादियथोक्तलक्षणानाचार्योपाध्यायसाधून्। जीवेसु साणुकंपो त्रसस्थावरजीवेषु सानुकम्पः सदयः। उवओगो सो सुहो स इत्थंभूत उपयोगः शुभो भण्यते। स च कस्य भवति। तस्स तस्य पूर्वोक्त-

---

अन्वयार्थ :—[यः] जो [जिनेन्द्रान्] जिनेन्द्रोंको [जानाति] जानता है, [सिद्धान् तथैव अनागारान्] सिद्धों तथा अनागारोंकी (आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुओंकी) [पश्यति] श्रद्धा करता है, [जीवेषु सानुकम्पः] और जीवोंके प्रति अनुकम्पायुक्त है, [तस्य] उसके [सः] वह [शुभः उपयोगः] शुभ उपयोग है॥१५७॥

टीका :—विशिष्ट (विशेष प्रकारकी) क्षयोपशमदशामें रहनेवाले दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयरूप पुद्गलोंके अनुसार परिणतिमें लगा होनेसे शुभ [१]उपरागका ग्रहण किया होनेसे, जो (उपयोग) परम भट्टारक महा देवाधिदेव, परमेश्वर ऐसे अर्हंत, सिद्ध और साधुकी श्रद्धा करनेमें तथा समस्त जीवसमूहकी अनुकम्पाका आचरण करनेमें प्रवृत्त है, वह शुभोपयोग है॥१५७॥

अब अशुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं :—

---

१. उपरागका अर्थ गाथा १२६के टिप्पणमें देखें।

जाणे जिनोने जेह, श्रद्धे सिद्धने, अणगारने,
जे सानुकंप जीवो प्रति, उपयोग छे शुभ तेहने. १५७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो॥१५८॥

विषयकषायावगाढो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुतः।
उग्र उन्मार्गपर उपयोगो यस्य सोऽशुभः॥१५८॥

विशिष्टोदयदशाविश्रान्तदर्शनचारित्रमोहनीयपुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिगृहीताशोभनोपरागत्वात्परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरार्हत्सिद्धसाधुभ्योऽन्यत्रोन्मार्गश्रद्धाने विषयकषायदुःश्रवणदुराशयदुष्टसेवनोग्रताचरणे च प्रवृत्तोऽशुभोपयोगः॥१५८॥

लक्षणजीवस्येत्यभिप्रायः॥१५७॥ अथाशुभोपयोगस्वरूपं निरूपयति—विसयकसाओगाढो विषयकषायावगाढः। दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुतः। उग्गो उग्रः। उम्मग्गपरो उन्मार्गपरः। उवओगो एवं विशेषणचतुष्टययुक्त उपयोगः परिणामः जस्स यस्य जीवस्य भवति सो असुहो स उपयोगस्त्वशुभो भण्यते, अभेदेन पुरुषो वा। तथा हि—विषयकषायरहितशुद्धचैतन्यपरिणतेः प्रतिपक्षभूतो विषयकषायावगाढो विषयकषायपरिणतः। शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादिका श्रुतिः सुश्रुतिस्तद्विलक्षणा दुःश्रुतिः मिथ्याशास्त्रश्रुतिर्वा; निश्चिन्तात्मध्यानपरिणतं सुचित्तं, तद्विनाशकं दुश्चित्तं, स्वपरनिमित्तेष्टकामभोगचिन्तापरिणतं रागाद्यपध्यानं वा; परमचैतन्यपरिणतेर्विनाशिका दुष्टगोष्ठी, तत्प्रतिपक्षभूतकुशीलपुरुषगोष्ठी वा। इत्थंभूतदुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठीभिर्युतो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुक्तः। परमोपशम-

---

अन्वयार्थ :—[**यस्य उपयोगः**] जिसका उपयोग [**विषयकषायावगाढः**] विषयकषायमें अवगाढ़ (मग्न) है, [**दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुतः**] कुश्रुति, कुविचार और कुसंगतिमें लगा हुआ है, [**उग्रः**] उग्र है तथा [**उन्मार्गपरः**] उन्मार्गमें लगा हुआ है, [**सः अशुभः**] उसका वह अशुभोपयोग है॥१५८॥

टीका :—विशिष्ट उदयदशामें रहनेवाले दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयरूप पुद्गलोंके अनुसार परिणतिमें लगा होनेसे अशुभ उपरागको ग्रहण करनेसे, जो (उपयोग) परम भट्टारक, महा देवाधिदेव, परमेश्वर ऐसे अर्हंत, सिद्ध और साधुके अतिरिक्त अन्य—उन्मार्गकी—श्रद्धा करनेमें तथा विषय, कषाय, कुश्रवण, कुविचार, कुसंग और उग्रताका आचरण करनेमें प्रवृत्त है, वह अशुभोपयोग है॥१५८॥

कुविचार–संगति–श्रवणयुत, विषये कषाये मग्न जे,
जे उग्र ने उन्मार्गपर, उपयोग तेह अशुभ छे. १५८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ परद्रव्यसंयोगकारणविनाशमभ्यस्यति—

असुहोवओगरहिदो सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्हि।
होज्झं मज्झत्थोऽहं णाणप्पगमप्पगं झाए॥१५९॥

अशुभोपयोगरहितः शुभोपयुक्तो न अन्यद्रव्ये।
भवन्मध्यस्थोऽहं ज्ञानात्मकमात्मकं ध्यायामि॥१५९॥

यो हि नामायं परद्रव्यसंयोगकारणत्वेनोपन्यस्तोऽशुद्ध उपयोगः स खलु मन्द-तीव्रोदयदशाविश्रान्तपरद्रव्यानुवृत्तितन्त्रत्वादेव प्रवर्तते, न पुनरन्यस्मात्। ततोऽहमेष सर्वस्मिन्नेव परद्रव्ये मध्यस्थो भवामि। एवं भवंश्चाहं परद्रव्यानुवृत्तितन्त्रत्वाभावात् शुभेनाशुभेन वाशुद्धोप-

---

भावपरिणतपरमचैतन्यस्वभावात्प्रतिकूलः उग्रः। वीतरागसर्वज्ञप्रणीतनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाद्विलक्षण उन्मार्गपरः। इत्थंभूतविशेषणचतुष्टयसहित उपयोगः परिणामः तत्परिणतपुरुषो वेत्यशुभोपयोगो भण्यत इत्यर्थः॥१५८॥ अथ शुभाशुभरहितशुद्धोपयोगं प्ररूपयति—**असुहोवओगरहिदो** अशुभोपयोगरहितो भवामि। स कः अहं अहं कर्ता। पुनरपि कथंभूतः। **सुहोवजुत्तो ण** शुभोपयोगयुक्तः परिणतो न भवामि। क्व विषयेऽसौ शुभोपयोगः। **अण्णदवियम्हि** निजपरमात्मद्रव्यादन्यद्रव्ये। तर्हि कथंभूतो भवामि। **होज्झं मज्झत्थो** जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रनिन्दाप्रशंसादिविषये मध्यस्थो भवामि। इत्थंभूतः सन् किं करोमि। **णाणप्पगमप्पगं झाए** ज्ञानात्मकमात्मानं ध्यायामि। ज्ञानेन निर्वृत्तं ज्ञानात्मकं

अब, परद्रव्यके संयोगका जो कारण (अशुद्धोपयोग) उसके विनाशका अभ्यास बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अन्यद्रव्ये**] अन्य द्रव्यमें [**मध्यस्थः**] मध्यस्थ [**भवन्**] होता हुआ [**अहम्**] मैं [**अशुभोपयोगरहितः**] अशुभोपयोग रहित होता हुआ तथा [**शुभोपयुक्तः न**] शुभोपयुक्त नहीं होता हुआ [**ज्ञानात्मकम्**] ज्ञानात्मक [**आत्मकं**] आत्माको [**ध्यायामि**] ध्याता हूँ॥१५९॥

टीका :—जो यह, (१५६ वीं गाथामें) परद्रव्यमेके संयोगके कारणरूपमें कहा गया अशुद्धोपयोग है, वह वास्तवमें मन्द-तीव्र उदयदशामें रहनेवाले परद्रव्यानुसार परिणतिके आधीन होनेसे ही प्रवर्तित होता है, किन्तु अन्य कारणसे नहीं। इसलिये यह मैं समस्त परद्रव्यमें मध्यस्थ होऊँ। और इसप्रकार मध्यस्थ होता हुआ मैं परद्रव्यानुसार परिणतिके आधीन न होनेसे शुभ

मध्यस्थ परद्रव्ये थतो, अशुभोपयोग रहितने
शुभमां अयुक्त, हुँ ध्याउँ छुं निज आत्मने ज्ञानात्मने. १५९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

योगेन निर्मुक्तो भूत्वा केवलस्वद्रव्यानुवृत्तिपरिग्रहात् प्रसिद्धशुद्धोपयोग उपयोगात्मनात्मन्येव नित्यं निश्चलमुपयुक्तस्तिष्ठामि। एष मे परद्रव्यसंयोगकारणविनाशाभ्यासः ॥१५९॥

अथ शरीरादावपि परद्रव्ये माध्यस्थं प्रकटयति—

णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण ण कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं॥१६०॥

नाहं देहो न मनो न चैव वाणी न कारणं तेषाम्।
कर्ता न न कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम्॥१६०॥

केवलज्ञानान्तर्भूतानन्तगुणात्मकं निजात्मानं शुद्धध्यानप्रतिपक्षभूतसमस्तमनोरथरूपचिन्ताजालत्यागेन ध्यायामीति शुद्धोपयोगलक्षणं ज्ञातव्यम्॥१५९॥ एवं शुभाशुभशुद्धोपयोगविवरणरूपेण तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम्। अथ देहमनोवचनविषयेऽत्यन्तमाध्यस्थ्यमुद्योतयति—**णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी** नाहं देहो न मनो न चैव वाणी। मनोवचनकायव्यापाररहितात्परमात्मद्रव्याद्भिन्नं यन्मनोवचनकायत्रयं निश्चयनयेन तन्नाहं भवामि। ततः कारणात्तत्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्तमध्यस्थोऽस्मि। **ण कारणं तेसिं** न कारणं तेषाम्। निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतपरिणतेर्यदुपादानकारणभूतमात्मद्रव्यं तद्विलक्षणो मनोवचनकायानामुपादानकारणभूतः पुद्गलपिण्डो न भवामि। ततः कारणात्तत्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्त-मध्यस्थोऽस्मि। **कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं** कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम्।

अथवा अशुभ ऐसा जो अशुद्धोपयोग उससे मुक्त होकर, मात्र स्वद्रव्यानुसार परिणतिको ग्रहण करनेसे जिसको शुद्धोपयोग सिद्ध हुआ है ऐसा होता हुआ, उपयोगात्मा द्वारा (उपयोगरूप निज स्वरूपसे) आत्मामें ही सदा निश्चलरूपसे उपयुक्त रहता हूँ। यह मेरा परद्रव्यके संयोगके कारणके विनाशका अभ्यास है॥१५९॥

अब शरीरादि परद्रव्यके प्रति भी मध्यस्थपना प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[अहं न देहः] मैं न देह हूँ, [न मनः] न मन हूँ, [च एव] और [न वाणी] न वाणी हूँ; [तेषां कारण न] उनका कारण नहीं हूँ [कर्ता न] कर्ता नहीं हूँ, [कारयिता न] करानेवाला नहीं हूँ; [कर्तृणां अनुमन्ता न एव] (और) कर्ताका अनुमोदक नहीं हूँ॥१६०॥

हुं देह नहि, वाणी न, मन नहि, तेमनुं कारण नहीं,
कर्ता न, कारयिता न, अनुमंता हूँ कर्तानो नहीं. १६०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

शरीरं च वाचं च मनश्च परद्रव्यत्वेनाहं प्रपद्ये, ततो न तेषु कश्चिदपि मम पक्षपातोऽस्ति, सर्वत्राप्यहमत्यन्तं मध्यस्थोऽस्मि। तथा हि—न खल्वहं शरीरवाङ्मसां स्वरूपाधारभूतमचेतनद्रव्यमस्मि; तानि खलु मां स्वरूपाधारमन्तरेणाप्यात्मनः स्वरूपं धारयन्ति। ततोऽहं शरीरवाङ्मनःपक्षपातमपास्यात्यन्तं मध्यस्थोऽस्मि। न च मे शरीरवाङ्मनःकारणाचेतनद्रव्यत्वमस्ति; तानि खलु मां कारणमन्तरेणापि कारणवन्ति भवन्ति। ततोऽहं तत्कारणत्वपक्षपातमपास्यास्ययमत्यन्तं मध्यस्थः। न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारकाचेतनद्रव्यत्वमस्ति; तानि खलु मां कर्तारमन्तरेणापि क्रियमाणानि। ततोऽहं तत्कर्तृत्वपक्षपातमपास्यास्ययमत्यन्तं मध्यस्थः। न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारकाचेतनद्रव्यप्रयोजकत्वमस्ति; तानि खलु मां कारकप्रयोजकमन्तरेणापि क्रियमाणानि। ततोऽहं तत्कारकप्रयोजकत्वपक्षपातमपास्यास्ययमत्यन्तं मध्यस्थः। न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारका-

---

स्वशुद्धात्मभावनाविषये यत्कृतकारितानुमतस्वरूपं तद्विलक्षणं यन्मनोवचनकायविषये कृतकारितानुमतस्वरूपं तन्नाहं भवामि। ततः कारणात्तत्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्तमध्यस्थोऽस्मीति तात्पर्यम्॥१६०॥

टीका :—मैं शरीर, वाणी और मनको परद्रव्यके रूपमें समझता हूँ, इसलिये मुझे उनके प्रति कुछ भी पक्षपात नहीं है। मैं उन सबके प्रति अत्यन्त मध्यस्थ हूँ। वह इसप्रकार :—

वास्तवमें शरीर, वाणी और मनके स्वरूपका आधारभूत ऐसा अचेतन द्रव्य नहीं हूँ, मैं स्वरूपाधार (हुए) विना भी वे वास्तवमें अपने स्वरूपको धारण करते हैं। इसलिये मैं शरीर, वाणी और मनका पक्षपात छोड़कर अत्यन्त मध्यस्थ हूँ।

और मैं शरीर, वाणी तथा मनका कारण ऐसा अचेतन द्रव्य नहीं हूँ। मैं कारण (हुए) विना भी वे वास्तवमें कारणवान् हैं। इसलिये उनके कारणपनेका पक्षपात छोड़कर यह मैं अत्यन्त मध्यस्थ हूँ।

और मैं स्वतंत्ररूपसे शरीर, वाणी तथा मनका कर्ता ऐसा अचेतन द्रव्य नहीं हूँ; मैं कर्ता (हुए) विना भी वे वास्तवमें किये जाते हैं। इसलिये उनके कर्तृत्वका पक्षपात छोड़कर यह मैं अत्यन्त मध्यस्थ हूँ।

और मैं, स्वतन्त्ररूपसे शरीर, वाणी तथा मनका कारक (कर्ता) ऐसा जो अचेतन द्रव्य है उसका प्रयोजक नहीं हूँ; मैं कर्ता-प्रयोजक विना भी (अर्थात् मैं उनके कर्ताका प्रयोजक—उनका करानेवाला-हुए विना भी) वे वास्तवमें किये जाते हैं। इसलिये यह मैं उनके कर्ताके प्रयोजकपनेका पक्षपात छोड़कर अत्यन्त मध्यस्थ हूँ।

और मैं स्वतन्त्ररूपसे शरीर, वाणी तथा मनका कारक जो अचेतन द्रव्य है, उसका

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

चेतनद्रव्यानुज्ञातृत्वमस्ति; तानि खलु मां कारकानुज्ञातारमन्तरेणापि क्रियमाणानि। ततोऽहं तत्कारकानुज्ञातृत्वपक्षपातमपास्यास्मयमत्यन्तं मध्यस्थः॥१६०॥

अथ शरीरवाङ्मनसां परद्रव्यत्वं निश्चिनोति—

देहो य मणो वाणी पोग्गलदव्वप्पग त्ति णिद्दिट्ठा।
पोग्गलदव्वं हि पुणो पिंडो परमाणुदव्वाणं॥१६१॥

देहश्च मनो वाणी पुद्गलद्रव्यात्मका इति निर्दिष्टाः।
पुद्गलद्रव्यमपि पुनः पिण्डः परमाणुद्रव्याणाम्॥१६१॥

शरीरं च वाक् च मनश्च त्रीण्यपि परद्रव्यं, पुद्गलद्रव्यात्मकत्वात्। पुद्गलद्रव्यत्वं तु तेषां पुद्गलद्रव्यस्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चितत्वात्। तथाविधपुद्गलद्रव्यं त्वनेकपरमाणु-

---

अथ कायवाङ्मनसां शुद्धात्मस्वरूपात्परद्रव्यत्वं व्यवस्थापयति—देहो य मणो वाणी पोग्गलदव्वप्पग त्ति णिद्दिट्ठा देहश्च मनो वाणी तिस्रोऽपि पुद्गलद्रव्यात्मका इति निर्दिष्टाः। कस्मात्। व्यवहारेण जीवेन सहैकत्वेपि निश्चयेन परमचैतन्यप्रकाशपरिणतेर्भिन्नत्वात्। पुद्गलद्रव्यं किं भण्यते। पोग्गलदव्वं हि पुणो पिंडो परमाणुदव्वाणं पुद्गलद्रव्यं हि स्फुटं पुनः पिण्डः समूहो भवति। केषाम्। परमाणुद्रव्याणामित्यर्थः॥१६१॥ अथात्मनः शरीररूपपरद्रव्याभावं तत्कर्तृत्वाभावं च निरूपयति—णाहं पुग्गलमइओ

अनुमोदक नहीं हूँ; मैं कर्ता-अनुमोदक विना भी (मैं उनके कर्ताका अनुमोदक हुए विना भी) वे वास्तवमें किये जाते हैं। इसलिये उनके कर्ताके अनुमोदकपनेका पक्षपात छोड़कर यह मैं अत्यन्त मध्यस्थ हूँ॥१६०॥

अब, शरीर, वाणी और मनका परद्रव्यपना निश्चित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[देहः च मनः वाणी] देह, मन और वाणी [पुद्गलद्रव्यात्मकाः] पुद्गलद्रव्यात्मक [इति निर्दिष्टाः] हैं, ऐसा (वीतरागदेवने) कहा है [अपि पुनः] और [पुद्गल द्रव्यं] वे पुद्गलद्रव्य [परमाणुद्रव्याणां पिण्डः] परमाणुद्रव्योंका पिण्ड है॥१६१॥

टीका :—शरीर, वाणी और मन तीनों ही परद्रव्य हैं, क्योंकि वे पुद्गलद्रव्यात्मक हैं। उनके पुद्गलद्रव्यपना है, क्योंकि वे पुद्गलद्रव्यके स्वलक्षणभूत

मन, वाणी तेम ज देह पुद्गलद्रव्यरूप निर्दिष्ट छे;
ने तेह पुद्गलद्रव्य बहु परमाणुओनो पिंड छे. १६१.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

द्रव्याणामेकपिण्डपर्यायेण परिणामः, अनेकपरमाणुद्रव्यस्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वानामनेकत्वेऽपि कथंचिदेकत्वेनावभासनात् ॥१६१॥

अथात्मनः परद्रव्यत्वाभावं परद्रव्यकर्तृत्वाभावं च साधयति—

णाहं पोग्गलमइओ ण ते मया पोग्गला कया पिंडं।
तम्हा हि ण देहोऽहं कत्ता वा तस्स देहस्स॥१६२॥

नाहं पुद्गलमयो न ते मया पुद्गलाः कृताः पिण्डम्।
तस्माद्धि न देहोऽहं कर्ता वा तस्य देहस्य॥१६२॥

यदेतत्प्रकरणनिर्धारितं पुद्गलात्मकमन्तर्नीतवाङ्मनोद्वैतं शरीरं नाम परद्रव्यं न तावदहमस्मि, ममापुद्गलमयस्य पुद्गलात्मकशरीरत्वविरोधात्। न चापि तस्य कारणद्वारेण

नाहं पुद्गलमयः। ण ते मया पुग्गला कया पिंडा न च ते पुद्गला मया कृताः पिण्डाः। तम्हा हि ण देहोऽहं तस्माद्देहो न भवाम्यहं। हि स्फुटं। कत्ता वा तस्स देहस्स कर्ता वा न भवामि तस्य देहस्येति।

स्वरूपास्तित्वमें निश्चित (रहे हुए) हैं। उस प्रकारका [१]पुद्गलद्रव्य अनेक परमाणुद्रव्योंका एक पिण्डपर्यायरूपसे परिणाम है, क्योंकि अनेक परमाणुद्रव्योंके स्वलक्षणभूत स्वरूपास्तित्व अनेक होने पर भी कथंचित् (स्निग्धत्व-रूक्षत्वकृत बंधपरिणामकी अपेक्षासे) एकत्वरूप अवभासित होते हैं॥१६१॥

अब आत्माके परद्रव्यत्वका अभाव और परद्रव्यके कर्तृत्वका अभाव सिद्ध करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[अहं पुद्गलमयः न] मैं पुद्गलमय नहीं हूँ और [ते पुद्गलाः] वे पुद्गल [मया] मेरे द्वारा [पिण्डं न कृताः] पिण्डरूप नहीं किये गये हैं, [तस्मात् हि] इसलिये [अहं न देहः] मैं देह नहीं हूँ, [वा] तथा [तस्य देहस्य कर्ता] उस देहका कर्ता नहीं हूँ॥१६२॥

टीका :—प्रथम तो, जो यह प्रकरणसे निर्धारित पुद्गलात्मक शरीर नामक परद्रव्य है—जिसके भीतर वाणी और मनका समावेश हो जाता है—वह मैं नहीं हूँ; क्योंकि अपुद्गलमय ऐसा मैं पुद्गलात्मक शरीररूप होनेमें विरोध है। और इसीप्रकार उस (शरीर)के

---

१. शरीरादिरूप।

हुँ पौद्गलिक नथी, पुद्गलो में पिंडरूप कर्यां नथी;
तेथी नथी हुँ देह वा ते देहनो कर्ता नथी. १६२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

कर्तृद्वारेण कर्तृप्रयोजकद्वारेण कर्त्रनुमन्तृद्वारेण वा शरीरस्य कर्ताहमस्मि, ममानेकपरमाणु-द्रव्यैकपिण्डपर्यायपरिणामस्याकर्तुरनेकपरमाणुद्रव्यैकपिण्डपर्यायपरिणामात्मकशरीरकर्तृत्वस्य सर्वथा विरोधात् ॥१६२॥

अथ कथं परमाणुद्रव्याणां पिण्डपर्यायपरिणतिरिति संदेहमपनुदति—

अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य सयमसद्दो जो।
णिद्धो वा लुक्खो वा दुपदेसादित्तमणुभवदि॥१६३॥

अप्रदेशः परमाणुः प्रदेशमात्रश्च स्वयमशब्दो यः।
स्निग्धो वा रूक्षो वा द्विप्रदेशादित्वमनुभवति॥१६३॥

अयमत्रार्थः—देहोऽहं न भवामि। कस्मात्। अशरीरसहजशुद्धचैतन्यपरिणतत्वेन मम देहत्वविरोधात्। कर्ता वा न भवामि तस्य देहस्य। तदपि कस्मात्। निःक्रियपरमचिज्ज्योतिःपरिणतत्वेन मम देहकर्तृत्वविरोधादिति॥१६२॥ एवं कायवाङ्मनसां शुद्धात्मना सह भेदकथनरूपेण चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतम्। इति पूर्वोक्तप्रकारेण 'अत्थित्तणिच्छिदस्स हि' इत्याद्येकादशगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन प्रथमो

कारण द्वारा, कर्ता द्वारा, कर्ताके प्रयोजक द्वारा या कर्ताके अनुमोदक द्वारा शरीरका कर्ता मैं नहीं हूँ, क्योंकि मैं अनेक परमाणुद्रव्योंके एकपिण्ड पर्यायरूप परिणामका अकर्ता ऐसा मैं अनेक परमाणुद्रव्योंके एकपिण्डपर्यायरूप [१]परिणामात्मक शरीरका कर्तारूप होनेमें सर्वथा विरोध है॥१६२॥

अब इस संदेहको दूर करते हैं कि "परमाणुद्रव्योंको पिण्डपर्यायरूप परिणति कैसे होती है?" :—

अन्वयार्थ :—[**परमाणुः**] परमाणु [**यः अप्रदेशः**] जो कि अप्रदेश है, [**प्रदेशमात्रः**] प्रदेशमात्र है [**च**] और [**स्वयं अशब्दः**] स्वयं अशब्द है, [**स्निग्धः वा रूक्षः वा**] वह स्निग्ध अथवा रूक्ष होता हुआ [**द्विप्रदेशादित्वम् अनुभवति**] द्विप्रदेशादिपनेका अनुभव करता है॥१६३॥

---

१. शरीर अनेक परमाणुद्रव्योंका एकपिण्डपर्यायरूप परिणाम है।

परमाणु जे अप्रदेश, तेम प्रदेशमात्र, अशब्द छे,
ते स्निग्ध रूक्ष बनी प्रदेशद्वयादिवत्त्व अनुभवे. १६३.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

परमाणुर्हि द्व्यादिप्रदेशानामभावादप्रदेशः, एकप्रदेशसद्भावात् प्रदेशमात्रः, स्वयमनेक-परमाणुद्रव्यात्मकशब्दपर्यायव्यक्त्यसंभवादशब्दश्च। यतश्चतुःस्पर्शपंचरसद्विगन्धपंचवर्णानाम-विरोधेन सद्भावात् स्निग्धो वा रूक्षो वा स्यात्, तत एव तस्य पिण्डपर्यायपरिणतिरूपा द्विप्रदेशादित्वानुभूतिः। अथैवं स्निग्धरूक्षत्वं पिण्डत्वसाधनम् ॥१६३॥

अथ कीदृशं तत्स्निग्धरूक्षत्वं परमाणोरित्यावेदयति—

विशेषान्तराधिकारः समाप्तः। अथ केवलपुद्गलबन्धमुख्यत्वेन नवगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तत्र स्थलद्वयं भवति। परमाणूनां परस्परबन्धकथनार्थं 'अपदेसो परमाणू' इत्यादिप्रथमस्थले गाथाचतुष्टयम्। तदनन्तरं स्कन्धानां बन्धमुख्यत्वेन 'दुपदेसादी खंधा' इत्यादिद्वितीयस्थले गाथापञ्चकम्। एवं द्वितीयविशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका। अथ यद्यात्मा पुद्गलानां पिण्डं न करोति तर्हि कथं पिण्डपर्यायपरिणतिरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति—**अपदेसो** अप्रदेशः। **स** कः। **परमाणू** पुद्गलपरमाणुः। पुनरपि कथंभूतः। **पदेसमेत्तो य** द्वितीयादिप्रदेशाभावात् प्रदेशमात्रश्च। पुनश्च किंरूपः। **सयमसद्दो य** स्वयं व्यक्तिरूपेणाशब्दः। एवं विशेषणत्रयविशिष्टः सन् **णिद्धो वा लुक्खो वा** स्निग्धो वा रूक्षो वा यतः कारणात्संभवति ततः कारणात् **दुपदेसादित्तमणुहवदि** द्विप्रदेशादिरूपं **बन्धमनुभवतीति**। तथाहि— यथायमात्मा शुद्धबुद्धैकस्वभावेन बन्धरहितोऽपि पश्चादशुद्धनयेन स्निग्धस्थानीयरागभावेन रूक्षस्थानीयद्वेषभावेन यदा परिणमति तदा परमागमकथितप्रकारेण बन्धमनुभवति, तथा परमाणुरपि स्वभावेन बन्धरहितोऽपि यदा बन्धकारणभूतस्निग्धरूक्षगुणेन परिणतो भवति तदा पुद्गलान्तरेण सह विभावपर्यायरूपं बन्धमनुभवतीत्यर्थः ॥१६३॥ अथ कीदृशं तत्स्निग्धरूक्षत्वमिति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति—

टीका :—वास्तवमें परमाणु द्वि-आदि (दो, तीन आदि) प्रदेशोंके अभावके कारण अप्रदेश है, एक प्रदेशके सद्भावके कारण प्रदेशमात्र है और स्वयं अनेक परमाणुद्रव्यात्मक शब्द पर्यायकी व्यक्तिका (प्रगटताका) असंभव होनेसे अशब्द है। (वह परमाणु) अविरोधपूर्वक चार स्पर्श, पाँच रस, दो गंध और पाँच वर्णोंके सद्भावके कारण स्निग्ध अथवा रूक्ष होता है, इसीलिये उसे [१]पिण्डपर्यायपरिणतिरूप द्विप्रदेशादिपनेकी अनुभूति होती है। इसप्रकार स्निग्धरूक्षत्व पिण्डपनेका कारण है॥१६३॥

अब यह बतलाते हैं कि परमाणुके वह स्निग्ध-रूक्षत्व किसप्रकारका होता है :—

---

१. एक परमाणुकी दूसरे परमाणुके साथ पिण्डरूप परिणति द्विप्रदेशीपनेकी अनुभूति है; एक परमाणुकी अन्य दो परमाणुओंके साथ पिण्डरूप परिणति त्रिप्रदेशीपनेका अनुभव है। इसप्रकार परमाणु अन्य परमाणुओंके साथ पिण्डरूप परिणमित होनेपर अनेकप्रदेशीपनेका अनुभव करता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एगुत्तरमेगादी अणुस्स णिद्धत्तणं च लुक्खत्तं।
परिणामादो भणिदं जाव अणंतत्तमणुभवदि॥१६४॥

एकोत्तरमेकाद्यणोः स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वम्।
परिणामाद्भणितं यावदनन्तत्वमनुभवति॥१६४॥

परमाणोर्हि तावदस्ति परिणामः तस्य वस्तुस्वभावत्वेनानतिक्रमात्। ततस्तु परिणामादुपात्तकादाचित्कवैचित्र्यं चित्रगुणयोगित्वात्परमाणोरेकाद्येकोत्तरानन्तावसानाविभागपरिच्छेदव्यापि स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वं वा भवति॥१६४॥

एगुत्तरमेगादी एकोत्तरमेकादि। किम्। णिद्धत्तणं च लुक्खत्तं स्निग्धत्वं रूक्षत्वं च कर्मतापन्नम्। भणिदं भणितं कथितम्। किंपर्यन्तम्। जाव अणंतत्तमणुभवदि अनन्तत्वमनन्तपर्यन्तं यावदनुभवति प्राप्नोति। कस्मात्सकाशात्। परिणामादो परिणतिविशेषात्परिणामित्वादित्यर्थः। कस्य संबन्धि। अणुस्स अणोः पुद्गलपरमाणोः। तथाहि—यथा जीवे जलाजागोमहिषीक्षीरे स्नेहवृद्धिवत्स्नेहस्थानीयं रागत्वं रूक्षस्थानीयं द्वेषत्वं बन्धकारणभूतं जघन्यविशुद्धिसंक्लेशस्थानीयमादिं कृत्वा परमागमकथितक्रमेणोत्कृष्टविशुद्धिसंक्लेशपर्यन्तं वर्धते, तथा पुद्गलपरमाणुद्रव्येऽपि स्निग्धत्वं रूक्षत्वं च बन्धकारणभूतं पूर्वोक्तजलादितारतम्यशक्तिदृष्टान्तेनैकगुणसंज्ञां जघन्यशक्तिमादिं कृत्वा गुणसंज्ञेनाविभागपरिच्छेद-

---

अन्वयार्थ :—[अणोः] परमाणुके [परिणामात्] परिणमनके कारण [एकादि] एकसे (-एक अविभाग प्रतिच्छेदसे) लेकर [एकोत्तरं] एक-एक बढ़ते हुए [यावत्] जब तक [अनन्तत्वम् अनुभवति] अनन्तपनेको (-अनन्त अविभागी प्रतिच्छेदपनेको) प्राप्त हो तब तक (स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वं) स्निग्धत्व अथवा रूक्षत्व होता है ऐसा [भणितम्] (जिनेन्द्रदेवने) कहा है॥१६४॥

टीका :—प्रथम तो परमाणुके परिणाम होता है क्योंकि वह (परिणाम) वस्तुका स्वभाव होनेसे उल्लंघन नहीं किया जा सकता। और उस परिणामके कारण जो [१]कादाचित्क [२]विचित्रता धारण करता है ऐसा, एकसे लेकर एक-एक बढ़ते हुए अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदों

---

१. कादाचित्क = किसी समय हो ऐसा; क्षणिक; अनित्य।

२. विचित्रता = अनेकप्रकारता; विविधता; अनेकरूपता (चिकनापन और रूखापन परिणामके कारण क्षणिक अनेकरूपता-तरतमता, तारतम्यता धारण करता है)।

एकांशथी आरंभी ज्यां अविभाग अंश अनंत छे,
स्निग्धत्व वा रूक्षत्व अे परिणामथी परमाणुने. १६४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथात्र कीदृशात्स्निग्धरूक्षत्वात्पिण्डत्वमित्यावेदयति—

णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि बज्झंति हि आदिपरिहीणा॥१६५॥

स्निग्धा वा रूक्षा वा अणुपरिणामाः समा वा विषमा वा।
समतो द्व्यधिका यदि बध्यन्ते हि आदिपरिहीणाः॥१६५॥

द्वितीयनामाभिधेयेन शक्तिविशेषेण वर्धते। किंपर्यन्तम्। यावदनन्तसंख्यानम्। कस्मात्। पुद्गल-द्रव्यस्य परिणामित्वात्, परिणामस्य वस्तुस्वभावादेव निषेधितुमशक्यत्वादिति॥१६४॥ अथात्र कीदृशात्स्निग्धरूक्षत्वगुणात् पिण्डो भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति—**बज्झंति हि** बध्यन्ते हि स्फुटम्। के। कर्मतापन्नाः **अणुपरिणामा** अणुपरिणामाः। अणुपरिणामशब्देनात्र परिणामपरिणता अणवो गृह्यन्ते। कथंभूताः। **णिद्धा वा लुक्खा वा** स्निग्धपरिणामपरिणता वा रूक्षपरिणामपरिणता वा। पुनरपि किंविशिष्टाः। **समा व विसमा वा** द्विशक्तिचतुःशक्तिषट्शक्त्यादिपरिणतानां सम इति संज्ञा, त्रिशक्तिपञ्चशक्तिसप्तशक्त्यादिपरिणतानां विषम इति संज्ञा। पुनश्च किंरूपाः। **समदो दुराधिगा जदि** समतः समसंख्यानात्सकाशाद् द्वाभ्यां गुणाभ्यामधिका यदि चेत्। कथं द्विगुणाधिकत्वमिति

तक व्याप्त होनेवाला स्निग्धत्व अथवा रूक्षत्व परमाणुके होता है क्योंकि परमाणु अनेक प्रकारके गुणोंवाला है।

भावार्थ :—परमाणु परिणमनवाला है, इसलिये उसके स्निग्धत्व और रूक्षत्व एक अविभाग-[१]प्रतिच्छेदसे लेकर अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदों तक तरतमताको प्राप्त होते हैं।

अब यह बतलाते हैं कि कैसे स्निग्धत्व-रूक्षत्वसे पिण्डपना होता है :—

अन्वयार्थ :—[**अणुपरिणामाः**] परमाणु-परिणाम, [**स्निग्धाः वा रूक्षाः वा**] स्निग्ध हों या रूक्ष हों [**समाः विषमाः वा**] सम अंशवाले हों या विषम अंशवाले हों [**यदि समतः**

---

१ किसी गुणमें (अर्थात् गुणकी पर्यायमें) अंशकल्पना करने पर, उसका जो छोटेसे छोटा (निरंश) अंश होता है उसे उस गुणका (अर्थात् गुणकी पर्यायका) अविभाग प्रतिच्छेद कहा जाता है। (बकरीसे गायके दूधमें और गायसे भैंसके दूधमें सचिक्कणताके अविभागी प्रतिच्छेद अधिक होते हैं। धूलसे राखमें और राखसे वालूमें रूक्षताके अविभागी प्रतिच्छेदक अधिक होते है।)

हो स्निग्ध अथवा रूक्ष अणु-परिणाम, सम वा विषम हो,
बंधाय जो गुणद्वय अधिक; नहि बंध होय जघन्यनो. १६५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

समतो द्व्यधिकगुणाद्धि स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध इत्युत्सर्गः, स्निग्धरूक्षद्व्यधिकगुणत्वस्य हि परिणामकत्वेन बन्धसाधनत्वात्। न खल्वेकगुणात् स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध इत्यपवादः, एकगुण-स्निग्धरूक्षत्वस्य हि परिणम्यपरिणामकत्वाभावेन बन्धस्यासाधनत्वात् ॥१६५॥

चेत्। एको द्विगुणस्तिष्ठति द्वितीयोऽपि द्विगुण इति द्वौ समसंख्यानौ तिष्ठतस्तावत् एकस्य विवक्षितद्विगुणस्य द्विगुणाधिकत्वे कृते सति सः चतुर्गुणो भवति शक्तिचतुष्टयपरिणतो भवति। तस्य चतुर्गुणस्य पूर्वोक्तद्विगुणेन सह बन्धो भवतीति। तथैव द्वौ त्रिशक्तियुक्तो तिष्ठतस्तावत्, तत्राप्येकस्य त्रिगुणशब्दाभिधेयस्य त्रिशक्तियुक्तस्य परमाणोः शक्तिद्वयमेलापके कृते सति पञ्चगुणत्वं भवति। तेन पञ्चगुणेन सह पूर्वोक्तत्रिगुणस्य बन्धो भवति। एवं द्वयोर्द्वयोः स्निग्धयोर्द्वयोर्द्वयो रूक्षयोर्द्वयोर्द्वयोः स्निग्धरूक्षयोर्वा समयोः विषमयोश्च द्विगुणाधिकत्वे सति बन्धो भवतीत्यर्थः, किंतु विशेषोऽस्ति। **आदिपरिहीणा** आदिशब्देन जलस्थानीयं जघन्यस्निग्धत्वं वालुकास्थानीयं जघन्यरूक्षत्वं भण्यते, ताभ्यां विहीना आदिपरिहीणा बध्यन्ते। किंच–परमचैतन्यपरिणतिलक्षणपरमात्मतत्त्वभावनारूपधर्मध्यान-शुक्लध्यानबलेन यथा जघन्यस्निग्धशक्तिस्थानीये क्षीणरागत्वे सति जघन्यरूक्षशक्तिस्थानीये क्षीणद्वेषत्वे च सति जलवालुकयोरिव जीवस्य बन्धो न भवति, तथा पुद्गलपरमाणोरपि जघन्यस्निग्ध-रूक्षशक्तिप्रस्तावे बन्धो न भवतीत्यभिप्रायः॥१६५॥ अथ तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति— गुणशब्दवाच्यशक्तिद्वययुक्तस्य स्निग्धपरमाणोश्चतुर्गुणस्निग्धेन रूक्षेण वा समशब्दसंज्ञेन तथैव

द्व्यधिकाः] यदि समानसे दो अधिक अंशवाले हों तो [**बध्यन्ते हि**] बँधते हैं, [**आदि परिहीनाः**] जघन्यांशवाले नहीं बंधते॥१६५॥

टीका :—समानसे दो गुण (अंश) अधिक स्निग्धत्व या रूक्षत्व हो तो बंध होता है यह उत्सर्ग (सामान्य नियम) है; क्योंकि स्निग्धत्व या रूक्षत्वकी द्विगुणाधिकताका होना वह परिणामक (परिणमन करानेवाला) होनेसे बंधका कारण है।

यदि एक गुण स्निग्धत्व या रूक्षत्व हो तो बंध नहीं होता यह अपवाद है; क्योंकि एक गुण स्निग्धत्व या रूक्षत्वके [१]परिणम्य–परिणामकताका अभाव होनेसे बंधके कारणपनेका अभाव है॥१६५॥

---

१. परिणम्य = परिणमन करने योग्य। [दश अंश स्निग्धतावाला परमाणु बारह अंश रूक्षतावाले परमाणुके साथ बंधकर स्कंध बनने पर, दश अंश स्निग्धतावाला परमाणु बारह अंश रूक्षतारूप परिणमित हो जाता है; अथवा दश अंश स्निग्धतावाला परमाणु बारह अंश स्निग्धतावाले परमाणुके साथ बंधकर स्कंध बनने पर, दश अंश स्निग्धतावाला परमाणु बारह अंश स्निग्धतारूप परिणमित हो जाता है; इसलिये कम अंशवाला परमाणु परिणम्य है और दो अधिक अंशवाला परमाणु परिणामक है। एक अंश स्निग्धता या रूक्षतावाला परमाणु (सामान्य नियमानुसार) परिणामक तो है ही नहीं, किन्तु जघन्यभावमें वर्तित होनेसे परिणम्य भी नहीं है। इस प्रकार जघन्यभाव बंधका कारण नहीं है।]

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ परमाणूनां पिण्डत्वस्य यथोदितहेतुत्वमवधारयति—

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बंधमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो॥१६६॥

स्निग्धत्वेन द्विगुणश्चतुर्गुणस्निग्धेन वन्धमनुभवति।
रूक्षेण वा त्रिगुणितोऽणुर्बध्यते पञ्चगुणयुक्तः॥१६६॥

यथोदितहेतुकमेव परमाणूनां पिण्डत्वमवधार्यं, द्विचतुर्गुणयोस्त्रिपंचगुणयोश्च द्वयोः स्निग्धयोः द्वयो रूक्षयोर्द्वयोः स्निग्धरूक्षयोर्वा परमाण्वोर्वन्धस्य प्रसिद्धेः। उक्तं च—"णिद्धा णिद्धेण बज्झंति लुक्खा लुक्खा य पोग्गला। णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला॥"

त्रिशक्तियुक्तरूक्षस्य पञ्चगुणरूक्षेण स्निग्धेन वा विषमसंज्ञेन द्विगुणाधिकत्वे सति बन्धो भवतीति ज्ञातव्यम्। अयं तु विशेषः—परमानन्दैकलक्षणस्वसंवेदनज्ञानबलेन हीयमानरागद्वेषत्वे सति पूर्वोक्त-

अब ऐसा निश्चित करते हैं कि परमाणुओंके पिण्डपनेमें यथोक्त (उपरोक्त) हेतु है :—

अन्वयार्थ :—[**स्निग्धत्वेन द्विगुणः**] स्निग्धरूपसे दो अंशवाला परमाणु [**चतुर्गुणस्निग्धेन**] चार अंशवाले स्निग्ध (अथवा रूक्ष) परमाणुके साथ [**बंधं अनुभवति**] बंधका अनुभव करता है। [**वा**] अथवा [**रूक्षेण त्रिगुणितः अणुः**] रूक्षरूपसे तीन अंशवाला परमाणु [**पंचगुणयुक्तः**] पाँच अंशवालेके साथ युक्त होता हुआ [**बध्यते**] बंधता है॥१६६॥

टीका :—यथोक्त हेतुसे ही परमाणुओंके पिण्डपना होता है ऐसा निश्चित करना चाहिये; क्योंकि दो और चार गुणवाले तथा तीन और पाँच गुणवाले दो स्निग्ध परमाणुओंके अथवा दो रूक्ष परमाणुओंके अथवा दो स्निग्ध-रूक्ष परमाणुओंके (-एक स्निग्ध और एक रूक्ष परमाणुके) बंधकी प्रसिद्धि है। कहा भी है कि :—

"णिद्धा णिद्धेण बज्झंति लुक्खा लुक्खा य पोग्गला।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला॥"

"णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बंधो जहण्णवज्जे विसमें समे वा॥"

चतुरंश को स्निग्धाणु सह द्वय-अंशमय स्निग्धाणुनो;
पंचांशी अणु सह बंध थाय त्रयांशमय रूक्षाणुनो. १६६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

''णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण। णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा॥''॥१६६॥

जलवालुकादृष्टान्तेन यथा जीवानां बन्धो न भवति तथा जघन्यस्निग्धरूक्षत्वगुणे सति परमाणूनां चेति। तथा चोक्तम्—''णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिगेण लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिगेण। णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बंधो जघण्णवज्जे विसमे समे वा''॥१६६॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्निग्धरूक्षपरिणत-

[अर्थ :—पुद्गल [१]'रूपी' और 'अरूपी' होते हैं। उनमेंसे स्निग्ध पुद्गल स्निग्धके साथ बंधते हैं, रूक्ष पुद्गल रूक्षके साथ बंधते हैं, स्निग्ध और रूक्ष भी बंधते हैं।

जघन्यके अतिरिक्त सम अंशवाला हो या विषम अंशवाला हो, स्निग्धका दो अधिक अंशवाले स्निग्ध परमाणुके साथ, रूक्षका दो अधिक अंशवाले रूक्ष परमाणुके साथ और स्निग्धका (दो अधिक अंशवाले) रूक्ष परमाणुके साथ बंध होता है।]

भावार्थ :—दो अंशोंसे लेकर अनन्त अंश स्निग्धता या रूक्षतावाला परमाणु उससे दो अधिक अंश स्निग्धता या रूक्षतावाले परमाणुके साथ बँधकर स्कंध बनता है। जैसे :— २ अंश स्निग्धतावाला परमाणु ४ अंश स्निग्धतावाले परमाणुके साथ बंधता है; ९१ अंश स्निग्धतावाला परमाणु ९३ अंश रूक्षतावाले परमाणुके साथ बंधता है; ५३३ अंश रूक्षतावाला परमाणु ५३५ अंश रूक्षतावाले परमाणुके साथ बंधता है; ७००६ अंश रूक्षतावाला परमाणु ७००८ अंश स्निग्धतावाले परमाणुके साथ बंधता है—इन उदाहरणोंके अनुसार दो से लेकर अनन्त अंशों (अविभागी प्रतिच्छेदों) तक समझ लेना चाहिये।

मात्र एक अंशवाले परमाणुमें जघन्यभावके कारण बंधकी योग्यता नहीं है, इसलिये एक अंशवाला स्निग्ध या रूक्ष परमाणु तीन अंशवाले स्निग्ध या रूक्ष परमाणुके साथ भी नहीं बंधता।

इसप्रकार, (एक अंशवालेके अतिरिक्त) दो परमाणुओंके बीच यदि दो अंशोंका अन्तर हो तब ही वे बँधते हैं; दो से अधिक या कम अंशोंका अन्तर हो तो बंध नहीं होता। जैसे :–पाँच अंश स्निग्धता या रूक्षतावाला परमाणु सात अंशोंवाले परमाणुके साथ बंधता है; परन्तु पाँच अंशोंवाला परमाणु आठ या छह अंशोंवाले (अथवा पाँच अंशोंवाले) परमाणुके साथ नहीं बंधता॥१६६॥

१. किसी एक परमाणुकी अपेक्षासे विसदृशजातिका समान अंशोंवाला दूसरा परमाणु 'रूपी' कहलाता है और शेष सब परमाणु उसकी अपेक्षासे 'अरूपी' कहलाते हैं। जैसे—पाँच अंश स्निग्धतावाले परमाणुको पाँच अंश रूक्षतावाला दूसरा परमाणु 'रूपी' है और शेष सब परमाणु उसके लिये 'अरूपी' हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि—विसदृशजातिके समान अंशवाले परमाणु परस्पर 'रूपी' हैं; और सदृशजातिके अथवा असमान अंशवाले परमाणु परस्पर 'अरूपी' है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथात्मनः पुद्गलपिण्डकर्तृत्वाभावमवधारयति—

दुपदेसादी खंधा सुहुमा वा बादरा ससंठाणा।
पुढविजलतेउवाऊ सगपरिणामेहिं जायंते॥१६७॥

द्विप्रदेशादयः स्कन्धाः सूक्ष्मा वा बादराः ससंस्थानाः।
पृथिवीजलतेजोवायवः स्वकपरिणामैर्जायन्ते॥१६७॥

एवममी समुपजायमाना द्विप्रदेशादयः स्कन्धा विशिष्टावगाहनशक्तिवशादुपात्त-सौक्ष्म्यस्थौल्यविशेषा विशिष्टाकारधारणशक्तिवशाद्गृहीतविचित्रसंस्थानाः सन्तो यथास्वं

परमाणुस्वरूपकथनेन प्रथमगाथा, स्निग्धरूक्षगुणविवरणेन द्वितीया, स्निग्धरूक्षगुणाभ्यां द्व्यधिकत्वे सति बन्धकथनेन तृतीया, तस्यैव दृढीकरणेन चतुर्थी चेति परमाणूनां परस्परबन्धव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्। अथात्मा द्व्यणुकादिपुद्गलस्कन्धानां कर्ता न भवतीत्युपदिशति— **जायन्ते** उत्पद्यन्ते। के कर्तारः। **दुपदेसादी खंधा** द्विप्रदेशाद्यनन्ताणुपर्यन्ताः स्कन्धाः। के जायन्ते। **पुढविजलतेउवाऊ** पृथ्वीजलतेजोवायवः। कथंभूताः सन्तः। **सुहुमा वा बादरा** सूक्ष्मा वा बादरा वा। पुनरपि किंविशिष्टाः सन्तः। **ससंठाणा** यथासंभवं वृत्तचतुरस्रादिस्वकीयस्वकीय-संस्थानाकारयुक्ताः। कैः कृत्वा जायन्ते। **सगपरिणामेहिं** स्वकीयस्वकीयस्निग्धरूक्षपरिणामैरिति। अथ विस्तरः—जीवा हि तावद्वस्तुतष्टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेण शुद्धबुद्धैकस्वभावा एव, पश्चाद्व्यवहारेणानादिकर्मबन्धोपाधिवशेन शुद्धात्मस्वभावमलभमानाः सन्तः पृथिव्यप्तेजोवातकायिकेषु

अब, आत्माके पुद्गलोंके पिण्डके कर्तृत्वका अभाव निश्चित करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**द्विप्रदेशादयः स्कंधाः**] द्विप्रदेशादिक (दो से लेकर अनन्तप्रदेशवाले) स्कंध [**सूक्ष्माः वा बादराः**] जो कि सूक्ष्म अथवा बादर होते हैं और [**ससंस्थानाः**] संस्थानों (आकारों) सहित होते हैं वे—[**पृथिवीजलतेजोवायवः**] पृथ्वी, जल, तेज और वायुरूप [**स्वकपरिणामैः जायन्ते**] अपने परिणामोंसे होते हैं॥१६७॥

टीका :—इस (पूर्वोक्त) प्रकारसे यह उत्पन्न होनेवाले द्विप्रदेशादिक स्कंध—जिनने विशिष्ट अवगाहनकी शक्तिके वश सूक्ष्मता और स्थूलतारूप भेद ग्रहण किये हैं और जिनने विशिष्ट आकार धारण करनेकी शक्तिके वश होकर विचित्र संस्थान ग्रहण किये हैं वे—अपनी

स्कन्धो प्रदेशद्वयादियुत, स्थूल-सूक्ष्म ने साकार जे,
ते पृथ्वी–वायु–तेज–जल परिणामथी निज थाय छे. १६७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

स्पर्शादिचतुष्कस्याविर्भावतिरोभावस्वशक्तिवशमासाद्य पृथिव्यप्तेजोवायवः स्वपरिणामैरेव जायन्ते। अतोऽवधार्यते द्व्यणुकाद्यनन्तानन्तपुद्गलानां न पिण्डकर्ता पुरुषोऽस्ति॥१६७॥

अथात्मनः पुद्गलपिण्डानेतृत्वाभावमवधारयति—

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो।
सुहुमेहि बादरेहि य अप्पाओग्गेहिं जोग्गेहिं॥१६८॥

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः।
सूक्ष्मैर्बादरैश्चाप्रायोग्यैर्योग्यैः ॥१६८॥

समुत्पद्यन्ते, तथापि स्वकीयाभ्यन्तरसुखदुःखादिरूपपरिणतेरेवाशुद्धोपादानकारणं भवन्ति, न च पृथिव्यादिकायाकारपरिणतेः। कस्मादिति चेत्। तत्र स्कन्धानामेवोपादानकारणत्वादिति। ततो ज्ञायते पुद्गलपिण्डानां जीवः कर्ता न भवतीति॥१६७॥ अथात्मा बन्धकाले बन्धयोग्य-पुद्गलान् बहिर्भागान्नैवानयतीत्यावेदयति—**ओगाढगाढणिचिदो** अवगाह्यावगाह्य नैरन्तर्येण निचितो भृतः। स कः। **लोगो** लोकः। कथंभूतः। **सव्वदो** सर्वतः सर्वप्रदेशेषु। कैः कर्तृभूतैः। **पोग्गलकायेहिं** पुद्गलकायैः। किंविशिष्टैः। **सुहुमेहि बादरेहि य** इन्द्रियग्रहणायोग्यैः सूक्ष्मैस्तद्ग्रहण-

---

योग्यतानुसार [१]स्पर्शादिचतुष्कके आविर्भाव और तिरोभावकी स्वशक्तिके वश होकर पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायुरूप अपने परिणामोंसे ही होते हैं। इससे निश्चित होता है कि द्वि-अणुकादि अनन्तान्त पुद्गलोंका पिण्डकर्ता आत्मा नहीं है॥१६७॥

अब ऐसा निश्चित करते हैं कि (जिस प्रकार आत्मा पुद्गलपिण्डका करनेवाला नहीं उसी प्रकार) आत्मा पुद्गलपिण्डका लानेवाला (भी) नहीं है :—

अन्वयार्थ :—[**लोकः**] लोक [**सर्वतः**] सर्वतः [**सूक्ष्मैः बादरैः**] सूक्ष्म तथा बादर [**च**] और [**अप्रायोग्यैः योग्यैः**] कर्मत्वके अयोग्य तथा कर्मत्वके योग्य [**पुद्गलकायैः**] पुद्गलस्कंधोंके द्वारा [**अवगाढगाढनिचितः**] (विशिष्ट प्रकारसे) अवगाहित होकर गाढ़ (-घनिष्ठ) भरा हुआ है॥१६८॥

---

१. स्पर्शादिचतुष्क = स्पर्श, रस, गंध और वर्ण। (स्पर्शादिकी प्रगटता और अप्रगटता वह पुद्गलकी शक्ति है।)

अवगाढ गाढ भरेल छे सर्वत्र पुद्गलकायथी
आ लोक बादर-सूक्ष्मथी, कर्मत्वयोग्य-अयोग्यथी. १६८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

यतो हि सूक्ष्मत्वपरिणतैर्बादरपरिणतैश्चानतिसूक्ष्मत्वस्थूलत्वात् कर्मत्वपरिणमनशक्ति-योगिभिरतिसूक्ष्मस्थूलतया तदयोगिभिश्चावगाहविशिष्टत्वेन परस्परमबाधमानैः स्वयमेव सर्वत एव पुद्गलकायैर्गाढं निचितो लोकः, ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डानामानेता पुरुषोऽस्ति।।१६८।।

अथात्मनः पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्तृत्वाभावमवधारयति—

कम्मत्तणपाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा।
गच्छंति कम्मभावं ण हि ते जीवेण परिणमिदा।।१६९।।

कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धा जीवस्य परिणतिं प्राप्य।
गच्छन्ति कर्मभावं न हि ते जीवेन परिणमिताः।।१६९।।

योग्यैर्बादरैश्च। पुनश्च कथंभूतैः। **अप्पाओग्गेहिं** अतिसूक्ष्मस्थूलत्वेन कर्मवर्गणायोग्यतारहितैः। पुनश्च किंविशिष्टैः। **जोग्गेहिं** अतिसूक्ष्मस्थूलत्वाभावात्कर्मवर्गणायोग्यैरिति। अयमत्रार्थः—निश्चयेन शुद्ध-स्वरूपैरपि व्यवहारेण कर्मोदयाधीनतया पृथिव्यादिपञ्चसूक्ष्मस्थावरत्वं प्राप्तैर्जीवैर्यथा लोको निरन्तरं भृतस्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपि। ततो ज्ञायते यत्रैव शरीरावगाढक्षेत्रे जीवस्तिष्ठति बन्धयोग्यपुद्गला अपि

टीका :—सूक्ष्मतया परिणत तथा बादररूप परिणत, अति सूक्ष्म अथवा अति स्थूल न होनेसे कर्मरूप परिणत होनेकी शक्तिवाले तथा अति सूक्ष्म अथवा अति स्थूल होनेसे कर्मरूप परिणत होनेकी शक्तिसे रहित—ऐसे पुद्गलकार्योंके द्वारा, अवगाहकी विशिष्टताके कारण परस्पर बाधा किये विना, स्वयमेव सर्वतः (सर्व प्रदेशोंसे) लोक गाढ़ भरा हुआ है। इससे निश्चित होता है कि पुद्गलपिण्डोंका लानेवाला आत्मा नहीं है।

भावार्थ :—इस लोकमें सर्वत्र जीव हैं और कर्मबंधके योग्य पुद्गलवर्गणा भी सर्वत्र है। जीवके जैसे परिणाम होते हैं उसीप्रकारका जीवको कर्मबंध होता है। ऐसा नहीं है कि आत्मा किसी बाहरके स्थानसे कर्मयोग्य पुद्गल लाकर बंध करता है।।१६८।।

अब ऐसा निश्चित करते हैं कि आत्मा पुद्गलपिण्डोंको कर्मरूप नहीं करता :—

अन्वयार्थ :—[**कर्मत्वप्रायोग्याः स्कंधाः**] कर्मत्वके योग्य स्कंध [**जीवस्यपरिणतिं प्राप्य**] जीवकी परिणतिको प्राप्त करके [**कर्मभावं गच्छन्ति**] कर्मभावको प्राप्त होते हैं; [**न हि ते जीवेन परिणमिताः**] जीव उनको नहीं परिणमाता।।१६९।।

સ્કંધો કરમને યોગ્ય પામી જીવના પરિણામને
કર્મત્વને પામે; નહિ જીવ પરિણમાવે તેમને. ૧૬૯.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

यतो हि तुल्यक्षेत्रावगाढजीवपरिणाममात्रं बहिरंगसाधनमाश्रित्य जीवं परिणमयितारमन्तरेणापि कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिनः पुद्गलस्कन्धाः स्वयमेव कर्मभावेन परिणमन्ति, ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्ता पुरुषोऽस्ति॥१६९॥

अथात्मनः कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीरकर्तृत्वाभावमवधारयति—

ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणो वि जीवस्स।
संजायंते देहा देहंतरसंकमं पप्पा॥१७०॥

तत्रैव तिष्ठन्ति, न च बहिर्भागाज्जीव आनयतीति॥१६८॥ अथ कर्मस्कन्धानां जीव उपादानकर्ता न भवतीति प्रज्ञापयति—**कम्मत्तणपाओग्गा खंधा** कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धाः कर्तारः **जीवस्स परिणइं पप्पा** जीवस्य परिणतिं प्राप्य निर्दोषिपरमात्मभावनोत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखामृतपरिणतेः प्रतिपक्षभूतां जीवसंबन्धिनीं मिथ्यात्वरागादिपरिणतिं प्राप्य **गच्छंति कम्मभावं** गच्छन्ति परिणमन्ति। कम्। कर्मभावं ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायम्। **ण हि ते जीवेण परिणमिदा** न हि नैव ते कर्मस्कन्धा जीवेनोपादानकर्तृभूतेन परिणमिताः परिणतिं नीता इत्यर्थः। अनेन व्याख्यानेनैतदुक्तं भवति कर्मस्कन्धानां निश्चयेन जीवः कर्ता न भवतीति॥१६९॥ अथ शरीराकारपरिणतपुद्गलपिण्डानां जीवः कर्ता न भवतीत्युपदिशति---**ते ते कम्मत्तगदा** ते ते पूर्वसूत्रोदिताः कर्मत्वं गता द्रव्यकर्मपर्याय-

---

टीका :—कर्मरूप परिणमित होनेकी शक्तिवाले पुद्गलस्कंध तुल्य (समान) क्षेत्रावगाह जीवके परिणाममात्रका—जो कि बहिरंग साधन (बाह्यकारण) है उसका—आश्रय करके, जीव उनको परिणमाने वाला न होने पर भी, स्वयमेव कर्मभावसे परिणमित होते हैं। इससे निश्चित होता है कि पुद्गलपिण्डोंको कर्मरूप करनेवाला आत्मा नहीं है।

भावार्थ :—समान क्षेत्रमें रहनेवाले जीवके विकारी परिणामको निमित्तमात्र करके कार्मणवर्गणायें स्वयमेव अपनी अन्तरंगशक्तिसे ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमित हो जाती हैं; जीव उन्हें कर्मरूप परिणमित नहीं करता॥१६९॥

अब आत्माके कर्मरूप परिणत पुद्गलद्रव्यात्मक शरीरके कर्तृत्वका अभाव निश्चित करते हैं (अर्थात् ऐसा निश्चित करते हैं कि कर्मरूप परिणत जो पुद्गलद्रव्य उस-स्वरूप शरीरका कर्ता आत्मा नहीं है) :—

कर्मत्वपरिणत पुद्गलोना स्कंध ते ते फरी फरी
शरीरो बने छे जीवने, संक्रांति पामी देहनी. १७०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

ते ते कर्मत्वगताः पुद्गलकायाः पुनरपि जीवस्य।
संजायन्ते देहा देहान्तरसंक्रमं प्राप्य॥१७०॥

ये ये नामामी यस्य जीवस्य परिणामं निमित्तमात्रीकृत्य पुद्गलकायाः स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमन्ति, अथ ते ते तस्य जीवस्यानादिसंतानप्रवृत्तशरीरान्तरसंक्रान्तिमाश्रित्य स्वयमेव च शरीराणि जायन्ते। अतोऽवधार्यते न कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीरकर्ता पुरुषोऽस्ति॥१७०॥

अथात्मनः शरीरत्वाभावमवधारयति—

परिणताः पोग्गलकाया पुद्गलस्कन्धाः पुणो वि जीवस्स पुनरपि भवान्तरेऽपि जीवस्य संजायंते देहा संजायन्ते सम्यग्जायन्ते देहाः शरीराणीति। किं कृत्वा। देहंतरसंकमं पप्पा देहान्तरसंक्रमं भवान्तरं प्राप्य लब्ध्वेति। अनेन किमुक्तं भवति—औदारिकादिशरीरनामकर्मरहितपरमात्मानमलभमानेन जीवेन यान्युपार्जितान्यौदारिकादिशरीरनामकर्माणि तानि भवान्तरे प्राप्ते सत्युदयमागच्छन्ति, तदुदयेन नोकर्मपुद्गला औदारिकादिशरीराकारेण स्वयमेव परिणमन्ति। ततः कारणादौदारिकादिकायानां जीवः कर्ता न भवतीति॥१७०॥ अथ शरीराणि जीवस्वरूपं न भवन्तीति निश्चिनोति—ओरालिओ य देहो औदारिकश्च देहः देहो वेउव्विओ य देहो वैक्रियकश्च तेजसिओ तैजसिकः आहारय कम्मइओ आहारकः कार्मणश्च पुग्गलदव्वप्पगा सव्वे एते पञ्च देहाः पुद्गलद्रव्यात्मकाः सर्वेऽपि

गाथा : १७० अन्वयार्थ :—[कर्मत्वगताः] कर्मरूप परिणत [ते ते] वे-वे [पुद्गलकायाः] पुद्गलपिण्ड [देहान्त संक्रमं प्राप्य] देहान्तररूप परिवर्तनको प्राप्त करके [पुनः अपि] पुनः-पुनः [जीवस्य] जीवके [देहाः] शरीर [संजायन्ते] होते हैं॥१७०॥

टीका :—जिस जीवके परिणामको निमित्तमात्र करके जो-जो यह पुद्गलकाय स्वयमेव कर्मरूप परिणत होते हैं, वे जीवके अनादि संततिरूप (प्रवाहरूप) प्रवर्तमान देहान्तर (भवांतर) रूप परिवर्तनका आश्रय लेकर वे-वे पुद्गलपिण्ड स्वयमेव शरीर (-शरीररूप, शरीरके होनेमें निमित्तरूप) बनते हैं। इससे निश्चित होता है कि कर्मरूप परिणत पुद्गलद्रव्यात्मक शरीरका कर्ता आत्मा नहीं है।

भावार्थ :—जीवके परिणामको निमित्तमात्र करके जो पुद्गल स्वयमेव कर्मरूप परिणत होते हैं, वे पुद्गल ही अन्य भवमें शरीरके बननेमें निमित्तभूत होते हैं, और नोकर्मपुद्गल स्वयमेव शरीररूप परिणमित होते हैं। इसलिये शरीरका कर्ता आत्मा नहीं है॥१७०॥

अब आत्माके शरीरपनेका अभाव निश्चित करते हैं :—

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

ओरालिओ य देहो देहो वेउव्विओ य तेजसिओ।
आहारय कम्मइओ पोग्गलदव्वप्पगा सव्वे॥१७१॥

औदारिकश्च देहो देहो वैक्रियिकश्च तैजसः।
आहारकः कार्मणः पुद्गलद्रव्यात्मकाः सर्वे॥१७१॥

यतो ह्यौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि सर्वाण्यपि पुद्गलद्रव्यात्मकानि, ततोऽवधार्यते न शरीरं पुरुषोऽस्ति॥१७१॥

अथ किं तर्हि जीवस्य शरीरादिसर्वपरद्रव्यविभागसाधनमसाधारणं स्वलक्षणमित्यावेदयति—

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥१७२॥

मम स्वरूपं न भवन्ति। कस्मादिति चेत्। ममाशरीरचैतन्यचमत्कारपरिणतत्वेन सर्वदैवाचेतनशरीरत्वविरोधादिति॥१७१॥ एवं पुद्गलस्कन्धानां बन्धव्याख्यानमुख्यतया द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं गतम्। इति 'अपदेसो परमाणू' इत्यादि गाथानवकेन परमाणुस्कन्धभेदभिन्नपुद्गलानां पिण्डनिष्पत्तिव्याख्यान-

---

अन्वयार्थ :—[औदारिकः च देहः] औदारिक शरीर, [वैक्रियिकः देहः] वैक्रियिक शरीर, [तैजसः] तैजस शरीर, [आहारकः] आहारक शरीर [च] और [कार्मणः] कार्मण शरीर—[सर्वे] सब [पुद्गलद्रव्यात्मकाः] पुद्गलद्रव्यात्मक हैं॥१७१॥

टीका :—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण—ये शरीर सब पुद्गलद्रव्यात्मक हैं। इससे निश्चित होता है कि आत्मा शरीर नहीं है॥१७१॥

तब फिर जीवका, शरीरादि सर्वपरद्रव्योंसे विभागका साधनभूत, असाधारण स्वलक्षण क्या है, सो कहते हैं :—

જે દેહ ઔદારિક, ને વૈક્રિય-તેજસ દેહ છે,
કાર્મણ-આહારક દેહ જે, તે સર્વ પુદ્ગલરૂપ છે. ૧૭૧.

છે ચેતનાગુણ, ગંધ-રૂપ-રસ-શબ્દ-વ્યક્તિ ન જીવને,
વળી લિંગગ્રહણ નથી અને સંસ્થાન ભાખ્યું ન તેહને. ૧૭૨.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अरसमरूपमगन्धमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम्।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानम्॥१७२॥

आत्मनो हि रसरूपगन्धगुणाभावस्वभावत्वात्स्पर्शगुणव्यक्त्यभावस्वभावत्वात् शब्द-पर्यायाभावस्वभावत्वात्तथा तन्मूलादलिंगग्राह्यत्वात्सर्वसंस्थानाभावस्वभावत्वाच्च पुद्गलद्रव्य-विभागसाधनमरसत्वमरूपत्वमगन्धत्वमव्यक्तत्वमशब्दत्वमलिंगग्राह्यत्वमसंस्थानत्वं चास्ति। सकल-पुद्गलापुद्गलाजीवद्रव्यविभागसाधनं तु चेतनागुणत्वमस्ति। तदेव च तस्य स्वजीव-द्रव्यमात्राश्रितत्वेन स्वलक्षणतां बिभ्राणं शेषद्रव्यान्तरविभागं साधयति। अलिंगग्राह्य इति वक्तव्ये यदलिंगग्रहणमित्युक्तं तद्बहुतरार्थप्रतिपत्तये। तथा हि—न लिंगैरिन्द्रियैर्ग्राहकतामा-

---

मुख्यतया द्वितीयविशेषान्तराधिकारः समाप्तः। अथैकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवस्य पुद्गलेन सह बन्ध-मुख्यतया व्याख्यानं करोति, तत्र षट्स्थलानि भवन्ति। तेष्वादौ 'अरसमरूवं' इत्यादि शुद्धजीव-व्याख्यानेन गाथैका, 'मुत्तो रूवादि' इत्यादिपूर्वपक्षपरिहारमुख्यतया गाथाद्वयमिति प्रथमस्थले गाथात्रयम्। तदनन्तरं भावबन्धमुख्यत्वेन 'उवओगमओ' इत्यादि गाथाद्वयम्। अथ परस्परं द्वयोः पुद्गलयोः बन्धो, जीवस्य रागादिपरिणामेन सह बन्धो, जीवपुद्गलयोर्बन्धश्चेति त्रिविधबन्धमुख्यत्वेन

अन्वयार्थ :—[जीवम्] जीवको [अरसम्] अरस, [अरूपम्] अरूप [अगंधम्] अगंध, [अव्यक्तम्] अव्यक्त, [चेतनागुणम्] चेतनागुणयुक्त, [अशब्दम्] अशब्द, [अलिंगग्रहणम्] अलिंगग्रहण (लिंग द्वारा ग्रहण न होने योग्य) और [अनिर्दिष्टसंस्थानम्] जिसका कोई संस्थान नहीं कहा गया है ऐसा [जानीहि] जानो॥१७२॥

टीका :—आत्मा (१) रसगुणके अभावरूप स्वभाववाला होनेसे, (२) रूपगुणके अभावरूप स्वभाववाला होनेसे, (३) गंधगुणके अभावरूप स्वभाववाला होनेसे, (४) स्पर्शगुणरूप व्यक्तताके अभावरूप स्वभाववाला होनेसे, (५) शब्दपर्यायके अभावरूप स्वभाववाला होनेसे, तथा (६) इन सबके कारण (अर्थात् रस-रूप-गंध इत्यादिके अभावरूप स्वभावके कारण) लिंगके द्वारा अग्राह्य होनेसे ओर (७) सर्व संस्थानोंके अभावरूप स्वभाववाला होनेसे, आत्माको पुद्गलद्रव्यसे विभागका साधनभूत (१) अरसपना, (२) अरूपपना, (३) अगंधपना, (४) अव्यक्तपना, (५) अशब्दपना, (६) अलिंगग्राह्यपना और (७) असंस्थानपना है। पुद्गल तथा अपुद्गल ऐसे समस्त अजीव द्रव्योंसे विभागका साधन तो चेतनागुणमयपना है; और वही, मात्र स्वजीवद्रव्याश्रित होनेसे स्वलक्षणपनेको धारण करता हुआ, आत्माका शेष अन्य द्रव्योंसे विभाग (भेद) सिद्ध करता है।

जहाँ 'अलिंगग्राह्य' करना है वहाँ जो 'अलिंगग्रहण' कहा है, वह बहुतसे अर्थोंकी

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

पन्नस्य ग्रहणं यस्येत्यतीन्द्रियज्ञानमयत्वस्य प्रतिपत्तिः। न लिंगैरिन्द्रियैर्ग्राह्यतामापन्नस्य ग्रहणं यस्येतीन्द्रियप्रत्यक्षाविषयत्वस्य। न लिंगादिन्द्रियगम्याद्धूमादग्नेरिव ग्रहणं यस्येतीन्द्रिय-प्रत्यक्षपूर्वकानुमानाविषयत्वस्य। न लिंगादेव परैः ग्रहणं यस्येत्यनुमेयमात्रत्वाभावस्य। न लिंगादेव परेषां ग्रहणं यस्येत्यनुमातृमात्रत्वाभावस्य। न लिंगात्स्वभावेन ग्रहणं यस्येति प्रत्यक्षज्ञातृत्वस्य। न लिंगेनोपयोगाख्यलक्षणेन ग्रहणं ज्ञेयार्थालम्बनं यस्येति बहिरर्थालम्बन-ज्ञानाभावस्य। न लिंगस्योपयोगाख्यलक्षणस्य ग्रहणं स्वयमाहरणं यस्येत्यनाहार्यज्ञानत्वस्य। न लिंगस्योपयोगाख्यलक्षणस्य ग्रहणं परेण हरणं यस्येत्यहार्यज्ञानत्वस्य। न लिंगे

'फासेहि पोग्गलाणं' इत्यादि सूत्रद्वयम्। ततः परं निश्चयेन द्रव्यबन्धकारणत्वाद्रागादिपरिणाम एव बन्ध इति कथनमुख्यतया 'रत्तो बंधदि' इत्यादि गाथात्रयम्। अथ भेदभावनामुख्यत्वेन 'भणिदा पुढवी' इत्यादि सूत्रद्वयम्। तदनन्तरं जीवो रागादिपरिणामानामेव कर्ता, न च द्रव्यकर्मणामिति कथनमुख्यत्वेन

प्रतिपत्ति (प्राप्ति, प्रतिपादन) करनेके लिये है। वह इसप्रकार है :—(१) ग्राहक (-ज्ञायक) जिसके लिंगोंके द्वारा अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण (-जानना) नहीं होता वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा अतीन्द्रियज्ञानमय' है इस अर्थकी प्राप्ति होती है। (२) ग्राह्य (ज्ञेय) जिसका लिंगोंके द्वारा अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण (-जानना) नहीं होता वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा इन्द्रियप्रत्यक्षका विषय नहीं है' इस अर्थकी प्राप्ति होती है। (३) जैसे धुंएँसे अग्निका ग्रहण (ज्ञान) होता है, उसीप्रकार लिंग द्वारा, अर्थात् इन्द्रियगम्य (-इन्द्रियोंसे जानने योग्य चिह्न) द्वारा जिसका ग्रहण नहीं होता वह अलिंगग्रहण है। इसप्रकार 'आत्मा इन्द्रियप्रत्यक्षपूर्वक अनुमानका विषय नहीं है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (४) दूसरोंके द्वारा–मात्र लिंग द्वारा ही जिसका ग्रहण नहीं होता वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा अनुमेय मात्र (केवल अनुमानसे ही ज्ञात होने योग्य) नहीं है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (५) जिसके लिंगसे ही परका ग्रहण नहीं होता वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा अनुमातामात्र (केवल अनुमान करनेवाला हो) नहीं है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (६) जिसके लिंगके द्वारा नहीं किन्तु स्वभावके द्वारा ग्रहण होता है वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (७) जिसके लिंग द्वारा अर्थात् उपयोगनामक लक्षण द्वारा ग्रहण नहीं है अर्थात् ज्ञेय पदार्थोंका आलम्बन नहीं है, वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्माके बाह्य पदार्थोंका आलम्बनवाला ज्ञान नहीं है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (८) जो लिंगको अर्थात् उपयोग नामक लक्षणको ग्रहण नहीं करता अर्थात् स्वयं (कहीं बाहरसे) नहीं लाता सो अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा जो कहींसे नहीं लाया जाता ऐसे ज्ञानवाला है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (९) जिसे लिंगका अर्थात् उपयोगनामक लक्षणका ग्रहण अर्थात् परसे हरण

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

उपयोगाख्यलक्षणे ग्रहणं सूर्य इवोपरागो यस्येति शुद्धोपयोगस्वभावस्य। न लिंगादुपयोगाख्यलक्षणाद् ग्रहणं पौद्गलिककर्मादानं यस्येति द्रव्यकर्मासंपृक्तत्वस्य। न लिंगेभ्य इन्द्रियेभ्यो ग्रहणं विषयाणामुपभोगो यस्येति विषयोपभोक्तृत्वाभावस्य। न लिंगात् मनो वेन्द्रियादिलक्षणाद् ग्रहणं जीवस्य धारणं यस्येति शुक्रार्तवानुविधायित्वाभावस्य। न लिंगस्य मेहनाकारस्य ग्रहणं यस्येति लौकिकसाधनमात्रत्वाभावस्य। न लिंगेनामेहनाकारेण ग्रहणं लोकव्याप्तिर्यस्येति कुहुकप्रसिद्धसाधनाकारलोकव्याप्तित्वाभावस्य। न लिंगानां स्त्रीपुन्नपुंसक-

---

'कुव्वं सहावमादा' इत्यादि षष्ठस्थले गाथासप्तकम्। यत्र मुख्यत्वमिति वदति तत्र यथासंभवमन्योऽप्यर्थो लभ्यत इति सर्वत्र ज्ञातव्यम्। एवमेकोनविंशतिगाथाभिस्तृतीयविशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा—अथ किं तर्हि जीवस्य शरीरादिपरद्रव्येभ्यो भिन्नमन्यद्रव्यासाधारणं स्वस्वरूपमिति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति—**अरसमरूवमगंधं** रसरूपगन्धरहितत्वात्तथा चाध्याहार्यमाणास्पर्शरूपत्वाच्च **अव्वत्तं** अव्यक्तत्वात् **असद्दं** अशब्दत्वात् **अलिंगग्गहणं** अलिङ्गग्रहणत्वात् **अणिद्दिट्ठसंठाणं** अनिर्दिष्टसंस्थानत्वाच्च **जाण जीवं** जानीहि जीवम्। अरसमरूपमगन्धमस्पर्शमव्यक्तमशब्दमलिङ्गग्रहणमनिर्दिष्टसंस्थानलक्षणं च हे शिष्य, जीवं जीवद्रव्यं जानीहि। पुनरपि कथंभूतम्। **चेदणागुणं** समस्तपुद्गलादिभ्योऽचेतनेभ्यो भिन्नः समस्तान्यद्रव्यासाधारणः स्वकीयानन्तजीवजातिसाधारणश्च चेतनागुणो यस्य तं चेतनागुणं

नहीं हो सकता (-अन्यसे नहीं ले जाया जा सकता) सो अलिंग ग्रहण है; इसप्रकार 'आत्माके ज्ञानका हरण नहीं किया जा सकता' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (१०) जिसे लिंगमें अर्थात् उपयोगनामक लक्षणमें ग्रहण अर्थात् सूर्यकी भाँति उपराग (-मलिनता, विकार) नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा शुद्धोपयोगस्वभावी है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (११) लिंग द्वारा अर्थात् उपयोगनामक लक्षण द्वारा ग्रहण अर्थात् पौद्गलिक कर्मका ग्रहण जिसके नहीं है, वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा द्रव्यकर्मसे असंयुक्त (असंबद्ध) है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (१२) जिसे लिंगोंके द्वारा अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण अर्थात् विषयोंका उपभोग नहीं है सो अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा विषयोंका उपभोक्ता नहीं है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (१३) लिंग द्वारा अर्थात् मन अथवा इन्द्रियादि लक्षणके द्वारा ग्रहण अर्थात् जीवत्वको धारण कर रखना जिसके नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा शुक्र और आर्तवको अनुविधायी (-अनुसार होनेवाला) नहीं है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (१४) लिंगका अर्थात् मेहनाकार (-पुरुषादिकी इन्द्रियका आकार)का ग्रहण जिसके नहीं है सो अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा लौकिकसाधनमात्र नहीं है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (१५) लिंगके द्वारा अर्थात् अमेहनाकारके द्वारा जिसका ग्रहण अर्थात् लोकमें व्यापकत्व नहीं है सो अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा पाखण्डियोंके प्रसिद्ध साधनरूप आकारवाला—लोकव्याप्तिवाला नहीं है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (१६) जिसके लिंगोका अर्थात् स्त्री,

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

वेदानां ग्रहणं यस्येति स्त्रीपुन्नपुंसकद्रव्यभावाभावस्य। न लिंगानां धर्मध्वजानां ग्रहणं यस्येति बहिरंगयतिलिंगाभावस्य। न लिंगं गुणो ग्रहणमर्थावबोधो यस्येति गुणविशेषानालीढ-शुद्धद्रव्यत्वस्य। न लिंगं पर्यायो ग्रहणमर्थावबोधविशेषो यस्येति पर्यायविशेषानालीढ-शुद्धद्रव्यत्वस्य। न लिंगं प्रत्यभिज्ञानहेतुर्ग्रहणमर्थावबोधसामान्यं यस्येति द्रव्यानालीढशुद्ध-पर्यायत्वस्य॥१७२॥

अथ कथममूर्तस्यात्मनः स्निग्धरूक्षत्वाभावाद्बन्धो भवतीति पूर्वपक्षयति—

च। अलिङ्गग्राह्यमिति वक्तव्ये यदलिङ्गग्रहणमित्युक्तं तत्किमर्थमिति चेत्, बहुतरार्थप्रतिपत्त्यर्थम्। तथाहि—लिङ्गमिन्द्रियं तेनार्थानां ग्रहणं परिच्छेदनं न करोति तेनालिङ्गग्रहणो भवति। तदपि कस्मात्। स्वयमेवातीन्द्रियाखण्डज्ञानसहितत्वात्। तेनैव लिङ्गशब्दवाच्येन चक्षुरादीन्द्रियेणान्यजीवानां यस्य ग्रहणं परिच्छेदनं कर्तुं नायाति तेनालिङ्गग्रहण उच्यते। तदपि कस्मात्। निर्विकारातीन्द्रिय-स्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानगम्यत्वात्। लिङ्गं धूमादि तेन धूमलिङ्गोद्भवानुमानेनाग्निवदनुमेयभूतपरपदार्थानां ग्रहणं न करोति तेनालिङ्गग्रहण इति। तदपि कस्मात्। स्वयमेवालिङ्गोद्भवातीन्द्रियज्ञानसहितत्वात्। तेनैव लिङ्गोद्भवानुमानेनाग्निग्रहणवत् परपुरुषाणां यस्यात्मनो ग्रहणं परिज्ञानं कर्तुं नायाति तेनालिङ्ग-ग्रहण इति। तदपि कस्मात्। अलिङ्गोद्भवातीन्द्रियज्ञानगम्यत्वात्। अथवा लिङ्गं चिह्नं लाञ्छनं शिखाजटाधारणादि तेनार्थानां ग्रहणं परिच्छेदनं न करोति तेनालिङ्गग्रहण इति। तदपि कस्मात्। स्वाभाविकाचिह्नोद्भवातीन्द्रियज्ञानसहितत्वात्। तेनैव चिह्नोद्भवज्ञानेन परपुरुषाणां यस्यात्मनो ग्रहणं परिज्ञानं कर्तृं नायाति तेनालिङ्गग्रहण इति। तदपि कस्मात्। निरुपरागस्वसंवेदनज्ञानगम्यत्वादिति।

पुरुष और नपुंसक वेदोंका ग्रहण नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा द्रव्यसे तथा भावसे स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक नहीं है' इस अर्थकी प्राप्ति होती है (१७) लिंगोका अर्थात् धर्मचिह्नोंका ग्रहण जिसके नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्माके बहिरंग यतिलिंगोंका अभाव है' इस अर्थकी प्राप्ति होती है। (१८) लिंग अर्थात् गुण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध (पदार्थज्ञान) जिसके नहीं है सो अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा गुणविशेषसे आलिंगित न होनेवाला ऐसा शुद्ध द्रव्य है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (१९) लिंग अर्थात् पर्याय ऐसा जो ग्रहण, अर्थात् अर्थावबोधविशेष जिसके नहीं है सो अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा पर्यायविशेषसे आलिंगित न होनेवाला ऐसा शुद्ध द्रव्य है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। (२०) लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य जिसके नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार 'आत्मा द्रव्यसे नहीं आलिंगित ऐसी शुद्ध पर्याय है' ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है॥१७२॥

अब, अमूर्त ऐसे आत्माके, स्निग्ध-रूक्षत्वका अभाव होनेसे बंध कैसे हो सकता है? ऐसा पूर्व पक्ष उपस्थित करते हैं :—

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

मुत्तो रूवादिगुणो बज्झदि फासेहिं अण्णमण्णेहिं।
तव्विवरीदो अप्पा बज्झदि किध पोग्गलं कम्मं॥१७३॥

मूर्तो रूपादिगुणो बध्यते स्पर्शैरन्योन्यैः।
तद्विपरीत आत्मा बध्नाति कथं पौद्गलं कर्म॥१७३॥

मूर्तयोर्हि तावत्पुद्गलयो रूपादिगुणयुक्तत्वेन यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषादन्योन्यबन्धोऽवधार्यते एव। आत्मकर्मपुद्गलयोस्तु स कथमवधार्यते; मूर्तस्य कर्मपुद्गलस्य रूपादिगुणयुक्तत्वेन यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषसंभवेऽप्यमूर्तस्यात्मनो रूपादिगुणयुक्तत्वाभावेन

एवमलिङ्गग्रहणशब्दस्य व्याख्यानक्रमेण शुद्धजीवस्वरूपं ज्ञातव्यमित्यभिप्रायः॥१७२॥ अथामूर्तशुद्धात्मनो व्याख्याने कृते सत्यमूर्तजीवस्य मूर्तपुद्गलकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति पूर्वपक्षं करोति—**मुत्तो रूवादिगुणो** मूर्तो रूपरसगन्धस्पर्शत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणः **बज्झदि** अन्योन्यसंश्लेषेण बध्यते बन्धमनुभवति, तत्र दोषो नास्ति। **कैः** कृत्वा। **फासेहिं अण्णमण्णेहिं** स्निग्धरूक्षगुणलक्षणस्पर्शसंयोगैः। किंविशिष्टैः। अन्योन्यैः परस्परनिमित्तैः। **तव्विवरीदो अप्पा बज्झदि किध पोग्गलं कम्मं** तद्विपरीतात्मा बध्नाति कथं पौद्गलं कर्मेति। अयं परमात्मा निर्विकारपरमचैतन्यचमत्कारपरिणतत्वेन बन्धकारणभूतस्निग्धरूक्षगुणस्थानीयरागद्वेषादिविभावपरिणामरहितत्वादमूर्तत्वाच्च

गाथा : १७३ अन्वयार्थ :—[**मूर्तः**] मूर्त (ऐसे पुद्गल) तो [**रूपादिगुणः**] रूपादिगुणयुक्त होनेसे [**अन्योन्यैः स्पर्शैः**] परस्पर (बंधयोग्य) स्पर्शोंसे [**बध्यते**] बँधते हैं; (परन्तु) [**तद्विपरीतः आत्मा**] उससे विपरीत (-अमूर्त) ऐसा आत्मा [**पौद्गलिकं कर्म**] पौद्गलिक कर्मको [**कथं**] कैसे [**बध्नाति**] बाँधता है? ॥१७३॥

टीका :—मूर्त ऐसे दो पुद्गल तो रूपादिगुणयुक्त होनेसे यथोक्त स्निग्धरूक्षत्वरूप स्पर्शविशेष (बंधयोग्य स्पर्श)के कारण उनका पारस्परिक बंध अवश्य समझा जा सकता है; किन्तु आत्मा और कर्मपुद्गलका बंध होना कैसे समझा जा सकता है? क्योंकि मूर्त ऐसा कर्मपुद्गल रूपादिगुणयुक्त है, इसलिये उसके यथोक्त स्निग्धरूक्षत्वरूप स्पर्शविशेषका संभव होने पर भी अमूर्त ऐसे आत्माको रूपादिगुणयुक्तता नहीं है इसलिये उसके यथोक्त स्निग्धरूक्षत्वरूप स्पर्शविशेषका असंभव होनेसे एक अंग विकल है। (अर्थात् बंधयोग्य दो

अन्योन्य स्पर्शथी बंध थाय रूपादिगुणयुत मूर्तने;
पण जीव मूर्तिरहित बांधे केम पुद्गलकर्मने? १७३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषासंभावनया चैकांगविकलत्वात् ।।१७३।।

अथैवममूर्तस्याप्यात्मनो बन्धो भवतीति सिद्धान्तयति—

रूवादिएहिं रहिदो पेच्छदि जाणादि रूवमादीणि।
दव्वाणि गुणे य जधा तह बंधो तेण जाणीहि।।१७४।।

रूपादिकै रहितः पश्यति जानाति रूपादीनि।
द्रव्याणि गुणांश्च यथा तथा बन्धस्तेन जानीहि।।१७४।।

येन प्रकारेण रूपादिरहितो रूपीणि द्रव्याणि तद्गुणांश्च पश्यति जानाति च, तेनैव प्रकारेण रूपादिरहितो रूपिभिः कर्मपुद्गलैः किल बध्यते; अन्यथा कथममूर्तो मूर्तं पश्यति

पौद्गलं कर्म कथं बध्नाति, न कथमपीति पूर्वपक्षः।।१७३।। अथैवममूर्तस्याप्यात्मनो नयविभागेन बन्धो भवतीति प्रत्युत्तरं ददाति—रूवादिएहिं रहिदो अमूर्तपरमचिज्ज्योतिःपरिणतत्वेन तावदयमात्मा रूपादिरहितः। तथाविधः सन् किं करोति। पेच्छदि जाणादि मुक्तावस्थायां युगपत्परिच्छित्तिरूप-सामान्यविशेषग्राहकेवलदर्शनज्ञानोपयोगेन यद्यपि तादात्म्यसंबन्धो नास्ति तथापि ग्राह्यग्राहकलक्षण-संबन्धेन पश्यति जानाति। कानि कर्मतापन्नानि। रूवमादीणि दव्वाणि रूपरसगन्धस्पर्शसहितानि मूर्तद्रव्याणि। न केवलं द्रव्याणि गुणे य जधा तद्गुणांश्च यथा। अथवा यथा कश्चित्संसारी

अंगोंमेंसे एक अंग अयोग्य है—स्पर्शगुणरहित होनेसे बंधकी योग्यतावाला नहीं है।) ।।१७३।।

अब ऐसा सिद्धान्त निश्चित करते हैं कि आत्मा अमूर्त होने पर भी उसको इसप्रकार बंध होता है :—

अन्वयार्थ :—[यथा] जैसे [रूपादिकैः रहितः] रूपादिरहित (जीव) [रूपादीनि] रूपादिको-[द्रव्याणि गुणान् च] द्रव्योंको तथा गुणोंको (रूपी द्रव्योंको और उनके गुणोंको)—[पश्यति जानाति] देखता है और जानता है [तथा] उसीप्रकार [तेन] उसके साथ (-अरूपीका रूपीके साथ) [बंधः जानीहि] बंध जानो।।१७४।।

टीका :—जैसे रूपादिरहित (जीव) रूपी द्रव्योंको तथा उनके गुणोंको देखता है तथा जानता है उसीप्रकार रूपादिरहित (जीव) रूपी कर्मपुद्गलोंके साथ बँधता है; क्योंकि यदि ऐसा न हो तो यहाँ भी (देखने-जाननेके संबंधमें भी) वह प्रश्न अनिवार्य

जे रीत दर्शन-ज्ञान थाय रूपादिनुं—गुण-द्रव्यनुं,
ते रीत बंधन जाण मूर्तिरहितने पण मूर्तनुं. १७४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

जानाति चेत्यत्रापि पर्यनुयोगस्यानिवार्यत्वात्। न चैतदत्यन्तदुर्घटत्वाद्दार्ष्टान्तिकीकृतं, किंतु दृष्टान्तद्वारेणाबालगोपालप्रकटितम्। तथा हि—यथा बालकस्य गोपालकस्य वा पृथगवस्थितं मृद्बलीवर्दं बलीवर्दं वा पश्यतो जानतश्च न बलीवर्देन सहास्ति संबन्धः, विषय-भावावस्थितबलीवर्दनिमित्तोपयोगाधिरूढबलीवर्दाकारदर्शनज्ञानसंबन्धो बलीवर्दसंबन्धव्यवहार-साधकस्त्वस्त्येव, तथा किलात्मनो नीरूपत्वेन स्पर्शशून्यत्वान्न कर्मपुद्गलैः सहास्ति संवन्धः, एकावगाहभावावस्थितकर्मपुद्गलनिमित्तोपयोगाधिरूढरागद्वेषादिभावसंबन्धः कर्मपुद्गलबन्ध-व्यवहारसाधकस्त्वस्त्येव॥१७४॥

जीवो विशेषभेदज्ञानरहितः सन् काष्ठपाषाणाद्यचेतनजिनप्रतिमां दृष्ट्वा मदीयाराध्योऽयमिति मन्यते। यद्यपि तत्र सत्तावलोकदर्शनेन सह प्रतिमायास्तादात्म्यसंबन्धो नास्ति तथापि परिच्छेद्यपरिच्छेदक-लक्षणसंबन्धोऽस्ति। यथा वा समवसरणे प्रत्यक्षजिनेश्वरं दृष्ट्वा विशेषभेदज्ञानी मन्यते मदीयाराध्योऽयमिति। तत्रापि यद्यप्यवलोकनज्ञानस्य जिनेश्वरेण सह तादात्म्यसंबन्धो नास्ति तथाप्या-राध्याराधकसंबन्धोऽस्ति। तह बंधो तेण जाणीहि तथा बन्धं तेनैव दृष्टान्तेन जानीहि। अयमत्रार्थः— यद्यप्ययमात्मा निश्चयेनामूर्तस्तथाप्यनादिकर्मबन्धवशाद्व्यवहारेण मूर्तः सन् द्रव्यबन्धनिमित्तभूतं रागादि-विकल्परूपं भावबन्धोपयोगं करोति। तस्मिन्सति मूर्तद्रव्यकर्मणा सह यद्यपि तादात्म्यसंबन्धो नास्ति

है कि अमूर्त मूर्तको कैसे देखता-जानता है?

और ऐसा भी नहीं है कि यह (अरूपीका रूपोके साथ बंध होनेकी) बात अत्यन्त दुर्घट है इसलिये उसे दार्ष्टान्तरूप बनाया है, परन्तु दृष्टांत द्वारा आबालगोपाल सभीको प्रगट (ज्ञात) हो जाय इसलिये दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। यथा :—बालगोपालका पृथक् रहनेवाले मिट्टीके बैलको अथवा (सच्चे) बैलको देखने और जानने पर बैलके साथ संबंध नहीं है तथापि विषयरूपसे रहनेवाला बैल जिनका निमित्त है ऐसे उपयोगारूढ़ वृषभाकार दर्शन-ज्ञानके साथका संबंध बैलके साथके संबंधरूप व्यवहारका साधक अवश्य है; इसीप्रकार आत्मा अरूपीपनेके कारण स्पर्शशून्य है, इसलिये उसका कर्मपुद्गलोंके साथ संबंध नहीं है, तथापि एकावगाहरूपसे रहनेवाले कर्मपुद्गल जिनके निमित्त हैं ऐसे उपयोगारूढ़ रागद्वेषादिकभावोंके साथका संबंध कर्मपुद्गलोंके साथके बंधरूप व्यवहारका साधक अवश्य है।

भावार्थ :—'आत्मा अमूर्तिक होने पर भी वह मूर्तिककर्मपुद्गलोंके साथ कैसे बँधता है?' इस प्रश्नका उत्तर देते हुए आचार्यदेवने कहा है कि—आत्माके अमूर्तिक होने पर भी वह मूर्तिक पदार्थोंको कैसे जानता है? जैसे वह मूर्तिक पदार्थोंको जानता है उसीप्रकार मूर्तिक कर्मपुद्गलोंके साथ बँधता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ भावबन्धस्वरूपं ज्ञापयति—

उवओगमओ जीवो मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि।
पप्पा विविधे विसये जो हि पुणो तेहिं सो बंधो॥१७५॥

तथापि पूर्वोक्तदृष्टान्तेन संश्लेषसंबन्धोऽस्तीति नास्ति दोषः॥१७४॥ एवं शुद्धबुद्धैकस्वभाव-जीवकथनमुख्यत्वेन प्रथमगाथा, मूर्तिरहितजीवस्य मूर्तकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति पूर्वपक्षरूपेण

वास्तवमें अरूपी आत्माका रूपी पदार्थोंके साथ कोई संबंध न होने पर भी अरूपीका रूपीके साथ संबंध होनेका व्यवहार भी विरोधको प्राप्त नहीं होता। जहाँ ऐसा कहा जाता है कि 'आत्मा मूर्तिक पदार्थको जानता है' वहाँ परमार्थतः अमूर्तिक आत्माका मूर्तिक पदार्थके साथ कोई संबंध नहीं है; उसका तो मात्र उस मूर्तिक पदार्थके आकाररूप होनेवाले ज्ञानके साथ ही संबंध है और उस पदार्थाकार ज्ञानके साथके संबंधके कारण ही 'अमूर्तिक आत्मा मूर्तिक पदार्थको जानता है' ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिकका संबंधरूप व्यवहार सिद्ध होता है। इसीप्रकार जहाँ ऐसा कहा जाता है कि 'अमुक आत्माका मूर्तिक कर्मपुद्गलोंके साथ बंध है' वहाँ परमार्थतः अमूर्तिक आत्माका मूर्तिक कर्मपुद्गलोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; आत्माका तो कर्मपुद्गल जिसमें निमित्त हैं ऐसे रागद्वेषादिभावोंके साथ ही सम्बन्ध (बंध) है और उन कर्मनिमित्तक रागद्वेषादि भावोंके साथ सम्बन्ध होनेसे ही 'इस आत्माका मूर्तिक कर्मपुद्गलोंके साथ बंध है' ऐसा अमूर्तिकमूर्तिकका बन्धरूप व्यवहार सिद्ध होता है।

यद्यपि मनुष्यको स्त्री-पुत्र-धनादिके साथ वास्तवमें कोई सम्बन्ध नहीं है, वे उस मनुष्यसे सर्वथा भिन्न हैं, तथापि स्त्री-पुत्र-धनादिके प्रति राग करनेवाले मनुष्यको रागका बन्धन होनेसे और उस रागमें स्त्री-पुत्र-धनादिके निमित्त होनेसे व्यवहारसे ऐसा अवश्य कहा जाता है कि 'इस मनुष्यको स्त्री-पुत्र-धनादिका बन्धन है; इसीप्रकार, यद्यपि आत्माका कर्मपुद्गलोंके साथ वास्तवमें कोई सम्बन्ध नहीं है, वे आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं, तथापि रागद्वेषादि भाव करनेवाले आत्माको रागद्वेषादि भावोंका बन्धन होनेसे और उन भावोंमें कर्मपुद्गल निमित्त होनेसे व्यवहारसे ऐसा अवश्य कहा जा सकता है कि 'इस आत्माको कर्मपुद्गलोंका बन्धन है'॥१७४॥

अब भावबंधका स्वरूप बतलाते हैं :—

विधविध विषयो पामीने उपयोग-आत्मक जीव जे
प्रद्वेष-राग-विमोहभावे परिणमे, ते बंध छे. १७५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

उपयोगमयो जीवो मुह्यति रज्यति वा प्रद्वेष्टि।
प्राप्य विविधान् विषयान् यो हि पुनस्तैः स बन्धः॥१७५॥

अयमात्मा सर्व एव तावत्सविकल्पनिर्विकल्पपरिच्छेदात्मकत्वादुपयोगमयः। तत्र यो हि नाम नानाकारान् परिच्छेद्यानर्थानासाद्य मोहं वा रागं वा द्वेषं वा समुपैति स नाम तैः परप्रत्ययैरपि मोहरागद्वेषैरुपरक्तात्मस्वभावत्वान्नीलपीतरक्तोपाश्रयप्रत्ययनीलपीतरक्तत्वैरुपरक्त-स्वभावः स्फटिकमणिरिव स्वयमेक एव तद्भावद्वितीयत्वाद्बन्धो भवति॥१७५॥

द्वितीया, तत्परिहाररूपेण तृतीया चेति गाथात्रयेण प्रथमस्थलं गतम्। अथ रागद्वेषमोहलक्षणं भावबन्ध-स्वरूपमाख्याति—उवओगमओ जीवो उपयोगमयो जीवः, अयं जीवो निश्चयनयेन विशुद्धज्ञान-दर्शनोपयोगमयस्तावत्तथाभूतोऽप्यनादिबन्धवशात्सोपाधिस्फटिकवत् परोपाधिभावेन परिणतः सन्। किं करोति। मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि मुह्यति रज्यति वा प्रद्वेष्टि द्वेषं करोति। किं कृत्वा पूर्वं। पप्पा प्राप्य। कान्। विविधे विसये निर्विषयपरमात्मस्वरूपभावनाविपक्षभूतान्विविधपञ्चेन्द्रियविषयान्। जो हि पुणो यः पुनरित्थंभूतोऽस्ति जीवो हि स्फुटं, तेहिं संबंधो तैः संबद्धो भवति, तैः पूर्वोक्तराग-द्वेषमोहैः कर्तृभूतैर्मोहरागद्वेषरहितजीवस्य शुद्धपरिणामलक्षणं परमधर्ममलभमानः सन् स जीवो बद्धो भवतीति। अत्र योऽसौ रागद्वेषमोहपरिणामः स एव भावबन्ध इत्यर्थः॥१७५॥ अथ भावबन्ध-

---

अन्वयार्थ :—[यः हि पुनः] जो [उपयोगमयः जीवः] उपयोगमय जीव [विविधान् विषयान्] विविध विषयोंको [प्राप्य] प्राप्त करके [मुह्यति] मोह करता है, [रज्यति] राग करता है, [वा] अथवा [प्रद्वेष्टि] द्वेष करता है, [सः] वह जीव [तैः] उनके द्वारा (मोह-राग-द्वेषके द्वारा) [बन्धः] बन्धरूप है॥१७५॥

टीका :—प्रथम तो यह आत्मा सर्व ही उपयोगमय है, क्योंकि वह सविकल्प और निर्विकल्प प्रतिभासस्वरूप है (अर्थात् ज्ञान-दर्शनस्वरूप है।) उसमें जो आत्मा विविधाकार प्रतिभासित होनेवाले पदार्थोंको प्राप्त करके मोह, राग अथवा द्वेष करता है, वह आत्मा—काला, पीला, और लाल [१]आश्रय जिनका निमित्त है ऐसे कालेपन, पीलेपन और लालपनके द्वारा उपरक्त स्वभाववाले स्फटिकमणिकी भाँति—पर जिनका निमित्त है ऐसे मोह, राग और द्वेषके द्वारा उपरक्त (विकारी, मलिन, कलुषित,) आत्मस्वभाववाला होनेसे, स्वयं अकेला ही बंध (बंधरूप) है, क्योंकि मोहरागद्वेषादिभाव उसका [२]द्वितीय है॥१७५॥

---

१. आश्रय = जिसमें स्फटिकमणि रखा हो वह पात्र।

२. द्वितीय = दूसरा ['बन्ध तो दोके बीच होता है, अकेला आत्मा बंधस्वरूप कैसे हो सकता है?' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि—एक तो आत्मा और दूसरा मोहरागद्वेषादिभाव होनेसे, मोहरागद्वेषादिभावके द्वारा मलिनस्वभाववाला आत्मा स्वयं ही भावबंध है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ भावबन्धयुक्तिं द्रव्यबन्धस्वरूपं च प्रज्ञापयति—

भावेण जेण जीवो पेच्छदि जाणादि आगदं विसये।
रज्जदि तेणेव पुणो बज्झदि कम्म त्ति उवदेसो॥१७६॥

भावेन येन जीवः पश्यति जानात्यागतं विषये।
रज्यति तेनैव पुनर्बध्यते कर्मेत्युपदेशः॥१७६॥

अयमात्मा साकारनिराकारपरिच्छेदात्मकत्वात्परिच्छेद्यतामापद्यमानमर्थजातं येनैव मोहरूपेण रागरूपेण द्वेषरूपेण वा भावेन पश्यति जानाति च तेनैवोपरज्यत एव। योऽयमुपरागः स खलु स्निग्धरूक्षत्वस्थानीयो भावबन्धः। अथ पुनस्तेनैव पौद्गलिकं कर्म

युक्तिं द्रव्यबन्धस्वरूपं च प्रतिपादयति—**भावेण जेण** भावेन परिणामेन येन **जीवो** जीवः कर्ता **पेच्छदि जाणादि** निर्विकल्पदर्शनपरिणामेन पश्यति सविकल्पज्ञानपरिणामेन जानाति। **किं कर्मतापन्नं, आगदं विसये** आगतं प्राप्तं किमपीष्टानिष्टं वस्तु पञ्चेन्द्रियविषये। **रज्जदि तेणेव पुणो** रज्यते तेनैव पुनः आदिमध्यान्तवर्जितं रागादिदोषरहितं चिज्ज्योतिःस्वरूपं निजात्मद्रव्यमरोचमानस्तथैवाजानन् सन् समस्तरागादिविकल्पपरिहारेणाभावयंश्च तेनैव पूर्वोक्तज्ञानदर्शनोपयोगेन रज्यते रागं करोति इति भावबन्धयुक्तिः। **बज्झदि कम्म त्ति उवदेसो** तेन भावबन्धेन नवतरद्रव्यकर्म बध्नातीति

अब, भावबंधकी युक्ति और द्रव्यबन्धका स्वरूप कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**जीवः**] जीव [**येन भावेन**] जिस भावसे [**विषये आगतं**] विषयागत पदार्थको [**पश्यति जानाति**] देखता है और जानता है, [**तेन एव**] उसीसे [**रज्यति**] उपरक्त होता है; [**पुनः**] और उसीसे [**कर्म बध्यते**] कर्म बँधता है;—(**इति**) ऐसा (**उपदेशः**) उपदेश है॥१७६॥

टीका :—यह आत्मा साकार और निराकार प्रतिभासस्वरूप (-ज्ञान और दर्शनस्वरूप) होनेसे प्रतिभास्य (प्रतिभासित होने योग्य) पदार्थसमूहको जिस मोहरूप, रागरूप या द्वेषरूप भावसे देखता है और जानता है, उसीसे उपरक्त होता है। जो यह उपराग (विकार) है वह वास्तवमें [१]स्निग्धरूक्षत्वस्थानीय भावबंध है। और उसीसे अवश्य

१. स्निग्धरूक्षत्वस्थानीय = स्निग्धता और रूक्षताके समान। (जैसे पुद्गलमें विशिष्ट स्निग्धतारूक्षता वह बन्ध है, उसीप्रकार जीवमें रागद्वेषरूप विकार भावबन्ध है)

जे भावथी देखे अने जाणे विषयगत अर्थने,
तेनाथी छे उपरक्तता; वळी कर्मबंधन ते वडे. १७६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

बध्यत एव। इत्येष भावबन्धप्रत्ययो द्रव्यबन्धः ॥१७६॥

अथ पुद्गलजीवतदुभयबन्धस्वरूपं ज्ञापयति—

फासेहिं पोग्गलाणं बंधो जीवस्स रागमादीहिं।
अण्णोण्णं अवगाहो पोग्गलजीवप्पगो भणिदो ॥१७७॥

स्पर्शैः पुद्गलानां बन्धो जीवस्य रागादिभिः।
अन्योन्यमवगाहः पुद्गलजीवात्मको भणितः ॥१७७॥

यस्तावदत्र कर्मणां स्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषैरेकत्वपरिणामः स केवलपुद्गलबन्धः। यस्तु जीवस्यौपाधिकमोहरागद्वेषपर्यायैरेकत्वपरिणामः स केवलजीवबन्धः। यः पुनः जीव-

---

द्रव्यबन्धस्वरूपं चेत्युपदेशः ॥१७६॥ एवं भावबन्धकथनमुख्यतया गाथाद्वयेन द्वितीयस्थलं गतम्। अथ पूर्वनवतरपुद्गलद्रव्यकर्मणोः परस्परबन्धो, जीवस्य तु रागादिभावेन सह बन्धो, जीवस्यैव नवतरद्रव्यकर्मणा सह चेति त्रिविधबन्धस्वरूपं प्रज्ञापयति---**फासेहिं पोग्गलाणं बंधो स्पर्शैः पुद्गलानां बन्धः।** पूर्वनवतरपुद्गलद्रव्यकर्मणोर्जीवगतरागादिभावनिमित्तेन स्वकीयस्निग्धरूक्षोपादानकारणेन च परस्परस्पर्शसंयोगेन योऽसौ बन्धः स पुद्गलबन्धः। **जीवस्स रागमादीहिं** जीवस्य रागादिभिः। निरुपरागपरमचैतन्यरूपनिजात्मतत्त्वभावनाच्युतस्य जीवस्य यद्रागादिभिः सह परिणमनं स जीवबन्ध इति। **अण्णोण्णस्सवगाहो पुग्गलजीवप्पगो भणिदो** अन्योन्यस्यावगाहः पुद्गलजीवात्मको भणितः। निर्विकार-

---

पौद्गलिक कर्म बँधता है। इसप्रकार यह द्रव्यबंधका निमित्त भावबंध है ॥१७६॥

अब पुद्गलबंध, जीवबंध और उन दोनोंके बंधका स्वरूप कहते हैं :—

गाथा : १७७ अन्वयार्थ :—[स्पर्शैः] स्पर्शोंके साथ [पुद्गलानां बंधः] पुद्गलोंका बंध, [रागादिभिः जीवस्य] रागादिके साथ जीवका बंध और [अन्योन्यम् अवगाहः] अन्योन्य अवगाह वह [पुद्गलजीवात्मकः भणितः] पुद्गलजीवात्मक बंध कहा गया है ॥१७७॥

टीका :—प्रथम तो यहाँ, कर्मोंका जो स्निग्धता-रूक्षतारूप स्पर्शविशेषोंके साथ एकत्वपरिणाम है सो केवल पुद्गलबंध है; और जीवका औपाधिक मोह-राग-द्वेषरूप पर्यायोंके साथ जो एकत्व परिणाम है सो केवल जीवबंध है; और जीव तथा कर्मपुद्गलके

रागादि सह आत्मा तणो, ने स्पर्श सह पुद्गलतणो,
अन्योन्य जे अवगाह तेने बंध उभयात्मक कह्यो. १७७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

कर्मपुद्गलयोः परस्परपरिणामनिमित्तमात्रत्वेन विशिष्टतरः परस्परमवगाहः स तदुभयबन्धः ॥१७७॥

अथ द्रव्यबन्धस्य भावबन्धहेतुकत्वमुज्जीवयति—

सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पोग्गला काया।
पविसंति जहाजोग्गं चिट्ठंति हि जंति बज्झंति॥१७८॥

सप्रदेशः स आत्मा तेषु प्रदेशेषु पुद्गलाः कायाः।
प्रविशन्ति यथायोग्यं तिष्ठन्ति च यान्ति बध्यन्ते॥१७८॥

अयमात्मा लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वात्सप्रदेशः। अथ तेषु तस्य प्रदेशेषु कायवाङ्मनोवर्गणालम्बनः परिस्पन्दो यथा भवति तथा कर्मपुद्गलकायाः स्वयमेव परिस्पन्द-

---

स्वसंवेदनज्ञानरहितत्वेन स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषपरिणतजीवस्य बन्धयोग्यस्निग्धरूक्षपरिणामपरिणतपुद्गलस्य च योऽसौ परस्परावगाहलक्षणः स इत्थंभूतबन्धो जीवपुद्गलबन्ध इति त्रिविधबन्धलक्षणं ज्ञातव्यम्॥१७७॥ अथ 'बन्धो जीवस्स रागमादीहिं' पूर्वसूत्रे यदुक्तं तदेव रागत्वं द्रव्यबन्धस्य कारणमिति विशेषेण समर्थयति—**सपदेसो सो अप्पा** स प्रसिद्धात्मा लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वात्तावत्सप्रदेशः। **तेसु पदेसेसु पोग्गला काया** तेषु प्रदेशेषु कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलकायाः कर्तारः **पविसंति** प्रविशन्ति। कथम्। **जहाजोग्गं** मनोवचनकायवर्गणालम्बनवीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितात्मप्रदेशपरिस्पन्द-

---

परस्पर परिणामके निमित्तमात्रसे जो विशिष्टतर परस्पर अवगाह है सो उभयबंध है। [अर्थात् जीव और कर्मपुद्गल एक दूसरेके परिणाममें निमित्तमात्र होवें, ऐसा (विशिष्टप्रकारका–खासप्रकारका) जो उनका एकक्षेत्रावगाहसंबंध है सो वह पुद्गलजीवात्मक बंध है।] ॥१७७॥

अब, ऐसा बतलाते हैं कि द्रव्यबंधका हेतु भावबंध है :—

अन्वयार्थ :—[**सः आत्मा**] वह आत्मा [**सप्रदेशः**] सप्रदेश है; [**तेषु प्रदेशेषु**] उन प्रदेशोंमें [**पुद्गलाः कायाः**] पुद्गलसमूह [**प्रविशन्ति**] प्रवेश करते हैं, [**यथायोग्यं तिष्ठन्ति**] यथायोग्य रहते हैं, [**यान्ति**] जाते हैं, [**च**] और [**बध्यन्ते**] बंधते हैं॥१७८॥

टीका :—यह आत्मा लोकाकाशतुल्य असंख्यप्रदेशी होनेसे सप्रदेश है। उसके इन प्रदेशोंमें कायवर्गणा, वचनवर्गणा और मनोवर्गणाका आलम्बनवाला परिस्पन्द (कम्पन) जिस

सप्रदेश छे ते जीव, जीवप्रदेशमां आवे अने
पुद्गलसमूह रहे यथोचित, जाय छे, बंधाय छे. १७८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

वन्तः प्रविशन्त्यपि तिष्ठन्त्यपि गच्छन्त्यपि च। अस्ति चेज्जीवस्य मोहरागद्वेषरूपो भावो बध्यन्तेऽपि च। ततोऽवधार्यते द्रव्यबन्धस्य भावबन्धो हेतुः॥१७८॥

अथ द्रव्यबन्धहेतुत्वेन रागपरिणाममात्रस्य भावबन्धस्य निश्चयबन्धत्वं साधयति—

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो॥१७९॥

रक्तो बध्नाति कर्म मुच्यते कर्मभि रागरहितात्मा।
एष बन्धसमासो जीवानां जानीहि निश्चयतः॥१७९॥

यतो रागपरिणत एवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा बध्यते, न वैराग्यपरिणतः; अभिनवेन

लक्षणयोगानुसारेण यथायोग्यम्। न केवलं प्रविशन्ति चिट्ठंति हि प्रवेशानन्तरं स्वकीयस्थितिकालपर्यन्तं तिष्ठन्ति हि स्फुटम्। न केवलं तिष्ठन्ति जंति स्वकीयोदयकालं प्राप्य फलं दत्वा गच्छन्ति, बज्झंति केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपमोक्षप्रतिपक्षभूतबन्धस्य कारणं रागादिकं लब्ध्वा पुनरपि द्रव्यबन्धरूपेण बध्यन्ते च। अत एतदायातं रागादिपरिणाम एव द्रव्यबन्धकारणमिति। अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—प्रविशन्ति प्रदेशबन्धास्तिष्ठन्ति स्थितिबन्धाः फलं दत्वा गच्छन्त्यनुभागबन्धा बध्यन्ते प्रकृतिबन्धा इति॥१७८॥ एवं त्रिविधबन्धमुख्यतया सूत्रद्वयेन तृतीयस्थलं गतम्। अथ द्रव्यबन्धकारणत्वान्निश्चयेन रागादिविकल्परूपो भावबन्ध एव बन्ध इति प्रज्ञापयति—रत्तो बंधदि कम्मं रत्तो

प्रकारसे होता है, उस प्रकारसे कर्मपुद्गलके समूह स्वयमेव परिस्पन्दवाले होते हुए प्रवेश भी करते हैं, रहते भी हैं, और जाते भी हैं; और यदि जीवके मोह-राग-द्वेषरूप भाव हों तो बंधते भी हैं। इसलिये निश्चित होता है कि द्रव्यबंधका हेतु भावबंध है॥१७८॥

अब, ऐसा सिद्ध करते हैं कि—राग परिणाममात्र जो भावबंध है सो द्रव्यबन्धका हेतु होनेसे वही निश्चयबन्ध है :—

अन्वयार्थ :—[रक्तः] रागी आत्मा [कर्म बध्नाति] कर्म बाँधता है, [रागरहितात्मा] रागरहित आत्मा [कर्मभिः मुच्यते] कर्मोंसे मुक्त होता है;—[एषः] यह [जीवानां] जीवोंके [बंधसमासः] बन्धका संक्षेप [निश्चयतः] निश्चयसे [जानीहि] जानो॥१७९॥

टीका :—रागपरिणत जीव ही नवीन द्रव्यकर्मसे बँधता है, वैराग्यपरिणत नहीं बँधता;

जीव रक्त बांधे कर्म, राग रहित जीव मुकाय छे;
—आ जीव केरा बंधनो संक्षेप निश्चय जाणजे. १७९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

द्रव्यकर्मणा रागपरिणतो न मुच्यते, वैराग्यपरिणत एव; बध्यत एव संस्पृशतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिरसंचितेन पुराणेन च, न मुच्यते रागपरिणतः; मुच्यत एव संस्पृशतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिरसंचितेन पुराणेन च वैराग्यपरिणतो न बध्यते; ततोऽवधार्यते द्रव्यबन्धस्य साधकतमत्वाद्रागपरिणाम एव निश्चयेन बन्धः ॥१७९॥

अथ परिणामस्य द्रव्यबन्धसाधकतमरागविशिष्टत्वं सविशेषं प्रकटयति—

परिणामादो बंधो परिणामो रागदोसमोहजुदो।
असुहो मोहपदोसो सुहो व असुहो हवदि रागो॥१८०॥

परिणामाद्बन्धः परिणामो रागद्वेषमोहयुतः।
अशुभौ मोहप्रद्वेषौ शुभो वाशुभो भवति रागः॥१८०॥

बध्नाति कर्म। रक्त एव कर्म बध्नाति, न च वैराग्यपरिणतः। मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा मुच्यते कर्मभ्यां रागरहितात्मा। मुच्यत एव शुभाशुभकर्मभ्यां रागरहितात्मा, न च बध्यते। एसो बंधसमासो एष प्रत्यक्षीभूतो बन्धसंक्षेपः। जीवाणं जीवानां सम्बन्धी। जाण णिच्छयदो जानीहि त्वं हे शिष्य, निश्चयतो निश्चयनयाभिप्रायेणेति। एवं रागपरिणाम एव बन्धकारणं ज्ञात्वा समस्तरागादिविकल्पजालत्यागेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वे निरन्तरं भावना कर्तव्येति॥१७९॥ अथ जीवपरिणामस्य

रागपरिणत जीव नवीन द्रव्यकर्मसे मुक्त नहीं होता, वैराग्यपरिणत ही मुक्त होता है; रागपरिणत जीव संस्पर्श करने (-सम्बन्धमें आने) वाले नवीन द्रव्यकर्मसे, और चिरसंचित (दीर्घकालसे संचित ऐसे) पुराने द्रव्यकर्मसे बँधता ही है, मुक्त नहीं होता; वैराग्यपरिणत जीव संस्पर्श करने (सम्बन्धमें आने) वाले नवीन द्रव्यकर्मसे और चिरसंचित ऐसे पुराने द्रव्यकर्मसे मुक्त ही होता है, बँधता नहीं है; इससे निश्चित होता है कि—द्रव्यबन्धका साधकतम (-उत्कृष्ट हेतु) होनेसे रागपरिणाम ही निश्चयसे बन्ध है॥१७९॥

अब, परिणामका द्रव्यबन्धके साधकतम रागसे विशिष्टपना सविशेष प्रगट करते हैं (अर्थात् परिणाम द्रव्यबन्धके उत्कृष्ट हेतुभूत रागसे विशेषतावाला होता है ऐसा भेद सहित प्रगट करते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[परिणामात् बंधः] परिणामसे बन्ध है, [परिणामः रागद्वेषमोहयुतः] (जो) परिणाम राग-द्वेष-मोहयुक्त है। [मोहप्रद्वेषौ अशुभौ] (उनमेंसे) मोह और द्वेष अशुभ

परिणामथी छे बंध, राग-विमोह-द्वेषथी युक्त जे;
छे मोह-द्वेष अशुभ, राग अशुभ वा शुभ होय छे. १८०.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

द्रव्यबन्धोऽस्ति तावद्विशिष्टपरिणामात्। विशिष्टत्वं तु परिणामस्य रागद्वेषमोहमयत्वेन। तच्च शुभाशुभत्वेन द्वैतानुवर्ति। तत्र मोहद्वेषमयत्वेनाशुभत्वं, रागमयत्वेन तु शुभत्वं चाशुभत्वं च। विशुद्धिसंक्लेशांगत्वेन रागस्य द्वैविध्यात् भवति॥१८०॥

अथ विशिष्टपरिणामविशेषमविशिष्टपरिणामं च कारणे कार्यमुपचर्य कार्यत्वेन निर्दिशति—

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति भणिदमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये॥१८१॥

द्रव्यबन्धसाधकं रागाद्युपाधिजनितभेदं दर्शयति—**परिणामादो बंधो** परिणामात्सकाशाद्बन्धो भवति। स च परिणामः किंविशिष्टः। **परिणामो रागदोसमोहजुदो** वीतरागपरमात्मनो विलक्षणत्वेन परिणामो रागद्वेषमोहोपाधित्रयेण संयुक्तः। **असुहो मोहपदोसो** अशुभौ मोहप्रद्वेषौ। परोपाधिजनितपरिणामत्रयमध्ये मोहप्रद्वेषद्वयमशुभम्। **सुहो व असुहो हवदि रागो शुभोऽशुभो** वा भवति रागः। पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिरूपः शुभराग उच्यते, विषयकषायरूपश्चाशुभ इति। अयं परिणामः सर्वोऽपि सोपाधित्वात् बन्धहेतुरिति ज्ञात्वा बन्धे शुभाशुभसमस्तरागद्वेषविनाशार्थं समस्तरागाद्युपाधिरहिते सहजानन्दैकलक्षणसुखामृतस्वभावे निजात्मद्रव्ये भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्॥१८०॥ **अथ द्रव्यरूपपुण्यपापबन्धकारणत्वाच्छुभाशुभपरिणामयोः** पुण्यपापसंज्ञां शुभाशुभरहितशुद्धोपयोगपरिणामस्य मोक्षकारणत्वं च कथयति—**सुहपरिणामो पुण्णं**

है, [रागः] राग [शुभः वा अशुभः] शुभ अथवा अशुभ [भवति] होता है॥१८०॥

टीका :—प्रथम तो द्रव्यबन्ध विशिष्ट परिणामसे होता है। परिणामकी विशिष्टता राग–द्वेष–मोहमयपनेके कारण है। वह शुभ और अशुभपनेके कारण द्वैतका अनुसरण करता है। (अर्थात् दो प्रकारका है); उसमेंसे [१]मोह–द्वेषमयपनेसे अशुभपना होता है, और रागमयपनेसे शुभपना तथा अशुभपना होता है क्योंकि [२]राग–विशुद्धि तथा संक्लेशयुक्त होनेसे दो प्रकारका होता है॥१८०॥

अब विशिष्ट परिणामके भेदको तथा अविशिष्ट परिणामको, कारणमें कार्यका उपचार करके कार्यरूपसे बतलाते हैं :—

---

१. मोहमय परिणाम और द्वेषमय परिणाम अशुभ हैं।

२. धर्मानुराग विशुद्धिवाला होनेसे धर्मानुरागमय परिणाम शुभ है; विषयानुराग संक्लेशमय होनेसे विषयानुरागमय परिणाम अशुभ हैं।

पर मांही शुभ परिणाम पुण्य, अशुभ परमां पाप छे;
निजद्रव्यगत परिणाम समये दुःखक्षयनो हेतु छे. १८१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

शुभपरिणामः पुण्यमशुभः पापमिति भणितमन्येषु।
परिणामोऽनन्यगतो दुःखक्षयकारणं समये॥१८१॥

द्विविधस्तावत्परिणामः, परद्रव्यप्रवृत्तः स्वद्रव्यप्रवृत्तश्च। तत्र परद्रव्यप्रवृत्तः परोपरक्तत्वाद्विशिष्टपरिणामः, स्वद्रव्यप्रवृत्तस्तु परानुपरक्तत्वादविशिष्टपरिणामः। तत्रोक्तौ द्वौ विशिष्टपरिणामस्य विशेषौ, शुभपरिणामोऽशुभपरिणामश्च। तत्र पुण्यपुद्गलबन्धकारणात्वात् शुभपरिणामः पुण्यं, पापपुद्गलबन्धकारणत्वादशुभपरिणामः पापम्। अविशिष्टपरिणामस्य तु शुद्धत्वेनैकत्वान्नास्ति विशेषः। स काले संसारदुःखहेतुकर्मपुद्गलक्षयकारणत्वात्संसारदुःखहेतुकर्मपुद्गलक्षयात्मको मोक्ष एव॥१८१॥

द्रव्यपुण्यबन्धकारणत्वाच्छुभपरिणामः पुण्यं भण्यते। असुहो पावं ति भणिदं द्रव्यपापबन्धकारणत्वादशुभपरिणामः पापं भण्यते। केषु विषयेषु योऽसौ शुभाशुभपरिणामः। अण्णेसु निजशुद्धात्मनः सकाशादन्येषु शुभाशुभबहिर्द्रव्येषु। परिणामो णण्णगदो परिणामो नान्यगतोऽनन्यगतः स्वस्वरूपस्थ इत्यर्थः। स इत्थंभूतः शुद्धोपयोगलक्षणः परिणामः दुक्खक्खयकारणं दुःखक्षयकारणं दुःखक्षयाभिधानमोक्षस्य कारणं भणिदो भणितः। क्व भणितः। समये परमागमे लब्धिकाले वा। किंच, मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभपरिणामो भवतीति पूर्वं भणितमास्ते, अविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतसंज्ञगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभपरिणामश्च भणितः, अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तगुणस्थानेषु तारतम्येन शुद्धोपयोगोऽपि भणितः। नयविवक्षायां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तगुणस्थानेषु

अन्वयार्थ :—[अन्येषु] परके प्रति [शुभ परिणामः] शुभ परिणाम [पुण्यम्] पुण्य है, और [अशुभः] अशुभ परिणाम [पापम्] पाप है, [इति भणितम्] ऐसा कहा है; [अनन्यगतः परिणामः] जो दूसरेके प्रति प्रवर्तमान नहीं है ऐसा परिणाम [समये] समय पर [दुःखक्षयकारणम्] दुःखक्षयका कारण है॥१८१॥

टीका :—प्रथम तो परिणाम दो प्रकारका है—परद्रव्यप्रवृत्त (परद्रव्यके प्रति प्रवर्तमान) और स्वद्रव्यप्रवृत्त। इनमेंसे परद्रव्यप्रवृत्तपरिणाम परके द्वारा उपरक्त (-परके निमित्तसे विकारी) होनेसे विशिष्ट परिणाम है और स्वद्रव्यप्रवृत्त परिणाम परके द्वारा उपरक्त न होनेसे अविशिष्ट परिणाम है। उसमें विशिष्ट परिणामके पूर्वोक्त दो भेद हैं–शुभपरिणाम और अशुभ परिणाम। उनमें पुण्यरूप पुद्गलके बंधका कारण होनेसे शुभपरिणाम पुण्य है और पापरूप पुद्गलके बंधका कारण होनेसे अशुभ परिणाम पाप है। अविशिष्ट परिणाम तो शुद्ध होनेसे एक है इसलिये उसके भेद नहीं हैं। वह (अविशिष्ट परिणाम) यथाकाल संसारदुःखके हेतुभूत कर्मपुद्गलके क्षयका कारण होनेसे संसारदुःखका हेतुभूत कर्मपुद्गलका क्षयस्वरूप मोक्ष ही है।

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ जीवस्य स्वपरद्रव्यप्रवृत्तिनिवृत्तिसिद्धये स्वपरविभागं दर्शयति—

भणिदा पुढविप्पमुहा जीवणिकायाध थावरा य तसा।
अण्णा ते जीवादो जीवो वि य तेहिंदो अण्णो॥१८२॥

भणिताः पृथिवीप्रमुखा जीवनिकाया अथ स्थावराश्च त्रसाः।
अन्ये ते जीवाज्जीवोऽपि च तेभ्योऽन्यः॥१८२॥

पुनरशुद्धनिश्चयनयो भवत्येव। तत्राशुद्धनिश्चयमध्ये शुद्धोपयोगः कथं लभ्यत इति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति प्रत्युत्तरं ददाति—वस्त्वेकदेशपरीक्षा तावन्नयलक्षणं, शुभाशुभशुद्धद्रव्यावलम्बनमुपयोग-लक्षणं चेति; तेन कारणेनाशुद्धनिश्चयमध्येऽपि शुद्धात्मावलम्बनत्वात् शुद्धध्येयत्वात् शुद्धसाधकत्वाच्च शुद्धोपयोगपरिणामो लभ्यत इति नयलक्षणमुपयोगलक्षणं च यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्। अत्र योऽसौ रागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधिलक्षणशुद्धोपयोगो मुक्तिकारणं भणितः स तु शुद्धात्मद्रव्य-लक्षणाद्ध्येयभूताच्छुद्धपारिणामिकभावादभेदप्रधानद्रव्यार्थिकनयेनाभिन्नोऽपि भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन भिन्नः। कस्मादिति चेत्। अयमेकदेशनिरावरणत्वेन क्षायोपशमिकखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः, स च पारिणामिकः सकलावरणरहितत्वेनाखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः; अयं तु सादिसान्तत्वेन विनश्वरः, स च अनाद्यनन्तत्वेनाविनश्वरः। यदि पुनरेकान्तेनाभेदो भवति तर्हि घटोत्पत्तौ मृत्पिण्डविनाशवत् ध्यानपर्यायविनाशे मोक्षे जाते सति ध्येयरूपपारिणामिकस्यापि विनाशो भवतीत्यर्थः। तत एव ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति, ध्यानभावनारूपो न भवति। कस्मात्। ध्यानस्य विनश्वरत्वादिति॥१८१॥ एवं द्रव्यबन्धकारणत्वात् मिथ्यात्वरागादिविकल्परूपो भावबन्ध एव निश्चयेन

भावार्थ :—परके प्रति प्रवर्तमान ऐसा शुभ परिणाम वह पुण्यका कारण है और अशुभ परिणाम वह पापका कारण है; इसलिये यदि कारणमें कार्यका उपचार किया जाय तो, शुभपरिणाम वह पुण्य है और अशुभ परिणाम वह पाप। स्वात्मद्रव्यमें प्रवर्तमान ऐसा शुद्ध परिणाम मोक्षका कारण है; इसलिये यदि कारणमें कार्यका उपचार किया जाय तो, शुद्ध परिणाम वह मोक्ष है॥१८१॥

अब, जीवकी स्वद्रव्यमें प्रवृत्ति और परद्रव्यसे निवृत्तिकी सिद्धिके लिये स्व-परका विभाग बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[अथ] अब [स्थावराः च त्रसाः] स्थावर और त्रस ऐसे जो [पृथिवीप्रमुखाः] पृथ्वी आदि [जीव निकायाः] जीवनिकाय [भणिताः] कहे गये हैं, [ते] वे [जीवात् अन्ये] जीवसे अन्य हैं, [च] और [जीवः अपि] जीव भी [तेभ्यः

स्थावर अने त्रस पृथ्वीआदिक जीवकाय कहेल जे,
ते जीवथी छे अन्य तेम ज जीव तेथी अन्य छे. १८२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

य एते पृथिवीप्रभृतयः षड्जीवनिकायास्त्रसस्थावरभेदेनाभ्युपगम्यन्ते ते खल्वचेतनत्वादन्ये जीवात्, जीवोऽपि च चेतनत्वादन्यस्तेभ्यः। अत्र षड्जीवनिकाया आत्मनः परद्रव्यमेक एवात्मा स्वद्रव्यम्॥१८२॥

अथ जीवस्य स्वपरद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन स्वपरविभागज्ञानाज्ञाने अवधारयति—

जो णवि जाणदि एवं परमप्पाणं सहावमासेज्ज।
कीरदि अज्झवसाणं अहं ममेदं ति मोहादो॥१८३॥

यो नैव जानात्येवं परमात्मानं स्वभावमासाद्य।
कुरुतेऽध्यवसानमहं ममेदमिति मोहात्॥१८३॥

बन्ध इति कथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थस्थलं गतम्। अथ जीवस्य स्वद्रव्यप्रवृत्तिपरद्रव्यनिवृत्तिनिमित्तं षड्जीवनिकायैः सह भेदविज्ञानं दर्शयति–भणिदा पुढविप्पमुहा भणिताः परमागमे कथिताः पृथिवीप्रमुखाः। ते के। जीवणिकाया जीवसमूहाः। अध अथ। कथंभूताः। थावरा य तसा स्थावराश्च त्रसाः। ते च किंविशिष्टाः। अण्णा ते अन्ये भिन्नास्ते। कस्मात्। जीवादो शुद्धबुद्धैकजीवस्वभावात्। जीवो वि य तेहिंदो अण्णो जीवोऽपि च तेभ्योऽन्य इति। तथाहि–टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मतत्त्वभावनारहितेन जीवेन यदुपार्जितं त्रसस्थावरनामकर्म तदुदयजनितत्वादचेतनत्वाच्च त्रसस्थावरजीवनिकायाः शुद्धचैतन्यस्वभावजीवाद्भिन्नाः। जीवोऽपि च तेभ्यो विलक्षणत्वाद्भिन्न इति। अत्रैवं भेदविज्ञाने जाते सति मोक्षार्थी जीवः स्वद्रव्ये प्रवृत्तिं परद्रव्ये निवृत्तिं च करोतीति भावार्थः॥१८२॥

अन्यः] उनसे अन्य है॥१८२॥

टीका :—जो यह पृथ्वी इत्यादि षट् जीवनिकाय त्रसस्थावरके भेदपूर्वक माने जाते हैं, वे वास्तवमें अचेतनत्त्वके कारण जीवसे अन्य हैं, और जीव भी चेतनत्वके कारण उनसे अन्य है। यहाँ (यह कहा है कि) षट् जीवनिकाय आत्माको परद्रव्य है, आत्मा एक ही स्वद्रव्य है॥१८२॥

अब, यह निश्चित करते हैं कि–जीवको स्वद्रव्यमें प्रवृत्तिका निमित्त स्व–परके विभागका ज्ञान है, और परद्रव्यमें प्रवृत्तिका निमित्त स्व–परके विभागका अज्ञान है :—

अन्वयार्थ :—[यः] जो [एवं] इसप्रकार [स्वभावम् आसाद्य] स्वभावको प्राप्त करके (जीव–पुद्गलके स्वभावको निश्चित करके) [परम् आत्मानं] परको और स्वको [न एव जानाति] नहीं जानता, [मोहात्] वह मोहसे '[अहम्] यह मैं हूँ, [इदं मम] यह मेरा

परने स्वने नहि जाणतो अे रीत पामी स्वभावने,
ते 'आ हुं, आ मुज' अेम अध्यवसान मोह थकी करे. १८३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यो हि नाम नैवं प्रतिनियतचेतनाचेतनत्वस्वभावेन जीवपुद्गलयोः स्वपरविभागं पश्यति स एवाहमिदं ममेदमित्यात्मात्मीयत्वेन परद्रव्यमध्यवस्यति मोहान्नान्यः। अतो जीवस्य परद्रव्य-प्रवृत्तिनिमित्तं स्वपरपरिच्छेदाभावमात्रमेव, सामर्थ्यात्स्वद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तं तदभावः॥१८३॥

अथात्मनः किं कर्मेति निरूपयति—

कुव्वं सभावमादा हवदि हि कत्ता सगस्स भावस्स।
पोग्गलदव्वमयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं॥१८४॥

कुर्वन् स्वभावमात्मा भवति हि कर्ता स्वकस्य भावस्य।
पुद्गलद्रव्यमयानां न तु कर्ता सर्वभावानाम्॥१८४॥

अथैतदेव भेदविज्ञानं प्रकारान्तरेण द्रढयति–जो णवि जाणदि एवं यः कर्ता नैव जानात्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण। कम्। परं षड्जीवनिकायादिपरद्रव्यं, अप्पाणं निर्दोषिपरमात्मद्रव्यरूपं निजात्मानम्। किं कृत्वा। सहावमासेज्ज शुद्धोपयोगलक्षणनिजशुद्धस्वभावमाश्रित्य। कीरदि अज्झवसाणं स पुरुषः करोत्यध्यवसानं परिणामम्। केन रूपेण। अहं ममेदं ति अहं ममेदमिति। ममकाराहंकारादिरहित-परमात्मभावनाच्युतो भूत्वा परद्रव्यं रागादिकमहमिति देहादिकं ममेतिरूपेण। कस्मात्। मोहादो मोहाधीनत्वादिति। ततः स्थितमेतत्स्वपरभेदविज्ञानबलेन स्वसंवेदनज्ञानी जीवः स्वद्रव्ये रतिं परद्रव्ये

है' [इति] इसप्रकार [अध्यवसानं] अध्यवसान [कुरुते] करता है॥१८३॥

टीका :—जो आत्मा इसप्रकार जीव और पुद्गलके (अपने-अपने) निश्चित चेतनत्व और अचेतनत्वरूप स्वभावके द्वारा स्व-परके विभागको नहीं देखता, वही आत्मा 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इसप्रकार मोहसे परद्रव्यमें अपनेपनका अध्यवसान करता है, दूसरा नहीं। इससे (यह निश्चित हुआ कि) जीवको परद्रव्यमें प्रवृत्तिका निमित्त स्वपरके ज्ञानका अभावमात्र ही है और (कहे विना भी) सामर्थ्यसे (यह निश्चित हुआ कि) स्वद्रव्यमें प्रवृत्तिका निमित्त [१]उसका अभाव है।

भावार्थ :—जिसे स्व-परका भेदविज्ञान नहीं है वही परद्रव्यमें अहंकार-ममकार करता है, भेदविज्ञानी नहीं। इसलिये परद्रव्यमें प्रवृत्तिका कारण भेदविज्ञानका अभाव ही है, और स्वद्रव्यमें प्रवृत्तिका कारण भेदविज्ञान ही है॥१८३॥

अब यह निरूपण करते हैं कि आत्माका कर्म क्या है :—

---

१. उसका अभाव = स्व-परके ज्ञानके अभावका अभाव; स्व-परके ज्ञानका सद्भाव।

निज भाव करतो जीव छे कर्ता खरे निज भावनो;
पण ते नथी कर्ता सकल पुद्गलदरवमय भावनो. १८४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

आत्मा हि तावत्स्वं भावं करोति, तस्य स्वधर्मत्वादात्मनस्तथाभवनशक्ति-सम्भवेनावश्यमेव कार्यत्वात्। स तं च स्वतन्त्रः कुर्वाणस्तस्य कर्तावश्यं स्यात्, क्रियमाणश्चात्मना स्वो भावस्तेनाप्यत्वात्तस्य कर्मावश्यं स्यात्। एवमात्मनः स्वपरिणामः कर्म। न त्वात्मा पुद्गलस्य भावान् करोति, तेषां परधर्मत्वादात्मनस्तथाभवनशक्त्यसम्भवेनाकार्यत्वात्। स तानकुर्वाणो न तेषां कर्ता स्यात्, अक्रियमाणाश्चात्मना ते न तस्य कर्म स्युः। एवमात्मनः पुद्गलपरिणामो न कर्म॥१८४॥

अथ कथमात्मनः पुद्गलपरिणामो न कर्म स्यादिति सन्देहमपनुदति—

गेण्हदि णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पोग्गलाणि कम्माणि।
जीवो पोग्गलमज्झे वट्टण्णवि सव्वकालेसु॥१८५॥

निवृत्तिं करोतीति॥१८३॥ एवं भेदभावनाकथनमुख्यतया सूत्रद्वयेन पञ्चमस्थलं गतम्। अथात्मनो निश्चयेन रागादिस्वपरिणाम एव कर्म, न च द्रव्यकर्मेति प्ररूपयति—कुव्वं सभावं कुर्वन्स्वभावम्। अत्र स्वभावशब्देन यद्यपि शुद्धनिश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावो भण्यते, तथापि कर्मबन्धप्रस्तावे रागादिपरिणामोऽप्यशुद्धनिश्चयेन स्वभावो भण्यते। तं स्वभावं कुर्वन्। स कः। आदा आत्मा। हवदि हि कत्ता कर्ता भवति हि स्फुटम्। कस्य। सगस्स भावस्स स्वकीयचिद्रूपस्वभावस्य रागादिपरिणामस्य। तदेव तस्य

अन्वयार्थ :—[स्वभावं कुर्वन्] अपने भावको करता हुआ [आत्मा] आत्मा [हि] वास्तवमें [स्वकस्य भावस्य] अपने भावका [कर्ता भवति] कर्ता है; [तु] परन्तु [पुद्गलद्रव्यमयानां सर्वभावानां] पुद्गलद्रव्यमय सर्व भावोंका [कर्ता न] कर्ता नहीं है॥१८४॥

टीका :—प्रथम तो आत्मा वास्तवमें स्व भावको करता है, क्योंकि वह (भाव) उसका स्व धर्म है, इसलिये आत्माको उसरूप होनेकी (परिणमित होनेकी) शक्तिका संभव है, अतः वह (भाव) अवश्यमेव आत्माका कार्य है। (इसप्रकार) वह (आत्मा) उसे (-स्व भावको) स्वतंत्रतया करता हुआ उसका कर्ता अवश्य है और स्व भाव आत्माके द्वारा किया जाता हुआ आत्माके द्वारा प्राप्य होनेसे अवश्य ही आत्माका कर्म है। इसप्रकार स्व परिणाम आत्माका कर्म है।

परन्तु, आत्मा पुद्गलके भावोंको नहीं करता, क्योंकि वे परके धर्म हैं, इसलिये आत्माके उस-रूप होनेकी शक्तिका असंभव होनेसे वे आत्माका कार्य नहीं हैं। (इसप्रकार) वह (आत्मा) उन्हें न करता हुआ उनका कर्ता नहीं होता और वे आत्माके द्वारा न किये जाते हुए उसका कर्म नहीं हैं। इसप्रकार पुद्गलपरिणाम आत्माका कर्म नहीं है॥१८४॥

अब, 'पुद्गलपरिणाम आत्माका कर्म क्यों नहीं है'-ऐसे सन्देह को दूर करते हैं :—

जीव सर्व काळे पुद्गलोनी मध्यमां वर्ते भले,
पण नव ग्रहे, न तजे, करे नहि जीव पुद्गलकर्मने. १८५.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

गृह्णाति नैव न मुञ्चति करोति न हि पुद्गलानि कर्माणि।
जीवः पुद्गलमध्ये वर्तमानोऽपि सर्वकालेषु॥१८५॥

न खल्वात्मनः पुद्गलपरिणामः कर्म, परद्रव्योपादानहानशून्यत्वात्। यो हि यस्य परिणमयिता दृष्टः स न तदुपादानहानशून्यो दृष्टः, यथाग्निरयःपिण्डस्य। आत्मा तु तुल्यक्षेत्रवर्तित्वेऽपि परद्रव्योपादानहानशून्य एव। ततो न स पुद्गलानां कर्मभावेन परिणमयिता स्यात् ॥१८५॥

अथात्मनः कुतस्तर्हि पुद्गलकर्मभिरुपादानं हानं चेति निरूपयति—

स इदाणिं कत्ता सं सगपरिणामस्स दव्वजादस्स।
आदीयदे कदाइं विमुच्चदे कम्मधूलीहिं॥१८६॥

रागादिपरिणामरूपं निश्चयेन भावकर्म भण्यते। कस्मात्। तत्पायःपिण्डवत्तेनात्मना प्राप्यत्वाद्व्याप्यत्वादिति। **पोग्गलदव्वमयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं** चिद्रूपात्मनो विलक्षणानां पुद्गलद्रव्यमयानां न तु कर्ता सर्वभावानां ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायाणामिति। ततो ज्ञायते जीवस्य रागादिस्वपरिणाम एव कर्म, तस्यैव स कर्तेति॥१८४॥ अथात्मनः कथं द्रव्यकर्मरूपपरिणामः कर्म न स्यादिति प्रश्ने समाधानं ददाति—**गेण्हदि णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पोग्गलाणि कम्माणि जीवो** यथा निर्विकल्पसमाधिरतः परममुनिः

अन्वयार्थ :—[जीवः] जीव [सर्वकालेषु] सभी कालोंमें [पुद्गलमध्ये वर्तमानः अपि] पुद्गलके मध्यमें रहता हुआ भी [पुद्गलानि कर्माणि] पौद्गलिक कर्मोंको [हि] वास्तवमें [गृह्णाति न एव] न तो ग्रहण करता है, [न मुचंति] न छोड़ता है, और [न करोति] न करता है॥१८६॥

टीका :—वास्तवमें पुद्गलपरिणाम आत्माका कर्म नहीं है, क्योंकि वह परद्रव्यके ग्रहण-त्यागसे रहित है; जो जिसका परिणमानेवाला देखा जाता है वह उसके ग्रहणत्यागसे रहित नहीं देखा जाता; जैसे—अग्नि लोहेके गोलेमें ग्रहण-त्याग रहित होती है। आत्मा तो तुल्य क्षेत्रमें वर्तता हुआ भी (-परद्रव्यके साथ एकक्षेत्रावगाही होनेपर भी) परद्रव्यके ग्रहण-त्यागसे रहित ही है। इसलिये वह पुद्गलोंको कर्मभावसे परिणमानेवाला नहीं है॥१८५॥

तब (यदि आत्मा पुद्गलोंको कर्मरूप परिणमित नहीं करता तो फिर) आत्मा किसप्रकार पुद्गल कर्मोंके द्वारा ग्रहण किया जाता है और छोड़ा जाता है? इसका अब निरूपण करते हैं :—

ते हाल द्रव्यजनित निज परिणामनो कर्ता बने,
तेथी ग्रहाय अने कदापि मुकाय छे कर्मो वडे. १८६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

स इदानीं कर्ता सन् स्वकपरिणामस्य द्रव्यजातस्य।
आदीयते कदाचिद्विमुच्यते कर्मधूलिभिः ॥१८६॥

सोऽयमात्मा परद्रव्योपादानहानशून्योऽपि साम्प्रतं संसारावस्थायां निमित्तमात्रीकृत-परद्रव्यपरिणामस्य स्वपरिणाममात्रस्य द्रव्यत्वभूतत्वात् केवलस्य कलयन् कर्तृत्वं, तदेव तस्य स्वपरिणामं निमित्तमात्रीकृत्योपात्तकर्मपरिणामाभिः पुद्गलधूलीभिर्विशिष्टावगाहरूपेणोपादीयते कदाचिन्मुच्यते च ॥१८६॥

परभावं न गृह्णाति न मुञ्चति न च करोत्युपादानरूपेण लोहपिण्डो वाग्निं तथायमात्मा न च गृह्णाति न च मुञ्चति न च करोत्युपादानरूपेण पुद्गलकर्माणीति। किं कुर्वन्नपि। **पोग्गलमज्झे वट्टण्णवि सव्वकालेसु** क्षीरनीरन्यायेन पुद्गलमध्ये वर्त्तमानोऽपि सर्वकालेषु। अनेन किमुक्तं भवति। यथा सिद्धो भगवान् पुद्गलमध्ये वर्त्तमानोऽपि परद्रव्यग्रहणमोचनकरणरहितस्तथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण संसारी जीवोऽपीति भावार्थः ॥१८५॥ अथ यद्ययमात्मा पुद्गलकर्म न करोति न च मुञ्चति तर्हि बन्धः कथं, तर्हि मोक्षोऽपि कथमिति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति--**स इदाणिं कत्ता सं स इदानीं कर्ता सन्**। स पूर्वोक्तलक्षण आत्मा, इदानीं कोऽर्थः एवं पूर्वोक्तनयविभागेन, कर्ता सन्। कस्य। **सगपरिणामस्स** निर्विकारनित्या-

---

अन्वयार्थ :—[सः] वह [इदानीं] अभी (संसारावस्थामें) [द्रव्यजातस्य] द्रव्यसे (आत्मद्रव्यसे) उत्पन्न होनेवाले [स्वकपरिणामस्य] (अशुद्ध) स्वपरिणामका [कर्ता सन्] कर्ता होता हुआ [कर्मधूलिभिः] कर्मरजसे [आदीयते] ग्रहण किया जाता है और [कदाचित् विमुच्यते] कदाचित् छोड़ा जाता है ॥१८६॥

टीका :—सो यह आत्मा परद्रव्यके ग्रहण-त्यागसे रहित होता हुआ भी अभी संसारावस्थामें, परद्रव्यपरिणामको निमित्तमात्र करते हुए केवल स्वपरिणाममात्रका—उस स्वपरिणामके द्रव्यत्वभूत होनेसे—कर्तृत्वका अनुभव करता हुआ, उसके इसी स्वपरिणामको निमित्तमात्र करके कर्मपरिणामको प्राप्त होती हुई ऐसी पुद्गलरजके द्वारा विशिष्ट अवगाहरूपसे ग्रहण किया जाता है और कदाचित् छोड़ा जाता है।

भावार्थ :—अभी संसारावस्थामें जीव पौद्गलिक कर्मपरिणामको निमित्तमात्र करके अपने अशुद्ध परिणामका ही कर्ता होता है (क्योंकि वह अशुद्ध परिणाम स्वद्रव्यसे उत्पन्न होता है), परद्रव्यका कर्ता नहीं होता। इसप्रकार जीव अपने अशुद्ध परिणामका कर्ता होने पर जीवके उसी अशुद्ध परिणामको निमित्तमात्र करके कर्मरूप परिणमित होती हुई पुद्गलरज विशेष अवगाहरूपसे जीवको ग्रहण[१] करती है, और कभी (स्थितिके अनुसार रहकर अथवा जीवके

---

१. कर्मपरिणत पुद्गलोंका जीवके साथ विशेष अवगाहरूपसे रहनेको ही यहाँ कर्मपुद्गलोंके द्वारा जीवका 'ग्रहण होना' कहा है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ किंकृतं पुद्गलकर्मणां वैचित्र्यमिति निरूपयति—

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्हि असुहम्हि रागदोसजुदो।
तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं॥१८७॥

परिणमति यदात्मा शुभेऽशुभे रागद्वेषयुतः।
तं प्रविशति कर्मरजो ज्ञानावरणादिभावैः॥१८७॥

अस्ति खल्वात्मनः शुभाशुभपरिणामकाले स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यकर्मपुद्गलपरिणामः, नवघनाम्बुनो भूमिसंयोगपरिणामकाले समुपात्तवैचित्र्यान्यपुद्गलपरिणामवत्। तथा हि—यथा यदा नवघनाम्बु भूमिसंयोगेन परिणमति तदान्ये पुद्गलाः स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यैः

नन्दैकलक्षणपरमसुखामृतव्यक्तिरूपकार्यसमयसारसाधकनिश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसारविलक्षणस्य मिथ्यात्वरागादिविभावरूपस्य स्वकीयपरिणामस्य। पुनरपि किंविशिष्टस्य। **दव्वजादस्स** स्वकीयात्मद्रव्योपादानकारणजातस्य। **आदीयदे कदाई कम्मधूलीहिं** आदीयते बध्यते। काभिः। कर्मधूलीभिः कर्तृभूताभिः कदाचित्पूर्वोक्तविभावपरिणामकाले। न केवलमादीयते, **विमुच्चदे** विशेषेण मुच्यते त्यज्यते ताभिः कर्मधूलीभिः कदाचित्पूर्वोक्तकारणसमयसारपरिणतिकाले। एतावता किमुक्तं भवति। अशुद्धपरिणामेन बध्यते शुद्धपरिणामेन मुच्यत इति॥१८६॥ अथ यथा द्रव्यकर्माणि निश्चयेन स्वयमेवोत्पद्यन्ते तथा ज्ञानावरणादिविचित्रभेदरूपेणापि स्वयमेव परिणमन्तीति कथयति—**परिणमदि जदा अप्पा** परिणमति यदात्मा। समस्तशुभाशुभपरद्रव्यविषये परमोपेक्षालक्षणं शुद्धोपयोगपरिणामं मुक्त्वा यदायमात्मा परिणमति। क्व। **सुहम्हि असुहम्हि** शुभेऽशुभे वा परिणामे। कथंभूतः सन्। **रागदोसजुदो**

शुद्ध परिणामको निमित्तमात्र करके) छोड़ती है॥१८६॥

अब पुद्गल कर्मोंकी विचित्रता (ज्ञानावरण, दर्शनावरणादिरूप अनेकप्रकारता) को कौन करता है? इसका निरूपण करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यदा**] जब [**आत्मा**] आत्मा [**रागद्वेषयुतः**] रागद्वेषयुक्त होता हुआ [**शुभे अशुभे**] शुभ और अशुभमें [**परिणमित**] परिणमित होता है, तब [**कर्मरजः**] कर्मरज [**ज्ञानावरणादिभावैः**] ज्ञानावरणादिरूपसे [**तं**] उसमें [**प्रविशति**] प्रवेश करती है॥१८७॥

टीका :—जैसे नये मेघजलके भूमिसंयोगरूप परिणामके समय अन्य पुद्गलपरिणाम स्वयमेव वैचित्र्यको प्राप्त होते हैं, उसीप्रकार आत्माके शुभाशुभ परिणामके समय

जीव रागद्वेषथी युक्त ज्यारे परिणमे शुभ–अशुभमां,
ज्ञानावरणइत्यादिभावे कर्मधूलि प्रवेश त्यां. १८७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

शाद्वलशिलीन्ध्रशक्रगोपादिभावैः परिणमन्ते, तथा यदायमात्मा रागद्वेषवशीकृतः शुभाशुभभावेन परिणमति तदा अन्ये योगद्वारेण प्रविशन्तः कर्मपुद्गलाः स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यैर्ज्ञानावरणादिभावैः परिणमन्ते। अतः स्वभावकृतं कर्मणां वैचित्र्यं, न पुनरात्मकृतम् ॥१८७॥

अथैक एव आत्मा बन्ध इति विभावयति—

सपदेसो सो अप्पा कसायिदो मोहरागदोसेहिं।
कम्मरएहिं सिलिट्ठो बंधो त्ति परूविदो समये॥१८८॥

सप्रदेशः स आत्मा कषायितो मोहरागद्वेषैः।
कर्मरजोभिः श्लिष्टो बन्ध इति प्ररूपितः समये॥१८८॥

रागद्वेषयुक्तः परिणत इत्यर्थः। तं पविसदि कम्मरयं तदा काले तत्प्रसिद्धं कर्मरजः प्रविशति। कैः कृत्वा। णाणावरणादिभावेहिं भूमेर्मेघजलसंयोगे सति यथाऽन्ये पुद्गलाः स्वयमेव हरितपल्लवादिभावैः परिणमन्ति तथा स्वयमेव नानाभेदपरिणतैर्मूलोत्तरप्रकृतिरूपज्ञानावरणादिभावैः पर्यायैरिति। ततो ज्ञायते यथा ज्ञानावरणादिकर्मणामुत्पत्तिः स्वयंकृता तथा मूलोत्तरप्रकृतिरूपवैचित्र्यमपि, न च जीवकृतमिति॥१८७॥

कर्मपुद्गलपरिणाम वास्तवमें स्वयमेव विचित्रताको प्राप्त होते हैं। वह इसप्रकार है कि—जैसे, जब नया मेघजल भूमिसंयोगरूप परिणमित होता है तब अन्य पुद्गल स्वयमेव विचित्रताको प्राप्त हरियाली, कुकुरमुत्ता (छत्ता), और इन्द्रगोप (चातुर्मासमें उत्पन्न लाल कीड़ा) आदिरूप परिणमित होता है, इसीप्रकार जब यह आत्मा रागद्वेषके वशीभूत होता हुआ शुभाशुभभावरूप परिणमित होता है, तब अन्य, योगद्वारोंमें प्रविष्ट होते हुए कर्मपुद्गल स्वयमेव विचित्रताको प्राप्त ज्ञानावरणादि भावरूप परिणमित होते हैं।

इससे (यह निश्चित हुआ कि) कर्मोंकी विचित्रता (विविधता)का होना [१]स्वभावकृत है, किन्तु आत्मकृत नहीं॥१८७॥

अब ऐसा समझाते हैं कि अकेला ही आत्मा बंध है—

अन्वयार्थ :—[**सप्रदेशः**] प्रदेशयुक्त [**सः आत्मा**] वह आत्मा [**समये**] यथाकाल [**मोहरागद्वेषैः**] मोह-राग-द्वेषके द्वारा [**कषायितः**] कषायित होनेसे [**कर्म-रजोभिः श्लिष्टः**] कर्मरजसे लिप्त या बद्ध होता हुआ [**बंध इति प्ररूपितः**] 'बंध कहा गया है॥१८८॥

---

१. स्वभावकृत = कर्मोंके अपने स्वभावसे किया हुआ।

सप्रदेश जीव समये कषायित मोहरागादि वडे,
संबंध पामी कर्मरजनो, बंधरूप कथाय छे. १८८.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

यथात्र सप्रदेशत्वे सति लोध्रादिभिः कषायितत्वात् मंजिष्ठरंगादिभिरुपश्लिष्टमेकं रक्तं दृष्टं वासः, तथात्मापि सप्रदेशत्वे सति काले मोहरागद्वेषैः कषायितत्वात् कर्मरजोभिरुपश्लिष्ट एको बन्धो द्रष्टव्यः, शुद्धद्रव्यविषयत्वान्निश्चयस्य ॥१८८॥

अथ निश्चयव्यवहाराविरोधं दर्शयति—

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयेण णिद्दिट्ठो।
अरहंतेहिं जदीणं ववहारो अण्णहा भणिदो॥१८९॥

अथ पूर्वोक्तज्ञानावरणादिप्रकृतीनां जघन्योत्कृष्टानुभागस्वरूपं प्रतिपादयति—

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसम्मि।
विवरीदो दु जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं॥*१३॥

अणुभागो अनुभागः फलदानशक्तिविशेषः भवतीति क्रियाध्याहारः। कथम्भूतो भवति। तिव्वो तीव्रः प्रकृष्टः परमामृतसमानः। कासां संबन्धी। सुहपयडीणं सद्वेद्यादिशुभप्रकृतीनाम्। कया कारणभूतया। विसोही तीव्रधर्मानुरागरूपविशुद्ध्या। असुहाण संकिलेसम्मि असद्वेद्याद्यशुभप्रकृतीनां तु मिथ्यात्वादिरूपतीव्रसंक्लेशे सति तीव्रो हालाहलविषसदृशो भवति। विवरीदो दु जहण्णो विपरीतस्तु जघन्यो गुडनिम्बरूपो भवति। जघन्यविशुद्ध्या जघन्यसंक्लेशेन च मध्यमविशुद्ध्या मध्यमसंक्लेशेन तु शुभाशुभप्रकृतीनां खण्डशर्करारूपः काञ्जीरविषरूपश्चेति। एवंविधो जघन्यमध्यमोत्कृष्टरूपोऽनुभागः कासां संबन्धी भवति। सव्वपयडीणं मूलोत्तरप्रकृतिरहितनिजपरमानन्दैकस्वभावलक्षणसर्वप्रकारोपादेयभूतपरमात्मद्रव्याद्भिन्नानां हेयभूतानां सर्वमूलोत्तरकर्मप्रकृतीनामिति कर्मशक्तिस्वरूपं ज्ञातव्यम्॥*१३॥ अथाभेदनयेन बन्धकारणभूतरागादिपरिणतात्मैव बन्धो भण्यत इत्यावेदयति—सपदेसो लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वात्सप्रदेशस्तावद्भवति सो अप्पा स पूर्वोक्तलक्षण आत्मा। पुनरपि किंविशिष्टः। कसायिदो

टीका :—जैसे जगतमें वस्त्र सप्रदेश होनेसे लोध, फिटकरी आदिसे [१]कषायित होता है, जिससे वह मंजीठादिके रंगसे संबद्ध होता हुआ अकेला ही रंगा हुआ देखा जाता है, इसीप्रकार आत्मा भी सप्रदेश होनेसे यथाकाल मोह–राग–द्वेषके द्वारा कषायित होनेसे कर्मरजके द्वारा श्लिष्ट होता हुआ अकेला ही बंध है; ऐसा देखना (-मानना) चाहिये, क्योंकि निश्चयका विषय शुद्ध द्रव्य है॥१८८॥

अब निश्चय और व्यवहारका अविरोध बतलाते हैं :—

१. कषायित = रंगा हुआ, उपरक्त, मलिन।

आ जीव केरा बंधनो संक्षेप निश्चय भाखियो
अर्हंतदेवे योगीने; व्यवहार अन्य रीते कह्यो. १८९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

एष बन्धसमासो जीवानां निश्चयेन निर्दिष्टः।
अर्हद्भिर्यतीनां व्यवहारोऽन्यथा भणितः ॥१८९॥

रागपरिणाम एवात्मनः कर्म, स एव पुण्यपापद्वैतम्। रागपरिणामस्यैवात्मा कर्ता, तस्यैवोपादाता हाता चेत्येष शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको निश्चयनयः। यस्तु पुद्गलपरिणाम आत्मनः कर्म, स एव पुण्यपापद्वैतं। पुद्गलपरिणामस्यात्मा कर्ता, तस्योपादाता हाता चेति सोऽशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको व्यवहारनयः। उभावप्येतौ स्तः, शुद्धाशुद्धत्वेनोभयथा द्रव्यस्य प्रतीयमानत्वात्। किन्त्वत्र निश्चयनयः साधकतमत्वादुपात्तः, साध्यस्य हि शुद्धत्वेन द्रव्यस्य

कषायितः परिणतो रञ्जितः। कैः। **मोहरागदोसेहिं** निर्मोहस्वशुद्धात्मतत्त्वभावनाप्रतिबन्धिभिर्मोहरागद्वैषैः। पुनश्च किंरूपः। **कम्मरजेहिं सिलिट्ठो** कर्मरजोभिः श्लिष्टः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलरजोभिः संश्लिष्टो बद्धः। **बंधो त्ति परूविदो** अभेदेनात्मैव बन्ध इति प्ररूपितः। क्व। **समये** परमागमे। अत्रेदं भणितं भवति–यथा वस्त्रं लोध्रादिद्रव्यैः कषायितं रञ्जितं सन्मञ्जीष्ठादिरङ्गद्रव्येण रञ्जितं सदभेदेन रक्तमित्युच्यते तथा वस्त्रस्थानीय आत्मा लोध्रादिद्रव्यस्थानीयमोहरागद्वेषैः कषायितो रञ्जितः परिणतो मञ्जीष्ठस्थानीयकर्मपुद्गलैः संश्लिष्टः संबद्धः सन् भेदेऽप्यभेदोपचारलक्षणेनासद्भूतव्यवहारेण बन्ध इत्यभिधीयते। कस्मात्। अशुद्धद्रव्यनिरूपणार्थविषयत्वादसद्भूतव्यवहारनयस्येति ॥१८८॥ अथ निश्चयव्यवहारयोरविरोधं दर्शयति—**एसो बंधसमासो** एष बन्धसमासः। एष बहुधा पूर्वोक्तप्रकारो रागादिपरिणतिरूपो बन्धसंक्षेपः। केषां संबन्धी। **जीवाणं** जीवानाम्। **णिच्छयेण णिद्दिट्ठो** निश्चयनयेन निर्दिष्टः कथितः। कैः कर्तृभूतैः। **अरहंतेहिं** अर्हद्भिः निर्दोषिपरमात्मभिः। केषाम्।

अन्वयार्थ :—[एषः] यह (पूर्वोक्त प्रकारसे), [जीवानां] जीवोंके [बंधसमासः] बंधका संक्षेप [निश्चयेन] निश्चयसे [अर्हद्भिः] अर्हन्तभगवानने [यतीनां] यतियोंसे [निर्दिष्टः] कहा है; [व्यवहारः] व्यवहार [अन्यथा] अन्यप्रकारसे [भणितः] कहा है ॥१८९॥

टीका :—रागपरिणाम ही आत्माका कर्म है, वही पुण्य–पापरूप द्वैत है, आत्मा रागपरिणामका ही कर्ता है, उसीका ग्रहण करनेवाला है और उसीका त्याग करनेवाला है; —यह, *शुद्धद्रव्यका निरूपणस्वरूप निश्चयनय है। और जो पुद्गलपरिणाम आत्माका कर्म है, वही पुण्य–पापरूप द्वैत है, आत्मा पुद्गलपरिणामका कर्ता है, उसका ग्रहण करनेवाला और छोड़नेवाला है; —ऐसा जो नय वह *अशुद्धद्रव्यके निरूपणस्वरूप व्यवहारनय है। यह दोनों

---

* निश्चयनय मात्र स्वद्रव्यके परिणामको बतलाता है, इसलिये उसे शुद्धद्रव्यका कथन करनेवाला कहा है, और व्यवहारनय परद्रव्यके परिणामको आत्मपरिणाम बतलाता है इसलिये उसे अशुद्धद्रव्यका कथन करनेवाला कहा है। यहाँ शुद्धद्रव्यका कथन एक द्रव्याश्रित परिणामकी अपेक्षासे जानना चाहिये, और अशुद्धद्रव्यका कथन एक द्रव्यके परिणाम अन्य द्रव्यमें आरोपित करनेकी अपेक्षासे जानना चाहिये।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

शुद्धत्वद्योतकत्वान्निश्चयनय एव साधकतमो, न पुनरशुद्धत्वद्योतको व्यवहारनयः ॥१८९॥

अथाशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एवेत्यावेदयति—

ण चयदि जो दु ममत्तिं अहं ममेदं ति देहदविणेसु।
सो सामण्णं चत्ता पडिवण्णो होदि उम्मग्गं॥१९०॥

जदीणं जितेन्द्रियत्वेन शुद्धात्मस्वरूपे यत्नपराणां गणधरदेवादियतीनाम्। ववहारो द्रव्यकर्मरूपव्यहारबन्धः अण्णहा भणिदो निश्चयनयापेक्षयान्यथा व्यवहारनयेनेति भणितः। किंच रागादीनेवात्मा करोति तानेव भुङ्क्ते चेति निश्चयनयलक्षणमिदम्। अयं तु निश्चयनयो द्रव्यकर्मबन्धप्रतिपादकासद्भूतव्यवहार-नयापेक्षया शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको विवक्षितनिश्चयनयस्तथैवाशुद्धनिश्चयश्च भण्यते। द्रव्यकर्माण्यात्मा

(नय) हैं; क्योंकि शुद्धरूप और अशुद्धरूप—दोनों प्रकारसे द्रव्यकी प्रतीति की जाती है। किन्तु यहाँ निश्चयनय साधकतम (उत्कृष्ट साधक) होनेसे *ग्रहण किया गया है; (क्योंकि) साध्यके शुद्ध होनेसे द्रव्यके शुद्धत्वका द्योतक (प्रकाशक) होनेसे निश्चयनय ही साधकतम है, किन्तु अशुद्धत्वका द्योतक व्यवहारनय साधकतम नहीं है॥१८९॥

अब ऐसा कहते हैं कि अशुद्धनयसे अशुद्ध आत्माकी ही प्राप्ति होती है :—

---

* निश्चयनय उपादेय है और व्यवहारनय हेय है।

प्रश्न :—द्रव्य सामान्यका आलम्बन ही उपादेय है, फिर भी यहाँ रागपरिणामकी ग्रहण-त्यागरूप पर्यायोंको स्वीकार करनेवाले निश्चयनयको उपादेय क्यों कहा है?

उत्तर :—'रागपरिणामका कर्ता भी आत्मा ही है और वीतराग परिणामका भी; अज्ञानदशा भी आत्मा स्वतंत्रतया करता है और ज्ञानदशा भी'; —ऐसे यथार्थ ज्ञानके भीतर द्रव्यसामान्यका ज्ञान गर्भितरूपसे समा ही जाता है। यदि विशेषका भलीभाँति यथार्थ ज्ञान हो तो यह विशेषोंको करनेवाला सामान्यका ज्ञान होना ही चाहिये। द्रव्यसामान्यके ज्ञानके बिना पर्यायोंका यथार्थ ज्ञान हो ही नहीं सकता। इसलिए उपरोक्त निश्चयनयमें द्रव्यसामान्यका ज्ञान गर्भितरूपसे समा ही जाता है। जो जीव बंधमार्गरूप पर्यायमें तथा मोक्षमार्गरूप पर्यायमें आत्मा अकेला ही है, इसप्रकार यथार्थतया (द्रव्यसामान्यकी अपेक्षा सहित) जानता है, वह जीव परद्रव्यसे संयुक्त नहीं होता, और द्रव्यसामान्यके भीतर पर्यायोंको डुबाकर, सुविशुद्ध होता है। इसप्रकार पर्यायोंके यथार्थ ज्ञानमें द्रव्यसामान्यका ज्ञान अपेक्षित होनेसे और द्रव्य-पर्यायोंके यथार्थज्ञानमें द्रव्यसामान्यका आलम्बनरूप अभिप्राय अपेक्षित होनेसे उपरोक्त निश्चयनयको उपादेय कहा है। [विशेष जाननेके लिये १२६वीं गाथाकी टीका देखनी चाहिये।]

'हुं आ अने आ मारुं' अे ममता न देह-धने तजे,
ते छोडी जीव श्रामण्यने उन्मार्गनो आश्रय करे. १९०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

न त्यजति यस्तु ममतामहं ममेदमिति देहद्रविणेषु।
स श्रामण्यं त्यक्त्वा प्रतिपन्नो भवत्युन्मार्गम्॥१९०॥

यो हि नाम शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकनिश्चयनयनिरपेक्षोऽशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मक-व्यवहारनयोपजनितमोहः सन् अहमिदं ममेदमित्यात्मात्मीयत्वेन देहद्रविणादौ परद्रव्ये ममत्वं न जहाति स खलु शुद्धात्मपरिणतिरूपं श्रामण्याख्यं मार्गं दूरादपहायाशुद्धात्मपरिणति-रूपमुन्मार्गमेव प्रतिपद्यते। अतोऽवधार्यते अशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव॥१९०॥

करोति भुङ्क्ते चेत्यशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकासद्भूतव्यवहारनयो भण्यते। इदं नयद्वयं तावदस्ति। किंत्वत्र निश्चयनय उपादेयः, न चासद्भूतव्यवहारः। ननु रागादीनात्मा करोति भुङ्क्ते चेत्येवंलक्षणो निश्चयनयो व्याख्यातः स कथमुपादेयो भवति। परिहारमाह–रागदीनेवात्मा करोति, न च द्रव्यकर्म, रागादय एव बन्धकारणमिति यदा जानाति जीवस्तदा रागद्वेषादिविकल्पजालत्यागेन रागादिविनाशार्थं निज-शुद्धात्मानं भावयति। ततश्च रागादिविनाशो भवति। रागादिविनाशे चात्मा शुद्धो भवति। ततः परंपरया शुद्धात्मसाधकत्वादयमशुद्धनयोऽप्युपचारेण शुद्धनयो भण्यते, निश्चयनयो भण्यते, तथैवोपादेयो भण्यते इत्यभिप्रायः॥१८९॥ एवमात्मा स्वपरिणामानामेव कर्ता, न च द्रव्यकर्मणामिति कथन-मुख्यतया गाथासप्तकेन षष्ठस्थलं गतम्। इति 'अरसमरूवं' इत्यादिगाथात्रयेण पूर्वं शुद्धात्मव्याख्याने कृते सति शिष्येण यदुक्तममूर्तस्यात्मनो मूर्तकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति तत्परिहारार्थं नय-विभागेन बन्धसमर्थनमुख्यतयैकोनविंशतिगाथाभिः स्थलषट्केन तृतीयविशेषान्तराधिकारः समाप्तः। अतः परं द्वादशगाथापर्यन्तं चतुर्भिः स्थलैः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाविशेषभेदभावनारूपचूलिकाव्याख्यानं

अन्वयार्थ :—[यः तु] जो [देहद्रविणेषु] देह–धनादिकमें [अहं मम इदम्] 'मैं यह हूँ और यह मेरा है' [इति ममतां] ऐसी ममताको [न त्यजति] नहीं छोड़ता, [सः] वह [श्रामण्यं त्यक्त्वा] श्रमणताको छोड़कर [उन्मार्गं प्रतिपन्नः भवति] उन्मार्गका आश्रय लेता है॥१९०॥

टीका :—जो आत्मा शुद्धद्रव्यके निरूपणस्वरूप [१]निश्चयनयसे निरपेक्ष रहकर अशुद्धद्रव्यके निरूपणस्वरूप व्यवहारनयसे जिसे मोह उत्पन्न हुआ है ऐसा वर्तता हुआ 'मैं यह हूँ और यह मेरा है' इसप्रकार [२]आत्मीयतासे देह धनादिक परद्रव्यमें ममत्व नहीं छोड़ता वह आत्मा वास्तवमें शुद्धात्मपरिणतिरूप श्रामण्यनामक मार्गको दूरसे छोड़कर अशुद्धात्मपरिणतिरूप उन्मार्गका ही आश्रय लेता है। इससे निश्चित होता है कि अशुद्धनयसे अशुद्धात्माकी ही प्राप्ति होती है॥१९०॥

१. निश्चयनयसे निरपेक्ष = निश्चयनयके प्रति उपेक्षावान्; उसे न गिनने–माननेवाला।
२. आत्मीयतासे = निजरूपसे (अज्ञानी जीव शरीर, धन इत्यादि परद्रव्यको अपना मानकर उसमें ममत्व करता है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ शुद्धनयात् शुद्धात्मलाभ एवेत्यवधारयति—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे सन्ति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पा णं हवदि झादा॥१९१॥

नाहं भवामि परेषां न मे परे सन्ति ज्ञानमहमेकः।
इति यो ध्यायति ध्याने स आत्मा भवति ध्याता॥१९१॥

यो हि नाम स्वविषयमात्रप्रवृत्ताशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकव्यवहारनयाविरोधमध्यस्थः, शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकनिश्चयनयापहस्ततमोहः सन्, नाहं परेषामस्मि, न परे मे सन्तीति स्वपरयोः परस्परस्वस्वामिसम्बन्धमुद्धूय, शुद्धज्ञानमेवैकमहमित्यनात्मानमुत्सृज्यात्मानमेवात्म-

करोति। तत्र शुद्धात्मभावनाप्रधानत्वेन 'ण चयदि जो दु ममत्तिं' इत्यादिपाठक्रमेण प्रथमस्थले गाथा चतुष्टयम्। तदनन्तरं शुद्धात्मोपलम्भभावनाफलेन दर्शनमोहग्रन्थिविनाशस्तथैव चारित्रमोहग्रन्थिविनाशः क्रमेण तदुभयविनाशो भवतीति कथनमुख्यत्वेन 'जो एवं जाणित्ता' इत्यादि द्वितीयस्थले गाथात्रयम्। ततः परं केवलिध्यानोपचारकथनरूपेण 'णिहदघणघादिकम्मो' इत्यादि तृतीयस्थले गाथाद्वयम्। तदनन्तरं दर्शनाधिकारोपसंहारप्रधानत्वेन 'एवं जिणा जिणिंदा' इत्यादि चतुर्थस्थले गाथाद्वयम्। ततः परं 'दंसणसंसुद्धाणं' इत्यादि नमस्कारगाथा चेति द्वादशगाथाभिश्चतुर्थस्थले विशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका। अथाशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव भवतीत्युपदिशति—ण चयदि जो दु ममत्तिं न त्यजति यस्तु ममताम्। ममकाराहंकारादिसमस्तविभावरहितसकलविमलकेवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्वरूप-निजात्मपदार्थनिश्चलानुभूतिलक्षणनिश्चयनयरहितत्वेन व्यवहारमोहितहृदयः सन् ममतां ममत्वभावं न

अब ऐसा निश्चित करते हैं कि शुद्धनयसे शुद्धात्माकी ही प्राप्ति होती है :—

अन्वयार्थ :—'[अहं परेषां न भवामि] मैं परका नहीं हूँ, [परे मे न सन्ति] पर मेरे नहीं हैं, [ज्ञानम् अहम् एकः] मैं एक ज्ञान हूँ' [इति यः ध्यायति] इसप्रकार जो ध्यान करता है, [सः ध्याता] वह ध्याता [ध्याने] ध्यानकालमें [आत्मा भवति] आत्मा होता है॥१९१॥

टीका :—जो आत्मा, मात्र अपने विषयमें प्रवर्तमान अशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मक (अशुद्धद्रव्यके निरूपणस्वरूप) व्यवहारनयमें अविरोधरूपसे मध्यस्थ रहकर, शुद्धद्रव्यके निरूपणस्वरूप निश्चयनयके द्वारा जिसने मोहको दूर किया है ऐसा होता हुआ, 'मैं परका नहीं हूँ, पर मेरे नहीं हैं' इसप्रकार स्व-परके परस्पर [१]स्वस्वामिसम्बन्धको छोड़कर, 'शुद्धज्ञान ही

१. जिस पर स्वामित्व है वह पदार्थ और स्वामीके बीचके संबंधको; स्व-स्वामि संबंध कहा जाता है।

हुं पर तणो नहि, पर न मारां, ज्ञान केवळ एक हुं
जे एम ध्यावे, ध्यानकाळे तेह शुद्धात्मा बने. १९१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

त्वेनोपादाय परद्रव्यव्यावृत्तत्वादात्मन्येवैकस्मिन्नग्रे चिन्तां निरुणद्धि, स खल्वेकाग्रचिन्तानिरोधकस्तस्मिन्नेकाग्रचिन्तानिरोधसमये शुद्धात्मा स्यात्। अतोऽवधार्यते शुद्धनयादेव शुद्धात्मलाभः॥१९१॥

अथ ध्रुवत्वात् शुद्ध आत्मैवोपलम्भनीय इत्युपदिशति—

एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं।
धुवमचलमणालंबं मण्णेऽहं अप्पगं सुद्धं॥१९२॥

एवं ज्ञानात्मानं दर्शनभूतमतीन्द्रियमहार्थम्।
ध्रुवमचलमनालम्बं मन्येऽहमात्मकं शुद्धम्॥१९२॥

त्यजति यः। केन रूपेण। अहं ममेदं ति अहं ममेदमिति। केषु विषयेषु। देहदविणेसु देहद्रव्येषु, देहे देहोऽहमिति, परद्रव्येषु ममेदमिति। सो सामण्णं चत्ता पडिवण्णो होदि उम्मग्गं स श्रामण्यं त्यक्त्वा प्रतिपन्नो भवत्युन्मार्गम्। स पुरुषो जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रनिन्दाप्रशंसादिपरमाध्यस्थ्यलक्षणं श्रामण्यं यतित्वं चारित्रं दूरादपहाय तत्प्रतिपक्षभूतमुन्मार्गं मिथ्यामार्गं प्रतिपन्नो भवति। उन्मार्गाच्च संसारं परिभ्रमति। ततः स्थितं अशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव॥१९०॥ अथ शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभो भवतीति निश्चिनोति—णाहं होमि परेसिं, ण मे परे संति नाहं भवामि परेषाम्, न मे परे सन्तीति समस्तचेतनाचेतनपरद्रव्येषु स्वस्वामिसम्बन्धं मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च

एक मैं हूँ' इसप्रकार अनात्माको छोड़कर, आत्माको ही आत्मरूपसे ग्रहण करके, परद्रव्यसे भिन्नत्वके कारण आत्मारूप ही एक [१]अग्रमें चिन्ताको रोकता है, वह एकाग्रचिन्तानिरोधक (-एक विषयमें विचारको रोकनेवाला आत्मा) उस [२]एकाग्रचिन्तानिरोधके समय वास्तवमें शुद्धात्मा होता है। इससे निश्चित होता है कि शुद्धनयसे ही शुद्धात्माकी प्राप्ति होती है॥१९१॥

अब ऐसा उपदेश देते हैं कि ध्रुवत्त्वके कारण शुद्धात्मा ही उपलब्ध करने योग्य है :—

अन्वयार्थ :—[अहम्] मैं [आत्मकं] आत्माको [एवं] इसप्रकार [ज्ञानात्मानं] ज्ञानात्मक, [दर्शनभूतम्] दर्शनभूत, [अतीन्द्रियमहार्थं] अतीन्द्रिय महा पदार्थ [ध्रुवम्] ध्रुव, [अचलम्] अचल, [अनालम्बं] निरालम्ब और [शुद्धम्] शुद्ध [मन्ये] मानता हूँ॥१९२॥

---

१. अग्र = विषय; ध्येय; आलम्बन।

२. एकाग्रचिन्तानिरोध = एक ही विषयमें–ध्येयमें–विचारको रोकना; [एकाग्रचिन्तानिरोध नामक ध्यान है।]

अे रीत दर्शन–ज्ञान छे, इन्द्रिय–अतीत महार्थ छे,
मानुं हुं—आलंबन रहित, जीव शुद्ध, निश्चळ ध्रुव छे. १९२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

आत्मनो हि शुद्ध आत्मैव सदहेतुकत्वेनानाद्यनन्तत्वात् स्वतःसिद्धत्वाच्च ध्रुवो, न किंचनाप्यन्यत्। शुद्धत्वं चात्मनः परद्रव्यविभागेन स्वधर्माविभागेन चैकत्वात्। तच्च ज्ञानात्मकत्वाद्दर्शनभूतत्वादतीन्द्रियमहार्थत्वादचलत्वादनालम्बत्वाच्च। तत्र ज्ञानमेवात्मनि बिभ्रतः स्वयं दर्शनभूतस्य चातन्मयपरद्रव्यविभागेन स्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वम्। तथा प्रतिनियतस्पर्शरसगन्धवर्णगुणशब्दपर्यायग्राहीण्यनेकानीन्द्रियाण्यतिक्रम्य सर्वस्पर्शरसगन्धवर्णगुणशब्दपर्यायग्राहकस्यैकस्य सतो महतोऽर्थस्येन्द्रियात्मकपरद्रव्यविभागेन स्पर्शादिग्रहणात्मकस्वधर्माविभागेन

स्वात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयनयबलेन पूर्वमपहाय निराकृत्य। पश्चात् किं करोति। **णाणमहमेक्को** ज्ञानमहमेकः, सकलविमलकेवलज्ञानमेवाहं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितत्वेनैकश्च। **इदि जो झायदि** इत्यनेन प्रकारेण योऽसौ ध्यायति चिन्तयति भावयति। **क्व**। **झाणे** निजशुद्धात्मध्याने स्थितः **सो अप्पाणं हवदि झादा** स आत्मानं भवति ध्याता। स चिदानन्दैकस्वभावपरमात्मानं ध्याता भवतीति। ततश्च परमात्मध्यानात्तादृशमेव परमात्मानं लभते। तदपि कस्मात्। उपादानकारणसदृशं कार्यमिति वचनात्। ततो ज्ञायते शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभ इति॥१९१॥ अथ ध्रुवत्वाच्छुद्धात्मानमेव भावयेऽहमिति विचारयति—'मण्णे' इत्यादिपदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते—**मण्णे** मन्ये ध्यायामि सर्वप्रकारो-

टीका :—शुद्धात्मा [१]सत् और [२]अहेतुक होनेसे अनादि-अनन्त और स्वतःसिद्ध है, इसलिये आत्माके शुद्धात्मा ही ध्रुव है, (उसके) दूसरा कुछ भी ध्रुव नहीं है। आत्मा शुद्ध इसलिये है कि उसे परद्रव्यसे विभाग (भिन्नत्व) और स्वधर्मसे अविभाग है इसलिये एकत्व है। वह एकत्व आत्माके (१) ज्ञानात्मकपनेके कारण, (२) दर्शनभूतपनेके कारण, (३) अतीन्द्रिय महा पदार्थपनेके कारण, (४) अचलपनेके कारण, और (५) निरालम्बपनेके कारण है।

इनमेंसे (१-२) जो ज्ञानको ही अपनेमें धारण कर रखता है और जो स्वयं दर्शनभूत है ऐसे आत्माका अतन्मय (ज्ञान-दर्शन रहित ऐसा) परद्रव्यसे भिन्नत्व है और स्वधर्मसे अभिन्नत्व है, इसलिये उसके एकत्व है; (३) और जो [३]प्रतिनिश्चित स्पर्श-रस-गंध-वर्णरूप गुण तथा शब्दरूप पर्यायको ग्रहण करनेवाली अनेक इन्द्रियोंका अतिक्रम (उल्लंघन) करके, समस्त स्पर्श-रस-गंध-वर्णरूप गुणों और शब्दरूप पर्यायको ग्रहण करनेवाला एक सत् महा पदार्थ है, ऐसे आत्माका इन्द्रियात्मक परद्रव्यसे विभाग है, और स्पर्शादिके ग्रहणस्वरूप (ज्ञानस्वरूप) स्वधर्मसे अविभाग है, इसलिये उसके एकत्व है, (४) और क्षणविनाशरूपसे प्रवर्तमान ज्ञेयपर्यायोंको (प्रतिक्षण नष्ट होनेवाली ज्ञातव्य पर्यायोंको) ग्रहण करने और छोड़नेका

१. सत् = विद्यमान; अस्तित्ववाला; होनेवाला।

२. अहेतुक = जिसका कोई कारण नहीं है ऐसा; अकारण।

३. प्रतिनिश्चित = प्रतिनियत। (प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने नियत विषयको ग्रहण करती है; जैसे चक्षु वर्णको ग्रहण करती है।)

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

चास्त्येकत्वम्। तथा क्षणक्षयप्रवृत्तपरिच्छेद्यपर्यायग्रहणमोक्षणाभावेनाचलस्य परिच्छेद्यपर्यायात्मक-परद्रव्यविभागेन तत्प्रत्ययपरिच्छेदात्मकस्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वम्। तथा नित्यप्रवृत्तपरिच्छेद्य-द्रव्यालम्बनाभावेनानालम्बस्य परिच्छेद्यपरद्रव्यविभागेन तत्प्रत्ययपरिच्छेदात्मकस्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वम्। एवं शुद्ध आत्मा, चिन्मात्रशुद्धनयस्य तावन्मात्रनिरूपणात्मकत्वात्। अयमेक एव च ध्रुवत्वादुपलब्धव्यः। किमन्यैरध्वनीनांगसंगच्छमानानेकमार्गपादपच्छायास्थानीयैरध्रुवैः ।।१९२।।

पादेयत्वेन भावये। स कः। **अहं** अहं कर्ता। **कं** कर्मतापन्नम्। **अप्पगं** सहजपरमाह्लादैकलक्षणनिजात्मानम्। किंविशिष्टम्। **सुद्धं** रागादिसमस्तविभावरहितम्। पुनरपि किंविशिष्टम्। **धुवं** टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेन ध्रुवमविनश्वरम्। पुनरपि कथंभूतम्। **एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं एवं** बहुविधपूर्वोक्तप्रकारेणाखण्डैकज्ञानदर्शनात्मकम्। पुनश्च किंरूपम्। **अदिंदियं** अतीन्द्रियं, मूर्तविनश्वरानेकेन्द्रियरहितत्वेनामूर्ताविनश्वरैकातीन्द्रियस्वभावम्। पुनश्च कीदृशम्। **महत्थं** मोक्षलक्षणमहापुरुषार्थसाधकत्वान्महार्थम्। पुनरपि किंस्वभावम्। **अचलं** अतिचपलचञ्चलमनोवाक्कायव्यापाररहितत्वेन स्वस्वरूपे निश्चलं स्थिरम्। पुनरपि किंविशिष्टम्। **अणालंबं** स्वाधीनद्रव्यत्वेन सालम्बनं भरितावस्थमपि समस्तपराधीनपरद्रव्यालम्बनरहितत्वेन निरालम्बनमित्यर्थः।।१९२।। अथात्मनः पृथग्भूतं देहादिकम-

---

अभाव होनेसे जो अचल है ऐसे आत्माको ज्ञेयपर्यायस्वरूप परद्रव्यसे विभाग है और [१]तन्निमित्तक ज्ञानस्वरूप स्वधर्मसे अविभाग है, इसलिये उसके एकत्व है; (५) और नित्यरूपसे प्रवर्तमान (शाश्वत ऐसा) ज्ञेयद्रव्योंके आलम्बनका अभाव होनेसे जो निरालम्ब है ऐसे आत्माका ज्ञेय परद्रव्योंसे विभाग है और तन्निमित्तक ज्ञानस्वरूप स्वधर्मसे अविभाग है, इसलिये उसके एकत्व है।

इसप्रकार आत्मा शुद्ध है क्योंकि चिन्मात्र शुद्धनय उतना ही मात्र निरूपणस्वरूप है (अर्थात् चैतन्यमात्र शुद्धनय आत्माको मात्र शुद्ध ही निरूपित करता है)। और यह एक ही (यह शुद्धात्मा एक ही) ध्रुवत्वके कारण उपलब्ध करने योग्य है। किसी पथिकके शरीरके अंगोंके साथ संसर्गमें आनेवाली मार्गके वृक्षोंकी अनेक छायाके समान अन्य जो अध्रुव (-अन्य जो अध्रुव पदार्थ) उनसे क्या प्रयोजन है?

भावार्थ :—आत्मा (१) ज्ञानात्मक, (२) दर्शनरूप, (३) इन्द्रियोंके विना ही सबको जाननेवाला महा पदार्थ, (४) ज्ञेय-परपर्यायोंका ग्रहण-त्याग न करनेसे अचल और (५) ज्ञेय-परद्रव्योंका आलम्बन न लेनेसे निरालम्ब है; इसलिये वह एक है।

इसप्रकार एक होनेसे वह शुद्ध है। ऐसा शुद्धात्मा ध्रुव होनेसे, वही एक उपलब्ध करने योग्य है।।१९२।।

---

१. ज्ञेय पर्यायें जिसकी निमित्त हैं ऐसा जो ज्ञान, उस-स्वरूप स्वधर्मसे (ज्ञानस्वरूप निजधर्मसे) आत्माकी अभिन्नता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथाध्रुवत्वादात्मनोऽन्यन्नोपलभनीयमित्युपदिशति—

देहा वा दविणा वा सुहदुक्खा वाध सत्तुमित्तजणा।
जीवस्स ण संति धुवा धुवोवओगप्पगो अप्पा॥१९३॥

देहा वा द्रविणानि वा सुखदुःखे वाथ शत्रुमित्रजनाः।
जीवस्य न सन्ति ध्रुवा ध्रुव उपयोगात्मक आत्मा॥१९३॥

आत्मनो हि परद्रव्याविभागेन परद्रव्योपरज्यमानस्वधर्मविभागेन चाशुद्धत्वनिबन्धनं न किंचनाप्यन्यदसद्धेतुमत्त्वेनाद्यन्तवत्त्वात्परतःसिद्धत्वाच्च ध्रुवमस्ति। ध्रुव उपयोगात्मा शुद्ध आत्मैव। अतोऽध्रुवं शरीरादिकमुपलभ्यमानमपि नोपलभे, शुद्धात्मानमुपलभे ध्रुवम्॥१९३॥

ध्रुवत्वान्न भावनीयमित्याख्याति—ण संति धुवा ध्रुवा अविनश्वरा नित्या न सन्ति। कस्य। जीवस्स जीवस्य। के ते। देहा वा दविणा वा देहा वा द्रव्याणि वा, सर्वप्रकारशुचिभूताद्देहरहितात्परमात्मनो

अब, ऐसा उपदेश देते हैं कि अध्रुवपनेके कारण आत्माके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी उपलब्ध करने योग्य नहीं है :—

अन्वयार्थ :—[देहाः वा] शरीर, [द्रविणानि वा] धन, [सुखदुःखे] सुख-दुःख [वा अथ] अथवा [शत्रुमित्रजनाः] शत्रुमित्रजन (यह कुछ) [जीवस्य] जीवके [ध्रुवाः न सन्ति] ध्रुव नहीं हैं; [ध्रुवः] ध्रुव तो [उपयोगात्मकः आत्मा] उपयोगात्मक आत्मा है॥१९३॥

टीका :—जो परद्रव्यसे अभिन्न होनेके कारण और परद्रव्यके द्वारा [१]उपरक्त होनेवाले स्वधर्मसे भिन्न होनेके कारण आत्माको अशुद्धपनेका कारण है, ऐसा (आत्माके अतिरिक्त) दूसरा कोई भी ध्रुव नहीं है, क्योंकि वह [२]असत् और [३]हेतुमान् होनेसे आदि-अन्तवाला और परतःसिद्ध है; ध्रुव तो उपयोगात्मक शुद्ध आत्मा ही है। ऐसा होनेसे मैं उपलभ्यमान अध्रुव ऐसे शरीरादिको—वे उपलब्ध होने पर भी—उपलब्ध नहीं करता, और ध्रुव ऐसे शुद्धात्माको उपलब्ध करता हूँ॥१९३॥

१. उपरक्त = मलिन; विकारी [परद्रव्यके निमित्तसे आत्माका स्वधर्म उपरक्त होता है।]
२. असत् = अस्तित्व रहित (अनित्य); [धन-देहादिक पुद्गल पर्याय हैं, इसलिये असत् हैं, इसीलिये आदिअन्तवाली हैं।]
३. हेतुमान् = सहेतुक; जिसकी उत्पत्तिमें कोई भी निमित्त हो ऐसा। [देह-धनादिकी उत्पत्तिमें कोई भी निमित्त होता है, इसलिये वे परतः सिद्ध हैं; स्वतः सिद्ध नहीं।]

लक्ष्मी, शरीर, सुखदुःख अथवा शत्रुमित्र जनो अरे!
जीवने नथी कंई ध्रुव, ध्रुव उपयोग-आत्मक जीव छे. १९३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथैवं शुद्धात्मोपलम्भात्किं स्यादिति निरूपयति—

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा।
सागारोऽणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं॥१९४॥

य एवं ज्ञात्वा ध्यायति परमात्मानं विशुद्धात्मा।
साकारोऽनाकारः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम्॥१९४॥

अमुना यथोदितेन विधिना शुद्धात्मानं ध्रुवमधिगच्छतस्तस्मिन्नेव प्रवृत्तेः शुद्धात्मत्वं स्यात्; ततोऽनन्तशक्तिचिन्मात्रस्य परमस्यात्मन एकाग्रसंचेचेतनलक्षणं ध्यानं स्यात्; ततः

विलक्षणा औदारिकादिपञ्चदेहास्तथैव च पञ्चेन्द्रियभोगोपभोगसाधकानि परद्रव्याणि च। न केवलं देहादयो ध्रुवा न भवन्ति, सुहदुक्खा वा निर्विकारपरमानन्दैकलक्षणस्वात्मोत्थसुखामृतविलक्षणानि सांसारिकसुखदुःखानि वा। अथ अहो भव्याः सत्तुमित्तजणा शत्रुमित्रादिभावरहितादात्मनो भिन्नाः शत्रुमित्रादिजनाश्च। यद्येतत् सर्वमध्रुवं तर्हि किं ध्रुवमिति चेत्। ध्रुवो ध्रुवः शाश्वतः। स कः। अप्पा निजात्मा। किंविशिष्टः। उवओगप्पगो त्रैलोक्योदरविवरवर्तित्रिकालविषयसमस्तद्रव्यगुणपर्याययुगपत्परिच्छित्तिसमर्थकेवलज्ञानदर्शनोपयोगात्मक इति। एवमध्रुवत्वं ज्ञात्वा ध्रुवस्वभावे स्वात्मनि भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्॥१९३॥ एवमशुद्धनयादशुद्धात्मलाभो भवतीति कथनेन प्रथमगाथा। शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभो भवतीति कथनेन द्वितीया। ध्रुवत्वादात्मैव भावनीय इति प्रतिपादनेन तृतीया। आत्मानोऽन्यदध्रुवं न भावनीयमिति कथनेन चतुर्थी चेति शुद्धात्मव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्। अथैवं पूर्वोक्तप्रकारेण शुद्धात्मोपलम्भे सति किं फलं भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह—झादि ध्यायति जो यः कर्ता। कम्। अप्पगं निजात्मानम्। कथंभूतम्। परं

इसप्रकार शुद्धात्माकी उपलब्धिसे क्या होता है वह अब निरूपण करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यः] जो [एवं ज्ञात्वा] ऐसा जानकर [विशुद्धात्मा] विशुद्धात्मा होता हुआ [परमात्मानं] परम आत्माका [ध्यायति] ध्यान करता है, [सः] वह—[साकारः अनाकारः] साकार हो या अनाकार—[मोहदुर्ग्रंथिं] मोहदुर्ग्रंथिका [क्षपयति] क्षय करता है॥१९४॥

टीका :—इस यथोक्त विधिके द्वारा जो शुद्धात्माको ध्रुव जानता है, उसे उसीमें प्रवृत्तिके द्वारा शुद्धात्मत्व होता है; इसलिये अनन्तशक्तिवाले [१]चिन्मात्र परम आत्माका

---

१. चिन्मात्र = चैतन्यमात्र [परम आत्मा केवल चैतन्यमात्र है, जो कि अनन्त शक्तिवाला है।]

–आ जाणी, शुद्धात्मा वनी, ध्यावे परम निज आत्मने,
साकार अण–आकार हो, ते मोहग्रंथि क्षय करे. १९४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

साकारोपयुक्तस्यानाकारोपयुक्तस्य वाविशेषेणैकाग्रचेतनप्रसिद्धेरासंसारबद्धदृढतरमोहदुर्ग्रन्थेरुद्ग्रथनं स्यात्। अतः शुद्धात्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिभेदः फलम्॥१९४॥

अत मोहग्रन्थिभेदात्किं स्यादिति निरूपयति—

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे।
होज्जं समसुहदुक्खो सो सोक्खं अक्खयं लहदि॥१९५॥

यो निहतमोहग्रन्थी रागप्रद्वेषौ क्षपयित्वा श्रामण्ये।
भवेत् समसुखदुःखः स सौख्यमक्षयं लभते॥१९५॥

परमानन्तज्ञानादिगुणाधारत्वात्परमुत्कृष्टम्। किं कृत्वा पूर्वम्। एवं जाणित्ता एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वात्मोपलम्भलक्षणस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा। कथंभूतः सन् ध्यायति। विसुद्धप्पा ख्यातिपूजालाभादिसमस्तमनोरथजालरहितत्वेन विशुद्धात्मा सन्। पुनरपि कथंभूतः सागारोऽणागारो सागारोऽनागारः। अथवा साकारानाकारः। सहाकारेण विकल्पेन वर्तते साकारो ज्ञानोपयोगः, अनाकारो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगस्ताभ्यां युक्तः साकारानाकारः। अथवा साकारः सविकल्पो गृहस्थः, अनाकारो निर्विकल्पस्तपोधनः। अथवा सहाकारेण लिङ्गेन चिह्नेन वर्तते साकारो यतिः, अनाकारश्चिह्नरहितो गृहस्थः। खवेदि सो मोहदुग्गंठिं य एवंगुणविशिष्टः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम्। मोह एव दुर्ग्रन्थिः मोहदुर्ग्रन्थिः शुद्धात्मरुचिप्रतिबन्धको दर्शनमोहस्तम्। ततः स्थितमेतत्--आत्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिविनाश एव फलम्॥१९४॥

---

[१]एकाग्रसंचेतनलक्षण ध्यान होता है; और इसलिये (उस ध्यानके कारण) साकार (सविकल्प) उपयोगवालेको या अनाकार (निर्विकल्प) उपयोगवालेको—दोनोंको अविशेषरूपसे एकाग्रसंचेतनकी प्रसिद्धि होनेसे–अनादि संसारसे बँधी हुई अतिदृढ़ मोहदुर्ग्रंथि (मोहकी दुष्ट गाँठ) छूट जाती है।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) मोहग्रंथि भेद (दर्शनमोहरूपी गाँठका टूटना) वह शुद्धात्माकी उपलब्धिका फल है॥१९४॥

अब, मोहग्रंथि टूटनेसे क्या होता है सो कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यः] जो [निहतमोहग्रंथी] मोहग्रंथिको नष्ट करके, [रागप्रद्वेषौ क्षपयित्वा] राग–द्वेषका क्षय करके, [समसुखदुःखः] समसुख–दुःख होता हुआ [श्रामण्ये भवेत्] श्रमणता (मुनित्व) में परिणमित होता है, [सः] वह [अक्षयं सौख्यं] अक्षय सौख्यको

---

१. एक अग्रका (विषयका, ध्येयका) संचेतन अर्थात् अनुभवन ध्यानका लक्षण है।

हणि मोहग्रंथि, क्षय करी रागादि, समसुखदुःख जे
जीव परिणमे श्रामण्यमां, ते सौख्य अक्षयने लहे. १९५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

मोहग्रन्थिक्षपणाद्धि तन्मूलरागद्वेषक्षपणं; ततः समसुखदुःखस्य परममाध्यस्थलक्षणे श्रामण्ये भवनं; ततोऽनाकुलत्वलक्षणाक्षयसौख्यलाभः। अतो मोहग्रन्थिभेदादक्षयसौख्यं फलम् ॥१९५॥

अथैकाग्रसंचेतनलक्षणं ध्यानमशुद्धत्वमात्मनो नावहतीति निश्चिनोति—

जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि झादा ॥१९६॥

अथ दर्शनमोहग्रन्थिभेदात्किं भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति—**जो णिहदमोहगंठी** यः पूर्वसूत्रोक्तप्रकारेण निहतदर्शनमोहग्रन्थिर्भूत्वा **रागपदोसे खवीय** निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूतिलक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चरित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ क्षपयित्वा। **क्व**। **सामण्णे** स्वस्वभावलक्षणे श्रामण्ये। पुनरपि किं कृत्वा। **होज्जं** भूत्वा। किंविशिष्टः। **समसुहदुक्खो** निजशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमसुखामृतानुभवेन सांसारिकसुखदुःखोत्पन्नहर्षविषादरहितत्वात्समसुखदुःखः। **सो सोक्खं अक्खयं लहदि** स एवंगुणविशिष्टो भेदज्ञानी सौख्यमक्षयं लभते। ततो ज्ञायते दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहसंज्ञरागद्वेषविनाशस्ततश्च सुखदुःखादिमाध्यस्थ्यलक्षणश्रामण्येऽवस्थानं तेनाक्षयसुखलाभो भवतीति ॥१९५॥ अथ निजशुद्धात्मैकाग्र्यलक्षणध्यानमात्मनोऽत्यन्तविशुद्धिं करोतीत्यावेदयति—**जो खविदमोहकलुसो** यः क्षपितमोहकलुषः, मोहो दर्शनमोहः कलुषश्चारित्रमोहः, पूर्वसूत्रद्वयकथितक्रमेण क्षपितमोहकलुषौ येन

[**लभते**] प्राप्त करता है ॥१९५॥

टीका :—मोहग्रंथिका क्षय करनेसे, मोहग्रंथि जिसका मूल है ऐसे राग-द्वेषका, क्षय होता है; उससे (राग-द्वेषका क्षय होनेसे), सुख-दुःख समान हैं ऐसे जीवका परम मध्यस्थता जिसका लक्षण है ऐसी श्रमणतामें परिणमन होता है; और उससे (श्रामण्यमें परिणमनसे) अनाकुलता जिसका लक्षण है ऐसे अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।

इससे (ऐसा कहा है कि) मोहरूपी ग्रंथिके छेदनसे अक्षय सौख्यरूप फल होता है ॥१९५॥

अब, [१]एकाग्रसंचेतन जिसका लक्षण है, ऐसा ध्यान आत्मामें अशुद्धता नहीं लाता ऐसा निश्चित करते हैं :—

---

१. एकाग्र = जिसका एक ही विषय (आलंबन) हो ऐसा।

જે મોહમળ કરી નષ્ટ, વિષયવિરક્ત થઈ, મન રોકીને,
આત્મસ્વભાવે સ્થિત છે, તે આત્મને ધ્યાનાર છે. ૧૯૬.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

यः क्षपितमोहकलुषो विषयविरक्तो मनो निरुध्य।
समवस्थितः स्वभावे स आत्मानं भवति ध्याता॥१९६॥

आत्मनो हि परिक्षपितमोहकलुषस्य तन्मूलपरद्रव्यप्रवृत्त्यभावाद्विषयविरक्तत्वं स्यात्; ततोऽधिकरणभूतद्रव्यान्तराभावादुदधिमध्यप्रवृत्तैकपोतपतत्रिण इव अनन्यशरणस्य मनसो निरोधः स्यात्; ततस्तन्मूलचंचलत्वविलयादनन्तसहजचैतन्यात्मनि स्वभावे समवस्थानं स्यात्। तत्तु स्वरूपप्रवृत्तानाकुलैकाग्रसंचेतनत्वात् ध्यानमित्युपगीयते। अतः स्वभावावस्थानरूपत्वेन ध्यानमात्मनोऽनन्यत्वात् नाशुद्धत्वायेति॥१९६॥

स भवति क्षपितमोहकलुषः। पुनरपि किंविशिष्टः। **विसयविरत्तो** मोहकलुषरहितस्वात्मसंवित्तिसमुत्पन्न-सुखसुधारसास्वादबलेन कलुषमोहोदयजनितविषयसुखाकाङ्क्षारहितत्वाद्विषयविरक्तः। पुनरपि कथंभूतः। **समवट्ठिदो** सम्यगवस्थितः। क्व। **सहावे** निजपरमात्मद्रव्यस्वभावे। किं कृत्वा पूर्वम्। **मणो णिरुंभित्ता** विषयकषायोत्पन्नविकल्पजालरूपं मनो निरुध्य निश्चलं कृत्वा। **सो अप्पाणं हवदि झादा** स एवंगुणयुक्तः पुरुषः स्वात्मानं भवति ध्याता। तेनैव शुद्धात्मध्यानेनात्यन्तिकीं मुक्तिलक्षणां शुद्धिं लभत

अन्वयार्थ :—[यः] जो [क्षपितमोहकलुषः] मोहमलका क्षय करके, [विषयविरक्तः] विषयसे विरक्त होकर, [मनः निरुध्य] मनका निरोध करके, [स्वभावे समवस्थितः] स्वभावमें समवस्थित है, [सः] वह [आत्मानं] आत्माका [ध्याता भवति] ध्यान करनेवाला है॥१९६॥

टीका :—जिसने मोहमलका क्षय किया है ऐसे आत्माके, मोहमल जिसका मूल है ऐसी [१]परद्रव्यप्रवृत्तिका अभाव होनेसे विषयविरक्तता होती है; (उससे अर्थात् विषय विरक्त होनेसे), समुद्रके मध्यगत जहाजके पक्षीकी भाँति, अधिकरणभूत द्रव्यान्तरोंका अभाव होनेसे जिसे अन्य कोई शरण नहीं रहा है ऐसे मनका निरोध होता है। (अर्थात् जैसे समुद्रके बीचमें पहुँचे हुए किसी एकाकी जहाज पर बैठे हुए पक्षीको उस जहाजके अतिरिक्त अन्य किसी जहाजका, वृक्षका या भूमि इत्यादिका आधार न होनेसे दूसरा कोई शरण नहीं है, इसलिये उसका उड़ना बन्द हो जाता है, उसी प्रकार विषयविरक्तता होनेसे मनको आत्मद्रव्यके अतिरिक्त किन्हीं अन्यद्रव्योंका आधार नहीं रहता इसलिये दूसरा कोई शरण न रहनेसे मन निरोधको प्राप्त होता है); और इसलिये (अर्थात् मनका निरोध होनेसे), मन जिसका मूल है ऐसी चंचलताका विलय होनेके कारण अनन्तसहज-चैतन्यात्मक स्वभावमें [२]समवस्थान होता है वह स्वभावसमवस्थान तो स्वरूपमें प्रवर्तमान, अनाकुल, एकाग्र संचेतन होनेसे उसे ध्यान कहा जाता है।

इससे (यह निश्चित हुआ कि-) ध्यान, स्वभावसमवस्थानरूप होनेके कारण आत्मासे

१. परद्रव्य प्रवृत्ति = परद्रव्यमें प्रवर्तन। २. समवस्थान = स्थिरतया-दृढ़तया रहना-टिकना।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथोपलब्धशुद्धात्मा सकलज्ञानी किं ध्यायतीति प्रश्नमासूत्रयति—

णिहदघणघादिकम्मो पच्चक्खं सव्वभावतच्चण्हू।
णेयंतगदो समणो झादि कमट्ठं असंदेहो॥१९७॥

निहतघनघातिकर्मा प्रत्यक्षं सर्वभावतत्त्वज्ञः।
ज्ञेयान्तगतः श्रमणो ध्यायति कमर्थमसन्देहः॥१९७॥

लोको हि मोहसद्भावे ज्ञानशक्तिप्रतिबन्धकसद्भावे च सतृष्णत्वादप्रत्यक्षार्थत्वा-

---

इति। ततः स्थितं शुद्धात्मध्यानाज्जीवो विशुद्धो भवतीति। किंच ध्यानेन किलात्मा शुद्धो जातः तत्र विषये चतुर्विधव्याख्यानं क्रियते। तथाहि—ध्यानं ध्यानसन्तानस्तथैव ध्यानचिन्ता ध्यानान्वय-सूचनमिति। तत्रैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्। तच्च शुद्धाशुद्धरूपेण द्विधा। अथ ध्यानसन्तानः कथ्यते—यत्रान्तर्मुहूर्तपर्यन्तं ध्यानं, तदनन्तरमन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं तत्त्वचिन्ता, पुनरप्यन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं ध्यानं, पुनरपि तत्त्वचिन्तेति प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानवदन्तर्मुहूर्तेऽन्तर्मुहूर्ते गते सति परावर्तनमस्ति स ध्यानसन्तानो भण्यते। स च धर्म्यध्यानसंबन्धी। शुक्लध्यानं पुनरुपशमश्रेणिक्षपकश्रेण्यारोहणे भवति। तत्र चाल्पकालत्वात्परावर्तनरूपध्यानसन्तानो न घटते। इदानीं ध्यानचिन्ता कथ्यते—यत्र ध्यानसन्तान-वद्ध्यानपरावर्तो नास्ति, ध्यानसंबन्धिनी चिन्तास्ति, तत्र यद्यपि क्वापि काले ध्यानं करोति तथापि सा ध्यानचिन्ता भण्यते। अथ ध्यानान्वयसूचनं कथ्यते—यत्र ध्यानसामग्रीभूता द्वादशानुप्रेक्षा अन्यद्वा ध्यानसंबन्धि संवेगवैराग्यवचनं व्याख्यानं वा तत् ध्यानान्वयसूचनमिति। अन्यथा वा चतुर्विधं ध्यानव्याख्यानं—ध्याता ध्यानं फलं ध्येयमिति। अथवार्तरौद्रधर्म्यशुक्लविभेदेन चतुर्विधं ध्यानव्याख्यानं

अनन्य होनेसे अशुद्धताका कारण नहीं होता॥१९६॥

अब, सूत्रद्वारा ऐसा प्रश्न करते हैं कि जिनने शुद्धात्माको उपलब्ध किया है ऐसे सकलज्ञानी (सर्वज्ञ) क्या ध्याते हैं? :—

अन्वयार्थ :—[**निहतघनघातिकर्मा**] जिनने घनघातिकर्मका नाश किया है, [**प्रत्यक्षं सर्वभावतत्त्वज्ञः**] जो सर्व पदार्थोंके स्वरूपको प्रत्यक्ष जानते हैं और [**ज्ञेयान्तगतः**] जो ज्ञेयोंके पारको प्राप्त हैं, [**असंदेहः श्रमणः**] ऐसे संदेह रहित श्रमण [**कम् अर्थं**] किस पदार्थको [**ध्यायति**] ध्याते हैं? ॥१९७॥

टीका :—लोकको (१) मोहका सद्भाव होनेसे तथा (२) ज्ञानशक्तिके [१]प्रतिबन्धकका सद्भाव होनेसे, (१) वह तृष्णा सहित है तथा (२) उसे पदार्थ प्रत्यक्ष नहीं

---

१. ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञानशक्तिका प्रतिबंधक अर्थात् ज्ञानके रुकनेमें निमित्तभूत है।

शा अर्थने ध्यावे श्रमण, जे नष्टघातिकर्म छे,
प्रत्यक्ष सर्व पदार्थ ने ज्ञेयान्तप्राप्त, निःशंक छे. १९७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

नवच्छिन्नविषयत्वाभ्यां चाभिलषितं जिज्ञासितं सन्दिग्धं चार्थं ध्यायन् दृष्टः, भगवान् सर्वज्ञस्तु निहतघनघातिकर्मतया मोहाभावे ज्ञानशक्तिप्रतिबन्धकाभावे च निरस्ततृष्णत्वात्प्रत्यक्षसर्वभाव-तत्त्वज्ञेयान्तगतत्वाभ्यां च नाभिलषति, न जिज्ञासति, न सन्दिह्यति च; कुतोऽभिलषितो जिज्ञासितः सन्दिग्धश्चार्थः। एवं सति किं ध्यायति॥१९७॥

तदन्यत्र कथितमास्ते॥१९६॥ एवमात्मपरिज्ञानाद्दर्शनमोहक्षपणं भवतीति कथनरूपेण प्रथमगाथा, दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहक्षपणं भवतीति कथनेन द्वितीया, तदुभयक्षयेण मोक्षो भवतीति प्रतिपादनेन तृतीया चेत्यात्मोपलम्भफलकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम्। अथोपलब्धशुद्धात्मतत्त्वसकलज्ञानी किं ध्यायतीति प्रश्नमाक्षेपद्वारेण पूर्वपक्षं वा करोति—**णिहदघणघादिकम्मो** पूर्वसूत्रोदितनिश्चलनिज-परमात्मतत्त्वपरिणतिरूपशुद्धध्यानेन निहतघनघातिकर्मा। **पच्चक्खं सव्वभावतच्चण्हू** प्रत्यक्षं यथा भवति तथा सर्वभावतत्त्वज्ञः सर्वपदार्थपरिज्ञातस्वरूपः। **णेयंतगदो** ज्ञेयान्तगतः ज्ञेयभूतपदार्थानां परिच्छित्तिरूपेण पारंगतः। एवंविशेषणत्रयविशिष्टः **समणो** जीवितमरणादिसमभावपरिणतात्मस्वरूपः श्रमणो महाश्रमणः

है और वह विषयको [१]अवच्छेदपूर्वक नहीं जानता, इसलिये वह (लोक) [२]अभिलषित, [३]जिज्ञासित और [४]संदिग्ध पदार्थका ध्यान करता हुआ दिखाई देता है; परन्तु घनघातिकर्मका नाश किया जानेसे (१) मोहका अभाव होनेके कारण तथा (२) ज्ञानशक्तिके प्रतिबन्धकका अभाव होनेसे, (१) तृष्णा नष्ट की गई है तथा (२) समस्त पदार्थोंका स्वरूप प्रत्यक्ष है तथा ज्ञेयोंका पार पा लिया है, इसलिये भगवान सर्वज्ञदेव अभिलाषा नहीं करते, जिज्ञासा नहीं करते और संदेह नहीं करते; तब फिर (उनके) अभिलषित, जिज्ञासित और संदिग्ध पदार्थ कहाँसे हो सकता है? ऐसा है तब फिर वे क्या ध्याते हैं?

भावार्थ :—लोकके (जगत्के सामान्य जीव समुदायके) मोहकर्मका सद्भाव होनेसे वह तृष्णा सहित है, इसलिये उसे इष्ट पदार्थकी अभिलाषा होती है; और उसके ज्ञानावरणीय कर्मका सद्भाव होनेसे वह बहुतसे पदार्थोंको तो जानता ही नहीं है तथा जिस पदार्थको जानता है उसे भी पृथक्करण पूर्वक—सूक्ष्मतासे—स्पष्टतासे नहीं जानता इसलिये उसे अज्ञात पदार्थको जाननेकी इच्छा (जिज्ञासा) होती है, और अस्पष्टतया जाने हुए पदार्थके संबंधमें संदेह होता है। ऐसा होनेसे उसके अभिलषित, जिज्ञासित और संदिग्ध पदार्थका ध्यान संभवित होता है। परन्तु सर्वज्ञ भगवानके तो मोहकर्मका अभाव होनेसे वे तृष्णारहित हैं, इसलिये उनके अभिलाषा नहीं है; और उनके ज्ञानावरणीय कर्मका अभाव होनेसे वे समस्त पदार्थोंको जानते हैं तथा प्रत्येक पदार्थको अत्यन्त स्पष्टतापूर्वक—परिपूर्णतया जानते हैं इसलिये उन्हें जिज्ञासा या सन्देह नहीं है। इसप्रकार उन्हें किसी पदार्थके प्रति अभिलाषा, जिज्ञासा या सन्देह नहीं होता; तब फिर उन्हें किस पदार्थका ध्यान होता है? ॥१९७॥

१. अवच्छेदपूर्वक = पृथक्करण करके; सूक्ष्मतासे; विशेषतासे; स्पष्टतासे। २. अभिलषित = जिसकी इच्छा–चाह हो वह। ३. जिज्ञासित = जिसकी जिज्ञासा जाननेकी इच्छा हो वह। ४. संदिग्ध = जिनमें संदेह हो–संशय हो।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथैतदुपलब्धशुद्धात्मा सकलज्ञानी ध्यायतीत्युत्तरमासूत्रयति—

सव्वाबाधविजुत्तो समंतसव्वक्खसोक्खणाणड्ढो।
भूदो अक्खातीदो झादि अणक्खो परं सोक्खं॥१९८॥

सर्वाबाधवियुक्तः समन्तसर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः।
भूतोऽक्षातीतो ध्यायत्यनक्षः परं सौख्यम्॥१९८॥

अयमात्मा यदैव सहजसौख्यज्ञानबाधायतनानामसार्वदिक्कासकलपुरुषसौख्यज्ञाना-

---

सर्वज्ञः **झादि** कमट्ठं ध्यायति कमर्थमिति प्रश्नः। अथवा कमर्थं ध्यायति, न कमपीत्याक्षेपः। कथंभूतः सन्। **असंदेहो** असन्देहः संशयादिरहित इति। अयमत्रार्थः—यथा कोऽपि देवदत्तो विषयसुखनिमित्तं विद्याराधनाध्यानं करोति, यदा विद्या सिद्धा भवति तत्फलभूतं विषयसुखं च सिद्धं भवति तदाराधनाध्यानं न करोति, तथायं भगवानपि केवलज्ञानविद्यानिमित्तं तत्फलभूतानन्तसुखनिमित्तं च पूर्वं छद्मस्थावस्थायां शुद्धात्मभावनारूपं ध्यानं कृतवान्, इदानीं तद्ध्यानेन केवलज्ञानविद्या सिद्धा तत्फलभूतमनन्तसुखं च सिद्धम्; किमर्थं ध्यानं करोतीति प्रश्नः आक्षेपो वा; द्वितीयं च कारणं—परोक्षेऽर्थे ध्यानं भवति, भगवतः सर्वं प्रत्यक्षं, कथं ध्यानमिति पूर्वपक्षद्वारेण गाथा गता॥१९७॥ अथात्र पूर्वपक्षे परिहारं ददाति—**झादि** ध्यायति एकाकारसमरसीभावेन परिणमत्यनुभवति। स कः

अब, सूत्र द्वारा (उपरोक्त गाथाके प्रश्नका) उत्तर देते हैं कि—जिसने शुद्धात्माको उपलब्ध किया है वह सकलज्ञानी (सर्वज्ञ आत्मा) इस (परम सौख्य) का ध्यान करता है :—

अन्वयार्थ :—[**अनक्षः**] अनिन्द्रिय और [**अक्षातीतः भूतः**] इन्द्रियातीत हुआ आत्मा [**सर्वाबाधवियुक्तः**] सर्व बाधा रहित और [**समंतसर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः**] सम्पूर्ण आत्मामें समंत (सर्वप्रकारके, परिपूर्ण) सौख्य तथा ज्ञानसे समृद्ध वर्तता हुआ [**परं सौख्यं**] परम सौख्यका [**ध्यायति**] ध्यान करता है॥१९८॥

टीका :—जब यह आत्मा, जो सहज सुख और ज्ञानकी बाधाके [१]आयतन हैं (ऐसी) तथा जो [२]असकल आत्मामें [३]असर्वप्रकारके सुख और ज्ञानके आयतन हैं ऐसी

१ आयतन = निवास; स्थान।

२ असकल आत्मामें = आत्माके सर्व प्रदेशोंमें नहीं किन्तु थोड़े ही प्रदेशोंमें।

३ असर्वप्रकारके = सभी प्रकारके नहीं किन्तु अमुक ही प्रकारके; अपूर्ण [यह अपूर्ण सुख परमार्थतः सुखाभास होने पर भी, उसे 'सुख' कहनेकी अपारमार्थिक रूढ़ि है।]

बाधा रहित, सकलात्ममां सम्पूर्ण सुखज्ञानाढ्य जे,
इन्द्रिय–अतीत अनिंद्रि ते ध्यावे परम आनंदने. १९८.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यतनानां चाक्षाणामभावात्स्वयमनक्षत्वेन वर्तते तदैव परेषामक्षातीतो भवन् निराबाध-सहजसौख्यज्ञानत्वात् सर्वाबाधवियुक्तः, सार्वदिक्कसकलपुरुषसौख्यज्ञानपूर्णत्वात्समन्तसर्वाक्ष-सौख्यज्ञानाढ्यश्च भवति। एवंभूतश्च सर्वाभिलाषजिज्ञासासन्देहासम्भवेऽप्यपूर्वमनाकुलत्वलक्षणं परमसौख्यं ध्यायति। अनाकुलत्वसंगतैकाग्रसंचेतनमात्रेणावतिष्ठत इति यावत्। ईदृश-मवस्थानं च सहजज्ञानानन्दस्वभावस्य सिद्धत्वस्य सिद्धिरेव॥१९८॥

कर्ता। भगवान्। किं ध्यायति। **सोक्खं** सौख्यम्। किंविशिष्टम्। **परं** उत्कृष्टं, सर्वात्मप्रदेशाह्लादक-परमानन्तसुखम्। कस्मिन्प्रस्तावे। यस्मिन्नेव क्षणे भूदो भूतः संजातः। किंविशिष्टः। **अक्खातीदो** अक्षातीतः इन्द्रियरहितः। न केवलं स्वयमतीन्द्रियो जातः परेषां च **अणक्खो** अनक्षः इन्द्रियविषयो न भवतीत्यर्थः। पुनरपि किंविशिष्टः। **सव्वाबाधविजुत्तो** प्राकृतलक्षणबलेन बाधाशब्दस्य ह्रस्वत्वं सर्वाबाधा-वियुक्तः। आसमन्ताद्बाधाः पीडा आबाधाः सर्वाश्च ता आबाधाश्च सर्वाबाधास्ताभिर्वियुक्तो रहितः सर्वाबाधावियुक्तः। पुनश्च किंरूपः। **समंतसव्वक्खसोक्खणाणड्ढो** समन्ततः सामस्त्येन स्पर्शनादि-सर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः। समन्ततः सर्वात्मप्रदेशैर्वा स्पर्शनादिसर्वेन्द्रियाणां सम्बन्धित्वेन ये ज्ञानसौख्ये द्वे ताभ्यामाढ्यः परिपूर्णः इत्यर्थः। तद्यथा—अयं भगवानेकदेशोद्भवसांसारिकज्ञानसुखकारणभूतानि सर्वात्मप्रदेशोद्भवस्वाभाविकातीन्द्रियज्ञानसुखविनाशकानि च यानीन्द्रियाणि निश्चयरत्नत्रयात्मककारण-

---

इन्द्रियोंके अभावके कारण स्वयं 'अनिन्द्रिय' रूपसे वर्तता है, उसी समय वह दूसरोंको 'इन्द्रियातीत' (इन्द्रियअगोचर) वर्तता हुआ, निराबाध सहजसुख और ज्ञानवाला होनेसे 'सर्वबाधा रहित' तथा सकल आत्मामें सर्वप्रकारके (परिपूर्ण) सुख और ज्ञानसे परिपूर्ण होनेसे 'समस्त आत्मामें संमत सौख्य और ज्ञानसे समृद्ध' होता है। इसप्रकारका वह आत्मा सर्व अभिलाषा, जिज्ञासा और संदेहका असंभव होने पर भी अपूर्व और अनाकुलत्वलक्षण परमसौख्यका ध्यान करता है; अर्थात् अनाकुलत्वसंगत एक 'अग्र'के संचेतनमात्ररूपसे अवस्थित रहता है, (अर्थात् अनाकुलताके साथ रहनेवाले एक आत्मारूपी विषयके अनुभवनरूप ही मात्र स्थित रहता है) और ऐसा अवस्थान सहजज्ञानानन्दस्वभाव सिद्धत्वकी सिद्धि ही है (अर्थात् इसप्रकार स्थित रहना, सहजज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है ऐसे सिद्धत्वकी प्राप्ति ही है।)

भावार्थ :—१९७वीं गाथामें प्रश्न उपस्थित किया गया था कि सर्वज्ञभगवानको किसी पदार्थके प्रति अभिलाषा, जिज्ञासा या सन्देह नहीं है तब फिर वे किस पदार्थका ध्यान करते हैं? उसका उत्तर इस गाथामें इसप्रकार दिया गया है कि :—एक अग्र (विषय) का संवेदन ध्यान है। सर्व आत्मप्रदेशोंमें परिपूर्ण आनन्द और ज्ञानसे भरे हुए सर्वज्ञ भगवान परमानन्दसे अभिन्न ऐसे निजात्मारूपी एक विषयका संवेदन करते हैं इसलिये उनके परमानन्दका ध्यान है, अर्थात् वे परमसौख्यका ध्यान करते हैं॥१९८॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथायमेव शुद्धात्मोपलम्भलक्षणो मोक्षस्य मार्ग इत्यवधारयति—

एवं जिणा जिणिंदा सिद्धा मग्गं समुट्ठिदा समणा।
जादा णमोत्थु तेसिं तस्स य णिव्वाणमग्गस्स॥१९९॥

एवं जिना जिनेन्द्राः सिद्धा मार्गं समुत्थिताः श्रमणाः।
जाता नमोऽस्तु तेभ्यस्तस्मै च निर्वाणमार्गाय॥१९९॥

यतः सर्व एव सामान्यचरमशरीरास्तीर्थकराः अचरमशरीरा मुमुक्षवश्चामुनैव यथोदितेन शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिलक्षणेन विधिना प्रवृत्तमोक्षस्य मार्गमधिगम्य सिद्धा बभूवुः, न पुनरन्यथापि, ततोऽवधार्यते केवलमयमेक एव मोक्षस्य मार्गो, न द्वितीय इति। अलं च

समयसारबलेनातिक्रामति विनाशयति यदा तस्मिन्नेव क्षणे समस्तबाधारहितः सन्नतीन्द्रियमनन्तमात्मोत्थसुखं ध्यायत्यनुभवति परिणमति। ततो ज्ञायते केवलिनामन्यच्चिन्तानिरोधलक्षणं ध्यानं नास्ति, किंत्विदमेव परमसुखानुभवनं वा ध्यानकार्यभूतां कर्मनिर्जरां दृष्ट्वा ध्यानशब्देनोपचर्यते। यत्पुनः सयोगिकेवलिनस्तृतीयशुक्लध्यानमयोगिकेवलिनश्चतुर्थशुक्लध्यानं भवतीत्युक्तं तदुपचारेण ज्ञातव्यमिति सूत्राभिप्रायः॥१९८॥ एवं केवली किं ध्यायतीति प्रश्नमुख्यत्वेन प्रथमगाथा। परमसुखं ध्यायत्यनुभवतीति परिहारमुख्यत्वेन द्वितीया चेति ध्यानविषयपूर्वपक्षपरिहारद्वारेण तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथायमेव निजशुद्धात्मोपलब्धिलक्षणमोक्षमार्गो, नान्य इति विशेषेण समर्थयति—**जादा** जाता उत्पन्नाः। कथंभूताः। **सिद्धा** सिद्धाः सिद्धपरमेष्ठिनो मुक्तात्मान इत्यर्थः। के कर्तारः। **जिणा** जिनाः अनागारकेवलिनः। **जिणिंदा** न केवलं जिना जिनेन्द्राश्च तीर्थकरपरमदेवाः। कथंभूताः सन्तः एते सिद्धा

अब, यह निश्चित करते हैं कि–'यही (पूर्वोक्त ही) शुद्ध आत्माकी उपलब्धि जिसका लक्षण है, ऐसा मोक्षका मार्ग है' :—

अन्वयार्थ :—[**जिनाः जिनेन्द्राः श्रमणाः**] जिन, जिनेन्द्र और श्रमण (अर्थात् सामान्यकेवली, तीर्थंकर और मुनि) [**एवं**] इस (पूर्वोक्त ही) प्रकारसे [**मार्ग समुत्थिताः**] मार्गमें आरूढ़ होते हुए [**सिद्धाः जाताः**] सिद्ध हुए [**नमोऽस्तु**] नमस्कार हो [**तेभ्यः**] उन्हें [**च**] और [**तस्मै निर्वाणमार्गाय**] उस निर्वाणमार्गको॥१९९॥

टीका :—सभी सामान्य चरमशरीरी, तीर्थंकर और अचरमशरीरी मुमुक्षु इसी यथोक्त शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिलक्षण (शुद्धात्मतत्त्वमें प्रवृत्ति जिसका लक्षण है ऐसी) विधिसे प्रवर्तमान मोक्षमार्गको प्राप्त करके सिद्ध हुए; किन्तु ऐसा नहीं है कि किसी दूसरी विधिसे भी सिद्ध हुए

श्रमणो, जिनो, तीर्थंकरो आ रीत सेवी मार्गने
सिद्धि वर्या; नमुं तेमने, निर्वाणना ते मार्गने. १९९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

प्रपंचेन। तेषां शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तानां सिद्धानां तस्य शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपस्य मोक्षमार्गस्य च प्रत्यस्तमितभाव्यभावकविभागत्वेन नोआगमभावनमस्कारोऽस्तु। अवधारितो मोक्षमार्गः, कृत्यमनुष्ठीयते॥१९९॥

अथोपसम्पद्ये साम्यमिति पूर्वप्रतिज्ञां निर्वहन् मोक्षमार्गभूतां स्वयमपि शुद्धात्मप्रवृत्तिमासूत्रयति—

तम्हा तह जाणित्ता अप्पाणं जाणगं सभावेण।
परिवज्जामि ममत्तिं उवट्ठिदो णिम्ममत्तम्हि॥२००॥

तस्मात्तथा ज्ञात्वात्मानं ज्ञायकं स्वभावेन।
परिवर्जयामि ममतामुपस्थितो निर्ममत्वे॥२००॥

जाताः। **मग्गं समुट्ठिदा** निजपरमात्मतत्त्वानुभूतिलक्षणमार्गं मोक्षमार्गं समुत्थिता आश्रिताः। केन। **एवं** पूर्वं बहुधा व्याख्यातक्रमेण। न केवलं **जिना** जिनेन्द्रा **अनेन** मार्गेण **सिद्धा** जाताः, **समणा** सुखदुःखादिसमताभावनापरिणतात्मतत्त्वलक्षणाः **शेषा** अचरमदेहश्रमणाश्च। अचरमदेहानां **कथं** सिद्धत्वमिति चेत्। "तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य। णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि॥" इति गाथाकथितक्रमेणैकदेशेन। **णमोत्थु तेसिं** नमोऽस्तु तेभ्यः। अनन्तज्ञानादिसिद्धगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारोऽस्तु, **तस्स य णिव्वाणमग्गस्स** तस्मै निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणनिश्चयरत्नत्रयात्मक-

---

हों। इससे निश्चित होता है कि केवल यह एक ही मोक्षका मार्ग है, दूसरा नहीं।—अधिक विस्तारसे बस हो! उस शुद्धात्मतत्त्वमें प्रवर्ते हुए सिद्धोंको तथा उस शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूप मोक्षमार्गको, जिसमेंसे [१]भाव्य और भावकका विभाग अस्त हो गया है ऐसा नोआगमभावनमस्कार हो! मोक्षमार्ग अवधारित किया है, कृत्य किया जा रहा है, (अर्थात् मोक्षमार्ग निश्चित किया है और उसमें) प्रवर्तन कर रहे हैं॥१९९॥

अब, 'साम्यको प्राप्त करता हूँ' ऐसी (पाँचवीं गाथामें की गई) पूर्वप्रतिज्ञाका निर्वहण करते हुए (आचार्यदेव) स्वयं भी मोक्षमार्गभूत शुद्धात्मप्रवृत्ति करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**तस्मात्**] ऐसा होनेसे (अर्थात् शुद्धात्मामें प्रवृत्तिके द्वारा ही मोक्ष होता होनेसे) [**तथा**] इसप्रकार [**आत्मानं**] आत्माको [**स्वभावेन ज्ञायकं**] स्वभावसे ज्ञायक [**ज्ञात्वा**] जानकर [**निर्ममत्वे उपस्थितः**] मैं निर्ममत्वमें स्थित रहता हुआ [**ममतां परिवर्जयामि**] ममताका परित्याग करता हूँ॥२००॥

---

१. भाव्य = ध्येय; भावक = ध्याता; भाव्य-भावकके अर्थके लिये देखो पृ० ६ में फुटनोट।

अे रीत तेथी आत्मने ज्ञायक स्वभावी जाणीने,
निर्ममपणे रही स्थित आ परिवर्जुं छुं हुं ममत्वने. २००.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अहमेष मोक्षाधिकारी ज्ञायकस्वभावात्मतत्त्वपरिज्ञानपुरस्सरममत्वनिर्ममत्वहानोपादान-विधानेन कृत्यान्तरस्याभावात्सर्वारम्भेण शुद्धात्मनि प्रवर्ते। तथा हि—अहं हि तावत् ज्ञायक एव स्वभावेन केवलज्ञायकस्य च सतो मम विश्वेनापि सहजज्ञेयज्ञायकलक्षण एव सम्बन्धः, न पुनरन्ये स्वस्वामिलक्षणादयः सम्बन्धाः। ततो मम न क्वचनापि ममत्वं, सर्वत्र निर्ममत्वमेव। अथैकस्य ज्ञायकभावस्य समस्तज्ञेयभावस्वभावत्वात् प्रोत्कीर्णलिखितनिखात-कीलितमज्जितसमावर्तितप्रतिबिम्बितवत्तत्र क्रमप्रवृत्तानन्तभूतभवद्भाविविचित्रपर्यायप्राग्भारमगाध-स्वभावं गम्भीरं समस्तमपि द्रव्यजातमेकक्षण एव प्रत्यक्षयन्तं ज्ञेयज्ञायकलक्षणसम्बन्धस्या-

निर्वाणमार्गाय च। ततोऽवधार्यते अयमेव मोक्षमार्गो, नान्य इति॥१९९॥ अथ 'उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती' इत्यादि पूर्वप्रतिज्ञां निर्वाहयन् स्वयमपि मोक्षमार्गपरिणतिं स्वीकरोतीति प्रतिपादयति—**तम्हा** यस्मात्पूर्वोक्तशुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षमार्गेण जिना जिनेन्द्राः श्रमणाश्च सिद्धा जातास्तस्मादहमपि **तह** तथैव तेनैव प्रकारेण **जाणित्ता** ज्ञात्वा। **कम्**। **अप्पाणं** निजपरमात्मानम्। किंविशिष्टम्। **जाणगं** ज्ञायकं केवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्वभावम्। केन कृत्वा ज्ञात्वा। **सभावेण** समस्त-रागादिविभावरहितशुद्धबुद्धैकस्वभावेन। पश्चात् किं करोमि। **परिवज्जामि** परि समन्ताद्वर्जयामि। काम्। **ममत्तिं** समस्तसचेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्यसंबन्धिनीं ममताम्। कथंभूतः सन्। **उवट्ठिदो** उपस्थितः परिणतः। क्व। **णिम्ममत्तम्हि** समस्तपरद्रव्यममकाराहंकाररहितत्वेन निर्ममत्वलक्षणे परमसाम्याभिधाने वीतराग-चारित्रे तत्परिणतनिजशुद्धात्मस्वभावे वा। तथाहि—अहं तावत्केवलज्ञानदर्शनस्वभावत्वेन ज्ञायकैक-टङ्कोत्कीर्णस्वभावः। तथाभूतस्य सतो मम न केवलं स्वस्वाम्यादयः परद्रव्यसंबन्धा न सन्ति, निश्चयेन

टीका :—मैं यह मोक्षाधिकारी, ज्ञायकस्वभावी आत्मतत्त्वके परिज्ञानपूर्वक ममत्वकी त्यागरूप और निर्ममत्वकी ग्रहणरूप विधिके द्वारा सर्व आरम्भ (उद्यम) से शुद्धात्मामें प्रवृत्त होता हूँ, क्योंकि अन्य कृत्यका अभाव है। (अर्थात् दूसरा कुछ भी करने योग्य नहीं है।) वह इसप्रकार है (अर्थात् मैं इसप्रकार शुद्धात्मामें प्रवृत्त होता हूँ) :— प्रथम तो मैं स्वभावसे ज्ञायक ही हूँ; केवल ज्ञायक होनेसे मेरा विश्व (समस्त पदार्थों) के साथ भी सहज ज्ञेयज्ञायकलक्षण सम्बन्ध ही है, किन्तु अन्य स्वस्वामिलक्षणादि सम्बन्ध नहीं हैं; इसलिये मेरा किसीके प्रति ममत्व नहीं है, सर्वत्र निर्ममत्व ही है। अब, एक ज्ञायकभावका समस्त ज्ञेयोंको जाननेका स्वभाव होनेसे, क्रमशः प्रवर्तमान, अनन्त, भूत-वर्तमान-भावी विचित्र पर्यायसमूहवाले, [१]अगाधस्वभाव और गम्भीर ऐसे समस्त द्रव्यमात्रको—मानों वे द्रव्य ज्ञायकमें उत्कीर्ण हो गये हों, चित्रित हो गए हों, भीतर घुस गये हों, कीलित हो गये हों, डूब गये हों, समा गये हों, प्रतिबिम्बित हुए हों, इसप्रकार—

१. जिनका स्वभाव अगाध है और जो गंभीर हैं ऐसे समस्त द्रव्योंको भूत, वर्तमान तथा भावीकालके क्रमसे होनेवाली, अनेक प्रकारकी अनन्त पर्यायोंसे युक्त एक समयमें ही प्रत्यक्ष जानना आत्माका स्वभाव है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

निवार्यत्वेनाशक्यविवेचनत्वादुपात्तवैश्वरूप्यमपि सहजानन्तशक्तिज्ञायकस्वभावेनैक्यरूप्यमनुज्झन्त-मासंसारमनयैव स्थित्या स्थितं मोहेनान्यथाध्यवस्यमानं शुद्धात्मानमेष मोहमुत्खाय यथास्थित-मेवातिनिःप्रकम्पः सम्प्रतिपद्ये। स्वयमेव भवतु चास्यैवं दर्शनविशुद्धिमूलया सम्यग्ज्ञानोपयुक्त-तयात्यन्तमव्याबाधरतत्वात्साधोरपि साक्षात्सिद्धभूतस्य स्वात्मनस्तथाभूतानां परमात्मनां च नित्यमेव तदेकपरायणत्वलक्षणो भावनमस्कारः ॥२००॥

ज्ञेयज्ञायकसंबन्धो नास्ति। ततः कारणात्समस्तपरद्रव्यममत्वरहितो भूत्वा परमसाम्यलक्षणे निज-शुद्धात्मनि तिष्ठामीति। किंच 'उवसंपयामि सम्मं' इत्यादिस्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन्स्वयमपि मोक्षमार्ग-परिणतिं स्वीकरोत्येवं यदुक्तं गाथापातनिकाप्रारम्भे तेन किमुक्तं भवति–ये तां प्रतिज्ञां गृहीत्वा सिद्धिं गतास्तैरेव सा प्रतिज्ञा वस्तुवृत्त्या समाप्तिं नीता। कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पुनर्ज्ञानदर्शनाधिकारद्वयरूप-ग्रन्थसमाप्तिरूपेण समाप्तिं नीता, शिवकुमारमहाराजेन तु तद्ग्रन्थश्रवणेन च। कस्मादिति चेत्। ये मोक्षं गतास्तेषां सा प्रतिज्ञा परिपूर्णा जाता, न चैतेषाम्। कस्मात्। चरमदेहत्वाभावादिति॥२००॥ एवं ज्ञानदर्शनाधिकारसमाप्तिरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम्।

एवं निजशुद्धात्मभावनारूपमोक्षमार्गेण ये सिद्धिं गता ये च तदाराधकास्तेषां दर्शनाधि-कारापेक्षयावसानमङ्गलार्थं ग्रन्थात्पेक्षया मध्यमङ्गलार्थं च तत्पदाभिलाषी भूत्वा नमस्कारं करोति—

एक क्षणमें ही जो (शुद्धात्मा) प्रत्यक्ष करता है, [१]ज्ञेयज्ञायकलक्षण संबंधकी अनिवार्यताके कारण ज्ञेय–ज्ञायकको भिन्न करना अशक्य होनेसे विश्वरूपताको प्राप्त होने पर भी जो (शुद्धात्मा) सहज अनन्तशक्तिवाले ज्ञायकस्वभावके द्वारा एकरूपताको नहीं छोड़ता, जो अनादि संसारसे इसी स्थितिमें (ज्ञायक भावरूप ही) रहा है और जो मोहके द्वारा दूसरे रूपमें जाना–माना जाता है उस शुद्धात्माको यह मैं मोहको उखाड़ फेंककर, अतिनिष्कम्प रहता हुआ यथास्थित (जैसाका तैसा) ही प्राप्त करता हूँ।

इसप्रकार दर्शनविशुद्धि जिसका मूल है ऐसी, सम्यग्ज्ञानमें उपयुक्तताके कारण अत्यन्त अव्याबाध (निर्विघ्न) लीनता होनेसे, साधु होने पर भी साक्षात् सिद्धभूत ऐसा यह निज आत्माको तथा तथाभूत (सिद्धभूत) परमात्माओंको, [२]उसीमें एकपरायणता जिसका लक्षण है ऐसा भावनमस्कार सदा ही [३]स्वयमेव हो॥२००॥

१. ज्ञेयज्ञायकस्वरूप सम्बन्ध टाला नहीं जा सकता, इसलिये यह अशक्य है कि ज्ञेय ज्ञायकमें ज्ञात न हों, इसलिये आत्मा मानों समस्त द्रव्यरूपताको प्राप्त होता है।

२. उसीमें = नमस्कार करने योग्य पदार्थमें; भाव्यमें। [मात्र भाव्यमें ही परायण, एकाग्र, लीन होना भावनमस्कार लक्षण है।]

३. स्वयमेव = [आचार्यदेव शुद्धात्मामें लीन होते हैं इसलिये स्वयमेव भावनमस्कार हो जाता है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

(शालिनी छंद)

जैनं ज्ञानं ज्ञेयतत्त्वप्रणेतृ
स्फीतं शब्दब्रह्म सम्यग्विगाह्य।
संशुद्धात्मद्रव्यमात्रैकवृत्त्या
नित्यं युक्तैः स्थीयतेऽस्माभिरेवम् ॥१०॥

(शालिनी छंद)

ज्ञेयीकुर्वन्नंजसासीमविश्वं
ज्ञानीकुर्वन् ज्ञेयमाक्रान्तभेदम्।
आत्मीकुर्वन् ज्ञानमात्मान्यभासि
स्फूर्जत्यात्मा ब्रह्म सम्पद्य सद्यः ॥११॥

दंसणसंसुद्धाणं सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं।
अव्वाबाधरदाणं णमो णमो सिद्धसाहूणं ॥★१४॥

णमो णमो नमो नमः। पुनः पुनर्नमस्करोमीति भक्तिप्रकर्षं दर्शयति। केभ्यः। **सिद्धसाहूणं** सिद्धसाधुभ्यः। सिद्धशब्दवाच्यस्वात्मोपलब्धिलक्षणार्हत्सिद्धेभ्यः, साधुशब्दवाच्यमोक्षसाधकाचार्योपाध्यायसाधुभ्यः। पुनरपि कथंभूतेभ्यः। **दंसणसंसुद्धाणं** मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितसम्यग्दर्शनसंशुद्धेभ्यः। पुनरपि कथंभूतेभ्यः। **सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं** संशयादिरहितं सम्यग्ज्ञानं, तस्योपयोगः सम्यग्ज्ञानोपयोगः, योगो निर्विकल्पसमाधिर्वीतरागचारित्रमित्यर्थः, ताभ्यां युक्ताः सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्तास्तेभ्यः। पुनश्च किंरूपेभ्यः। **अव्वाबाधरदाणं** सम्यग्ज्ञानादिभावनोत्पन्नाव्याबाधानन्तसुखरतेभ्यश्च ॥१४॥ इति नमस्कारगाथासहितस्थलचतुष्टयेन चतुर्थविशेषान्तराधिकारः समाप्तः। एवं

[अब श्लोक द्वारा जिनेन्द्रोक्त शब्दब्रह्मके सम्यक् अभ्यासका फल कहा जाता है]—

अर्थ :—इसप्रकार ज्ञेयतत्त्वको समझानेवाले जैन ज्ञानमें—विशाल शब्दब्रह्ममें—सम्यक्तया अवगाहन करके (डुबकी लगाकर, गहराईमें उतरकर, निमग्न होकर) हम मात्र शुद्धआत्मद्रव्यरूप एक वृत्तिसे (परिणतिसे) सदा युक्त रहते हैं॥१०॥

[अब श्लोकके द्वारा मुक्तात्माके ज्ञानकी महिमा गाकर ज्ञेयतत्त्व–प्रज्ञापनाधिकारकी पूर्णाहूति की जा रही है।] :—

अर्थ :—आत्मा ब्रह्मको (परमात्मत्वको, सिद्धत्वको) शीघ्र प्राप्त करके, असीम (अनन्त) विश्वको शीघ्रतामें (एक समयमें) ज्ञेयरूप करता हुआ, भेदोंको प्राप्त ज्ञेयोंको ज्ञानरूप करता हुआ (अनेक प्रकारके ज्ञेयोंको ज्ञानमें जानता हुआ) और स्व–परप्रकाशक ज्ञानको आत्मारूप करता हुआ, प्रगट–दैदीप्यमान होता है॥११॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

(वसंततिलका छंद)

द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि
द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम्।
तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्गं
द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य॥१२॥

इति तत्त्वदीपिकायां प्रवचनसारवृत्तौ श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनो नाम द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः॥२॥

'अत्थित्तणिच्छिदस्स हि' इत्याद्येकादशगाथापर्यन्तं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयमुख्यत्वेन प्रथमो विशेषान्तराधिकारस्तदनन्तरं 'अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य' इत्यादिगाथानवकपर्यन्तं पुद्गलानां परस्परबन्धमुख्यत्वेन द्वितीयो विशेषान्तराधिकारस्ततः परं 'अरसमरूवं' इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवस्य पुद्गलकर्मणा सह बन्धमुख्यत्वेन तृतीयो विशेषान्तराधिकारस्ततश्च 'ण चयदि जो दु ममत्तिं' इत्यादिद्वादशगाथापर्यन्तं विशेषभेदभावनाचूलिकाव्याख्यानरूपश्चतुर्थो विशेषान्तराधिकार इत्येकाधिक-पञ्चाशद्गाथाभिर्विशेषान्तराधिकारचतुष्टयेन विशेषभेदभावनाभिधानश्चतुर्थोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ 'तम्हा तस्स णमाइं' इत्यादिपञ्चत्रिंशद्गाथापर्यन्तं सामान्यज्ञेयव्याख्यानं, तदनन्तरं 'दव्वं जीवं' इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवपुद्गलधर्मादिभेदेन विशेषज्ञेयव्याख्यानं, ततश्च 'सपदेसेहिं समग्गो' इत्यादिगाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना, ततः परं 'अत्थित्तणिच्छिदस्स हि' इत्याद्येकाधिकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावना चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन त्रयोदशाधिकशतगाथाभिः सम्यग्दर्शनाधिकारनामा ज्ञेयाधिकारापरसंज्ञो द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः॥२॥

[अब श्लोक द्वारा, द्रव्य और चरणका संबंध बतलाकर, ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन नामक द्वितीयाधिकारकी और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तृतीयाधिकारकी संधि बतलाई जाती है।] :—

अर्थ :—चरण द्रव्यानुसार होता है और द्रव्य चरणानुसार होता है—इसप्रकार वे दोनों परस्पर अपेक्षासहित हैं; इसलिये या तो द्रव्यका आश्रय लेकर अथवा तो चरणका आश्रय लेकर मुमुक्षु (ज्ञानी, मुनि) मोक्षमार्गमें आरोहण करो।

इसप्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री प्रवचनसार शास्त्रकी श्रीमदमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित तत्वदीपिकानामक टीकाका यह **'ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन'** नामक द्वितीयश्रुतस्कंध (का भाषानुवाद) समाप्त हुआ।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

–३–
चरणानुयोगसूचक चूलिका

अथ परेषां चरणानुयोगसूचिका चूलिका।

तत्र—

***द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः**
द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणस्य सिद्धौ।
बुद्ध्वेति कर्माविरताः परेऽपि
द्रव्याविरुद्धं चरणं चरन्तु॥१३॥

इति चरणाचरणे परान् प्रयोजयति—

कार्यं प्रत्यत्रैव ग्रन्थः समाप्त इति ज्ञातव्यम्। कस्मादिति चेत्। 'उवसंपयामि सम्मं' इति प्रतिज्ञासमाप्तेः। अतःपरं यथाक्रमेण सप्ताधिकनवतिगाथापर्यन्तं चूलिकारूपेण चारित्राधिकारव्याख्यानं प्रारभ्यते। तत्र तावदुत्सर्गरूपेण चारित्रस्य संक्षेपव्याख्यानम्। तदनन्तरमपवादरूपेण तस्यैव चारित्रस्य विस्तरव्याख्यानम्। ततश्च श्रामण्यापरनाममोक्षमार्गव्याख्यानम्। तदनन्तरं शुभोपयोगव्याख्यानमित्यन्तराधिकारचतुष्टयं भवति। तत्रापि प्रथमान्तराधिकारे पञ्च स्थलानि। 'एवं पणमिय सिद्धे' इत्यादिगाथासप्तकेन दीक्षाभिमुखपुरुषस्य दीक्षाविधानकथनमुख्यतया प्रथमस्थलम्। अतःपरं 'वदसमिदिंदिय' इत्यादि मूलगुणकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयम्। तदनन्तरं गुरुव्यवस्थाज्ञापनार्थं

अब दूसरोंको चरणानुयोगकी सूचक [१]चूलिका है।

[उसमें, प्रथम श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव श्लोकके द्वारा अब इस–आगामी गाथाकी उत्थानिका करते हैं।]

[**अर्थ :—**] द्रव्यकी सिद्धिमें चरणकी सिद्धि है, और चरणकी सिद्धिमें द्रव्यकी सिद्धि है—यह जानकर, कर्मोंसे (शुभाशुभ भावोंसे) अविरत दूसरे भी, द्रव्यसे अविरुद्ध चरण (चारित्र)का आचरण करो।

—इसप्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस आगामी गाथाके द्वारा) दूसरोंको चरण (चारित्र)के आचरण करनेमें युक्त करते (जोड़ते) हैं।

★ इन्द्रवज्रा छंद

१. चूलिका = जो शास्त्रमें नहीं कहा गया है उसका व्याख्यान करना, अथवा कहे गये का विशेष व्याख्यान करना या दोनोंका यथायोग्य व्याख्यान करना।

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

'एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं। पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥ सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे। समणे य णाणदंसणचरित्ततव-वीरियायारे॥ ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं। वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते॥'

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे।
पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं॥२०१॥

'लिंगग्गहणे' इत्यादि एका गाथा, तथैव प्रायश्चित्तकथनमुख्यतया 'पयदम्हि' इत्यादि गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयम्। अथाचारादिशास्त्रकथितक्रमेण तपोधनस्य संक्षेपसमाचारकथनार्थं 'अधिवासे व' इत्यादि चतुर्थस्थले गाथात्रयम्। तदनन्तरं भावहिंसाद्रव्यहिंसापरिहारार्थं 'अपयत्ता वा चरिया' इत्यादि पञ्चमस्थले सूत्रषट्कमित्येकविंशतिगाथाभिः स्थलपञ्चकेन प्रथमान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा–अथासन्नभव्यजीवांश्चारित्रे प्रेरयति—**पडिवज्जदु** प्रतिपद्यतां स्वीकरोतु। किम्। **सामण्णं** श्रामण्यं चारित्रम्। यदि किम्। **इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं** यदि चेत् दुःखपरिमोक्षमिच्छति। स कः कर्ता। परेषामात्मा। कथं प्रतिपद्यताम्। एवं एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'एस सुरासुरमणुसिंद' इत्यादिगाथापञ्चकेन पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कृत्वा ममात्मना दुःखमोक्षार्थिनान्यैः पूर्वोक्तभव्यैर्वा यथा तच्चारित्रं प्रतिपन्नं तथा प्रतिपद्यताम्। किं कृत्वा पूर्वम्। **पणमिय** प्रणम्य। कान्। **सिद्धे** अञ्जनपादुकादिसिद्धिविलक्षणस्वात्मोपलब्धिसिद्धिसमेतसिद्धान्। **जिणवरवसहे** सासादनादिक्षीण-

---

[अब गाथाके प्रारंभ करनेसे पूर्व उसकी संधिके लिये श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने पंच परमेष्ठीको नमस्कार करनेके लिये निम्नप्रकारसे ज्ञानतत्त्व–प्रज्ञापन अधिकारकी प्रथम तीन गाथायें लिखी हैं :—

"एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदंधोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥
सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे॥
ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते॥"

[अब, इस अधिकारकी गाथा प्रारंभ करते हैं :—]

अे रीत प्रणमी सिद्ध, जिनवरवृषभ, मुनिने फरी फरी,
श्रामण्य अंगीकृत करो, अभिलाष जो दुखमुक्तिनी. २०१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एवं प्रणम्य सिद्धान् जिनवरवृषभान् पुनः पुनः श्रमणान्।
प्रतिपद्यतां श्रामण्यं यदीच्छति दुःखपरिमोक्षम्॥२०१॥

यथा ममात्मना दुःखमोक्षार्थिना, 'किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं। अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं॥ तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज। उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती॥' इति अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां प्रणति-वन्दनात्मकनमस्कारपुरःसरं विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानं साम्यनाम श्रामण्यमवान्तरग्रन्थसन्दर्भोभय-सम्भावितसौस्थित्यं स्वयं प्रतिपन्नं, परेषामात्मापि यदि दुःखमोक्षार्थी तथा तत्प्रतिपद्यताम्। यथानुभूतस्य तत्प्रतिपत्तिवर्त्मनः प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम इति॥२०१॥

कषायान्ता एकदेशजिना उच्यन्ते, शेषाश्चानागारकेवलिनो जिनवरा भण्यन्ते, तीर्थंकरपरमदेवाश्च जिनवरवृषभा इति, तान् जिनवरवृषभान्। न केवलं तान् प्रणम्य, पुणो पुणो समणे चिच्चमत्कारमात्र-निजात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयाचरणप्रतिपादनसाधकत्वोद्यतान् श्रमणशब्दवाच्यानाचार्योपाध्यायसाधूंश्च पुनः पुनः प्रणम्येति। किंच पूर्वं ग्रन्थप्रारम्भकाले साम्यमाश्रयामीति

अन्वयार्थ :—[यदि दुःखपरिमोक्षम् इच्छति] यदि दुःखोंसे परिमुक्त होनेकी (छुटकारा पानेकी) इच्छा हो तो, [एवं] पूर्वोक्त प्रकारसे (ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापनकी प्रथम तीन गाथाओंके अनुसार) [पुनः पुनः] बारंबार [सिद्धान्] सिद्धोंको, [जिनवरवृषभान्] जिनवरवृषभोंको (-अर्हन्तोंको) तथा [श्रमणान्] श्रमणोंको [प्रणम्य] प्रणाम करके, [श्रामण्यं प्रतिपद्यताम्] (जीव) श्रामण्यको अंगीकार करो॥२०१॥

टीका :—जैसे दुःखोंसे मुक्त होनेके अर्थी मेरे आत्माने—[१]"किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं। अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं॥ तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज। उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती।" इसप्रकार अर्हन्तों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों तथा साधुओंको [२]प्रणाम-वंदनात्मक नमस्कारपूर्वक [३]विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधान साम्यनामक श्रामण्यको—जिसका इस ग्रंथमें कहे हुए (ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन और ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन नामक) दो अधिकारोंकी रचना द्वारा सुस्थितपन हुआ है उसे—स्वयं अंगीकार किया, उसीप्रकार दूसरोंका आत्मा भी, यदि दुःखोंसे मुक्त होनेका अर्थी (इच्छुक) हो तो, उसे अंगीकार करे। उस (श्रामण्य) को अंगीकार करनेका जो [४]यथानुभूत मार्ग है उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं॥२०१॥

---

१. यह, ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनकी चौथी और पाँचवी गाथायें हैं।

२. नमस्कार प्रणाम-वंदनमय है। (विशेषके लिये देखो पृष्ठ ४ का फुटनोट)

३. विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधान = जिसमें विशुद्ध दर्शन और ज्ञान प्रधान है ऐसा। [साम्य नामक श्रामण्यमें विशुद्ध दर्शन और ज्ञान प्रधान है।]

४. यथानुभूत = जैसा (हमने) अनुभव किया है वैसा।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ श्रमणो भवितुमिच्छन् पूर्वं किं किं करोतीत्युपदिशति—

आपिच्छ बंधुवग्गं विमोचिदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं।
आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं॥२०२॥

आपृच्छ्य बन्धुवर्गं विमोचितो गुरुकलत्रपुत्रैः।
आसाद्य ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारम्॥२०२॥

यो हि नाम श्रमणो भवितुमिच्छति स पूर्वमेव बन्धुवर्गमापृच्छते, गुरुकलत्रपुत्रेभ्य आत्मानं विमोचयति, ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमासीदति। तथा हि—एवं बन्धुवर्गमापृच्छते, अहो इदंजनशरीरबन्धुवर्गवर्तिन आत्मानः, अस्य जनस्य आत्मा न किंचनापि युष्माकं भवतीति निश्चयेन यूयं जानीत; तत आपृष्टा यूयं; अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः

शिवकुमारमहाराजनामा प्रतिज्ञां करोतीति भणितम्, इदानीं तु ममात्मना चारित्रं प्रतिपन्नमिति पूर्वापरविरोधः। परिहारमाह–ग्रन्थप्रारम्भात्पूर्वमेव दीक्षा गृहीता तिष्ठति, परं किंतु ग्रन्थकरणव्याजेन क्वाप्यात्मानं भावनापरिणतं दर्शयति, क्वापि शिवकुमारमहाराजं, क्वाप्यन्यं भव्यजीवं वा। तेन कारणेनात्र ग्रन्थे पुरुषनियमो नास्ति, कालनियमो नास्तीत्यभिप्रायः॥२०१॥ अथ श्रमणो भवितुमिच्छन्पूर्वं क्षमितव्यं करोति—'उवट्ठिदो होदि सो समणो' इत्यग्रे षष्ठगाथायां यद्व्याख्यानं तिष्ठति तन्मनसि धृत्वा पूर्वं किं कृत्वा श्रमणो भविष्यतीति व्याख्याति—**आपिच्छ** आपृच्छ्य पृष्ट्वा। कम्।

अब, श्रमण होनेका इच्छुक पहले क्या–क्या करता है उसका उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—(श्रामण्यार्थी) [**बन्धुवर्गम् आपृच्छ्य**] बंधुवर्गसे विदा माँगकर [**गुरुकलत्रपुत्रैः विमोचितः**] बड़ोंसे, स्त्री और पुत्रसे मुक्त किया हुआ [**ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारम् आसाद्य**] ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचारको अंगीकार करके..... ॥२०२॥

टीका :—जो श्रमण होना चाहता है, वह पहले ही बंधुवर्गसे (सगेसंबंधियोंसे) विदा माँगता है, गुरुजनों (बड़ों) से, स्त्री और पुत्रोंसे अपनेको छुड़ाता है, ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचारको अंगीकार करता है। वह इसप्रकार है :—

बंधुवर्गसे इसप्रकार विदा लेता है :—अहो! इस पुरुषके शरीरके बंधुवर्गमें प्रवर्तमान आत्माओ! इस पुरुषका आत्मा किंचित्मात्र भी तुम्हारा नहीं है,—इसप्रकार तुम निश्चयसे

बंधुजनोनी विदाय लई, स्त्री–पुत्र–वडीलोथी छूटी,
दृग–ज्ञान–तप–चारित्र–वीर्याचार अंगीकृत करी. २०२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

आत्मानमेवात्मनोऽनादिबन्धुमुपसर्पति। अहो इदंजनशरीरजनकस्यात्मन्, अहो इदंजनशरीरजनन्या आत्मन्, अस्य जनस्यात्मा न युवाभ्यां जनितो भवतीति निश्चयेन युवां जानीतं; तत इममात्मानं युवां विमुंचतम्; अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिजनकमुपसर्पति। अहो इदंजनशरीररमण्या आत्मन्, अस्य जनस्यात्मानं न त्वं रमयसीति निश्चयेन त्वं जानीहि; तत इममात्मानं विमुंच; अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः स्वानुभूतिमेवात्मनोऽनादिरमणीमुपसर्पति। अहो इदंजनशरीरपुत्रस्यात्मन्, अस्य जनस्यात्मनो न त्वं जन्यो भवसीति निश्चयेन त्वं जानीहि; तत इममात्मानं विमुंच; अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिजन्यमुपसर्पति। एवं गुरुकलत्रपुत्रेभ्य आत्मानं

बंधुवग्गं बन्धुवर्गं गोत्रम्। ततः कथंभूतो भवति। विमोचिदो विमोचितस्त्यक्तो भवति। कैः कर्तृभूतैः। गुरुकलत्तपुत्तेहिं पितृमातृकलत्रपुत्रैः। पुनरपि किं कृत्वा श्रमणो भविष्यति। आसिज्ज आसाद्य आश्रित्य। कम्। णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमिति। अथ विस्तरः—अहो बन्धुवर्गपितृमातृकलत्रपुत्राः, अयं मदीयात्मा सांप्रतमुद्भिन्नपरमविवेकज्योतिस्सन् स्वकीयचिदानन्दैकस्वभावं परमात्मानमेव निश्चयनयेनानादिबन्धुवर्गं पितरं मातरं कलत्रं पुत्रं चाश्रयति, तेन कारणेन मां मुञ्चत यूयमिति क्षमितव्यं करोति। ततश्च किं करोति। परमचैतन्यमात्रनिजात्मतत्त्वसर्वप्रकारोपादेयरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिसमस्तपरद्रव्येच्छानिवृत्तिलक्षणतपश्चरणस्वशक्त्यनवगूहनवीर्याचाररूपं

जानो। इसलिये मैं तुमसे विदा लेता हूँ। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह आत्मा आज अपने आत्मारूपी अपने अनादिबंधुके पास जा रहा है।

अहो! इस पुरुषके शरीरके जनक (पिता)के आत्मा! अहो! इस पुरुषके शरीरकी जननी (माता) के आत्मा! इस पुरुषका आत्मा तुम्हारे द्वारा जनित (उत्पन्न) नहीं है, ऐसा तुम निश्चयसे जानो। इसलिये तुम इस आत्माको छोड़ो। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह आत्मा आज आत्मारूपी अपने अनादिजनकके पास जा रहा है। अहो! इस पुरुषके शरीरकी रमणी (स्त्री)के आत्मा! तू इस पुरुषके आत्माको रमण नहीं कराता, ऐसा तू निश्चयसे जान। इसलिये तू इस आत्माको छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह आत्मा आज अपनी स्वानुभूतिरूपी अनादि–रमणीके पास जा रहा है। अहो! इस पुरुषके शरीरके पुत्र आत्मा! तू इस पुरुषके आत्माका जन्य (उत्पन्न किया गया–पुत्र) नहीं है, ऐसा तू निश्चयसे जान। इसलिये तू इस आत्माको छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह आत्मा आज आत्मारूपी अपने अनादि जन्यके पास जा रहा है।—इसप्रकार बड़ोंसे, स्त्रीसे और पुत्रसे अपनेको छुड़ाता है।

(यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि जो जीव मुनि होना चाहता है वह कुटुम्बसे सर्वप्रकारसे विरक्त ही होता है। इसलिये कुटुम्बकी सम्मतिसे ही मुनि होनेका नियम नहीं है। इसप्रकार कुटुम्बके भरोसे रहने पर तो, यदि कुटुम्ब किसीप्रकारसे सम्मति ही नहीं दे तो मुनि ही नहीं

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

विमोचयति। तथा अहो कालविनयोपधानबहुमानानिह्नवार्थव्यंजनतदुभयसम्पन्नत्वलक्षण-ज्ञानाचार, न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे। अहो निःशंकितत्वनिःकांक्षितत्वनिर्विचिकित्सत्वनिर्मूढ-दृष्टित्वोपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनालक्षणदर्शनाचार, न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत् त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे। अहो मोक्षमार्गप्रवृत्तिकारणपंचमहाव्रतोपेतकायवाङ्मनोगुप्तीर्याभाषैषणादाननिक्षेपणप्रतिष्ठापनसमिति-लक्षणचारित्राचार, न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे। अहो अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्याग-विविक्तशय्यासनकायक्लेशप्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायध्यानव्युत्सर्गलक्षणतपआचार, न

निश्चयपञ्चाचारमाचारादिचरणग्रन्थकथिततत्साधकव्यवहारपञ्चाचारं चाश्रयतीत्यर्थः। अत्र यद्गोत्रादिभिः सह क्षमितव्यव्याख्यानं कृतं तदत्रातिप्रसंगनिषेधार्थम्। तत्र नियमो नास्ति। कथमिति चेत्। पूर्वकाले प्रचुरेण भरतसगररामपाण्डवादयो राजान एव जिनदीक्षां गृह्णन्ति, तत्परिवारमध्ये यदा कोऽपि मिथ्यादृष्टिर्भवति तदा धर्मस्योपसर्गं करोतीति। यदि पुनः कोऽपि मन्यते गोत्रसम्मतं कृत्वा

हुआ जा सकेगा। इसप्रकार कुटुम्बको सम्मत करके ही मुनित्वके धारण करनेका नियम न होने पर भी, कुछ जीवोंके मुनि होनेसे पूर्व वैराग्यके कारण कुटुम्बको समझानेकी भावनासे पूर्वोक्त प्रकारके वचन निकलते हैं। ऐसे वैराग्यके वचन सुनकर, कुटुम्बमें यदि कोई अल्पसंसारी जीव हो तो वह भी वैराग्यको प्राप्त होता है।)

(अब निम्न प्रकारसे पंचाचारको अंगीकार करता है :)

(जिसप्रकार बंधुवर्गसे विदा ली, अपनेको बड़ोंसे, स्त्री और पुत्रसे छुड़ाया) उसीप्रकार—अहो काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिह्नव, अर्थ, व्यंजन और तदुभयसंपन्न ज्ञानाचार! मैं यह निश्चयसे जानता हूँ कि 'तू शुद्धात्माका नहीं है; तथापि मैं तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको उपलब्ध कर लूँ। अहो निःशंकितत्व, निकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, निर्मूढदृष्टित्व, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावनास्वरूप दर्शनाचार। मैं यह निश्चयसे जानता हूँ कि तू शुद्धात्माका नहीं है, तथापि तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको उपलब्ध कर लूँ। अहो, मोक्षमार्गमें प्रवृत्तिके कारणभूत, पंचमहाव्रतसहित काय–वचन–मनगुप्ति और ईर्या–भाषा–एषण–आदाननिक्षेपण–प्रतिष्ठापनसमितिस्वरूप चारित्राचार! मैं यह निश्चयसे जानता हूँ कि तू शुद्धात्माका नहीं है, तथापि तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको उपलब्ध कर लूँ। अहो अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत् त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे। अहो समस्तेतराचारप्रवर्तकस्वशक्त्यनिगूहनलक्षणवीर्याचार, न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे। एवं ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमासीदति च॥२०२॥

पश्चात्तपश्चरणं करोमि तस्य प्रचुरेण तपश्चरणमेव नास्ति, कथमपि तपश्चरणे गृहीतेऽपि यदि गोत्रादिममत्वं करोति तदा तपोधन एव न भवति। तथाचोक्तम्—"जो सकलणयररज्जं पुव्वं चइऊण कुणइ य ममत्तिं। सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो"॥२०२॥ अथ जिनदीक्षार्थी भव्यो जैनाचार्यमाश्रयति—**समणं** निन्दाप्रशंसादिसमचित्तत्वेन पूर्वसूत्रोदितनिश्चयव्यवहारपञ्चाचारस्याचरणाचारणप्रवीणत्वात् श्रमणम्। **गुणड्ढं** चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलसहकारिकारणोत्तमनिजशुद्धात्मानुभूतिगुणेनाढ्यं भृतं परिपूर्णत्वाद्गुणाढ्यम्। **कुलरूववयोविसिट्ठं** लोकदुगुंच्छारहितत्वेन जिनदीक्षायोग्यं कुलं

शय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्गस्वरूप तपाचार! मैं यह निश्चयसे जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा नहीं है तथापि तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको उपलब्ध कर लूँ! अहो समस्त इतर (वीर्याचारके अतिरिक्त अन्य) आचारमें प्रवृत्ति करानेवाली स्वशक्तिके अगोपनस्वरूप वीर्याचार! मैं यह निश्चयसे जानता हूँ कि तू शुद्धात्माका नहीं है, तथापि तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको उपलब्ध कर लूँ—इसप्रकार ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचारको अंगीकार करता है।

(सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूपको जानता है–अनुभव करता है और अपनेको अन्य समस्त व्यवहारभावोंसे भिन्न जानता है। जबसे उसे स्व–परका विवेकस्वरूप भेदविज्ञान प्रगट हुआ था तभी से वह समस्त विभावभावोंका त्याग कर चुका है और तभीसे उसने टंकोत्कीर्ण निजभाव अंगीकार किया है। इसलिये उसे न तो त्याग करनेको रहा है और न कुछ ग्रहण करनेको—अंगीकार करनेको रहा है। स्वभावदृष्टिकी अपेक्षासे ऐसा होने पर भी, वह पर्यायमें पूर्वबद्ध कर्मोंके उदयके निमित्तसे अनेक प्रकारके विभावभावरूप परिणमित होता है। इस विभावपरिणतिको पृथक् होती न देखकर वह आकुल–व्याकुल भी नहीं होता और वह सकल विभावपरिणतिको दूर करनेका पुरुषार्थ किये बिना भी नहीं करता। सकल विभावपरिणतिसे रहित स्वभावदृष्टिके बलस्वरूप पुरुषार्थसे गुणस्थानोंकी परिपाटीके सामान्य क्रमानुसार उसके प्रथम अशुभ परिणतिकी हानि होती है, और फिर धीरे धीरे शुभ परिणति भी छूटती जाती है। ऐसा होनेसे वह शुभरागके उदयकी भूमिकामें गृहवासका और कुटुम्बका त्यागी होकर व्यवहाररत्नत्रयरूप पंचाचारको अंगीकार करता है। यद्यपि वह ज्ञानभावसे समस्त शुभाशुभ क्रियाओंका त्यागी है तथापि पर्यायमें शुभराग नहीं छूटनेसे वह पूर्वोक्तप्रकारसे पंचाचारको ग्रहण करता है।) ॥२०२॥

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथातः कीदृशो भवतीत्युपदिशति—

समणं गणिं गुणड्ढं कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं।
समणेहिं तं पि पणदो पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो॥२०३॥

श्रमणं गणिनं गुणाढ्यं कुलरूपवयोविशिष्टमिष्टतरम्।
श्रमणैस्तमपि प्रणतः प्रतीच्छ मां चेत्यनुगृहीतः॥२०३॥

ततो हि श्रामण्यार्थी प्रणतोऽनुगृहीतश्च भवति। तथा हि—आचरिताचारितसमस्त-विरतिप्रवृत्तिसमानात्मरूपश्रामण्यत्वात् श्रमणं, एवंविधश्रामण्याचरणाचारणप्रवीणत्वात् गुणाढ्यं,

---

भण्यते। अन्तरङ्गशुद्धात्मानुभूतिज्ञापकं निर्ग्रन्थनिर्विकारं रूपमुच्यते। शुद्धात्मसंवित्तिविनाशकारिवृद्ध-बालयौवनोद्रेकजनितबुद्धिवैकल्यरहितं वयश्चेति। तैः कुलरूपवयोभिर्विशिष्टत्वात् कुलरूपवयो-विशिष्टम्। इट्ठदरं इष्टतरं सम्मतम्। कैः। **समणेहिं** निजपरमात्मतत्त्वभावनासहितसमचित्तश्रमणैर-न्याचार्यैः। **गणिं** एवंविधगुणविशिष्टं परमात्मभावनासाधकदीक्षादायकमाचार्यम्। **तं पि पणदो** न केवलं तमाचार्यमाश्रितो भवति, प्रणतोऽपि भवति। केन रूपेण। **पडिच्छ मं** हे भगवन्, अनन्तज्ञानादि-जिनगुणसंपत्तिकारणभूताया अनादिकालेऽत्यन्तदुर्लभाया भावसहितजिनदीक्षायाः प्रदानेन प्रसादेन मां

पश्चात् वह कैसा होता है इसका उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**श्रमणं**] जो श्रमण है, [**गुणाढ्यं**] गुणाढ्य है, [**कुलरूपवयो विशिष्टं**] कुल, रूप तथा वयसे विशिष्ट है, और [**श्रमणैः इष्टतरं**] श्रमणोंको अति इष्ट है [**तम् अपि गणिनं**] ऐसे गणीको [**माम् प्रतीच्छ इति**] 'मुझे स्वीकार करो' ऐसा कहकर [**प्रणतः**] प्रणत होता है (-प्रणाम करता है) [**च**] और [**अनुग्रहीतः**] अनुगृहीत होता है॥२०३॥

टीका :—पश्चात् श्रामण्यार्थी प्रणत और अनुगृहीत होता है। वह इसप्रकार है कि—आचरण करनेमें और आचरण करानेमें आनेवाली समस्त विरतिकी प्रवृत्तिके [१]समान आत्मरूप—ऐसे श्रामण्यपनेके कारण जो 'श्रमण' है; ऐसे श्रामण्यका आचरण करनेमें और आचरण करानेमें प्रवीण होनेसे जो 'गुणाढ्य' है; सर्व लौकिकजनोंके द्वारा निःशंकतया सेवा करने योग्य होनेसे और कुलक्रमागत (कुलक्रमसे उतर आनेवाले) क्रूरतादि दोषोंसे रहित होनेसे जो

---

१. समान = तुल्य, बराबर, एकसा, मिलता हुआ। [विरतिकी प्रवृत्तिके तुल्य आत्माका रूप अर्थात् विरतिकी प्रवृत्तिसे मिलती हुई-समान आत्मदशा सो श्रामण्य है।]

'मुजने ग्रहो' कही, प्रणत थई, अनुगृहीत थाय गणी वडे,
—वयरूपकुलविशिष्ट, योगी, गुणाढ्य ने मुनि-इष्ट जे. २०३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

सकललौकिकजननिःशंकसेवनीयत्वात् कुलक्रमागतक्रौर्यादिदोषवर्जितत्वाच्च कुलविशिष्टं, अन्तरंगशुद्धरूपानुमापकबहिरंगशुद्धरूपत्वात् रूपविशिष्टं, शैशववार्धक्यकृतबुद्धिविक्लवत्वाभावाद्यौवनोद्रेकविक्रियाविवित्तबुद्धित्वाच्च वयोविशिष्टं निःशेषितयथोक्तश्रामण्याचरणाचारणविषयपौरुषेयदोषत्वेन मुमुक्षुभिरभ्युपगततरत्वात् श्रमणैरिष्टतरं च गणिनं शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसाधकमाचार्यं शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसिद्ध्या मामनुगृहाणेत्युपसर्पन् प्रणतो भवति। एवमियं ते शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसिद्धिरिति तेन प्रार्थितार्थेन संयुज्यमानोऽनुगृहीतो भवति॥२०३॥

अथातोऽपि कीदृशो भवतीत्युपदिशति—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूवधरो॥२०४॥

प्रतीच्छ स्वीकुरु। चेदि अणुगहिदो न केवलं प्रणतो भवति, तेनाचार्येणानुगृहीतः स्वीकृतश्च भवति। हे भव्य, निस्सारसंसारे दुर्लभबोधिं प्राप्य निजशुद्धात्मभावनारूपया निश्चयचतुर्विधाराधनया मनुष्यजन्म सफलं कुर्वित्यनेन प्रकारेणानुगृहीतो भवतीत्यर्थः॥२०३॥ अथ गुरुणा स्वीकृतः सन् कीदृशो भवतीत्युपदिशति—**णाहं होमि परेसिं** नाहं भवामि परेषाम्। निजशुद्धात्मनः सकशात्परेषां भिन्नद्रव्याणां

'कुलविशिष्ट है; अंतरंग शुद्धरूपका अनुमान करानेवाला बहिरंग शुद्धरूप होनेसे जो 'रूपविशिष्ट' है, बालकत्व और वृद्धत्वसे होनेवाली [१]बुद्धिविक्लवताका अभाव होनेसे तथा [२]यौवनोद्रेककी विक्रियासे रहित बुद्धि होनेसे जो 'वयविशिष्ट' है; और यथोक्त श्रामण्यका आचरण करने तथा आचरण कराने सम्बन्धी [३]पौरुषेय दोषोंको निःशेषतया नष्ट कर देनेसे मुमुक्षुओंके द्वारा (प्रायश्चित्तादिके लिये) जिनका बहुआश्रय लिया जाता है इसलिये जो 'श्रमणोंको अतिइष्ट' है, ऐसे गणीके निकट—शुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धिके साधक आचार्यके निकट—'शुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धिरूप सिद्धिसे मुझे अनुगृहीत करो' ऐसा कहकर (श्रामण्यार्थी) जाता हुआ प्रणत होता है। 'इस प्रकार यह तुझे शुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धिरूप सिद्धि' ऐसा (कहकर) उस गणीके द्वारा (वह श्रामण्यार्थी) [४]प्रार्थित अर्थसे संयुक्त किया जाता हुआ अनुगृहीत होता है॥२०३॥

पश्चात् वह कैसा होता है, सो उपदेश करते हैं :—

---

१. विक्लवता = अस्थिरता; विकलता। २. यौवनोद्रेक = यौवनका जोश, यौवनकी अतिशयता।
३. पौरुषेय = मनुष्यके लिये संभवित। ४. प्रार्थित अर्थ = प्रार्थना करके माँगी गई वस्तु।

परनो न हुं, पर छे न मुज, मारुं नथी कंई पण जगे,
—अे रीत निश्चित ने जितेंद्रिय साहजिकरूपधर बने. २०४.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

नाहं भवामि परेषां न मे परे नास्ति ममेह किञ्चित्।
इति निश्चितो जितेन्द्रियः जातो यथाजातरूपधरः॥२०४॥

ततोऽपि श्रामण्यार्थी यथाजातरूपधरो भवति। तथा हि—अहं तावन्न किंचिदपि परेषां भवामि, परेऽपि न किंचिदपि मम भवन्ति, सर्वद्रव्याणां परैः सह तत्त्वतः समस्तसम्बन्धशून्यत्वात्। तदिह षड्द्रव्यात्मके लोके न मम किंचिदप्यात्मनोऽन्यदस्तीति निश्चितमतिः परद्रव्यस्वस्वामिसम्बन्धनिबन्धनानामिन्द्रियनोइन्द्रियाणां जयेन जितेन्द्रियश्च सन् धृतयथानिष्पन्नात्मद्रव्यशुद्धरूपत्वेन यथाजातरूपधरो भवति॥२०४॥

संबन्धी न भवाम्यहम्। ण मे परे न मे संबन्धीनि परद्रव्याणि। णत्थि मज्झमिह किंचि नास्ति ममेह किंचित्। इह जगति निजशुद्धात्मनो भिन्नं किंचिदपि परद्रव्यं मम नास्ति। इदि णिच्छिदो इति निश्चितमतिर्जातः। जिदिंदो जादो इन्द्रियमनोजनितविकल्पजालरहितानन्तज्ञानादिगुणस्वरूपनिजपरमात्मद्रव्याद्विपरीतेन्द्रियनोइन्द्रियाणां जयेन जितेन्द्रियश्च संजातः सन् जधजादरूवधरो यथाजातरूपधरः, व्यवहारेण नग्नत्वं यथाजातरूपं, निश्चयेन तु स्वात्मरूपं, तदित्थंभूतं यथाजातरूपं धरतीति यथाजातरूपधरः निर्ग्रन्थो जात इत्यर्थः॥२०४॥ अथ तस्य पूर्वसूत्रोदितयथाजातरूपधरस्य निर्ग्रन्थस्यानादिकालदुर्लभायाः स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धेर्गमकं चिह्नं बाह्याभ्यन्तरलिङ्गद्वयमादिशति—जधजादरूवजादं पूर्वसूत्रोक्तलक्षणयथाजातरूपेण निर्ग्रन्थत्वेन जातमुत्पन्नं यथाजातरूपजातम्। उप्पाडिदकेसमंसुगं

अन्वयार्थ :—[अहं] मैं [परेषां] दूसरोंका [न भवामि] नहीं हूँ [परे मे न] पर मेरे नहीं हैं, [इह] इस लोकमें [मम] मेरा [किंचित्] कुछ भी [न अस्ति] नहीं है—[इति निश्चितः] ऐसा निश्चयवान् और [जितेन्द्रियः] जितेन्द्रिय होता हुआ [यथाजातरूपधरः] यथाजातरूपधर (सहजरूपधारी) [जातः] होता है॥२०४॥

टीका :—और तत्पश्चात् श्रामण्यार्थी [१]यथाजातरूपधर होता है। वह इसप्रकार :—'प्रथम तो मैं किंचित्मात्र भी परका नहीं हूँ, पर भी किंचित्मात्र मेरे नहीं हैं, क्योंकि समस्त द्रव्य [२]तत्त्वतः परके साथ समस्त सम्बन्ध रहित हैं; इसलिये इस षड्द्रव्यात्मक लोकमें आत्मासे अन्य कुछ भी मेरा नहीं है;'—इसप्रकार निश्चित मतिवाला (वर्तता हुआ) और परद्रव्योंके साथ स्व-स्वामिसंबंध जिनका आधार है ऐसी इन्द्रियों और नो-इन्द्रियोंके जयसे जितेन्द्रिय होता हुआ वह (श्रामण्यार्थी) आत्मद्रव्यका [३]यथानिष्पन्न शुद्धरूप धारण करनेसे यथाजातरूपधर होता है॥२०४॥

---

१. यथाजातरूपधर = (आत्माका) जैसा, मूलभूत रूप है वैसा (-सहज, स्वाभाविक) रूप धारण करनेवाला।
२. तत्त्वतः = वास्तवमें; तत्त्वकी दृष्टिसे; परमार्थतः।
३. यथानिष्पन्न = जैसा बना हुआ है वैसा, सहज, स्वाभाविक।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथैतस्य यथाजातरूपधरत्वस्यासंसारानभ्यस्तत्वेनात्यन्तमप्रसिद्धस्याभिनवाभ्यास-कौशलोपलभ्यमानायाः सिद्धेर्गमकं बहिरंगान्तरंगलिंगद्वैतमुपदिशति—

जधजादरूवजादं उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं॥२०५॥
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवओगजोगसुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भवकारणं जेण्हं॥२०६॥

यथाजातरूपजातमुत्पाटितकेशश्मश्रुकं शुद्धम्।
रहितं हिंसादितोऽप्रतिकर्म भवति लिङ्गम्॥२०५॥
मूर्च्छारम्भवियुक्तं युक्तमुपयोगयोगशुद्धिभ्याम्।
लिङ्गं न परापेक्षमपुनर्भवकारणं जैनम्॥२०६॥

केशश्मश्रुसंस्कारोत्पन्नरागादिदोषवर्जनार्थमुत्पाटितकेशश्मश्रुत्वादुत्पाटितकेशश्मश्रुकम्। सुद्धं निरवद्य-चैतन्यचमत्कारविसदृशेन सर्वसावद्ययोगेन रहितत्वाच्छुद्धम्। रहिदं हिंसादीदो शुद्धचैतन्यरूपनिश्चय-प्राणहिंसाकारणभूताया रागादिपरिणतिलक्षणनिश्चयहिंसाया अभावात् हिंसादिरहितम्। अप्पडिकम्मं हवदि परमोपेक्षासंयमबलेन देहप्रतिकाररहितत्वादप्रतिकर्म भवति। किम्। लिंगं एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं लिङ्गं

अब, अनादि संसारसे अनभ्यस्त होनेसे जो अत्यन्त अप्रसिद्ध है और [१]अभिनव अभ्यासमें कौशल्य द्वारा जिसकी सिद्धि उपलब्ध होती है ऐसे इस यथाजातरूपधरपनेके बहिरंग और अंतरंग दो लिंगोंका उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यथाजातरूपजातम्**] जन्मसमयके रूप जैसा रूपवाला, [**उत्पाटितकेशश्मश्रुकं**] सिर और डाढ़ी-मूछके बालोंका लोंच किया हुआ, [**शुद्धं**] शुद्ध (अकिंचन), [**हिंसादितः रहितम्**] हिंसादिसे रहित और [**अप्रतिकर्म**] प्रतिकर्म (शारीरिक श्रृंगार)से रहित—[**लिंगं भवति**] ऐसा (श्रामण्यका बहिरंग) लिंग है॥२०५-२०६॥

---

१. अभिनव = बिलकुल नया। (अनादि संसारसे अनभ्यस्त यथाजातरूपधरपना अभिनव अभ्यासमें प्रवीणताके द्वारा सिद्ध होता है।)

जन्म्या प्रमाणे रूप, लुंचन केशनुं, शुद्धत्व ने
हिंसादिथी शून्यत्व, देह-असंस्करण—अे लिंग छे. २०५.
आरंभ मूर्छा शून्यता, उपयोग योग विशुद्धता,
निरपेक्षता परथी,—जिनोदित मोक्षकारण लिंग आ. २०६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

आत्मनो हि तावदात्मना यथोदितक्रमेण यथाजातरूपधरस्य जातस्यायथाजातरूपधरत्वप्रत्ययानां मोहरागद्वेषादिभावानां भवत्येवाभावः, तदभावात्तु तद्भावभाविनो निवसनभूषणधारणस्य मूर्धजव्यंजनपालनस्य सकिंचनत्वस्य सावद्ययोगयुक्तत्वस्य शरीरसंस्कारकरणत्वस्य चाभावाद्यथाजातरूपत्वमुत्पाटितकेशश्मश्रुत्वं शुद्धत्वं हिंसादिरहितत्वमप्रतिकर्मत्वं च भवत्येव, तदेतद्बहिरंग लिंगम्। तथात्मनो यथाजातरूपधरत्वापसारितायथाजातरूपधरत्वप्रत्ययमोहरागद्वेषादिभावानामभावादेव तद्भावभाविनो ममत्वकर्मप्रकमपरिणामस्य शुभाशुभोपरक्तो-

---

द्रव्यलिङ्गं ज्ञातव्यमिति प्रथमगाथा गता।। मुच्छारंभविमुक्कं परद्रव्यकाङ्क्षारहितनिर्मोहपरमात्मज्योतिर्विलक्षणा बाह्यद्रव्ये ममत्वबुद्धिर्मूर्च्छा भण्यते, मनोवाक्कायव्यापाररहितचिच्चमत्कारप्रतिपक्षभूत आरम्भो व्यापारस्ताभ्यां मूर्च्छारम्भाभ्यां विमुक्तं मूर्च्छारम्भविमुक्तम्। जुत्तं उवओगजोगसुद्धीहिं निर्विकारस्वसंवेदनलक्षण उपयोगः, निर्विकल्पसमाधिर्योगः, तयोरुपयोगयोगयोः शुद्धिरुपयोगयोगशुद्धिस्तया युक्तम्। ण परावेक्खं निर्मलानुभूतिपरिणतेः परस्य परद्रव्यस्यापेक्षया रहितं, न परापेक्षम्। अपुणब्भवकारणं पुनर्भवविनाशकशुद्धात्मपरिणामाविपरीतापुनर्भवस्य मोक्षस्य कारणमपुनर्भवकारणम्। जेण्हं जिनस्य संबन्धीदं जिनेन प्रोक्तं वा जैनम्। एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं भवति। किम्। लिंगं भावलिङ्गमिति। इति

[मूर्च्छारम्भवियुक्तम्] मूर्च्छा (ममत्व) और आरम्भ रहित, [उपयोगयोगशुद्धिभ्यां युक्तं] उपयोग और योगकी शुद्धिसे युक्त तथा [न परापेक्षं] परकी अपेक्षासे रहित—ऐसा [जैनं] जिनेन्द्रदेवकथित [लिंगम्] (श्रामण्यका अंतरंग) लिंग है [अपुनर्भवकारणम्] जो कि मोक्षका कारण है।

टीका :—प्रथम तो अपनेसे, यथोक्तक्रमसे [१]यथाजातरूपधर हुए आत्माके [२]अयथाजातरूपधरपनेके कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावोंका अभाव होता ही है; और उनके अभावके कारण, जो कि उनके सद्भावमें होते हैं ऐसे (१) वस्त्राभूषणका धारण, (२) सिर और डाढ़ी–मूछोंके बालोंका रक्षण, (३) [३]सकिंचनत्व, (४) सावद्ययोगसे युक्तता तथा (५) शारीरिक संस्कारका करना, इन (पाँचों) का अभाव होता है; जिससे (उस आत्माके) (१) जन्मसमयके रूप जैसा रूप, (२) सिर और डाढ़ी–मूछके बालोंका लोंच, (३) शुद्धत्व, (४) हिंसादिरहितता तथा (५) अप्रतिकर्मत्व (शारीरिक श्रृंगार–संस्कारका अभाव) होता ही है। इसलिये यह बहिरंग लिंग है।

और फिर, आत्माके यथाजातरूपधरपनेसे दूर किया गया जो अयथाजातरूपधरपना, उसके कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावोंका अभाव होनेसे ही जो उनके सद्भावमें होते हैं ऐसे जो

---

१. यथाजातरूपधर = (आत्माका) सहजरूप धारण करनेवाला।

२. अयथाजातरूपधर = (आत्माका) असहजरूप धारण करनेवाला।

३. सकिंचन = जिसके पास कुछ भी (परिग्रह) हो ऐसा।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पयोगतत्पूर्वकतथाविधयोगाशुद्धियुक्तत्वस्य परद्रव्यसापेक्षत्वस्य चाभावान्मूर्च्छारम्भवियुक्तत्व-मुपयोगयोगशुद्धियुक्तत्वमपरापेक्षत्वं च भवत्येव, तदेतदन्तरंग लिंगम् ॥२०५।२०६॥

अथैतदुभयलिंगमादायैतदेतत्कृत्वा च श्रमणो भवतीति भवतिक्रियायां बन्धुवर्गप्रच्छन-क्रियादिशेषसकलक्रियाणां चैककर्तृकत्वमुद्योतयन्नियता श्रामण्यप्रतिपत्तिर्भवतीत्युपदिशति—

आदाय तं पि लिंगं गुरुणा परमेण तं णमंसित्ता।
सोच्चा सवदं किरियं उवट्ठिदो होदि सो समणो॥२०७॥

आदाय तदपि लिङ्गं गुरुणा परमेण तं नमस्कृत्य।
श्रुत्वा सव्रतां क्रियामुपस्थितो भवति स श्रमणः॥२०७॥

द्रव्यलिङ्गभावलिङ्गस्वरूपं ज्ञातव्यम्॥२०५।२०६॥ अथैतलिङ्गद्वैतमादाय पूर्वं भाविनैगमनयेन यदुक्तं पञ्चाचारस्वरूपं तदिदानीं स्वीकृत्य तदाधारेणोपस्थितः स्वस्थो भूत्वा श्रमणो भवतीत्याख्याति—**आदाय तं पि लिंगं** आदाय गृहीत्वा तत्पूर्वोक्तं लिङ्गद्वयमपि। कथंभूतम्। दत्तमिति क्रियाध्याहारः। केन दत्तम्।

---

(१) ममत्वके और [१]कर्मप्रक्रमके परिणाम, (२) शुभाशुभ उपरक्त उपयोग और [२]तत्पूर्वक तथाविध योगकी अशुद्धिसे युक्तता तथा (३) परद्रव्यसे सापेक्षता; इस (तीनों) का अभाव होता है; इसलिये (उस आत्माके) (१) मूर्छा और आरम्भसे रहितता, (२) उपयोग और योगकी शुद्धिसे युक्तता तथा (३) परकी अपेक्षासे रहितता होती ही है। इसलिये यह अंतरंग लिंग है॥२०५-२०६॥

अब (श्रामण्यार्थी) इन दोनों लिंगोंको ग्रहण करके और इतना-इतना करके श्रमण होता है—इसप्रकार [३]भवतिक्रियामें, बंधुवर्गसे विदा लेनेरूप क्रियासे लेकर शेष सभी क्रियाओंका एक कर्ता दिखलाते हुए, इतनेसे (अर्थात् इतना करनेसे) श्रामण्यकी प्राप्ति होती है, ऐसा उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**परमेण गुरुणा**] परम गुरुके द्वारा प्रदत्त [**तदपि लिंगम्**] उन दोनों लिंगोंको [**आदाय**] ग्रहण करके, [**सं नमस्कृत्य**] उन्हें नमस्कार करके [**सव्रतां क्रियां श्रुत्वा**] व्रत सहित क्रियाको सुनकर [**उपस्थितः**] उपस्थित (आत्माके समीप स्थित) होता हुआ [**सः**] वह [**श्रमणः भवति**] श्रमण होता है॥२०७॥

---

१. कर्मप्रक्रम = कामको अपने ऊपर लेना; काममें युक्त होना, कामकी व्यवस्था।
२. तत्पूर्वक = उपरक्त (मलिन) उपयोगपूर्वक। ३. भवतिक्रिया = होनेरूप क्रिया।

ग्रही परमगुरु-दीधेल लिंग, नमस्करण करी तेमने,
व्रत ने क्रिया सुणी, थई उपस्थित, थाय छे मुनिराज अे. २०७.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

ततोऽपि श्रमणो भवितुमिच्छन् लिंगद्वैतमादत्ते, गुरुं नमस्यति, व्रतक्रिये शृणोति, अथोपतिष्ठते; उपस्थितश्च पर्याप्तश्रामण्यसामग्रीकः श्रमणो भवति। तथा हि—तत इदं यथाजातरूपधरत्वस्य गमकं बहिरंगमन्तरंगमपि लिंगं प्रथममेव गुरुणा परमेणार्हद्भट्टारकेण तदात्वे च दीक्षाचार्येण तदादानविधानप्रतिपादकत्वेन व्यवहारतो दीयमानत्वाद्दत्तमादानक्रियया सम्भाव्य तन्मयो भवति। ततो भाव्यभावकभावप्रवृत्तेतरेतरसंवलनप्रत्यस्तमितस्वपरविभागत्वेन दत्तसर्वस्वमूलोत्तरपरमगुरुनमस्क्रियया सम्भाव्य भावस्तववन्दनामयो भवति। ततः सर्वसावद्य-योगप्रत्याख्यानलक्षणैकमहाव्रतश्रवणात्मना श्रुतज्ञानेन समये भवन्तमात्मानं जानन् सामायिक-

---

गुरुणा परमेण दिव्यध्वनिकाले परमागमोपदेशरूपेणार्हद्भट्टारकेण, दीक्षाकाले तु दीक्षागुरुणा। लिङ्गग्रहणानन्तरं तं णमंसित्ता तं गुरुं नमस्कृत्य, सोच्चा तदनन्तरं श्रुत्वा। काम्। किरियं क्रियां बृहत्प्रतिक्रमणाम्। किंविशिष्टम्। सवदं सव्रतां व्रतारोपणसहिताम्। उवट्ठिदो ततश्चोपस्थितः स्वस्थः सन् होदि सो समणो स पूर्वोक्तस्तपोधन इदानीं श्रमणो भवतीति। इतो विस्तरः—पूर्वोक्तलिङ्गद्वय-ग्रहणानन्तरं पूर्वसूत्रोक्तपञ्चाचारमाश्रयति, ततश्चानन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपेण भावनमस्कारेण तथैव तद्गुणप्रतिपादकवचनरूपेण द्रव्यनमस्कारेण च गुरुं नमस्करोति। ततः परं समस्तशुभाशुभपरिणाम-निवृत्तिरूपं स्वस्वरूपे निश्चलावस्थानं परमसामायिकव्रतमारोहति स्वीकरोति। मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च जगत्त्रये कालत्रयेऽपि समस्तशुभाशुभकर्मभ्यो भिन्ना निजशुद्धात्मपरिणतिलक्षणा या तु क्रिया सा निश्चयेन बृहत्प्रतिक्रमणा भण्यते। व्रतारोपणानन्तरं तां च शृणोति। ततो

टीका :—तत्पश्चात् श्रमण होनेका इच्छुक दोनों लिंगोंको ग्रहण करता है, गुरुको नमस्कार करता है, व्रत तथा क्रियाको सुनता है और उपस्थित होता है; उपस्थित होता हुआ श्रामण्यकी सामग्री पर्याप्त (परिपूर्ण) होनेसे श्रमण होता है। वह इसप्रकार :—

परम गुरु—प्रथम ही अर्हंतभट्टारक और उस समय (दीक्षाकालमें) दीक्षाचार्य—इस यथाजातरूपधरत्वके सूचक बहिरंग तथा अंतरंग लिंगके ग्रहणकी–विधिके प्रतिपादक होनेसे, व्यवहारसे उस लिंगके देनेवाले हैं। इसप्रकार उनके द्वारा दिये गये उन लिंगोंको ग्रहण क्रियाके द्वारा संभावित–सम्मानित करके (श्रामण्यार्थी) तन्मय होता है। और फिर जिन्होंने सर्वस्व दिया है ऐसे [१]मूल और उत्तर परमगुरुको, [२]भाव्यभावकताके कारण प्रवर्तित *इतरेतरमलिनके कारण जिसमेंसे स्व–परका विभाग अस्त हो गया है ऐसी नमस्कार क्रियाके द्वारा संभावित करके–सम्मानित करके [३]भावस्तुति वन्दनामय होता है। पश्चात् सर्व सावद्ययोगके प्रत्याख्यानस्वरूप

---

१. मूल परमगुरु अर्हन्तदेव तथा उत्तरपरमगुरु दीक्षाचार्यके प्रति अत्यन्त आराध्यभावके कारण आराध्य परमगुरु और आराधक ऐसे निजका भेद अस्त हो जाता है।

२. भाव्य और भावकके अर्थके लिये देखो पृष्ठ ८ का पाद टिप्पण।

* इसका स्पष्टीकरण प्रथमकी ५ गाथाओंके टीप्पण पत्रमें देखिये।

३. भावस्तुतिवन्दनामय = भावस्तुतिमय और भाववन्दनामय।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

मधिरोहति। ततः प्रतिक्रमणालोचनप्रत्याख्यानलक्षणक्रियाश्रवणात्मना श्रुतज्ञानेन त्रैकालिक-कर्मभ्यो विविच्यमानमात्मानं जानन्नतीतप्रत्युत्पन्नानुपस्थितकायवाङ्मनःकर्मविविक्तत्वमधि-रोहति। ततः समस्तावद्यकर्मायतनं कायमुत्सृज्य यथाजातरूपं स्वरूपमेकमेकाग्रेणालम्ब्य व्यव-तिष्ठमान उपस्थितो भवति। उपस्थितस्तु सर्वत्र समदृष्टित्वात् साक्षाच्छ्रमणो भवति॥२०७॥

अथाविच्छिन्नसामायिकाधिरूढोऽपि श्रमणः कदाचिच्छेदोपस्थापनमर्हतीत्युपदिशति—

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च॥२०८॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि॥२०९॥

निर्विकल्पसमाधिबलेन कायमुत्सृज्योपस्थितो भवति। ततश्चैवं परिपूर्णश्रमणसामग्र्यां सत्यां परिपूर्ण-श्रमणो भवतीत्यर्थः॥२०७॥ एवं दीक्षाभिमुखपुरुषस्य दीक्षाविधानकथनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले

एक महाव्रतको सुननेरूप श्रुतज्ञानके द्वारा समयमें परिणमित होते हुए आत्माको जानता हुआ [१]सामायिकमें आरूढ़ होता है। पश्चात् [२]प्रतिक्रमण–आलोचना–प्रत्याख्यान–स्वरूप क्रियाको सुननेरूप श्रुतज्ञानके द्वारा त्रैकालिक कर्मोंसे विविक्त (भिन्न) किये जानेवाले आत्माको जानता हुआ, अतीत–अनागत–वर्तमान, मन–वचन–कायसंबंधी कर्मोंसे विविक्तता (भिन्नता)में आरूढ़ होता है। पश्चात् समस्त सावद्य कर्मोंके [३]आयतनभूत कायका उत्सर्ग (उपेक्षा) करके यथाजातरूपवाले स्वरूपको, एकको एकाग्रतया अवलम्बित करके रहता हुआ, उपस्थित होता है। और उपस्थित होता हुआ, सर्वत्र समदृष्टिपनेके कारण साक्षात् श्रमण होता है॥२०७॥

अविच्छिन्न सामायिकमें आरूढ़ हुआ होने पर भी श्रमण कदाचित् छेदोपस्थापनाके योग्य है, ऐसा अब उपदेश करते हैं :—

---

१. समयमें (आत्मद्रव्यमें, निजद्रव्यस्वभावमें) परिणमित होना सो सामायिक है

२. अतीत–वर्तमान–अनागत काय–वचन–मनसंबंधी कर्मोंसे भिन्न निजशुद्धात्मपरिणति वह प्रतिक्रमण–आलोचना–प्रत्याख्यानरूप किया है। ३. आयतन = स्थान, निवास।

व्रत, समिति, लुंचन, आवश्यक, अणचेल, इन्द्रियरोधनं,
नहि स्नान–दातण, एक भोजन, भूशयन, स्थितिभोजनं. २०८.
–आ मूळगुण श्रमणो तथा जिनदेवथी प्रज्ञप्त छे,
तेमां प्रमत्त थतां श्रमण छेदोपस्थापक थाय छे. २०९.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

व्रतसमितीन्द्रियरोधो लोचावश्यकमचेलमस्नानम्।
क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तं च॥२०८॥
एते खलु मूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः।
तेषु प्रमत्तः श्रमणः छेदोपस्थापको भवति॥२०९॥

सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणैकमहाव्रतव्यक्तिवशेन हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहविरत्यात्मकं पंचतयं व्रतं, तत्परिकरश्च पंचतयी समितिः पंचतय इन्द्रियरोधो लोचः षट्तयमावश्यकमचेलक्यमस्नानं क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तश्चैवं एते निर्विकल्प-

गाथासप्तकं गतम्। अथ निर्विकल्पसामायिकसंयमे यदा च्युतो भवति तदा सविकल्पं छेदोपस्थापनचारित्रमारोहतीति प्रतिपादयति—वदसमिदिंदियरोधो व्रतानि च समितयश्चेन्द्रियरोधश्च व्रतसमितीन्द्रियरोधः। लोचावस्सयं लोचश्चावश्यकानि च लोचावश्यकं, "समाहारस्यैकवचनम्"। अचेलमण्हाणं खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च अचेलकास्नानक्षितिशयनादन्तधावनस्थितिभोजनैकभक्तानि। एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता एते खलु स्फुटं अष्टाविंशतिमूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः। तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि तेषु मूलगुणेषु यदा प्रमत्तः च्युतो भवति। सः कः। श्रमणस्तपोधनस्तदाकाले छेदोपस्थापको भवति। छेदे व्रतखण्डने सति पुनरप्युपस्थापकश्छेदोपस्थापक इति। तथाहि—निश्चयेन मूलमात्मा, तस्य केवलज्ञानाद्यनन्तगुणा मूलगुणास्ते च निर्विकल्पसमाधिरूपेण

अन्वयार्थ :—[व्रतसमितीन्द्रियरोधः] व्रत, समिति, इन्द्रियरोध, [लोचावश्यकम्] लोच, आवश्यक, [अचेलम्] अचेलपना, [अस्नानं] अस्नान, [क्षितिशयनम्] भूमिशयन, [अदंतधावनं] अदंतधावन, [स्थितिभोजनम्] खड़े-खड़े भोजन, [च] और [एकभक्तं] एकबार आहार—[एते] ये [खलु] वास्तवमें [श्रमणानां मूलगुणाः] श्रमणोंके मूलगुण [जिनवरैः प्रज्ञप्ताः] जिनवरोंने कहे हैं; [तेषु] उनमें [प्रमत्तः] प्रमत्त होता हुआ [श्रमणः] श्रमण [छेदोपस्थापकः भवति] छेदोपस्थापक होता है॥२०८-२०९॥

टीका :—सर्व सावद्ययोगके प्रत्याख्यानस्वरूप एक महाव्रतकी व्यक्तियाँ (विशेष, प्रगटताएँ) होनेसे हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहकी विरतिस्वरूप पाँच प्रकारके व्रत तथा उसकी [१]परिकरभूत पाँच प्रकारकी समिति, पाँच प्रकारका इन्द्रियरोध, लोच, छह प्रकारके आवश्यक, [२]अचेलपना, अस्नान, भूमिशयन, अदंतधावन (दातुन न करना), खड़े-खड़े भोजन, और एकबार आहार—इसप्रकार ये (अट्ठाईस) निर्विकल्प सामायिकसंयमके विकल्प (भेद)

१. परिकर = अनुसरण करनेवाला समुदाय; अनुचरसमूह; [समिति, इन्द्रियरोध, इत्यादि पांच व्रतोंके पीछे-पीछे होते ही हैं, इसलिये समिति इत्यादि गुण पाँच व्रतोंका परिकर अर्थात् अनुचर समूह है।]

२. अचेलपना = वस्त्ररहितपना, दिगम्बरपना।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

सामायिकसंयमविकल्पत्वात् श्रमणानां मूलगुणा एव। तेषु यदा निर्विकल्पसामायिक-संयमाधिरूढत्वेनानभ्यस्तविकल्पत्वात्प्रमाद्यति तदा केवलकल्याणमात्रार्थिनः कुण्डलवलयांगुली-यादिपरिग्रहः किल श्रेयान्, न पुनः सर्वथा कल्याणलाभ एवेति सम्प्रधार्य विकल्पेनात्मान-मुपस्थापयन् छेदोपस्थापको भवति॥२०८। २०९॥

अथास्य प्रव्रज्यादायक इव छेदोपस्थापकः परोऽप्यस्तीत्याचार्यविकल्पप्रज्ञापन-द्वारेणोपदिशति—

लिंगग्गहणे तेसिं गुरु त्ति पव्वज्जदायगो होदि।
छेदेसूवट्ठवगा सेसा णिज्जावगा समणा॥२१०॥

परमसामायिकाभिधानेन निश्चयैकव्रतेन मोक्षबीजभूतेन मोक्षे जाते सति सर्वे प्रकटा भवन्ति। तेन कारणेन तदेव सामायिकं मूलगुणव्यक्तिकारणत्वात् निश्चयमूलगुणो भवति। यदा पुनर्निर्विकल्पसमाधौ समर्थो न भवत्ययं जीवस्तदा यथा कोऽपि सुवर्णार्थी पुरुषः सुवर्णमलभमानस्तपर्यायानपि कुण्डलादीन् गृह्णाति, न च सर्वथा त्यागं करोति; तथायं जीवोऽपि निश्चयमूलगुणाभिधानपरमसमाध्यभावे छेदोपस्थानं चारित्रं गृह्णाति। छेदे सत्युपस्थापनं छेदोपस्थापनम्। अथवा छेदेन व्रतभेदेनोपस्थापनं छेदोपस्थापनम्। तच्च संक्षेपेण पञ्चमहाव्रतरूपं भवति। तेषां व्रतानां च रक्षणार्थं पञ्चसमित्यादिभेदेन पुनरष्टाविंशतिमूलगुणभेदा भवन्ति। तेषां च मूलगुणानां रक्षणार्थं द्वाविंशतिपरीषहजयद्वादशविध-तपश्चरणभेदेन चतुस्त्रिंशदुत्तरगुणा भवन्ति। तेषां च रक्षणार्थं देवमनुष्यतिर्यगचेतनकृतचतुर्विधोपसर्ग-जयद्वादशानुप्रेक्षाभावनादयश्चेत्यभिप्रायः॥२०८।२०९॥ एवं मूलोत्तरगुणकथनरूपेण द्वितीयस्थले

होनेसे श्रमणोंके मूलगुण ही हैं। जब (श्रमण) निर्विकल्प सामायिकसंयममें आरूढ़ताके कारण जिसमें विकल्पोंका अभ्यास (सेवन) नहीं है ऐसी दशामेंसे च्युत होता है, तब 'केवलसुवर्णमात्रके अर्थीको कुण्डल, कंकण, अंगूठी आदिको ग्रहण करना (भी) श्रेय है, किन्तु ऐसा नहीं है कि (कुण्डल इत्यादिका ग्रहण कभी न करके) सर्वथा स्वर्णकी ही प्राप्ति करना ही श्रेय है' ऐसा विचार करके मूलगुणोंमें विकल्परूपसे (भेदरूपसे) अपनेको स्थापित करता हुआ छेदोपस्थापक होता है॥२०८-२०९॥

अब इनके (श्रमणके) प्रव्रज्यादायककी भाँति छेदोपस्थापक पर (दूसरा) भी होता है ऐसा, आचार्यके भेदोंके प्रज्ञापन द्वारा उपदेश करते हैं :—

जे लिंगग्रहणे साधुपद देनार ते गुरु जाणवा;
छेदद्वये स्थापन करे ते शेष मुनि निर्यापका. २१०.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

लिङ्गग्रहणे तेषां गुरुरिति प्रव्रज्यादायको भवति।
छेदयोरुपस्थापकाः शेषा निर्यापकाः श्रमणाः॥२१०॥

यतो लिंगग्रहणकाले निर्विकल्पसामायिकसंयमप्रतिपादकत्वेन यः किलाचार्यः प्रव्रज्यादायकः स गुरुः, यः पुनरनन्तरं सविकल्पच्छेदोपस्थापनसंयमप्रतिपादकत्वेन छेदं प्रत्युपस्थापकः स निर्यापकः, योऽपि छिन्नसंयमप्रतिसन्धानविधानप्रतिपादकत्वेन छेदे सत्युपस्थापकः सोऽपि निर्यापक एव। ततश्छेदोपस्थापकः परोऽप्यस्ति॥२१०॥

सूत्रद्वयं गतम्। अथास्य तपोधनस्य प्रव्रज्यादायक इवान्योऽपि निर्यापकसंज्ञो गुरुरस्ति इति गुरुव्यवस्थां निरूपयति—लिंगग्गहणे तेसिं लिङ्गग्रहणे तेषां तपोधनानां गुरु त्ति होदि गुरुर्भवतीति। स कः। पव्वज्जदायगो निर्विकल्पसमाधिरूपपरमसामायिकप्रतिपादको योऽसौ प्रव्रज्यादायकः स एव दीक्षागुरुः, छेदेसु अ वट्टगा छेदयोश्च वर्तकाः ये सेसा णिज्जावगा समणा ते शेषाः श्रमणा निर्यापका भवन्ति शिक्षागुरवश्च भवन्तीति। अयमत्रार्थः—निर्विकल्पसमाधिरूपसामायिकस्यैकदेशेन च्युतिरेकदेशच्छेदः,

---

अन्वयार्थ :—[लिंगग्रहणे] लिंगग्रहणके समय [प्रव्रज्यादायकः भवति] जो प्रव्रज्या (दीक्षा) दायक हैं वह [तेषां गुरुः इति] उनके गुरु हैं और [छेदयोः उपस्थापकाः] जो [१]छेदद्वयमें उपस्थापक हैं (अर्थात् (१)–जो भेदोंमें स्थापित करते हैं तथा (२)–जो संयममें छेद होने पर पुनः स्थापित करते हैं) [शेषाः श्रमणाः] वे शेष श्रमण [निर्यापकाः] [२]निर्यापक हैं॥२१०॥

टीका :—जो आचार्य लिंगग्रहणके समय निर्विकल्प सामायिकसंयमके प्रतिपादक होनेसे प्रव्रज्यादायक हैं, वे गुरु हैं; और तत्पश्चात् तत्काल ही जो (आचार्य) सविकल्प छेदोपस्थापनासंयमके प्रतिपादक होनेसे 'छेदके प्रति उपस्थापक (भेदमें स्थापित करनेवाले)' हैं, वे निर्यापक हैं; उसीप्रकार जो (आचार्य) [३]छिन्न संयमके [४]प्रतिसंधानकी विधिके प्रतिपादक होनेसे 'छेद होने पर उपस्थापक (-संयममें छेद होने पर उसमें पुनः स्थापित करनेवाले)' हैं, वे भी निर्यापक ही हैं। इसलिये [५]छेदोपस्थापक, पर भी होते हैं॥२१०॥

---

१. छेदद्वय = दो प्रकारके छेद। [यहाँ (१) संयममें जो २८ मूलगुणरूप भेद होते हैं उसे भी छेद कहा है और (२) खण्डन अथवा दोषको भी छेद कहा है।]

२. निर्यापक = निर्वाह करनेवाला; सदुपदेशसे दृढ़ करनेवाला; शिक्षागुरु, श्रुतगुरु।

३. छिन्न = छेदको प्राप्त; खण्डित; टूटा हुआ, दोष प्राप्त।

४. प्रतिसंधान = पुनः जोड़ देना वह; दोषोंको दूर करके एकसा (दोष रहित) कर देना वह।

५. छेदोपस्थापकके दो अर्थ हैं : (१) जो 'छेद (भेद) के प्रति उपस्थापक' है, अर्थात् जो २८ मूलगुणरूप भेदोंको समझाकर उसमें स्थापित करता है वह छेदोपस्थापक है; तथा (२) जो 'छेदके होने पर उपस्थापक' है, अर्थात् संयमके छिन्न (खण्डित) होने पर उसमें पुनः स्थापित करता है, वह भी छेदोपस्थापक है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ छिन्नसंयमप्रतिसन्धानविधानमुपदिशति—

पयदम्हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेट्ठम्हि।
जायदि जदि तस्स पुणो आलोयणपुव्विया किरिया॥२११॥
छेदुवजुत्तो समणो समणं ववहारिणं जिणमदम्हि।
आसेज्जालोचित्ता उवदिट्ठं तेण कायव्वं॥२१२॥

प्रयतायां समारब्धायां छेदः श्रमणस्य कायचेष्टायाम्।
जायते यदि तस्य पुनरालोचनपूर्विका क्रिया॥२११॥
छेदोपयुक्तः श्रमणः श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते।
आसाद्यालोच्योपदिष्टं तेन कर्तव्यम्॥२१२॥

सर्वथा च्युतिः सकलच्छेद इति देशसकलभेदेन द्विधा छेदः। तयोश्छेदयोर्ये प्रायश्चित्तं दत्वा संवेग-वैराग्यजनकपरमागमवचनैः संवरणं कुर्वन्ति ते निर्यापकाः शिक्षागुरवः श्रुतगुरवश्चेति भण्यन्ते। दीक्षादायकस्तु दीक्षागुरुरित्यभिप्रायः॥२१०॥ अथ पूर्वसूत्रोक्तच्छेदद्वयस्य प्रायश्चित्तविधानं कथयति— **पयदम्हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेट्ठम्हि जायदि जदि प्रयतायां समारब्धायां छेदः श्रमणस्य कायचेष्टायां** जायते यदि चेत्। अथ विस्तरः–छेदो जायते यदि चेत्। स्वस्थभावच्युतिलक्षणः छेदो भवति। कस्याम्। कायचेष्टायाम्। कथंभूतायाम्। प्रयतायां स्वस्थभावलक्षणप्रयत्नपरायां समारब्धायां अशनशयनयान-

---

अब छिन्नसंयमके प्रतिसंधानकी विधिका उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यदि] यदि [श्रमणस्य] श्रमणके [प्रयतायां] [1]प्रयत्नपूर्वक [समारब्धायां] की जानेवाली [कायचेष्टायां] कायचेष्टामें [छेदः जायते] छेद होता

---

१. मुनिके (मुनित्वोचित) शुद्धोपयोग वह अन्तरंग अथवा निश्चयप्रयत्न है, और उस शुद्धोपयोगदशामें प्रवर्तमान (हठरहित) देहचेष्टादि संबन्धी शुभोपयोग वह बहिरंग अथवा व्यवहारप्रयत्न है। [जहाँ शुद्धोपयोगदशा नहीं होती वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग व्यवहार–प्रयत्नको भी प्राप्त नहीं होता।]

जो छेद थाय प्रयत्न सह कृत कायनी चेष्टा विषे,
आलोचनापूर्वक क्रिया कर्तव्य छे ते साधुने. २११.
छेदोपयुक्त मुनि, श्रमण व्यवहारविज्ञ कने जई,
निज दोष आलोचन करी, श्रमणोपदिष्ट करे विधि. २१२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

द्विविधः किल संयमस्य छेदः, बहिरंगोऽन्तरंगश्च। तत्र कायचेष्टामात्राधिकृतो बहिरंगः, उपयोगाधिकृतः पुनरन्तरंगः। तत्र यदि सम्यगुपयुक्तस्य श्रमणस्य प्रयत्नसमारब्धायाः कायचेष्टायाः कथंचिद्बहिरंगच्छेदो जायते तदा तस्य सर्वथान्तरंगच्छेदवर्जितत्वादालोचनपूर्विकया क्रिययैव प्रतीकारः। यदा तु स एवोपयोगाधिकृतच्छेदत्वेन साक्षाच्छेद एवोपयुक्तो भवति तदा जिनोदितव्यवहारविधिविदग्धश्रमणाश्रययालोचनपूर्वकतदुपदिष्टानुष्ठानेन प्रतिसन्धानम्॥२११।२१२॥

स्थानादिप्रारब्धायाम्। **तस्स पुणो आलोयणपुव्विया किरिया** तस्य पुनरालोचनपूर्विका क्रिया। तदाकाले तस्य तपोधनस्य स्वस्थभावस्य बहिरङ्गसहकारिकारणभूता प्रतिक्रमणलक्षणालोचनपूर्विका पुनः क्रियैव प्रायश्चित्तं प्रतिकारो भवति, न चाधिकम्। कस्मादिति चेत्। अभ्यन्तरे स्वस्थभावचलनाभावादिति प्रथमगाथा गता। **छेदपउत्तो समणो** छेदे प्रयुक्तः श्रमणो, निर्विकारस्वसंवित्तिभावनाच्युतिलक्षणच्छेदेन यदि चेत् प्रयुक्तः सहितः श्रमणो भवति। **समणं ववहारिणं जिणमदम्हि** श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते, तदा जिनमते व्यवहारज्ञं प्रायश्चित्तकुशलं **श्रमणं आसेज्ज** आसाद्य प्राप्य, न केवलमासाद्य **आलोचित्ता** निःप्रपञ्चभावेनालोच्य दोषनिवेदनं कृत्वा। **उवदिट्ठं तेण कायव्वं** उपदिष्टं तेन कर्तव्यम्। तेन प्रायश्चित्तपरिज्ञानसहिताचार्येण निर्विकारस्वसंवित्तिभावनानुकूलं यदुपदिष्टं प्रायश्चित्तं तत्कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यम्॥२११।२१२॥ एवं गुरुव्यवस्थाकथनरूपेण प्रथमगाथा, तथैव प्रायश्चित्तकथनार्थं गाथाद्वय-

---

है तो [**तस्य पुनः**] उसे तो [**आलोचनापूर्विका क्रिया**] [१]आलोचनापूर्वक क्रिया करना चाहिये।

[**श्रमणः छेदोपयुक्तः**] (किन्तु) यदि श्रमण छेदमें उपयुक्त हुआ हो तो उसे [**जिनमत**] जैनमतमें [**व्यवहारिणं**] व्यवहारकुशल [**श्रमणं आसाद्य**] श्रमणके पास जाकर [**आलोच्य**] [२]आलोचना करके (अपने दोषका निवेदन करके), [**तेन उपदिष्टं**] वे जैसा उपदेश दें वह [**कर्तव्यम्**] करना चाहिये॥२११-२१२॥

टीका :—संयमका छेद दो प्रकारका है; बहिरंग और अन्तरंग। उसमें मात्र कायचेष्टा संबंधी वह बहिरंग है और उपयोग संबंधी वह अन्तरंग है। उसमें, यदि भलीभाँति उपर्युक्त श्रमणके प्रयत्नकृत कायचेष्टाका कथंचित् बहिरंग छेद होता है, तो वह सर्वथा अन्तरंग छेदसे रहित है इसलिये आलोचनापूर्वक क्रियासे ही उसका प्रतीकार (इलाज) होता है। किन्तु यदि वही श्रमण उपयोगसंबंधी छेद होनेसे साक्षात् छेदमें ही उपयुक्त होता है तो जिनोक्त व्यवहारविधिमें कुशल श्रमणके आश्रयसे, आलोचनापूर्वक, उनके द्वारा उपदिष्ट अनुष्ठान द्वारा (संयमका) प्रतिसंधान होता है।

---

१. आलोचना = सूक्ष्मतासे देख लेना वह, सूक्ष्मतासे विचारना वह, ठीक ध्यानमें लेना वह।

२. निवेदन; कथन। [२११ वीं गाथामें आलोचनाका प्रथम अर्थ घटित होता है और २१२ वीं में दूसरा]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् परद्रव्यप्रतिबन्धाः प्रतिषेध्या इत्युपदिशति—

अधिवासे व विवासे छेदविहूणो भवीय सामण्णे।
समणो विहरदु णिच्चं परिहरमाणो णिबंधाणि॥२१३॥

अधिवासे वा विवासे छेदविहीनो भूत्वा श्रामण्ये।
श्रमणो विहरतु नित्यं परिहरमाणो निबन्धान्॥२१३॥

मिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम्। अथ निर्विकारश्रामण्यच्छेदजनकान्परद्रव्यानुबन्धान्निषेधयति–**विहरदु** विहरतु विहारं करोतु। स कः। **समणो** शत्रुमित्रादिसमचित्तश्रमणः। **णिच्चं** नित्यं सर्वकालम्। किं कुर्वन्सन्। **परिहरमाणो** परिहरन्सन्। कान्। **णिबंधाणि** चेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्येष्वनुबन्धान्। क्व विहरतु। **अधिवासे** अधिकृतगुरुकुलवासे निश्चयेन स्वकीयशुद्धात्मवासे वा, **विवासे** गुरुविरहितवासे वा। किं कृत्वा। **सामण्णे** निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रे **छेदविहूणो**

भावार्थ :—यदि मुनिके स्वस्थभावलक्षण प्रयत्न सहित की जानेवाली अशन–शयन–गमनादिक शारीरिक चेष्टासंबंधी छेद होता है तो उस तपोधनके स्वस्थभावकी बहिरंग सहकारीकारणभूत प्रतिक्रमणस्वरूप आलोचनापूर्वक क्रियासे ही उसका प्रतीकार–प्रायश्चित्त हो जाता है, क्योंकि वह स्वस्थभावसे चलित नहीं हुआ है। किन्तु यदि उसके निर्विकार स्वसंवेदनभावनासे च्युतिस्वरूप छेद होता है, तो उसे जिनमतमें व्यवहारज्ञ–प्रायश्चित्तकुशल–आचार्यके निकट जाकर, निष्प्रपंचभावसे दोषका निवेदन करके, वे आचार्य निर्विकार स्वसंवेदनभावनाके अनुकूल जो कुछ भी प्रायश्चित्त उपदेशें वह करना चाहिये॥२११–२१२॥

अब, श्रामण्यके छेदके आयतन होनेसे [१]परद्रव्य–प्रतिबंध निषेध करने योग्य हैं, ऐसा उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अधिवासे**] अधिवासमें (आत्मवासमें अथवा गुरुओंके सहवासमें) वसते हुए [**वा**] या [**विवासे**] विवासमें (गुरुओंसे भिन्न वासमें) वसते हुए, [**नित्यं**] सदा [**निबंधान्**] (परद्रव्यसम्बन्धी) प्रतिबंधोंको [**परिहरमाणः**] परिहरण करता हुआ [**श्रामण्ये**] श्रामण्यमें [**छेदविहीनः भूत्वा**] छेदविहीन होकर [**श्रमणः विहरतु**] श्रमण विहरो॥२१३॥

---

१. परद्रव्य–प्रतिबंध = परद्रव्योंमें रागादिपूर्वक संबंध करना; परद्रव्योंमें बँधना–रुकना; लीन होना; परद्रव्योंमें रुकावट।

प्रतिबंध परित्यागी सदा अधिवास अगर विवासमां,
मुनिराज विहरो सर्वदा थई छेदहीन श्रामण्यमां. २१३.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

सर्व एव हि परद्रव्यप्रतिबन्धा उपयोगोपरंजकत्वेन निरुपरागोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य छेदायतनानि; तदभावादेवाछिन्नश्रामण्यम्। अत आत्मन्येवात्मनो नित्याधिकृत्य वासे वा गुरुत्वेन गुरूनधिकृत्य वासे वा गुरुभ्यो विशिष्टे वासे वा नित्यमेव प्रतिषेधयन् परद्रव्यप्रतिबन्धान् श्रामण्ये छेदविहीनो भूत्वा श्रमणो वर्तताम्॥२१३॥

अथ श्रामण्यस्य परिपूर्णतायतनत्वात् स्वद्रव्य एव प्रतिबन्धो विधेय इत्युपदिशति—

चरदि णिबद्धो णिच्चं समणो णाणम्हि दंसणमुहम्हि।
पयदो मूलगुणेसु य जो सो पडिपुण्णसामण्णो॥२१४॥

चरति निबद्धो नित्यं श्रमणो ज्ञाने दर्शनमुखे।
प्रयतो मूलगुणेषु च यः स परिपूर्णश्रामण्यः॥२१४॥

भवीय छेदविहीनो भूत्वा, रागादिरहितनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रच्युतिरूपच्छेदरहितो भूत्वा। तथाहि—गुरुपार्श्वे यावन्ति शास्त्राणि तावन्ति पठित्वा तदनन्तरं गुरुं पृष्ट्वा च समशीलतपोधनैः सह, भेदाभेदरत्नत्रयभावनया भव्यानामानन्दं जनयन्, तपःश्रुतसत्त्वैकत्वसन्तोषभावनापञ्चकं भावयन्,

---

टीका :—वास्तवमें सभी परद्रव्य-प्रतिबंध उपयोगके [१]उपरंजक होनेसे [२]निरुपराग उपयोगरूप श्रामण्यके छेदके आयतन हैं; उनके अभावसे ही अछिन्न श्रामण्य होता है। इसलिये आत्मामें ही आत्माको सदा [३]अधिकृत करके (आत्माके भीतर) बसते हुए अथवा गुरुरूपसे गुरुओंको [४]अधिकृत करके (गुरुओंके सहवासमें) निवास करते हुए, या गुरुओंसे विशिष्ट-भिन्न वासमें वसते हुए, सदा ही परद्रव्यप्रतिबंधोंको निषेधता (परिहरता) हुआ श्रामण्यमें छेदविहीन होकर श्रमण वर्तो॥२१३॥

अब, श्रामण्यकी परिपूर्णताका आयतन होनेसे स्वद्रव्यमें ही प्रतिबंध (सम्बन्ध लीनता) करने योग्य है, ऐसा उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यः श्रमणः] जो श्रमण [नित्यं] सदा [ज्ञाने दर्शनमुखे] ज्ञानमें और दर्शनादिमें [निबद्धः] प्रतिबद्ध [च] तथा [मूलगुणेषु प्रयतः] मूलगुणोंमें प्रयत (प्रयत्नशील) [चरति] विचरण करता है, [सः] वह [परिपूर्णश्रामण्यः] परिपूर्ण श्रामण्यवान् है॥२१४॥

---

१. उपरंजक = उपराग करनेवाले, मलिनता-विकार करनेवाले। २. निरुपराग = उपरागरहित; विकाररहित।
३. अधिकृत करके = स्थापित करके; रखकर।
४. अधिकृत करके = अधिकार देकर; स्थापित करके; अंगीकृत करके।

जे श्रमण ज्ञान-दृगादिके प्रतिबद्ध विचरे सर्वदा,
ने प्रयत मूळगुणो विषे, श्रामण्य छे परिपूर्ण त्यां. २१४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

एक एव हि स्वद्रव्यप्रतिबन्ध उपयोगमार्जकत्वेन मार्जितोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य परिपूर्णतायतनं; तत्सद्भावादेव परिपूर्णं श्रामण्यम्। अतो नित्यमेव ज्ञाने दर्शनादौ च प्रतिबद्धेन मूलगुणप्रयततया चरितव्यं; ज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मद्रव्यप्रतिबद्धशुद्धास्तित्वमात्रेण वर्तितव्यमिति तात्पर्यम्॥२१४॥

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् यतिजनासन्नः सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्धोऽपि प्रतिषेध्य इत्युपदिशति—

भत्ते वा खमणे वा आवसधे वा पुणो विहारे वा।
उवधिम्हि वा णिबद्धं णेच्छदि समणम्हि विकधम्हि॥२१५॥

तीर्थकरपरमदेवगणधरदेवादिमहापुरुषाणां चरितानि स्वयं भावयन्, परेषां प्रकाशयंश्च, विहरतीति भावः॥२१३॥ अथ श्रामण्यपरिपूर्णकारणत्वात्स्वशुद्धात्मद्रव्ये निरन्तरमवस्थानं कर्तव्यमित्याख्याति— **चरदि** चरति वर्तते। कथंभूतः। **णिबद्धो** आधीनः, **णिच्चं** नित्यं सर्वकालम्। **सः कः** कर्ता। **समणो** लाभालाभादिसमचित्तश्रमणः। क्व निबद्धः। **णाणम्हि** वीतरागसर्वज्ञप्रणीतपरमागमज्ञाने तत्फलभूत-स्वसंवेदनज्ञाने वा, **दंसणमुहम्हि** दर्शनं तत्त्वार्थश्रद्धानं तत्फलभूतनिजशुद्धात्मोपादेयरुचिरूप-निश्चयसम्यक्त्वं वा तत्प्रमुखेष्वनन्तसुखादिगुणेषु। **पयदो** मूलगुणेसु य प्रयतः प्रयत्नपरश्च। केषु। मूलगुणेषु निश्चयमूलगुणाधारपरमात्मद्रव्ये वा। **जो सो पडिपुण्णसामण्णो** य एवंगुणविशिष्टश्रमणः स परिपूर्णश्रामण्यो भवतीति। अयमत्रार्थः—निजशुद्धात्मभावनारतानामेव परिपूर्णश्रामण्यं भवतीति॥२१४॥

टीका :—एक स्वद्रव्य-प्रतिबंध ही, उपयोगका मार्जन (-शुद्धत्व) करनेवाला होनेसे, मार्जित (-शुद्ध) उपयोगरूप श्रामण्यकी परिपूर्णताका आयतन है; उसके सद्भावसे ही परिपूर्ण श्रामण्य होता है। इसलिये सदा ज्ञानमें और दर्शनादिकमें [१]प्रतिबद्ध रहकर मूलगुणोंमें प्रयत्नशीलतासे विचरना;—ज्ञानदर्शनस्वभाव शुद्धात्मद्रव्यमें प्रतिबद्ध ऐसा शुद्ध अस्तित्वमात्ररूपसे वर्तना, यह तात्पर्य है॥२१४॥

अब, मुनिजनको [२]निकटका [३]सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबंध भी, श्रामण्यके छेदका आयतन होनेसे निषेध्य है, ऐसा उपदेश करते हैं :—

---

१. प्रतिबद्ध = संबद्ध; रुका हुआ; बँधा हुआ; स्थित; स्थिर; लीन।

२. आगम विरुद्ध आहारविहारादि तो मुनिके छूटा हुआ ही होनेसे उसमें प्रतिबंध होना तो मुनिके लिये दूर है; किन्तु आगमकथित आहार विहारादिमें मुनि प्रवर्तमान है इसलिये उसमें प्रतिबंध हो जाना संभवित होनेसे वह प्रतिबंध निकटका है।

३. सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्ध = परद्रव्यमें सूक्ष्म प्रतिबंध।

मुनि क्षपण मांही, निवासस्थान, विहार या भोजन महीं,
उपधि-श्रमण-विकथा महीं प्रतिबंधने इच्छे नहीं. २१५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

भत्ते वा क्षपणे वा आवसथे वा पुनर्विहारे वा।
उपधौ वा निबद्धं नेच्छति श्रमणे विकथायाम्॥२१५॥

श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुमात्रत्वेनादीयमाने भक्ते, तथाविधशरीरवृत्त्यविरोधेन शुद्धात्मद्रव्यनीरंगनिस्तरंगविश्रान्तिसूत्रणानुसारेण प्रवर्तमाने क्षपणे, नीरंगनिस्तरंगान्तरंगद्रव्यप्रसिद्धयर्थमध्यास्यमाने गिरीन्द्रकन्दरप्रभृतावावसथे, यथोक्तशरीरवृत्तिहेतुमार्गणार्थमारभ्य-

---

अथ श्रामण्यछेदकारणत्वात्प्रासुकाहारादिष्वपि ममत्वं निषेधयति—णेच्छदि नेच्छति। कम् णिबद्धं निबद्धमाबद्धम्। क्व। **भत्ते वा** शुद्धात्मभावनासहकारिभूतदेहस्थितिहेतुत्वेन गृह्यमाणे भक्ते वा प्रासुकाहारे, **खमणे वा** इन्द्रियदर्पविनाशकारणभूतत्वेन निर्विकल्पसमाधिहेतुभूते क्षपणे वानशने, **आवसधे वा** परमात्मतत्त्वोपलब्धिसहकारिभूते गिरिगुहाद्यावसथे वा, **पुणो विहारे वा** शुद्धात्मभावनासहकारिभूताहारनीहारार्थव्यवहारार्थव्यवहारे वा पुनर्देशान्तरविहारे वा, **उवधिम्हि** शुद्धोपयोगभावनासहकारिभूतशरीरपरिग्रहे ज्ञानोपकरणादौ वा, **समणम्हि** परमात्मपदार्थविचारसहकारिकारणभूते श्रमणे समशीलसंघातकतपोधने वा, **विकधम्हि** परमसमाधिविघातकश्रृङ्गारवीररागादिकथायां चेति। अयमत्रार्थः—आगमविरुद्धाहारविहारादिषु तावत्पूर्वमेव निषिद्धः, योग्याहारविहारादिष्वपि ममत्वं न कर्तव्यमिति॥२१५॥ एवं संक्षेपेणाचाराराधनादिकथिततपोधनविहारव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले

अन्वयार्थ :—[**भक्ते वा**] मुनि आहारमें, [**क्षपणे वा**] क्षपणमें (उपवासमें), [**आवसथे वा**] आवासमें (निवासस्थानमें), [**पुनः विहारे वा**] और विहारमें [**उपधौ**] उपधिमें (परिग्रहमें), [**श्रमणे**] श्रमणमें (अन्य मुनिमें) [**वा**] अथवा [**विकथायाम्**] [१]विकथामें [**निबद्धं**] प्रतिबन्ध [**न इच्छति**] नहीं चाहता॥२१५॥

टीका :—(१) श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारणभूत शरीरकी [२]वृत्तिके हेतुमात्ररूपसे ग्रहण किया जानेवाला जो आहार, (२) [३]तथाविध शरीरकी वृत्तिके साथ विरोध विना, शुद्धात्मद्रव्यमें [४]नीरंग और निस्तरंग विश्रांतिकी रचनानुसार प्रवर्तमान जो क्षपण (अर्थात् शरीरके टिकनेके साथ विरोध न आये इसप्रकार, शुद्धात्मद्रव्यमें विकाररहित और तरंगरहित स्थिरता होती जाये, तदनुसार प्रवर्तमान अनशनमें), (३) नीरंग और निस्तरंग–अन्तरंग द्रव्यकी प्रसिद्धि (प्रकृष्ट सिद्धि) के लिये सेवन किया जानेवाला जो गिरीन्द्रकन्दरादिक आवसथमें (–उच्च पर्वतकी गुफा इत्यादि निवासस्थानमें), (४) यथोक्त शरीरकी वृत्तिकी कारणभूत भिक्षाके लिये

---

१. छद्मस्थ मुनिके धार्मिक कथा–वार्त्ता करते हुये भी निर्मल चैतन्य विकल्पमुक्त होता है इसलिये अंशतः मलिन होता है, अतः उस धार्मिक कथाको भी विकथा अर्थात् शुद्धात्मद्रव्यसे विरुद्ध कथा कहा है।

२. वृत्ति = निर्वाह; टिकना।

३. तथाविध = वैसा (श्रामण्यपर्यायका सहकारी कारणभूत)

४. नीरंग = नीराग; निर्विकार।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

माणे विहारकर्मणि, श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमाने केवलदेहमात्र उपधौ, अन्योन्यबोध्यबोधकभावमात्रेण कथंचित्परिचिते श्रमणे, शब्दपुद्गलोल्लाससंवलनकश्मलित-चिद्भित्तिभागायां शुद्धात्मद्रव्यविरुद्धायां कथायां चैतेष्वपि तद्विकल्पाचित्रितचित्तभित्तितया प्रतिषेध्यः प्रतिबन्धः ॥२१५॥

अथ को नाम छेद इत्युपदिशति—

अपयत्ता वा चरिया सयणासणठाणचंकमादीसु।
समणस्स सव्वकाले हिंसा सा संतय त्ति मदा॥२१६॥

गाथात्रयं गतम्। अथ शुद्धोपयोगभावनाप्रतिबन्धकच्छेदं कथयति—**मदा मता** सम्मता। का। **हिंसा** शुद्धोपयोगलक्षणश्रामण्यछेदकारणभूता हिंसा। कथंभूता। **संतत्रिय त्ति** संतता निरन्तरेति। का

किये जानेवाले विहारकार्यमें, (५) श्रामण्यपर्यायका सहकारी कारण होनेसे जिसका निषेध नहीं है ऐसे केवल देहमात्र परिग्रहमें, (६) मात्र अन्योन्य [१]बोध्यबोधकरूपसे जिनका कथंचित् परिचय वर्तता है ऐसे श्रमण (अन्य मुनि) में, और (७) शब्दरूप पुद्गलोल्लास (पुद्गलपर्याय) के साथ संबंधसे जिसमें चैतन्यरूपी भित्तिका भाग मलिन होता है, ऐसी शुद्धात्मद्रव्यसे विरुद्ध कथामें भी प्रतिबंध निषेध्य–त्यागने योग्य है अर्थात् उनके विकल्पोंसे भी चित्तभूमिको चित्रित होने देना योग्य नहीं है।

भावार्थ :—आगमविरुद्ध आहारविहारादि तो मुनिने पहले ही छोड़ दिये हैं। अब संयमके निमित्तपनेकी बुद्धिसे मुनिके जो आगमोक्त आहार, अनशन, गुफादिमें निवास, विहार, देहमात्र परिग्रह, अन्य मुनियोंका परिचय और धार्मिक चर्चा–वार्ता पाये जाते हैं, उनके प्रति भी रागादि करना योग्य नहीं है,—उनके विकल्पोंसे भी मनको रँगने देना योग्य नहीं है; इसप्रकार आगमोक्त आहार–विहारादिमें भी प्रतिबंध प्राप्त करना योग्य नहीं है, क्योंकि उससे संयममें छेद होता है॥२१५॥

अब छेद क्या है, (अर्थात् छेद किसे कहते हैं) उसका उपदेश करते हैं :—

---

१. बोध्य वह है जिसे समझाया है अथवा जिसे उपदेश दिया जाता है। और बोधक वह है जो समझाता है, अर्थात् जो उपदेश देता है। मात्र अन्य श्रमणोंसे स्वयंबोध ग्रहण करनेके लिये अथवा अन्य श्रमणोंको बोध देनेके लिये मुनिका अन्य श्रमणके साथ परिचय होता है।

आसन–शयन–गमनादिके चर्या प्रयत्नविहीन जे,
ते जाणवी हिंसा सदा संतानवाहिनी श्रमणने. २१६.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अप्रयता वा चर्या शयनासनस्थानचङ्क्रमणादिषु।
श्रमणस्य सर्वकाले हिंसा सा सन्ततेति मता॥२१६॥

अशुद्धोपयोगो हि छेदः, शुद्धोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य छेदनात्; तस्य हिंसनात् स एव च हिंसा। अतः श्रमणस्याशुद्धोपयोगाविनाभाविनी शयनासनस्थानचंक्रमणादिष्वप्रयता या चर्या सा खलु तस्य सर्वकालमेव सन्तानवाहिनी छेदानर्थान्तरभूता हिंसैव॥२१६॥

हिंसा मता। **चरिया** चर्या चेष्टा। यदि चेत् कथंभूता। **अपयत्ता वा** अप्रयला वा, निःकषायस्वसंवित्तिरूपप्रयत्नरहिता संक्लेशसहितेत्यर्थः। केषु विषयेषु। **सयणासणठाणचंकमादीसु** शयनासनस्थानचङ्क्रमणस्वाध्यायतपश्चरणादिषु। कस्य। **समणस्स** श्रमणस्य तपोधनस्य। क्व। **सव्वकाले** सर्वकाले। अयमत्रार्थः—बाह्यव्यापाररूपाः शत्रवस्तावत्पूर्वमेव त्यक्तास्तपोधनैः, अशनशयनादिव्यापारैः पुनस्त्यक्तुं नायाति। ततः कारणादन्तरङ्गक्रोधादिशत्रुनिग्रहार्थं तत्रापि संक्लेशो न कर्तव्य इति॥२१६॥ अथान्तरङ्गबहिरङ्गहिंसारूपेण द्विविधच्छेदमाख्याति—**मरदु व जियदु व जीवो, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा** म्रियतां वा जीवतु वा जीवः, प्रयत्नरहितस्य निश्चिता हिंसा भवति; बहिरङ्गान्यजीवस्य मरणेऽमरणे

अन्वयार्थ :—[**श्रमणस्य**] श्रमणके [**शयनासनस्थानचंक्रमणादिषु**] शयन, आसन (बैठना), स्थान (खड़े रहना), गमन इत्यादिमें [**अप्रयता वा चर्या**] जो अप्रयत चर्या है [**सा**] वह [**सर्वकाले**] सदा [**संतता हिंसा इति मता**] सतत हिंसा मानी गई है॥२१६॥

टीका :—अशुद्धोपयोग वास्तवमें छेद है, क्योंकि (उससे) शुद्धोपयोगरूप श्रामण्यका छेदन होता है; और वही (-अशुद्धोपयोग ही) हिंसा है, क्योंकि (उससे) शुद्धोपयोगरूप श्रामण्यका हिंसन (हनन) होता है। इसलिये श्रमणके, जो अशुद्धोपयोगके बिना नहीं होती ऐसे शयन-आसन-स्थान-गमन इत्यादिमें [१]अप्रयत चर्या (आचरण) वह वास्तवमें उसके लिये सर्वकालमें (सदा) ही [२]संतानवाहिनी हिंसा ही है—जो कि छेदसे अनन्यभूत है (अर्थात् छेदसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है।)

भावार्थ :—अशुद्धोपयोगसे शुद्धोपयोगरूप मुनित्व (१) छिदता है (२) हनन होता है, इसलिये अशुद्धोपयोग (१) छेद ही है, (२) हिंसा ही है। और जहाँ सोने, बैठने, खड़े होने, चलने इत्यादिमें अप्रयत आचरण होता है वहाँ नियमसे अशुद्धोपयोग तो होता ही है, इसलिये अप्रयत आचरण छेद ही है, हिंसा ही है॥२१६॥

१. अप्रयत = प्रयत्न रहित, असावधान, असंयमी, निरंकुश, स्वच्छन्दी। [अप्रयत चर्या अशुद्धोपयोगके बिना कभी नहीं होती।]

२. संतानवाहिनी = संतत, सतत, निरंतर, धारावाही, अटूट; [जब तक अप्रयत चर्या है तब तक सदा ही हिंसा सततरूपसे चालू रहती है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथान्तरंगबहिरंगत्वेन छेदस्य द्वैविध्यमुपदिशति—

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स॥२१७॥

म्रियतां वा जीवतु वा जीवोऽयताचारस्य निश्चिता हिंसा।
प्रयतस्य नास्ति बन्धो हिंसामात्रेण समितस्य॥२१७॥

अशुद्धोपयोगोऽन्तरंगच्छेदः, परप्राणव्यपरोपो बहिरंगः। तत्र परप्राणव्यपरोपसद्भावे तदसद्भावे वा तदविनाभाविनाप्रयताचारेण प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगसद्भावस्य सुनिश्चितहिंसा-

---

वा, निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणप्रयत्नरहितस्य निश्चयशुद्धचैतन्यप्राणव्यपरोपणरूपा निश्चयहिंसा भवति। **पयदस्स णत्थि बंधो** बाह्याभ्यन्तरप्रयत्नपरस्य नास्ति बन्धः। केन। **हिंसामेत्तेण** द्रव्यहिंसामात्रेण। कथंभूतस्य पुरुषस्य। **समिदस्स** समितस्य शुद्धात्मस्वरूपे सम्यगितो गतः परिणतः समितस्तस्य समितस्य, व्यवहारेणेर्यादिपञ्चसमितियुक्तस्य च। अयमत्रार्थः—स्वस्थभावनारूपनिश्चियप्राणस्य विनाशकारणभूता रागादिपरिणतिर्निश्चयहिंसा भण्यते, रागाद्युत्पत्तेर्बहिरङ्गनिमित्तभूतः परजीवघातो व्यवहारहिंसेति द्विधा हिंसा ज्ञातव्या। किंतु विशेषः—बहिरङ्गहिंसा भवतु वा मा भवतु, स्वस्थ-

---

अब, छेदके अन्तरंग और बहिरंग ऐसे दो प्रकार बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[जीवः] जीव [म्रियतां वा जीवतु वा] मरे या जिये, [अयताचारस्य] अप्रयत आचारवालेके [हिंसा] (अंतरंग) हिंसा [निश्चिता] निश्चित है; [प्रयतस्य समितस्य] [१]प्रयतके, [२]समितिवान्के [हिंसामात्रेण] (बहिरंग) हिंसामात्रसे [बन्धः] बंध [नास्ति] नहीं है॥२१७॥

टीका :—अशुद्धोपयोग अंतरंग छेद है; परप्राणोंका व्यपरोप (विच्छेद) वह बहिरंगछेद है। इनमेंसे अन्तरंग छेद ही विशेष बलवान है, बहिरंग छेद नहीं; क्योंकि—

---

१. प्रयत = प्रयत्नशील, सावधान, संयमी [प्रयत्नके अर्थके लिये देखो गाथा २११ का फुटनोट]

२. शुद्धात्मस्वरूपमें (मुनित्वोचित) सम्यक् 'इति' अर्थात् परिणति वह निश्चय समिति है। और उस दशामें होनेवाली (हठ रहित) ईर्या-भाषादि सम्बन्धी शुभ परिणति वह व्यवहारसमिति है। [जहाँ शुद्धात्मस्वरूपमें सम्यक्परिणतिरूप दशा नहीं होती वहाँ शुभ परिणति हठ सहित होती है; वह शुभपरिणति व्यवहारसमिति भी नहीं है।]

जीवो–मरो जीव, यत्नहीन आचार त्यां हिंसा नक्की;
समिति–प्रयत्नसहितने नहि बंध हिंसामात्रथी. २१७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

भावप्रसिद्धेः, तथा तद्विनाभाविना प्रयताचारेण प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगासद्भावपरस्य परप्राण-व्यपरोपसद्भावेऽपि बन्धाप्रसिद्ध्या सुनिश्चितहिंसाऽभावप्रसिद्धेश्चान्तरंग एव छेदो बलीयान्, न पुनर्बहिरंगः। एवमप्यन्तरंगच्छेदायतनमात्रत्वाद्बहिरंगच्छेदोऽभ्युपगम्येतैव ॥२१७॥

भावनारूपनिश्चयप्राणघाते सति निश्चयहिंसा नियमेन भवतीति। ततः कारणात्सैव मुख्येति ॥२१७॥ अथ तमेवार्थं दृष्टान्तदार्ष्टान्ताभ्यां दृढयति—

उच्चालियम्हि पाए इरियासमिदस्स णिग्गमत्थाए।
आबाधेज्ज कुलिंगं मरिज्ज तं जोगमासेज्ज ॥★१५॥
ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहुमो य देसिदो समये।
मुच्छा परिग्गहो च्चिय अज्झप्पपमाणदो दिट्ठो ॥★१६॥ (जुम्मं)

परप्राणोंके व्यपरोपका सद्भाव हो या असद्भाव, जो अशुद्धोपयोगके बिना नहीं होता ऐसे [१]अप्रयत आचारसे प्रसिद्ध होनेवाला (-जाननेमें आनेवाला) अशुद्धोपयोगका सद्भाव जिसके पाया जाता है उसके हिंसाके सद्भावकी प्रसिद्धि सुनिश्चित है; और इसप्रकार जो अशुद्धोपयोगके बिना होता है ऐसे [२]प्रयत आचारसे प्रसिद्ध होनेवाला अशुद्धोपयोगका असद्भाव जिसके पाया जाता है उसके, परप्राणोंके व्यपरोपके सद्भावमें भी बंधकी अप्रसिद्धि होनेसे, हिंसाके अभावकी प्रसिद्धि सुनिश्चित है। ऐसा होने पर भी (अर्थात् अंतरंग छेद ही विशेष बलवान है बहिरंग छेद नहीं,—ऐसा होन पर भी) बहिरंग छेद अंतरंग छेदका आयतनमात्र है, इसलिये उसे (बहिरंग छेदको) स्वीकार तो करना ही चाहिये अर्थात् उसे मानना ही चाहिये।

भावार्थ :—शुद्धोपयोगका हनन होना वह अन्तरंग हिंसा—अन्तरंग छेद है, और दूसरेके प्राणोंका विच्छेद होना बहिरंग हिंसा-बहिरंग छेद है।

जीव मरे या न मरे, जिसके अप्रयत आचरण है उसके शुद्धोपयोगका हनन होनेसे अन्तरंग हिंसा होती ही है और इसलिये अन्तरंग छेद होता ही है। जिसके प्रयत आचरण है उसके, परप्राणोंके व्यपरोपरूप बहिरंग हिंसाके—बहिरंग छेदके—सद्भावमें भी, शुद्धोपयोगका हनन नहीं होनेसे अन्तरंग हिंसा नहीं होती और इसलिये अन्तरंग छेद नहीं होता ॥२१७॥

---

१. अशुद्धोपयोगके बिना अप्रयत आचार कभी नहीं होता, इसलिये जिसके अप्रयत आचार वर्तता है उसके अशुद्ध उपयोग अवश्यमेव होता है। इसप्रकार अप्रयत आचारके द्वारा अशुद्ध उपयोग प्रसिद्ध होता है—जाना जाता है।

२. जहाँ अशुद्ध उपयोग नहीं होता वहीं प्रयत आचार पाया जाता है, इसलिये प्रयत आचारके द्वारा अशुद्ध उपयोगका असद्भाव सिद्ध होता है—जाना जाता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ सर्वथान्तरंगच्छेदः प्रतिषेध्य इत्युपदिशति—

अयदाचारो समणो छस्सु वि कायेसु वधकरो त्ति मदो।
चरदि जदं जदि णिच्चं कमलं व जले णिरुवलेवो॥२१८॥

अयताचारः श्रमणः षट्स्वपि कायेषु वधकर इति मतः।
चरति यतं यदि नित्यं कमलमिव जले निरुपलेपः॥२१८॥

यतस्तदविनाभाविना अप्रयताचारत्वेन प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगसद्भावः षट्कायप्राण-व्यपरोपप्रत्ययबन्धप्रसिद्ध्या हिंसक एव स्यात्। यतश्च तद्विनाभाविना प्रयताचारत्वेन

उच्चालियम्हि पाए उत्क्षिप्ते चालिते सति पादे। कस्य। इरियासमिदस्स ईर्यासमितितपोधनस्य। क्व। णिग्गमत्थाए विवक्षितस्थानान्निर्गमस्थाने। आबाधेज्ज आबाध्येत पीड्येत। स कः। कुलिंगं सूक्ष्मजन्तुः। न केवलमाबाध्येत, मरिज्ज म्रियतां वा। किं कृत्वा। तं जोगमासेज्ज तं पूर्वोक्तं पादयोगं पादसंघट्टनमाश्रित्य प्राप्येति। ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहुमो य देसिदो समये न हि तस्य तन्निमित्तो बन्धः सूक्ष्मोऽपि देशितः समये; तस्य तपोधनस्य तन्निमित्तो सूक्ष्मजन्तुघातनिमित्तो बन्धः सूक्ष्मोऽपि स्तोकोऽपि नैव दृष्टः समये परमागमे। दृष्टान्तमाह—मुच्छा परिग्गहो च्चिय मूर्च्छा परिग्रहश्चैव अज्झप्पप्पमाणदो दिट्ठो अध्यात्मप्रमाणतो दृष्ट इति। अयमत्रार्थः—'मूर्च्छा परिग्रहः' इति सूत्रे यथाध्यात्मानुसारेण मूर्च्छारूपरागादिपरिणामानुसारेण परिग्रहो भवति, न च बहिरङ्गपरिग्रहानुसारेण; तथात्र सूक्ष्मजन्तुघातेऽपि यावतांशेन स्वस्थभावचलनरूपा रागादिपरिणतिलक्षणभावहिंसा तावतांशेन बन्धो भवति,

---

अब, सर्वथा अन्तरंग छेद निषेध्य–त्याज्य है ऐसा उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[अयताचारः श्रमणः] अप्रयत आचारवाला श्रमण [षट्सु अपि कायेषु] छहों काय संबंधी [वधकरः] वधका करनेवाला [इति मतः] माननेमें–कहनेमें आया है; [यदि] यदि [नित्यं] सदा [यतं चरति] प्रयतरूपसे आचरण करे तो [जले कमलम् इव] जलमें कमलकी भाँति [निरुपलेपः] निर्लेप कहा गया है॥२१८॥

टीका :—जो अशुद्धोपयोगके बिना नहीं होता ऐसे अप्रयत आचारके द्वारा प्रसिद्ध (ज्ञात) होनेवाला अशुद्धोपयोगका सद्भाव हिंसक ही है, क्योंकि छहकायके प्राणोंके व्यपरोपके आश्रयसे होनेवाले बंधकी प्रसिद्धि है; और जो अशुद्धोपयोगके बिना होता है ऐसे प्रयत आचारसे प्रसिद्ध होनेवाला अशुद्धोपयोगका असद्भाव अहिंसक ही है, क्योंकि परके

मुनि यत्नहीन आचारवंत छ कायनो हिंसक कह्यो;
जलकमलवत् निर्लेप भाख्यो, नित्य यत्नसहित जो. २१८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगासद्भावः परप्रत्ययबन्धलेशस्याप्यभावाज्जलदुर्ललितं कमलमिव निरुपलेपत्व-प्रसिद्धेरहिंसक एव स्यात्। ततस्तैस्तैः सर्वैः प्रकारैरशुद्धोपयोगरूपोऽन्तरंगच्छेदः प्रतिषेध्यो यैर्यैस्तदायतनमात्रभूतः परप्राणव्यपरोपरूपो बहिरंगच्छेदो दूरादेव प्रतिषिद्धः स्यात्॥२१८॥

अथैकान्तिकान्तरंगच्छेदत्वादुपधिस्तद्वत्प्रतिषेध्य इत्युपदिशति—

हवदि व ण हवदि बंधो मदम्हि जीवेऽध कायचेट्ठम्हि।
बंधो धुवमुवधीदो इदि समणा छड्डिया सव्वं॥२१९॥

न च पादसंघट्टनमात्रेण। तस्य तपोधनस्य रागादिपरिणतिलक्षणभावहिंसा नास्ति। ततः कारणाद्बन्धोऽपि नास्तीति॥"१५–१६॥ अथ निश्चयहिंसारूपोऽन्तरङ्गच्छेदः सर्वथा प्रतिषेध्य इत्युपदिशति—अयदाचारो निर्मलात्मानुभूतिभावनालक्षणप्रयत्नरहितत्वेन अयताचारः प्रयत्नरहितः। स कः। समणो श्रमणस्तपोधनः। छस्सु वि कायेसु वधकरो त्ति मदो षट्स्वपि कायेषु वधकरो हिंसाकर इति मतः सम्मतः कथितः। चरदि आचरति वर्तते। कथं। यथा भवति जदं यतं यत्नपरं, जदि यदि चेत्, णिच्चं नित्यं सर्वकालं तदा कमलं व जले णिरुवलेवो कमलमिव जले निरुपलेप इति। एतावता किमुक्तं भवति—शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणशुद्धोपयोगपरिणतपुरुषः षड्जीवकुले लोके विचरन्नपि यद्यपि बहिरङ्गद्रव्यहिंसामात्रमस्ति, तथापि निश्चयहिंसा नास्ति। ततः कारणाच्छुद्ध-परमात्मभावनाबलेन निश्चयहिंसैव सर्वतात्पर्येण परिहर्तव्येति॥२१८॥ अथ बहिरङ्गजीवघाते बन्धो

आश्रयसे होनेवाले लेशमात्र भी बंधका अभाव होनेसे जलमें झूलते हुए कमलकी भाँति निर्लेपताकी प्रसिद्धि है। इसलिये उन–उन सर्वप्रकारसे अशुद्धोपयोगरूप अन्तरंग छेद निषेध्य–त्यागने योग्य है, जिन–जिन प्रकारोंसे उसका आयतनमात्रभूत परप्राणव्यपरोपरूप बहिरंग छेद अत्यन्त निषिद्ध हो।

भावार्थ :—शास्त्रोंमें अप्रयत–आचारवान् अशुद्धोपयोगीको छह कायका हिंसक कहा है और प्रयत–आचारवान् शुद्धोपयोगको अहिंसक कहा है, इसलिये शास्त्रोंमें जिस–जिस प्रकारसे छह कायकी हिंसाका निषेध किया गया हो, उस–उस समस्त प्रकारसे अशुद्धोपयोगका निषेध समझना चाहिये॥२१८॥

अब, उपधि (–परिग्रह) को ऐकान्तिक अन्तरंग–छेदत्व होनेसे उपधि अन्तरंग छेदकी भाँति त्याज्य है, ऐसा उपदेश करते हैं :—

दैहिक क्रिया थकी जीव मरतां बंध थाय–न थाय छे,
परिग्रह थकी ध्रुव बंध, तेथी समस्त छोड्यो योगीओ. २१९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

भवति वा न भवति बन्धो मृते जीवेऽथ कायचेष्टायाम्।
बन्धो ध्रुवमुपधेरिति श्रमणास्त्यक्तवन्तः सर्वम्॥२१९॥

यथा हि कायव्यापारपूर्वकस्य परप्राणव्यपरोपस्याशुद्धोपयोगसद्भावासद्भावाभ्याम-नैकान्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमनैकान्तिकमिष्टं, न खलु तथोपधेः, तस्य सर्वथा तदविनाभावित्व-प्रसिद्ध्यैकान्तिकाशुद्धोपयोगसद्भावस्यैकान्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमैकान्तिकमेव। अत एव भगवन्तोऽर्हन्तः परमाः श्रमणाः स्वयमेव प्रागेव सर्वमेवोपधिं प्रतिषिद्धवन्तः। अत एव चापरैरप्यन्तरंगच्छेदवत्तदनान्तरीयकत्वात्प्रागेव सर्व एवोपधिः प्रतिषेध्यः॥२१९॥

भवति, न भवति वा, परिग्रहे सति नियमेन भवतीति प्रतिपादयति—हवदि व ण हवदि बंधो भवति वा न भवति बन्धः। कस्मिन्सति। मदम्हि जीवे मृते सत्यन्यजीवे। अध अहो। कस्यां सत्याम्। कायचेट्ठम्हि कायचेष्टायाम्। तर्हि कथं बन्धो भवति। बंधो ध्रुवमुवधीदो बन्धो भवति ध्रुवं निश्चितम्। कस्मात्। उपधेः परिग्रहात्सकाशात्। इदि इति हेतोः समणा छड्डिया सव्वं श्रमणा महाश्रमणाः सर्वज्ञाः पूर्वं दीक्षाकाले शुद्धबुद्धैकस्वभावं निजात्मानमेव परिग्रहं कृत्वा, शेषं समस्तं बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहं छर्दितवन्तस्त्यक्तवन्तः। एवं ज्ञात्वा शेषतपोधनैरपि निजपरमात्मपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा, शेषः सर्वोऽपि परिग्रहो मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च त्यजनीय इति। अत्रेदमुक्तं भवति–शुद्धचैतन्यरूपनिश्चय-प्राणे रागादिपरिणामरूपनिश्चयहिंसया पातिते सति नियमेन बन्धो भवति। परजीवघाते पुनर्भवति वा

अन्वयार्थ :—[**अथ**] अब (उपधिके संबंधमें ऐसा है कि), [**कायचेष्टायाम्**] कायचेष्टापूर्वक [जीवे मृते] जीवके मरने पर [**बन्धः**] बंध [**भवति**] होता है [**वा**] अथवा [**न भवति**] नहीं होता; [**उपधेः**] (किन्तु) उपधिसे–परिग्रहसे [**ध्रुवम् बंधः**] निश्चय ही बंध होता है; [**इति**] इसलिये [**श्रमणाः**] श्रमणों (अर्हन्तदेवों) ने [**सर्व**] सर्व परिग्रहको [**त्यक्तवन्तः**] छोड़ा है॥२१९॥

टीका :—जैसे कायव्यापारपूर्वक परप्राणव्यपरोपको अशुद्धोपयोगके सद्भाव और असद्भावके द्वारा अनैकांतिक बंधरूप होनेसे उसे (कायव्यापारपूर्वक परप्राणव्यपरोपको) छेदपना [१]अनैकांतिक माना गया है, वैसा उपधि–परिग्रहका नहीं है। परिग्रह सर्वथा अशुद्धोपयोगके बिना नहीं होता, ऐसा जो परिग्रहका सर्वथा अशुद्धोपयोगके साथ अविनाभावित्व है उससे प्रसिद्ध होनेवाले [२]ऐकान्तिक अशुद्धोपयोगके सद्भावके कारण परिग्रह तो ऐकान्तिक बंधरूप है, इसलिये उसे (-परिग्रहको) छेदपना ऐकान्तिक ही है। इसीलिये भगवन्त अर्हन्तोंने—परम श्रमणोंने—स्वयं ही पहले ही सर्व परिग्रहको छोड़ा है; और इसीलिये दूसरोंको भी, अन्तरंग छेदकी भाँति प्रथम ही सर्व परिग्रह छोड़ने योग्य है, क्योंकि वह (परिग्रह) अन्तरंग छेदके बिना नहीं होता।

---

१. अनैकान्तिक = अनिश्चित; नियमरूप न हो; ऐकांतिक न हो।

२. ऐकान्तिक = निश्चित; अवश्यंभावी; नियमरूप।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

*वक्तव्यमेव किल यत्तदशेषमुक्त-
मेतावतैव यदि चेतयतेऽत्र कोऽपि।
व्यामोहजालमतिदुस्तरमेव नूनं
निश्चेतनस्य वचसामतिविस्तरेऽपि॥१४॥

न भवतीति नियमो नास्ति, परद्रव्ये ममत्वरूपमूर्च्छापरिग्रहेण तु नियमेन भवत्येवेति॥२१९॥ एवं भावहिंसाव्याख्यानमुख्यत्वेन पञ्चमस्थले गाथाषट्कं गतम्। इति पूर्वोक्तक्रमेण 'एवं पणमिय सिद्धे' इत्याद्येकविंशतिगाथाभिः स्थलपञ्चकेनोत्सर्गचारित्रव्याख्याननामा प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः। अतः परं चारित्रस्य देशकालापेक्षयापहृतसंयमरूपेणापवादव्याख्यानार्थं पाठक्रमेण त्रिंशद्गाथाभिर्द्वितीयोऽन्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र चत्वारि स्थलानि भवन्ति। तस्मिन्प्रथमस्थले निर्ग्रन्थमोक्षमार्गस्थापनामुख्यत्वेन 'ण हि णिरवेक्खो चागो' इत्यादि गाथापञ्चकम्। अत्र टीकायां गाथात्रयं नास्ति। तदनन्तरं सर्वसावद्यप्रत्याख्यानलक्षणसामायिकसंयमासमर्थानां यतीनां संयमशौचज्ञानोपकरणनिमित्तमपवादव्याख्यानमुख्यत्वेन 'छेदो जेण ण विज्जदि' इत्यादि सूत्रत्रयम्। तदनन्तरं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणप्रधानत्वेन 'पेच्छदि ण हि इह लोगं' इत्याद्येकादश गाथा भवन्ति। ताश्च अमृतचन्द्रटीकायां न सन्ति। ततः परं सर्वोपेक्षासंयमासमर्थस्य तपोधनस्य देशकालापेक्षया किंचित्संयमसाधकशरीरस्य

भावार्थ :—अशुद्धोपयोगका असद्भाव हो, तथापि कायकी हलनचलनादि क्रिया होनेसे परजीवोंके प्राणोंका घात हो जाता है। इसलिये कायचेष्टापूर्वक परप्राणोंके घातसे बंध होनेका नियम नहीं है;—अशुद्धोपयोगके सद्भावमें होनेवाले कायचेष्टापूर्वक परप्राणोंके घातसे तो बंध होता है, और अशुद्धोपयोगके असद्भावमें होनेवाले कायचेष्टापूर्वक परप्राणोंके घातसे बंध नहीं होता; इसप्रकार कायचेष्टापूर्वक होनेवाले परप्राणोंके घातसे बंधका होना अनैकान्तिक होनेसे उसके छेदपना अनैकान्तिक है—नियमरूप नहीं है।

जैसे भावके बिना भी परप्राणोंका घात हो जाता है, उसीप्रकार भाव न हो तथापि परिग्रहका ग्रहण हो जाय, ऐसा कभी नहीं हो सकता। जहाँ परिग्रहका ग्रहण होता है वहाँ अशुद्धोपयोगका सद्भाव अवश्य होता ही है। इसलिये परिग्रहसे बंधका होना ऐकांतिक–निश्चित–नियमरूप है। इसलिये परिग्रहके छेदपना ऐकान्तिक है। ऐसा होनेसे ही परम श्रमण ऐसे अर्हन्त भगवन्तोंने पहलेसे ही सर्व परिग्रहका त्याग किया है और अन्य श्रमणोंको भी पहलेसे ही सर्व परिग्रहका त्याग करना चाहिये॥२१९॥

[अब, 'कहने योग्य सब कहा गया है' इत्यादि कथन श्लोक द्वारा किया जाता है।]

[**अर्थ**] :—जो कहने योग्य ही था वह अशेषरूपसे कहा गया है, इतने मात्रसे ही यदि यहाँ कोई चेत जाय–समझले तो, (अन्यथा) वाणीका अतिविस्तार किया जाय तथापि निश्चेतन (-जड़वत्, नासमझ) को व्यामोहका जाल वास्तवमें अति दुस्तर है।

★ वसंतातिलका छंद

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथान्तरंगच्छेदप्रतिषेध एवायमुपधिप्रतिषेध इत्युपदिशति—

ण हि णिरवेक्खो चागो ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी।
अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिदो॥२२०॥

न हि निरपेक्षस्त्यागो न भवति भिक्षोराशयविशुद्धिः।
अविशुद्धस्य च चित्ते कथं नु कर्मक्षयो विहितः॥२२०॥

न खलु बहिरंसंगद्भावे तुषसद्भावे तण्डुलगताशुद्धत्वस्येवाशुद्धोपयोगरूपस्यान्तरंगच्छेदस्य प्रतिषेधः, तद्भावे च न शुद्धोपयोगमूलस्य कैवल्यस्योपलम्भः। अतोऽशुद्धोप-

---

निरवद्याहारादिसहकारिकारणं ग्राह्यमिति पुनरप्यपवादविशेषव्याख्यानमुख्यत्वेन 'उवयरणं जिणमग्गे' इत्याद्येकादशगाथा भवन्ति। अत्र टीकायां गाथाचतुष्टयं नास्ति। एवं मूलसूत्राभिप्रायेण त्रिंशद्गाथाभिः, टीकापेक्षया पुनर्द्वादशगाथाभिः द्वितीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तथाहि—अथ भावशुद्धिपूर्वकबहिरङ्गपरिग्रहपरित्यागे कृते सति अभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागः कृत एव भवतीति निर्दिशति—**ण हि णिरवेक्खो चागो** न हि निरपेक्षस्त्यागः यदि चेत्, परिग्रहत्यागः सर्वथा निरपेक्षो न भवति किंतु किमपि वस्त्रपात्रादिकं ग्राह्यमिति भवता भण्यते, तर्हि हे शिष्य **ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी** न भवति भिक्षोराशयविशुद्धिः, तदा सापेक्षपरिणामे सति भिक्षोस्तपोधनस्य चित्तशुद्धिर्न भवति। **अविसुद्धस्य हि चित्ते** शुद्धात्मभावनारूपशुद्धिरहितस्य तपोधनस्य चित्ते मनसि हि स्फुटं **कहं तु कम्मक्खओ विहिदो** कथं तु कर्मक्षयो विहितः उचितो, न कथमपि। अनेनैतदुक्तं भवति—यथा बहिरङ्गतुषसद्भावे सति तण्डुलस्याभ्यन्तरशुद्धिं कर्तुं नायाति तथा विद्यमाने वा बहिरङ्गपरिग्रहाभिलाषे सति निर्मलशुद्धात्मानुभूतिरूपां चित्तशुद्धिं कर्तुं नायाति। यदि पुनर्विशिष्टवैराग्य-

---

अब, इस उपधि (परिग्रह) का निषेध वह अंतरंग छेदका ही निषेध है, ऐसा उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**निरपेक्षः त्यागः न हि**] यदि निरपेक्ष (किसी भी वस्तुकी अपेक्षारहित) त्याग न हो तो [**भिक्षोः**] भिक्षुके [**आशयविशुद्धिः**] भावकी विशुद्धि [**न भवति**] नहीं होती; [**च**] और [**चित्ते अविशुद्धस्य**] जो भावमें अविशुद्ध है उसके [**कर्मक्षयः**] कर्मक्षय [**कथं नु**] कैसे [**विहितः**] हो सकता है? ॥२२०॥

टीका :—जैसे छिलकेके सद्भावमें चावलोंमे पाई जानेवाली (रक्ततारूप) अशुद्धताका त्याग (-नाश, अभाव) नहीं होता, उसीप्रकार बहिरंग संगके सद्भावमें

निरपेक्ष त्याग न होय तो नहि भावशुद्धि भिक्षुने,
ने भावमां अविशुद्धने क्षय कर्मनो कइ रीत बने? २२०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

योगरूपस्यान्तरंगच्छेदस्य प्रतिषेधं प्रयोजनमपेक्ष्योपधेर्विधीयमानः प्रतिषेधोऽन्तरंगच्छेदप्रतिषेध एव स्यात् ।।२२०।।

अथैकान्तिकान्तरंगच्छेदत्वमुपधेर्विस्तरेणोपदिशति—

किध तम्हि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि।।२२१।।

पूर्वकपरिग्रहत्यागो भवति तदा चित्तशुद्धिर्भवत्येव, ख्यातिपूजालाभनिमित्तत्यागे तु न भवति।।२२०।। अथ तमेव परिग्रहत्यागं द्रढयति—

गेण्हदि व चेलखंडं भायणमत्थि त्ति भणिदमिह सुत्ते।
जदि सो चत्तालंबो हवदि कहं वा अणारंभो।।★१७।।

वत्थक्खंडं दुद्दियभायणमण्णं च गेण्हदि णियदं।
विज्जदि पाणारंभो विक्खेवो तस्स चित्तम्मि।।★१८।।

गेण्हइ विधुणइ धोवइ सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता।
पत्तं व चेलखंडं बिभेदि परदो य पालयदि।।★१९।।

गेण्हदि व चेलखंडं गृह्णाति वा चेलखण्डं वस्त्रखण्डं, भायणं भिक्षाभाजनं वा अत्थि त्ति भणिदं अस्तीति भणितमास्ते। क्व। इह सुत्ते इह विवक्षितागमसूत्रे जदि यदि चेत्। सो चत्तालंबो हवदि कहं निरालम्बनपरमात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् स पुरुषो बहिर्द्रव्यालम्बनरहितः कथं भवति, न कथमपि; वा अणारंभो निःक्रियनिरारम्भनिजात्मतत्त्वभावनारहितत्वेन निरारम्भो वा कथं भवति, किंतु सारम्भ एव; इति प्रथमगाथा। वत्थक्खंडं दुद्दियभायणं वस्त्रखण्डं दुग्धिकाभाजनं अण्णं च गेण्हदि अन्यच्च गृह्णाति कम्बलमृदुशयनादिकं यदि चेत्। तदा किं भवति। णियदं विज्जदि पाणारंभो निजशुद्धचैतन्य-

---

अशुद्धोपयोगरूप अंतरंग छेदका त्याग नहीं होता और उसके सद्भावमें शुद्धोपयोगमूलक कैवल्य (मोक्ष) की उपलब्धि नहीं होती। (इससे ऐसा कहा गया है कि) अशुद्धोपयोगरूप अंतरंग छेदके निषेधरूप प्रयोजनकी उपेक्षा रखकर विहित (-आदेश) किया जानेवाला उपधिका निषेध वह अन्तरंग छेदका ही निषेध है।।२२०।।

अब, 'उपधि वह ऐकान्तिक अन्तरंग छेद है' ऐसा विस्तारसे उपदेश करते हैं :—

आरंभ, अणसंयम अने मूर्छा न त्यां–अे कयम बने ?
परद्रव्यरत जे होय ते कई रीत साधे आत्मने ? २२१.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

कथं तस्मिन्नास्ति मूर्च्छा आरम्भो वा असंयमस्तस्य।
तथा परद्रव्ये रतः कथमात्मानं प्रसाधयति।२२१॥

उपधिसद्भावे हि ममत्वपरिणामलक्षणाया मूर्च्छायास्तद्विषयकर्मप्रक्रमपरिणामलक्षणस्यारम्भस्य शुद्धात्मरूपहिंसनपरिणामलक्षणस्यासंयमस्य वावश्यम्भावित्वात्तथोपधिद्वितीयस्य परद्रव्यरतत्वेन शुद्धात्मद्रव्यप्रसाधकत्वाभावाच्च ऐकान्तिकान्तरंगच्छेदत्वमुपधेरवधार्यत एव। इदमत्र तात्पर्यमेवंविधत्वमुपधेरवधार्य स सर्वथा संन्यस्तव्यः॥२२१॥

लक्षणप्राणविनाशरूपो परजीवप्राणविनाशरूपो वा नियतं निश्चितं प्राणारम्भः प्राणवधो विद्यते, न केवलं प्राणारम्भः, विक्खेवो तस्स चित्तम्मि अविक्षिप्तचित्तपरमयोगरहितस्य सपरिग्रहपुरुषस्य विक्षेपस्तस्य विद्यते चित्ते मनसीति। इति द्वितीयगाथा। गेण्हइ स्वशुद्धात्मग्रहणशून्यः सन् गृह्णाति किमपि बहिर्द्रव्यं; विधुणइ कर्मधूलिं विहाय बहिरङ्गधूलिं विधूनोति विनाशयति; धोवइ निर्मलपरमात्मतत्त्वमलजनकरागादिमलं विहाय बहिरङ्गमलं धौति प्रक्षालयति; सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता निर्विकल्पध्यानातपेन संसारनदीशोषणमकुर्वन् शोषयति शुष्कं करोति यतं तु यत्नपरं तु यथा भवति। किं कृत्वा। आतपे निक्षिप्य। किं तत्। पत्तं व चेलखंडं पात्रं वस्त्रखण्डं वा। बिभेदि निर्भयशुद्धात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् बिभेति भयं करोति। कस्मात्सकाशात्। परदो य परतश्चौरादेः। पालयदि परमात्मभावनां न पालयन्न रक्षन्परद्रव्यं किमपि पालयतीति तृतीयगाथा॥"१७-१९॥ अथ सपरिग्रहस्य नियमेन चित्तशुद्धिर्नश्यतीति विस्तरेणाख्याति—किध तम्हि णत्थि मुच्छा परद्रव्यममत्वरहितचिच्चमत्कारपरिणतेर्विसदृशा मूर्च्छा कथं

अन्वयार्थ :—[**तस्मिन्**] उपधिके सद्भावमें [**तस्य**] उस (भिक्षु) के [**मूर्च्छा**] मूर्छा, [**आरम्भः**] आरंभ [**वा**] या [**असंयमः**] असंयम [**नास्ति**] न हो [**कथं**] यह कैसे हो सकता है? (कदापि नहीं हो सकता), [**तथा**] तथा [**परद्रव्ये रतः**] जो परद्रव्यमें रत हो वह [**आत्मानं**] आत्माको [**कथं**] कैसे [**प्रसाधयति**] साध सकता है? ॥२२१॥

टीका :—उपधिके सद्भावमें, (१) ममत्व-परिणाम जिसका लक्षण है ऐसी मूर्छा, (२) उपधि संबंधी [१]कर्मप्रक्रमके परिणाम जिसका लक्षण है ऐसा आरम्भ, अथवा (३) शुद्धात्मस्वरूपकी हिंसारूप परिणाम जिसका लक्षण है ऐसा असंयम अवश्यमेव होता ही है; तथा उपधि जिसका द्वितीय हो (अर्थात् आत्मासे अन्य ऐसा परिग्रह जिसने ग्रहण किया हो) उसके परद्रव्यमें रतपना (-लीनता) होनेके कारण शुद्धात्मद्रव्यकी साधकताका अभाव होता है; इससे उपधिके ऐकान्तिक अन्तरंग छेदपना निश्चित होता ही है।

यहाँ यह तात्पर्य है कि—'उपधि ऐसी है, (परिग्रह वह अन्तरंग छेद ही है), ऐसा निश्चित करके उसे सर्वथा छोड़ना चाहिये॥२२१॥

---

१. कर्मप्रक्रम = काममें युक्त होना; कामकी व्यवस्था।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ कस्यचित्कचित्कदाचित्कथंचित्कश्चिदुपधिरप्रतिषिद्धोऽप्यस्तीत्यपवादमुपदिशति—

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता॥२२२॥

छेदो येन न विद्यते ग्रहणविसर्गेषु सेवमानस्य।
श्रमणस्तेनेह वर्ततां कालं क्षेत्रं विज्ञाय॥२२२॥

आत्मद्रव्यस्य द्वितीयपुद्गलद्रव्याभावात्सर्व एवोपधिः प्रतिषिद्ध इत्युत्सर्गः। अयं तु

नास्ति, अपि त्वस्त्येव। क्व। तस्मिन् परिग्रहाकाङ्क्षितपुरुषे। आरंभो वा मनोवचनकायक्रियारहित-परमचैतन्यप्रतिबन्धक आरम्भो वा कथं नास्ति, किन्त्वस्त्येव; असंजमो तस्स शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणा-संयमो वा कथं नास्ति, किन्त्वस्त्येव तस्य सपरिग्रहस्य। तध परदव्वम्मि रदो तथैव निजात्मद्रव्यात्परद्रव्ये रतः कधमप्पाणं पसाधयदि स तु सपरिग्रहपुरुषः कथमात्मानं प्रसाधयति, न कथमपीति॥२२१॥ एवं श्वेताम्बरमतानुसारिशिष्यसम्बोधनार्थं निर्ग्रन्थमोक्षमार्गस्थापनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथापञ्चकं गतम्। अथ कालापेक्षया परमोपेक्षासंयमशक्त्यभावे सत्याहारसंयमशौचज्ञानोपकरणादिकं किमपि ग्राह्यमित्यपवादमुपदिशति—छेदो जेण ण विज्जदि छेदो येन न विद्यते। येनोपकरणेन शुद्धोपयोग-लक्षणसंयमस्य छेदो विनाशो न विद्यते। कयोः। गहणविसग्गेसु ग्रहणविसर्गयोः। यस्योप-करणस्यान्यवस्तुनो वा ग्रहणे स्वीकारे विसर्जने त्यागे। किं कुर्वतः तपोधनस्य। सेवमाणस्स तदुपकरणं सेवमानस्य। समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता श्रमणस्तेनोपकरणेनेह लोके वर्तताम्। किं कृत्वा। कालं क्षेत्रं च विज्ञायेति। अयमत्र भावार्थः—कालं पञ्चमकालं शीतोष्णादिकालं वा, क्षेत्रं भरतक्षेत्रं मनुषजाङ्गलादिक्षेत्रं वा, विज्ञाय येनोपकरणेन स्वसंवित्तिलक्षणभावसंयमस्य बहिरङ्गद्रव्यसंयमस्य वा छेदो न भवति तेन वर्तत इति॥२२२॥ अथ पूर्वसूत्रोदितोपकरणस्वरूपं दर्शयति—अप्पडिकुट्ठं उवधिं

अब, 'किसीके कहीं कभी किसी प्रकार कोई उपधि अनिषिद्ध भी है' ऐसे अपवादका उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[ग्रहणविसर्गेषु] जिस उपधिके (आहार-नीहारादिके) ग्रहण-विसर्जनमें सेवन करनेमें [येन] जिससे [सेवमानस्य] सेवन करनेवालेके [छेदः] छेद [न विद्यते] नहीं होता, [तेन] उस उपधियुक्त, [कालं क्षेत्रं विज्ञाय] काल क्षेत्रको जानकर, [इह] इस लोकमें [श्रमणः] श्रमण [वर्ततां] भले वर्ते॥२२२॥

टीका :—आत्मद्रव्यके द्वितीय पुद्गलद्रव्यका अभाव होनेसे समस्त ही उपधि निषिद्ध

ग्रहणे विसर्गे सेवतां नहि छेद जेथी थाय छे,
ते उपधि सह वर्तो भले मुनि काळक्षेत्र विजाणीने. २२२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

विशिष्टकालक्षेत्रवशात्कश्चिदप्रतिषिद्ध इत्यपवादः। यदा हि श्रमणः सर्वोपधिप्रतिषेधमास्थाय परममुपेक्षासंयमं प्रतिपत्तुकामोऽपि विशिष्टकालक्षेत्रवशावसन्नशक्तिर्न प्रतिपत्तुं क्षमते, तदापकृष्य संयमं प्रतिपद्यमानस्तद्बहिरंगसाधनमात्रमुपधिमातिष्ठते। स तु तथास्थीयमानो न खलूपधित्वाच्छेदः, प्रत्युत छेदप्रतिषेध एव। यः किलाशुद्धोपयोगाविनाभावी स छेदः। अयं तु श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुभूताहारनिहारादिग्रहणविसर्जनविषयच्छेदप्रतिषेधार्थ-मुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाविनाभूतत्वाच्छेदप्रतिषेध एव स्यात् ॥२२२॥

अथाप्रतिषिद्धोपधिस्वरूपमुपदिशति—

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं।
मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं॥२२३॥

निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिद्धमुपधिमुपकरणरूपोपधिं, **अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं** अप्रार्थनीयं निर्विकारात्मोपलब्धिलक्षणभावसंयमरहितस्यासंयतजनस्यानभिलषणीयम्, **मुच्छादिजणणरहिदं**

है—ऐसा उत्सर्ग (-सामान्य नियम) है; और विशिष्ट कालक्षेत्रके वश कोई उपधि अनिषिद्ध है—ऐसा अपवाद है। जब श्रमण सर्व उपधिके निषेधका आश्रय लेकर [१]परमोपेक्षासंयमको प्राप्त करनेका इच्छुक होने पर भी विशिष्ट कालक्षेत्रके वश हीन शक्तिवाला होनेसे उसे प्राप्त करनेमें असमर्थ होता है, तब उसमें [२]अपकर्षण करके (अनुत्कृष्ट) संयम प्राप्त करता हुआ उसकी बहिरंग साधनमात्र उपधिका आश्रय करता है। इसप्रकार जिसका आश्रय किया जाता है ऐसी वह उपधि उपधिपनेके कारण वास्तवमें छेदरूप नहीं है, प्रत्युत छेदकी निषेधरूप (-त्यागरूप) ही है। जो उपधि अशुद्धोपयोगके बिना नहीं होती वह छेद है। किन्तु यह (संयमकी बाह्यसाधनमात्रभूत उपधि) तो श्रामण्यपर्यायकी सहकारी कारणभूत शरीरकी वृत्तिके हेतुभूत आहार-नीहारादिके ग्रहण-विसर्जन (ग्रहण-त्याग) संबंधी छेदके निषेधार्थ ग्रहण की जानेसे सर्वथा शुद्धोपयोग सहित है, इसलिये छेदके निषेधरूप ही है॥२२२॥

अब, अनिषिद्ध उपधिका स्वरूप कहते हैं :—

---

१. परमोपेक्षासंयम = परम-उपेक्षासंयम [उत्सर्ग, निश्चयनय, सर्वपरित्याग परमोपेक्षासंयम, वीतराग चारित्र, और शुद्धोपयोग;—ये सब एकार्थवाची हैं।]

२. अपकर्षण = हीनता [अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग, अपहृतसंयम (अल्पता-हीनतावाला संयम) सरागचारित्र और शुभोपयोग—ये सब एकार्थवाची हैं।]

उपधि अनिंदितने, असंयत जन थकी अणप्रार्थ्यने,
मूर्छादिजनन रहितने ज ग्रहो श्रमण, थोडो भले. २२३.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अप्रतिक्रुष्टमुपधिमप्रार्थनीयमसंयतजनैः।
मूर्च्छादिजननरहितं गृह्णातु श्रमणो यद्यप्यल्पम्॥२२३॥

यः किलोपधिः सर्वथा बन्धासाधकत्वादप्रतिक्रुष्टः, संयमादन्यत्रानुचितत्वादसंयतजनाप्रार्थनीयो, रागादिपरिणाममन्तरेण धार्यमाणत्वान्मूर्च्छादिजननरहितश्च भवति, स खल्वप्रतिषिद्धः। अतो यथोदितस्वरूप एवोपधिरुपादेयो, न पुनरल्पोऽपि यथोदितविपर्यस्तस्वरूपः॥२२३॥

अथोत्सर्ग एव वस्तुधर्मो, न पुनरपवाद इत्युपदिशति—

किं किंचण त्ति तक्कं अपुणब्भवकामिणोध देहे वि।
संग त्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा॥२२४॥

परमात्मद्रव्यविलक्षणबहिर्द्रव्यममत्वरूपमूर्च्छारक्षणार्जनसंस्कारादिदोषजननरहितम्, गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं गृह्णातु श्रमणो यमप्यल्पं पूर्वोक्तमुपकरणोपधिं यद्यप्यल्पं तथापि पूर्वोक्तोचितलक्षणमेव ग्राह्यं, न च तद्विपरीतमधिकं वेत्यभिप्रायः॥२२३॥ अथ सर्वसङ्गपरित्याग एव श्रेष्ठः, शेषमशक्यानुष्ठानमिति प्ररूपयति—किं किंचण त्ति तक्कं किं किंचनमिति तर्कः, किं किंचनं परिग्रह इति तर्को विचारः क्रियते तावत्। कस्य। अपुणब्भवकामिणो अपुनर्भवकामिनः अनन्तज्ञानादिचतुष्टयात्मकमोक्षाभिलाषिणः। अध अहो, देहो वि देहोऽपि संग त्ति सङ्गः परिग्रह इति हेतोः जिणवरिंदा जिनवरेन्द्राः कर्तारः

अन्वयार्थ :—[यद्यपि अल्पम्] भले ही अल्प हो तथापि, [अप्रतिक्रुष्टम्] जो अनिंदित हो, [असंयतजनैः अप्रार्थनीयं] असंयतजनोंमें अप्रार्थनीय हो और [मूर्च्छादिजननरहितं] जो मूर्च्छादिकी जननरहित हो—[उपधिं] ऐसी ही उपधिको [श्रमणः] श्रमण [गृह्णातु] ग्रहण करो॥२२३॥

टीका :—जो उपधि सर्वथा बंधका असाधक होनेसे अनिंदित है, संयतके अतिरिक्त अन्यत्र अनुचित होनेसे असंयतजनोंके द्वारा अप्रार्थनीय (अनिच्छनीय) है और रागादिपरिणामके बिना धारणकी जानेसे मूर्च्छादिके उत्पादनसे रहित है, वह वास्तवमें अनिषिद्ध है। इससे यथोक्त स्वरूपवाली उपधि ही उपादेय है, किन्तु किंचित्मात्र भी यथोक्त स्वरूपसे विपरीत स्वरूपवाली उपधि उपादेय नहीं है॥२२३॥

अब, 'उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है, अपवाद नहीं' ऐसा उपदेश करते हैं :—

क्यम अन्य परिग्रह होय ज्यां कही देहने परिग्रह अहो!
मोक्षेच्छुने देहेय निष्प्रतिकर्म उपदेशे जिनो? २२४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

किं किञ्चनमिति तर्कः अपुनर्भवकामिनोऽथ देहेऽपि।
सङ्ग इति जिनवरेन्द्रा अप्रतिकर्मत्वमुद्दिष्टवन्तः ॥२२४॥

अत्र श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमानेऽत्यन्तमुपात्तेदेहेऽपि परद्रव्यत्वात् परिग्रहोऽयं न नामानुग्रहार्हः किन्तूपेक्ष्य एवेत्यप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवन्तो भगवन्तोऽर्हद्देवाः। अथ तत्र शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसम्भावनरसिकस्य पुंसः शेषोऽन्योऽनुपात्तः परिग्रहो वराकः किं नाम स्यादिति व्यक्त एव हि तेषामाकूतः। अतोऽवधार्यते उत्सर्ग एव वस्तुधर्मो, न पुनरपवादः। इदमत्र तात्पर्यं, वस्तुधर्मत्वात्परमनैर्ग्रन्थ्यमेवावलम्ब्यम् ॥२२४॥

णिप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा निःप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवन्तः। शुद्धोपयोगलक्षणपरमोपेक्षासंयमबलेन देहेऽपि निःप्रतिकारित्वं कथितवन्त इति। ततो ज्ञायते मोक्षसुखाभिलाषिणां निश्चयेन देहादिसर्वसङ्गपरित्याग एवोचितोऽन्यस्तूपचार एवेति॥२२४॥ एवमपवादव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम्। अथैकादशगाथापर्यन्तं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति। तद्यथा—श्वेताम्बरमतानुसारी शिष्यः पूर्वपक्षं करोति—

पेच्छदि ण हि इह लोगं परं च समणिंददेसिदो धम्मो।
धम्मम्हि तम्हि कम्हा वियप्पियं लिंगमित्थीणं॥★२०॥

अन्वयार्थ :—[अथ] जब कि [जिनवरेन्द्राः] जिनवरेन्द्रोंने [अपुनर्भवकामिनः] मोक्षाभिलाषीके, [संगः इति] 'देह परिग्रह है' ऐसा कहकर [देहे अपि] देहमें भी [अप्रतिकर्मत्वम्] अप्रतिकर्मपना (संस्काररहितपना) [उद्दिष्टवन्तः] कहा (उपदेशा) है, तब [किं किंचनम् इति तर्कः] उनका यह (स्पष्ट) आशय है कि उसके अन्य परिग्रह तो कैसे हो सकता है? ॥२२४॥

टीका :—यहाँ, श्रामण्यपर्यायका सहकारी कारण होनेसे जिसका निषेध नहीं किया गया है ऐसे अत्यन्त [१]उपात्त शरीरमें भी, 'यह (शरीर) परद्रव्य होनेसे परिग्रह है, वास्तवमें यह अनुग्रहयोग्य नहीं, किन्तु उपेक्षा योग्य ही है' ऐसा कहकर, भगवन्त अर्हन्तदेवोंने अप्रतिकर्मपनेका उपदेश दिया है, तब फिर वहाँ शुद्धात्मतत्त्वोपलब्धिकी संभावनाके रसिक पुरुषोंके शेष अन्य [२]अनुपात्त परिग्रह बेचारा कैसे (अनुग्रह योग्य) हो सकता है?—ऐसा उनका (-अर्हन्त देवोंका) आशय व्यक्त ही है। इससे निश्चित होता है कि—उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है, अपवाद नहीं।

यहाँ ऐसा तात्पर्य है कि वस्तुधर्म होनेसे परम निर्ग्रंथपना ही अवलम्बन योग्य है॥२२४॥

---

१. उपात्त = प्राप्त, मिला हुआ। २. अनुपात्त = अप्राप्त।

अथ केऽपवादविशेषा इत्युपदिशति—

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ सुत्तज्झयणं च णिद्दिट्ठं॥२२५॥

पेच्छदि ण हि इह लोगं निरुपरागनिजचैतन्यनित्योपलब्धिभावनाविनाशकं ख्यातिपूजालाभरूपं प्रेक्षते न च हि स्फुटं इह लोकम्। न च केवलमिह लोकं, परं च स्वात्मप्राप्तिरूपं मोक्षं विहाय स्वर्गभोगप्राप्तिरूपं परं च परलोकं च नेच्छति। स कः। समणिंददेसिदो धम्मो श्रमणेन्द्रदेशितो धर्मः, जिनेन्द्रोपदिष्ट इत्यर्थः। धम्मम्हि तम्हि कम्हा धर्मे तस्मिन् कस्मात् वियप्पियं विकल्पितं निर्ग्रन्थलिङ्गाद्वस्त्रप्रावरणेन पृथक्कृतम्। किम्। लिंगं सावरणचिह्नम्। कासां संबन्धि। इत्थीणं स्त्रीणामिति पूर्वपक्षगाथा॥"२०॥ अथ परिहारमाह—

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा।
तम्हा तप्पडिरूवं वियप्पियं लिंगमित्थीणं॥★२१॥

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा निश्चयतः स्त्रीणां नरकादिगतिविलक्षणानन्तसुखादिगुणस्वभावा तेनैव जन्मना सिद्धिर्न दृष्टा, न कथिता। तम्हा तप्पडिरूवं तस्मात्कारणात्तत्प्रतियोग्यं सावरणरूपं वियप्पियं लिंगमित्थीणं निर्ग्रन्थलिङ्गात्पृथक्त्वेन विकल्पितं कथितं लिङ्गं प्रावरणसहितं चिह्नम्। कासाम्। स्त्रीणामिति॥"२१॥ अथ स्त्रीणां मोक्षप्रतिबन्धकं प्रमादबाहुल्यं दर्शयति—

पइडीपमादमइया एदासिं वित्ति भासिया पमदा।
तम्हा ताओ पमदा पमादबहुला त्ति णिद्दिट्ठा॥★२२॥

पइडीपमादमइया प्रकृत्या स्वभावेन प्रमादेन निर्वृत्ता प्रमादमयी। का कर्त्री भवति। एदासिं वित्ति। एतासां स्त्रीणां वृत्तिः परिणतिः। भासिया पमदा तत एव नाममालायां प्रमदाः प्रमदासंज्ञा भाषिताः स्त्रियः। तम्हा ताओ पमदा यत एव प्रमदासंज्ञास्ताः स्त्रियः, तस्मात्तत एव पमादबहुला त्ति णिद्दिट्ठा निःप्रमादपरमात्मतत्त्वभावनाविनाशकप्रमादबहुला इति निर्दिष्टाः॥"२२॥ अथ तासां मोहादिबाहुल्यं दर्शयति—

संति धुवं पमदाणं मोहपदोसा भयं दुगुंछा य।
चित्ते चित्ता माया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं॥★२३॥

अब, अपवादके कौनसे विशेष (भेद) हैं, सो कहते हैं :—

जन्म्या प्रमाणे रूप भाख्युं उपकरण जिनमार्गमां,
गुरुवचन ने सूत्राध्ययन, वळी विनय पण उपकरणमां. २२५.

उपकरणं जिनमार्गे लिङ्गं यथाजातरूपमिति भणितम्।
गुरुवचनमपि च विनयः सूत्राध्ययनं च निर्दिष्टम्॥२२५॥

संति ध्रुवं पमदाणं सन्ति विद्यन्ते ध्रुवं निश्चितं प्रमदानां स्त्रीणाम्। के ते। मोहपदोसा भयं दुगुंछा य मोहादिरहितानन्तसुखादिगुणस्वरूपमोक्षकारणप्रतिबन्धकाः मोहप्रद्वेषभयदुगुंछापरिणामाः, चित्ते चित्ता माया कौटिल्यादिरहितपरमबोधादिपरिणतेः प्रतिपक्षभूता चित्ते मनसि चित्रा विचित्रा माया, तम्हा तासिं ण णिव्वाणं तत एव तासामव्याबाधसुखाद्यनन्तगुणाधारभूतं निर्वाणं नास्तीत्यभिप्रायः॥"२३॥ अथैतदेव द्रढयति—

ण विणा वट्टदि णारी एक्कं वा तेसु जीवलोयम्हि।
ण हि संउडं च गत्तं तम्हा तासिं च संवरणं॥★२४॥

ण विणा वट्टदि णारी न विना वर्तते नारी एक्कं वा तेसु जीवलोयम्हि तेषु निर्दोषि-परमात्मध्यानविघातकेषु पूर्वोक्तदोषेषु मध्ये जीवलोके त्वेकमपि दोषं विहाय ण हि संउडं च गत्तं न हि स्फुटं संवृत्तं गात्रं च शरीरं, तम्हा तासिं च संवरणं तत एव च तासां संवरणं वस्त्रावरणं क्रियत इति॥"२४॥ अथ पुनरपि निर्वाणप्रतिबन्धकदोषान्दर्शयति—

चित्तस्सावो तासिं सिथिल्लं अत्तवं च पक्खलणं।
विज्जदि सहसा तासु अ उप्पादो सुहममणुआणं॥★२५॥

विज्जदि विद्यते तासु अ तासु च स्त्रीषु। किम्। चित्तस्सावो चित्तस्रवः, निःकामात्मतत्त्व-संवित्तिविनाशकचित्तस्य कामोद्रेकेण स्रवो रागसार्द्रभावः, तासिं तासां स्त्रीणां, सिथिल्लं शिथिलस्य भावः शैथिल्यं, तद्भवमुक्तियोग्यपरिणामविषये चित्तदार्ढ्याभावः सत्त्वहीनपरिणाम इत्यर्थः, अत्तवं च पक्खलणं ऋतौ भवमार्तवं प्रस्खलनं रक्तस्रवणं, सहसा झटिति, मासे मासे दिनत्रयपर्यन्तं चित्तशुद्धिविनाशको रक्तस्रवो भवतीत्यर्थः, उप्पादो सुहममणुआणं उत्पाद उत्पत्तिः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्त-मनुष्याणामिति॥"।२५॥ अथोत्पत्तिस्थानानि कथयति—

लिंगम्हि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खपदेसेसु।
भणिदो सुहुमुप्पादो तासिं कह संजमो होदि॥★२६॥

लिंगम्हि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खपदेसेसु स्त्रीणां लिङ्गे योनिप्रदेशे, स्तनान्तरे, नाभिप्रदेशे, कक्षप्रदेशे च, भणिदो सुहुमुप्पादो एतेषु स्थानेषु सूक्ष्ममनुष्यादिजीवोत्पादो भणितः। एते पूर्वोक्तदोषाः

गाथा : २२५ अन्वयार्थ :—[यथाजातरूपं लिगं] यथाजातरूप (-जन्मजात-नग्न) जो लिंग वह [जिन-मार्गे] जिनमार्गमें [उपकरणं इति भणितम्] उपकरण कहा गया है, [गुरुवचनं] गुरुके वचन, [सूत्राध्ययनं च] सूत्रोंका अध्ययन [च] और [विनयः अपि] विनय भी [निर्दिष्टम्] उपकरण कही गई है॥२२५॥

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यो हि नामाप्रतिषिद्धोऽस्मिन्नुपधिरपवादः, स खलु निखिलोऽपि श्रामण्यपर्याय-सहकारिकारणत्वेनोपकारकारकत्वादुपकरणभूत एव, न पुनरन्यः। तस्य तु विशेषाः सर्वाहार्य-वर्जितसहजरूपापेक्षितयथाजातरूपत्वेन बहिरंगलिंगभूताः कायपुद्गलाः, श्रूयमाणतत्कालबोधक-

पुरुषाणां किं न भवन्तीति चेत्। एवं न वक्तव्यं, स्त्रीषु बाहुल्येन भवन्ति। न चास्तित्वमात्रेण समानत्वम्। एकस्य विषकणिकास्ति, द्वितीयस्य च विषपर्वतोऽस्ति, किं समानत्वं भवति। किंतु पुरुषाणां प्रथमसंहननबलेन दोषविनाशको मुक्तियोग्यविशेषसंयमोऽस्ति। **तासिं कह संजमो होदि** ततः कारणात्तासां कथं संयमो भवतीति।।"२६।। अथ स्त्रीणां तद्भवमुक्तियोग्यां सकलकर्मनिर्जरां निषेधयति—

जदि दंसणेण सुद्धा सुत्तज्झयणेण चावि संजुत्ता।
घोरं चरदि व चरियं इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा।।★२७।।

जदि दंसणेण सुद्धा यद्यपि दर्शनेन सम्यक्त्वेन शुद्धा, **सुत्तज्झयणे चावि संजुत्ता** एकादशाङ्ग-सूत्राध्ययनेनापि संयुक्ता, **घोरं चरदि व चरियं** घोरं पक्षोपवासमासोपवासादि चरति वा चारित्रं, **इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा** तथापि स्त्रीजनस्य तद्भवकर्मक्षययोग्या सकलनिर्जरा न भणितेति भावः। किंच यथा प्रथमसंहननाभावात्स्त्री सप्तमनरकं न गच्छति, तथा निर्वाणमपि। "पुंवेदं वेदंता पुरिसा जे खवगसेढिमारूढा। सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति" इति गाथाकथितार्थाभिप्रायेण भावस्त्रीणां कथं निर्वाणमिति चेत्। तासां भावस्त्रीणां प्रथमसंहननमस्ति, द्रव्यस्त्रीवेदाभावात्तद्भवमोक्ष-परिणामप्रतिबन्धकतीव्रकामोद्रेकोऽपि नास्ति। द्रव्यस्त्रीणां प्रथमसंहननं नास्तीति कस्मिन्नागमे कथितमास्त इति चेत्। तत्रोदाहरणगाथा—"अंतिमतिगसंघडणं णियमेण य कम्मभूमिमहिलाणं। आदिमतिगसंघडणं णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं"।। अथ मतम्—यदि मोक्षो नास्ति तर्हि भवदीयमते किमर्थमर्जिकानां महाव्रतारोपणम्। परिहारमाह—तदुपचारेण कुलव्यवस्थानिमित्तम्। न चोपचारः साक्षाद्भवितुमर्हति, अग्निवत् क्रूरोऽयं देवदत्त इत्यादिवत्। तथाचोक्तम्—मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते। किंतु यदि तद्भवे मोक्षो भवति स्त्रीणां तर्हि शतवर्षदीक्षिताया अर्जिकाया अद्यदिने दीक्षितः साधुः कथं वन्द्यो भवति। सैव प्रथमतः किं न वन्द्या भवति साधोः। किंतु भवन्मते

टीका :—इसमें जो अनिषिद्ध उपधि अपवाद है, वह सभी वास्तवमें ऐसा ही है कि जो श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारणके रूपमें उपकार करनेवाला होनेसे उपकरणभूत है, दूसरा नहीं। उसके विशेष (भेद) इसप्रकार हैं :—(१) सर्व [१]आहार्य रहित सहजरूपसे अपेक्षित (सर्व आहार्य रहित) यथाजातरूपपनेके कारण जो बहिरंग लिंगभूत हैं ऐसे

१. आहार्य = बाहरसे लाया जानेवाला; कृत्रिम; औपाधिक, (सर्व कृत्रिम–औपाधिक भावोंसे रहित मुनिके आत्माका सहजरूप वस्त्राभूषणादि सर्व कृत्रिमताओंसे रहित यथाजातरूपपनेकी अपेक्षा रखता है अर्थात् मुनिके आत्माका रूप–दशा–सहज होनेसे शरीर भी यथाजात ही होना चाहिये; इसलिये यथाजातरूपपना वह मुनिपनेका बाह्यलिंग है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

गुरुगीर्यमाणात्मतत्त्वद्योतकसिद्धोपदेशवचनपुद्गलाः, तथाधीयमाननित्यबोधकानादिनिधनशुद्धात्म-तत्त्वद्योतनसमर्थश्रुतज्ञानसाधनीभूतशब्दात्मकसूत्रपुद्गलाश्च, शुद्धात्मतत्त्वव्यंजकदर्शनादिपर्याय-

---

मल्लितीर्थकरः स्त्रीति कथ्यते, तदप्ययुक्तम्। तीर्थकरा हि सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशभावनाः पूर्वभवे भावयित्वा पश्चाद्भवन्ति। सम्यग्दृष्टेः स्त्रीवेदकर्मणो बन्ध एव नास्ति, कथं स्त्री भविष्यतीति। किंच यदि मल्लितीर्थकरो वान्यः कोऽपि वा स्त्री भूत्वा निर्वाणं गतः तर्हि स्त्रीरूपप्रतिमाराधना किं न क्रियते भवद्भिः। यदि पूर्वोक्तदोषाः सन्ति स्त्रीणां तर्हि सीतारुक्मिणीकुन्तीद्रौपदीसुभद्राप्रभृतयो जिनदीक्षां गृहीत्वा विशिष्टतपश्चरणेन कथं षोडशस्वर्गे गता इति चेत्। परिहारमाह–तत्र दोषो नास्ति, तस्मात्स्वर्गादागत्य पुरुषवेदेन मोक्षं यास्यन्त्यग्रे। तद्भवमोक्षो नास्ति, भवान्तरे भवतु, को दोष इति। इदमत्र तात्पर्यम्–स्वयं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यं, परं प्रति विवादो न कर्तव्यः। कस्मात्। विवादे रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति, ततश्च शुद्धात्मभावना नश्यतीति ।।"२७।। अथोपसंहाररूपेण स्थितपक्षं दर्शयति—

तम्हा तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं णिद्दिट्ठं।
कुलरूववओजुत्ता समणीओ तस्समाचारा ।।★२८।।

तम्हा यस्मात्तद्भवे मोक्षो नास्ति तस्मात्कारणात् **तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं णिद्दिट्ठं** तत्प्रतिरूपं वस्त्रप्रावरणसहितं लिङ्गं चिह्नं लाञ्छनं तासां स्त्रीणां जिनवरैः सर्वज्ञैर्निर्दिष्टं कथितम्। **कुलरूववओजुत्ता समणीओ** लोकदुगुञ्छारहितत्वेन जिनदीक्षायोग्यं कुलं भण्यते, अन्तरङ्गनिर्विकारचित्तशुद्धिज्ञापकं बहिरङ्गनिर्विकारं रूपं भण्यते, शरीरभङ्गरहितं वा अतिबालवृद्धबुद्धिवैकल्यरहितं वयो भण्यते, तैः कुलरूपवयोभिर्युक्ताः कुलरूपवयोयुक्ता भवन्ति। काः। श्रमण्योऽर्जिकाः। पुनरपि किंविशिष्टाः। **तस्समाचारा** तासां स्त्रीणां योग्यस्तद्योग्य आचारशास्त्रविहितः समाचार आचार आचरणं यासां तास्तत्समाचारा इति ।।"२८।। अथेदानीं पुरुषाणां दीक्षाग्रहणे वर्णव्यवस्थां कथयति—

कायपुद्गल; (२) जिनका श्रवण किया जाता है ऐसे [१]तत्कालबोधक, गुरु द्वारा कहे जाने पर [२]आत्मतत्त्व–द्योतक, [३]सिद्ध उपदेशरूप वचनपुद्गल; तथा (३) जिनका अध्ययन किया जाता है ऐसे, नित्यबोधक, अनादिनिधन शुद्ध आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेमें समर्थ श्रुतज्ञानके साधनभूत शब्दात्मक सूत्रपुद्गल; और (४) शुद्ध आत्मतत्त्वको व्यक्त करनेवाली जो दर्शनादिक पर्यायें, उनरूपसे परिणमित पुरुषके प्रति [४]विनीतताका अभिप्राय प्रवर्तित

---

१. तत्कालबोधक = उसी (उपदेशके) समय ही बोध देनेवाला। [शास्त्र शब्द सदा बोधके निमित्तभूत होनेसे नित्यबोधक कहे गये हैं, गुरुवचन उपदेश–कालमें ही बोधके निमित्तभूत होनेसे तत्कालबोधक कहे गये हैं।]

२. आत्मतत्त्वद्योतक = आत्मतत्त्वको समझानेवाले–प्रकाशित करनेवाले।

३. सिद्ध = सफल; रामबाण; अमोघ = अचूक; [गुरुका उपदेश सिद्ध–सफल–रामबाण है।]

४. विनीतता = विनय; नम्रता; [सम्यग्दर्शनादि पर्यायमें परिणमित पुरुषके प्रति विनयभावसे प्रवृत्त होनेमें मनके पुद्गल निमित्तभूत हैं।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

तत्परिणतपुरुषविनीतताभिप्रायप्रवर्तकचित्तपुद्गलाश्च भवन्ति। इदमत्र तात्पर्यं, कायवद्वचन-मनसी अपि न वस्तुधर्मः॥२२५॥

वण्णेसु तीसु एक्को कल्लाणंगो तवोसहो वयसा।
सुमुहो कुच्छारहिदो लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो॥★२९॥

वण्णेसु तीसु एक्को वर्णेषु त्रिष्वेकः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यवर्णेष्वेकः। **कल्लाणंगो** कल्याणाङ्ग आरोग्यः। **तवोसहो वयसा** तपःसहः तपःक्षमः। केन। अतिवृद्धबालत्वरहितवयसा। **सुमुहो** निर्विकाराभ्यन्तरपरमचैतन्यपरिणतिविशुद्धिज्ञापकं गमकं बहिरङ्गनिर्विकारं मुखं यस्य, मुखावयवभङ्ग-रहितं वा, स भवति सुमुखः। **कुच्छारहिदो** लोकमध्ये दुराचाराद्यपवादरहितः। **लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो** एवंगुणविशिष्टपुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति। यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि॥"२९॥ अथ निश्चयनयाभिप्रायं कथयति—

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहिं णिद्दिट्ठो।
सेसं भंगेण पुणो ण होदि सल्लेहणाअरिहो॥★३०॥

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहिं णिद्दिट्ठो यो रत्नत्रयनाशः स भङ्गो जिनवरैर्निर्दिष्टः। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धाज्ञानानुष्ठानरूपो योऽसौ निश्चयरत्नत्रयस्वभावस्तस्य विनाशः स एव निश्चयेन नाशो भङ्गो जिनवरैर्निर्दिष्टः। **सेसं भंगेण पुणो** शेषभङ्गेन पुनः शेषखण्डमुण्डवातवृषणादिभङ्गेन **ण होदि सल्लेहणाअरिहो** न भवति सल्लेखनार्हः। लोकदुगुञ्छाभयेन निर्ग्रन्थरूपयोग्यो न भवति। कौपीनग्रहणेन तु भावनायोग्यो भवतीत्यभिप्रायः॥"३०॥ एवं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगाथाभिस्तृतीयं स्थलं गतम्। अथ पूर्वोक्तस्योपकरणरूपा-पवादव्याख्यानस्य विशेषविवरणं करोति—**इदि भणिदं** इति भणितं कथितम्। किम्। **उवयरणं** उपकरणम्। क्व। **जिणमग्गे** जिनोक्तमोक्षमार्गे। किमुपकरणम्। **लिंगं** शरीराकारपुद्गलपिण्डरूपं

करनेवाले चित्रपुद्गल। (अपवादमार्गमें जिस उपकरणभूत उपधिका निषेध नहीं है उसके उपरोक्त चार भेद हैं।)

यहाँ ऐसा तात्पर्य है कि कायकी भाँति वचन और मन भी वस्तुधर्म नहीं है।

भावार्थ :—जिस श्रमणकी श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारणभूत, सर्व कृत्रिमताओंसे रहित यथाजातरूपके सम्मुख वृत्ति जाये, उसे कायका परिग्रह है; जिस श्रमणकी गुरु–उपदेशके श्रवणमें वृत्ति रुके, उसे वचनपुद्गलोंका परिग्रह है; जिस श्रमणकी सूत्राध्ययनमें वृत्ति रुके उसके सूत्रपुद्गलोंका परिग्रह है; और जिस श्रमणके योग्य पुरुषके विनयरूप परिणाम हों उसके मनके पुद्गलोंका परिग्रह है। यद्यपि वह परिग्रह उपकरणभूत हैं, इसलिये अपवादमार्गमें उनका निषेध नहीं है, तथापि वे वस्तुधर्म नहीं हैं॥२२५॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथाप्रतिषिद्धशरीरमात्रोपधिपालनविधानमुपदिशति—

इहलोगणिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्हि लोयम्हि।
जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो॥२२६॥

इहलोकनिरापेक्षः अप्रतिबद्धः परस्मिन् लोके।
युक्ताहारविहारो रहितकषायो भवेत् श्रमणः॥२२६॥

अनादिनिधनैकरूपशुद्धात्मतत्त्वपरिणतत्वादखिलकर्मपुद्गलविपाकात्यन्तविविक्तस्वभावत्वेन रहितकषायत्वात्तदात्वमनुष्यत्वेऽपि समस्तमनुष्यव्यवहारबहिर्भूतत्वेनेहलोकनिरापेक्षत्वात्तथा

द्रव्यलिङ्गम्। किंविशिष्टम्। जहजादरूवं यथाजातरूपं, यथाजातरूपशब्देनात्र व्यवहारेण संगपरित्यागयुक्तं नग्नरूपं, निश्चयेनाभ्यन्तरेण शुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मस्वरूपं। **गुरुवयणं पि य** गुरुवचनमपि, निर्विकारपरमचिज्ज्योतिःस्वरूपपरमात्मतत्त्वप्रतिबोधकं सारभूतं सिद्धोपदेशरूपं गुरूपदेशवचनम्। न केवलं गुरूपदेशवचनम्, **सुत्तज्झयणं च** आदिमध्यान्तवर्जितजातिजरामरणरहितनिजात्मद्रव्यप्रकाशक-सूत्राध्ययनं च, परमागमवाचनमित्यर्थः। **णिद्दिट्ठं** उपकरणरूपेण निर्दिष्टं कथितम्। **विणओ** स्वकीयनिश्चयरत्नत्रयशुद्धिर्निश्चयविनयः, तदाधारपुरुषेषु भक्तिपरिणामो व्यवहारविनयः। उभयोऽपि विनयपरिणाम उपकरणं भवतीति निर्दिष्टः। अनेन किमुक्तं भवति—निश्चयेन चतुर्विधमेवोपकरणम्। अन्यदुपकरणं व्यवहार इति॥२२५॥ अथ युक्ताहारविहारलक्षणतपोधनस्य स्वरूपमाख्याति— **इहलोगणिरावेक्खो** इहलोकनिरापेक्षः, टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावनिजात्मसंवित्तिविनाशकख्यातिपूजा-लाभरूपेहलोककाङ्क्षारहितः, **अप्पडिबद्धो परम्हि लोयम्हि** अप्रतिबद्धः परस्मिन् लोके, तपश्चरणे कृते दिव्यदेवस्त्रीपरिवारादिभोगा भवन्तीति, एवंविधपरलोके प्रतिबद्धो न भवति, **जुत्ताहारविहारो हवे** युक्ताहारविहारो भवेत्। स कः। **समणो** श्रमणः। पुनरपि कथंभूतः। **रहिदकसाओ** निःकषायस्वरूप-

---

अब, अनिषिद्ध ऐसा जो शरीर मात्र उपधि उसके पालनकी विधिका उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**श्रमणः**] श्रमण [**रहितकषायः**] कषायरहित वर्तता हुआ [**इहलोक निरापेक्षः**] इस लोकमें निरपेक्ष और [**परस्मिन् लोके**] परलोकमें [**अप्रतिबद्धः**] अप्रतिबद्ध होनेसे [**युक्ताहारविहारः भवेत्**] [१]युक्ताहार-विहारी होता है॥२२६॥

टीका :—अनादिनिधन एकरूप शुद्ध आत्मतत्त्वमें परिणत होनेसे श्रमण समस्त कर्मपुद्गलके विपाकसे अत्यन्त विविक्त (-भिन्न) स्वभावके द्वारा कषायरहित होनेसे, उस

---

१. युक्ताहार-विहारी = (१) योग्य (-उचित) आहार-विहारवाला; (२) युक्त अर्थात् योगीके आहार -विहारवाला; योगपूर्वक (आत्मस्वभावमें युक्तता पूर्वक) आहार-विहारवाला।

आ लोकमां निरपेक्ष ने परलोक-अणप्रतिबद्ध छे
साधु कषायरहित, तेथी युक्त आ'र-विहारी छे. २२६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

भविष्यदमर्त्यादिभावानुभूतितृष्णाशून्यत्वेन परलोकाप्रतिबद्धत्वाच्च, परिच्छेद्यार्थोपलम्भप्रसिद्ध्यर्थ-प्रदीपपूरणोत्सर्पणस्थानीयाभ्यां शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भप्रसिद्ध्यर्थतच्छरीरसम्भोजनसंचलनाभ्यां युक्ताहारविहारो हि स्यात् श्रमणः। इदमत्र तात्पर्यम्—यतो हि रहितकषायः ततो न तच्छरीरानुरागेण दिव्यशरीरानुरागेण वाहारविहारयोरयुक्त्या प्रवर्तेत। शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भ-साधकश्रामण्यपर्यायपालनायैव केवलं युक्ताहारविहारः स्यात् ॥२२६॥

अथ युक्ताहारविहारः साक्षादनाहारविहार एवेत्युपदिशति—

जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा।
अण्णं भिक्खमणेसणमध ते समणा अणाहारा॥२२७॥

संवित्त्यवष्टम्भबलेन रहितकषायश्चेति। अयमत्र भावार्थः—योऽसौ इहलोकपरलोकनिरपेक्षत्वेन निःकषायत्वेन च प्रदीपस्थानीयशरीरे तैलस्थानीयं ग्रासमात्रं दत्वा घटपटादिप्रकाश्यपदार्थस्थानीयं निजपरमात्मपदार्थमेव निरीक्षते स एव युक्ताहारविहारो भवति, न पुनरन्यः शरीरपोषणनिरत इति॥२२६॥ अथ पञ्चदशप्रमादैस्तपोधनः प्रमत्तो भवतीति प्रतिपादयति—

(वर्तमान) कालमें मनुष्यत्वके होते हुए भी (स्वयं) समस्त मनुष्यव्यवहारसे [१]बहिर्भूत होनेके कारण इस लोकके प्रति निरपेक्ष (निस्पृह) है; तथा भविष्यमें होनेवाले देवादि भावोंके अनुभवकी तृष्णासे शून्य होनेके कारण परलोकके प्रति अप्रतिबद्ध है; इसलिये, जैसे ज्ञेय पदार्थोंके ज्ञानकी सिद्धिके लिये (-घटपटादि पदार्थोंको देखनेके लिये ही) दीपकमें तेल डाला जाता है और दीपकको हटाया जाता है, उसीप्रकार श्रमण शुद्ध आत्मतत्त्वकी उपलब्धिकी सिद्धिके लिये (-शुद्धात्माको प्राप्त करनेके लिये ही) वह शरीरको खिलाता और चलाता है, इसलिये युक्ताहारविहारी होता है।

यहाँ ऐसा तात्पर्य है कि :—श्रमण कषायरहित है इसलिये वह शरीरके (-वर्तमान मनुष्य-शरीरके) अनुरागसे या दिव्य शरीरके (-भावी देवशरीरके) अनुरागसे आहार-विहारमें अयुक्तरूपसे प्रवृत्त नहीं होता; किन्तु शुद्धात्मतत्वकी उपलब्धिकी साधकभूत श्रामण्यपर्यायके पालनके लिये ही केवल युक्ताहारविहारी होता है॥२२६॥

अब, युक्ताहारविहारी साक्षात् अनाहारविहारी (-अनाहारी और अविहारी) ही है ऐसा उपदेश करते हैं :—

१ बहिर्भूत = बाहर, रहित, उदासीन।

आत्मा अनेषक ते य तप, तत्सिद्धिमां उद्यत रही
वण-अेषणा भिक्षा वळी, तेथी अनाहारी मुनि. २२७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

यस्यानेषण आत्मा तदपि तपः तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः।
अन्यद्भैक्षमनेषणमथ ते श्रमणा अनाहाराः॥२२७॥

स्वयमनशनस्वभावत्वादेषणादोषशून्यभैक्ष्यत्वाच्च, युक्ताहारः साक्षादनाहार एव स्यात्। तथा हि—यस्य सकलकालमेव सकलपुद्गलाहरणशून्यमात्मानमवबुद्ध्यमानस्य सकलाशनतृष्णा-शून्यत्वात्स्वयमनशन एव स्वभावः, तदेव तस्यानशनं नाम तपोऽन्तरंगस्य बलीयस्त्वात्; इति कृत्वा ये तं स्वयमनशनस्वभावं भावयन्ति श्रमणाः, तत्प्रतिषिद्धये चैषणादोषशून्य-

कोहादिएहि चउहि वि विकहाहि तहिंदियाणमत्थेहिं।
समणो हवदि पमत्तो उवजुत्तो णेहणिद्दाहिं॥★३१॥

हवदि क्रोधादिपञ्चदशप्रमादरहितचिच्चमत्कारमात्रात्मतत्त्वभावनाच्युतः सन् भवति। स कः कर्ता। समणो सुखदुःखादिसमचित्तः श्रमणः। किंविशिष्टो भवति। पमत्तो प्रमत्तः प्रमादी। कैः कृत्वा। कोहादिएहि चउहि वि चतुर्भिरपि क्रोधादिभिः, विकहाहि स्त्रीभक्तचोरराजकथाभिः, तहिंदियाणमत्थेहिं तथैव पञ्चेन्द्रियाणामर्थैः स्पर्शादिविषयैः। पुनरपि किंरूपः। उवजुत्तो उपयुक्तः परिणतः। काभ्याम्। णेहणिद्दाहिं स्नेहनिद्राभ्यामिति॥"३१॥ अथ युक्ताहारविहारतपोधनस्वरूपमुपदिशति—जस्स यस्य मुनेः संबन्धी अप्पा आत्मा। किंविशिष्टः। अणेसणं स्वकीयशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्पन्नसुखामृताहारेण तृप्तत्वान्न विद्यते

अन्वयार्थ :—[यस्य आत्मा अनेषणः] जिसका आत्मा एषणारहित है (अर्थात् जो अनशनस्वभावी आत्माका ज्ञाता होनेसे स्वभावसे ही आहारकी इच्छासे रहित है) [तत् अपि तपः] उसे वह भी तप है; (और) [तत्प्रत्येषकाः] उसे प्राप्त करनेके लिये (-अनशनस्वभाववाले आत्माको परिपूर्णतया प्राप्त करनेके लिये) प्रयत्न करनेवाले [श्रमणाः] श्रमणोंके [अन्यत् भैक्षम्] अन्य (-स्वरूपसे पृथक्) भिक्षा [अनेषणम्] एषणारहित (-एषणदोषसे रहित) होती है; [अथ] इसलिए [ते श्रमणाः] वे श्रमण [अनाहाराः] अनाहारी हैं॥२२७॥

टीका :—(१) स्वयं अनशनस्वभाववाला होनेसे (अपने आत्माको स्वयं अनशन-स्वभाववाला जाननेसे) और (२) एषणादोषशून्य भिक्षावाला होनेसे, युक्ताहारी (-युक्ताहारवाला श्रमण) साक्षात् अनाहारी ही है। वह इसप्रकार—सदा ही समस्त पुद्गलाहारसे शून्य ऐसे आत्माको जानता हुआ समस्त अशनतृष्णा रहित होनेसे जिसका [१]स्वयं अनशन ही स्वभाव है, वही उसके अनशन नामक तप है, क्योंकि अंतरंगकी विशेष बलवत्ता है;—ऐसा समझकर जो श्रमण (१) आत्माको स्वयं अनशनस्वभाव भाते हैं (-समझते हैं, अनुभव करते हैं) और (२) उसकी सिद्धिके लिये (-पूर्ण प्राप्तिके लिये) एषणादोषशून्य ऐसी अन्य (-पररूप) भिक्षा आचरते हैं; वे आहार करते हुए भी मानों आहार नहीं करते हों—ऐसे होनेसे साक्षात् अनाहारी ही हैं, क्योंकि

१. स्वयं = अपने आप; अपनेसे; सहजतासे (अपने आत्माको स्वयं अनशनस्वभावी जानना वही अनशन नामक तप है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

मन्यद्वैक्षं चरन्ति, ते किलाहरन्तोऽप्यनाहरन्त इव युक्ताहारत्वेन स्वभावपरभावप्रत्यय-बन्धाभावात्साक्षादनाहारा एव भवन्ति। एवं स्वयमविहारस्वभावत्वात्समितिशुद्धविहारत्वाच्च युक्तविहारः साक्षादविहार एव स्यात् इत्यनुक्तमपि गम्येतेति॥२२७॥

अथ कुतो युक्ताहारत्वं सिद्ध्यतीत्युपदिशति—

केवलदेहो समणो देहे ण मम त्ति रहिदपरिकम्मो।
आजुत्तो तं तवसा अणिगूहिय अप्पणो सत्तिं॥२२८॥

केवलदेहः श्रमणो देहे न ममेति रहितपरिकर्मा।
आयुक्तबांस्तं तपसा अनिगूह्यात्मनः शक्तिम्॥२२८॥

एषणमाहाराकाङ्क्षा यस्य स भवत्यनेषणः, तं पि तवो तस्य तदेव निश्चयेन निराहारात्मभावना-रूपमुपवासलक्षणं तपः, **तप्पडिच्छगा समणा** तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः, तन्निश्चयोपवासलक्षणं तपः प्रतीच्छन्ति तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः। पुनरपि किं येषाम्। **अण्णं** निजपरमात्मतत्त्वादन्यद्भिन्नं हेयम्। किम्। **अणेसणं** अन्नस्याहारस्यैषणं वाच्छा अन्नैषणम्। कथंभूतम्। **भिक्खं** भिक्षायां भवं भैक्ष्यं। **अध** अथ अहो, **ते समणा अणाहारा** ते अनशनादिगुणविशिष्टाः श्रमणा आहारग्रहणेऽप्यनाहारा भवन्ति। तथैव च निःक्रियपरमात्मानं ये भावयन्ति, पञ्चसमितिसहिता विहरन्ति च, ते विहारेऽप्यविहारा भवन्तीत्यर्थः॥२२७॥ अथ तदेवानाहारकत्वं प्रकारान्तरेण प्राह—**केवलदेहो** केवलदेहोऽन्यपरिग्रहरहितो

युक्ताहारीपनेके कारण उनके स्वभाव तथा परभावके निमित्तसे बन्ध नहीं होता।

इसप्रकार (जैसे युक्ताहारी साक्षात् अनाहारी ही है, ऐसा कहा गया है उसीप्रकार), (१) स्वयं अविहारस्वभाववाला होनेसे और (२) समितिशुद्ध (-ईर्यासमितिसे शुद्ध ऐसे) विहारवाला होनेसे युक्तविहारी (-युक्तविहारवाला श्रमण) साक्षात् अविहारी ही है—ऐसा अनुक्त होने पर भी (-गाथामें नहीं कहा जाने पर भी) समझना चाहिये॥२२७॥

अब, (श्रमणके) युक्ताहारीपना कैसे सिद्ध होता है सो उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**केवलदेहः श्रमणः**] केवलदेही (-जिसके मात्र देहरूप परिग्रह वर्तता है, ऐसे) श्रमणने [**देहे**] शरीरमें भी [**न मम इति**] 'मेरा नहीं है' ऐसा समझकर [**रहितपरिकर्मा**] [१]परिकर्म रहित वर्तते हुए, [**आत्मनः**] अपने आत्माकी [**शक्तिं**] शक्तिको

---

१. परिकर्म = शोभा; श्रृङ्गार; संस्कार; प्रतिकर्म।

केवलशरीर मुनि त्यांय 'मारुं न' जाणी वण–प्रतिकर्म छे,
निज शक्तिना गोपन विना तप साथ तन योजेल छे. २२८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

यतो हि श्रमणः श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेन केवलदेहमात्रस्योपधेः प्रसह्याप्रतिषेधकत्वात्केवलदेहत्वे सत्यपि देहे 'किं किंचण' इत्यादिप्राक्तनसूत्रद्योतितपरमेश्वराभिप्रायपरिग्रहेण न नाम ममायं ततो नानुग्रहार्हः किन्तूपेक्ष्य एवेति परित्यक्तसमस्तसंस्कारत्वाद्रहितपरिकर्मा स्यात्, ततस्तन्ममत्वपूर्वकानुचिताहारग्रहणाभावाद्युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत्। यतश्च समस्तामप्यात्मशक्तिं प्रकटयन्ननन्तरसूत्रोदितेनानशनस्वभावलक्षणेन तपसा तं देहं सर्वारम्भेणाभियुक्तवान् स्यात्, तत आहारग्रहणपरिणामात्मकयोगध्वंसाभावाद्युक्तस्यैवाहारेण च युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत् ॥२२८॥

भवति। स कः कर्ता। **समणो** निन्दाप्रशंसादिसमचित्तः श्रमणः। तर्हि किं देहे ममत्वं भविष्यति। नैवं। **देहे वि ममत्तरहिदपरिकम्मो** देहेऽपि ममत्वरहितपरिकर्मा, "ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिं उवट्ठिदो। आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे॥" इति श्लोककथितक्रमेण देहेऽपि ममत्वरहितः। **आजुत्तो तं तवसा** आयुक्तवान् आयोजितवांस्तं देहं तपसा। किं कृत्वा। **अणिगूहिय** अनिगूह्य प्रच्छादनमकृत्वा। **कां। अप्पणो सत्तिं** आत्मनः शक्तिमिति। अनेन किमुक्तं भवति–**यः को**ऽपि देहाच्छेषपरिग्रहं त्यक्त्वा

[**अनिगूह्य**] छुपाये विना [**तपसा**] तपके साथ [**तं**] उसे (-शरीरको) [**आयुक्तवान्**] युक्त किया (-जोड़ा) है॥२२८॥

टीका :—श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारणके रूपमें केवल देहमात्र उपधिको श्रमण बलपूर्वक–हठसे निषेध नहीं करता इसलिये वह केवल देहवान् है; ऐसा (देहवान्) होने पर भी, '**किं किंचण**' इत्यादि पूर्वसूत्र (गाथा २४४) द्वारा प्रकाशित किये गये परमेश्वरके अभिप्रायका ग्रहण करके 'यह (शरीर) वास्तवमें मेरा नहीं है इसलिये यह अनुग्रह योग्य नहीं है किन्तु उपेक्षा योग्य ही है' इसप्रकार देहमें समस्त संस्कारको छोड़ा होनेसे परिकर्मरहित है। इसलिये उसके देहके ममत्वपूर्वक अनुचित आहारग्रहणका अभाव होनेसे युक्ताहारीपना सिद्ध होता है। और (अन्य प्रकारसे) उसने (आत्मशक्तिको किंचित्मात्र भी छुपाये बिना) समस्त ही आत्मशक्तिको प्रगट करके, अन्तिम सूत्र (गाथा २२७) द्वारा कहे गये [१]अनशनस्वभाव-लक्षण तपके साथ उस शरीरको सर्वारम्भ (-उद्यम) से युक्त किया है (-जोड़ा है); इसलिये आहारग्रहणके परिणामस्वरूप [२]योगध्वंसका अभाव होनेसे उसका आहार युक्तका (-योगीका) आहार है; इसलिये उसके युक्ताहारीपना सिद्ध होता है।

---

१. अनशनस्वभावलक्षणतप = अनशनस्वभाव जिसका लक्षण है ऐसा तप। [जो आत्माके अनशन स्वभावको जानता है उसके अनशनस्वभावलक्षण तप पाया जाता है]

२. योगध्वंस = योगका नाश ['आहार ग्रहण करना आत्माका स्वभाव है' ऐसे परिणामसे परिणमित होना योगध्वंस है। श्रमणके ऐसा योगध्वंस नहीं होता, इसलिये यह युक्त अर्थात् योगी है और इसलिये उसका आहार युक्ताहार अर्थात् योगीका आहार है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ युक्ताहारस्वरूपं विस्तरेणोपदिशति—

एक्कं खलु तं भत्तं अप्पडिपुण्णोदरं जहालद्धं।
चरणं भिक्खेण दिवा ण रसावेक्खं ण मधुमंसं॥२२९॥

एकः खलु स भक्तः अप्रतिपूर्णोदरो यथालब्धः।
भैक्षाचरणेन दिवा न रसापेक्षो न मधुमांसः॥२२९॥

एककाल एवाहारो युक्ताहारः, तावतैव श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरस्य धारणत्वात्। अनेककालस्तु शरीरानुरागसेव्यमानत्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः,

देहेऽपि ममत्वरहितस्तथैव तं देहं तपसा योजयति स नियमेन युक्ताहारविहारो भवतीति॥२२८॥ अथ युक्ताहारत्वं विस्तरेणाख्याति—**एक्कं खलु तं भत्तं** एककाल एव खलु हि स्फुटं स भक्त आहारो युक्ताहारः। कस्मात्। एकभक्तेनैव निर्विकल्पसमाधिसहकारिकारणभूतशरीरस्थितिसंभवात्। स च कथंभूतः। **अप्पडिपुण्णोदरं** यथाशक्त्या न्यूनोदरः। **जहालद्धं** यथालब्धो, न च स्वेच्छालब्धः। **चरणं भिक्खेण**

भावार्थ :—श्रमण दो प्रकारसे युक्ताहारी सिद्ध होता है; (१) शरीर पर ममत्व न होनेसे उसके उचित ही आहार होता है, इसलिये वह युक्ताहारी अर्थात् उचित आहारवाला है। और (२) 'आहारग्रहण आत्माका स्वभाव नहीं है' ऐसा परिणामस्वरूप योग श्रमणके वर्तता होनेसे वह श्रमण युक्त अर्थात् योगी है और इसलिये उसका आहार युक्ताहार अर्थात् योगीका आहार है॥२२८॥

अब युक्ताहारका स्वरूप विस्तारसे उपदेश करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**खलु**] वास्तवमें [**सः भक्तः**] वह आहार (-युक्ताहार) [**एकः**] एक बार [**अप्रतिपूर्णोदरः**] ऊनोदर [**यथालब्धः**] यथालब्ध (-जैसा प्राप्त हो वैसा), [**भैक्षाचरणेन**] भिक्षाचरणसे, [**दिवा**] दिनमें [**न रसापेक्षः**] रसकी अपेक्षासे रहित और [**न मधुमांसः**] मधु-मांस रहित होता है॥२२९॥

टीका :—एकबार आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि उतनेसे ही श्रामण्य पर्यायका सहकारी कारणभूत शरीर टिका रहता है। [एकसे अधिक बार आहार लेना युक्ताहार नहीं है, ऐसा निम्नानुसार दो प्रकारसे सिद्ध होता है :—] (१) शरीरके अनुरागसे ही अनेकबार आहारका सेवन किया जाता है, इसलिये अत्यन्तरूपसे [१]हिंसायतन किया जानेसे कारण युक्त

१. हिंसायतन = हिंसाका स्थान [एकसे अधिकबार आहार करनेमें शरीरका अनुराग होता है, इसलिये वह आहार आत्यंतिक हिंसाका स्थान होता है, क्योंकि शरीरका अनुराग ही स्व-हिंसा है।]

आहार ते अेक ज, उणोदर ने यथा-उपलब्ध छे,
भिक्षा वडे, दिवसे, रसेच्छाहीन, वण-मधुमांस छे. २२९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

शरीरानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य। अप्रतिपूर्णोदर एवाहारो युक्ताहारः, तस्यैवाप्रतिहत-योगत्वात्। प्रतिपूर्णोदरस्तु प्रतिहतयोगत्वेन कथंचित् हिंसायतनीभवन् न युक्तः, प्रतिहत-योगत्वेन न च युक्तस्य। यथालब्ध एवाहारो युक्ताहारः, तस्यैव विशेषप्रियत्वलक्षणानुराग-शून्यत्वात्। अयथालब्धस्तु विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेव्यमानत्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः, विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य। भिक्षाचरणेनैवाहारो युक्ताहारः, तस्यैवारम्भशून्यत्वात्। अभैक्षाचरणेन त्वारम्भसम्भवात्प्रसिद्धहिंसायतनत्वेन न युक्तः, एवं-विधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य। दिवस एवाहारो युक्ताहारः, तदेव सम्यगव-लोकनात्। अदिवसे तु सम्यगवलोकनाभावादनिवार्यहिंसायतनत्वेन न युक्तः,

भिक्षाचरणेनैव लब्धो, न च स्वपाकेन। दिवा दिवैव, न च रात्रौ। ण रसावेक्खं रसापेक्षो न भवति, किंतु सरसविरसादौ समचित्तः। ण मधुमंसं अमधुमांसः, अमधुमांस इत्युपलक्षणेन आचारशास्त्र-कथितपिण्डशुद्धिक्रमेण समस्तायोग्याहाररहित इति। एतावता किमुक्तं भवति। एवंविशिष्टविशेषणयुक्त एवाहारस्तपोधनानां युक्ताहारः। कस्मादिति चेत्। चिदानन्दैकलक्षणनिश्चयप्राणरक्षणभूता रागादि-

(-योग्य) नहीं है; (अर्थात् वह युक्ताहार नहीं है); और (२) अनेकबार आहारका सेवन करनेवाला शरीरानुरागसे सेवन करनेवाला होनेसे वह आहार [१]युक्त (-योगी) का नहीं है (अर्थात् वह युक्ताहार नहीं है।)

[२]अपूर्णोदर आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही [३]प्रतिहत [४]योग रहित है। [पूर्णोदर आहार युक्ताहार नहीं है, ऐसा निम्नानुसार दो प्रकारसे सिद्ध होता है :—] (१) पूर्णोदर आहार तो प्रतिहत योगवाला होनेसे कथंचित् हिंसायतन होता हुआ युक्त (-योग्य) नहीं है; और (२) पूर्णोदर आहार करनेवाला प्रतिहत योगवाला होनेसे वह आहार युक्त (-योगी) का आहार नहीं है।

यथालब्ध आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही (आहार) विशेषप्रियतास्वरूप अनुरागसे शून्य है। (१) [५]अयथालब्ध आहार तो विशेषप्रियतास्वरूप अनुरागसे सेवन किया जाता है, इसलिये अत्यन्तरूपसे हिंसायतन किया जानेके कारण युक्त (-योग्य) नहीं है; और अयथालब्ध आहारका सेवन करनेवाला विशेषप्रियतास्वरूप अनुराग द्वारा सेवन करनेवाला होनेसे वह आहार युक्त (-योगी) का नहीं है।

१. युक्त = आत्मस्वभावमें लगा हुआ; योगी। २. अपूर्णोदर = पूरा पेट न भरकर; ऊनोदर करना।

३. प्रतिहत = हनित, नष्ट, रुका हुआ, विघ्नको प्राप्त।

४. योग = आत्मस्वभावमें जुड़ना।

५. अयथालब्ध = जैसा मिल जाय वैसा नहीं, किन्तु अपनी पसंदगीका; स्वेच्छालब्ध।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य। अरसापेक्ष एवाहारो युक्ताहारः, तस्यैवान्तः-शुद्धिसुन्दरत्वात्। रसापेक्षस्तु अन्तरशुद्ध्या प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः, अन्तर-शुद्धिसेवकत्वेन न च युक्तस्य। अमधुमांस एवाहारो युक्ताहारः, तस्यैवाहिंसायतनत्वात्। समधुमांसस्तु हिंसायतनत्वान्न युक्तः, एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य। मधुमांसमत्र हिंसायतनोपलक्षणं, तेन समस्तहिंसायतनशून्य एवाहारो युक्ताहारः॥२२९॥

विकल्पोपाधिरहिता या तु निश्चयनयेनाहिंसा, तत्साधकरूपा बहिरङ्गपरजीवप्राणव्यपरोपणनिवृत्तिरूपा द्रव्याहिंसा च, सा द्विविधापि तत्र युक्ताहारे संभवति। यस्तु तद्विपरीतः स युक्ताहारो न भवति। कस्मादिति चेत्। तद्विलक्षणभूताया द्रव्यभावरूपाया हिंसायाः सद्भावादिति॥२२९॥ अथ विशेषेण मांसदूषणं कथयति—

पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु मंसपेसीसु।
संतत्तियमुववादो तज्जादीणं णिगोदाणं॥★३२॥
जो पक्कमपक्कं वा पेसीं मंसस्स खादि फासदि वा।
सो किल णिहणदि पिंडं जीवाणमणेगकोडीणं॥★३३॥ (जुम्मं)

भिक्षाचरणसे आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही आरंभशून्य है। (१) अभिक्षाचरणसे (-भिक्षाचरण रहित) जो आहार उसमें आरम्भका सम्भव होनेसे हिंसायतनपना प्रसिद्ध है, अतः वह आहार युक्त (-योग्य) नहीं है; और (२) ऐसे आहारके सेवनमें (सेवन करनेवालेकी) अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त (-प्रगट) होनेसे वह आहार युक्त (योगी) का नहीं है।

दिनका आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही सम्यक् (बराबर) देखा जा सकता है। (१) अदिवस (दिनके अतिरिक्त समयमें) आहार तो सम्यक् नहीं देखा जा सकता, इसलिये उसके हिंसायतनपना अनिवार्य होनेसे वह आहार युक्त (-योग्य) नहीं है; और (२) ऐसे आहारके सेवनमें अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त होनेसे आहार युक्त (-योगी) का नहीं है।

रसकी अपेक्षासे रहित आहार ही युक्ताहार है। क्योंकि वही अन्तरंग शुद्धिसे सुन्दर है। (१) रसकी अपेक्षावाला आहार तो अन्तरंग अशुद्धि द्वारा अत्यन्तरूपसे हिंसायतन किया जानेके कारण युक्त (-योग्य) नहीं है; और (२) उसका सेवन करनेवाला अन्तरंग अशुद्धि पूर्वक सेवन करता है इसलिये वह आहार युक्त (-योगी) का नहीं है।

मधु-मांस रहित आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि उसीके हिंसायतनपनेका अभाव है। (१) मधु-मांस सहित आहार तो हिंसायतन होनेसे युक्त (-योग्य) नहीं है; और (२) ऐसे आहारसे सेवनमें अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त होनेसे वह आहार युक्त (-योगी) का नहीं है। यहाँ मधु-मांस हिंसायतनका उपलक्षण है इसलिये ('मधु-मांस रहित आहार युक्ताहार है' इस कथनसे ऐसा समझना चाहिये कि) समस्त हिंसायतनशून्य आहार ही युक्ताहार है॥२२९॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथोत्सर्गापवादमैत्रीसौस्थित्यमाचरणस्योपदिशति—

बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरदु सजोग्गं मूलच्छेदो जधा ण हवदि॥२३०॥

बालो वा वृद्धो वा श्रमाभिहतो वा पुनर्ग्लानो वा।
चर्यां चरतु स्वयोग्यां मूलच्छेदो यथा न भवति॥२३०॥

भणित इत्यध्याहारः। स कः। **उववादो** व्यवहारनयेनोत्पादः। किंविशिष्टः। **संतत्तियं** सान्ततिको निरन्तरः। केषां संबन्धी। **णिगोदाणं** निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावानामनादिनिधनत्वेनोत्पादव्यय-रहितानामपि निगोदजीवानाम्। पुनरपि कथंभूतानाम्। **तज्जादीणं** तद्वर्णतद्गन्धतद्रसतत्स्पर्शत्वेन तज्जातीनां मांसजातीनाम्। कास्वधिकरणभूतासु। **मंसपेसीसु** मांसपेशीषु मांसखण्डेषु। कथंभूतासु। **पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु पक्कासु चामासु च विपच्यमानास्विति** प्रथमगाथा। **जो पक्कमपक्कं वा** यः कर्ता पक्कामपक्कां वा **पेसीं** पेशीं खण्डम्। कस्य। **मंसस्स** मांसस्य। **खादि** निजशुद्धात्मभावनोत्पन्न-सुखसुधाहारमलभमानः सन् खादति भक्षति, **फासदि** वा स्पर्शति वा, **सो किल णिहणदि पिंडं** स कर्ता किल लोकोक्त्या परमागमोक्त्या वा निहन्ति पिण्डम्। केषाम्। **जीवाणं** जीवानाम्। कति-संख्योपेतानाम्। **अणेगकोडीणं** अनेककोटीनामिति। अत्रेदमुक्तं भवति—शेषकन्दमूलाद्याहाराः केचनानन्त-काया अप्यग्निपक्वाः सन्तः प्रासुका भवन्ति, मांसं पुनरनन्तकायं भवति तथैव चाग्निपक्वमपक्वं पच्यमानं वा प्रासुकं न भवति। तेन कारणेनाभोज्यमभक्षणीयमिति॥"३२-३३॥ अथ पाणिगताहारः प्रासुकोऽप्यन्यस्मै न दातव्य इत्युपादिशति—

अप्पडिकुट्ठं पिंडं पाणिगयं णेव देयमण्णस्स।
दत्ता भोत्तुमजोग्गं भुत्तो वा होदि पडिकुट्ठो॥★३४॥

अब उत्सर्ग और अपवादकी मैत्री द्वारा आचरणके सुस्थितपनेका उपदेश करते है :—

अन्वयार्थ :—[बालः वा] बाल, [वृद्धः वा] वृद्ध [श्रमाभिहतः वा] [१]श्रांत [पुनः ग्लानः वा] या [२]ग्लान श्रमण [मूलच्छेदः] मूलका छेद [यथा न भवति] जैसा न हो उसप्रकारसे [स्वयोग्यां] अपने योग्य [चर्यां चरतु] आचरण आचरो॥२३०॥

---

१. श्रान्त = श्रमित; परिश्रमी थका; हुआ।

२. ग्लान = व्याधिग्रस्त; रोगी; दुर्बल।

वृद्धत्व, बाळपणा विषे, ग्लानत्व, श्रांत दशा विषे,
चर्या चरो निजयोग्य, जे रीत मूळछेद न थाय छे. २३०.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

बालवृद्धश्रान्तग्लानेनापि संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमेवाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गः। बालवृद्धश्रान्तग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्ध-श्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वेवाचरणमाचरणीयमित्यपवादः। बालवृद्धश्रान्तग्लानेन संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमति-कर्कशमाचरणमाचरता शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात् तथा बालवृद्धश्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वप्याचरणमाचरणीयमित्यपवादसापेक्ष उत्सर्गः। बालवृद्धश्रान्तग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा

अप्पडिकुट्ठं पिंडं पाणिगयं णेव देयमण्णस्स अप्रतिकृष्ट आगमाविरुद्ध आहारः पाणिगतो हस्तगतो नैव देयो, न दातव्योऽन्यस्मै, दत्ता भोत्तुमजोग्गं दत्वा पश्चाद्भोक्तुमयोग्यं, भुत्तो वा होदि पडिकुट्ठो कथंचित् भुक्तो वा, भोजनं कृतवान्, तर्हि प्रतिकृष्टो भवति, प्रायश्चित्तयोग्यो भवतीति। अयमत्र भावः— हस्तगताहारं योऽसावन्यस्मै न ददाति तस्य निर्मोहात्मतत्त्वभावनारूपं निर्मोहत्वं ज्ञायत इति॥"३४॥ अथ निश्चयव्यवहारसंज्ञयोरुत्सर्गापवादयोः कथंचित्परस्परसापेक्षभावं स्थापयन् चारित्रस्य रक्षां दर्शयति—चरदु चरतु, आचरतु। किम्। चरियं चारित्रमनुष्ठानम्। कथंभूतम्। सजोग्गं स्वयोग्यं, स्वकीयावस्थायोग्यम्। कथं यथा भवति। मूलच्छेदो जधा ण हवदि मूलच्छेदो यथा न भवति। स कः कर्ता चरति। बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा बालो वा, वृद्धो वा, श्रमेणाभिहतः पीडितः श्रमाभिहतो वा, ग्लानो व्याधिस्थो वेति। तद्यथा—उत्सर्गापवादलक्षणं कथ्यते तावत्। स्वशुद्धात्मनः

टीका :—बाल-वृद्ध-श्रमित या ग्लान (श्रमण) को भी संयमका—जो कि शुद्धात्मतत्त्वका साधन होनेसे मूलभूत है उसका—छेद जैसे न हो उसप्रकार, संयत ऐसे अपने योग्य अति कर्कश (-कठोर) आचरण ही आचरना; इसप्रकार उत्सर्ग है।

बाल-वृद्ध-श्रमित या ग्लान (श्रमण) को भी शरीरका—जो कि शुद्धात्मतत्त्वके साधनभूत संयमका साधन होनेसे मूलभूत है उसका—छेद जैसे न हो उसप्रकार, बाल-वृद्ध-श्रांत-ग्लानको अपने योग्य मृदु आचरण ही आचरना; इसप्रकार अपवाद है।

बाल-वृद्ध-श्रांत-ग्लानके संयमका—जो कि शुद्धात्मतत्त्वका साधन होनेसे मूलभूत है उसका—छेद जैसे न हो उस प्रकारका संयत ऐसा अपने योग्य अति कठोर आचरण आचरते हुए, (उसके) शरीरका—जो कि शुद्धात्मतत्त्वके साधनभूत संयमका साधन होनेसे मूलभूत है उसका (भी)—छेद जैसे न हो उसप्रकार बाल-वृद्ध-श्रांत-ग्लान ऐसे अपने योग्य मृदु आचरण भी आचरना। इसप्रकार [१]अपवादसापेक्ष उत्सर्ग है।

बाल-वृद्ध-श्रांत-ग्लानको शरीरका—जो कि शुद्धात्मतत्त्वके साधनभूत संयमका

१. अपवादसापेक्ष = अपवादकी अपेक्षा सहित।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

स्यात्तथा बालवृद्धश्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वाचरणमाचरता संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमप्याचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गसापेक्षोऽपवादः। अतः सर्वथोत्सर्गापवादमैत्र्या सौस्थित्यमाचरणस्य विधेयम्॥२३०॥

अथोत्सर्गापवादविरोधदौःस्थ्यमाचरणस्योपदिशति—

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो॥२३१॥

सकाशादन्यद्बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरूपं सर्वं त्याज्यमित्युत्सर्गो निश्चयनयः सर्वपरित्यागः परमोपेक्षासंयमो वीतरागचारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थः। तत्रासमर्थः पुरुषः शुद्धात्मभावनासहकारिभूतं किमपि प्रासुकाहारज्ञानोपकरणादिकं गृह्णातीत्यपवादो व्यवहारनय एकदेशपरित्यागः तथाचापहृतसंयमः सरागचारित्रं शुभोपयोग इति यावदेकार्थः। तत्र शुद्धात्मभावनानिमित्तं सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गे दुर्धरानुष्ठाने प्रवर्तमानस्तपोधनः शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथा छेदो विनाशो न भवति तथा किमपि प्रासुकाहारादिकं गृह्णातीत्यपवादसापेक्ष उत्सर्गो भण्यते। यदा पुनरपवादलक्षणेऽपहृतसंयमे प्रवर्तते तदापि शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथोच्छेदो विनाशो न भवति तथोत्सर्गसापेक्षत्वेन प्रवर्तते। तथा प्रवर्तते इति कोऽर्थः। यथा संयमविराधना न भवति तथेत्युत्सर्गसापेक्षोऽपवाद इत्यभिप्रायः॥२३०॥ अथापवादनिरपेक्षमुत्सर्गं तथैवोत्सर्गनिरपेक्षमपवादं च

साधन होनेसे मूलभूत है उसका—छेद जैसे न हो उसप्रकारसे बाल-वृद्ध-श्रांत-ग्लान ऐसे अपने योग्य मृदु आचरण आचरते हुए, (उसके) संयमका—जो कि शुद्धात्मतत्वका साधन होनेसे मूलभूत है उसका (भी)—छेद जैसे न हो उसप्रकारसे संयत ऐसा अपने योग्य अतिकर्कश आचरण भी आचरना; इसप्रकार उत्सर्गसापेक्ष अपवाद है।

इससे (ऐसा कहा है कि) सर्वथा (सर्वप्रकारसे) उत्सर्ग और अपवादकी मैत्री द्वारा आचरणका सुस्थितपना करना चाहिये॥२३०॥

अब, उत्सर्ग और अपवादके विरोध (-अमैत्री) से आचरणका [१]दुःस्थितपना होता है, ऐसा उपदेश करते हैं :—

---

१. दुःस्थित = खराब स्थितिवाला; नष्ट।

जो देश-काळ तथा क्षमा-श्रम-उपधिने मुनि जाणीने
वर्ते आहारविहारमां, तो अल्पलेपी श्रमण ते. २३१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

आहारे वा विहारे देशं कालं श्रमं क्षमामुपधिम्।
ज्ञात्वा तान् श्रमणो वर्तते यद्यल्पलेपी सः॥२३१॥

अत्र क्षमाग्लानत्वहेतुरूपवासः, बालवृद्धत्वाधिष्ठानं शरीरमुपधिः, ततो बालवृद्ध-श्रान्तग्लाना एव त्वाकृष्यन्ते। अथ देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहार-विहारयोः प्रवर्तमानस्य मृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्पो लेपो भवत्येव, तद्वरमुत्सर्गः। देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्तमानस्य मृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्प एव लेपो भवति, तद्वरमपवादः। देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेप-

निषेधयंश्चारित्ररक्षणाय व्यतिरेकद्वारेण तमेवार्थं द्रढयति–वट्टदि वर्तते प्रवर्तते। स कः कर्ता। समणो शत्रुमित्रादिसमचित्तः श्रमणः। यदि किम्। जदि अप्पलेवी सो यदि चेदल्पलेपी स्तोकसावद्यो भवति। कयोर्विषययोर्वर्तते। आहारे व विहारे तपोधनयोग्याहारविहारयोः। किं कृत्वा पूर्वं। जाणित्ता ज्ञात्वा। कान्। ते तान् कर्मतापन्नान्; देसं कालं समं खमं उवधिं देशं, कालं, मार्गादिश्रमं, क्षमां क्षमतामुपवासादिविषये शक्तिं, उपधिं बालवृद्धश्रान्तग्लानसंबन्धिनं शरीरमात्रोपधिं परिग्रहमिति पञ्च देशादीन् तपोधनाचरणसहकारिभूतानिति। तथाहि—पूर्वकथितक्रमेण तावदुर्धरानुष्ठानरूपोत्सर्गे वर्तते; तत्र च प्रासुकाहारादिग्रहणनिमित्तमल्पलेपं दृष्ट्वा यदि न प्रवर्तते तदा आर्तध्यानसंक्लेशेन शरीरत्यागं

अन्वयार्थ :—[यदि] यदि [श्रमणः] श्रमण [आहारे वा विहारे] आहार अथवा विहारमें [देशं] देश, [कालं] काल, [श्रमं] श्रम, [क्षमां] [१]क्षमता तथा [उपधिं] उपधि, [तान् ज्ञात्वा] इनको जानकर [वर्तते] प्रवर्ते [सः अल्पलेपी] तो वह अल्पलेपी होता है॥२३१॥

टीका :—क्षमता तथा ग्लानताका हेतु उपवास है और बाल तथा वृद्धत्वका अधिष्ठान उपधि–शरीर है, इसलिये यहाँ (टीकामें) बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लान ही लिये गये हैं। (अर्थात् मूल गाथामें जो क्षमा, उपधि इत्यादि शब्द हैं उनका आशय खींचकर टीकामें 'बाल, वृद्ध, श्रांत, ग्लान' शब्द ही प्रयुक्त किये गये हैं)।

[२]देशकालज्ञको भी, यदि वह बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लानत्वके अनुरोधसे (अर्थात् बालत्व, वृद्धत्व, श्रांतत्व अथवा ग्लानत्वका अनुसरण करके) आहार–विहारमें प्रवृत्ति करे तो मृदु आचरणमें प्रवृत्त होनेसे अल्प लेप होता ही है, (–लेपका सर्वथा अभाव नहीं होता), इसलिये उत्सर्ग अच्छा है।

देशकालज्ञको भी, यदि वह बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लानत्वके अनुरोधसे आहार–विहारमें प्रवृत्ति करे तो मृदु आचरणमें प्रवृत्त होनेसे अल्प ही लेप होता है। (–विशेष लेप नहीं होता), इसलिये अपवाद अच्छा है।

१. क्षमता = शक्ति; सहनशक्ति; धीरज. २. देशकालज्ञ = देश–कालको जाननेवाला।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

भयेनाप्रवर्तमानस्यातिकर्कशाचरणीभूयाक्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वान्तसमस्त-संयमामृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाशक्यप्रतिकारो महान् लेपो भवति, तन्न श्रेयानपवाद-निरपेक्ष उत्सर्गः। देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपत्वं विगणय्य यथेष्टं प्रवर्तमानस्य मृद्वाचरणीभूय संयमं विराध्यासंयतजनसमानीभूतस्य तदात्वे तपसोऽनवकाशतयाशक्यप्रतिकारो महान् लेपो भवति, तन्न श्रेयानुत्सर्गनिरपेक्षोऽपवादः। अतः सर्वथोत्सर्गापवादविरोधदौस्थित्यमाचरणस्य प्रतिषेध्यं, तदर्थमेव सर्वथानुगम्यश्च परस्पर-सापेक्षोत्सर्गापवादविजृम्भितवृत्तिः स्याद्वादः ॥२३१॥

कृत्वा पूर्वकृतपुण्येन देवलोके समुत्पद्यते। तत्र संयमाभावान्महान् लेपो भवति। ततः कारणादपवाद-निरपेक्षमुत्सर्गं त्यजति, शुद्धात्मभावनासाधकमल्पलेपं बहुलाभमपवादसापेक्षमुत्सर्गं स्वीकरोति। तथैव च पूर्वसूत्रोक्तक्रमेणापहृतसंयमशब्दवाच्येऽपवादे प्रवर्तते तत्र च प्रवर्तमानः सन् यदि कथंचिदौषध-पथ्यादिसावद्यभयेन व्याधिव्यथादिप्रतीकारमकृत्वा शुद्धात्मभावनां न करोति तर्हि महान् लेपो भवति; अथवा प्रतीकारे प्रवर्तमानोऽपि हरीतकीव्याजेन गुडभक्षणवदिन्द्रियसुखलाम्पट्येन संयमविराधनां करोति तदापि महान् लेपो भवति। ततः कारणादुत्सर्गनिरपेक्षमपवादं त्यक्त्वा शुद्धात्मभावनारूपं शुभोपयोगरूपं वा संयममविराधयन्नौषधपथ्यादिनिमित्तोत्पन्नाल्पसावद्यमपि बहुगुणराशिमुत्सर्गसापेक्षम-

---

देशकालज्ञको भी, यदि वह बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लानत्वके अनुरोधसे, जो आहार–विहार है, उससे होनेवाले अल्पलेपके भयसे उसमें प्रवृत्ति न करे तो (अर्थात् अपवादके आश्रयसे होनेवाले अल्पबंधके भयसे उत्सर्गका हठ करके अपवादमें प्रवृत्त न हो तो), अति कर्कश आचरणरूप होकर अक्रमसे शरीरपात करके देवलोक प्राप्त करके जिसने समस्त संयमामृतका समूह वमन कर डाला है उसे तपका अवकाश न रहनेसे, जिसका प्रतीकार अशक्य है ऐसा महान लेप होता है, इसलिये अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग श्रेयस्कर नहीं है।

देशकालज्ञको भी, यदि वह बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लानत्वके अनुरोधसे जो आहारविहार है, उससे होनेवाले अल्पलेपको न गिनकर उसमें [१]यथेष्ट प्रवृत्ति करे तो (अर्थात् अपवादसे होनेवाले अल्पबन्धके प्रति असावधान होकर उत्सर्गरूप ध्येयको चूककर अपवादमें स्वच्छन्दपूर्वक प्रवर्ते तो), मृदु आचरणरूप होकर संयम विरोधीको–असंयतजनके समान हुए उसको–उस समय तपका अवकाश न रहनेसे, जिसका प्रतीकार अशक्य है ऐसा महान् लेप होता है। इसलिये उत्सर्ग निरपेक्ष अपवाद श्रेयस्कर नहीं है।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) उत्सर्ग और अपवादके विरोधसे होनेवाला जो आचरणका दुःस्थितपना वह सर्वथा निषेध्य (त्याज्य) है, और इसीलिये परस्पर सापेक्ष उत्सर्ग और अपवादसे जिसकी वृत्ति (-अस्तित्व, कार्य) प्रगट होती है ऐसा स्याद्वाद सर्वथा अनुगम्य (अनुसरण करने योग्य) है।

---

१. यथेष्ट = स्वच्छंदतया, इच्छाके अनुसार।

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

*इत्येवं चरणं पुराणपुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरै-
रुत्सर्गादपवादतश्च विचरद्भह्वीः पृथग्भूमिकाः।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्तिमतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम्॥१५॥

—इत्याचरणप्रज्ञापनं समाप्तम्।

पवादं स्वीकरोतीत्यभिप्रायः॥२३१॥ एवं 'उवयरणं जिणमग्गे' इत्याद्येकादशगाथाभिरपवादस्य विशेष-विवरणरूपेण चतुर्थस्थलं व्याख्यातम्। इति पूर्वोक्तक्रमेण 'ण हि णिरवेक्खो चागो' इत्यादित्रिंशद्गाथाभिः स्थलचतुष्टयेनापवादनामा द्वितीयान्तराधिकारः समाप्तः। अतः परं चतुर्दशगाथापर्यन्तं श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाधिकारः कथ्यते। तत्र चत्वारि स्थलानि भवन्ति। तेषु प्रथमतः आगमाभ्यासमुख्यत्वेन 'एयग्गगदो समणो' इत्यादि यथाक्रमेण प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयम्। तदनन्तरं भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूपमेव मोक्षमार्ग इति व्याख्यानरूपेण 'आगमपुव्वा दिट्ठी' इत्यादि द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टयम्। अतः परं द्रव्यभावसंयमकथनरूपेण 'चागो य अणारंभो' इत्यादि तृतीयस्थले गाथाचतुष्टयम्। तदनन्तरं

भावार्थ :—जब तक शुद्धोपयोगमें ही लीन न हो जाया जाय तब तक श्रमणको आचरणकी सुस्थितिके लिये उत्सर्ग और अपवादकी मैत्री साधनी चाहिये। उसे अपनी निर्बलताका लक्ष रखे बिना मात्र उत्सर्गका आग्रह रखकर केवल अति कर्कश आचरणका हठ नहीं करना चाहिये; तथा उत्सर्गरूप ध्येयको चूककर मात्र अपवादके आश्रयसे केवल मृदु आचरणरूप शिथिलताका भी सेवन नहीं करना चाहिये। किन्तु इस प्रकारका वर्तन करना चाहिये जिसमें हठ भी न हो और शिथिलताका भी सेवन न हो। सर्वज्ञ भगवानका मार्ग अनेकान्त है। अपनी दशाकी जाँच करके जैसे भी लाभ हो उसप्रकारसे वर्तन करनेका भगवानका उपदेश है।

अपनी चाहे जो (सबल या निर्बल) स्थिति हो, तथापि एक ही प्रकारसे वर्तना, ऐसा जिनमार्ग नहीं है॥२३१॥

अब श्लोक द्वारा आत्मद्रव्यमें स्थिर होनेकी बात कहकर 'आचरणप्रज्ञापन' पूर्ण किया जाता है।

अर्थ :—इसप्रकार विशेष आदरपूर्वक पुराण पुरुषोंके द्वारा सेवित, उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओंमें व्याप्त जो चारित्र उसको यति प्राप्त करके, क्रमशः अतुल निवृत्ति करके, चैतन्यसामान्य और चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है ऐसे निजद्रव्यमें सर्वतः स्थिति करो।

इसप्रकार 'आचरण प्रज्ञापन' समाप्त हुआ।

★ शार्दूलविक्रीड़ित छंद

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ श्रामण्यापरनाम्नो मोक्षमार्गस्यैकाग्र्यलक्षणस्य प्रज्ञापनम्। तत्र तन्मूलसाधनभूते प्रथममागम एव व्यापारयति—

एयग्गगदो समणो एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु।
णिच्छित्ती आगमदो आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा॥२३२॥

ऐकाग्र्यगतः श्रमणः ऐकाग्र्यं निश्चितस्य अर्थेषु।
निश्चितिरागमत आगमचेष्टा ततो ज्येष्ठा॥२३२॥

श्रमणो हि तावदैकाग्र्यगत एव भवति। ऐकाग्र्यं तु निश्चितार्थस्यैव भवति। अर्थनिश्चयस्त्वागमादेव भवति। तत आगम एव व्यापारः प्रधानतरः, न चान्या गतिरस्ति। यतो न खल्वागममन्तरेणार्था निश्चेतुं शक्यन्ते, तस्यैव हि त्रिसमयप्रवृत्तत्रिलक्षणसकलपदार्थ-सार्थयाथात्म्यावगमसुस्थितान्तरंगगम्भीरत्वात्। न चार्थनिश्चयमन्तरेणैकाग्र्यं सिद्ध्येत्,

---

निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गोपसंहारमुख्यत्वेन 'मुज्झदि वा' इत्यादि चतुर्थस्थले गाथाद्वयम्। एवं स्थलचतुष्टयेन तृतीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा—अथैकाग्र्यगतः श्रमणो भवति।

अब, श्रामण्य जिसका दूसरा नाम है ऐसे एकाग्रतालक्षणवाले मोक्षमार्गका प्रज्ञापन है। उसमें प्रथम, उसके (-मोक्षमार्गके) मूल साधनभूत आगममें व्यापार (-प्रवृत्ति) कराते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**श्रमणः**] श्रमण [**ऐकाग्र्यतः**] एकाग्रताको प्राप्त होता है; [**ऐकाग्र्यं**] एकाग्रता [**अर्थेषु निश्चितस्य**] पदार्थोंके निश्चयवान्के होती है; [**निश्चितिः**] (पदार्थोंका) निश्चय [**आगमतः**] आगम द्वारा होता है; [**ततः**] इसलिये [**आगमचेष्टा**] आगममें व्यापार [**ज्येष्ठा**] मुख्य है॥२३२॥

टीका :—प्रथम तो, श्रमण वास्तवमें एकाग्रताको प्राप्त ही होता है; एकाग्रता पदार्थोंके निश्चयवान्के ही होती है; और पदार्थोंका निश्चय आगम द्वारा ही होता है; इसलिये आगममें ही व्यापार प्रधानतर (-विशेष प्रधान) है; दूसरी गति (-अन्य कोई मार्ग) नहीं है। उसका कारण यह है कि :—

वास्तवमें आगमके बिना पदार्थोंका निश्चय नहीं किया जा सकता; क्योंकि आगम ही, जिसके त्रिकाल (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप) तीन लक्षण प्रवर्तते हैं ऐसे सकलपदार्थसार्थके यथातथ्य ज्ञान द्वारा सुस्थित अंतरंगसे गम्भीर है (अर्थात् आगमका ही अंतरंग, सर्व पदार्थोंके

श्रामण्य ज्यां ऐकाग्र्य, ने ऐकाग्र्य वस्तुनिश्चये,
निश्चय वने आगम वडे, आगमप्रवर्तन मुख्य छे. २३२.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

यतोऽनिश्चितार्थस्य कदाचिन्निश्चिकीर्षाकुलितचेतसः समन्ततो दोलायमानस्यात्यन्ततरलतया, कदाचिच्चिकीर्षाज्वरपरवशस्य विश्वं स्वयं सिसृक्षोर्विश्वव्यापारपरिणतस्य प्रतिक्षणविजृम्भमाणक्षोभतया, कदाचिद्बुभुक्षाभावितस्य विश्वं स्वयं भोग्यतयोपादाय रागद्वेषदोषकल्माषितचित्तवृत्तेरिष्टानिष्टविभागेन प्रवर्तितद्वैतस्य प्रतिवस्तुपरिणममानस्यात्यन्तविसंष्ठुलतया, कृतनिश्चयनिःक्रियनिर्भोगं युगपदापीतविश्वमप्यविश्वतयैकं भगवन्तमात्मानमपश्यतः सततं वैयग्र्यमेव स्यात्। न चैकाग्र्यमन्तरेण श्रामण्यं सिद्ध्येत्, यतोऽनैकाग्र्यस्यानेकमेवेदमिति पश्यतस्तथाप्रत्ययाभिनिविष्टस्यानेकमेवेदमिति जानतस्तथानुभूतिभावितस्यानेकमेवेदमिति प्रत्यर्थविकल्पव्यावृत्तचेतसा सन्ततं प्रवर्तमानस्य तथावृत्तिदुःस्थितस्य चैकात्मप्रतीत्यनुभूति-

तच्चैकाग्र्यमागमपरिज्ञानादेव भवतीति प्रकाशयति—एयग्गदो समणो ऐकाग्र्यगतः श्रमणो भवति। अत्रायमर्थः—जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयपरिच्छित्तिसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानलक्षणनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपमैकाग्र्यं भण्यते। तत्र गतस्तन्मयत्वेन परिणतः

समूहके यथार्थज्ञान द्वारा सुस्थित है इसलिये आगम ही समस्त पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानसे गम्भीर है)।

और, पदार्थोंके निश्चयके बिना एकाग्रता सिद्ध नहीं होती; क्योंकि, जिसे पदार्थोंका निश्चय नहीं है वह (१) कदाचित् निश्चय करनेकी इच्छासे आकुलताप्राप्त चित्तके कारण सर्वतः दोलायमान (-डावाँडोल) होनेसे अत्यन्त तरलता (चंचलता) प्राप्त करता है, (२) कदाचित् करनेकी इच्छारूप ज्वरसे परवश होता हुआ विश्वको (-समस्त पदार्थोंको) स्वयं सर्जन करनेकी इच्छा करता हुआ विश्वव्यापाररूप (-समस्त पदार्थोंकी प्रवृत्तिरूप) परिणमित होनेसे प्रतिक्षण क्षोभकी प्रगटताको प्राप्त होता है, और (३) कदाचित् भोगनेकी इच्छासे भावित होता हुआ विश्वको स्वयं भोग्यरूप ग्रहण करके, रागद्वेषरूप दोषसे कलुषित चित्तवृत्तिके कारण (वस्तुओंमें) इष्ट-अनिष्ट विभाग द्वारा द्वैतको प्रवर्तित करता हुआ प्रत्येक वस्तुरूप परिणमित होनेसे अत्यन्त अस्थिरताको प्राप्त होता है, इसलिये [-उपरोक्त तीन कारणोंसे] उस अनिश्चयी जीवके (१) कृतनिश्चय, (२) निष्क्रिय और (३) निर्भोग ऐसे भगवान आत्माको—जो कि युगपत् विश्वको पी जानेवाला होने पर भी विश्वरूप न होनेसे एक है उसे—नहीं देखनेसे सतत व्यग्रता ही होती है, (-एकाग्रता नहीं होती)।

और एकाग्रताके बिना श्रामण्य सिद्ध नहीं होता; क्योंकि जिसके एकाग्रता नहीं है वह जीव (१) 'यह अनेक ही है' ऐसा देखता (-श्रद्धान करता) हुआ उसप्रकारकी प्रतीतिमें [१]अभिनिविष्ट होता है; (२) 'यह अनेक ही है' ऐसा जानता हुआ उसप्रकारकी अनुभूतिसे भावित होता है, और (३) यह अनेक ही है' इसप्रकार प्रत्येक पदार्थके विकल्पसे खण्डित (-छिन्नभिन्न) चित्त सहित सतत् प्रवृत्त होता हुआ उसप्रकारकी [२]वृत्तिसे दुःस्थित होता है,

१. अभिनिविष्ट = आग्रही, दृढ़। २. वृत्ति = वर्तना; चारित्र।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

वृत्तिस्वरूपसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतिप्रवृत्तदृशिज्ञप्तिवृत्तिरूपात्मतत्त्वैकाग्र्याभावात् शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपं श्रामण्यमेव न स्यात्। अतः सर्वथा मोक्षमार्गापरनाम्नः श्रामण्यस्य सिद्धये भगवदर्हत्सर्वज्ञोपज्ञे प्रकटानेकान्तकेतने शब्दब्रह्मणि निष्णातेन मुमुक्षुणा भवितव्यम्॥२३२॥

अथागमहीनस्य मोक्षाख्यं कर्मक्षपणं न सम्भवतीति प्रतिपादयति—

श्रमणो भवति। **एयग्गं णिच्छिदस्स** ऐकाग्र्यं पुनर्निश्चितस्य तपोधनस्य भवति। केषु। **अत्थेसु** टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतिष्वर्थेषु। **णिच्छित्ती आगमदो** सा च पदार्थनिश्चित्तिरागमतो भवति। तथाहि—जीवभेदकर्मभेदप्रतिपादकागमाभ्यासाद्भवति, न केवलमागमाभ्यासात्तथैवागमपदसारभूताच्चिदानन्दैकपरमात्मतत्त्वप्रकाशकादध्यात्माभिधानात्परमागमाच्च पदार्थपरिच्छित्तिर्भवति। **आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा** ततः कारणादेवमुक्तलक्षणागमे परमागमे च चेष्टा प्रवृत्तिः ज्येष्ठा श्रेष्ठा प्रशस्येत्यर्थः॥२३२॥ अथागमपरिज्ञानहीनस्य कर्मक्षपणं न भवतीति प्ररूपयति—**आगमहीणो**

इसलिये उसे एक आत्माकी प्रतीति–अनुभूति–वृत्तिस्वरूप सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र परिणतिरूप प्रवर्तमान जो [१]दृशिज्ञप्ति–वृत्तिरूप आत्मतत्त्वमें एकाग्रता है उसका अभाव होनेसे शुद्धात्मतत्वप्रवृत्तिरूप श्रामण्य हो (शुद्धात्मतत्वमें प्रवृत्तिरूप मुनिपना ही) नहीं होता।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) मोक्षमार्ग जिसका दूसरा नाम है ऐसे श्रामण्यकी सर्वप्रकारसे सिद्धि करनेके लिये मुमुक्षुको भगवान् अर्हन्त सर्वज्ञसे उपज्ञ (-स्वयं जानकर कहे गये) शब्दब्रह्ममें—जिसका कि अनेकान्तरूपी केतन (चिह्न–ध्वज–लक्षण) प्रगट है उसमें—निष्णात होना चाहिये।

भावार्थ :—आगमके विना पदार्थोंका निश्चय नहीं होता, पदार्थोंके निश्चयके विना अश्रद्धाजनित तरलता, परकर्तृत्वाभिलाषाजनित क्षोभ और परभोक्तृत्वाभिलाषाजनित अस्थिरताके कारण एकाग्रता नहीं होती; और एकाग्रताके विना एक आत्मामें श्रद्धान–ज्ञान–वर्तनरूप प्रवर्तमान शुद्धात्मप्रवृत्ति न होनेसे मुनिपना नहीं होता, इसलिये मोक्षार्थीका प्रधान कर्त्तव्य [२]शब्दब्रह्मरूप आगममें प्रवीणता प्राप्त करना ही है॥२३२॥

अब आगमहीनके मोक्षाख्य (मोक्ष नामसे कहा जानेवाला) कर्मक्षय नहीं होता, ऐसा प्रतिपादन करते हैं :—

---

१. दृशि = दर्शन।

२. शब्दब्रह्म = परमब्रह्मरूप वाच्यका वाचक द्रव्य श्रुत। [इन गाथाओंमें सर्वज्ञोपज्ञ समस्त द्रव्यश्रुतको सामान्यतया आगम कहा गया है। कभी द्रव्यश्रुतके 'आगम' और 'परमागम' ऐसे दो भेद भी किये जाते हैं; वहाँ जीवभेदों और कर्मभेदोंके प्रतिपादक द्रव्यश्रुतको 'आगम' कहा जाता है, और समस्त द्रव्यश्रुतके सारभूत चिदानन्द एक परमात्मतत्त्वके प्रकाशक अध्यात्मद्रव्यश्रुतको 'परमागम' कहा जाता है।]

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि।
अविजाणंतो अत्थे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू॥२३३॥

आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं विजानाति।
अविजानन्नर्थान् क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुः॥२३३॥

न खल्वागममन्तरेण परात्मज्ञानं परमात्मज्ञानं वा स्यात्; न च परात्मज्ञानशून्यस्य परमात्मज्ञानशून्यस्य वा मोहादिद्रव्यभावकर्मणां ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां वा क्षपणं स्यात्। तथा हि—न तावन्निरागमस्य निरवधिभवापगाप्रवाहवाहिमहामोहमलमलीमसस्यास्य जगतः

समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं वा विजानाति; अविजाणंतो अत्थे अविजानन्नर्थान्परमात्मादिपदार्थान् खवेदि कम्माणि किध भिक्खू क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुः, न कथमपि इति। इतो विस्तरः—"गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य। उवओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा॥" इति गाथाकथिताद्यागममजानन्, तथैव "भिण्णउ जेण ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु। सो अंधउ अवरहं अंधयहं किम दरिसावइ पंथु॥" इति दोहकसूत्रकथिताद्यागमपदसारभूतम-

---

अन्वयार्थ :—[आगमहीनः] आगमहीन [श्रमणः] श्रमण [आत्मानं] आत्माको (निजको) और [परं] परको [न एव विजानाति] नहीं जानता; [अर्थान् अविजानन्] पदार्थोंको नहीं जानता हुआ [भिक्षुः] भिक्षु [कर्माणि] कर्मोंको [कथं] किसप्रकार [क्षपयति] क्षय करे? ॥२३३॥

टीका :—वास्तवमें आगमके विना [१]परात्मज्ञान या [२]परमात्मज्ञान नहीं होता; और परात्मज्ञानशून्यके या परमात्मज्ञानशून्यके मोहादिद्रव्यभावकर्मोंका या [३]ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप कर्मोंका क्षय नहीं होता। वह इसप्रकार है :—

प्रथम तो, आगमहीन यह जगत—कि जो निरवधि (अनादि) भवसरिताके प्रवाहको बहानेवाले महामोहमलसे मलिन है वह—धतूरा पिये हुए मनुष्यकी भाँति विवेकके नाशको प्राप्त

---

१. परात्मज्ञान = परका और आत्माका ज्ञान; स्व-परका भेदज्ञान।

२. परमात्मज्ञान = परमात्माका ज्ञान, 'मैं समस्त लोकालोकके ज्ञायक ज्ञानस्वभाववाला परम आत्मा हूँ' ऐसा ज्ञान।

३. ज्ञप्तिपरिवर्तन = ज्ञप्तिका बदलना, जाननेकी क्रियाका परिवर्तन (ज्ञानका एक ज्ञेयसे दूसरे ज्ञेयमें बदलना सो ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप कर्म है।)

आगमरहित जे श्रमण ते जाणे न परने, आत्मने;
भिक्षु पदार्थ-अजाण ते क्षय कर्मनो कई रीत करे? २३३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पीतोन्मत्तकस्येवावकीर्णविवेकस्याविविक्तेन ज्ञानज्योतिषा निरूपयतोऽप्यात्मात्मप्रदेशनिश्चित शरीरादिद्रव्येषूपयोगमिश्रितमोहरागद्वेषादिभावेषु च स्वपरनिश्चायकागमोपदेशपूर्वकस्वानुभवाभावादयं परोऽयमात्मेति ज्ञानं सिद्ध्येत्; तथा च त्रिसमयपरिपाटीप्रकटितविचित्रपर्याय-प्राग्भारागाधगम्भीरस्वभावं विश्वमेव ज्ञेयीकृत्य प्रतपतः परमात्मनिश्चायकागमोपदेशपूर्वक-स्वानुभवाभावात् ज्ञानस्वभावस्यैकस्य परमात्मनो ज्ञानमपि न सिद्ध्येत्। परात्म-परमात्मज्ञानशून्यस्य तु द्रव्यकर्मारब्धैः शरीरादिभिस्तत्प्रत्ययैर्मोहरागद्वेषादिभावैश्च सहैक्य-माकलयतो वध्यघातकविभागाभावान्मोहादिद्रव्यभावकर्मणां क्षपणं न सिद्ध्येत्; तथाच

ध्यात्मशास्त्रं चाजानन् पुरुषो रागादिदोषरहिताव्याबाधसुखादिगुणस्वरूपनिजात्मद्रव्यस्य भावकर्म-शब्दाभिधेयै रागादिनानाविकल्पजालैर्निश्चयेन कर्मभिः सह भेदं न जानाति, तथैव कर्मारिविध्वंसक-

होनेसे [१]अविविक्त ज्ञानज्योतिसे यद्यपि देखता है तथापि, उसे [२]स्वपरनिश्चायक आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभवके अभावके कारण, आत्मामें और आत्मप्रदेशस्थित शरीरादिद्रव्योंमें तथा उपयोगमिश्रित मोहरागद्वेषादिभावोंमें 'यह पर है और यह आत्मा (-स्व) है' ऐसा ज्ञान सिद्ध नहीं होता; तथा उसे, [३]परमात्मनिश्चायक आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभवके अभावके कारण, जिसके त्रिकाल परिपाटीमें विचित्र पर्यायोंका समूह प्रगट होता है ऐसे अगाध-गम्भीरस्वभाव विश्वको ज्ञेयरूप करके [४]प्रतपित ज्ञानस्वभावी एक परमात्माका ज्ञान भी सिद्ध नहीं होता।

और (इसप्रकार) जो (१) परात्मज्ञानसे तथा (२) परमात्मज्ञानसे शून्य है उसे, (१) द्रव्यकर्मसे होनेवाले शरीरादिके साथ तथा [५]तत्प्रत्ययी मोहरागद्वेषादि भावोंके साथ एकताका अनुभव करनेसे [६]वध्यघातकके विभागका अभाव होनेसे मोहादिद्रव्यभावकर्मोंका क्षय सिद्ध नहीं होता, तथा (२) [७]ज्ञेयनिष्ठतासे प्रत्येक वस्तुके उत्पाद-विनाशरूप परिणमित होनेके कारण

१. अविविक्त = अविवेकवाली; विवेक शून्य, भेद-हीन; अभिन्न; एकमेक।

२. स्वपरनिश्चायक = स्वपरका निश्चय करानेवाला (आगमोपदेश स्वपरका निश्चय करानेवाला है अर्थात् स्वपरका निश्चय करनेमें निमित्तभूत है।)

३. परमात्मनिश्चायक = परमात्माका निश्चय करनेवाला (अर्थात् ज्ञानस्वभाव परमात्माका निश्चय करनेमें निमित्तभूत।)

४. प्रतपित = प्रतापवान् (ज्ञानस्वभाव परमात्मा विश्वको ज्ञेयरूप करके तपता है—प्रतापवान् वर्तता है।)

५. तत्प्रत्ययी = तत्सम्बन्धी, वह जिसका निमित्त है ऐसे।

६. वध्यघातक = हनन योग्य और हननकर्ता [आत्मा वध्य है और मोहादिभावकर्म घातक हैं। मोहादिद्रव्यकर्म भी आत्माके घातमें निमित्तभूत होनेसे घातक कहलाते हैं।]

७. ज्ञेयनिष्ठ = ज्ञेयोंमें निष्ठावाला; ज्ञेयपरायण; ज्ञेयसम्मुख [अनादि संसारमें ज्ञप्ति ज्ञेयनिष्ठ होनेसे वह प्रत्येक पदार्थकी उत्पत्ति-विनाशरूप परिणमित होनेसे परिवर्तनको प्राप्त होती रहती है। परमात्मनिष्ठताके बिना ज्ञप्तिका वह परिवर्तन अनिवार्य है।]

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

ज्ञेयनिष्ठतया प्रतिवस्तु पातोत्पातपरिणतत्वेन ज्ञप्तेरासंसारात्परिवर्तमानायाः परमात्मनिष्ठत्व-मन्तरेणानिवार्यपरिवर्ततया ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां क्षपणमपि न सिद्धयेत्। अतः कर्म-क्षपणार्थिभिः सर्वथागमः पर्युपास्यः ॥२३३॥

अथागम एवैकश्चक्षुर्मोक्षमार्गमुपसर्पतामित्यनुशास्ति—

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू॥२३४॥

स्वकीयपरमात्मतत्त्वस्य ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभिरपि सह पृथक्त्वं न वेत्ति, तथाचाशरीरलक्षणशुद्धात्म-पदार्थस्य शरीरादिनोकर्मभिः सहान्यत्वं न जानाति। इत्थंभूतभेदज्ञानाभावाद्देहस्थमपि निजशुद्धात्मानं न रोचते, समस्तरागादिपरिहारेण न च भावयति। ततश्च कथं कर्मक्षयो भवति, न कथमपीति। ततः कारणान्मोक्षार्थिना परमागमाभ्यास एव कर्तव्य इति तात्पर्यार्थः॥२३३॥ अथ मोक्षमार्गार्थिनामागम

अनादि संसारसे परिवर्तनको पानेवाली जो ज्ञप्ति, उसका परिवर्तन परमात्मनिष्ठताके अतिरिक्त अनिवार्य होनेसे, ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप कर्मोंका क्षय भी सिद्ध नहीं होता। इसलिये कर्मक्षयार्थियोंको सर्वप्रकारसे आगमकी पर्युपासना करना योग्य है।

भावार्थ :—आगमकी पर्युपासनासे रहित जगतको आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभव न होनेसे 'यह जो अमूर्तिक आत्मा है सो मैं हूँ, और ये समानक्षेत्रावगाही शरीरादिक वह पर हैं' इसीप्रकार 'ये जो उपयोग है सो मैं हूँ और ये उपयोगमिश्रित मोहरागद्वेषादिभाव हैं सो पर है' इसप्रकार स्व-परका भेदज्ञान नहीं होता था उसे आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभव न होनेसे 'मैं ज्ञानस्वभावी एक परमात्मा हूँ' ऐसा परमात्मज्ञान भी नहीं होता।

इसप्रकार जिसे (१) स्व-पर ज्ञान तथा (२) परमात्मज्ञान नहीं है उसे, (१) हनन होने योग्य स्वका और हननेवाले मोहादिद्रव्यभावकर्मरूप परका भेदज्ञान न होनेसे मोहादिद्रव्यभावकर्मोंका क्षय नहीं होता, तथा (२) परमात्मनिष्ठताके अभावके कारण ज्ञप्तिका परिवर्तन नहीं टलनेसे ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप कर्मोंका भी क्षय नहीं होता।

इसलिये मोक्षार्थियोंको सर्वप्रकारसे सर्वज्ञकथित आगमका सेवन करना चाहिये॥२३३॥

अब, मोक्षमार्ग पर चलनेवालोंको आगम ही एक चक्षु है ऐसा उपदेश करते हैं :—

मुनिराज आगमचक्षु ने सौ भूत इन्द्रियचक्षु छे,
छे देव अवधिचक्षु ने सर्वत्रचक्षु सिद्ध छे. २३४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

आगमचक्षुः साधुरिन्द्रियचक्षूंषि सर्वभूतानि।
देवाश्चावधिचक्षुषः सिद्धाः पुनः सर्वतश्चक्षुषः॥२३४॥

इह तावद्भगवन्तः सिद्धा एव शुद्धज्ञानमयत्वात्सर्वतश्चक्षुषः, शेषाणि तु सर्वाण्यपि भूतानि मूर्तद्रव्यावसक्तदृष्टित्वादिन्द्रियचक्षूंषि। देवास्तु सूक्ष्मत्वविशिष्टमूर्तद्रव्यग्राहित्वादवधिचक्षुषः, अथ च तेऽपि रूपिद्रव्यमात्रदृष्टत्वेनेन्द्रियचक्षुर्भ्योऽविशिष्यमाणा इन्द्रियचक्षुष एव। एवममीषु समस्तेष्वपि संसारिषु मोहोपहततया ज्ञेयनिष्ठेषु सत्सु ज्ञाननिष्ठत्वमूलशुद्धात्मतत्त्वसंवेदनसाध्यं सर्वतश्चक्षुस्त्वं न सिद्ध्येत्। अथ तत्सिद्धये भगवन्तः श्रमणा आगमचक्षुषो भवन्ति। तेन ज्ञेयज्ञानयोरन्योन्यसंवलनेनाशक्यविवेचनत्वे सत्यपि स्वपर-

---

एव दृष्टिरित्याख्याति—आगमचक्खू शुद्धात्मादिपदार्थप्रतिपादकपरमागमचक्षुषो भवन्ति। के ते। साहू निश्चयरत्नत्रयाधारेण निजशुद्धात्मसाधकाः साधवः। इंदियचक्खूणि निश्चयेनातीन्द्रियामूर्तकेवलज्ञानादिगुणस्वरूपाण्यपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशादिन्द्रियाधीनत्वेनेन्द्रियचक्षूंषि भवन्ति। कानि कर्तृणि। सव्वभूदाणि सर्वभूतानि सर्वसंसारिजीवा इत्यर्थः। देवा य ओहिचक्खू देवा अपि च सूक्ष्ममूर्तपुद्गलद्रव्यविषयावधिचक्षुषः। सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू सिद्धाः पुनः शुद्धबुद्धैकस्वभावजीवलोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयसर्वप्रदेशचक्षुष इति। अनेन किमुक्तं भवति। सर्वशुद्धात्मप्रदेशे लोचनोत्पत्तिनिमित्तं

अन्वयार्थ :—[साधुः] साधु [आगमचक्षुः] आगमचक्षु (-आगमरूप चक्षुवाले) हैं, [सर्वभूतानि] सर्वप्राणी [इन्द्रिय चक्षूंषि] इन्द्रियचक्षुवाले हैं, [देवाः च] देव [अवधिचक्षुषः] अवधिचक्षु हैं [पुनः] और [सिद्धाः] सिद्ध [सर्वतः चक्षुषः] सर्वतःचक्षु (-सर्व ओरसे चक्षुवाले अर्थात् सर्वात्मप्रदेशोसे चक्षुवान्) हैं॥२३४॥

टीका :—प्रथम तो इस लोकमें भगवन्त सिद्ध ही शुद्धज्ञानमय होनेसे सर्वतः चक्षु हैं, और शेष 'सभी भूत (-जीव), मूर्त द्रव्योंमें ही उनकी दृष्टि लगनेसे इन्द्रियचक्षु हैं। देव सूक्ष्मत्वविशिष्ट मूर्त द्रव्योंको ग्रहण करते हैं इसलिये वे अवधिचक्षु हैं; अथवा वे भी, मात्र रूपी द्रव्योंको देखते हैं इसलिये उन्हें इन्द्रियचक्षुवालोंसे अलग न किया जाय तो, इन्द्रियचक्षु ही हैं।' इसप्रकार यह सभी संसारी मोहसे [१]उपहत होनेके कारण ज्ञेयनिष्ठ होनेसे, ज्ञाननिष्ठताका मूल जो शुद्धात्मतत्त्वका संवेदन उससे साध्य (-सधनेवाला) ऐसा सर्वतः चक्षुपना उनके सिद्ध नहीं होता।

अब, उस (सर्वतःचक्षुपने) की सिद्धिके लिये भगवंत श्रमण आगमचक्षु होते हैं। यद्यपि ज्ञेय और ज्ञानका पारस्परिक मिलन हो जानेसे उन्हें भिन्न करना अशक्य है (अर्थात् ज्ञेय ज्ञानमें ज्ञात न हों ऐसा करना अशक्य है) तथापि वे उस आगमचक्षुसे स्वपरका विभाग करके, महामोहको जिनने भेद डाला है ऐसे वर्तते हुए परमात्माको पाकर, सतत ज्ञाननिष्ठ ही रहते हैं।

---

१. उपहत = घायल, अशुद्ध, मलिन, भ्रष्ट।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

विभागमारचय्य निर्भिन्नमहामोहाः सन्तः परमात्मानमवाप्य सततं ज्ञाननिष्ठा एवावतिष्ठन्ते। अतः सर्वमप्यागमचक्षुषैव मुमुक्षूणां द्रष्टव्यम् ॥२३४॥

अथागमचक्षुषा सर्वमेव दृश्यत एवेति समर्थयति—

सव्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपज्जएहिं चित्तेहिं।
जाणंति आगमेण हि पेच्छित्ता ते वि ते समणा॥२३५॥

सर्वे आगमसिद्धा अर्था गुणपर्यायैश्चित्रैः।
जानन्त्यागमेन हि दृष्ट्वा तानपि ते श्रमणाः॥२३५॥

आगमेन तावत्सर्वाण्यपि द्रव्याणि प्रमीयन्ते, विस्पष्टतर्कणस्य सर्वद्रव्याणाम-विरुद्धत्वात्; विचित्रगुणपर्यायविशिष्टानि च प्रतीयन्ते, सहक्रमप्रवृत्तानेकधर्मव्यापका-

---

परमागमोपदेशादुत्पन्नं निर्विकारं मोक्षार्थिभिः स्वसंवेदनज्ञानमेव भावनीयमिति॥२३४॥ अथागम-लोचनेन सर्वं दृश्यत इति प्रज्ञापयति—सव्वे आगमसिद्धा सर्वेऽप्यागमसिद्धा आगमेन ज्ञाताः। के ते। अत्था विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतयोऽर्थाः। कथं सिद्धाः। गुणपज्जएहिं

इससे (ऐसा कहा जाता है कि) मुमुक्षुओंको सब कुछ आगमरूप चक्षु द्वारा ही देखना चाहिये॥२३४॥

अब, यह समर्थन करते हैं कि आगमरूप चक्षुसे सब कुछ दिखाई देता ही है :—

अन्वयार्थ :—[**सर्वे अर्थाः**] समस्त पदार्थ [**चित्रैः गुणपर्यायैः**] विचित्र (अनेक प्रकारकी) गुणपर्यायों सहित [**आगमसिद्धाः**] आगमसिद्ध हैं। [**तान् अपि**] उन्हें भी [**ते श्रमणाः**] वे श्रमण [**आगमेन हि दृष्ट्वा**] आगम द्वारा वास्तवमें देखकर [**जानन्ति**] जानते हैं॥२३५॥

टीका :—प्रथम तो, आगम द्वारा सभी द्रव्य प्रमेय (ज्ञेय) होते हैं, क्योंकि सर्वद्रव्य विस्पष्ट तर्कणासे अविरुद्ध हैं, (–सर्व द्रव्य आगमानुसार जो विशेष स्पष्ट तर्क उसके साथ मेलवाले हैं, अर्थात् वे आगमानुसार विस्पष्ट विचारसे ज्ञात हों ऐसे हैं)। और आगमसे वे द्रव्य विचित्र गुणपर्यायवाले प्रतीत होते हैं, क्योंकि आगमको सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त अनेक धर्मोंमें

सौ चित्र गुणपर्याययुक्त पदार्थ आगमसिद्ध छे;
ते सर्वने जाणे श्रमण ओ देखीने आगम वडे. २३५.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

नेकान्तमयत्वेनैवागमस्य प्रमाणत्वोपपत्तेः। अतः सर्वेऽर्था आगमसिद्धा एव भवन्ति। अथ ते श्रमणानां ज्ञेयत्वमापद्यन्ते स्वयमेव, विचित्रगुणपर्यायविशिष्टसर्वद्रव्यव्यापकानेकान्तात्मक-श्रुतज्ञानोपयोगीभूय विपरिणमनात्। अतो न किंचिदप्यागमचक्षुषामदृश्यं स्यात् ॥२३५॥

अथागमज्ञानतत्पूर्वतत्त्वार्थश्रद्धानतदुभयपूर्वसंयतत्वानां यौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं नियमयति—

आगमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स।
णत्थीदि भणदि सुत्तं असंजदो होदि किध समणो॥२३६॥

चित्तेहिं विचित्रगुणपर्यायैः सह। जाणंति जानन्ति। कान्। ते वि तान् पूर्वोक्तार्थगुणपर्यायान्। किं कृत्वा पूर्वम्। पेच्छित्ता दृष्ट्वा ज्ञात्वा। केन। आगमेण हि आगमेनैव। अयमत्रार्थः—पूर्वमागमं पठित्वा पश्चाज्जानन्ति। ते समणा ते श्रमणा भवन्तीति। अत्रेदं भणितं भवति—सर्वे द्रव्यगुणपर्यायाः परमागमेन ज्ञायन्ते। कस्मात्। आगमस्य परोक्षरूपेण केवलज्ञानसमानत्वात्। पश्चादागमाधारेण स्वसंवेदनज्ञाने जाते स्वसंवेदनज्ञानबलेन केवलज्ञाने च जाते प्रत्यक्षा अपि भवन्ति। ततःकारणादागमचक्षुषा परंपरया सर्वं दृश्यं भवतीति॥२३५॥ एवमागमाभ्यासकथनरूपेण प्रथमस्थले सूत्रचतुष्टयं गतम्। अथागमपरिज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धानतदुभयपूर्वकसंयतत्वत्रयस्य मोक्षमार्गत्वं नियमयति—**आगमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह**

व्यापक (-अनेक धर्मोंको कहनेवाला) [१]अनेकान्तमय होनेसे आगमको प्रमाणताकी उपपत्ति है (अर्थात् आगम प्रमाणभूत सिद्ध होता है)। इससे सभी पदार्थ आगमसिद्ध ही हैं। और वे श्रमणोंको स्वयमेव ज्ञेयभूत होते हैं, क्योंकि श्रमण विचित्रगुणपर्यायवाले सर्वद्रव्योंमें व्यापक (-सर्वद्रव्योंको जाननेवाले) अनेकान्तात्मक [२]श्रुतज्ञानोपयोगरूप होकर परिणमित होते हैं।

इससे (ऐसा कहा है कि) आगमचक्षुओंको (-आगमरूप चक्षुवालोंको) कुछ भी अदृश्य नहीं है॥२३५॥

अब, आगमज्ञान, तत्पूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान और तदुभयपूर्वक संयतत्त्वकी युगपतताको मोक्षमार्गपना होनेका नियम करते हैं। [अर्थात् ऐसा नियम सिद्ध करते हैं कि—१-आगमज्ञान, २-तत्पूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान और ३-उन दोनों पूर्वक संयतपना इन तीनोंका साथ होना ही मोक्षमार्ग है] :—

---

१. अनेकान्त = अनेक अन्त; अनेक धर्म। [द्रव्यश्रुत अनेकान्तमय है; सर्वद्रव्योंके एक ही साथ और क्रमशः प्रवर्तमान अनेक धर्मोंमें व्याप्त (उन्हें कहनेवाले) अनेक धर्म द्रव्यश्रुतमें हैं।]

२. श्रुतज्ञानोपयोग अनेकान्तात्मक है। सर्व द्रव्योंके अनेक धर्मोंमें व्याप्त (उन्हें जाननेवाले अनेक धर्म भावश्रुतज्ञानमें हैं)।

दृष्टि न आगमपूर्विका ते जीवने संयम नहीं
—अे सूत्र केरुं छे वचन; मुनि केम होय असंयमी? २३६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

आगमपूर्वा दृष्टिर्न भवति यस्येह संयमस्तस्य।
नास्तीति भणति सूत्रमसंयतो भवति कथं श्रमणः ॥२३६॥

इह हि सर्वस्यापि स्यात्कारकेतनागमपूर्विकया तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणया दृष्ट्या शून्यस्य स्वपरविभागाभावात् कायकषायैः सहैक्यमध्यवसतोऽनिरुद्धविषयाभिलाषतया षड्जीवनिकाय-घातिनो भूत्वा सर्वतोऽपि कृतप्रवृत्तेः सर्वतो निवृत्त्यभावात्तथा परमात्मज्ञानाभावाद् ज्ञेयचक्र-क्रमाक्रमणनिरर्गलज्ञप्तितया ज्ञानरूपात्मतत्त्वैकाग्र्यप्रवृत्त्यभावाच्च संयम एव न तावत् सिद्ध्येत्।

आगमपूर्विका दृष्टिः सम्यक्त्वं नास्ति यस्येह लोके **संजमो तस्स णत्थि** संयमस्तस्य नास्ति **इदि भणदि** इत्येवं भणति कथयति। **किं कर्तृ।** सुत्तं सूत्रमागमः। **असंजदो होदि किध समणो** असंयतः सन् श्रमणस्तपोधनः **कथं भवति,** न कथमपीति। तथाहि—यदि निर्दोषिनिजपरमात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वं नास्ति तर्हि परमागमबलेन विशदैकज्ञानरूपमात्मानं जानन्नपि सम्यग्दृष्टिर्न भवति, ज्ञानी च न भवति, तद्द्वयाभावे सति पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषषड्जीववधव्यावृत्तोऽपि संयतो न भवति। ततः

अन्वयार्थ :—[**इह**] इस लोकमें [**यस्य**] जिसकी [**आगमपूर्वा दृष्टिः**] आगमपूर्वक दृष्टि (दर्शन) [**न भवति**] नहीं है [**तस्य**] उसके [**संयमः**] संयम [**नास्ति**] नहीं है, [**इति**] इसप्रकार [**सूत्रं भणति**] सूत्र कहता है; और [**असंयतः**] असंयत वह [**श्रमणः**] श्रमण [**कथं भवति**] कैसे हो सकता है? ॥२३६॥

टीका :—इस लोकमें वास्तवमें, स्यात्कार जिसका चिह्न है ऐसे आगमपूर्वक [१]तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणवाली दृष्टिसे जो शून्य है उन सभीको प्रथम तो संयम ही सिद्ध नहीं होता, क्योंकि (१) स्वपरके विभागके अभावके कारण काया और कषायोंके साथ एकताका अध्यवसाय करनेवाले ऐसे वे जीव, [२]विषयोंकी अभिलाषाका निरोध नहीं होनेसे छह जीवनिकायके घाती होकर सर्वतः (सब ओर से) प्रवृत्ति करते हैं, इसलिये उनके सर्वतः निवृत्तिका अभाव है। (अर्थात् किसी भी ओरसे–किंचित्मात्र भी निवृत्ति नहीं है), तथापि (२) उनके परमात्मज्ञानके अभावके कारण ज्ञेयसमूहको क्रमशः जाननेवाली [३]निरर्गल ज्ञप्ति

१. तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणवाली = तत्त्वार्थका श्रद्धान जिसका लक्षण है ऐसी। [सम्यग्दर्शनका लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान है। वह आगमपूर्वक होता है। आगमका चिह्न 'स्यात्' कार है।]

२. जिन जीवोंको स्वपरका भेदज्ञान नहीं है उनके भले ही कदाचित् पंचेन्द्रियोंके विषयोंका संयोग दिखाई न देता हो, छह जीवनिकायकी द्रव्यहिंसा न दिखाई देती हो और इसप्रकार संयोगसे निवृत्ति दिखाई देती हो, तथापि काया और कषायके साथ एकत्व माननेवाले उन जीवोंके वास्तवमें पंचेन्द्रियके विषयोंकी अभिलाषाका निरोध नहीं है, हिंसाका किंचित्मात्र अभाव नहीं है और इसीप्रकार परभावसे किंचित्मात्र निवृत्ति नहीं है।

३. निरर्गल = निरंकुश; संयमरहित; स्वच्छन्दी।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

असिद्धसंयमस्य तु सुनिश्चितैकाग्र्यगतत्वरूपं मोक्षमार्गापरनाम श्रामण्यमेव न सिद्ध्येत्। अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं नियम्येत॥२३६॥

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति—

ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु।
सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्वादि॥२३७॥

न ह्यागमेन सिद्ध्यति श्रद्धानं यद्यपि नास्त्यर्थेषु।
श्रद्दधान अर्थानसंयतो वा न निर्वाति॥२३७॥

स्थितमेतत्—परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वत्रयमेव मुक्तिकारणमिति॥२३६॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्याभावे मोक्षो नास्तीति व्यवस्थापयति—**ण हि आगमेण सिज्झदि** आगमजनितपरमात्मज्ञानेन न सिद्ध्यति, **सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु** श्रद्धानं यदि च नास्ति परमात्मादिपदार्थेषु। **सद्दहमाणो अत्थे** श्रद्दधानो वा चिदानन्दैकस्वभावनिजपरमात्मादिपदार्थान्, **असंजदो वा ण णिव्वादि** विषयकषायाधीनत्वेनासंयतो वा न निर्वाति, निर्वाणं न लभत इति। तथाहि—यथा प्रदीपसहितपुरुषस्य कूपपतनप्रस्तावे कूपपतनान्निवर्तनं मम हितमिति निश्चयरूपं श्रद्धानं यदि नास्ति तदा तस्य प्रदीपः किं करोति, न किमपि। तथा जीवस्यापि परमागमाधारेण सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानरूपं

होनेसे ज्ञानरूप आत्मतत्त्वमें एकाग्रताकी प्रवृत्तिका अभाव है। (इसप्रकार उनके संयम सिद्ध नहीं होता) और (-इसप्रकार) जिनके संयम सिद्ध नहीं होता उन्हें [१]सुनिश्चित ऐकाग्र्यपरिणततारूप श्रामण्य ही-जिसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग है वही—सिद्ध नहीं होता।

इससे आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतत्त्वके युगपतपनेको ही मोक्षमार्गपना होनेका नियम होता है॥२३६॥

अब, ऐसा सिद्ध करते हैं कि—आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतत्त्वके अयुगपत्पनेको मोक्षमार्गत्व घटित नहीं होता :—

अन्वयार्थ :—[**आगमेन**] आगमसे, [**यदि अपि**] यदि [**अर्थेषु श्रद्धानं नास्ति**] पदार्थोंका श्रद्धान न हो तो, [**न हि सिद्ध्यति**] सिद्धि (मुक्ति) नहीं होती; [**अर्थान् श्रद्धधानः**] पदार्थोंका श्रद्धान करनेवाला भी [**असंयतः वा**] यदि असंयत हो तो [**न निर्वाति**] निर्वाणको प्राप्त नहीं होता॥२३७॥

---

१. सुनिश्चित = दृढ़। (दृढ़तापूर्वक एकाग्रतामें परिणमित होना सो श्रामण्य है।)

सिद्धि नहि आगम थकी, श्रद्धा न जो अर्थी तणी;
निर्वाण नहि अर्थो तणी श्रद्धाथी, जो संयम नहीं. २३७.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

श्रद्धानशून्येनागमजनितेन ज्ञानेन, तदविनाभाविना श्रद्धानेन च संयमशून्येन, न तावत्सिद्ध्यति। तथा हि—आगमबलेन सकलपदार्थान् विस्पष्टं तर्कयन्नपि, यदि सकल-पदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं न तथा प्रत्येति, तदा यथोदितात्मनः श्रद्धान-शून्यतया यथोदितमात्मानमननुभवन् कथं नाम ज्ञेयनिमग्नो ज्ञानविमूढो ज्ञानी स्यात्। अज्ञानिनश्च ज्ञेयद्योतको भवन्नप्यागमः किं कुर्यात्। ततः श्रद्धानशून्यादागमान्नास्ति सिद्धिः। किंच, सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं श्रद्दधानोऽप्यनुभवन्नपि, यदि स्वस्मिन्नेव संयम्य न वर्तयति, तदानादिमोहरागद्वेषवासनोपजनितपरद्रव्यचङ्क्रमणस्वैरिण्या-श्चिद्वृत्तेः स्वस्मिन्नेव स्थानान्निर्वासननिष्कम्पैकतत्त्वमूर्च्छितचिद्वृत्त्यभावात्कथं नाम संयतः स्यात्।

स्वात्मानं जानतोऽपि ममात्मैवोपादेय इति निश्चयरूपं यदि श्रद्धानं नास्ति तदा तस्य प्रदीपस्थानीय आगमः किं करोति, न किमपि। यथा वा स एव प्रदीपसहितपुरुषः स्वकीयपौरुषबलेन कूपपतनाद्यदि न निवर्तते तदा तस्य श्रद्धानं प्रदीपो दृष्टिर्वा किं करोति, न किमपि। तथायं जीवः

टीका :—आगमजनित ज्ञानसे, यदि वह श्रद्धानशून्य हो तो सिद्धि नहीं होती; तथा उसके (-आगमज्ञानके) विना जो नहीं होता ऐसे श्रद्धानसे भी यदि वह (श्रद्धान) संयमशून्य हो तो सिद्धि नहीं होती। वह इसप्रकार :—

आगमबलसे सकल पदार्थोंकी विस्पष्ट [१]तर्कणा करता हुआ भी यदि जीव सकल पदार्थोंके ज्ञेयाकारोंके साथ [२]मिलित होनेवाला विशद एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसे आत्माको उसप्रकारसे प्रतीत नहीं करता तो यथोक्त आत्माके श्रद्धानसे शून्य होनेके कारण जो यथोक्त आत्माका अनुभव नहीं करता ऐसा वह ज्ञेयनिमग्न ज्ञानविमूढ़ जीव कैसे ज्ञानी होगा? (नहीं होगा, वह अज्ञानी ही होगा।) और अज्ञानीको, ज्ञेयद्योतक होने पर भी, आगम क्या करेगा? (-आगम ज्ञेयोंका प्रकाशक होने पर भी वह अज्ञानीके लिये क्या कर सकता है?) इसलिये श्रद्धानशून्य आगमसे सिद्धि नहीं होती।

और, सकल पदार्थोंके ज्ञेयाकारोंके साथ मिलित होता हुआ विशद एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसे आत्माका श्रद्धान करता हुआ भी, अनुभव करता हुआ भी यदि जीव अपनेमें ही संयमित (-अंकुशित) होकर नहीं रहता, तो अनादि मोहरागद्वेषकी वासनासे जनित जो परद्रव्यमें भ्रमण उसके कारण जो स्वैरिणी (-स्वच्छंदी, व्यभिचारिणी) है ऐसी चिद्वृत्ति (-चैतन्यकी परिणति) अपनेमें ही रहनेसे, वासनारहित निष्कंप एक तत्त्वमें लीन चिद्वृत्तिका अभाव होनेसे, वह कैसे संयत होगा? (नहीं होगा, असंयत ही होगा) और असंयतको, यथोक्त

१. तर्कणा = विचारणा; युक्ति इत्यादिके आश्रयवाला ज्ञान।

२. मिलित होने वाला = मिश्रित होनेवाला; संबंधको प्राप्त; अर्थात् उन्हें जाननेवाला। [समस्त पदार्थोंके ज्ञेयाकार जिसमें प्रतिबिंबित होते हैं अर्थात् उन्हें जानता है ऐसा स्पष्ट एक ज्ञान ही आत्माका रूप है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

असंयतस्य च यथोदितात्मतत्त्वप्रतीतिरूपं श्रद्धानं यथोदितात्मतत्त्वानुभूतिरूपं ज्ञानं वा किं कुर्यात्। ततः संयमशून्यात् श्रद्धानात् ज्ञानाद्वा नास्ति सिद्धिः। अत आगमज्ञानतत्त्वार्थ-श्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटेतैव॥२३७॥

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येऽप्यात्मज्ञानस्य मोक्षमार्गसाधकतमत्वं द्योतयति—

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण॥२३८॥

यदज्ञानी कर्म क्षपयति भवशतसहस्रकोटिभिः।
तज्ज्ञानी त्रिभिर्गुप्तः क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेण॥२३८॥

श्रद्धानज्ञानसहितोऽपि पौरुषस्थानीयचारित्रबलेन रागादिविकल्परूपादसंयमाद्यदि न निवर्तते तदा तस्य श्रद्धानं ज्ञानं वा किं कुर्यात्, न किमपीति। अतः एतदायाति–परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां मध्ये द्वयेनैकेन वा निर्वाणं नास्ति, किंतु त्रयेणेति॥२३७॥ एवं भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्ग-स्थापनमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्। किंच बहिरात्मावस्थान्तरात्मावस्थापरमात्मावस्था-मोक्षावस्थात्रयं तिष्ठति। अवस्थात्रयेऽनुगताकारं द्रव्यं तिष्ठति। एवं परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायात्मको जीवपदार्थः। तत्र मोक्षकारणं चिन्त्यते। मिथ्यात्वरागादिरूपा बहिरात्मावस्था तावदशुद्धा, मुक्तिकारणं

आत्मतत्त्वकी प्रतीतिरूप श्रद्धान या यथोक्त आत्मतत्त्वकी अनुभूतिरूप ज्ञान क्या करेगा? इसलिये संयमशून्य श्रद्धानसे या ज्ञानसे सिद्धि नहीं होती।

इससे आगमज्ञान–तत्त्वार्थश्रद्धान–संयतत्त्वके अयुगपत्पनेको मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता॥२३७॥

अब, आगमज्ञान–तत्त्वार्थश्रद्धान–संयतत्त्वका युगपत्पना होने पर भी, आत्मज्ञान मोक्षमार्गका साधकतम (उत्कृष्ट साधक) है ऐसा समझाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यत् कर्म] जो कर्म [अज्ञानी] अज्ञानी [भवशतसहस्रकोटिभिः] लक्षकोटि भवोंमें [क्षपयति] खपाता है, [तत्] वह कर्म [ज्ञानी] ज्ञानी [त्रिभिः गुप्तः] तीन प्रकार (मन–वचन–काय) से गुप्त होनेसे [उच्छ्वासमात्रेण] उच्छ्वासमात्रमें [क्षपयति] खपा देता है॥२३८॥

અજ્ઞાની જે કર્મો ખપાવે લક્ષ કોટિ ભવો વડે,
તે કર્મ જ્ઞાની ત્રિગુપ્ત બસ ઉચ્છ્વાસમાત્રથી ક્ષય કરે. ૨૩૮.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यदज्ञानी कर्म क्रमपरिपाट्या बालतपोवैचित्र्योपक्रमेण च पच्यमानमुपात्तरागद्वेषतया सुखदुःखादिविकारभावपरिणतः पुनरारोपितसन्तानं भवशतसहस्रकोटीभिः कथंचन निस्तरति, तदेव ज्ञानी स्यात्कारकेतनागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यातिशयप्रसादासादितशुद्ध-ज्ञानमयात्मतत्त्वानुभूतिलक्षणज्ञानित्वसद्भावात्कायवाङ्मनःकर्मोपरमप्रवृत्तत्रिगुप्तत्वात् प्रचण्डोप-

न भवति। मोक्षावस्था शुद्धा फलभूता, सा चाग्रे तिष्ठति। एताभ्यां द्वाभ्यां भिन्ना यान्तरात्मावस्था सा मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धा। यथा सूक्ष्मनिगोतज्ञाने शेषावरणे सत्यपि क्षयोपशमज्ञानावरणं नास्ति तथात्रापि केवलज्ञानावरणे सत्यप्येकदेशक्षयोपशमज्ञानापेक्षया नास्त्यावरणम्। यावतांशेन निरावरणा रागादिरहितत्वेन शुद्धा च तावतांशेन मोक्षकारणं भवति। तत्र शुद्धपारिणामिकभावरूपं परमात्मद्रव्यं ध्येयं भवति, तच्च तस्मादन्तरात्मध्यानावस्थाविशेषात्कथंचिद्भिन्नम्। यदैकान्तेनाभिन्नं भवति तदा मोक्षेऽपि ध्यानं प्राप्नोति, अथवास्य ध्यानपर्यायस्य विनाशे सति तस्य पारिणामिक-भावस्यापि विनाशः प्राप्नोति। एवं बहिरात्मान्तरात्मपरमात्मकथनरूपेण मोक्षमार्गो ज्ञातव्यः। अथ परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां मेलापकेऽपि, यदभेदरत्नत्रयात्मकं निर्विकल्प-समाधिलक्षणमात्मज्ञानं, निश्चयेन तदेव मुक्तिकारणमिति प्रतिपादयति—**जं अण्णाणी कम्मं खवेदि** निर्विकल्पसमाधिरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकविशिष्टभेदज्ञानाभावादज्ञानी जीवो यत्कर्म क्षपयति। काभिः करणभूताभिः। **भवसयसहस्सकोडीहिं** भवशतसहस्रकोटिभिः। **तं णाणी तिहिं गुत्तो** तत्कर्म ज्ञानी जीवस्त्रि-गुप्तिगुप्तः सन् **खवेदि उस्सासमेत्तेण** क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेणेति। तद्यथा—बहिर्विषये परमागमाभ्यासबलेन यत्सम्यक्परिज्ञानं तथैव श्रद्धानं व्रताद्यनुष्ठानं चेति त्रयं, तत्त्रयाधारेणोत्पन्नं सिद्धजीवविषये सम्यक्-परिज्ञानं श्रद्धानं तद्गुणस्मरणानुकूलमनुष्ठानं चेति त्रयं, तत्त्रयाधारेणोत्पन्नं विशदाखण्डैकज्ञानाकारे स्वशुद्धात्मनि परिच्छित्तिरूपं सविकल्पज्ञानं स्वशुद्धात्मोपादेयभूतरुचिविकल्परूपं सम्यग्दर्शनं तत्रैवात्मनि रागादिविकल्पनिवृत्तिरूपं सविकल्पचारित्रमिति त्रयम्। तत्त्रयप्रसादेनोत्पन्नं यन्निर्विकल्पसमाधिरूपं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं विशिष्टस्वसंवेदनज्ञानं तदभावादज्ञानी जीवो बहुभवकोटिभिर्यत्कर्म क्षपयति,

टीका :—जो कर्म (अज्ञानीको) क्रमपरिपाटीसे तथा अनेक प्रकारके बालतपादिरूप उद्यमसे पकते हुए, रागद्वेषको ग्रहण किया होनेसे सुखदुःखादि विकारभावरूप परिणमित होनेसे पुनः संतानको आरोपित करता जाय इसप्रकार, लक्षकोटिभवों द्वारा चाहे जिसप्रकार (-महा कष्टसे) अज्ञानी पार कर जाता है, वही कर्म, (ज्ञानीको स्यात्कारकेतन आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतत्त्वके युगपत्पनेके अतिशयप्रसादसे प्राप्त की हुई शुद्धज्ञानमय आत्मतत्त्वकी अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसे ज्ञानीपनके सद्भावके कारण काय-वचन-मनके कर्मोंके [१]उपरमसे त्रिगुप्तिता प्रवर्तमान होनेसे प्रचण्ड उद्यम से पकता हुआ, रागद्वेषके छोड़नेसे समस्त सुखदुःखादि विकार अत्यन्त निरस्त हुआ होनेसे पुनःसंतानको आरोपित न करता जाय

१. उपरम = विराम, अटक जाना वह, रुक जाना वह; [ज्ञानीके ज्ञानीपनके कारण काय-वचन-मन संबंधी कार्य रुक जानेसे त्रिगुप्तता प्रवर्तती है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

क्रमपच्यमानमपहस्तिततरागद्वेषतया दूरनिरस्तसमस्तसुखदुःखादिविकारः पुनरनारोपितसन्तान-मुच्छ्वासमात्रेणैव लीलयैव पातयति। अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्येऽप्यात्म-ज्ञानमेव मोक्षमार्गसाधकतममनुमन्तव्यम् ॥२३८॥

अथात्मज्ञानशून्यस्य सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यमप्यकिंचित्कर-मित्यनुशास्ति—

परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि॥२३९॥

तत्कर्म ज्ञानी जीवः पूर्वोक्तज्ञानगुणसद्भावात् त्रिगुप्तिगुप्तः सन्नुच्छ्वासमात्रेण लीलयैव क्षपयतीति। ततो ज्ञायते परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां सद्भावेऽप्यभेदरत्नत्रयरूपस्य स्व-संवेदनज्ञानस्यैव प्रधानत्वमिति॥२३८॥ अथ पूर्वसूत्रोक्तात्मज्ञानरहितस्य सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-

---

इसप्रकार उच्छ्वासमात्रमें ही लीलासे ही ज्ञानी नष्ट कर देता है।

इससे आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतत्त्वका युगपत्पना होने पर भी आत्मज्ञानको ही मोक्षमार्गका साधकतम संमत करना।

भावार्थ :—अज्ञानीके क्रमशः तथा बालतपादिरूप उद्यमसे कर्म पकते हैं और ज्ञानीके [१]ज्ञानीपनके कारण होनेवाले त्रिगुप्ततारूप प्रचण्ड उद्यमसे कर्म पकते हैं; इसलिये अज्ञानी जिस कर्मको अनेक [२]शत-सहस्र-कोटि भवोंमें महाकष्टसे उल्लंघन (पार) कर पाता है वही कर्म ज्ञानी उच्छ्वासमात्रमें ही, कौतुकमात्रमें ही नष्ट कर डालता है। और अज्ञानीके वह कर्म, सुखदुःखादिविकाररूप परिणमनके कारण, पुनः नूतन कर्मरूप संततिको छोड़ता जाता है तथा ज्ञानीके सुखदुःखादिविकाररूप परिणमन न होनेसे वह कर्म पुनः नूतन कर्मरूप संततिको नहीं छोड़ता जाता।

इसलिये आत्मज्ञान ही मोक्षमार्गका साधकतम है॥२३८॥

अब, ऐसा उपदेश करते हैं कि-आत्मज्ञानशून्यके सर्व आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान तथा संयतत्त्वका युगपत्पना भी अकिंचित्कर है, (अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकता) :—

---

१. ज्ञानीपन = आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्त्वके युगपत्पनेके अतिशय प्रसादसे प्राप्त शुद्धज्ञानमय आत्मतत्त्वकी अनुभूति ज्ञानीपनका लक्षण है।

२. शत-सहस्र-कोटि = १०० × १००० × १०००००००

अणुमात्र पण मूर्छा तणो सद्भाव जो देहादिके,
तो सर्वआगमधर भले पण नव लहे सिद्धत्वने. २३९.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

परमाणुप्रमाणं वा मूर्च्छा देहादिकेषु यस्य पुनः।
विद्यते यदि स सिद्धिं न लभते सर्वागमधरोऽपि॥२३९॥

यदि करतलामलकीकृतसकलागमसारतया भूतभवद्भावि च स्वोचितपर्यायविशिष्टमशेषद्रव्यजातं जानन्तमात्मानं जानन् श्रद्दधानः संयमयंश्चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येऽपि मनाङ्मोहमलोपलिप्तत्वात् यदा शरीरादिमूर्च्छोपरक्ततया निरुपरागोपयोगपरिणतं कृत्वा ज्ञानात्मानमात्मानं नानुभवति तदा तावन्मात्रमोहमलकलंककीलिकाकीलितैः कर्मभिरविमुच्यमानो न सिद्ध्यति। अत आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव॥२३९॥

संयतत्वानां यौगपद्यमप्यकिंचित्करमित्युपदिशति—परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो विज्जदि जदि परमाणुमात्रं वा मूर्च्छा देहादिकेषु विषयेसु यस्य पुरुषस्य पुनर्विद्यते यदि चेत्, सो सिद्धिं ण लहदि स सिद्धिं मुक्तिं न लभते। कथंभूतः। सव्वागमधरो वि सर्वागमधरोऽपीति। अयमत्रार्थः—सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्ये सति यस्य देहादिविषये स्तोकमपि ममत्वं विद्यते तस्य पूर्वसूत्रोक्तं निर्विकल्पसमाधिलक्षणं निश्चयरत्नत्रयात्मकं स्वसंवेदनज्ञानं नास्तीति॥२३९॥ अथ द्रव्यभावसंयमस्वरूपं कथयति—

अन्वयार्थ :—[पुनः] और [यदि] यदि [यस्य] जिसके [देहादिकेषु] शरीरादिके प्रति [परमाणुप्रमाणं वा] परमाणुमात्र भी [मूर्च्छा] मूर्च्छा [विद्यते] वर्तती हो तो [सः] वह [सर्वागमधरः अपि] भले ही सर्वागमका धारी हो तथापि [सिद्धिं न लभते] सिद्धिको प्राप्त नहीं होता॥२३९॥

टीका :—सकल आगमके सारको हस्तामलकवत् करनेसे (-हथेलीमें रक्खे हुए आंवलेके समान स्पष्ट ज्ञान होनेसे) जो पुरुष भूत-वर्तमान-भावी [१]स्वोचित पर्यायोंके साथ अशेष द्रव्यसमूहको जाननेवाले आत्माको जानता है, श्रद्धान करता है और संयमित रखता है, उस पुरुषके आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्त्वका युगपत्पना होने पर भी, यदि वह किंचित्मात्र भी मोहमलसे लिप्त होनेसे शरीरादिके प्रति (तत्संबंधी) मूर्च्छासे [२]उपरक्त रहनेसे, [३]निरुपराग उपयोगमें परिणत करके ज्ञानात्मक आत्माका अनुभव नहीं करता, तो वह पुरुष मात्र उतने (कुछ) मोहमलकलंकरूप कीलेके साथ बँधे हुए कर्मोंसे न छूटता हुआ सिद्ध नहीं होता।

इसलिये आत्मज्ञानशून्य आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्त्वका युगपत्पना भी

१. स्वोचित = अपनेको उचित, अपने-अपने योग्य। [आत्माका स्वभाव त्रिकालकी स्वोचित पर्यायों सहित समस्त द्रव्योंको जानना है।]

२. उपरक्त = मलिन; विकारी। ३. निरुपराग = उपराग रहित; निर्मल; निर्विकार; शुद्ध।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यं साधयति—

पंचसमिदो तिगुत्तो पंचेंदियसंवुडो जिदकसाओ।
दंसणणाणसमग्गो समणो सो संजदो भणिदो॥२४०॥

पञ्चसमितस्त्रिगुप्तः पञ्चेन्द्रियसंवृतो जितकषायः।
दर्शनज्ञानसमग्रः श्रमणः स संयतो भणितः॥२४०॥

यः खल्वनेकान्तकेतनागमज्ञानबलेन सकलपदार्थज्ञेयाकारकरंबितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं श्रद्दधानोऽनुभवंश्चात्मन्येव नित्यनिश्चलां वृत्तिमिच्छन् समितिपंचकांकुशितप्रवृत्तिप्रवर्तित-

---

चागो य अणारंभो विसयविरागो खओ कसायाणं।
सो संजमो त्ति भणिदो पव्वज्जाए विसेसेण॥★३५॥

चागो य निजशुद्धात्मपरिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः। **अणारंभो** निःक्रियनिजशुद्धात्मद्रव्ये स्थित्वा मनोवचनकायव्यापारनिवृत्तिरनारम्भः। **विसयविरागो** निर्विषयस्वात्मभावनोत्थसुखे तृप्तिं कृत्वा पञ्चेन्द्रियसुखाभिलाषत्यागो विषयविरागः। **खओ कसायाणं** निःकषायशुद्धात्मभावनाबलेन क्रोधादिकषायत्यागः कषायक्षयः। **सो संजमो त्ति भणिदो** स एवंगुणविशिष्टः संयम इति भणितः। **पव्वज्जाए विसेसेण** सामान्येनापि तावदिदं संयमलक्षणं, प्रव्रज्यायां तपश्चरणावस्थायां विशेषेणेति। अत्राभ्यन्तरशुद्धात्मसंवित्तिर्भावसंयमो, बहिरङ्गनिवृत्तिश्च द्रव्यसंयम इति॥"३५॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थ-

---

अकिंचित्कर ही है॥२३९॥

अब आगमज्ञान–तत्त्वार्थश्रद्धान–संयतत्त्वके युगपत्पनेके साथ आत्मज्ञानके युगपत्पनेको साधते हैं; (अर्थात् आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतत्त्व—इस त्रिकके साथ आत्मज्ञानके युगपत्पनेको सिद्ध करते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[**पंचसमितिः**] पाँच समितियुक्त, [**पंचेन्द्रिय-संवृतः**] पांच इन्द्रियोंका संवरवाला [**त्रिगुप्तः**] तीन गुप्ति सहित, [**जितकषायः**] कषायोंको जीतनेवाला, [**दर्शनज्ञानसमग्रः**] दर्शनज्ञानसे परिपूर्ण—[**श्रमणः**] ऐसा जो श्रमण [**सः**] वह [**संयतः**] संयत [**भणितः**] कहा गया है॥२४०॥

टीका :—जो पुरुष अनेकान्तकेतन आगमज्ञानके बलसे, सकल पदार्थोंके ज्ञेयाकारोंके साथ मिलित होता हुआ, विशद एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसे आत्माका श्रद्धान

जे पंचसमित, त्रिगुप्त, इन्द्रिनिरोधी, विजयी कषायनो,
परिपूर्ण दर्शनज्ञानथी ते श्रमणने संयत कह्यो. २४०.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

संयमसाधनीकृतशरीरपात्रः क्रमेण निश्चलनिरुद्धपंचेन्द्रियद्वारतया समुपरतकायवाङ्मनोव्यापारो भूत्वा चिद्वृत्तेः परद्रव्यचंङ्क्रमणनिमित्तमत्यन्तमात्मना सममन्योन्यसंवलनादेकीभूतमपि स्वभावभेदात्परत्वेन निश्चित्यात्मनैव कुशलो मल्ल इव सुनिर्भरं निष्पीड्य निष्पीड्य कषायचक्रमक्रमेण जीवं त्याजयति, स खलु सकलपरद्रव्यशून्योऽपि विशुद्धदृशिज्ञप्तिमात्र-स्वभावभूतावस्थापितात्मतत्त्वोपजातनित्यनिश्चलवृत्तितया साक्षात्संयत एव स्यात्। तस्यैव चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यं सिद्ध्यति॥२४०॥

श्रद्धानसंयतत्वानां त्रयाणां यत्सविकल्पं यौगपद्यं तथा निर्विकल्पात्मज्ञानं चेति द्वयोः संभवं दर्शयति— **पंचसमिदो** व्यवहारेण पञ्चसमितिभिः समितः संवृतः पञ्चसमितः, निश्चयेन तु स्वस्वरूपे सम्यगितो गतः परिणतः समितः। **तिगुत्तो** व्यवहारेण मनोवचनकायनिरोधत्रयेण गुप्तः त्रिगुप्तः, निश्चयेन स्वस्वरूपे गुप्तः परिणतः। **पंचेंदियसंवुडो** व्यवहारेण पञ्चेन्द्रियविषयव्यावृत्त्या संवृतः पञ्चेन्द्रियसंवृतः, निश्चयेन वातीन्द्रियसुखस्वादरतः। **जिदकसाओ** व्यवहारेण क्रोधादिकषायजयेन जितकषायः, निश्चयेन चाकषायात्मभावनारतः। **दंसणणाणसमग्गो** अत्र दर्शनशब्देन निजशुद्धात्मश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं ग्राह्यम्, ज्ञानशब्देन तु स्वसंवेदनज्ञानमिति; ताभ्यां समग्रो दर्शनज्ञानसमग्रः। **समणो सो संजदो भणिदो स** एवंगुणविशिष्टः श्रमण संयत इति भणितः। अत एतदायातं–व्यवहारेण यद्बहिर्विषये व्याख्यानं कृतं तेन सविकल्पं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रययौगपद्यं ग्राह्यम्; अभ्यन्तरव्याख्यानेन तु निर्विकल्पात्मज्ञानं ग्राह्यमिति सविकल्पयौगपद्यं निर्विकल्पात्मज्ञानं च घटत इति॥२४०॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्वलक्षणेन विकल्पत्रययौगपद्येन तथा निर्विकल्पात्मज्ञानेन च युक्तो योऽसौ संयतस्तस्य किं लक्षणमित्युपदिशति। इत्युपदिशति कोऽर्थः इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति। एवं प्रश्नोत्तरपातनिकाप्रस्तावे

और अनुभव करता हुआ आत्मामें ही नित्यनिश्चल वृत्तिको इच्छता हुआ, संयमके साधनरूप बनाये हुए शरीरपात्रको पाँच समितियोंसे अंकुशित प्रवृत्ति द्वारा प्रवर्तित करता हुआ, क्रमशः पंचेन्द्रियोंके निश्चल निरोध द्वारा जिसके काय–वचन–मनका व्यापार विरामको प्राप्त हुआ है ऐसा होकर, चिद्वृत्तिके लिये परद्रव्यमें भ्रमणका निमित्त जो कषायसमूह वह आत्माके साथ अन्योन्य मिलनके कारण अत्यन्त एकरूप हो जाने पर भी स्वभावभेदके कारण उसे पररूपसे निश्चित करके आत्मासे ही कुशल मल्लकी भाँति अत्यन्त [१]मर्दन कर करके अक्रमसे उसे मार डालता है, वह पुरुष वास्तवमें, सकल परद्रव्यसे शून्य होने पर भी [२]विशुद्ध दर्शनज्ञानमात्र स्वभावरूपसे रहनेवाले आत्मतत्त्व (-स्वद्रव्य) में नित्यनिश्चल परिणति उत्पन्न होनेसे, साक्षात् संयत ही है। और उसे ही आगमज्ञान–तत्त्वार्थश्रद्धान–संयतत्त्वके युगपत्पनेका तथा आत्मज्ञानका युगपत्पना सिद्ध होता है॥२४०॥

---

१. मर्दन कर करके = दबा दबाके, कचर कचरके, दमन करके।

२. आत्मतत्त्वका स्वभाव विशुद्धदर्शनज्ञानमात्र है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथास्य सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यसंयतस्य कीदृग्लक्षण-मित्यनुशास्ति—

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो॥२४१॥

समशत्रुबन्धुवर्गः समसुखदुःखः प्रशंसानिन्दासमः।
समलोष्टकाञ्चनः पुनर्जीवितमरणे समः श्रमणः॥२४१॥

संयमः सम्यग्दर्शनज्ञानपुरःसरं चारित्रं, चारित्रं धर्मः, धर्मः साम्यं, साम्यं मोहक्षोभ-विहीनः आत्मपरिणामः। ततः संयतस्य साम्यं लक्षणम्। तत्र शत्रुबन्धुवर्गयोः सुखदुःखयोः प्रशंसानिन्दयोः लोष्टकांचनयोर्जीवितमरणयोश्च समम् अयं मम परोऽयं स्वः, अयं मह्लादोऽयं परितापः, इदं ममोत्कर्षणमिदमपकर्षणमयं ममाकिंचित्कर इदमुपकारकमिदं ममात्मधारणमय-

---

क्वापि क्वापि यथासंभवमितिशब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः—स श्रमणः संयतस्तपोधनो भवति। यः किंविशिष्टः। शत्रुबन्धुसुखदुःखनिन्दाप्रशंसालोष्टकाञ्चनजीवितमरणेषु समः समचित्तः इति। ततः एतदायाति—शत्रु-बन्धुसुखदुःखनिन्दाप्रशंसालोष्टकाञ्चनजीवितमरणसमताभावनापरिणतनिजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धान-

---

अब, आगमज्ञान–तत्त्वार्थश्रद्धान–संयतत्त्वके युगपत्पनेका तथा आत्मज्ञानका युगपत्पना जिसे सिद्ध हुआ है ऐसे इस संयतका क्या लक्षण है सो कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**समशत्रुबन्धुवर्गः**] जिसे शत्रु और बन्धु वर्ग समान है, [**समसुखदुःखः**] सुख और दुःख समान है, [**प्रशंसानिन्दासमः**] प्रशंसा और निन्दाके प्रति जिसको समता है, [**समलोष्टकाञ्चनः**] जिसे लोष्ट (मिट्टीका ढेला) और सुवर्ण समान है, [**पुनः**] तथा [**जीवितमरणे समः**] जीवन–मरणके प्रति जिसको समता है, वह [**श्रमणः**] श्रमण है॥२४१॥

टीका :—संयम, सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वक चारित्र है; चारित्र धर्म है; धर्म साम्य है; साम्य मोहक्षोभ रहित आत्मपरिणाम है। इसलिये संयतका, साम्य लक्षण है।

वहाँ, (१) शत्रु–बंधुवर्गमें, (२) सुख–दुःखमें, (३) प्रशंसा–निन्दामें, (४) मिट्टीके ढेले और सोनेमें, (५) जीवित–मरणमें एक ही साथ, (१) 'यह मेरा पर (-शत्रु) है, यह स्व (-स्वजन) है;' (२) 'यह आह्लाद है, यह परिताप है,' (३) 'यह मेरा उत्कर्षण (-कीर्ति) है, यह अपकर्षण (-अकीर्ति) है,' (४) 'यह मुझे अकिंचित्कर है, यह उपकारक (-उपयोगी) है,' (५) 'यह मेरा स्थायित्व है, यह अत्यन्त विनाश है' इसप्रकार मोहके

निंदा–प्रशंसा, दुःख–सुख, अरि–बंधुमां ज्यां साम्य छे,
वळी लोष्ट–कनके, जीवित–मरणे साम्य छे, ते श्रमण छे. २४१.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

मत्यन्तविनाश इति मोहाभावात् सर्वत्राप्यनुदितरागद्वेषद्वैतस्य, सततमपि विशुद्धदृष्टिज्ञप्ति-स्वभावमात्मानमनुभवतः, शत्रुबन्धुसुखदुःखप्रशंसानिन्दालोष्टकांचनजीवितमरणानि निर्विशेषमेव ज्ञेयत्वेनाक्रम्य ज्ञानात्मन्यात्मन्यचलितवृत्तेर्यत्किल सर्वतः साम्यं तत्सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यस्य संयतस्य लक्षणमालक्षणीयम् ॥२४१॥

अथेदमेव सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यसंयतत्वमैकाग्र्य-लक्षणश्रामण्यापरनाम मोक्षमार्गत्वेन समर्थयति—

दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एयग्गगदो त्ति मदो सामण्णं तस्स पडिपुण्णं ॥२४२॥

दर्शनज्ञानचरित्रेषु त्रिषु युगपत्समुत्थितो यस्तु।
ऐकाग्र्यगत इति मतः श्रामण्यं तस्य परिपूर्णम् ॥२४२॥

ज्ञानानुष्ठानरूपनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्ननिर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतपरिणतिस्वरूपं यत्परमसाम्यं तदेव परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येन तथा निर्विकल्पात्मज्ञानेन च परिणततपोधनस्य लक्षणं ज्ञातव्यमिति ॥२४१॥ अथ यदेव संयततपोधनस्य साम्यलक्षणं भणितं तदेव श्रामण्यापरनामा

अभावके कारण सर्वत्र जिससे रागद्वेषका द्वैत प्रगट नहीं होता, जो सतत विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाव आत्माका अनुभव करता है, और (इसप्रकार) शत्रु–बन्धु, सुख–दुःख, प्रशंसा–निन्दा, लोष्ट–कांचन और जीवित–मरणको निर्विशेषयता ही (अन्तरके बिना ही) ज्ञेयरूप जानकर ज्ञानात्मक आत्मामें जिसकी परिणति अचलित हुई है; उस पुरुषको वास्तवमें जो सर्वतः साम्य है वह (साम्य) संयतका लक्षण समझना चाहिये—कि जिस संयतके आत्मज्ञान–तत्त्वार्थश्रद्धान–संयतत्त्वके युगपत्पनेका और आत्मज्ञानका युगपत्पना सिद्ध हुआ है ॥२४१॥

अब, यह समर्थन करते हैं कि आगमज्ञान–तत्त्वार्थश्रद्धान–संयतत्त्वके युगपत्पनेके साथ आत्मज्ञानके युगपत्पनेकी सिद्धिरूप जो यह संयतपना है वही मोक्षमार्ग है, जिसका दूसरा नाम एकाग्रतालक्षणवाला श्रामण्य है :—

अन्वयार्थ :—[यः तु] जो [दर्शनज्ञानचरित्रेषु] दर्शन, ज्ञान और चारित्र–[त्रिषु] इन तीनोंमें [युगपत्] एक ही साथ [समुत्थितः] आरूढ़ है, वह [ऐकाग्र्यगतः] एकाग्रताको प्राप्त है। [इति] इसप्रकार [मतः] (शास्त्रमें) कहा है। [तस्य] उसके [श्रामण्यं] श्रामण्य [परिपूर्णम्] परिपूर्ण है ॥२४२॥

दृग, ज्ञान ने चारित्र त्रणमां युगपदे आरूढ जे,
तेने कह्यो ऐकाग्र्यगत; श्रामण्य त्यां परिपूर्ण छे. २४२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथाप्रतीतितिलक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण, ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथानुभूतिलक्षणेन ज्ञानपर्यायेण, ज्ञेयज्ञातृक्रियान्तरनिवृत्तिसूत्र्यमाणद्रष्टृज्ञातृतत्त्ववृत्तिलक्षणेन चारित्रपर्यायेण च, त्रिभिरपि यौगपद्येन भाव्यभावकभावविजृम्भितातिनिर्भरेतरेतरसंवलनबलादंगांगिभावेन परिणतस्यात्मनो यदात्मनिष्ठत्वे सति संयतत्वं तत्पानकवदनेकात्मकस्यैकस्यानुभूयमानतायामपि समस्तपरद्रव्यपरावर्तत्वादभिव्यक्तैकाग्र्यलक्षणश्रामण्यापरनामा मोक्षमार्ग एवाव-

मोक्षमार्गो भण्यत इति प्ररूपयति—**दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु** दर्शनज्ञानचारित्रेषु त्रिषु युगपत्सम्यगुपस्थित उद्यतो यस्तु कर्ता, **एयग्गगदो त्ति मदो स ऐकाग्र्यगत** इति मतः संमतः, **सामण्णं तस्स पडिपुण्णं** श्रामण्यं चारित्रं यतित्वं तस्य परिपूर्णमिति। तथाहि—भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मभ्यः शेषपुद्गलादिपञ्चद्रव्येभ्योऽपि भिन्नं सहजशुद्धनित्यानन्दैकस्वभावं मम संबन्धि यदात्मद्रव्यं तदेव ममोपादेयमितिरुचिरूपं सम्यग्दर्शनम्, तत्रैव परिच्छित्तिरूपं सम्यग्ज्ञानं, तस्मिन्नेव स्वरूपे निश्चलानुभूतिलक्षणं चारित्रं चेत्युक्तस्वरूपं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं पानकवदनेकमप्यभेदनयेनैकं यत् तत्सविकल्पावस्थायां व्यवहारेणैकाग्र्यं भण्यते। निर्विकल्पसमाधिकाले तु निश्चयेनेति। तदेव च

टीका :—ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्वकी तथाप्रकार (जैसी है वैसी ही, यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है वह सम्यग्दर्शनपर्याय है; ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्वकी तथाप्रकार अनुभूति जिसका लक्षण है वह ज्ञानपर्याय है; ज्ञेय और ज्ञाताकी [१]क्रियान्तरसे निवृत्तिके द्वारा रचित दृष्टिज्ञातृतत्त्वमें परिणति जिसका लक्षण है वह चारित्रपर्याय है। इन पर्यायोंके और आत्माके [२]भाव्यभावकताके द्वारा उत्पन्न अति गाढ़ इतरेतर मिलनके बलके कारण इन तीनों पर्यायरूप युगपत् अंग–अंगीभावसे परिणत आत्माके, आत्मनिष्ठता होने पर जो संयतत्त्व होता है वह संयतपना एकाग्रतालक्षणवाला श्रामण्य जिसका दूसरा नाम है ऐसा मोक्षमार्ग ही है—ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि वहाँ (संयतपनेमें) [३]पेयकी भाँति [४]अनेकात्मक एकका अनुभव होने

१. क्रियांतर = अन्य क्रिया; [ज्ञेय और ज्ञाता अन्य क्रियासे निवृत्त हो उसके कारण होनेवाली जो द्रष्टा–ज्ञाता आत्मतत्त्वमें परिणति वह चारित्रपर्यायका लक्षण है।]

२. भावक अर्थात् होनेवाला, और भावक जिसरूप हो सो भाव्य है। आत्मा भावक है और सम्यग्दर्शनादि पर्यायें भाव्यक हैं। भावक और भाव्यका परस्पर अति गाढ़ मिलन (एकमेकता) होता है। भावक आत्मा अंगी है और भाव्यरूप सम्यग्दर्शनादि पर्यायें उसका अंग है।

३. पेय = पीनेकी वस्तु, जैसे ठंडाई। [ठंडाईका स्वाद अनेकात्मक एक होता है; क्योंकि अभेदसे उसमें एक ठंडाईका ही स्वाद आता है, और भेदसे उसमें दूध, शक्कर, सोंफ, कालीमिर्च तथा बादाम आदि अनेक वस्तुओंका स्वाद आता है।]

४. यहाँ अनेकात्मक एकके अनुभवमें जो अनेकात्मकता है वह परद्रव्यमय नहीं है वहाँ परद्रव्योंसे तो निवृत्ति ही है; मात्र सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप स्व–अंशोंके कारण ही अनेकात्मकता है। इसलिये वहाँ, अनेकात्मकता होने पर भी एकाग्रता (एक–अग्रता) प्रगट है।

गन्तव्यः। तस्य तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेन, ऐकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वाद् द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन, विश्वस्यापि भेदाभेदात्मकत्वात्तदुभयमिति प्रमाणेन प्रज्ञप्तिः ॥२४२॥

***इत्येवं प्रतिपत्तुराशयवशादेकोऽप्यनेकीभवं**
स्त्रैलक्षण्यमथैकतामुपगतो मार्गोऽपवर्गस्य यः।
द्रष्टृज्ञातृनिबद्धवृत्तिमचलं लोकस्तमास्कन्दता-
मास्कन्दत्यचिराद्विकाशमतुलं येनोल्लसन्त्याश्चितेः ॥१६॥

नामान्तरेण परमसाम्यमिति। तदेव परमसाम्यं पर्यायनामान्तरेण शुद्धोपयोगलक्षणः श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गो ज्ञातव्य इति। तस्य तु मोक्षमार्गस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेन निर्णयो भवति। ऐकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वात् द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन निर्णयो भवति। समस्तवस्तुसमूहस्यापि भेदाभेदात्मकत्वान्निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गद्वयस्यापि प्रमाणेन निश्चयो भवतीत्यर्थः ॥२४२॥ एवं निश्चयव्यवहारसंयमप्रतिपादनमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्। अथ यः स्वशुद्धात्मन्येकाग्रो न भवति तस्य मोक्षाभावं दर्शयति—मुज्झदि वा रज्जदि

पर भी, समस्त परद्रव्यसे निवृत्ति होनेसे एकाग्रता अभिव्यक्त (प्रगट) है।

वह (संयतत्त्वरूप अथवा श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग) भेदात्मक होनेसे 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है' इसप्रका पर्यायप्रधान व्यवहारनयसे उसका प्रज्ञापन है; वह (मोक्षमार्ग) अभेदात्मक होनेसे 'एकाग्रता मोक्षमार्ग है' इसप्रकार द्रव्यप्रधान निश्चयनयसे उसका प्रज्ञापन है; समस्त ही पदार्थ भेदाभेदात्मक होनेसे वे दोनों, (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा एकाग्रता) मोक्षमार्ग है' इसप्रकार प्रमाणसे उसका प्रज्ञापन है ॥२४२॥

[अब श्लोक द्वारा मोक्षप्राप्तिके लिये द्रष्टा-ज्ञातामें लीनता करनेको कहा जाता है।]

अर्थ :—इसप्रकार, प्रतिपादकके आशयके वश, एक होने पर भी अनेक होता हुआ (अभेदप्रधान निश्चयनयसे एक—एकाग्रतारूप—होता हुआ भी वक्ताके अभिप्रायानुसार भेदप्रधान व्यवहारनयसे अनेक भी—दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भी—होता होनेसे) [१]एकता (एकलक्षणता) को तथा [२]त्रिलक्षणताको प्राप्त जो अपवर्ग (मोक्ष) का मार्ग उसे लोक द्रष्टा-ज्ञातामें परिणति बांधकर (-लीन करके) अचलरूपसे अवलम्बन करे, जिससे वह (लोक) उल्लसित चेतनाके अतुल विकासको अल्पकालमें प्राप्त हो।

★ शार्दूलविक्रीडित छंद.

१. द्रव्यप्रधान निश्चयनयसे मात्र एकाग्रता ही एक मोक्षमार्गका लक्षण है।

२. पर्यायप्रधान व्यवहारनयसे दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप त्रिक मोक्षमार्गका लक्षण है।

अथानैकाग्र्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति—

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज।
जदि समणो अण्णाणी बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं॥२४३॥

मुह्यति वा रज्यति वा द्वेष्टि वा द्रव्यमन्यदासाद्य।
यदि श्रमणोऽज्ञानी बध्यते कर्मभिर्विविधैः॥२४३॥

यो हि न खलु ज्ञानात्मानमात्मानमेकमग्रं भावयति, सोऽवश्यं ज्ञेयभूतं द्रव्यमन्यदासीदति। तदासाद्य च ज्ञानात्मात्मज्ञानाद्भ्रष्टः स्वयमज्ञानीभूतो मुह्यति वा, रज्यति वा, द्वेष्टि वा; तथाभूतश्च बध्यत एव, न तु विमुच्यते। अत अनैकाग्र्यस्य न मोक्षमार्गत्वं सिद्ध्येत् ॥२४३॥

वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज जदि मुह्यति वा, रज्यति वा, द्वेष्टि वा, यदि चेत्। किं कृत्वा। द्रव्यमन्यदासाद्य प्राप्य। स कः। समणो श्रमणस्तपोधनः। तदा काले अण्णाणी अज्ञानी भवति। अज्ञानी सन् बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं बध्यते कर्मभिर्विविधैरिति। तथाहि—यो निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेनैकाग्रो भूत्वा स्वात्मानं न जानाति तस्य चित्तं बहिर्विषयेषु गच्छति। ततश्चिदानन्दैकनिजस्वभावाच्च्युतो भवति। ततश्च रागद्वेषमोहैः परिणमति। तत्परिणमन् बहुविधकर्मणा बध्यत इति। ततः कारणान्मोक्षार्थिभिरेकाग्रत्वेन स्वस्वरूपं भावनीयमित्यर्थः॥२४३॥ अथ निजशुद्धात्मनि योऽसावेकाग्रस्तस्यैव मोक्षो

अब ऐसा दरशाते हैं कि—अनेकाग्रताके मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता (अर्थात् अनेकाग्रता मोक्षमार्ग नहीं है) :—

अन्वयार्थ :—[**यदि**] यदि [**श्रमणः**] श्रमण, [**अन्यत् द्रव्यम् आसाद्य**] अन्य द्रव्यका आश्रय करके [**अज्ञानी**] अज्ञानी होता हुआ, [**मुह्यति वा**] मोह करता है, [**रज्यति वा**] राग करता है, [**द्वेष्टि वा**] अथवा द्वेष करता है, तो वह [**विविधैः कर्मभिः**] विविध कर्मोंसे [**बध्यते**] बँधता है॥२४३॥

टीका :—जो वास्तवमें ज्ञानात्मक आत्मारूप एक अग्र (-विषय) को नहीं भाता, वह अवश्य ज्ञेयभूत अन्य द्रव्यका आश्रय करता है, और उसका आश्रय करके, ज्ञानात्मक आत्माके ज्ञानसे भ्रष्ट वह स्वयं अज्ञानी होता हुआ मोह करता है, राग करता है, अथवा द्वेष करता है; और ऐसा (-मोही रागी अथवा द्वेषी) होता हुआ बंधको ही प्राप्त होता है; परन्तु मुक्त नहीं होता।

इससे अनेकाग्रताको मोक्षमार्गपना सिद्ध नहीं होता॥२४३॥

परद्रव्यने आश्रय श्रमण अज्ञानी पामे मोहने
वा रागने वा द्वेषने, तो विविध बांधे कर्मने. २४३.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथैकाग्र्यस्य मोक्षमार्गत्वमवधारयन्नुपसंहरति—

अट्ठेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुवयादि।
समणो जदि सो णियदं खवेदि कम्माणि विविहाणि॥२४४॥

अर्थेषु यो न मुह्यति न हि रज्यति नैव द्वेषमुपयाति।
श्रमणो यदि स नियतं क्षपयति कर्माणि विविधानि॥२४४॥

यस्तु ज्ञानात्मानमात्मानमेकमग्रं भावयति, स न ज्ञेयभूतं द्रव्यमन्यदासीदति। तदनासाद्य च ज्ञानात्मात्मज्ञानादभ्रष्टः स्वयमेव ज्ञानीभूतस्तिष्ठन्न मुह्यति, न रज्यति, न द्वेष्टि;

भवतीत्युपदिशति—अट्ठेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुवयादि अर्थेषु बहिःपदार्थेषु यो न मुह्यति, न रज्यति, हि स्फुटं, नैव द्वेषमुपयाति, जदि यदि चेत्, सो समणो स श्रमणः णियदं निश्चितं खवेदि विविहाणि कम्माणि क्षपयति कर्माणि विविधानि इति। अथ विशेषः—योऽसौ दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपाद्यपध्यानत्यागेन निजस्वरूपं भावयति, तस्य चित्तं बहिःपदार्थेषु न गच्छति, ततश्च बहिःपदार्थचिन्ताभावान्निर्विकारचिच्चमत्कारमात्राच्च्युतो न भवति। तदच्यवनेन च रागाद्यभावाद्विविधकर्माणि विनाशयतीति। ततो मोक्षार्थिना निश्चलचित्तेन निजात्मनि भावना कर्तव्येति। इत्थं वीतरागचारित्रव्याख्यानं श्रुत्वा केचन वदन्ति—सयोगिकेवलिनामप्येकदेशेन चारित्रं, परिपूर्णचारित्रं पुनरयोगिचरमसमये भविष्यति, तेन कारणेनेदानीमस्माकं सम्यक्त्वभावनया भेदज्ञानभावनया च पूर्यते, चारित्रं पश्चाद्भविष्यतीति। नैवं वक्तव्यम्। अभेदनयेन ध्यानमेव चारित्रं, तच्च ध्यानं केवलिनामुपचारेणोक्तं, चारित्रमप्युपचारेणेति। यत्पुनः समस्तरागादिविकल्पजालरहितं शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं सम्यग्दर्शनज्ञान-

---

अब एकाग्रता वह मोक्षमार्ग है ऐसा (आचार्य महाराज) निश्चित करते हुए (मोक्षमार्ग-प्रज्ञापनका) उपसंहार करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यदि यः श्रमणः] यदि श्रमण [अर्थेषु] पदार्थोंमें [न मुह्यति] मोह नहीं करता, [न हि रज्यति] राग नहीं करता, [न एव द्वेषम् उपयाति] और न द्वेषको प्राप्त होता है [सः] तो वह [नियतं] नियमसे (निश्चित) [विविधानि कर्माणि] विविध कर्मोंको [क्षपयति] खपाता है॥२४३॥

टीका :—जो ज्ञानात्मक आत्मारूप एक अग्र (-विषय) को भाता है वह ज्ञेयभूत अन्य द्रव्यका आश्रय नहीं करता; और उसका आश्रय नहीं करके ज्ञानात्मक आत्माके ज्ञानसे अभ्रष्ट ऐसा

नहि मोह, ने नहि राग, द्वेष करे नहीं अर्थो विषे,
तो नियमथी मुनिराज ओ विधविध कर्मो क्षय करे. २४४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

तथाभूतः सन् मुच्यत एव, न तु बध्यते। अत ऐकाग्र्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं सिद्ध्येत् ॥२४४॥

—इति मोक्षमार्गप्रज्ञापनम्॥

अथ शुभोपयोगप्रज्ञापनम्। तत्र शुभोपयोगिनः श्रमणत्वेनान्वाचिनोति—

समणा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य होंति समयम्हि।
तेसु वि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा॥२४५॥

श्रमणाः शुद्धोपयुक्ताः शुभोपयुक्ताश्च भवन्ति समये।
तेष्वपि शुद्धोपयुक्ता अनास्रवाः सास्रवाः शेषाः॥२४५॥

पूर्वकं वीतरागछद्मस्थचारित्रं तदेव कार्यकारीति। कस्मादिति चेत्। तेनैव केवलज्ञानं जायते यतस्तस्माच्चारित्रे तात्पर्यं कर्तव्यमिति भावार्थः। किंच उत्सर्गव्याख्यानकाले श्रामण्यं व्याख्यातमत्र पुनरपि किमर्थमिति परिहारमाह—तत्र सर्वपरित्यागलक्षण उत्सर्ग एव मुख्यत्वेन च मोक्षमार्गः, अत्र तु श्रामण्यव्याख्यानमस्ति, परं किंतु श्रामण्यं मोक्षमार्गो भवतीति मुख्यत्वेन विशेषोऽस्ति॥२४४॥ एवं श्रामण्यापरनाममोक्षमार्गोपसंहारमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ शुभोपयोगिनां सास्रवत्वाद्व्यवहारेण श्रमणत्वं व्यवस्थापयति—**संति** विद्यन्ते। क्व। **समयम्हि** समये परमागमे। के सन्ति। **समणा** श्रमणास्तपोधनाः। किंविशिष्टाः। **सुद्धुवजुत्ता** शुद्धोपयोगयुक्ताः शुद्धोपयोगिन इत्यर्थः। **सुहोवजुत्ता य** न केवलं शुद्धोपयोगयुक्ताः, शुभोपयोगयुक्ताश्च। चकारोऽत्र अन्वाचयार्थे गौणार्थे

वह स्वयमेव ज्ञानीभूत रहता हुआ, मोह नहीं करता, राग नहीं करता, द्वेष नहीं करता, और ऐसा (-अमोही, अरागी, अद्वेषी) वर्तता हुआ (वह) मुक्त ही होता है, परन्तु बँधता नहीं है।

इससे एकाग्रताको ही मोक्षमार्गत्व सिद्ध होता है॥२४४॥

इसप्रकार मोक्षमार्ग-प्रज्ञापन समाप्त हुआ।

अब, शुभोपयोगका प्रज्ञापन करते हैं। उसमें (प्रथम), शुभोपयोगियोंको श्रमणरूपमें गौणतया बतलाते हैं।

अन्वयार्थ :—[**समये**] शास्त्रमें (ऐसा कहा है कि), [**शुद्धोपयुक्ताः श्रमणाः**] शुद्धोपयोगी वे श्रमण हैं, [**शुभोपयुक्ताः च भवन्ति**] शुभोपयोगी भी श्रमण होते हैं; [**तेषु अपि**] उनमें भी [**शुद्धोपयुक्ताः अनास्रवाः**] शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं, [**शेषाः सास्रवाः**] शेष सास्रव हैं, (अर्थात् शुभोपयोगी आस्रव सहित हैं।) ॥२४५॥

शुद्धोपयोगी श्रमण छे, शुभयुक्त पण शास्त्रे कह्या;
शुद्धोपयोगी छे निरास्रव, शेष सास्रव जाणवा. २४५.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

ये खलु श्रामण्यपरिणतिं प्रतिज्ञायापि, जीवितकषायकणतया, समस्तपरद्रव्यनिवृत्ति-प्रवृत्तसुविशुद्धदृशिज्ञप्तिस्वभावात्मतत्त्ववृत्तिरूपां शुद्धोपयोगभूमिकामधिरोढुं न क्षमन्ते, ते तदुपकण्ठनिविष्टाः, कषायकुण्ठीकृतशक्तयो, नितान्तमुत्कण्ठुलमनसः, श्रमणाः किं भवेयुर्न वेत्यत्राभिधीयते। 'धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो। पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं॥' इति स्वयमेव निरूपितत्वादस्ति तावच्छुभोपयोगस्य धर्मेण सहैकार्थसमवायः। ततः शुभोपयोगिनोऽपि धर्मसद्भावाद्भवेयुः श्रमणाः। किन्तु तेषां शुद्धोपयोगिभिः समं समकाष्ठत्वं न भवेत्, यतः शुद्धोपयोगिनो निरस्तसमस्तकषायत्वाद-

ग्राह्यः। तत्र दृष्टान्तः—यथा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावाः सिद्धजीवा एव जीवा भण्यते, व्यवहारेण चतुर्गतिपरिणता अशुद्धजीवाश्च जीवा इति; तथा शुद्धोपयोगिनां मुख्यत्वं, शुभोपयोगिनां तु चकारसमुच्चयव्याख्यानेन गौणत्वम्। कस्माद्गौणत्वं जातमिति चेत्। **तेसु वि सुद्धवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा तेष्वपि मध्ये शुद्धोपयोगयुक्ता अनास्रवाः, शेषाः सास्रवा इति यतः कारणात्।** तद्यथा—निज-शुद्धात्मभावनाबलेन समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितत्वाच्छुद्धोपयोगिनो निरास्रवा एव, शेषाः

टीका :—जो वास्तवमें श्रामण्यपरिणतिकी प्रतिज्ञा करके भी, कषाय कणके जीवित (विद्यमान) होनेसे, समस्त परद्रव्यसे निवृत्तिरूपसे प्रवर्तमान ऐसी जो [१]सुविशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाव आत्मतत्त्वमें परिणतिरूप शुद्धोपयोगभूमिका उसमें आरोहण करनेको असमर्थ हैं; वे (शुभोपयोगी) जीव—जो कि शुद्धोपयोगभूमिकाके [२]उपकंठ निवास कर रहे हैं, और कषायने जिनकी शक्ति कुण्ठित की है, तथा जो अत्यन्त उत्कण्ठित (-आतुर) मनवाले हैं, वे—श्रमण हैं या नहीं, यह यहाँ कहा जाता हैं :—

[३]धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो। पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं॥ इसप्रकार (भगवान कुन्दकुन्दाचार्यने ११वीं गाथामें) स्वयं ही निरूपण किया है, इसलिये शुभोपयोगका धर्मके साथ [४]एकार्थसमवाय है। इसलिये शुभोपयोगी भी, उनके धर्मका सद्भाव होनेसे, श्रमण हैं। किन्तु वे शुद्धोपयोगियोंके साथ समान कोटिके नहीं है, क्योंकि शुद्धोपयोगी समस्त कषायोंको निरस्त किया होनेसे निरास्रव ही हैं और ये शुभोपयोगी तो कषायकण अविनष्ट होनेसे सास्रव ही हैं। और ऐसा होनेसे ही शुद्धोपयोगियोंके साथ इनको

१. आत्मतत्त्वका स्वभाव सुविशुद्ध दर्शन और ज्ञान है।

२. उपकंठ = तलहटी; पड़ोस; नजदीकका भाग; निकटता।

३. अर्थ–धर्मपरिणत स्वरूपवाला आत्मा यदि शुद्धोपयोगमें युक्त हो तो मोक्षसुखको पाता है, और यदि शुभोपयोगमें युक्त हो तो स्वर्गसुखको (बंधको) पाता है।

४. एकार्थसमवाय = एक पदार्थमें साथ रह सकनेरूप संबंध (आत्मपदार्थमें धर्म और शुभोपयोग एकसाथ हो सकता है इसलिये शुभोपयोगका धर्मके साथ एकार्थसमवाय है।)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

नास्रवा एव। इमे पुनरनवकीर्णकषायकणत्वात्सास्रवा एव। अत एव च शुद्धोपयोगिभिः सममी न समुच्चीयन्ते, केवलमन्वाचीयन्त एव॥२४५॥

अथ शुभोपयोगिश्रमणलक्षणमासूत्रयति—

अरहंतादिसु भत्ती वच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु।
विज्जदि जदि सामण्णे सा सुहजुत्ता भवे चरिया॥२४६॥

अर्हदादिषु भक्तिर्वत्सलता प्रवचनाभियुक्तेषु।
विद्यते यदि श्रामण्ये सा शुभयुक्ता भवेच्चर्या॥२४६॥

शुभोपयोगिनो मिथ्यात्वविषयकषायरूपाशुभास्रवनिरोधेऽपि पुण्यास्रवसहिता इति भावः॥२४५॥ अथ शुभोपयोगिश्रमणानां लक्षणमाख्याति—सा सुहजुत्ता भवे चरिया सा चर्या शुभयुक्ता भवेत्। कस्य। तपोधनस्य। कथंभूतस्य। समस्तरागादिविकल्परहितपरमसमाधौ स्थातुमशक्यस्य। यदि किम्। विज्जदि जदि विद्यते यदि चेत्। क्व। सामण्णे श्रामण्ये चारित्रे। किं विद्यते। अरहंतादिसु भत्ती अनन्त-ज्ञानादिगुणयुक्तेष्वर्हत्सिद्धेषु गुणानुरागयुक्ता भक्तिः। वच्छलदा वत्सलस्य भावो वत्सलता वात्सल्यं विनयोऽनुकूलवृत्तिः। केषु विषये। पवयणाभिजुत्तेसु प्रवचनाभियुक्तेषु। प्रवचनशब्देनात्रागमो भण्यते,

(शुभोपयोगियोंको) नहीं लिया (नहीं वर्णन किया) जाता, मात्र पीछेसे (गौणरूपमें ही) लिया जाता है।

भावार्थ :—परमागममें ऐसा कहा है कि शुद्धोपयोगी श्रमण हैं और शुभोपयोगी भी गौणरूपसे श्रमण हैं। जैसे निश्चयसे शुद्धबुद्ध-एकस्वभावी सिद्ध जीव ही जीव कहलाते हैं और व्यवहारसे चतुर्गति परिणत अशुद्ध जीव भी जीव कहे जाते हैं, उसीप्रकार श्रमणरूपसे शुद्धोपयोगी जीवोंकी मुख्यता है और शुभोपयोगी जीवोंकी गौणता है; क्योंकि शुद्धोपयोगी निजशुद्धात्मभावनाके बलसे समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्पोंसे रहित होनेसे निरास्रव ही हैं, और शुभोपयोगियोंके मिथ्यात्वविषयकषायरूप अशुभास्रवका निरोध होने पर भी वे पुण्यास्रवयुक्त हैं॥२४५॥

अब, शुभोपयोगी श्रमणका लक्षण सूत्र द्वारा (गाथा द्वारा) कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**श्रामण्ये**] श्रामण्यमें [**यदि**] यदि [**अर्हदादिषु भक्तिः**] अर्हन्तादिके प्रति भक्ति तथा [**प्रवचनाभियुक्तेषु वत्सलता**] प्रवचनरत जीवोंके प्रति वात्सल्य [**विद्यते**] पाया जाता है तो [**सा**] वह [**शुभयुक्ता चर्या**] शुभयुक्त चर्या (शुभोपयोगी

वात्सल्य प्रवचनरत विषे ने भक्ति अर्हंतादिके
—अे होय जो श्रामण्यमां, तो चरण ते शुभयुक्त छे. २४६.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

सकलसंगसंन्यासात्मनि श्रामण्ये सत्यपि कषायलवावेशवशात् स्वयं शुद्धात्मवृत्तिमात्रेणावस्थातुमशक्तस्य, परेषु शुद्धात्मवृत्तिमात्रेणावस्थितेष्वर्हदादिषु, शुद्धात्मवृत्तिमात्रावस्थितिप्रतिपादकेषु प्रवचनाभियुक्तेषु च भक्त्या वत्सलतया च प्रचलितस्य, तावन्मात्ररागप्रवर्तितपरद्रव्यप्रवृत्तिसंवलितशुद्धात्मवृत्तेः, शुभोपयोगि चारित्रं स्यात्। अतः शुभोपयोगिश्रमणानां शुद्धात्मानुरागयोगिचारित्रत्वंलक्षणम् ॥२४६॥

अथ शुभोपयोगिश्रमणानां प्रवृत्तिमुपदर्शयति—

वंदणणमंसणेहिं अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ती।
समणेसु समावणओ ण णिंदिदा रागचरियम्हि॥२४७॥

संघो वा, तेन प्रवचनेनाभियुक्ताः प्रवचनाभियुक्ता आचार्योपाध्यायसाधवस्तेष्विति। एतदुक्तं भवति—स्वयं शुद्धोपयोगलक्षणे परमसामायिके स्थातुमसमर्थस्यान्येषु शुद्धोपयोगफलभूतकेवलज्ञानेन परिणतेषु, तथैव शुद्धोपयोगाराधकेषु च यासौ भक्तिस्तच्छुभोपयोगिश्रमणानां लक्षणमिति॥२४६॥ अथ शुभोपयोगिनां शुभप्रवृत्तिं दर्शयति—ण णिंदिदा नैव निषिद्धा। क्व। रागचरियम्हि शुभरागचर्यायां

चारित्र) [भवेत्] है॥२४६॥

टीका :—सकल संगके संन्यासस्वरूप श्रामण्यके होने पर भी जो कषायांश (अल्पकषाय) के आवेशके वश केवल शुद्धात्मपरिणतिरूपसे रहनेमें स्वयं अशक्त है ऐसा श्रमण, पर ऐसे जो (१) केवल शुद्धात्मपरिणतरूपसे रहनेवाले अर्हन्तादिक तथा (२) केवल शुद्धात्मपरिणतरूपसे रहनेका प्रतिपादन करनेवाले प्रवचनरत जीवोंके प्रति (१) भक्ति तथा (२) वात्सल्यसे चंचल है उस (श्रमण) के, मात्र उतने रागसे प्रवर्तमान परद्रव्यप्रवृत्तिके साथ शुद्धात्मपरिणतिमिलित होनेके कारण, शुभोपयोगी चारित्र है।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) शुद्धात्माका अनुरागयुक्त चारित्र शुभोपयोगी श्रमणोंका लक्षण है।

भावार्थ :—मात्र शुद्धात्मपरिणतिरूप रहनेमें असमर्थ होनेके कारण जो श्रमण, पर ऐसे अर्हन्तादिके प्रति भक्तिसे तथा पर ऐसे आगमपरायण जीवोंके प्रति वात्सल्यसे चंचल (अस्थिर) हैं उस श्रमणके शुभोपयोगी चारित्र है, क्योंकि शुद्धात्मपरिणति परद्रव्यप्रवृत्ति (परद्रव्यमें प्रवृत्ति) के साथ मिली हुई है, अर्थात् वह शुभभावके साथ मिश्रित है॥२४६॥

अब, शुभोपयोगी श्रमणोंकी प्रवृत्ति बतलाते हैं :—

શ્રમણો પ્રતિ વંદન, નમન, અનુગમન, અભ્યુત્થાન ને
વળી શ્રમનિવારણ છે ન નિંદિત રાગયુત ચર્યા વિષે. ૨૪૭.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

वन्दननमस्करणाभ्यामभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिः।
श्रमणेषु श्रमापनयो न निन्दिता रागचर्यायाम् ॥२४७॥

शुभोपयोगिनां हि शुद्धात्मानुरागयोगिचारित्रतया, समधिगतशुद्धात्मवृत्तिषु श्रमणेषु वन्दननमस्करणाभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिप्रवृत्तिः शुद्धात्मवृत्तित्राणनिमित्ता श्रमापनयनप्रवृत्तिश्च न दुष्येत् ॥२४७॥

अथ शुभोपयोगिनामेवैवंविधाः प्रवृत्तयो भवन्तीति प्रतिपादयति—

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य॥२४८॥

सरागचारित्रावस्थायाम्। का न निन्दिता। वंदणणमंसणेहिं अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ती वन्दननमस्काराभ्यां सहाभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिप्रवृत्तिः। समणेसु समावणओ श्रमणेषु श्रमापनयः रत्नत्रयभावनाभिघातक-श्रमस्य खेदस्य विनाश इति। अनेन किमुक्तं भवति–शुद्धोपयोगसाधके शुभोपयोगे स्थितानां तपोधनानां इत्थंभूताः शुभोपयोगप्रवृत्तयो रत्नत्रयाराधकशेषपुरुषेषु विषये युक्ता एव, विहिता एवेति॥२४७॥ अथ शुभोपयोगिनामेवेत्थंभूताः प्रवृत्तयो भवन्ति, न च शुद्धोपयोगिनामिति प्ररूपयति—दंसणणाणुवदेसो

अन्वयार्थ :—[श्रमणेषु] श्रमणोंके प्रति [वन्दननमस्करणाभ्यां] वन्दन–नमस्कार सहित [अभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिः] [1]अभ्युत्थान और [2]अनुगमनरूप [3]विनीत प्रवृत्ति करना तथा [श्रमापनयः] उनका श्रम दूर करना वह [रागचर्यायाम्] रागचर्यामें [न निन्दिता] निन्दित नहीं है॥२४७॥

टीका :—शुभोपयोगियोंके शुद्धात्माके अनुरागयुक्त चारित्र होता है, इसलिये जिनने शुद्धात्मपरिणति प्राप्त की है ऐसे श्रमणोंके प्रति जो वन्दन–नमस्कार–अभ्युत्थान–अनुगमनरूप विनीत वर्तनकी प्रवृत्ति तथा शुद्धात्मपरिणतिकी रक्षाकी निमित्तभूत ऐसी जो श्रम दूर करनेकी (वैयावृत्यरूप) प्रवृत्ति है, वह शुभोपयोगियोंके लिये दूषित (दोषरूप, निन्दित) नहीं है। (अर्थात् शुभोपयोगी मुनियोंके ऐसी प्रवृत्तिका निषेध नहीं हैं)॥२४७॥

अब, ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि शुभोपयोगियोंके ही ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं :—

---

१. अभ्युत्थान = मानार्थ खड़ा हो जाना वह।
२. अनुगमन = पीछे चलना वह।
३. विनीत = विनययुक्त, सन्मानयुक्त, विवेकी, सभ्य।

उपदेश दर्शनज्ञाननो, पोषण–ग्रहण शिष्यो तणुं,
उपदेश जिनपूजा तणो—वर्तन तुं जाण सरागनुं. २४८.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

दर्शनज्ञानोपदेशः शिष्यग्रहणं च पोषणं तेषाम्।
चर्या हि सरागाणां जिनेन्द्रपूजोपदेशश्च ॥२४८॥

अनुजिघृक्षापूर्वकदर्शनज्ञानोपदेशप्रवृत्तिः शिष्यसंग्रहणप्रवृत्तिस्तत्पोषणप्रवृत्तिर्जिनेन्द्र-पूजोपदेशप्रवृत्तिश्च शुभोपयोगिनामेव भवन्ति, न शुद्धोपयोगिनाम् ॥२४८॥

अथ सर्वा एव प्रवृत्तयः शुभोपयोगिनामेव भवन्तीत्यवधारयति—

उव्वकुणदि जो वि णिच्चं चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स।
कायविराधणरहिदं सो वि सरागप्पधाणो से ॥२४९॥

दर्शनं मूढत्रयादिरहितं सम्यक्त्वं, ज्ञानं परमागमोपदेशः, तयोरुपदेशो दर्शनज्ञानोपदेशः। सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं रत्नत्रयाराधनाशिक्षाशीलानां शिष्याणां ग्रहणं स्वीकारस्तेषामेव पोषणमशनशयनादिचिन्ता। चरिया हि सरागाणं इत्थंभूता चर्या चारित्रं भवति, हि स्फुटम्। केषाम्। सरागाणां धर्मानुराग-चारित्रसहितानाम्। न केवलमित्थंभूता चर्या, जिणिंदपूजोवदेसो य यथासंभवं जिनेन्द्रपूजादि-धर्मोपदेशश्चेति। ननु शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते, शुद्धोपयोगिनामपि क्वापि काले शुभोपयोगभावना दृश्यते, श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते, तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत इति। परिहारमाह—युक्तमुक्तं भवता, परं किंतु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते। येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि क्वापि काले शुभोपयोगेन वर्तन्ते तथापि शुद्धोपयोगिन एव। कस्मात्। बहुपदस्य प्रधानत्वादाम्रवननिम्बवनवदिति ॥२४८॥ अथ काश्चिदपि याः प्रवृत्तयस्ताः शुभोपयोगि-नामेवेति नियमति—उव्वकुणदि जो वि णिच्चं चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स उपकरोति योऽपि नित्यं। कस्य।

अन्वयार्थ :—[दर्शनज्ञानोपदेशः] दर्शनज्ञानका (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका) उपदेश, [शिष्यग्रहणं] शिष्योंका ग्रहण, [च] तथा [तेषाम् पोषणं] उनका पोषण, [च] और [जिनेन्द्रपूजोपदेशः] जिनेन्द्रकी पूजाका उपदेश [हि] वास्तवमें [सरागाणां चर्या] सरागियोंकी चर्या है ॥२४८॥

टीका :—अनुग्रह करनेकी इच्छापूर्वक दर्शनज्ञानके उपदेशकी प्रवृत्ति, शिष्यग्रहणकी प्रवृत्ति, उनके पोषणकी प्रवृत्ति और जिनेन्द्रपूजनके उपदेशकी प्रवृत्ति शुभोपयोगियोंके ही होती है, शुद्धोपयोगियोंके नहीं ॥२४८॥

अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि सभी प्रवृत्तियाँ शुभोपयोगियोंके ही होती हैं :—

વણ જીવકાયવિરાધના ઉપકાર જે નિત્યે કરે
ચઉવિધ સાધુસંઘને, તે શ્રમણ રાગપ્રધાન છે. ૨૪૯.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

उपकरोति योऽपि नित्यं चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य।
कायविराधनरहितं सोऽपि सरागप्रधानः स्यात् ॥२४९॥

प्रतिज्ञातसंयमत्वात् षट्कायविराधनरहिता या काचनापि शुद्धात्मवृत्तित्राणनिमित्ता चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्योपकारकरणप्रवृत्तिः सा सर्वापि रागप्रधानत्वात् शुभोपयोगिनामेव भवति, न कदाचिदपि शुद्धोपयोगिनाम् ॥२४९॥

चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य। अत्र श्रमणशब्देन श्रमणशब्दवाच्या ऋषिमुनियत्यनगारा ग्राह्याः। "देश-प्रत्यक्षविल्केवलभृदिहमुनिः स्यादृषिः प्रसृतर्द्धिरारूढः श्रेणियुग्मेऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुवर्गः। राजा ब्रह्मा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्तिप्राप्तो बुद्ध्यौषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण॥" ऋषय ऋद्धिं प्राप्तास्ते चतुर्विधा, राजब्रह्मदेवपरमऋषिभेदात्। तत्र राजर्षयो विक्रिया-क्षीणार्द्धिप्राप्ता भवन्ति। ब्रह्मर्षयो बुद्ध्यौषधर्द्धियुक्ता भवन्ति। देवर्षयो गगनगमनर्द्धिसंपन्ना भवन्ति। परमर्षयः केवलिनः केवलज्ञानिनो भवन्ति। मुनयः अवधिमनःपर्ययकेवलिनश्च। यतय उपशमक-क्षपकश्रेण्यारूढाः। अनगाराः सामान्यसाधवः। कस्मात्। सर्वेषां सुखदुःखादिविषये समतापरिणामो-ऽस्तीति। अथवा श्रमणधर्मानुकूलश्रावकादिचातुर्वर्णसंघः। कथं यथा भवति। **कायविराधणरहिद** स्वस्थभावनास्वरूपं स्वकीयशुद्धचैतन्यलक्षणं निश्चयप्राणं रक्षन् परकीयषट्कायविराधनारहितं यथा भवति। **सो वि सरागप्पधाणो से** सोऽपीत्थंभूतस्तपोधनो धर्मानुरागचारित्रसहितेषु मध्ये प्रधानः श्रेष्ठः स्यादित्यर्थः॥२४९॥ अथ वैयावृत्त्यकालेऽपि स्वकीयसंयमविराधना न कर्तव्येत्युपदिशति—जदि

अन्वयार्थ :—[यः अपि] जो कोई (श्रमण) [नित्यं] सदा [कायविराधनरहितं] (छह) कायकी विराधनासे रहित [चातुर्वर्णस्य] चारप्रकारके [श्रमणसंघस्य] श्रमण संघका [उपकरोति] उपकार करता है, [सः अपि] वह भी [सरागप्रधानः स्यात्] रागकी प्रधानतावाला है॥२४९॥

टीका :—संयमकी प्रतिज्ञा की होनेसे [१]छह कायके विराधनसे रहित जो कोई भी, शुद्धात्मपरिणतिके रक्षणमें निमित्तभूत ऐसी, [२]चार प्रकारके श्रमणसंघका उपकार करनेकी प्रवृत्ति है वह सभी रागप्रधानताके कारण शुभोपयोगियोंके ही होती है, शुद्धोपयोगियोंके कदापि नहीं॥२४९॥

---

१. श्रमणसंघको शुद्धात्मपरिणतिके रक्षणमें निमित्तभूत ऐसी जो उपकारप्रवृत्ति शुभोपयोगी श्रमण करते हैं वह छह कायकी विराधनासे रहित होती है, क्योंकि उन (शुभोपयोगी श्रमणों) ने संयमकी प्रतिज्ञा ली है।

२. श्रमणके ४ प्रकार यह हैं :—(१) ऋषि, (२) मुनि, (३) यति और (४) अनगार। ऋद्धिप्राप्त श्रमण ऋषि हैं, अवधि, मनःपर्यय अथवा केवलज्ञानवाले श्रमण मुनि हैं, उपशमक या क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ श्रमण यति हैं और सामान्य साधु वह अनगार हैं। इसप्रकार चतुर्विध श्रमण संघ है।

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ प्रवृत्तेः संयमविरोधित्वं प्रतिषेधयति—

जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो समणो।
ण हवदि हवदि अगारी धम्मो सो सावयाणं से॥२५०॥

यदि करोति कायखेदं वैयावृत्त्यार्थमुद्यतः श्रमणः।
न भवति भवत्यगारी धर्मः स श्रावकाणां स्यात्॥२५०॥

यो हि परेषां शुद्धात्मवृत्तित्राणाभिप्रायेण वैयावृत्त्यप्रवृत्त्या स्वस्य संयमं विराधयति, स गृहस्थधर्मानुप्रवेशात् श्रामण्यात् प्रच्यवते। अतो या काचन प्रवृत्तिः सा सर्वथा संयमाविरोधेनैव विधातव्या; प्रवृत्तावपि संयमस्यैव साध्यत्वात्॥२५०॥

कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो यदि चेत् करोति कायखेदं षट्कायविराधनाम्। कथंभूतः सन्। वैयावृत्त्यार्थमुद्यतः। **समणो ण हवदि** तदा श्रमणस्तपोधनो न भवति। तर्हि किं भवति। **हवदि अगारी** अगारी गृहस्थो भवति। कस्मात्। **धम्मो सो सावयाणं से** षट्कायविराधनां कृत्वा योऽसौ धर्मः स श्रावकाणां स्यात्, न च तपोधनानामिति। इदमत्र तात्पर्यम्—योऽसौ स्वशरीरपोषणार्थं शिष्यादिमोहेन वा सावद्यं नेच्छति तस्येदं व्याख्यानं शोभते, यदि पुनरन्यत्र सावद्यमिच्छति वैयावृत्त्यादिस्वकीयावस्थायोग्ये धर्मकार्ये नेच्छति तदा तस्य सम्यक्त्वमेव नास्तीति॥२५०॥ अथ यद्यप्यल्पलेपो भवति

अब, प्रवृत्ति संयमकी विरोधी होनेका निषेध करते हैं (अर्थात् शुभोपयोगी श्रमणके संयमके साथ विरोधवाली प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये–ऐसा कहते हैं) :—

अन्वयार्थ :—[**यदि**] यदि (श्रमण) [**वैयावृत्यर्थम् उद्यतः**] वैयावृत्तिके लिये उद्यमी वर्तता हुआ [**कायखेदं**] छह कायको पीड़ित [**करोति**] करता है तो वह [**श्रमणः न भवति**] श्रमण नहीं है, [**अगारी भवति**] गृहस्थ है; (क्योंकि) [**सः**] वह (छह कायकी विराधना सहित वैयावृत्ति) [**श्रावकाणां धर्मः स्यात्**] श्रावकोंका धर्म है॥२५०॥

टीका :—जो (श्रमण) दूसरेके शुद्धात्मपरिणतिकी रक्षा हो ऐसे अभिप्रायसे वैयावृत्यकी प्रवृत्ति करता हुआ अपने संयमकी विराधना करता है, वह गृहस्थधर्ममें प्रवेश कर रहा होनेसे श्रामण्यसे च्युत होता है। इससे (ऐसा कहा है कि) जो भी प्रवृत्ति हो वह सर्वथा संयमके साथ विरोध न आये इसप्रकार ही करनी चाहिये, क्योंकि प्रवृत्तिमें भी संयम ही साध्य है।

वैयावृत्ते उद्यत श्रमण षट् कायने पीडा करे
तो श्रमण नहि, पण छे गृही; ते श्रावकोनो धर्म छे. २५०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ प्रवृत्तेर्विषयविभागे दर्शयति—

जोण्हाणं णिरवेक्खं सागारणगारचरियजुत्ताणं।
अणुकंपयोवयारं कुव्वदु लेवो जदि वि अप्पो॥२५१॥

जैनानां निरपेक्षं साकारानाकारचर्यायुक्तानाम्।
अनुकम्पयोपकारं करोतु लेपो यद्यप्यल्पः॥२५१॥

या किलानुकम्पापूर्विका परोपकारलक्षणा प्रवृत्तिः सा खल्वनेकान्तमैत्रीपवित्रितचित्तेषु

परोपकारे, तथापि शुभोपयोगिभिर्धर्मोपकारः कर्तव्य इत्युपदिशति—कुव्वदु करोतु। स कः कर्ता। शुभोपयोगी पुरुषः। कं करोतु। **अणुकंपयोवयारं** अनुकम्पासहितोपकारं दयासहितं धर्मवात्सल्यम्। यदि किम्। **लेवो जदि वि अप्पो** "सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ" इति दृष्टान्तेन यद्यप्यल्पलेपः स्तोकसावद्यं भवति। केषां करोतु। **जोण्हाणं** निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गपरिणतजैनानाम्। कथम्। **णिरवेक्खं** निरपेक्षं

भावार्थ :—जो श्रमण छह कायकी विराधना सहित वैयावृत्यादि प्रवृत्ति करता है, वह गृहस्थधर्ममें प्रवेश करता है; इसलिये श्रमणको वैयावृत्यादिकी प्रवृत्ति इसप्रकार करनी चाहिये कि जिससे संयमकी विराधना न हो।

यहाँ इतना विशेष समझना चाहिये कि—जो स्वशरीर पोषणके लिये या शिष्यादिके मोहसे सावद्यको नहीं चाहता उसे तो वैयावृत्यादिमें भी सावद्यकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, वह शोभास्पद है। किन्तु जो अन्यत्र तो सावद्यकी इच्छा करे किन्तु अपनी अवस्थाके योग्य वैयावृत्यादि धर्मकार्यमें सावद्यको न चाहे उसके तो सम्यक्त्व ही नहीं है॥२५०॥

अब प्रवृत्तिके विषयके दो विभाग बतलाते हैं (अर्थात् अब यह बतलाते हैं कि शुभोपयोगियोंको किसके प्रति उपकारकी प्रवृत्ति करना योग्य है और किसके प्रति नहीं) :—

अन्वयार्थ :—[**यद्यपि अल्पः लेपः**] यद्यपि अल्प लेप होता है तथापि [**साकारनाकारचर्यायुक्तानाम्**] साकार-अनाकार चर्यायुक्त [**जैनानां**] जैनोंका [**अनुकम्पया**] अनुकम्पासे [**निरपेक्षं**] निरपेक्षतया [**उपकारं करोतु**] (शुभोपयोग से) उपकार करो॥२५१॥

टीका :—जो अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति उसके करनेसे यद्यपि अल्प लेप तो होता है, तथापि अनेकान्तके साथ मैत्रीसे जिनका चित्त पवित्र हुआ है ऐसे शुद्ध जैनोंके

छे अल्प लेप छतांय दर्शनज्ञानपरिणत जैनने
निरपेक्षतापूर्वक करो उपकार अनुकंपा वडे. २५१.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

शुद्धेषु जैनेषु शुद्धात्मज्ञानदर्शनप्रवृत्तवृत्तितया साकारानाकारचर्यायुक्तेषु शुद्धात्मोपलंभेतर-सकलनिरपेक्षतयैवाल्पलेपाऽप्यप्रतिषिद्धा; न पुनरल्पलेपेति सर्वत्र सर्वथैवाप्रतिषिद्धा, तत्र तथाप्रवृत्त्या शुद्धात्मवृत्तित्राणस्य परात्मनोरनुपपत्तेरिति॥२५१॥

अथ प्रवृत्तेः कालविभागं दर्शयति—

रोगेण वा छुधाए तण्हाए वा समेण वा रूढं।
दिट्ठा समणं साहू पडिवज्जदु आदसत्तीए॥२५२॥

शुद्धात्मभावनाविनाशकख्यातिपूजालाभवाञ्छारहितं यथा भवति। कथंभूतानां जैनानाम्। सागारणगार-चरियजुत्ताणं सागारानागारचर्यायुक्तानां श्रावकतपोधनाचरणसहितानामित्यर्थः॥२५१॥ कस्मिन्प्रस्तावे वैयावृत्त्यं कर्तव्यमित्युपदिशति—**पडिवज्जदु** प्रतिपद्यतां स्वीकरोतु। कया। **आदसत्तीए** स्वशक्त्या। स कः कर्ता। **साहू** रत्नत्रयभावनया स्वात्मानं साधयतीति साधुः। कम्। **समणं** जीवितमरणादिसमपरिणाम-

---

प्रति—जो कि शुद्धात्माके ज्ञान-दर्शनमें प्रवर्तमान [१]वृत्तिके कारण साकार-[२]अनाकार चर्यावाले हैं उनके प्रति,—शुद्धात्माकी उपलब्धिके अतिरिक्त अन्य सबकी अपेक्षा किये बिना ही, उस प्रवृत्तिके करनेका निषेध नहीं है; किन्तु अल्प लेपवाली होनेसे सबके प्रति सभी प्रकारसे वह प्रवृत्ति अनिषिद्ध हो ऐसा नहीं है, क्योंकि वहाँ (अर्थात् यदि सबके प्रति सभी प्रकारसे की जाय तो) उस प्रकारकी प्रवृत्तिसे परके और निजके शुद्धात्मपरिणतिकी रक्षा नहीं हो सकती।

भावार्थ :—यद्यपि अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्तिसे अल्प लेप तो होता है, तथापि यदि (१) शुद्धात्माकी ज्ञानदर्शनस्वरूप चर्यावाले शुद्ध जैनोंके प्रति, तथा (२) शुद्धात्माकी उपलब्धिकी अपेक्षासे ही, वह प्रवृत्ति की जाती हो तो शुभोपयोगीके उसका निषेध नहीं है। परन्तु, यद्यपि अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्तिसे अल्प ही लेप होता है तथापि (१) शुद्धात्माकी ज्ञानदर्शनरूप चर्यावाले शुद्ध जैनोंके अतिरिक्त दूसरोंके प्रति, तथा (२) शुद्धात्माकी उपलब्धिके अतिरिक्त अन्य किसी भी अपेक्षासे, वह प्रवृत्ति करनेका शुभोपयोगीके निषेध है, क्योंकि इसप्रकारसे परको या निजको शुद्धात्मपरिणतिकी रक्षा नहीं होती॥२५१॥

अब, प्रवृत्तिके कालका विभाग बतलाते हैं (अर्थात् यह बतलाते हैं कि-शुभोपयोगी श्रमण को किस समय प्रवृत्ति करना योग्य है और किस समय नहीं) :—

---

१. वृत्ति = परिणति; वर्तन; वर्तना वह। २. ज्ञान साकार है और दर्शन अनाकार है।

आक्रांत देखी श्रमणने श्रम, रोग वा भूख, प्यासथी,
साधु करो सेवा स्वशक्तिप्रमाण अे मुनिराजनी. २५२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

रोगेण वा क्षुधया तृष्णया वा श्रमेण वा रूढम्।
दृष्ट्वा श्रमणं साधुः प्रतिपद्यतामात्मशक्त्या॥२५२॥

यदा हि समधिगतशुद्धात्मवृत्तेः श्रमणस्य तत्प्रच्यावनहेतोः कस्याप्युपसर्गस्योपनिपातः स्यात्, स शुभोपयोगिनः स्वशक्त्या प्रतिचिकीर्षा प्रवृत्तिकालः। इतरस्तु स्वयं शुद्धात्मवृत्तेः समधिगमनाय केवलं निवृत्तिकाल एव॥२५२॥

अथ लोकसम्भाषणप्रवृत्तिं सनिमित्तविभागं दर्शयति—

वेज्जावच्चणिमित्तं गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं।
लोगिगजणसंभासा ण णिंदिदा वा सुहोवजुदा॥२५३॥

त्वाच्छ्रमणस्तं श्रमणम्। दिट्ठा दृष्ट्वा। कथंभूतम्। रूढं रूढं व्याप्तं पीडितं कदर्थितम्। केन। रोगेण वा अनाकुलत्वलक्षणपरमात्मनो विलक्षणेनाकुलत्वोत्पादकेन रोगेण व्याधिविशेषेण वा, छुधाए क्षुधया, तण्हाए वा तृष्णया वा, समेण वा मार्गोपवासादिश्रमेण वा। अत्रेदं तात्पर्यम्—स्वस्थभावनाविघातक-रोगादिप्रस्तावे वैयावृत्त्यं करोति, शेषकाले स्वकीयानुष्ठानं करोतीति॥२५२॥ अथ शुभोपयोगिनां तपोधनवैयावृत्त्यनिमित्तं लौकिकसंभाषणविषये निषेधो नास्तीत्युपदिशति—ण णिंदिदा शुभोपयोगि-

---

अन्वयार्थ :—[रोगेण वा] रोगसे, [क्षुधया] क्षुधासे, [तृष्णया वा] तृषासे [श्रमेण वा] अथवा श्रमसे [रूढम्] आक्रांत [श्रमणं] श्रमणको [दृष्ट्वा] देखकर [साधुः] साधु [आत्मशक्त्या] अपनी शक्तिके अनुसार [प्रतिपद्यताम्] वैयावृत्यादि करो॥२५२॥

टीका :—जब शुद्धात्मपरिणतिको प्राप्त श्रमणको, उससे च्युत करे ऐसा कारण—कोई भी उपसर्ग—आ जाय, तब वह काल, शुभोपयोगीको अपनी शक्तिके अनुसार [१]प्रतिकार करनेकी इच्छारूप प्रवृत्तिका काल है; और उसके अतिरिक्तका काल अपनी शुद्धात्मपरिणतिकी प्राप्तिके लिये केवल निवृत्तिका काल है।

भावार्थ :—जब शुद्धात्मपरिणतिको प्राप्त श्रमणके स्वस्थ भावका नाश करनेवाला रोगादिक आ जाय तब उस समय शुभोपयोगी साधुको उनकी सेवाकी इच्छारूप प्रवृत्ति होती है, और शेष कालमें शुद्धात्मपरिणतिको प्राप्त करनेके लिये निज अनुष्ठान होता है॥२५२॥

अब लोगोंके साथ बातचीतकरनेकी प्रवृत्ति उसके निमित्तके विभाग सहित बतलाते हैं (अर्थात् शुभोपयोगी श्रमणको लोगोंके साथ बातचीतकी प्रवृत्ति किस निमित्तसे करना योग्य है और किस निमित्तसे नहीं, सो कहते हैं) :—

---

१. प्रतिकार = उपाय; सहाय।

सेवानिमित्ते रोगी–बाळक–वृद्ध–गुरु श्रमणो तणी,
लौकिक जनो सह वात शुभ–उपयोगयुत निंदित नथी. २५३.

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

वैयावृत्त्यनिमित्तं ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानाम्।
लौकिकजनसम्भाषा न निन्दिता वा शुभोपयुता॥२५३॥

समधिगतशुद्धात्मवृत्तीनां ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानां वैयावृत्त्यनिमित्तमेव शुद्धात्मवृत्ति-शून्यजनसम्भाषणमप्रसिद्धं, न पुनरन्यनिमित्तमपि॥२५३॥

अथैवमुक्तस्य शुभोपयोगस्य गौणमुख्यविभागं दर्शयति—

एसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।
चरिया परेत्ति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं॥२५४॥

तपोधनानां न निन्दिता, न निषिद्धा। का कर्मतापन्ना। लोगिगजणसंभासा लौकिकजनैः सह संभाषा वचनप्रवृत्तिः। सुहोवजुदा वा अथवा सापि शुभोपयोगयुक्ता भण्यते। किमर्थं न निषिद्धा। वेज्जावच्चणिमित्तं वैयावृत्त्यनिमित्तम्। केषां वैयावृत्त्यम्। गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानाम्। अत्र गुरुशब्देन स्थूलकायो भण्यते, अथवा पूज्यो वा गुरुरिति। तथाहि—यदा कोऽपि शुभोपयोगयुक्त आचार्यः सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगिनां वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धोपयोगिनां वा वैयावृत्त्यं करोति, तदाकाले तद्वैयावृत्त्यनिमित्तं लौकिकजनैः सह संभाषणं करोति, न शेषकाल इति भावार्थः॥२५३॥ एवं गाथापञ्चकेन लौकिकव्याख्यानसंबन्धिप्रथमस्थलं गतम्। अथायं वैयावृत्त्यादिलक्षण-शुभोपयोगस्तपोधनैर्गौणवृत्त्या श्रावकैस्तु मुख्यवृत्त्या कर्तव्य इत्याख्याति—**भणिदा** भणिता कथिता। का कर्मतापन्ना। **चरिया** चर्या चारित्रमनुष्ठानम्। किंविशिष्टा। **एसा** एषा प्रत्यक्षीभूता। पुनश्च किंरूपा। **पसत्थभूदा** प्रशस्तभूता धर्मानुरागरूपा। केषां संबन्धिनी। **समणाणं वा** श्रमणानां वा **पुणो घरत्थाणं**

अन्वयार्थ :—[वा] और [ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानाम्] रोगी, गुरु (-पूज्य, बड़े), बाल तथा वृद्ध श्रमणोंकी [वैयावृत्यनिमित्तं] सेवाके निमित्तसे, [शुभोपयुता] शुभोपयोगयुक्त [लौकिकजनसंभाषा] लौकिक जनोंके साथकी बातचीत [न निन्दिता] निन्दित नहीं है॥२५३॥

टीका :—शुद्धात्मपरिणतिको प्राप्त रोगी, गुरु, बाल और वृद्ध श्रमणोंकी सेवाके निमित्तसे ही (शुभोपयोगी श्रमणको) शुद्धात्मपरिणतिशून्य लोगोंके साथ बातचीत प्रसिद्ध है (-शास्त्रोंमें निषिद्ध नहीं है), किन्तु अन्य निमित्तसे भी प्रसिद्ध हो ऐसा नहीं है॥२५३॥

अब, इस प्रकारसे कहे गये शुभोपयोगका गौण-मुख्य विभाग बतलाते हैं; (अर्थात् यह बतलाते हैं कि किसके शुभोपयोग गौण होता है और किसके मुख्य होता है।) :—

આ શુભ ચર્યા શ્રમણને, વળી મુખ્ય હોય ગૃહસ્થને;
તેના વડે જ ગૃહસ્થ પામે મોક્ષસુખ ઉત્કૃષ્ટને. ૨૫૪.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

एषा प्रशस्तभूता श्रमणानां वा पुनर्गृहस्थानाम्।
चर्या परेति भणिता तयैव परं लभते सौख्यम्॥२५४॥

एवमेष शुद्धात्मानुरागयोगिप्रशस्तचर्यारूप उपवर्णितः शुभोपयोगः तदयं, शुद्धात्मप्रकाशिकां समस्तविरतिमुपेयुषां कषायकणसद्भावात्प्रवर्तमानः, शुद्धात्मवृत्तिविरुद्धरागसंगतत्वाद्गौणः श्रमणानां; गृहिणां तु, समस्तविरतेरभावेन शुद्धात्मप्रकाशनस्याभावात्कषायसद्भावात्प्रवर्तमानोऽपि, स्फटिकसम्पर्केणार्कतेजस इवैधसां, रागसंयोगेन शुद्धात्मनोऽनुभवात् क्रमतः परमनिर्वाणसौख्यकारणत्वाच्च, मुख्यः॥२५४॥

गृहस्थानां वा पुनरियमेव चर्या परेत्ति परा सर्वोत्कृष्टेति। ताएव परं लहदि सोक्खं तयैव शुभोपयोगचर्यया परंपरया मोक्षसुखं लभते गृहस्थ इति। तथाहि—तपोधनाः शेषतपोधनानां वैयावृत्त्यं कुर्वाणाः सन्तः कायेन किमपि निरवद्यवैयावृत्त्यं कुर्वन्ति; वचनेन धर्मोपदेशं च। शेषमौषधान्नपानादिकं गृहस्थानामधीनं, तेन कारणेन वैयावृत्त्यरूपो धर्मो गृहस्थानां मुख्यः, तपोधनानां गौणः। द्वितीयं च कारणं—निर्विकारचिच्चमत्कारभावनाप्रतिपक्षभूतेन विषयकषायनिमित्तोत्पन्नेनार्तरौद्रदुर्ध्यानद्वयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रितनिश्चयधर्मस्यावकाशो नास्ति, वैयावृत्त्यादिधर्मेण दुर्ध्यानवञ्चना भवति, तपोधनसंसर्गेण निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गोपदेशलाभो भवति। ततश्च परंपरया निर्वाणं लभन्ते इत्यभिप्रायः॥२५४॥ एवं शुभोपयोगितपोधनानां शुभानुष्ठानकथनमुख्यतया गाथाष्टकेन द्वितीयस्थलं

अन्वयार्थ :—[एषा] यह [प्रशस्तभूता] प्रशस्तभूत [चर्या] चर्या [श्रमणानां] श्रमणोंके (गौण) होती है [वा गृहस्थानां पुनः] और गृहस्थोंके तो [परा] मुख्य होती है, [इति भणिता] ऐसा (शास्त्रोंमें) कहा है; [तया एव] उसीसे [परं सौख्यं लभते] (परम्परासे) गृहस्थ परम सौख्यको प्राप्त होता है॥२५४॥

टीका :—इसप्रकार शुद्धात्मानुरागयुक्त प्रशस्तचर्यारूप जो यह शुभोपयोग वर्णित किया गया है वह यह शुभोपयोग, शुद्धात्माकी प्रकाशक सर्वविरतिको प्राप्त श्रमणोंके कषायकणके सद्भावके कारण प्रवर्तित होता हुआ, गौण होता है, क्योंकि वह शुभोपयोग शुद्धात्मपरिणतिसे विरुद्ध ऐसे रागके साथ संबंधवान है; और वह शुभोपयोग गृहस्थोंके तो, सर्वविरतिके अभावसे [१]शुद्धात्मप्रकाशनका अभाव होनेसे कषायके सद्भावके कारण प्रवर्तमान होता हुआ भी, मुख्य है, क्योंकि—जैसे ईंधनको स्फटिकके संपर्कसे सूर्यके तेजका अनुभव होता है (और इसलिये वह क्रमशः जल उठता है) उसीप्रकार—गृहस्थको रागके संयोगसे शुद्धात्माका अनुभव होता है, और (इसलिये वह शुभोपयोग) क्रमशः परम निर्वाणसौख्यका कारण होता है।

भावार्थ :—दर्शनापेक्षासे तो श्रमणको तथा सम्यग्दृष्टि गृहस्थको शुद्धात्माका ही आश्रय है, परन्तु चारित्रापेक्षासे श्रमणके मुनियोग्य शुद्धात्मपरिणति मुख्य होनेसे शुभोपयोग गौण

१. चारित्रदशामें प्रवर्तमान उग्र शुद्धात्मप्रकाशनको ही यहाँ शुद्धात्मप्रकाशन गिना है; सम्यग्दृष्टि गृहस्थके उसका अभाव है। शेष, दर्शनापेक्षासे तो सम्यग्दृष्टि गृहस्थके भी शुद्धात्माका प्रकाशन है ही।

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ शुभोपयोगस्य कारणवैपरीत्यात् फलवैपरीत्यं साधयति—

रागो पसत्थभूदो वत्थुविसेसेण फलदि विवरीदं।
णाणाभूमिगदाणिह बीजाणिव सस्सकालम्हि॥२५५॥

रागः प्रशस्तभूतो वस्तुविशेषेण फलति विपरीतम्।
नानाभूमिगतानीह बीजानीव सस्यकाले॥२५५॥

यथैकेषामपि बीजानां भूमिवैपरीत्यान्निष्पत्तिवैपरीत्यं, तथैकस्यापि प्रशस्तरागलक्षणस्य शुभोपयोगस्य पात्रवैपरीत्यात्फलवैपरीत्यं, कारणविशेषात्कार्यविशेषस्यावश्यंभावित्वात्।२५५।

गतम्। इत ऊर्ध्वं गाथाषट्कपर्यन्तं पात्रापात्रपरीक्षामुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति। अथ शुभोपयोगस्य पात्रभूतवस्तुविशेषात्फलविशेषं दर्शयति—फलदि फलति, फलं ददाति। स कः। रागो रागः। कथंभूतः। पसत्थभूदो प्रशस्तभूतो दानपूजादिरूपः। किं फलति। विवरीदं विपरीतमन्यादृशं भिन्न-भिन्नफलम्। केन करणभूतेन। वत्थुविसेसेण जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नपात्रभूतवस्तुविशेषेण। अत्रार्थे

है और सम्यग्दृष्टि गृहस्थके मुनियोग्य शुद्धात्मपरिणतिको प्राप्त न हो सकनेसे अशुभवंचनार्थ शुभोपयोग मुख्य है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थके अशुभसे (–विशेष अशुद्ध परिणतिसे) छूटनेके लिये प्रवर्तमान जो यह शुभोपयोगका पुरुषार्थ वह भी शुद्धिका ही मन्दपुरुषार्थ है, क्योंकि शुद्धात्मद्रव्यके मंद आलम्बनसे अशुभ परिणति बदलकर शुभ परिणति होती है और शुद्धात्मद्रव्यके उग्र आलम्बनसे शुभपरिणति भी बदलकर शुभपरिणति हो जाती है॥२५४॥

अब, ऐसा सिद्ध करते हैं कि शुभोपयोगको कारणकी विपरीततासे फलकी विपरीतता होती है :—

अन्वयार्थ :—[**इह नानाभूमिगतानि बीजानि एव**] जैसे इस जगतमें अनेक प्रकारकी भूमियोंमें पड़े हुए बीज [**सस्यकाले**] धान्यकालमें विपरीतरूपसे फलते हैं, उसीप्रकार [**प्रशस्तभूतः रागः**] प्रशस्तभूत राग [**वस्तुविशेषेण**] वस्तु–भेदसे (–पात्र भेदसे) [**विपरीतं फलति**] विपरीतरूपसे फलता है॥२५५॥

टीका :—जैसे बीज ज्यों के त्यों होने पर भी भूमिकी विपरीततासे निष्पत्तिकी विपरीतता होती है, (अर्थात् अच्छी भूमिमें उसी बीजका अच्छा अन्न उत्पन्न होता है और खराब भूमिमें वही खराब हो जाता है या उत्पन्न ही नहीं होता), उसीप्रकार प्रशस्तरागस्वरूप शुभोपयोग ज्योंका त्यों होने पर भी पात्रकी विपरीततासे फलकी विपरीतता होती है, क्योंकि कारणके भेदसे कार्यका भेद अवश्यम्भावी (अनिवार्य) है॥२५५॥

फळ होय छे विपरीत वस्तुविशेषथी शुभ रागने,
निष्पत्ति विपरीत होय भूमिविशेषथी ज्यम बीजने. २५५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये दर्शयति—

छदुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमज्झयणझाणदाणरदो।
ण लहदि अपुणब्भावं भावं सादप्पगं लहदि॥२५६॥

छद्मस्थविहितवस्तुषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः।
न लभते अपुनर्भावं भावं सातात्मकं लभते॥२५६॥

शुभोपयोगस्य सर्वज्ञव्यवस्थापितवस्तुषु प्रणिहितस्य पुण्योपचयपूर्वकोऽपुनर्भावोपलम्भः किल फलं; तत्तु कारणवैपरीत्याद्विपर्यय एव। तत्र छद्मस्थव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं; तेषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतत्वप्रणिहितस्य शुभोपयोगस्यापुनर्भावशून्यकेवलपुण्यापसदप्राप्तिः फलवैपरीत्यं; तत्सुदेवमनुजत्वम्॥२५६॥

दृष्टान्तमाह—णाणाभूमिगदाणिह बीजाणिव सस्सकालम्हि नानाभूमिगतानीह बीजानि इव सस्यकाले धान्यनिष्पत्तिकाल इति। अयमत्रार्थः—यथा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभूमिविशेषेण तान्येव बीजानि भिन्नभिन्नफलं प्रयच्छन्ति, तथा स एव बीजस्थानीयशुभोपयोगो भूमिस्थानीयपात्रभूतवस्तुविशेषेण भिन्नभिन्नफलं ददाति। तेन किं सिद्धम्। यदा पूर्वसूत्रकथितन्यायेन सम्यक्त्वपूर्वकः शुभोपयोगो भवति तदा मुख्यवृत्त्या पुण्यबन्धो भवति, परंपरया निर्वाणं च। नो चेत्पुण्यबन्धमात्रमेव॥२५५॥ अथ कारणवैपरीत्याफलमपि विपरीतं भवतीति तमेवार्थं द्रढयति—ण लहदि न लभते। स कः कर्ता। वद-

---

अब कारणकी विपरीतता और फलकी विपरीतता बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[छद्मस्थविहितवस्तुषु] जो जीव छद्मस्थविहित वस्तुओंमें (छद्मस्थ-अज्ञानीके द्वारा कथित देव-गुरु-धर्मादिमें) [व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः] व्रत-नियम-अध्ययन-ध्यान-दानमें रत होता है वह जीव [अपुनर्भावं] मोक्षको [न लभते] प्राप्त नहीं होता, (किन्तु) [सातात्मकं भावं] सातात्मक भावको [लभते] प्राप्त होता है॥२५६॥

टीका :—[१]सर्वज्ञस्थापित वस्तुओंमें युक्त शुभोपयोगका फल पुण्यसंचयपूर्वक मोक्षकी प्राप्ति है। वह फल, कारणकी विपरीतता होनेसे विपरीत ही होता है। वहाँ, छद्मस्थस्थापित वस्तुयें वे कारणविपरीतता है; उनमें व्रत-नियम-अध्ययन-ध्यान-दानरतरूपसे युक्त शुभोपयोगका फल जो मोक्षशून्य केवल [२]पुण्यापसदकी प्राप्ति है वह फलकी विपरीतता है; वह फल सुदेव-मनुष्यत्व है॥२५६॥

---

१. सर्वज्ञस्थापित = सर्वज्ञ कथित। २. पुण्यापसद = पुण्य अपसद; अधमपुण्य; हतपुण्य।

छद्मस्थ-अभिहित ध्यानदाने व्रतनियमपठनादिके
रत जीव मोक्ष लहे नहीं, बस भाव शातात्मक लहे. २५६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये एव व्याख्याति—

अविदिदपरमत्थेसु य विसयकसायाधिगेसु पुरिसेसु।
जुट्ठं कदं व दत्तं फलदि कुदेवेसु मणुवेसु॥२५७॥

अविदितपरमार्थेषु च विषयकषायाधिकेषु पुरुषेषु।
जुष्टं कृतं वा दत्तं फलति कुदेवेषु मनुजेषु॥२५७॥

यानि हि छद्मस्थव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं; ते खलु शुद्धात्मपरिज्ञानशून्यतयानवाप्तशुद्धात्मवृत्तितया चाविदितपरमार्था विषयकषायाधिकाः पुरुषाः। तेषु शुभोपयोगात्मकानां जुष्टोपकृतदत्तानां या केवलपुण्यापसदप्राप्तिः फलवैपरीत्यं; तत्कुदेवमनुजत्वम्॥२५७॥

णियमज्झयणझाणदाणरदो व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः। केषु विषये यानि व्रतादीनि। छदुमत्थविहिदवत्थुसु छद्मस्थविहितवस्तुषु अल्पज्ञानिपुरुषव्यवस्थापितपात्रभूतवस्तुषु। इत्थंभूतः पुरुषः कं न लभते। अपुणब्भावं अपुनर्भवशब्दवाच्यं मोक्षम्। तर्हि किं लभते। भावं सादप्पगं लहदि भावं सातात्मकं लभते। भावशब्देन सुदेवमनुष्यत्वपर्यायो ग्राह्यः। स च कथंभूतः। सातात्मकः सद्वेद्योदयरूप इति। तथाहि—ये केचन निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं न जानन्ति, पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति, ते छद्मस्थशब्देन गृह्यन्ते, न च गणधरदेवादयः। तैः छद्मस्थैरज्ञानिभिः शुद्धात्मोपदेशशून्यैर्ये दीक्षितास्तानि छद्मस्थविहितवस्तूनि भण्यन्ते। तत्पात्रसंसर्गेण यद्व्रतनियमाध्ययनदानादिकं करोति तदपि शुद्धात्मभावनानुकूलं न भवति, ततः कारणान्मोक्षं न लभते। सुदेवमनुष्यत्वं लभत इत्यर्थः॥२५६॥ अथ सम्यक्त्वव्रतरहितपात्रेषु भक्तानां कुदेवमनुजत्वं भवतीति प्रतिपादयति—फलदि फलति। केषु। कुदेवेसु मणुवेसु कुत्सितदेवेषु

अब (इस गाथामें भी) कारणविपरीतता और फलविपरीतता ही बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अविदितपरमार्थेषु**] जिन्होंने परमार्थको नहीं जाना है, [**च**] और [**विषयकषायाधिकेषु**] जो विषय-कषायमें अधिक हैं, [**पुरुषेषु**] ऐसे पुरुषोंके प्रति [**जुष्टं कृतं वा दत्तं**] सेवा, उपकार या दान [**कुदेवेषु मनुजेषु**] कुदेवरूपमें और कुमनुष्यरूपमें [**फलति**] फलता है॥२५७॥

टीका :—जो छद्मस्थस्थापित वस्तुयें हैं वे कारणविपरीतता हैं; वे (विपरीत कारण) वास्तवमें (१) शुद्धात्मज्ञानसे शून्यताके कारण, 'परमार्थके अजान' और (२) शुद्धात्मपरिणतिको प्राप्त न करनेसे 'विषयकषायमें अधिक' ऐसे पुरुष हैं। उनके प्रति शुभोपयोगात्मक जीवोंको—सेवा, उपकार या दान करनेवाले जीवोंको—जो केवल

परमार्थथी अनभिज्ञ, विषयकषायअधिक जनो परे
उपकार-सेवा-दान सर्व कुदेवमनुजपणे फळे. २५७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ कारणवैपरीत्यात् फलमविपरीतं न सिध्यतीति श्रद्धापयति—

जदि ते विसयकसाया पाव त्ति परूविदा व सत्थेसु।
किह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति॥२५८॥

यदि ते विषयकषायाः पापमिति प्ररूपिता वा शास्त्रेषु।
कथं ते तत्प्रतिबद्धाः पुरुषा निस्तारका भवन्ति॥२५८॥

विषयकषायास्तावत्पापमेव; तद्वन्तः पुरुषा अपि पापमेव; तदनुरक्ता अपि पापानुरक्तत्वात् पापमेव भवन्ति। ततो विषयकषायवन्तः स्वानुरक्तानां पुण्यायापि न कल्प्यन्ते, कथं पुनः संसारनिस्तारणाय। ततो न तेभ्यः फलमविपरीतं सिध्येत्॥२५८॥

मनुजेषु। किं कर्तृ। जुट्ठं जुष्टं सेवा कृता, कदं व कृतं वा किमपि वैयावृत्त्यादिकम्, दत्तं दत्तं किमप्याहारादिकम्। केषु। पुरिसेसु पुरुषेषु पात्रेषु। किंविशिष्टेषु। अविदिदपरमत्थेसु य अविदितपरमार्थेषु च, परमात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानशून्येषु। पुनरपि किंरूपेषु। विसयकसायाधिगेसु विषयकषायाधिकेषु, विषयकषायाधीनत्वेन निर्विषयशुद्धात्मस्वरूपभावनारहितेषु इत्यर्थः॥२५७॥ अथ तमेवार्थं प्रकारान्तरेण द्रढयति—जदि ते विसयकसाया पाव त्ति परूविदा व सत्थेसु यदि चेत् ते विषयकषायाः पापमिति प्ररूपिताः

पुण्यापसदकी प्राप्ति वह फलविपरीतता है; वह (फल) कुदेवमनुष्यत्व है॥२५७॥

अब, ऐसी श्रद्धा करवाते हैं कि कारणकी विपरीततासे अविपरीत फल सिद्ध नहीं होता :—

अन्वयार्थ :—[**यदि वा**] जबकि '[**ते विषयकषायाः**] वे विषयकषाय [**पापम्**] पाप हैं' [**इति**] इसप्रकार [**शास्त्रेषु**] शास्त्रोंमें [**प्ररूपिताः**] प्ररूपित किया गया है, तो [**तत्प्रतिबद्धाः**] उनमें प्रतिबद्ध (विषय-कषायोंमें लीन) [**ते पुरुषाः**] वे पुरुष [**निस्तारकाः**] निस्तारक (पार लगानेवाले) [**कथं भवन्ति**] कैसे हो सकते हैं? ॥२५८॥

टीका :—प्रथम तो विषयकषाय पाप ही हैं; विषयकषायवान् पुरुष भी पाप ही हैं; विषयकषायवान् पुरुषोंके प्रति अनुरक्त जीव भी पापमें अनुरक्त होनेसे पाप ही हैं। इसलिये विषयकषायवान् पुरुष स्वानुरक्त (अपने प्रति अनुरागवाले) पुरुषोंको पुण्यका कारण भी नहीं होते, तब फिर वे संसारसे निस्तारके कारण तो कैसे हो सकते हैं? (नहीं हो सकते); इसलिये उनसे अविपरीत फल सिद्ध नहीं होता (अर्थात् विषयकषायवान् पुरुषरूप विपरीत कारणका फल अविपरीत नहीं होता) ॥२५८॥

'विषयो कषायो पाप छे' जो अेम निरूपण शास्त्रमां,
तो केम तत्प्रतिबद्ध पुरुषो होय रे निस्तारका? २५८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं दर्शयति—

उवरदपावो पुरिसो समभावो धम्मिगेसु सव्वेसु।
गुणसमिदिदोवसेवी हवदि स भागी सुमग्गस्स॥२५९॥

उपरतपापः पुरुषः समभावो धार्मिकेषु सर्वेषु।
गुणसमितितोपसेवी भवति स भागी सुमार्गस्य॥२५९॥

उपरतपापत्वेन, सर्वधर्मिमध्यस्थत्वेन, गुणग्रामोपसेवित्वेन च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रयौगपद्यपरिणतिनिर्वृत्तैकाग्र्यात्मकसुमार्गभागी, स श्रमणः स्वयं परस्य मोक्षपुण्यायतनत्वादविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं प्रत्येयम्॥२५९॥

शास्त्रेषु, किह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति कथं ते तत्प्रतिबद्धा विषयकषायप्रतिबद्धाः पुरुषा निस्तारकाः संसारोत्तारका दातृणाम्, न कथमपीति। एतदुक्तं भवति—विषयकषायास्तावत्पापस्वरूपास्तद्वन्तः पुरुषा अपि पापा एव, ते च स्वकीयभक्तानां दातृणां पुण्यविनाशका एवेति॥२५८॥ अथ पात्रभूततपोधनलक्षणं कथयति—उपरतपापत्वेन, सर्वधार्मिकसमदर्शित्वेन, गुणग्रामसेवकत्वेन च स्वस्य मोक्षकारणत्वात्परेषां पुण्यकारणत्वाच्चेत्थंभूतगुणयुक्तः पुरुषः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यलक्षणनिश्चयमोक्षमार्गस्य भाजनं भवतीति॥२५९॥ अथ तेषामेव पात्रभूततपोधनानां प्रकारान्तरेण लक्षणमुपलक्षयति—शुद्धोपयोगशुभोपयोगपरिणतपुरुषाः पात्रं भवन्तीति। तद्यथा—निर्विकल्पसमाधिबलेन शुभाशुभोपयोगद्वयरहितकाले कदाचिद्वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धोपयोगयुक्ताः, कदाचित्पुनर्मोहद्वेषाशुभरागरहितकाले सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगयुक्ताः सन्तो भव्यलोकं निस्तारयन्ति, तेषु च

अब अविपरीत फलका कारण, ऐसा जो 'अविपरीत कारण' यह बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[उपरतपापः] जिसके पाप रुक गया है, [सर्वेषु धार्मिकेषु समभावः] जो सभी धार्मिकोंके प्रति समभाववान् है और [गुणसमितितोपसेवी] जो गुणसमुदायका सेवन करनेवाला है, [सः पुरुषः] वह पुरुष [सुमार्गस्य] सुमार्गका [भागी भवति] भागी होता है। (अर्थात् सुमार्गवान् है) ॥२५९॥

टीका :—पापके रुक जानेसे सर्वधर्मियोंके प्रति स्वयं मध्यस्थ होनेसे और गुणसमूहका सेवन करनेसे जो श्रमण सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रके युगपत्पनेरूप परिणतिसे रचित एकाग्रतास्वरूप सुमार्गका भागी (सुमार्गशाली–सुमार्गका भाजन) है वह निजको और परको मोक्षका और पुण्यका आयतन (स्थान) है इसलिये वह (श्रमण) अविपरीत फलका कारण ऐसा 'अविपरीत कारण' है, ऐसी प्रतीति करनी चाहिये॥२५९॥

ते पुरुष जाण सुमार्गशाळी, पाप–उपरम जेहने,
समभाव ज्यां सौ धार्मिके, गुणसमूह सेवन जेहने. २५९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं व्याख्याति—

असुभोवओगरहिदा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता वा।
णित्थारयंति लोगं तेसु पसत्थं लहदि भत्तो॥२६०॥

अशुभोपयोगरहिताः शुद्धोपयुक्ताः शुभोपयुक्ता वा।
निस्तारयन्ति लोकं तेषु प्रशस्तं लभते भक्तः॥२६०॥

यथोक्तलक्षणा एव श्रमणा मोहद्वेषाप्रशस्तरागोच्छेदादशुभोपयोगवियुक्ताः सन्तः, सकलकषायोदयविच्छेदात् कदाचित् शुद्धोपयुक्ताः प्रशस्तरागविपाकात्कदाचिच्छुभोपयुक्ताः, स्वयं मोक्षायतनत्वेन लोकं निस्तारयन्ति; तद्भक्तिभावप्रवृत्तप्रशस्तभावा भवन्ति परे च पुण्यभाजः॥२६०॥

भक्तो भव्यवरपुण्डरीकः प्रशस्तफलभूतं स्वर्गं लभते, परंपरया मोक्षं चेति भावार्थः॥२६०॥ एवं पात्रापात्रपरीक्षाकथनमुख्यतया गाथाषट्केन तृतीयस्थलं गतम्। इत ऊर्ध्वं आचारकथितक्रमेण पूर्वं कथितमपि पुनरपि दृढीकरणार्थं विशेषेण तपोधनसमाचारं कथयति। अथाभ्यागततपोधनस्य दिनत्रयपर्यन्तं सामान्यप्रतिपत्तिं, तदनन्तरं विशेषप्रतिपत्तिं दर्शयति—वट्टदु वर्तताम्। स कः। अत्रत्य

अब, अविपरीत फलका कारण, ऐसा जो 'अविपरीत कारण' है उसे विशेष समझाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**अशुभोपयोगरहिताः**] जो अशुभोपयोगरहित वर्तते हुए [**शुद्धोपयुक्ताः**] शुद्धोपयुक्त [**वा**] अथवा [**शुभोपयुक्ताः**] शुभोपयुक्त होते हैं, वे (श्रमण) [**लोकं निस्तारयन्ति**] लोगोंको तार देते हैं; (और) [**तेषु भक्तः**] उनके प्रति भक्तिवान जीव [**प्रशस्तं**] प्रशस्त (-पुण्य) को [**लभते**] प्राप्त करता है॥२६०॥

टीका :—यथोक्त लक्षणवाले श्रमण ही—जो कि मोह, द्वेष और अप्रशस्त रागके उच्छेदसे अशुभोपयोगरहित वर्तते हुए, समस्त कषायोदयके विच्छेदसे कदाचित् शुद्धोपयुक्त (शुद्धोपयोगमें युक्त) और प्रशस्त रागके विपाकके कदाचित् शुभोपयुक्त होते हैं वे—स्वयं मोक्षायतन (मोक्षके स्थान) होनेसे लोकको तार देते हैं; और उनके प्रति भक्तिभावसे जिनके प्रशस्त भाव प्रवर्तता है ऐसे पर जीव पुण्यके भागी (पुण्यशाली) होते हैं॥२६०॥

अशुभोपयोग रहित श्रमणो—शुद्ध वा शुभयुक्त जे,
ते लोकने तारे; अने तद्भक्त पामे पुण्यने. २६०.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथाविपरीतफलकारणाविपरीतकारणसमुपासनप्रवृत्तिं सामान्यविशेषतो विधेयतया सूत्रद्वैतेनोपदर्शयति—

दिट्ठा पगदं वत्थुं अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं।
वट्टदु तदो गुणादो विसेसिदव्वो त्ति उवदेसो॥२६१॥

दृष्ट्वा प्रकृतं वस्त्वभ्युत्थानप्रधानक्रियाभिः।
वर्ततां ततो गुणाद्विशेषितव्य इति उपदेशः॥२६१॥

श्रमणानामात्मविशुद्धिहेतौ प्रकृते वस्तुनि तदनुकूलक्रियाप्रवृत्त्या गुणातिशयाधानमप्रतिषिद्धम्॥२६१॥

आचार्यः। किं कृत्वा। दिट्ठा दृष्ट्वा। किम्। वत्थुं तपोधनभूतं पात्रं वस्तु। किंविशिष्टम्। पगदं प्रकृतं अभ्यन्तरनिरुपरागशुद्धात्मभावनाज्ञापकबहिरङ्गनिर्ग्रन्थनिर्विकाररूपम्। काभिः कृत्वा वर्तताम्। अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं अभ्यागतयोग्याचारविहिताभिरभ्युत्थानादिक्रियाभिः। तदो गुणादो ततो दिन-

---

अब, अविपरीत फलका कारण ऐसा जो 'अविपरीत कारण' उसकी उपासनारूप प्रवृत्ति सामान्य और विशेषरूपसे करने योग्य है ऐसा दो सूत्रों द्वारा बतलाते हैं—

अन्वयार्थ :—[**प्रकृतं वस्तु**] [1]प्रकृत वस्तुको [**दृष्ट्वा**] देखकर (प्रथम तो) [**अभ्युत्थानप्रधानक्रियाभिः**] [2]अभ्युत्थान आदि क्रियाओंसे [**वर्तताम्**] (श्रमण) वर्तो; [**ततः**] फिर [**गुणात्**] गुणानुसार [**विशेषितव्यः**] भेद करना,—[**इति उपदेशः**] ऐसा उपदेश है॥२६०॥

टीका :—श्रमणोंके आत्मविशुद्धिकी हेतुभूत प्रकृत वस्तु (-श्रमण) के प्रति उसके योग्य (श्रमण योग्य) क्रियारूप प्रवृत्तिसे गुणातिशयताका आरोपण करनेका निषेध नहीं है।

भावार्थ :—यदि कोई श्रमण अन्य श्रमणको देखे तो प्रथम ही, मानो वे अन्य श्रमण गुणातिशयवान् हों इसप्रकार उनके प्रति (अभ्युत्थानादि) व्यवहार करना चाहिये। फिर उनका परिचय होनेके बाद उनके गुणानुसार बर्ताव करना चाहिये॥२६१॥

---

१. प्रकृत वस्तु = अविकृत वस्तु; अविपरीत पात्र (अभ्यंतर–निरुपराग–शुद्ध आत्माकी भावनाको बतानेवाला जो बहिरंग–निर्ग्रंथ–निर्विकाररूप है उस रूपवाले श्रमणको यहाँ 'प्रकृत–वस्तु' कहा है।)

२. अभ्युत्थान = सम्मानार्थ खड़े हो जाना और सम्मुख जाना।

प्रकृत वस्तु देखी अभ्युत्थान आदि क्रिया थकी
वर्तो श्रमण, पछी वर्तनीय गुणानुसार विशेषथी. २६१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं।
अंजलिकरणं पणमं भणिदमिह गुणाधिगाणं हि॥२६२॥

अभ्युत्थानं ग्रहणमुपासनं पोषणं च सत्कारः।
अञ्जलिकरणं प्रणामो भणितमिह गुणाधिकानां हि॥२६२॥

श्रमणानां स्वतोऽधिकगुणानामभ्युत्थानग्रहणोपासनपोषणसत्कारांजलिकरणप्रणाम-प्रवृत्तयो न प्रतिषिद्धाः॥२६२॥

त्रयानन्तरं गुणाद्गुणविशेषात् **विसेसिदव्वो** तेन आचार्येण स तपोधनो रत्नत्रयभावनावृद्धिकारण-क्रियाभिर्विशेषितव्यः त्ति उवदेसो इत्युपदेशः सर्वज्ञगणधरदेवादीनामिति॥२६१॥ अथ तमेव विशेषं कथयति। **भणिदं** भणितं कथितं इह अस्मिन्ग्रन्थे। केषां संबन्धी। **गुणाधिगाणं हि** गुणाधिकतपोधनानां हि स्फुटम्। किं भणितम्। **अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं अंजलिकरणं पणमं** अभ्युत्थान-ग्रहणोपासनपोषणसत्काराञ्जलिकरणप्रणामादिकम्। अभिमुखगमनमभ्युत्थानम्, ग्रहणं स्वीकारः, उपासनं शुद्धात्मभावनासहकारिकारणनिमित्तं सेवा, तदर्थमेवाशनशयनादिचिन्ता पोषणम्, भेदाभेद-रत्नत्रयगुणप्रकाशनं सत्कारः, बद्धाञ्जलिनमस्कारोऽञ्जलिकरणम्, नमोऽस्त्वितिवचनव्यापारः प्रणाम इति॥२६२॥ अथाभ्यागतानां तदेवाभ्युत्थानादिकं प्रकारान्तरेण निर्दिशति—**अब्भुट्ठेया** यद्यपि चारित्रगुणेनाधिका न भवन्ति, तपसा वा, तथापि सम्यग्ज्ञानगुणेन ज्येष्ठत्वाच्छ्रुतविनयार्थमभ्युत्थेयाः अभ्युत्थानयोग्या भवन्ति। के ते। **समणा** श्रमणा निर्ग्रन्थाचार्याः। किंविशिष्टाः। **सुत्तत्थविसारदा** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वप्रभृत्यनेकान्तात्मकपदार्थेषु वीतरागसर्वज्ञप्रणीतमार्गेण प्रमाणनय-निक्षेपैर्विचारचतुरचेतसः सूत्रार्थविशारदाः। न केवलमभ्युत्थेयाः, **उवासेया** परमचिज्ज्योतिःपरमात्म-

---

(इसप्रकार पहला सूत्र कहकर अब इसी विषयका दूसरा सूत्र कहते हैं :—)

अन्वयार्थ :—[**गुणाधिकानां हि**] गुणोंमें अधिक (श्रमणों) के प्रति [**अभ्युत्थानं**] अभ्युत्थान, [**ग्रहणं**] ग्रहण (आदरसे स्वीकार), [**उपासनं**] उपासन (सेवा), [**पोषणं**] पोषण (उनके अशन, शयनादिकी चिन्ता), [**सत्कारः**] सत्कार (गुणोंकी प्रशंसा), [**अञ्जलिकरणं**] अञ्जलि करना (विनयपूर्वक हाथ जोड़ना) [**च**] और [**प्रणामः**] प्रणाम करना [**इह**] यहाँ [**भणितम्**] कहा है॥२६२॥

टीका :—श्रमणोंको अपनेसे अधिक गुणवान (श्रमण) के प्रति अभ्युत्थान, ग्रहण, उपासन, पोषण, सत्कार, अंजलिकरण और प्रणामरूप प्रवृत्तियाँ निषिद्ध नहीं हैं॥२६२॥

गुणथी अधिक श्रमणो प्रति सत्कार, अभ्युत्थान ने
अंजलिकरण, पोषण, ग्रहण, सेवन अहीं उपदिष्ट छे.२६२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ श्रमणाभासेषु सर्वाः प्रवृत्तीः प्रतिषेधयति—

अब्भुट्ठेया समणा सुत्तत्थविसारदा उवासेया।
संजमतवणाणड्ढा पणिवदणीया हि समणेहिं॥२६३॥

अभ्युत्थेयाः श्रमणाः सूत्रार्थविशारदा उपासेयाः।
संयमतपोज्ञानाढ्याः प्रणिपतनीया हि श्रमणैः॥२६३॥

सूत्रार्थवैशारद्यप्रवर्तितसंयमतपःस्वतत्त्वज्ञानानामेव श्रमणानामभ्युत्थानादिकाः प्रवृत्तयोऽप्रतिषिद्धा, इतरेषां तु श्रमणाभासानां ताः प्रतिषिद्धा एव॥२६३॥

पदार्थपरिज्ञानार्थमुपासेयाः परमभक्त्या सेवनीयाः। **संजमतवणाणड्ढा पणिवदणीया हि** संयमतपोज्ञानाढ्याः प्रणिपतनीयाः हि स्फुटं। बहिरङ्गेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेनाभ्यन्तरे स्वशुद्धात्मनि यत्नपरत्वं संयमः। बहिरङ्गानशनादितपोबलेनाभ्यन्तरे परद्रव्येच्छानिरोधेन च स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं तपः। बहिरङ्ग-परमागमाभ्यासेनाभ्यन्तरे स्वसंवेदनज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्। एवमुक्तलक्षणैः संयमतपोज्ञानैराढ्याः परिपूर्णा यथासंभवं प्रतिवन्दनीयाः। कैः। **समणेहिं** श्रमणैरिति। अत्रेदं तात्पर्यम्—ये बहुश्रुता अपि चारित्राधिका न भवन्ति, तेऽपि परमागमाभ्यासनिमित्तं यथायोग्यं वन्दनीयाः। द्वितीयं च कारणम्—ते सम्यक्त्वे ज्ञाने च पूर्वमेव दृढतराः, अस्य तु नवतरतपोधनस्य सम्यक्त्वे ज्ञाने चापि दार्ढ्यं नास्ति। तर्हि स्तोकचारित्राणां किमर्थमागमे वन्दनादिनिषेधः कृत इति चेत्। अतिप्रसंगनिषेधार्थमिति॥२६३॥

अब श्रमणभासोंके प्रति समस्त प्रवृत्तियोंका निषेध करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**श्रमणैः हि**] श्रमणोंके द्वारा [**सूत्रार्थविशारदाः**] सूत्रार्थविशारद (सूत्रोंके और सूत्रकथित पदार्थोंके ज्ञानमें निपुण) तथा [**संयमतपोज्ञानाढ्याः**] संयमतपज्ञानाढ्य, (संयम, तप और आत्मज्ञानमें समृद्ध) [**श्रमणः**] श्रमण [**अभ्युत्थेयाः उपासेयाः प्रणिपतनीयाः**] अभ्युत्थान, उपासना और प्रणाम करने योग्य हैं॥२६३॥

टीका :—जिनके सूत्रोंमें और पदार्थोंमें विशारदपनेके द्वारा संयम, तप और स्वतत्वका ज्ञान प्रवर्तता है उन श्रमणोंके प्रति ही अभ्युत्थानादिक प्रवृत्तियाँ अनिषिद्ध हैं, परन्तु उसके अतिरिक्त अन्य श्रमणाभासोंके प्रति वे प्रवृत्तियाँ निषिद्ध ही हैं॥२६३॥

मुनिसूत्र–अर्थ प्रवीण संयमज्ञानतपसमृद्धने
प्रणिपात, अभ्युत्थान, सेवा साधुअे कर्तव्य छे. २६३.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ कीदृशः श्रमणाभासो भवतीत्याख्याति—

ण हवदि समणो त्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तो वि।
जदि सद्दहदि ण अत्थे आदपधाणे जिणक्खादे॥२६४॥

न भवति श्रमण इति मतः संयमतपःसूत्रसम्प्रयुक्तोऽपि।
यदि श्रद्धत्ते नार्थानात्मप्रधानान् जिनाख्यातान्॥२६४॥

आगमज्ञोऽपि, संयतोऽपि, तपःस्थोऽपि, जिनोदितमनन्तार्थनिर्भरं विश्वं स्वेनात्मना ज्ञेयत्वेन निष्पीतत्वादात्मप्रधानमश्रद्दधानः श्रमणाभासो भवति॥२६४॥

अथ श्रमणाभासः कीदृशो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति—**ण हवदि समणो स श्रमणो न भवति त्ति मदो** इति मतः सम्मतः। क्व। आगमे। कथंभूतोऽपि। **संजमतवसुत्तसंपजुत्तो वि** संयमतपःश्रुतैः संप्रयुक्तोऽपि सहितोऽपि। यदि किम्। **जदि सद्दहदि ण** यदि चेन्मूढत्रयादिपञ्चविंशतिसम्यक्त्वमलसहितः सन् न श्रद्धत्ते, न रोचते, न मन्यते। कान्। **अत्थे** पदार्थान्। कथंभूतान्। **आदपधाणे** निर्दोषिपरमात्मप्रभृतीन्। पुनरपि कथंभूतान्। **जिणक्खादे** वीतरागसर्वज्ञजिनेश्वरेणाख्यातान्, दिव्यध्वनिना प्रणीतान्, गणधरदेवैर्ग्रन्थविरचितानित्यर्थः॥२६४॥ अथ मार्गस्थश्रमणदूषणे दोषं दर्शयति—**अवदादि** अपवदति दूषयत्यपवादं करोति। स कः। **जो हि** यः कर्ता हि स्फुटम्। कम्। **समणं** श्रमणं

अब, कैसा जीव श्रमणाभास है सो कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[संयमतपःसूत्रसंप्रयुक्तः अपि] सूत्र, संयम और तपसे संयुक्त होने पर भी [यदि] यदि (वह जीव) [जिनाख्यातान्] जिनोक्त [आत्मप्रधानान्] आत्मप्रधान [अर्थान्] पदार्थोंका [न श्रद्धत्ते] श्रद्धान नहीं करता तो वह [श्रमणः न भवति] श्रमण नहीं है,—[इति मतः] ऐसा (आगममें) कहा है॥२६४॥

टीका :—आगमका ज्ञाता होने पर भी, संयत होने पर भी, तपमें स्थित होने पर भी, जिनोक्त अनन्त पदार्थोंसे भरे हुए विश्वको—जो कि (विश्व) अपने आत्मासे ज्ञेयरूपसे पिया जाता होनेके कारण [१]आत्मप्रधान है उसका—जो जीव श्रद्धान नहीं करता वह श्रमणाभास है॥२६४॥

---

१. आत्मप्रधान = जिसमें आत्मा प्रधान है ऐसा; [आत्मा समस्त विश्वको जानता है इसलिये वह विश्वमें—विश्वके समस्त पदार्थोंमें—प्रधान है।]

शास्त्रे कह्युं—तपसूत्रसंयमयुक्त पण साधु नहीं,
जिन-उक्त आत्मप्रधान सर्व पदार्थ जो श्रद्धे नहीं. २६४.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ श्रामण्येन सममननुमन्यमानस्य विनाशं दर्शयति—

अववददि सासणत्थं समणं दिट्ठा पदोसदो जो हि।
किरियासु णाणुमण्णदि हवदि हि सो णट्ठचारित्तो॥२६५॥

अपवदति शासनस्थं श्रमणं दृष्ट्वा प्रद्वेषतो यो हि।
क्रियासु नानुमन्यते भवति हि स नष्टचारित्रः॥२६५॥

श्रमणं शासनस्थमपि प्रद्वेषादपवदतः क्रियास्वननुमन्यमानस्य च प्रद्वेषकषायितत्वात् चारित्रं नश्यति॥२६५॥

तपोधनम्। कथंभूतम्। **सासणत्थं** शासनस्थं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गस्थम्। कस्मात्। **पदोसदो** निर्दोषिपरमात्मभावनाविलक्षणात् प्रद्वेषात्कषायात्। किं कृत्वा पूर्वम्। **दिट्ठा** दृष्ट्वा। न केवलं अपवदति, **णाणुमण्णदि** नानुमन्यते। कासु विषये। **किरियासु** यथायोग्यं वन्दनादिक्रियासु। **हवदि हि सो** भवति हि स्फुटं सः। किंविशिष्टः। **णट्ठचारित्तो** कथंचिदतिप्रसंगान्नष्टचारित्रो भवतीति। तथाहि—मार्गस्थतपोधनं दृष्ट्वा यदि कथंचिन्मात्सर्यवशाद्दोषग्रहणं करोति तदा चारित्रभ्रष्टो भवति स्फुटं; पश्चादात्मनिन्दां कृत्वा निवर्तते तदा दोषो नास्ति, कालान्तरे वा निवर्तते तथापि दोषो नास्ति। यदि पुनस्तत्रैवानुबन्धं कृत्वा तीव्रकषायवशादतिप्रसंगं करोति तदा चारित्रभ्रष्टो भवतीति। अयमत्र भावार्थः—बहुश्रुतैरल्प-श्रुततपोधनानां दोषो न ग्राह्यस्तैरपि तपोधनैः किमपि पाठमात्रं गृहीत्वा तेषां दोषो न ग्राह्यः, किंतु किमपि सारपदं गृहीत्वा स्वयं भावनैव कर्तव्या। कस्मादिति चेत्। रागद्वेषोत्पत्तौ सत्यां बहुश्रुतानां

अब, जो श्रामण्यसे समान हैं उनका अनुमोदन (-आदर) न करनेवालेका विनाश बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यः हि**] जो [**शासनस्थं श्रमणं**] शासनस्थ (जिनदेवके शासनमें स्थित) श्रमणको [**दृष्ट्वा**] देखकर [**प्रद्वेषतः**] द्वेषसे [**अपवदति**] उसका अपवाद करता है और [**क्रियासु न अनुमन्यते**] (सत्कारादि) क्रियाओंसे करनेमें अनुमत (प्रसन्न) नहीं है [**सः नष्टचारित्रः हि भवति**] उसका चारित्र नष्ट होता है॥२६५॥

टीका :—जो श्रमण द्वेषके कारण शासनस्थ श्रमणका भी अपवाद बोलता है और (उसके प्रति सत्कारादि) क्रियायें करनेमें अनुमत नहीं है, वह श्रमण द्वेषसे [१]कषायित होनेसे उसका चारित्र नष्ट हो जाता है॥२६५॥

१. कषायित = क्रोधमानादिक कषायवाले; रंगित; विकारी।

मुनि शासने स्थित देखीने जे द्वेषथी निंदा करे,
अनुमत नहीं किरिया विषे, ते नाश चरण तणो करे. २६५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ श्रामण्येनाधिकं हीनमिवाचरतो विनाशं दर्शयति—

गुणदोधिगस्स विणयं पडिच्छगो जो वि होमि समणो त्ति।
होज्झं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी॥२६६॥

गुणतोऽधिकस्य विनयं प्रत्येषको योऽपि भवामि श्रमण इति।
भवन् गुणाधरो यदि स भवत्यनन्तसंसारी॥२६६॥

स्वयं जघन्यगुणः सन् श्रमणोऽहमपीत्यवलेपात्परेषां गुणाधिकानां विनयं प्रतीच्छन् श्रामण्यावलेपवशात् कदाचिदनन्तसंसार्यपि भवति॥२६६॥

श्रुतफलं नास्ति, तपोधनानां तपःफलं चेति॥२६५॥ अत्राह शिष्यः—अपवादव्याख्यानप्रस्तावे शुभोपयोगो व्याख्यातः, पुनरपि किमर्थं अत्र व्याख्यानं कृतमिति। परिहारमाह—युक्तमिदं भवदीयवचनं, किंतु तत्र सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गव्याख्याने कृते सति तत्रासमर्थतपोधनैः कालापेक्षया किमपि ज्ञानसंयमशौचोपकरणादिकं ग्राह्यमित्यपवादव्याख्यानमेव मुख्यम्। अत्र तु यथा भेदनयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपश्चरणरूपा चतुर्विधाराधना भवति, सैवाभेदनयेन सम्यक्त्वचारित्ररूपेण द्विधा भवति, तत्राप्यभेदविवक्षया पुनरेकैव वीतरागचारित्राराधना, तथा भेदनयेन सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूपस्त्रिविधमोक्षमार्गो भवति, स एवाभेदनयेन श्रामण्यापरमोक्षमार्गनामा पुनरेक एव, स चाभेदरूपो मुख्यवृत्त्या 'एयग्गगदो समणो' इत्यादिचतुर्दशगाथाभिः पूर्वमेव व्याख्यातः। अयं तु

अब, जो श्रामण्यमें अधिक हो उसके प्रति जैसे कि वह श्रामण्यमें हीन (अपनेसे मुनिपनेमें नीचा) हो ऐसा आचरण करनेवालेका विनाश बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यः] जो श्रमण [यदि गुणाधरः भवन्] गुणोंमें हीन होने पर भी [अपि श्रमणः भवामि] 'मैं भी श्रमण हूँ' [इति] ऐसा मानकर अर्थात् गर्व करके [गुणतः अधिकस्य] गुणोंमें अधिक (ऐसे श्रमण) के पाससे [विनयं प्रत्येषकः] विनय (करवाना) चाहता है [सः] वह [अनन्तसंसारी भवति] अनन्तसंसारी होता है॥२६६॥

टीका :—जो श्रमण स्वयं जघन्य गुणोंवाला होने पर भी 'मैं भी श्रमण हूँ' ऐसे गर्वके कारण दूसरे अधिक गुणवालों (श्रमणों) से विनयकी इच्छा करता है, वह श्रामण्यके गर्वके वशसे कदाचित् अनन्त संसारी भी होता है॥२६६॥

जे हीनगुण होवा छतां 'हुं पण श्रमण छुं' मद करे,
इच्छे विनय गुण-अधिक पास, अनंतसंसारी बने. २६६.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ श्रामण्येनाधिकस्य हीनं सममिवाचरतो विनाशं दर्शयति—

अधिगगुणा सामण्णे वट्टंति गुणाधरेहिं किरियासु।
जदि ते मिच्छुवजुत्ता हवंति पब्भट्ठचारित्ता॥२६७॥

अधिकगुणाः श्रामण्ये वर्तन्ते गुणाधरैः क्रियासु।
यदि ते मिथ्योपयुक्ता भवन्ति प्रभ्रष्टचारित्राः॥२६७॥

भेदरूपो मुख्यवृत्त्या शुभोपयोगरूपेणेदानीं व्याख्यातो, नास्ति पुनरुक्तदोष इति। एवं समाचारविशेषविवरणरूपेण चतुर्थस्थले गाथाष्टकं गतम्। अथ स्वयं गुणहीनः सन् परेषां गुणाधिकानां योऽसौ विनयं वाञ्छति, तस्य गुणविनाशं दर्शयति—**सो होदि अणंतसंसारी** स कथंचिदनन्तसंसारी संभवति। यः किं करोति। **पडिच्छगो जो दु** प्रत्येषको यस्तु, अभिलाषकोऽपेक्षक इति। कम्। **विणयं** वन्दनादिविनयम्। कस्य संबन्धिनम्। **गुणदोधिगस्स** बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयगुणाभ्यामधिकस्यान्यतपोधनस्य। केन कृत्वा। **होमि समणो त्ति** अहमपि श्रमणो भवामीत्यभिमानेन गर्वेण। यदि किम्। **होज्जं गुणाधरो** जदि निश्चयव्यवहाररत्नत्रयगुणाभ्यां हीनः स्वयं यदि चेद्भवतीति। अयमत्रार्थः—यदि चेद्गुणाधिकेभ्यः सकाशाद्गर्वेण पूर्वं विनयवाञ्छां करोति, पश्चाद्विवेकबलेनात्मनिन्दां करोति, तदानन्तसंसारी न भवति, यदि पुनस्तत्रैव मिथ्याभिमानेन ख्यातिपूजालाभार्थं दुराग्रहं करोति तदा भवति। अथवा यदि कालान्तरेऽप्यात्मनिन्दां करोति तथापि न भवतीति॥२६६॥ अथ स्वयमधिकगुणाः सन्तो यदि गुणाधरैः सह वन्दनादिक्रियासु वर्तन्ते तदा गुणविनाशं दर्शयति—**वट्टंति** वर्तन्ते प्रवर्तन्ते **जदि** यदि चेत्। क्व वर्तन्ते। **किरियासु** वन्दनादिक्रियासु। कैः सह। **गुणाधरेहिं** गुणाधरैर्गुणरहितैः। स्वयं कथंभूताः सन्तः। **अधिगगुणा** अधिकगुणाः। क्व। **सामण्णे** श्रामण्ये चारित्रे। **ते मिच्छत्तपउत्ता हवंति** ते कथंचिदतिप्रसंगान्मिथ्यात्वप्रयुक्ता भवन्ति। न केवलं मिथ्यात्वप्रयुक्ताः, **पब्भट्ठचारित्ता** प्रभ्रष्टचारित्राश्च भवन्ति। तथाहि—यदि बहुश्रुतानां पार्श्वे ज्ञानादिगुणवृद्ध्यर्थं स्वयं चारित्रगुणाधिका अपि वन्दनादिक्रियासु वर्तन्ते तदा दोषो नास्ति। यदि पुनः केवलं ख्यातिपूजालाभार्थं

अब, जो श्रमण श्रामण्यसे अधिक हो वह, जो अपनेसे हीन श्रमणके प्रति समान जैसा (-अपने बराबरीवाले जैसा) आचरण करे तो उसका विनाश बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यदि श्रामण्ये अधिकगुणाः**] जो श्रामण्यमें अधिक गुणवाले हैं, तथापि [**गुणाधरैः**] हीनगुणवालोंके प्रति [**क्रियासु**] (वंदनादि) क्रियाओंमें [**वर्तन्ते**] वर्तते हैं, [**ते**] वे [**मिथ्योपयुक्ताः**] मिथ्या उपयुक्त होते हुए [**प्रभ्रष्टचारित्राः भवन्ति**] चारित्रसे भ्रष्ट होते हैं॥२६७॥

मुनि अधिकगुण हीनगुण प्रति वर्ते यदि विनयादिमां,
तो भ्रष्ट थाय चरित्रथी उपयुक्त मिथ्या भावमां. २६७.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

स्वयमधिकगुणा गुणाधरैः परैः सह क्रियासु वर्तमाना मोहादसम्यगुपयुक्तत्वात् चारित्राद् भ्रश्यन्ति।।२६७।।

अथासत्संगं प्रतिषेध्यत्वेन दर्शयति—

णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसाओ तवोधिगो चावि।
लोगिगजणसंसग्गं ण चयदि जदि संजदो ण हवदि।।२६८।।

निश्चितसूत्रार्थपदः शमितकषायस्तपोऽधिकश्चापि।
लौकिकजनसंसर्गं न त्यजति यदि संयतो न भवति।।२६८।।

वर्तन्ते तदातिप्रसंगाद्दोषो भवति। इदमत्र तात्पर्यम्—वन्दनादिक्रियासु वा तत्त्वविचारादौ वा यत्र रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति तत्र सर्वत्र दोष एव। ननु भवदीयकल्पनेयमागमे तथा नास्ति। नैवम्, आगमः सर्वोऽपि रागद्वेषपरिहारार्थ एव, परं किंतु ये केचनोत्सर्गापवादरूपेणागमनयविभागं न जानन्ति त एव रागद्वेषौ कुर्वन्ति, न चान्य इति।।२६७।। इति पूर्वोक्तक्रमेण 'एयग्गगदो' इत्यादिचतुर्दशगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाभिधानस्तृतीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः। अथानन्तरं द्वात्रिंशद्गाथापर्यन्तं पञ्चभिः स्थलैः शुभोपयोगाधिकारः कथ्यते। तत्रादौ लौकिकसंसर्गनिषेधमुख्यत्वेन 'णिच्छिदसुत्तत्थपदो' इत्यादिपाठक्रमेण गाथापञ्चकम्। तदनन्तरं सरागसंयमापरनामशुभोपयोग-स्वरूपकथनप्रधानत्वेन 'समणा सुद्धुवजुत्ता' इत्यादि सूत्राष्टकम्। ततश्च पात्रापात्रपरीक्षाप्रतिपादनरूपेण 'रागो पसत्थभूदो' इत्यादि गाथाषट्कम्। ततः परमाचारादिविहितक्रमेण पुनरपि संक्षेपरूपेण समाचार-व्याख्यानप्रधानत्वेन 'दिट्ठा पगदं वत्थु' इत्यादि सूत्राष्टकम्। ततः परं पञ्चरत्नमुख्यत्वेन 'जे

टीका :—जो स्वयं अधिक गुणवाले होने पर भी अन्य हीनगुणवालों (श्रमणों) के प्रति (वंदनादि) क्रियाओंमें वर्तते हैं वे मोहके कारण असम्यक् उपयुक्त होते हुए (-मिथ्याभावोंमें युक्त होते हुए) चारित्रसे भ्रष्ट होते हैं।।२६७।।

अब, असत्संग निषेध्य है ऐसा बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**निश्चितसूत्रार्थपदः**] जिसने सूत्रों और अर्थोंके पदको-अधिष्ठानको (अर्थात् ज्ञातृतत्त्वको) निश्चित किया है, [**समितकषायः**] जिसने कषायोंका शमन किया है, [**च**] और [**तपोऽधिकः अपि**] जो अधिक तपवान् है—ऐसा जीव भी [**यदि**] यदि [**लौकिकजनसंसर्ग**] लौकिकजनोंके संसर्गको [**न त्यजति**] नहीं छोड़ता, [**संयतः न भवति**] तो वह संयत नहीं है (अर्थात् असंयत हो जाता है)।।२६८।।

सुत्रार्थपदनिश्चय, कषायप्रशांति, तप-अधिकत्व छे,
ते पण असंयत थाय, जो छोडे न लौकिक-संगने. २६८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

यतः सकलस्यापि विश्ववाचकस्य सल्लक्ष्मणः शब्दब्रह्मणस्तद्वाच्यस्य सकलस्यापि सल्लक्ष्मणो विश्वस्य च युगपदनुस्यूततदुभयज्ञेयाकारतयाधिष्ठानभूतस्य सल्लक्ष्मणो ज्ञातृतत्त्वस्य निश्चयनान्निश्चितसूत्रार्थपदत्वेन, निरुपरागोपयोगत्वात् समितकषायत्वेन, बहुशोऽभ्यस्त-निष्कम्पोपयोगत्वात्तपोऽधिकत्वेन च सुष्ठु संयतोऽपि सप्तार्चिःसंगतं तोयमिवावश्यम्भावि-विकारत्वात् लौकिकसंगादसंयत एव स्यात्, ततस्तत्संगः सर्वथा प्रतिषेध्य एव॥२६८॥

अजधागहिदत्था' इत्यादि गाथापञ्चकम्। एवं द्वात्रिंशद्गाथाभिः स्थलपञ्चकेन चतुर्थान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा—अथ लौकिकसंसर्गं प्रतिषेधयति—णिच्छिदसुत्तत्थपदो निश्चितानि ज्ञातानि निर्णीतान्यनेकान्तस्वभावनिजशुद्धात्मादिपदार्थप्रतिपादकानि सूत्रार्थपदानि येन स भवति निश्चित-सूत्रार्थपदः, समिदकसाओ परविषये क्रोधादिपरिहारेण तथाभ्यन्तरे परमोपशमभावपरिणतनिजशुद्धात्म-भावनाबलेन च शमितकषायः, तवोधिगो चावि अनशनादिबहिरङ्गतपोबलेन तथैवाभ्यन्तरे शुद्धात्मतत्त्व-भावनाविषये प्रतपनाद्विजयनाच्च तपोऽधिकश्चापि सन् स्वयं संयतः कर्ता लोगिगजणसंसग्गं ण चयदि जदि लौकिकाः स्वेच्छाचारिणस्तेषां संसर्गो लौकिकसंसर्गस्तं न त्यजति यदि चेत् संजदो ण हवदि तर्हि संयतो न भवतीति। अयमत्रार्थः—स्वयं भावितात्मापि यद्यसंवृतजनसंसर्गं न त्यजति तदातिपरिचयादग्निसङ्गतं जलमिव विकृतिभावं गच्छतीति॥२६८॥

टीका :—(१) विश्वके वाचक, 'सत्' लक्षणवान् ऐसा जो शब्दब्रह्म और उस शब्दब्रह्मके वाच्य 'सत्' लक्षणवाला ऐसा जो सम्पूर्ण विश्व उन दोनोंके ज्ञेयाकार अपनेमें युगपत् गुंथ जानेसे (–ज्ञातृतत्त्वमें एक ही साथ ज्ञात होनेसे) उन दोनोंका [१]अधिष्ठानभूत—ऐसा 'सत्' लक्षणवाले ज्ञातृत्वका निश्चय किया होनेसे 'जिसने सूत्रों और अर्थोंके पदको (–अधिष्ठानको) निश्चित किया है ऐसा' हो, (२) निरुपराग उपयोगके कारण 'जिसने कषायोंको शमित किया है ऐसा' हो, और (३) निष्कंप उपयोगका [२]बहुशः अभ्यास करनेसे 'अधिक तपवाला' हो, —इसप्रकार (इन तीन कारणोंसे) जो जीव भलीभाँति संयत हो, वह भी लौकिक (जनोंके) संगसे असंयत ही होता है, क्योंकि अग्निकी संगतिमें रहे हुए पानीकी भाँति उसे विकार अवश्यंभावी है। इसलिये लौकिक संग सर्वथा निषेध्य ही है।

भावार्थ :—जो जीव संयत हो, अर्थात् (१) जिसने शब्दब्रह्मको और उसके वाच्यरूप समस्त पदार्थोंको जाननेवाले ज्ञातृतत्त्वका निर्णय किया हो, (२) जिसने कषायोंको शमित किया हो (३) और जो अधिक तपवान् हो, वह जीव भी लौकिकजनके संगसे असंयत ही होता है; क्योंकि जैसे अग्निके संगसे पानीमें उष्णतारूप विकार अवश्य होता है, उसीप्रकार लौकिकजनके संसर्गको न छोड़नेवाले संयतके असंयततारूप विकार अवश्य होता है। इसलिये लौकिक जनोंका संग सर्वप्रकारसे त्याज्य ही है॥२६८॥

१. ज्ञातृतत्त्वका स्वभाव शब्दब्रह्मको और उसके वाच्यरूप विश्वको युगपद् जाननेका है इसलिये उस अपेक्षा ज्ञातृतत्त्वको शब्दब्रह्मका तथा विश्वका अधिष्ठान–आधार कहा गया है। संयत जीवको ऐसे ज्ञातृतत्त्वका निश्चय होता है।

२. बहुशः = (१) बहुत; खूब (२) बारंबार।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अथ लौकिकलक्षणमुपलक्षयति—

णिग्गंथं पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहिं कम्मेहिं।
सो लोगिगो त्ति भणिदो संजमतवसंपजुत्तो वि॥२६९॥

नैर्ग्रन्थ्यं प्रव्रजितो वर्तते यद्यैहिकैः कर्मभिः।
स लौकिक इति भणितः संयमतपःसम्प्रयुक्तोऽपि॥२६९॥

प्रतिज्ञातपरमनैर्ग्रन्थ्यप्रव्रज्यत्वादुदूढसंयमतपोभारोऽपि मोहबहुलतया श्लथीकृत-शुद्धचेतनव्यवहारो मुहुर्मनुष्यव्यवहारेण व्याघूर्णमानत्वादैहिककर्मानिवृत्तौ लौकिक इत्युच्यते॥२६९॥

अथानुकम्पालक्षणं कथ्यते—

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो हि दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा॥★३६॥

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो हि दुहिदमणो पडिवज्जदि तृषितं वा बुभुक्षितं वा दुःखितं वा दृष्ट्वा कमपि प्राणिनं यो हि स्फुटं दुःखितमनाः सन् प्रतिपद्यते स्वीकरोति। कं कर्मतापन्नम्। तं तं प्राणिनम्। कया। किवया कृपया दयापरिणामेन। तस्सेसा होदि अणुकंपा तस्य पुरुषस्यैषा प्रत्यक्षीभूता शुभोपयोगरूपानुकम्पा दया भवतीति। इमां चानुकम्पां ज्ञानी स्वस्थभावनाविनाशयन्

अब, 'लौकिक' (जन) का लक्षण कहते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**नैर्ग्रन्थ्यं प्रव्रजितः**] जो (जीव) निर्ग्रंथरूपसे दीक्षित होनेके कारण [**संयमतपः संप्रयुक्तः अपि**] संयमतपसंयुक्त हो उसे भी, [**यदि सः**] यदि वह [**ऐहिकैः कर्मभिः वर्तते**] ऐहिक कार्यों सहित वर्तता हो तो, [**लौकिकः इति भणितः**] 'लौकिक' कहा गया है॥२६९॥

टीका :—परमनिर्ग्रंथतारूप प्रव्रज्याकी प्रतिज्ञा ली होनेसे जो जीव संयमतपके भारको वहन करता हो उसे भी, यदि उस मोहकी बहुलताके कारण शुद्धचेतन व्यवहारको छोड़कर निरंतर मनुष्यव्यवहारके द्वारा चक्कर खानेसे [१]ऐहिक कर्मोंसे अनिवृत्त हो तो, 'लौकिक' कहा जाता है॥२६९॥

---

१. ऐहिक = लौकिक।

निर्ग्रंथरूप दीक्षा वडे संयमतपे संयुक्त जे,
लौकिक कह्यो तेने य, जो छोडे न ऐहिक कर्मने. २६९.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ सत्संग विधेयत्वेन दर्शयति—

तम्हा समं गुणादो समणो समणं गुणेहिं वा अहियं।
अधिवसदु तम्हि णिच्चं इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं ॥२७०॥

तस्मात्समं गुणात् श्रमणः श्रमणं गुणैर्वाधिकम्।
अधिवसतु तत्र नित्यं इच्छति यदि दुःखपरिमोक्षम् ॥२७०॥

यतः परिणामस्वभावत्वेनात्मनः सप्तार्चिःसंगतं तोयमिवावश्यम्भाविविकारत्वा-ल्लौकिकसंगात्संयतोऽप्यसंयत एव स्यात्; ततो दुःखमोक्षार्थिना गुणैः समोऽधिको वा श्रमणः

संक्लेशपरिहारेण करोति। अज्ञानी पुनः संक्लेशेनापि करोतीत्यर्थः ॥"३६॥ अथ लौकिकलक्षणं कथयति—णिग्गंथो पव्वइदो वस्त्रादिपरिग्रहरहितत्वेन निर्ग्रन्थोऽपि दीक्षाग्रहणेन प्रव्रजितोऽपि वट्टदि जदि वर्तते यदि चेत्। कैः। एहिगेहि कम्मेहिं ऐहिकैः कर्मभिः भेदाभेदरत्नत्रयभावनाशकैः ख्यातिपूजालाभनिमितैर्ज्योतिषमन्त्रवादवैदकादिभिरैहिकजीवनोपायकर्मभिः। सो लोगिगो त्ति भणिदो स लौकिको व्यावहारिक इति भणितः। किंविशिष्टोऽपि। संजमतवसंजुदो चावि द्रव्यरूपसंयमतपोभ्यां संयुक्तश्चापीत्यर्थः ॥२६९॥ अथोत्तमसंसर्गः कर्तव्य इत्युपदिशति—तम्हा यस्माद्धीनसंसर्गाद्गुणहानि-र्भवति तस्मात्कारणात् अधिवसदु अधिवसतु तिष्ठतु। स कः कर्ता। समणो श्रमणः। क्व। तम्हि तस्मिन्नधिकरणभूते। णिच्चं नित्यं सर्वकालम्। तस्मिन्कुत्र। समणं श्रमणे। लक्षणवशादधिकरणे कर्म

अब, सत्संग विधेय (-करने योग्य) है, ऐसा बतलाते हैं :—

अन्वयार्थ :—[तस्मात्] (लौकिकजनके संगसे संयत भी असंयत होता है) इसलिये [यदि] यदि [श्रमणः] श्रमण [दुःखपरिमोक्षम् इच्छति] दुःखसे परिमुक्त होना चाहता हो तो वह [गुणात्समं] समान गुणोंवाले श्रमणके [वा] अथवा [गुणैः अधिकं श्रमणं तत्र] अधिक गुणोंवाले श्रमणके संगमें [नित्यम्] सदा [अधिवसतु] निवास करो ॥२७०॥

टीका :—आत्मा परिणामस्वभाववाला है इसलिये अग्निके संगमें रहे हुए पानीकी भाँति (संयतके भी) लौकिकसंगसे विकार अवश्यंभावी होनेसे संयत भी असंयत ही हो जाता है। इसलिये दुःखमोक्षार्थी (-दुःखोंसे मुक्ति चाहनेवाले) श्रमणको

तेथी श्रमणने होय जो दुःखमुक्ति केरी भावना,
तो नित्य वसवुं समान अगर विशेष गुणीनां संगमां. २७०.

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

श्रमणेन नित्यमेवाधिवसनीयः। तथास्य शीतापवरककोणनिहितशीततोयवत्समगुणसंगात् गुणरक्षा, शीततरतुहिनशर्करासम्पृक्तशीततोयवत् गुणाधिकसंगात् गुणवृद्धिः ॥२७०॥

*इत्यध्यास्य शुभोपयोगजनितां कांचित्प्रवृत्तिं यतिः
सम्यक् संयमसौष्ठवेन परमां क्रामन्निवृत्तिं क्रमात्।
हेलाक्रान्तसमस्तवस्तुविसरप्रस्तारम्योदयां
ज्ञानानन्दमयीं दशामनुभवत्वेकान्ततः शाश्वतीम् ॥१७॥

—इति शुभोपयोगप्रज्ञापनम्।

पठ्यते। कथंभूते श्रमणे। समं समे समाने। कस्मात्। गुणादो बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयलक्षणगुणात्। पुनरपि कथंभूते। अहियं वा स्वस्मादधिके वा। कैः। गुणेहिं मूलोत्तरगुणैः। यदि किम्। इच्छदि जदि इच्छति वाञ्छति यदि चेत्। कम्। दुक्खपरिमोक्खं स्वात्मोत्थसुखविलक्षणानां नारकादिदुःखानां मोक्षं दुःखपरिमोक्षमिति। अथ विस्तरः—यथाग्निसंयोगात् जलस्य शीतलगुणविनाशो भवति तथा व्यावहारिकजनसंसर्गात्संयतस्य संयमगुणविनाशो भवतीति ज्ञात्वा तपोधनः कर्ता समगुणं गुणाधिकं वा तपोधनमाश्रयति, तदास्य तपोधनस्य यथा शीतलभाजनसहितशीतलजलस्य शीतलगुणरक्षा भवति

---

(१) समान गुणवाले श्रमणके साथ अथवा (२) अधिक गुणवाले श्रमणके साथ सदा ही निवास करना चाहिये। इसप्रकार उस श्रमणके (१) शीतल घरके कोनेमें रखे हुए शीतल पानीकी भाँति समान गुणवालेकी संगतिसे गुणरक्षा होती है और (२) अधिक शीतल हिम (बरफ) के संपर्कमें रहनेवाले शीतल पानीकी भाँति अधिक गुणवालेके संगसे गुणवृद्धि होती है॥२७०॥

[अब श्लोक द्वारा यह कहते हैं कि श्रमण क्रमशः परम निवृत्तिको प्राप्त करके शाश्वत ज्ञानानन्दमयदशाका अनुभव करो :—]

[**अर्थ** :—] इसप्रकार शुभोपयोगजनित किंचित् प्रवृत्तिका सेवन करके यति सम्यक् प्रकारसे संयमके सौष्ठव (श्रेष्ठता, सुन्दरता) से क्रमशः परम निवृत्तिको प्राप्त होता हुआ; जिसका रम्य उदय समस्त वस्तुसमूहके विस्तारको लीलामात्रसे प्राप्त हो जाता है (-जान लेता है) ऐसी शाश्वती ज्ञानानन्दमयी दशाका एकान्ततः (केवल, सर्वथा, अत्यन्त) अनुभव करो।

"इसप्रकार **शुभोपयोग-प्रज्ञापन** पूर्ण हुआ।"

★ शार्दूलविक्रीडित छंद

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ पंचरत्नम्।

*तन्त्रस्यास्य शिखण्डमण्डनमिव प्रद्योतयत्सर्वतो-
ऽद्वैतीयीकमथार्हतो भगवतः संक्षेपतः शासनम्।
व्याकुर्वञ्जगतो विलक्षणपथां संसारमोक्षस्थितिं
जीयात्सम्प्रति पंचरत्नमनघं सूत्रैरिमैः पंचभिः ॥१८॥

अथ संसारतत्त्वमुद्घाटयति—

जे अजधागहिदत्था एदे तच्च त्ति णिच्छिदा समये।
अच्चंतफलसमिद्धं भमंति ते तो परं कालं॥२७१॥

तथा समगुणसंसर्गाद्गुणरक्षा भवति। यथा च तस्यैव जलस्य कर्पूरशर्करादिशीतलद्रव्यनिक्षेपे कृते सति शीतलगुणवृद्धिर्भवति तथा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयगुणाधिकसंसर्गाद्गुणवृद्धिर्भवतीति सूत्रार्थः॥२७०॥ इतःपरं पञ्चमस्थले संक्षेपेण संसारस्वरूपस्य मोक्षस्वरूपस्य च प्रतीत्यर्थं पञ्चरत्नभूतगाथापञ्चकेन व्याख्यानं करोति। तद्यथा—अथ संसारस्वरूपं प्रकटयति—जे अजधागहिदत्था वीतरागसर्वज्ञ-प्रणीतनिश्चयव्यवहाररत्नत्रयार्थपरिज्ञानाभावात् येऽयथागृहीतार्थाः विपरीतगृहीतार्थाः। पुनरपि कथंभूताः। एदे तच्च त्ति णिच्छिदा एते तत्त्वमिति निश्चिताः, एते ये मया कल्पिताः पदार्थास्त एव तत्त्वमिति निश्चिताः, निश्चयं कृतवन्तः। क्व स्थित्वा। समये निर्ग्रन्थरूपद्रव्यसमये। अच्चंतफलसमिद्धं

अब पंचरत्न हैं (अर्थात् पाँच रत्नों जैसी पाँच गाथायें कहते हैं)।

[वहाँ पहले, श्लोक द्वारा उन पाँच गाथाओंकी महिमा कहते हैं :—]

अर्थ :—अब इस शास्त्रके कलगीके अलङ्कार जैसे (–चूडामणि–मुकुटमणि समान) यह पाँच सूत्ररूप निर्मल पंचरत्न—जोकि संक्षेपसे अर्हन्तभगवानके समग्र अद्वितीय शासनको सर्वतः प्रकाशित करते हैं वे—[१]विलक्षण पंथवाली संसार–मोक्षकी स्थितिको जगतके समक्ष प्रकट करते हुए जयवन्त वर्तो।

अब संसारतत्त्वको प्रकट करते हैं :—

★ शार्दूलविक्रीडित छंद

१. विलक्षण = भिन्न–भिन्न [संसार और मोक्षकी स्थिति भिन्न–भिन्न पंथवाली है, अर्थात् संसार और मोक्षका मार्ग अलग–अलग है।]

समयस्थ हो पण सेवी भ्रम अयथा ग्रहे जे अर्थने,
अत्यंतफलसमृद्ध भावी काळमां जीव ते भमे. २७१.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

ये अयथागृहीतार्था एते तत्त्वमिति निश्चिताः समये।
अत्यन्तफलसमृद्धं भ्रमन्ति ते अतः परं कालम्॥२७१॥

ये स्वयमविवेकतोऽन्यथैव प्रतिपद्यार्थानित्थमेव तत्त्वमिति निश्चयमारचयन्तः सततं समुपचीयमानमहामोहमलमलीमसमानसतया नित्यमज्ञानिनो भवन्ति, ते खलु समये स्थिता अप्यनासादितपरमार्थश्रामण्यतया श्रमणाभासाः सन्तोऽनन्तकर्मफलोपभोगप्राग्भारभयंकरमनन्तकालमनन्तभावान्तरपरावर्तैरनवस्थितवृत्तयः संसारतत्त्वमेवावबुध्यताम्॥२७१॥

भमंति ते तो परं कालं अत्यन्तफलसमृद्धं भ्रमन्ति ते अतः परं कालम्। द्रव्यक्षेत्रकालभवभावपञ्चप्रकारसंसारपरिभ्रमणरहितशुद्धात्मस्वरूपभावनाच्युताः सन्तः परिभ्रमन्ति। कम्। परं कालं अनन्तकालम्। नारकादिदुःखरूपात्यन्तफलसमृद्धम्। पुनरपि कथंभूतम्। अतो वर्तमानकालात्परं भाविनमिति। कथंभूतम्। अयमत्रार्थः—इत्थंभूतसंसारपरिभ्रमणपरिणतपुरुषा एवाभेदेन संसारस्वरूपं ज्ञातव्यमिति॥२७१॥ अथ मोक्षस्वरूपं प्रकाशयति—अजधाचारविजुत्तो निश्चयव्यवहारपञ्चाचारभावना-

---

अन्वयार्थ :—[**ये**] जो [**समये**] भले ही समयमें हों (-भले ही वे द्रव्यलिंगीके रूपमें जिनमतमें हों) तथापि वे [**एते तत्त्वम्**] 'यह तत्त्व है (वस्तुस्वरूप ऐसा ही है)' [**इति निश्चिताः**] इसप्रकार निश्चयवान वर्तते हुए [**अयथागृहीतार्थाः**] पदार्थोंको अयथार्थरूपसे ग्रहण करते हैं (-जैसे नहीं हैं वैसा समझते हैं), [**ते**] वे [**अत्यन्तफलसमृद्धम्**] अत्यन्तफलसमृद्ध (अनन्त कर्मफलोंसे भरे हुए) ऐसे [**अतः परं कालं**] अबसे आगामी कालमें [**भ्रमन्ति**] परिभ्रमण करेंगे॥२७१॥

टीका :—जो स्वयं अविवेकसे पदार्थोंको अन्यथा ही अंगीकृत करके (-अन्य प्रकारसे ही समझकर) 'ऐसा ही तत्त्व (वस्तुस्वरूप) है' ऐसा निश्चय करते हुए, सतत एकत्रित किये जानेवाले महा मोहमलसे मलिन मनवाले होनेसे नित्य अज्ञानी हैं, वे भले ही समयमें (-द्रव्यलिंगी रूपसे जिनमार्गमें) स्थित हों तथापि परमार्थ श्रामण्यको प्राप्त न होनेसे वास्तवमें श्रमणाभास वर्तते हुए अनन्त कर्मफलकी उपभोगराशिसे भयंकर ऐसे अनन्तकाल तक अनन्त भावान्तररूप परावर्त्तनोंसे [१]अनवस्थित वृत्तिवाले रहनेसे, उनको संसारतत्त्व ही जानना॥२७१॥

---

१. अनवस्थित = अस्थिर [मिथ्यादृष्टियोंने भले ही द्रव्यलिंग धारण किया हो तथापि उनके अनन्तकाल तक अनन्त भिन्न-भिन्न भावरूपसे-भावान्तररूपसे परावर्तन होते रहनेसे वे अस्थिर परिणतिवाले रहेंगे, और इसलिये वे संसारतत्त्व ही हैं।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अथ मोक्षतत्त्वमुद्घाटयति—

अजधाचारविजुत्तो जधत्थपदणिच्छिदो पसंतप्पा।
अफले चिरं ण जीवदि इह सो संपुण्णसामण्णो॥२७२॥

अयथाचारवियुक्तो यथार्थपदनिश्चितः प्रशान्तात्मा।
अफले चिरं न जीवति इह स सम्पूर्णश्रामण्यः॥२७२॥

यस्त्रिलोकचूलिकायमाननिर्मलविवेकदीपिकालोकशालितया यथावस्थितपदार्थनिश्चय-निवर्तितौत्सुक्यस्वरूपमन्थरसततोपशान्तात्मा सन् स्वरूपमेकमेवाभिमुख्येन चरन्नयथाचार-

परिणतत्वादयथाचारवियुक्तः, विपरीताचाररहित इत्यर्थः, **जधत्थपदणिच्छिदो** सहजानन्दैकस्वभावनिज-परमात्मादिपदार्थपरिज्ञानसहितत्वाद्यथार्थपदनिश्चितः, **पसंतप्पा** विशिष्टपरमोपशमभावपरिणतनिजात्म-द्रव्यभावनासहितत्वात्प्रशान्तात्मा, **जो** यः कर्ता **सो संपुण्णसामण्णो** स संपूर्णश्रामण्यः सन् **चिरं ण जीवदि** चिरं बहुतरकालं न जीवति, न तिष्ठति। **क्व। अफले** शुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वाद-रहितत्वेनाफले फलरहिते संसारे। किन्तु शीघ्रं मोक्षं गच्छतीति। अयमत्र भावार्थः—इत्थंभूत-

अब मोक्ष तत्वको प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**यथार्थपदनिश्चितः**] जो जीव यथार्थतया पदोंका तथा अर्थों (पदार्थों) का निश्चयवाला होनेसे [**प्रशान्तात्मा**] [१]प्रशान्तात्मा है और [**अयथाचारवियुक्तः**] अयथाचार (–अन्यथाआचरण, अयथार्थआचरण) रहित है, [**सः संपूर्णश्रामण्यः**] वह संपूर्ण श्रामण्यवाला जीव [**अफले**] अफल (–कर्मफल रहित हुए) [**इह**] इस संसारमें [**चिरं न जीवति**] चिरकाल तक नहीं रहता (–अल्पकालमें ही मुक्त होता है।) ॥२७२॥

टीका :—जो (श्रमण) त्रिलोककी चूलिका (कलगी) के समान निर्मल विवेकरूपी दीपिकाके प्रकाशवाला होनेसे यथास्थित पदार्थनिश्चयसे उत्सुकताका निवर्तन करके [२]स्वरूपमंथर रहनेसे सतत 'उपशांतात्मा' वर्तता हुआ, स्वरूपमें एकमें ही अभिमुखरूपसे

१. प्रशांतात्मा = प्रशांतस्वरूप; प्रशांतमूर्ति; उपशांत; स्थिर हुआ।

२. स्वरूपमंथर = स्वरूपमें जमा हुआ [मन्थरका अर्थ है सुस्त, आलसी। यह श्रमण स्वरूपमें तृप्त तृप्त होनेसे मानो वह स्वरूपसे बाहर निकलनेको सुस्त या आलसी हो, इसप्रकार स्वरूपप्रशांतिमें मग्न होकर रहा है।]

अयथाचरणहीन, सूत्र–अर्थसुनिश्चयी उपशांत जे,
ते पूर्ण साधु अफळ आ संसारमां चिर नहि रहे. २७२.

वियुक्तो नित्यं ज्ञानी स्यात्, स खलु सम्पूर्णश्रामण्यः साक्षात् श्रमणो हेलावकीर्ण-सकलप्राक्तनकर्मफलत्वादनिष्पादितनूतनकर्मफलत्वाच्च पुनः प्राणधारणदैन्यमनास्कन्दन् द्वितीय-भावपरावर्ताभावात् शुद्धस्वभावावस्थितवृत्तिर्मोक्षतत्त्वमवबुध्यताम् ॥२७२॥

अथ मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वमुद्घाटयति—

सम्मं विदिदपदत्था चत्ता उवहिं बहित्थमज्झत्थं।
विसयेसु णावसत्ता जे ते सुद्धा त्ति णिद्दिट्ठा॥२७३॥

सम्यग्विदितपदार्थास्त्यक्त्वोपधिं बहिस्थमध्यस्थम्।
विषयेषु नावसक्ता ये ते शुद्धा इति निर्दिष्टाः॥२७३॥

मोक्षतत्त्वपरिणतपुरुष एवाभेदेन मोक्षस्वरूपं ज्ञातव्यमिति॥२७२॥ अथ मोक्षकारणमाख्याति—**सम्मं विदिदपदत्था** संशयविपर्ययानध्यवसायरहितानन्तज्ञानादिस्वभावनिजपरमात्मपदार्थप्रभृतिसमस्तवस्तु-विचारचतुरचित्तचातुर्यप्रकाशमानसातिशयपरमविवेकज्योतिषा सम्यग्विदितपदार्थाः। पुनरपि किंरूपाः। **विसयेसु णावसत्ता** पञ्चेन्द्रियविषयाधीनरहितत्वेन निजात्मतत्त्वभावनारूपपरमसमाधिसंजातपरमानन्दैक-

---

विचरता (क्रीड़ा करता) होनेसे 'अयथाचार रहित' वर्तता हुआ नित्य ज्ञानी हो, वास्तवमें उस सम्पूर्ण श्रामण्यवाले साक्षात् श्रमणको मोक्षतत्व जानना, क्योंकि पहलेके सकल कर्मोंके फल उसने लीलामात्रसे नष्ट कर दिये हैं इसलिये और वह नूतन कर्मफलोंको उत्पन्न नहीं करता इसलिये पुनः प्राणधारणरूप दीनताको प्राप्त न होता हुआ द्वितीय भावरूप परावर्तनके अभावके कारण शुद्धस्वभावमें [१]अवस्थित वृत्तिवाला रहता है॥२७२॥

अब मोक्षतत्वका साधनतत्व प्रगट करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[**सम्यग्विदितपदार्थाः**] सम्यक् (यथार्थतया) पदार्थोंको जानते हुए [**ये**] जो [**बहिस्थमध्यस्थम्**] बहिरंग तथा अंतरंग [**उपधिं**] परिग्रहको [**त्यक्त्वा**] छोड़कर [**विषयेषु न अवसक्ताः**] विषयोंमें आसक्त नहीं हैं, [**ते**] वे [**शुद्धाः इति निर्दिष्टाः**] 'शुद्ध' कहे गये हैं॥२७३॥

---

१. अवस्थित = स्थिर, [इस संपूर्ण श्रामण्यवाले जीवको अन्यभावरूप परावर्तन (पलटन) नहीं होता, वह सदा एक ही भावरूप रहता है—शुद्ध स्वभावमें स्थिर परिणतिरूपसे रहता है; इसलिये वह जीव मोक्षतत्व ही है।]

जाणी यथार्थ पदार्थने, तजी संग अंतर्बाह्यने,
आसक्त नहि विषयो विषे जे, 'शुद्ध' भाख्या तेमने. २७३.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अनेकान्तकलितसकलज्ञातृज्ञेयतत्त्वयथावस्थितस्वरूपपाण्डित्यशौण्डाः सन्तः समस्त-बहिरंगन्तरंगसंगतिपरित्यागविविक्तान्तश्चकचकायमानानन्तशक्तिचैतन्यभास्वरात्मतत्त्वस्वरूपाः स्वरूपगुप्तसुषुप्तकल्पान्तस्तत्त्ववृत्तितया विषयेषु मनागप्यासक्तिमनासादयन्तः समस्तानुभाववन्तो भगवन्तः शुद्धा एवासंसारघटितविकटकर्मकवाटविघटनपटीयसाध्यवसायेन प्रकटीक्रियमाणा-वदाना मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वमवबुध्यताम् ॥२७३॥

अथ मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वं सर्वमनोरथस्थानत्वेनाभिनन्दयति—

सुद्धस्स य सामण्णं भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं।
सुद्धस्स य णिव्वाणं सो च्चिय सिद्धो णमो तस्स॥२७४॥

लक्षणसुखसुधारसास्वादानुभवबलेन विषयेषु मनागप्यनासक्ताः। किं कृत्वा। पूर्वं स्वस्वरूपपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा, चत्ता त्यक्त्वा। कम्। उवहिं उपधिं परिग्रहम्। किंविशिष्टम्। बहित्थमज्झत्थं बहिस्थं क्षेत्रवास्त्वाद्यनेकविधं मध्यस्थं मिथ्यात्वादिचतुर्दशभेदभिन्नम्। जे एवंगुणविशिष्टाः ये महात्मानः ते सुद्ध त्ति णिद्दिट्ठा ते शुद्धाः शुद्धोपयोगिनः इति निर्दिष्टाः कथिताः। अनेन व्याख्यानेन किमुक्तं भवति— इत्थंभूताः परमयोगिन एवाभेदेन मोक्षमार्ग इत्यवबोद्धव्यम्॥२७३॥ अथ शुद्धोपयोगलक्षणमोक्षमार्गं सर्वमनोरथस्थानत्वेन प्रदर्शयति—भणियं भणितम्। किम्। सामण्णं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यलक्षणं

टीका :—अनेकान्तके द्वारा ज्ञात सकल ज्ञातृतत्त्व और ज्ञेयतत्त्वके यथास्थित स्वरूपमें जो प्रवीण हैं, अन्तरंगमें चकचकित होते हुए अनन्तशक्तिवाले चैतन्यसे भास्वर (तेजस्वी) आत्मतत्त्वके स्वरूपको जिनने समस्त बहिरंग तथा अन्तरंग संगतिके परित्यागसे विविक्त (भिन्न) किया है, और (इसलिये) अन्तःतत्त्वकी वृत्ति (-आत्माकी परिणति) स्वरूप गुप्त तथा सुषुप्त (जैसे कि सो गया हो) समान (-प्रशांत) रहनेसे जो विषयोंमें किंचित् भी आसक्तिको प्राप्त नहीं होते,-ऐसे जो सकल-महिमावान् भगवन्त 'शुद्ध' (-शुद्धोपयोगी) हैं उन्हें ही मोक्षतत्त्वका साधनतत्त्व जानना। (अर्थात् वे शुद्धोपयोगी ही मोक्षमार्गरूप हैं), क्योंकि वे अनादि संसार से रचित-बन्द रहे हुए विकट कर्मकपाटको तोड़ने-खोलनेके अति उग्र प्रयत्नसे पराक्रम प्रगट कर रहे हैं॥२७३॥

अब मोक्षतत्त्वके साधनतत्त्वका (अर्थात् शुद्धोपयोगीका) सर्व मनोरथोंके स्थानके रूपमें अभिनन्दन (प्रशंसा) करते हैं :—

रे! 'शुद्धने श्रामण्य भाख्युं, ज्ञान दर्शन शुद्धने,
छे शुद्धने निर्वाण, शुद्ध ज सिद्ध, प्रणमुं तेहने. २७४.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

शुद्धस्य च श्रामण्यं भणितं शुद्धस्य दर्शनं ज्ञानम्।
शुद्धस्य च निर्वाणं स एव सिद्धो नमस्तस्मै॥२७४॥

यत्तावत्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रयौगपद्यप्रवृत्तैकाग्र्यलक्षणं साक्षान्मोक्षमार्गभूतं श्रामण्यं तच्च शुद्धस्यैव। यच्च समस्तभूतभवद्भाविव्यतिरेककरम्बितानन्तवस्त्वन्वयात्मकविश्वसामान्यविशेषप्रत्यक्षप्रतिभासात्मकं दर्शनं ज्ञानं च तत् शुद्धस्यैव। यच्च निःप्रतिघविजृम्भितसहजज्ञानानन्दमुद्रितदिव्यस्वभावं निर्वाणं तत् शुद्धस्यैव। यश्च टंकोत्कीर्णपरमानन्दावस्थासुस्थितात्मस्वभावोपलम्भगम्भीरो भगवान् सिद्धः स शुद्ध एव। अलं वाग्विस्तरेण, सर्वमनोरथस्थानस्य मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वस्य शुद्धस्य परस्परमंगांगिभावपरिणतभाव्यभावकभावत्वात् प्रत्यस्तमितस्वपरविभागो भावनमस्कारोऽस्तु॥२७४॥

शत्रुमित्रादिसमभावपरिणतिरूपं साक्षान्मोक्षकारणं यच्छ्रामण्यम्। तत्तावत्कस्य। सुद्धस्स य शुद्धस्य च शुद्धोपयोगिन एव। सुद्धस्स दंसणं णाणं त्रैलोक्योदरविवरवर्तित्रिकालविषयसमस्तवस्तुगतानन्तधर्मैकसमयसामान्यविशेषपरिच्छित्तिसमर्थं यद्दर्शनज्ञानद्वयं तच्छुद्धस्यैव। सुद्धस्स य णिव्वाणं अव्याबाधानन्तसुखादिगुणाधारभूतं पराधीनरहितत्वेन स्वायत्तं यन्निर्वाणं तच्छुद्धस्यैव। सो च्चिय सिद्धो यो

अन्वयार्थ :—[शुद्धस्य च] शुद्ध (-शुद्धोपयोगी) को [श्रामण्यं भणितं] श्रामण्य कहा है, [शुद्धस्य च] और शुद्धको [दर्शनं ज्ञानं] दर्शन तथा ज्ञान कहा है, [शुद्धस्य च] शुद्धके [निर्वाणं] निर्वाण होता है; [सः एव] वही (-शुद्ध ही) [सिद्धः] सिद्ध होता है; [तस्मै नमः] उसे नमस्कार हो॥२७४॥

टीका :—प्रथम तो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके युगपद्पनेरूपसे प्रवर्तमान एकाग्रता जिसका लक्षण है ऐसा जो साक्षात् मोक्षमार्गभूत श्रामण्य, 'शुद्ध के ही होता है; समस्त भूत-वर्तमान-भावी व्यतिरेकोंके साथ मिलित (मिश्रित), अनन्य वस्तुओंका अन्वयात्मक जो विश्व उसके (१) सामान्य और (२) विशेषके प्रत्यक्ष प्रतिभासस्वरूप जो (१) दर्शन और (२) ज्ञान वे 'शुद्ध' के ही होते हैं; निर्विघ्न-खिले हुए सहज ज्ञानानन्दकी मुद्रावाला (-स्वाभाविक ज्ञान और आनन्दकी छापवाला) दिव्य जिसका स्वभाव है ऐसा जो निर्वाण, वह 'शुद्ध' के ही होता है; और टंकोत्कीर्ण परमानन्द-अवस्थारूपसे सुस्थित आत्मस्वभावकी उपलब्धिसे गंभीर ऐसे जो भगवान सिद्ध, वे 'शुद्ध' ही होते हैं (अर्थात् शुद्धोपयोगी ही सिद्ध होते हैं), वचनविस्तारसे बस हो! सर्व मनोरथोंके स्थानभूत, मोक्षतत्वके साधनतत्वरूप, 'शुद्ध'को, जिसमें परस्पर अंगअंगीरूपसे परिणमित [१]भावक-भाव्यताके कारण स्व-परका विभाग अस्त

---

१. भावक (भावनमस्कार करनेवाला) वह अंग (अंश) है और भाव्य (भावनमस्कार करने योग्य पदार्थ) वह अंगी (अंशी) है, इसलिये इस भावनमस्कारमें भावक तथा भाव्य स्वयं ही है। ऐसा नहीं है कि भावक स्वयं हो और भाव्य पर हो।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

अथ शिष्यजनं शास्त्रफलेन योजयन् शास्त्रं समापयति—

बुज्झदि सासणमेदं सागारणगारचरियया जुत्तो।
जो सो पवयणसारं लहुणा कालेण पप्पोदि॥२७५॥

बुध्यते शासनमेतत् साकारानाकारचर्यया युक्तः।
यः स प्रवचनसारं लघुना कालेन प्राप्नोति॥२७५॥

यो हि नाम सुविशुद्धज्ञानदर्शनमात्रस्वरूपव्यवस्थितवृत्तिसमाहितत्वात् साकारानाकारचर्यया युक्तः सन् शिष्यवर्गः स्वयं समस्तशास्त्रार्थविस्तरसंक्षेपात्मकश्रुतज्ञानोपयोग-

---

लौकिकमायाञ्जनरसदिग्विजयमन्त्रयन्त्रादिसिद्धविलक्षणः स्वशुद्धात्मोपलम्भलक्षणः टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावो ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मरहितत्वेन सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भूतानन्तगुणसहितः सिद्धो भगवान् स चैव शुद्धः एव। **णमो तस्स** निर्दोषिनिजपरमात्मन्याराध्याराधकसंबन्धलक्षणो भावनमस्कारोऽस्तु तस्यैव। अत्रैतदुक्तं भवति—अस्य मोक्षकारणभूतशुद्धोपयोगस्य मध्ये सर्वेष्टमनोरथा लभ्यन्त इति मत्वा शेषमनोरथपरिहारेण तत्रैव भावना कर्तव्येति॥२७४॥ अथ शिष्यजनं शास्त्रफलं दर्शयन् शास्त्रं समापयति—**पप्पोदि** प्राप्नोति। **सो** स शिष्यजनः कर्ता। **कम्**। **पवयणसारं** प्रवचनसारशब्दवाच्यं निजपरमात्मानम्। केन। **लहुणा कालेण** स्तोककालेन। **यः** किं करोति। **जो बुज्झदि** यः शिष्यजनो बुध्यते जानाति। **किम्**। **सासणमेदं** शास्त्रमिदं। किं नाम। **पवयणसारं** प्रवचनसारं,—सम्यग्ज्ञानस्य तस्यैव

हुआ है ऐसा भावनमस्कार हो॥२७४॥

अब (भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव) शिष्यजनको शास्त्रके फलके साथ जोड़ते हुए शास्त्र समाप्त करते हैं :—

अन्वयार्थ :—[यः] जो [साकारानाकारचर्यया युक्तः] साकार-अनाकार चर्यासे युक्त वर्तता हुआ [एतत् शासनं] इस उपदेशको [बुध्यते] जानता है, [सः] वह [लघुना कालेन] अल्प कालमें ही [प्रवचनसारं] प्रवचनके सारको (-भगवान आत्माको) [प्राप्नोति] पाता है॥२७५॥

टीका :—[१]सुविशुद्धज्ञानदर्शनमात्र स्वरूपमें अवस्थित परिणतिमें लगा होनेसे साकार-अनाकार चर्यासे युक्त वर्तता हुआ, जो शिष्यवर्ग स्वयं समस्त शास्त्रोंके अर्थोंके [२]विस्तारसंक्षेपात्मक श्रुतज्ञानोपयोगपूर्वक प्रभाव द्वारा केवल आत्माको अनुभवता हुआ, इस

---

१. आत्माका स्वरूप मात्र सुविशुद्ध ज्ञान और दर्शन है। [इसमें, ज्ञान साकार है और दर्शन अनाकार है।]

२. विस्तारसंक्षेपात्मक = विस्तारात्मक या संक्षेपात्मक।

साकार अण-आकार चर्यायुक्त आ उपदेशने
जे जाणतो, ते अल्पकाळे सार प्रवचननो लहे. २७५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पूर्वकानुभावेन केवलमात्मानमनुभवन्शासनमेतद् बुध्यते स खलु निरवधित्रिसमय-प्रवाहावस्थायित्वेन सकलार्थसार्थात्मकस्य प्रवचनस्य सारभूतं भूतार्थस्वसंवेद्यदिव्यज्ञानानन्द-स्वभावमननुभूतपूर्वं भगवन्तमात्मानमवाप्नोति॥२७५॥

इति तत्त्वदीपिकायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां प्रवचनसारवृत्तौ चरणानुयोगसूचिका चूलिका नाम तृतीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः॥३॥

* * *

ज्ञेयभूतपरमात्मादिपदार्थानां तत्साध्यस्य निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानस्य च, तथैव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण-सम्यग्दर्शनस्य तद्विषयभूतानेकान्तात्मकपरमात्मादिद्रव्याणां तेन व्यवहारसम्यक्त्वेन साध्यस्य निज-शुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वस्य च, तथैव च व्रतसमितिगु प्त्याद्यनुष्ठानरूपस्य सरागचारित्रस्य तेनैव साध्यस्य स्वशुद्धात्मनिश्चलानुभूतिरूपस्य वीतरागचारित्रस्य च प्रतिपादकत्वात्प्रवचनसाराभिधेयम्। कथंभूतः सः शिष्यजनः। सागारणगारचरियया जुत्तो सागारानागारचर्यया युक्तः। आभ्यन्तररत्न-त्रयानुष्ठानमुपादेयं कृत्वा बहिरङ्गरत्नत्रयानुष्ठानं सागारचर्या श्रावकचर्या। बहिरङ्गरत्नत्रयाधारेणाभ्यन्तर-रत्नत्रयानुष्ठानमनागारचर्या प्रमत्तसंयतादितपोधनचर्येत्यर्थः॥२७५॥ इति गाथापञ्चकेन पञ्चरत्नसंज्ञं पञ्चमस्थलं व्याख्यातम्। एवं 'णिच्छिदसुत्तत्थपदो' इत्यादि द्वात्रिंशद्गाथाभिः स्थलपञ्चकेन शुभोप-योगाभिधानश्चतुर्थान्तराधिकारः समाप्तः॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ पूर्वोक्तक्रमेण 'एवं पणमिय सिद्धे' इत्याद्येक-विंशतिगाथाभिरुत्सर्गाधिकारः। तदनन्तरं 'ण हि णिरवेक्खो चागो' इत्यादि त्रिंशद्गाथाभिरपवादाधिकारः। ततः परं 'एयग्गगदो समणो' इत्यादिचतुर्दशगाथाभिः श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाधिकारः। ततोऽप्यनन्तरं 'णिच्छिदसुत्तत्थपदो' इत्यादिद्वात्रिंशद्गाथाभिः शुभोपयोगाधिकारश्चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन सप्तनवतिगाथाभिश्चरणानुयोगचूलिका नामा तृतीयो महाधिकारः समाप्तः॥३॥

उपदेशको जानता है, वह वास्तवमें, [१]भूतार्थस्वसंवेद्य–दिव्य ज्ञानानन्द जिसका स्वभाव है, पूर्वकालमें कभी जिसका अनुभव नहीं किया, ऐसे भगवान आत्माको प्राप्त करता है—जो कि (जो आत्मा) तीनों कालके निरवधि प्रवाहमें स्थायी होनेसे [२]सकल पदार्थोंके समूहात्मक प्रवचनका सारभूत है॥२७५॥

इसप्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार शास्त्रकी श्रीमद्अमृतचन्द्राचार्यदेव विरचित तत्वदीपिका नामक टीकामें चरणानुयोगसूचक चूलिका नामका तृतीय श्रुतस्कंध समाप्त हुआ।

* * *

१. भूतार्थ पारमार्थिक–(सत्यार्थ), स्वसंवेद्य और दिव्य ऐसे जो ज्ञान और आनन्द वह भगवान आत्माका स्वभाव है।

२. प्रवचन सकल पदार्थोंके समूहका प्रतिपादन करता है, इसलिये उसे सकल पदार्थोंका समूहात्मक कहा है। [निज शुद्धात्मा प्रवचनका सारभूत है, क्योंकि प्रवचन जो सर्वपदार्थसमूहका प्रतिपादन करता है उसमें एक निजात्मपदार्थ ही स्वयंको ध्रुव है, दूसरा कोई पदार्थ स्वयंको ध्रुव नहीं,]

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

ननु कोऽयमात्मा कथं चावाप्यत इति चेत्, अभिहितमेतत् पुनरप्यभिधीयते। आत्मा हि तावच्चैतन्यसामान्यव्याप्तानन्तधर्माधिष्ठात्रेकं द्रव्यमनन्तधर्मव्यापकानन्तनयव्याप्येकश्रुत-ज्ञानलक्षणप्रमाणपूर्वकस्वानुभवप्रमीयमाणत्वात्। तत्तु द्रव्यनयेन पटमात्रवच्चिन्मात्रम् १। पर्यायनयेन तन्तुमात्रवद्दर्शनज्ञानादिमात्रम् २। अस्तित्वनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्ति-संहितावस्थलक्ष्योन्मुखविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्तित्ववत् ३। नास्तित्वनयेनानयोमया-गुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्नास्ति-

अत्राह शिष्यः—परमात्मद्रव्यं यद्यपि पूर्वं बहुधा व्याख्यातम्, तथापि संक्षेपेण पुनरपि कथ्यतामिति। भगवानाह—केवलज्ञानाद्यनन्तगुणानामाधारभूतं यत्तदात्मद्रव्यं भण्यते। तस्य च नयैः

[अब टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव परिशिष्टरूपसे कुछ कहते हैं :—]

'यह आत्मा कौन है (-कैसा है) और कैसे प्राप्त किया जाता है' ऐसा प्रश्न किया जाय तो इसका उत्तर (पहले ही) कहा जा चुका है और (यहाँ) पुनः कहते हैं :—

प्रथम तो, आत्मा वास्तवमें चैतन्यसामान्यसे व्याप्त अनन्त धर्मोंका अधिष्ठाता (स्वामी) एक द्रव्य है, क्योंकि अनन्त धर्मोंमें व्याप्त होनेवाले जो अनन्त नय हैं उनमें व्याप्त होनेवाला जो एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभवसे (वह आत्मद्रव्य) प्रमेय होता है (-ज्ञात होता है)।

वह आत्मद्रव्य द्रव्यनयसे, पटमात्रकी भाँति, चिन्मात्र है (अर्थात् आत्मा द्रव्यनयसे चैतन्यमात्र है, जैसे वस्त्र वस्त्रमात्र है तदनुसार।) १.

आत्मद्रव्य पर्यायनयसे, तंतुमात्रकी भाँति, दर्शनज्ञानादिमात्र है (अर्थात् आत्मा पर्यायनयसे दर्शनज्ञानचारित्रादिमात्र है, जैसे वस्त्र तंतुमात्र है।) २.

आत्मद्रव्य अस्तित्वनयसे स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे अस्तित्ववाला है; —लोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित, संधानदशामें रहे हुए और लक्ष्योन्मुख बाणकी भाँति। (जैसे कोई बाण स्वद्रव्यसे लोहमय है, स्वक्षेत्रसे डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित है, स्वकालसे संधान-दशामें है, अर्थात् धनुष पर चढ़ाकर खेंची हुई दशामें है, और स्वभावसे लक्ष्योन्मुख है अर्थात् निशानकी ओर है, उसीप्रकार आत्मा अस्तित्वनयसे स्वचतुष्टयसे अस्तित्ववाला है।) ३.

आत्मद्रव्य नास्तित्वनयसे परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे नास्तित्ववाला है; —अलोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें नहीं स्थित, संधानदशामें न रहे हुए और अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहलेके बाणकी भाँति। (जैसे पहलेका बाण अन्य बाणके द्रव्यकी अपेक्षासे अलोहमय है, अन्य बाणके क्षेत्रकी अपेक्षासे डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित नहीं है, अन्य बाणके कालकी अपेक्षासे संधानदशामें नहीं रहा हुआ और अन्य बाणके भावकी अपेक्षासे अलक्ष्योन्मुख है,

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

त्ववत् ४। अस्तित्वनास्तित्वनयेनायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तराल-वर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् क्रमतः स्वपरद्रव्यक्षेत्र-कालभावैरस्तित्वनास्तित्ववत् ५। अवक्तव्यनयेनायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुण-कार्मुकांतरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् युगपत्स्वपर-द्रव्यक्षेत्रकालभावैरवक्तव्यम् ६। अस्तित्वावक्तव्यनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थ-लक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहिता-

प्रमाणेन च परीक्षा क्रियते। तद्यथा–एतावत् शुद्धनिश्चयनयेन निरुपाधिस्फटिकवत्समस्तरागादि-विकल्पोपाधिरहितम्। तदेवाशुद्धनिश्चयनयेन सोपाधिस्फटिकवत्समस्तरागादिविकल्पोपाधिसहितम्। शुद्धसद्भूतव्यवहारनयेन शुद्धस्पर्शरसगंधवर्णानामाधारभूतपुद्गलपरमाणुवत्केवलज्ञानादिशुद्धगुणानामाधार-

उसीप्रकार आत्मा नास्तित्वनयसे परचतुष्टयसे नास्तित्ववाला है।) ४.

आत्मद्रव्य अस्तित्वनास्तित्वनयसे क्रमशः स्वपरद्रव्य–क्षेत्र–काल–भावसे अस्तित्व–नास्तित्ववाला है; —लोहमय तथा अलोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित तथा डोरी और धनुषके मध्यमें नहीं स्थित, संधान अवस्थामें रहे हुए तथा संधान अवस्थामें न रहे हुए और लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहलेके बाणकी भाँति। (जैसे पहलेका बाण क्रमशः स्वचतुष्टयकी तथा परचतुष्टयकी अपेक्षासे लोहमयादि और अलोहमयादि है, उसीप्रकार आत्मा अस्तित्व–नास्तित्वनयसे क्रमशः स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी अपेक्षासे अस्तित्ववाला और नास्तित्ववाला है।) ५.

आत्मद्रव्य अव्यक्तव्यनयसे युगपत् स्वपरद्रव्य–क्षेत्र–काल–भावसे अवक्तव्य है; — लोहमय तथा अलोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित तथा डोरी और धनुषके मध्यमें नहीं स्थित, संधान अवस्थामें रहे हुए तथा संधान अवस्थामें न रहे हुए और लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहलेकी बाणकी भाँति। (जैसे पहलेका बाण युगपत् स्वचतुष्टयकी और परचतुष्टयकी अपेक्षासे युगपत् लोहमयादि तथा अलोहमयादि होनेसे अवक्तव्य है, उसीप्रकार आत्मा अवक्तव्यनयसे युगपत् स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है।) ६.

आत्मद्रव्य अस्तित्व–अवक्तव्य नयसे स्वद्रव्य–क्षेत्र–काल–भावसे तथा युगपत् स्वपरद्रव्य–क्षेत्र–काल–भावसे अस्तित्ववाला–अवक्तव्य है; (–स्वचतुष्टयसे) लोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित, संधान अवस्थामें रहे हुए और लक्ष्योन्मुख ऐसे तथा (युगपत् स्व-परचतुष्टसे) लोहमय तथा अलोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित तथा डोरी और धनुषके मध्यमें नहीं स्थित, संधान अवस्थाएं रहे हुए तथा संधान अवस्थामें रहे हुए और लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहलेके बाणकी भाँति। [जैसे पहलेका बाण (१) स्वचतुष्टयसे तथा (२) एक ही साथ स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षासे (१) लोहमयादि तथा (२) अवक्तव्य है,

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

वस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकाल-भावैश्चास्तित्ववदवक्तव्यम् ७। नास्तित्वावक्तव्यनयेनानयोमयागुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहिता-वस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहिता-वस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकाल-भावैश्च नास्तित्ववदवक्तव्यम् ८। अस्तित्वनास्तित्वावक्तव्यनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तराल-वर्तिसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखानयोमयागुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयो-

भूतम्। तदेवाशुद्धसद्भूतव्यवहारनयेनाशुद्धस्पर्शरसगन्धवर्णानामाधारभूतव्यणुकादिस्कन्धवन्मतिज्ञानादि-विभावगुणानामाधारभूतम्। अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन व्यणुकादिस्कन्धेषु संश्लेशबन्धस्थित-

उसीप्रकार आत्मा अस्तित्वअवक्तव्यनयसे (१) स्वचतुष्टयकी तथा (२) युगपत् स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षासे (१) अस्तित्ववाला तथा (२) अवक्तव्य है।] ७.

आत्मद्रव्य नास्तित्व–अवक्तव्यनयसे परद्रव्य–क्षेत्र–काल भावसे तथा युगपत् स्वपरद्रव्य–क्षेत्र–काल–भावसे नास्तित्ववाला–अवक्तव्य है; —(परचतुष्टयसे) अलोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें नहीं स्थित, संधान अवस्थामें रहे हुए और अलक्ष्योन्मुख ऐसे तथा (युगपत् स्वपरचतुष्टयसे) लोहमय तथा अलोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित तथा डोरी और धनुषके मध्यमें नहीं स्थित, संधान अवस्थामें रहे हुए तथा संधान अवस्थामें न रहे हुए और लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहलेके बाणकी भाँति। [जैसे पहलेका बाण (१) परचतुष्टयकी तथा (२) एक ही साथ स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षासे (१) अलोहमयादि तथा (२) अवक्तव्य है, उसीप्रकार आत्मा नास्तित्व–अवक्तव्यनयसे (१) परचतुष्टयकी तथा (२) युगपत् स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षासे (१) नास्तित्ववाला तथा (२) अवक्तव्य है।] ८.

आत्मद्रव्य अस्तित्व–नास्तित्व–अवक्तव्यनयसे स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावसे, परद्रव्यक्षेत्र–काल–भावसे तथा युगपत् स्वपरद्रव्य–क्षेत्र–काल–भावसे अस्तित्ववाला–नास्तित्ववाला अवक्तव्य है; —(स्वचतुष्टयसे) लोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें स्थित, संधान अवस्थामें रहे हुए और लक्ष्योन्मुख ऐसे, –(परचतुष्टयसे) अलोहमय, डोरी और धनुषके मध्यमें नहीं स्थित, संधान अवस्थामें न रहे हुए और अलक्ष्योन्मुख ऐसे तथा (युगपत् स्वपरचतुष्टयसे) लोहमय तथा अलोहमय, डोरो और धनुषके मध्यमें स्थित तथा प्रत्यञ्चा और धनुषके मध्यमें नहीं स्थित, संधान अवस्थामें रहे हुए तथा संधान अवस्थामें न रहे हुए और लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहलेके बाणकी भाँति। [जैसे पहलेका बाण (१) स्वचतुष्टयकी, (२) परचतुष्टयकी तथा (३) युगपत् स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षासे (१) लोहमय, (२) अलोहमय तथा (३) अवक्तव्य है, उसीप्रकार आत्मा अस्तित्व–नास्तित्व–अवक्तव्यनयसे (१) स्वचतुष्टयकी, (२) परचतुष्टयकी तथा (३) युगपत् स्व–परचतुष्टयकी

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

मयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुख-प्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चास्ति-त्वनास्तित्ववदवक्तव्यम् ९। विकल्पनयेन शिशुकुमारस्थविरैकपुरुषवत् सविकल्पम् १०। अविकल्पनयेनैकपुरुषमात्रवदविकल्पम् ११। नामनयेन तदात्मवत् शब्दब्रह्मामर्शि १२। स्थापनानयेन मूर्तित्ववत् सकलपुद्गलालम्बि १३। द्रव्यनयेन माणवकश्रेष्ठिश्रमणपार्थिव-वदनागतातीतपर्यायोद्भासि १४। भावनयेन पुरुषायितप्रवृत्तयोषिद्वत्तदात्वपर्यायोल्लासि १५।

पुद्गलपरमाणुवत्परमौदारिकशरीरे वीतरागसर्वज्ञवद्वा विवक्षितैकदेहस्थितम्। उपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन काष्ठासनाद्युपविष्टदेवदत्तवत्समवसरणस्थितवीतरागसर्वज्ञवद्वा विवक्षितैकग्रामगृहादिस्थितम्। इत्यादि परस्परसापेक्षानेकनयैः प्रमीयमाणं व्यवह्रियमाणं क्रमेण मेचकस्वभावविवक्षितैकधर्मव्यापकत्वादेक-

---

अपेक्षासे (१) अस्तित्ववाला, (२) नास्तित्ववाला तथा (३) अवक्तव्य है।] ९.

आत्मद्रव्य विकल्पनयसे, बालक, कुमार और वृद्ध ऐसे एक पुरुषकी भाँति, सविकल्प है (अर्थात् आत्मा भेदनयसे, भेदसहित है, जैसे कि एक पुरुष बालक, कुमार और वृद्ध ऐसे भेदवाला है।) १०.

आत्मद्रव्य अविकल्पनयसे, एक पुरुषमात्रकी भाँति, अविकल्प है (अर्थात् अभेदनयसे आत्मा अभेद है, जैसे कि एक पुरुष बालक, कुमार और वृद्ध ऐसे भेदरहित एक पुरुषमात्र है।) ११.

आत्मद्रव्य नामनयसे, नामवालेकी भाँति, शब्दब्रह्मको स्पर्श करनेवाला है (अर्थात् आत्मा नामनयसे शब्दब्रह्मसे कहा जाता है, जैसे कि नामवाला पदार्थ उसके नामरूप शब्दसे कहा जाता है।) १२.

आत्मद्रव्य स्थापनानयसे, मूर्तिपनेकी भाँति, सर्व पुद्गलोंका अवलम्बन करनेवाला है (अर्थात् स्थापनानयसे आत्मद्रव्यकी पौद्गलिक स्थापना की जा सकती है, मूर्तिकी भाँति) १३.

आत्मद्रव्य द्रव्यनयसे बालक सेठकी भाँति और श्रमण राजाकी भाँति, अनागत और अतीत पर्यायसे प्रतिभासित होता है (अर्थात् आत्मा द्रव्यनयसे भावी और भूत पर्यायरूपसे ख्यालमें आता है, जैसे कि बालक सेठपने स्वरूप भावी पर्यायरूपसे ख्यालमें आता है और मुनि राजास्वरूप भूतपर्यायरूपसे आता है।) १४.

आत्मद्रव्य भावनयसे, पुरुषके समान प्रवर्तमान स्त्रीकी भाँति, तत्काल (वर्तमान) की पर्यायरूपसे उल्लसित–प्रकाशित–प्रतिभासित होता है (अर्थात् आत्मा भावनयसे वर्तमान पर्यायरूपसे प्रकाशित होता है, जैसे कि पुरुषके समान प्रवर्तमान स्त्री पुरुषत्वरूपपर्यायरूपसे प्रतिभासित होती है।) १५.

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सामान्यनयेन हारस्रग्दामसूत्रवद्व्यापि १६। विशेषनयेन तदेकमुक्ताफलवदव्यापि १७। नित्यनयेन नटवदवस्थायि १८। अनित्यनयेन रामरावणवदनवस्थायि १९। सर्वगतनयेन विस्फारिताक्षचक्षुर्वत्सर्ववर्ति २०। असर्वगतनयेन मीलिताक्षचक्षुर्वदात्मवर्ति २१। शून्यनयेन शून्यागारवत्केवलोद्भासि २२। अशून्यनयेन लोकाक्रान्तनौवन्मिलितोद्भासि २३। ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयेन महदिन्धनभारपरिणतधूमकेतुवदेकम् २४। ज्ञानज्ञेयद्वैतनयेन परप्रतिबिम्बसम्पृक्त-

---

स्वभावं भवति। तदेव जीवद्रव्यं प्रमाणेन प्रमीयमाणं मेचकस्वभावानामनेकधर्माणां युगपद्व्यापकत्वाच्चित्रपटवदनेकस्वभावं भवति। एवं नयप्रमाणाभ्यां तत्त्वविचारकाले योऽसौ परमात्मद्रव्यं जानाति स

आत्मद्रव्य सामान्यनयसे, हार–माला–कंठीके डोरेकी भाँति, व्यापक है, (अर्थात् आत्मा सामान्यनयसे सर्व पर्यायोंमें व्याप्त रहता है, जैसे मोतीकी मालाका डोरा सारे मोतियोंमें व्याप्त होता है।) १६.

आत्मद्रव्य विशेषनयसे, उसके एक मोतीकी भाँति, अव्यापक है (अर्थात् आत्मा विशेषनयसे अव्यापक है, जैसे पूर्वोक्त मालाका एक मोती सारी मालामें अव्यापक है।) १७.

आत्मद्रव्य नित्यनयसे, नटकी भाँति, अवस्थायी है (अर्थात् आत्मा नित्यनयसे नित्य–स्थायी है, जैसे राम–रावणरूप अनेक अनित्य स्वांग धारण करता हुआ भी नट तो वहका वही नित्य है।) १८.

आत्मद्रव्य अनित्यनयसे, राम–रावणकी भाँति, अनवस्थायी है (अर्थात् आत्मा अनित्यनयसे अनित्य है, जैसे नटके द्वारा धारण किये गये राम–रावणरूप स्वांग अनित्य है।) १९.

आत्मद्रव्य सर्वगतनयसे, खुली हुई आँखकी भाँति, सर्ववर्ती (सबमें व्याप्त होनेवाला) है। २०.

आत्मद्रव्य असर्वगतनयसे, मींची हुई (बन्द) आँखकी भाँति, आत्मवर्ती (अपनेमें रहनेवाला) है। २१.

आत्मद्रव्य शून्यनयसे, शून्य (खाली) घरकी भाँति, एकाकी (अमिलित) भासित होता है। २२.

आत्मद्रव्य अशून्यनयसे, लोगोंसे भरे हुए जहाजकी भाँति, मिलित भासित होता है। २३.

आत्मद्रव्य ज्ञानज्ञेय–अद्वैतनयसे (ज्ञान और ज्ञेयके अद्वैतरूप नयसे), महान ईंधनसमूहरूप परिणत अग्निकी भाँति, एक है। २४.

आत्मद्रव्य ज्ञानज्ञेयद्वैतनयसे, परके प्रतिबिंबोंसे संपृक्त दर्पणकी भाँति, अनेक है (अर्थात् आत्मा ज्ञान और ज्ञेयके द्वैतरूपनयसे अनेक है, जैसे पर–प्रतिबिम्बोंके संगवाला दर्पण अनेकरूप है।) २५.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

दर्पणवदनेकम् २५। नियतिनयेन नियतिनियमितौष्ण्यवह्निवन्नियतस्वभावभासि २६। अनियतिनयेन नियत्यनियमितौष्ण्यपानीयवदनियतस्वभावभासि २७। स्वभावनयेनानिशित-तीक्ष्णकण्टकवत्संस्कारानर्थक्यकारि २८। अस्वभावनयेनायस्कारनिशिततीक्ष्णविशिखवत्संस्कार-सार्थक्य-कारि २९। कालनयेन निदाघदिवसानुसारिपच्यमानसहकारफलवत्समयायत्तसिद्धिः ३०। अकालनयेन कृत्रिमोष्मपाच्यमानसहकारफलवत्समयानायत्तसिद्धिः ३१। पुरुषकारनयेन

निर्विकल्पसमाधिप्रस्तावे निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेनापि जानातीति।। पुनरप्याह शिष्यः—ज्ञातमेवात्म-द्रव्यं हे भगवन्निदानीं तस्य प्रा प्त्युपायः कथ्यताम्। भगवानाह—सकलविमलकेवलज्ञान-

आत्मद्रव्य नियतिनयसे नियतस्वभावरूप भासित होता है, जिसकी उष्णता नियमित (-नियत) होती है ऐसी अग्निकी भाँति। [आत्मा नियतिनयसे नियतस्वभाववाला भासित होता है जैसे अग्निके उष्णताका नियम होनेसे अग्नि नियतस्वभाववाली भासित होती है।] २६.

आत्मद्रव्य अनियतनयसे अनियतस्वभावरूप भासित होता है, जिसके उष्णता नियति (-नियम) से नियमित नहीं है ऐसे पानीके भाँति। [आत्मा अनियतिनयसे अनियतस्वभाववाला भासित होता है, जैसे पानीके (अग्निके निमित्तसे होनेवाली) उष्णता अनियत–होनेसे पानी अनियतस्वभाववाला भासित होता है।] २७.

आत्मद्रव्य स्वभावनयसे संस्कारको निरर्थक करनेवाला है (अर्थात् आत्माको स्वभावनयसे संस्कार निरुपयोगी है), जिसकी किसीके नोक नहीं निकाली जाती (किन्तु जो स्वभावसे ही नुकीला है) ऐसे पैने काँटेकी भाँति। २८.

आत्मद्रव्य अस्वभावनयसे संस्कारको सार्थक करनेवाला (अर्थात् आत्माको अस्वभावनयसे संस्कार उपयोगी है), जिसकी (स्वभावसे नोक नहीं होती, किन्तु संस्कार करके लुहारके द्वारा नोक निकाली गई हो ऐसे पैने बाणकी भाँति।) २९.

आत्मद्रव्य कालनयसे जिसकी सिद्धि समयपर आधार रखती है ऐसा है, गर्मीके दिनोंके अनुसार पकनेवाले आम्रफलकी भाँति। [कालनयसे आत्मद्रव्यकी सिद्धि समय पर आधार रखती है, गर्मीके दिनोंके अनुसार पकनेवाले आमकी भाँति।] ३०.

आत्मद्रव्य अकालनयसे जिसकी सिद्धि समयपर आधार नहीं रखती ऐसा है, कृत्रिम गर्मीसे पकाये गये आम्रफलकी भाँति। ३१.

आत्मद्रव्य पुरुषकारनयसे जिसकी सिद्धि यत्नसाध्य है ऐसा है, जिसे पुरुषकारसे [१]नीबूका वृक्ष प्राप्त होता है (–उगता है) ऐसे पुरुषकारवादीकी भाँति। [पुरुषार्थनयसे आत्माकी सिद्धि

१. संस्कृत टीकामें 'मधुकुक्कटी' शब्द है, जिसका अर्थ यहाँ 'नीबूका वृक्ष' किया है; किन्तु हिन्दी टीकामें श्री पांडे हेमराजजीने 'मधुछत्ता' अर्थ किया है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

पुरुषकारोपलब्धमधुकुक्कुटीकपुरुषकारवादिवद्यत्नसाध्यसिद्धिः ३२। दैवनयेन पुरुषकारवादिदत्तमधुकुक्कुटीगर्भलब्धमाणिक्यदैववादिवदयत्नसाध्यसिद्धिः ३३। ईश्वरनयेन धात्रीहट्टावलेह्यमानपान्थबालकवत्पारतन्त्र्यभोक्तृ ३४। अनीश्वरनयेन स्वच्छन्ददारितकुरंगकण्ठीरववत्स्वातन्त्र्यभोक्तृ ३५। गुणिनयेनोपाध्यायविनीयमानकुमारकवद्गुणग्राहि ३६। अगुणिनयेनोपाध्यायविनीयमानकुमारकाध्यक्षवत् केवलमेव साक्षि ३७। कर्तृनयेन रंजकवद्रागादिपरिणामकर्तृ ३८। अकर्तृनयेन स्वकर्मप्रवृत्तरंजकाध्यक्षवत्केवलमेव साक्षि ३९। भोक्तृनयेन हिताहितान्नभोक्तृव्याधितवत् सुखदुःखादिभोक्तृ ४०। अभोक्तृनयेन हिताहितान्नभोक्तृ-

---

दर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाद्युपाधिरहितपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादानुभवमलभमानः सन् पूर्णमासीदिवसे जलकल्लोलक्षुभितसमुद्र

प्रयत्नसे होती है, जैसे किसी पुरुषार्थवादी मनुष्यको पुरुषार्थसे नीबूका वृक्ष प्राप्त होता है।] ३२.

आत्मद्रव्य दैवनयसे जिसकी सिद्धि अयत्नसाध्य है (–यत्न बिना होता है) ऐसा है; पुरुषकारवादी द्वारा प्रदत्त नीबूके वृक्षके भीतरसे जिसे (बिना यत्नके, दैवसे) माणिक प्राप्त हो जाता है ऐसे दैववादीकी भाँति। ३३.

आत्मद्रव्य ईश्वरनयसे परतंत्रता भोगनेवाला है, धायकी दुकान पर दूध पिलाये जानेवाले राहगीरके बालककी भाँति। ३४.

आत्मद्रव्य अनीश्वरनयसे स्वतंत्रता भोगनेवाला है, हिरनको स्वच्छन्दता (स्वतन्त्रता, स्वेच्छा) पूर्वक फाड़कर खा जानेवाले सिंहकी भाँति। ३५.

आत्मद्रव्य गुणीनयसे गुणग्राही है, शिक्षकके द्वारा जिसे शिक्षा दी जाती है ऐसे कुमारकी भाँति। ३६.

आत्मद्रव्य अगुणीनयसे केवल साक्षी ही है (–गुणग्राही नहीं है), जिसे शिक्षकके द्वारा शिक्षा दी जा रही है ऐसे कुमारको देखनेवाले पुरुष (–प्रेक्षक) की भाँति। ३७.

आत्मद्रव्य कर्तृनयसे, रंगरेजकी भाँति, रागादि परिणामका कर्ता है (अर्थात् आत्मा कर्तानयसे रागादिपरिणामोंका कर्ता है, जैसे रंगरेज रंगनेके कार्यका कर्ता है।) ३८.

आत्मद्रव्य अकर्तृनयसे केवल साक्षी ही है (–कर्ता नहीं), अपने कार्यमें प्रवृत्त रंगरेजको देखनेवाले पुरुष (–प्रेक्षक) की भाँति। ३९.

आत्मद्रव्य भोक्तृनयसे सुखदुःखादिका भोक्ता है, हितकारी–अहितकारी अन्नको खानेवाले रोगीकी भाँति। [आत्मा भोक्तानयसे सुखदुःखादिको भोगता है, जैसे हितकारक या अहितकारक अन्नको खानेवाला रोगी सुख या दुःखको भोगता है।] ४०.

आत्मद्रव्य अभोक्तृनयसे केवल साक्षी ही है, हितकारी–अहितकारी अन्नको खानेवाले

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

व्याधिताध्यक्षधन्वन्तरिचरवत् केवलमेव साक्षि ४१। क्रियानयेन स्थाणुभिन्नमूर्धजातदृष्टि-लब्धनिधानान्धवदनुष्ठानप्राधान्यसाध्यसिद्धिः ४२। ज्ञाननयेन चणकमुष्टिक्रीतचिन्तामणिगृह-कोणवाणिजवद् विवेकप्राधान्यसाध्यसिद्धिः ४३। व्यवहारनयेन बन्धकमोचकपरमाण्वन्तरसंयुज्य-मानवियुज्यमानपरमाणुवद् बन्धमोक्षयोर्द्वैतानुवर्ति ४४। निश्चयनयेन केवलबध्यमानमुच्यमान-बन्धमोक्षोचितस्निग्धरूक्षत्वगुणपरिणतपरमाणुवद्बन्धमोक्षयोरद्वैतानुवर्ति ४५। अशुद्धनयेन

इव रागद्वेषमोहकल्लोलैर्यावदस्वस्थरूपेण क्षोभं गच्छत्ययं जीवस्तावत्कालं निजशुद्धात्मानं न प्राप्नोति इति। स एव वीतरागसर्वज्ञप्रणीतोपदेशात् एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तमनुष्यदेशकुल-

रोगीको देखनेवाले वैद्यकी भाँति। [आत्मा अभोक्तानयसे केवल साक्षी ही है—भोक्ता नहीं; जैसे सुख–दुःखको भोगनेवाले रोगीको देखनेवाला वैद्य वह तो केवल साक्षी ही है।] ४१.

आत्मद्रव्य क्रियानयसे अनुष्ठानकी प्रधानतासे सिद्धि सधे ऐसा है, खम्भेसे सिर फूट जाने पर दृष्टि उत्पन्न होकर जिसे निधान प्राप्त हो जाय ऐसे अंधकी भाँति। [क्रियानयसे आत्मा अनुष्ठानकी प्रधानतासे सिद्धि हो ऐसा है; जैसे किसी अंधपुरुषको पत्थरके खम्भेके साथ सिर फोड़नेसे सिरके रक्तका विकार दूर होनेसे आँखे खुल जायें और निधान प्राप्त हो, उस प्रकार।] ४२.

आत्मद्रव्य ज्ञाननयसे विवेककी प्रधानतासे सिद्धि सधे ऐसा है; मुट्ठीभर चने देकर चिंतामणि–रत्न खरीदनेवाले घरके कोनेमें बैठे हुए व्यापारीकी भाँति। [ज्ञाननयसे आत्माको विवेककी प्रधानतासे सिद्धि होती है, जैसे घरके कोनेमें बैठा हुआ व्यापारी मुट्ठीभर चना देकर चिंतामणि–रत्न खरीद लेता है, उस प्रकार।] ४३.

आत्मद्रव्य व्यवहारनयसे बंध और मोक्षमें [१]द्वैतका अनुसरण करनेवाला बंधक है, (बंध करनेवाले) और मोचक (मुक्त करनेवाले) ऐसे अन्य परमाणुके साथ संयुक्त होनेवाले और उससे वियुक्त होनेवाले परमाणुकी भाँति। [व्यवहारनयसे आत्मा बंध और मोक्षमें (पुद्गलके साथ) द्वैतको प्राप्त होता है, जैसे परमाणुके बंधमें वह परमाणु अन्य परमाणुके साथ संयोगको पानेरूप द्वैतको प्राप्त होता है और परमाणुके मोक्षमें वह परमाणु अन्य परमाणुसे पृथक् होनेरूप द्वैतको पाता है, उस प्रकार।] ४४.

आत्मद्रव्य निश्चयनयसे बंध और मोक्षमें अद्वैतका अनुसरण करनेवाला है, अकेले बध्यमान और मुच्यमान ऐसे बंधमोक्षोचित्त स्निग्धत्वरूक्षत्वगुणरूप परिणत परमाणुकी भाँति। [निश्चयनयसे आत्मा अकेला ही बद्ध और मुक्त होता है, जैसे बंध और मोक्षके योग्य स्निग्ध या रूक्षत्वगुणरूप परिणमित होता हुआ परमाणु अकेला ही बद्ध और मुक्त होता है, उस प्रकार।] ४५.

आत्मद्रव्य अशुद्धनयसे, घट और रामपात्रसे विशिष्ट मिट्टी मात्रकी भाँति,

१. द्वैत = द्वित्व, द्वैतपन, [व्यवहारनयसे आत्माके बन्धमें कर्मके साथके संयोगकी अपेक्षा आती है इसलिये द्वैत है और आत्माकी मुक्तिमें कर्मके वियोगकी अपेक्षा आती है इसलिये वहाँ भी द्वैत है।]

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

घटशराव-विशिष्टमृण्मात्रवत्सोपाधिस्वभावम् ४६। शुद्धनयेन केवलमृण्मात्रवन्निरुपाधिस्वभावम् ४७। तदुक्तम्—''जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा। जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया॥'' ''परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा। जइणाणं पुण वयणं सम्मं खु कहंचि वयणादो॥'' एवमनया दिशा प्रत्येकमनन्त-धर्मव्यापकानन्तनयैर्निरूप्यमाणमुदन्वदन्तरालमिलद्धवलनीलगांगयामुनोदकभारवदनन्तधर्माणां परस्परमतद्भावमात्रेणाशक्यविवेचनत्वादमेचकस्वभावैकधर्मव्यापकैकधर्मित्वाद्यथोदितैकान्तात्मा-

रूपेन्द्रियपटुत्वनिर्व्याध्यायुष्यवरबुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसंयमविषयसुखनिवर्तनक्रोधादिकषायव्यावर्तनादिपरंपरादुर्लभान्यपि कथंचित्काकतालीयन्यायेनावाप्य सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वभावनिज-

सोपाधिस्वभाववाला है। ४६.

आत्मद्रव्य शुद्धनयसे, केवल मिट्टी मात्रकी भाँति, निरुपाधिस्वभाववाला है। ४७.

इसलिये कहा है :—

जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा।
जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया॥
परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा।
जइणाणं पुण वयणं सम्मं खु कहंचि वयणादो॥

[**अर्थ** :—जितने [१]वचनपंथ हैं उतने वास्तवमें नयवाद हैं; और जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय (पर मत) हैं।

परसमयों (मिथ्यामतियों) का वचन सर्वथा (अर्थात् अपेक्षा बिना) कहा जानेके कारण वास्तवमें मिथ्या है; और जैनोंका वचन कथंचित् (अर्थात् अपेक्षा सहित) कहा जाता है इसलिये वास्तवमें सम्यक् है।]

इसप्रकार इस (उपरोक्त) सूचनानुसार (अर्थात् ४७ नयोंमें समझाया है उस विधिसे) एक-एक धर्ममें एक-एक नय (व्यापे), इसप्रकार अनन्त धर्मोंमें व्यापक अनन्त नयोंसे निरूपण किया जाय तो, समुद्रके भीतर मिलनेवाले [२]श्वेत-नील गंगा-यमुनाके जलसमूहकी भाँति, अनन्तधर्मोंको परस्पर अतद्भावमात्रसे पृथक् करनेमें अशक्य होनेसे, आत्मद्रव्य [३]अमेचक स्वभाववाला, एक धर्ममें व्याप्त होनेवाला, एक धर्मी होनेसे यथोक्त एकान्तात्मक (एकधर्मस्वरूप) है। परन्तु युगपत् अनन्तधर्मोंमें व्यापक ऐसे अनन्त नयोंमें व्याप्त होनेवाला

१. वचनपंथ = वचनके प्रकार [जितने वचनके प्रकार हैं उतने नय हैं। अपेक्षा सहित नय वे सम्यक् नय है और अपेक्षा रहित नय वे मिथ्यानय हैं; इसलिये जितने सम्यक् नय हैं उतने ही मिथ्यानय हैं।]

२. गंगाका पानी श्वेत होता है और यमुनाका पानी नील होता है।

३. अमेचक = अभेद; विविधता रहित; एक।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

त्मद्रव्यम्। युगपदनन्तधर्मव्यापकानन्तनयव्याप्येकश्रुतज्ञानलक्षणप्रमाणेन निरूप्यमाणं तु समस्ततरंगिणीपयःपूरसमवायात्मकैकमकराकरवदनन्तधर्माणां वस्तुत्वेनाशक्यविवेचनत्वान्मेचकस्वभावानन्तधर्मव्याप्येकधर्मित्वाद् यथोदितानेकान्तात्मात्मद्रव्यम्।

***स्यात्कारश्रीवासवश्यैर्नयौघैः**
पश्यन्तीत्थं चेत् प्रमाणेन चापि।
पश्यन्त्येव प्रस्फुटानन्तधर्म-
स्वात्मद्रव्यं शुद्धचिन्मात्रमन्तः ॥१६॥

इत्यभिहितमात्मद्रव्यम् इदानीमेतदवाप्तिप्रकारोऽभिधीयते—अस्य तावदात्मनो नित्यमेवानादिपौद्गलिककर्मनिमित्तमोहभावनानुभावघूर्णितात्मवृत्तितया तोयाकरस्येवात्मन्येव क्षुभ्यतः

परमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाद्युपाधिरहितपरमानन्दैक-

एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाणसे निरूपण किया जाय तो, समस्तनदियोंके जलसमूहके समवायात्मक (समुदायस्वरूप) एक समुद्रकी भाँति, अनन्त धर्मोंको वस्तुरूपसे पृथक् करना अशक्य होनेसे आत्मद्रव्य [१]मेचकस्वभाववाला, अनन्त धर्मोंमें व्याप्त होनेवाला, एक धर्मी होनेसे यथोक्त अनेकान्तात्मक (अनेक धर्मस्वरूप) है। [जैसे–एक समय नदीके जलको जाननेवाले ज्ञानांशसे देखा जाय तो समुद्र एक नदीके जलस्वरूपज्ञात होता है, उसीप्रकार एक समय एक धर्मको जाननेवाले एक नयसे देखा जाय तो आत्मा एक धर्म स्वरूप ज्ञात होता है; परन्तु जैसे एक ही साथ सर्व नदियोंके जलको जाननेवाले ज्ञानसे देखा जाय तो समुद्र सर्व नदियोंके जलस्वरूप ज्ञात होता है, उसीप्रकार एक ही साथ सर्वधर्मोंको जाननेवाले प्रमाणसे देखा जाय तो आत्मा अनेक धर्मस्वरूप ज्ञात होता है। इसप्रकार एक नयसे देखने पर आत्मा एकान्तात्मक है और प्रमाणसे देखने पर अनेकान्तात्मक है।]

अब इसी आशयको काव्य द्वारा कहकर "आत्मा कैसा है" इस विषय का कथन समाप्त किया जाता है :]

[**अर्थ** :—] इसप्रकार स्यात्कारश्री (स्यात्काररूपी लक्ष्मी) के निवासके वशीभूत वर्तते नयसमूहोंसे (जीव) देखें तो भी और प्रमाणसे देखें तो भी स्पष्ट अनन्त धर्मोंवाले निज आत्मद्रव्यको भीतरमें शुद्ध चैतन्यमात्र देखते ही हैं।

इसप्रकार आत्मद्रव्य कहा गया। अब उसकी प्राप्तिका प्रकार कहा जाता है :—

प्रथम तो, अनादि पौद्गलिक कर्म जिसका निमित्त है ऐसी मोहभावनाके (मोहके अनुभवके) प्रभावसे आत्मपरिणति सदा चक्कर खाती है, इसलिये यह आत्मा समुद्रकी भाँति

★ शालिनी छंद १. मेचक = पृथक् पृथक्; विविध; अनेक।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

क्रमप्रवृत्ताभिरनन्ताभिर्ज्ञप्तिव्यक्तिभिः परिवर्तमानस्य ज्ञप्तिव्यक्तिनिमित्ततया ज्ञेयभूतासु बहिरर्थव्यक्तिषु प्रवृत्तमैत्रीकस्य शिथिलितात्मविवेकतयात्यन्तबहिर्मुखस्य पुनः पौद्गलिककर्म-निर्मापकरागद्वेषद्वैतमनुवर्तमानस्य दूरत एवात्मावाप्तिः। अथ यदा त्वयमेव प्रचण्डकर्म-काण्डोच्चण्डीकृताखण्डज्ञानकाण्डत्वेनानादिपौद्गलिककर्मनिर्मितस्य मोहस्य वध्यघातकविभाग-ज्ञानपूर्वकविभागकरणात् केवलात्मभावानुभावनिश्चलीकृतवृत्तितया तोयाकर इवात्मन्येवाति-निष्प्रकम्पस्तिष्ठन् युगपदेव व्याप्यानन्ता ज्ञप्तिव्यक्तीरवकाशाभावान्न जातु विवर्तते, तदास्य ज्ञप्तिव्यक्तिनिमित्ततया ज्ञेयभूतासु बहिरर्थव्यक्तिषु न नाम मैत्री प्रवर्तते; ततः सुप्रतिष्ठितात्मविवेकतयात्यन्तमन्तर्मुखीभूतः पौद्गलिककर्मनिर्मापकरागद्वेषद्वैतानुवृत्तिदूरीभूतो दूरत एवाननुभूतपूर्वमपूर्वज्ञानानन्दस्वभावं भगवन्तमात्मानमवाप्नोति। अवाप्नोत्येव ज्ञानानन्दात्मानं जगदपि परमात्मानमिति।

लक्षणसुखामृतरसास्वादानुभवलाभे सत्यमावास्या दिवसे जलकल्लोलक्षोभरहितसमुद्र इव रागद्वेष-मोहकल्लोलक्षोभरहितप्रस्तावे यदा निजशुद्धात्मस्वरूपे स्थिरो भवति तदा तदैव निजशुद्धात्मस्वरूपं प्राप्नोति।।

अपनेमें ही क्षुब्ध होता हुआ क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त [१]ज्ञप्तिव्यक्तियोंसे परिवर्तनको प्राप्त होता है, इसलिये ज्ञप्तिव्यक्तियोंके निमित्तरूप होनेसे जो ज्ञेयभूत हैं ऐसी बाह्यपदार्थव्यक्तियोंके प्रति उसकी मैत्री प्रवर्तती है, इसलिये आत्मविवेक शिथिल हुआ होनेसे अत्यन्त बहिर्मुख ऐसा वह पुनः पौद्गलिक कर्मके रचयिता रागद्वेषद्वैतरूप परिणमित होता है और इसलिये उसके आत्मप्राप्ति दूर ही है। परन्तु अब जब यही आत्मा प्रचण्ड कर्मकाण्ड द्वारा अखण्ड ज्ञानकांडको प्रचंड करनेसे अनादि-पौद्गलिक-कर्मरचित मोहको [२]वध्य-घातकके विभागज्ञानपूर्वक विभक्त करनेसे (स्वयं) केवल आत्मभावनाके [आत्मानुभवके] प्रभावसे परिणति निश्चलकी होनेसे समुद्रकी भाँति अपनेमें ही अति निष्कंप रहता हुआ एक साथ ही अनन्त ज्ञप्तिव्यक्तियोंमें व्याप्त होकर अवकाशके अभावके कारण सर्वथा विवर्तन [परिवर्तन] को प्राप्त नहीं होता, तब ज्ञप्तिव्यक्तियोंके निमित्तरूप होनेसे जो ज्ञेयभूत हैं ऐसी बाह्यपदार्थव्यक्तियोंके प्रति उसे वास्तवमें मैत्री नहीं प्रवर्तती और इसलिये आत्मविवेक सुप्रतिष्ठित [सुस्थित] हुआ होनेके कारण अत्यन्त अन्तर्मुख हुआ ऐसा यह आत्मा पौद्गलिक कर्मोंके रचयिता रागद्वेषद्वैतरूप परिणतिसे दूर होता हुआ पूर्वमें अनुभव नहीं किये गये अपूर्व ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान् आत्माको आत्यंतिक रूपसे ही प्राप्त करता है। जगत भी ज्ञानानन्दात्मक परमात्माको अवश्य प्राप्त करो।

---

१. व्यक्तियों = प्रगटताओं; पर्यायों; विशेषों। [बाह्यपदार्थविशेष ज्ञप्तिविशेषोंके निमित्त होनेसे ज्ञेयभूत हैं।]

२. आत्मा वध्य (हनन योग्य) है और मोह घातक (हननेवाला) है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

भवति चात्र श्लोकः—

*आनन्दामृतपूरनिर्भरवहत्कैवल्यकल्लोलिनी-
निर्मग्नं जगदीक्षणक्षममहासंवेदनश्रीमुखम्।
स्यात्कारांकजिनेशशासनवशादासादयन्तूल्लसत्
स्वं तत्त्वं वृतजात्यरत्नकिरणप्रस्पष्टमिष्टं जनाः॥२०॥

*व्याख्येयं किल विश्वमात्मसहितं व्याख्या तु गुम्फो गिरां
व्याख्यातामृतचन्द्रसूरिरिति मा मोहाज्जनो वल्गतु।
वल्गत्वद्य विशुद्धबोधकलया स्याद्वादविद्याबलाद्
लब्ध्वैकं सकलात्मशाश्वतमिदं स्वं तत्त्वमव्याकुलः॥२१॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ एवं पूर्वोक्तक्रमेण 'एस सुरासुर' इत्याद्येकोत्तरशत-गाथापर्यन्तं सम्यग्ज्ञानाधिकारः, तदनन्तरं 'तम्हा तस्स णमाइं' इत्यादि त्रयोदशोत्तरशतगाथापर्यन्तं

यहाँ श्लोक भी है :—

[अर्थ :—] आनन्दामृतके पूरसे भरपूर बहती हुई कैवल्यसरितामें (मुक्तिरूपीनदीमें) जो डूबा हुआ है, जगतको देखनेमें समर्थ ऐसी महासंवेदनरूपी श्री (महाज्ञानरूपी लक्ष्मी) जिसमें मुख्य है, जो उत्तम रत्न-किरणकी भाँति स्पष्ट है और जो इष्ट है ऐसे उल्लसित (प्रकाशमान, आनन्दमय) स्वतत्त्वको जन स्यात्कारलक्षण जिनेश शासनके वशसे प्राप्त हों। (-'स्यात्कार' जिसका चिह्न है ऐसे जिनेन्द्रभगवानके शासनका आश्रय लेकरके प्राप्त करो।)

[अब, 'अमृतचन्द्रसूरि इस टीकाके रचयिता हैं' ऐसा मानना योग्य नहीं है ऐसे अर्थवाले काव्य द्वारा यथार्थ वस्तुस्वरूपको प्रगट करके स्वतत्त्वप्राप्तिकी प्रेरणा की जाती है :—]

[अर्थ :—] (वास्तवमें पुद्गल ही स्वयं शब्दरूप परिणमित होते हैं, आत्मा उन्हें परिणमित नहीं कर सकता, तथा वास्तवमें सर्व पदार्थ ही स्वयं ज्ञेयरूप-प्रमेयरूप परिणमित होते हैं, शब्द उन्हें ज्ञेय बना-समझा नहीं सकते इसलिये) 'आत्मा सहित विश्व वह व्याख्येय (समझाने योग्य) है, वाणीका गुंथन वह व्याख्या है और अमृतचन्द्रसूरि वे व्याख्याता हैं, इसप्रकार जन मोहसे मत नाचो (-मत फूलो) (किन्तु) स्याद्वादविद्याबलसे विशुद्ध ज्ञानकी कला द्वारा इस एक समस्त शाश्वत स्वतत्त्वको प्राप्त करके आज [जन] अव्याकुलरूपसे नाचो (-परमानन्दपरिणामरूप परिणत होओ।]

[अब काव्य द्वारा चैतन्यकी महिमा गाकर, वही एक अनुभव करने योग्य है ऐसी प्रेरणा करके, इस परम पवित्र परमागमकी पूर्णाहुति की जाती है :—]

★ शार्दूलविक्रीडित छंद

*इति गदितमनीचैस्तत्त्वमुच्चावचं यत्
चिति तदपि किलाभूत्कल्पमग्नौ हुतस्य।
अनुभवतु तदुच्चैश्चिच्चिदेवाद्य यस्माद्
अपरमिह न किंचित्तत्त्वमेकं परं चित्॥२२॥

समाप्तेयं तत्त्वदीपिका वृत्तिः।

❀ ❀ ❀

ज्ञेयाधिकारापरनामा सम्यक्त्वाधिकारः, तदनन्तरं 'एवं पणमिय सिद्धे' इत्यादि सप्तनवतिगाथापर्यन्तं चारित्राधिकारश्चेति महाधिकारत्रयेणैकादशाधिकत्रिशतगाथाभिः प्रवचनसाराभृतं समाप्तम्॥

समाप्तेयं तात्पर्यवृत्तिः प्रवचनसारस्य।

[अर्थ :—] इसप्रकार [इस परमागममें] अमन्दरूपसे [बलपूर्वक, जोरशोरसे] जो थोड़ा–बहुत तत्त्व कहा गया है, वह सब चैतन्यमें वास्तवमें अग्निमें होमी गई वस्तुके समान [स्वाहा] हो गया है। [अग्निमें होमे गये घीको अग्नि खा जाती है, मानो कुछ होमा ही न गया हो ! इसीप्रकार अनन्त माहात्म्यवन्त चैतन्यका चाहे जितना वर्णन किया जाय तथापि मानो उस समस्त वर्णनको अनन्त महिमावान चैतन्य खा जाता है; चैतन्यकी अनन्त महिमाके निकट सारा वर्णन मानो वर्णन ही न हुआ हो इस प्रकार तुच्छताको प्राप्त होता है।] उस चैतन्यको ही चैतन्य आज प्रबलता–उग्रतासे अनुभव करो (अर्थात् उस चित्स्वरूप आत्माको ही आत्मा आज अत्यन्त अनुभवो] क्योंकि इस लोकमें दूसरा कुछ भी [उत्तम] नहीं है, चैतन्य ही परम [उत्तम] तत्त्व है।

इस प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री प्रवचनसार शास्त्रकी श्रीमद्-अमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित) **तत्त्वदीपिका** नामक संस्कृत टीकाके श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह कृत गुजराती अनुवादका हिन्दी रूपान्तर समाप्त हुआ।

---

* मालिनी छंद.

साधक जीवकी दृष्टि

अध्यात्ममें सदा निश्चयनय ही प्रधान है, उसीके आश्रयसे धर्म होता है। शास्त्रोंमें जहाँ विकारी पर्यायोंका व्यवहारनयसे कथन किया जावे वहाँ भी निश्चयनय को ही मुख्य और व्यवहारनयको गौण करनेका आशय है ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि पुरुषार्थके द्वारा अपनेमें शुद्ध पर्यायको प्रगट करने अर्थात् विकारी पर्यायको टालनेके लिये सदा निश्चयनय ही आदरणीय है। उस समय दोनों नयोंका ज्ञान होता है, किन्तु धर्मको प्रगट करनेके लिये दृष्टिमें दोनों नय कदापि आदरणीय नहीं हैं। व्यवहारनयके आश्रयसे कभी आंशिक धर्म भी नहीं होता, प्रत्युत उसके आश्रयसे रागद्वेषके विकल्प ही उठा करते हैं।

छहों द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्यायोंके स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये कभी निश्चयनयकी मुख्यता और व्यवहारनयकी गौणता रखकर कथन किया जाता है, और कभी व्यवहारनयको मुख्य करके और निश्चयनयको गौण रखकर कथन किया जाता है। स्वयं विचार करे उसमें भी कभी निश्चयनयकी और कभी व्यवहारनयकी मुख्यता की जाती है। अध्यात्मशास्त्रमें भी जीवकी विकारी पर्याय जीव स्वयं करता है तो होती है, और वह जीवका अनन्य परिणाम है—इसप्रकार व्यवहारनयसे कहा या समझाया जाय, किन्तु उस प्रत्येक समयमें दृष्टिमें तो निश्चयनय एक ही मुख्य और आदरणीय है—ऐसा ज्ञानियोंका कथन है। शुद्धता प्रकट करनेके लिये कभी निश्चयनय आदरणीय होता है और कभी व्यवहारनय–ऐसा मानना भूल है। तीनों कालमें एकमात्र निश्चयनयके आश्रयसे ही धर्म प्रगट होता है–ऐसा समझना चाहिये।

साधक जीव प्रारंभसे अंत तक निश्चयकी ही मुख्यता रखकर व्यवहारको गौण ही करता जाता है, जिससे साधक दशामें निश्चयकी मुख्यताके बलसे साधकके शुद्धताकी वृद्धि ही होती जाती है और अशुद्धता टलती ही जाती है। इसप्रकार निश्चयकी मुख्यताके बलसे पूर्ण केवलज्ञान होने पर वहाँ मुख्यत्व गौणत्व नहीं होता और नय भी नहीं होते।

★ प्रवचनसारकी वर्णानुक्रम गाथासूची ★

	गाथा	पृष्ठ
अ		
अइसयमादसमुत्थं	१३	२०
अजधाचारविजुत्तो	२७२	४८७
अट्ठे अजधागहणं	८५	१४५
अट्ठेसु जो ण मुज्झदि	२४४	४५३
अत्थं अक्खणिवदिदं	४०	६८
अत्थि अमुत्तं मुत्तं	५३	६०
अत्थित्तणिच्छिदस्स	१५२	२६७
अत्थि त्ति य णत्थि त्ति	११५	२२५
अत्थो खलु दव्वमओ	६३	१६२
अधिगगुणा सामण्णे	२६७	४७६
अधिवासे व विवासे	२१३	३६२
अपदेसं सपदेसं	४१	६६
अपदेसो परमाणू	१६३	३१२
अपयत्ता वा चरिया	२१६	३६६
अपरिच्चत्तसहावेणुप्पाद	६५	१७०
अप्पडिकुट्ठं उवधिं	२२३	४०८
अप्पडिकुट्ठं पिंडं	★३४	४२४
अप्पा उवओगप्पा	१५५	३०२
अप्पा परिणामप्पा	१२५	२४५
अब्भुट्ठाणं गहणं	२६२	४७४
अब्भुट्ठेया समणा	२६३	४७५
अयदाचारो समणो	२१८	४००
अरसमरूवमगंधं	१७२	३२४
अरहंतादिसु भत्ती	२४६	४५६
अववदि सासणत्थं	२६५	४७७
अविदिदपरमत्थेसु	२५७	४६६
असुभोवओगरहिदा	२६०	४७२
असुहोदएण आदा	१२	१८
असुहोवओगरहिदो	१५६	३०७

	गाथा	पृष्ठ
आ		
आगमचक्खू साहू	२३४	४३५
आगमपुव्वा दिट्ठी	२३६	४३८
आगमहीणो समणो	२३३	४३३
आगासमणुणिविट्ठं	१४०	२७७
आगासस्सवगाहो	१३३	२६३
आदा कम्ममलिमसो धरेदि	१५०	२६४
आदा कम्ममलिमसो	१२१	२३८
आदा णाणपमाणं	२३	४०
आदाय तं पि लिंगं	२०७	३८४
आपिच्छ बंधुवग्गं	२०२	३७५
आहारे व विहारे	२३१	४२६
इ		
इंदियपाणो य तधा	१४६	२६०
इहलोगणिरावेक्खो	२२६	४१६
इह विविहलक्खणाणं	६७	१७६
उ		
उच्चालियम्हि पाए	★१५	३६६
उदयगदा कम्मंसा	४३	७२
उपज्जदि जदि णाणं	५०	८५
उप्पादट्ठिदिभंगा	१२६	२५५
उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते	१०१	१६३
उप्पादो पद्धंसो	१४२	२८१
उप्पादो य विणासो	१८	३०
उवओगमओ जीवो	१७५	३३२
उवओगविसुद्धो जो	१५	२३
उवओगो जदि हि	१५६	३०३
उवकुणदि जो वि	२४६	४५६
उवयरणं जिणमग्गे	२२५	४११
उवरदपावो पुरिसो	२५६	४७१

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

	गाथा	पृष्ठ
ए		
एक्कं खलु तं भत्तं	२२९	४२१
एक्को व दुगे बहुगा	१४१	२७९
एगंतेण हि देहो	६६	११४
एगम्हि संति समये	१४३	२८३
एगुत्तरमेगादी	१६४	३१४
एदाणि पंचदव्वाणि	★११	२६८
एदे खलु मूलगुणा	२०९	३८६
एयग्गगदो समणो	२३२	४३०
एवं जिणा जिणिंदा	१९९	३६६
एवं णाणप्पाणं	१९२	३५४
एवं पणमिय सिद्धे	२०१	३७३
एवं विदिदत्थो	७८	१३२
एवंविहं सहावे	१११	२१५
एस सुरासुरमणुसिंद	१	४
एसा पसत्थभूदा	२५४	४६५
एसो त्ति णत्थि	११६	२२८
एसो बंधसमासो	१८९	३४९
ओ		
ओगाढगाढणिचिदो	१६८	३२०
ओरालिओ य देहो	१७१	३२४
क		
कत्ता करणं कम्मं	१२६	२४७
कम्मत्तणपाओग्गा	१६९	३२१
कम्मं णामसमक्खं	११७	२३१
कालस्स वट्टणा से	१३४	२६३
किच्चा अरहंताणं	४	४
किध तम्हि णत्थि	२२१	४०५
किं किंचण त्ति तक्कं	२२४	४०६
कुलिसाउहचक्कधरा	७३	१२४
कुव्वं सभावमादा	१८४	३४३
केवलदेहो समणो	२२८	४१९
कोहादिएहि चउहि	★३१	४१८
ग		
गुणदोधिगस्स विणयं	२६६	४७८
गेण्हइ विधुणइ	★१९	४०५
गेण्हदि णेव ण	१८५	३४४
गेण्हदि णेव...परं	३२	५३
गेण्हदि व चेलखंडं	★१७	४०५
च		
चत्ता पावारंभं	७९	१३४
चरदि णिबद्धो णिच्चं	२१४	३९३
चागो य अणारंभो	★३५	४४६
चारित्तं खलु धम्मो	७	१०
चित्तस्सावो तासिं	★२५	४१२
छ		
छदुमत्थविहिद	२५६	४६८
छेदुवजुत्तो समणो	२१२	३९०
छेदो जेण ण विज्जदि	२२२	४०७
ज		
जदि कुणदि कायखेदं	२५०	४६१
जदि ते ण संति	३१	५१
जदि ते विसयकसाया	२५८	४७०
जदि दंसणेण सुद्धा	★२७	४१३
जदि पच्चक्खमजादं	३९	६६
जदि संति हि पुण्णाणि	७४	१२६
जदि सो सुहो	४६	७७
जधजादरूवजादं	२०५	३८२
जध ते णभप्पदेसा	१३७	२७०
जस्स अणेसणमप्पा	२२७	४१७
जस्स ण संति	१४४	२८४
जं अण्णाणी कम्मं	२३८	४४२
जं केवलं ति णाणं	६०	१०४
जं तक्कालियमिदरं	४७	७८
जं दव्वं तं ण गुणो	१०८	२१०
जं परदो विण्णाणं	५८	१००
जं पेच्छदो अमुत्तं	५४	९३
जादं सयं समंतं	५९	१०१
जायदि णेव ण णस्सदि	११९	२३५
जिणसत्थादो अट्ठे	८६	१४६

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

	गाथा	पृष्ठ
जीवा पोग्गलकाया	१३५	२६७
जीवो परिणमदि	९	१३
जीवो पाणणिबद्धो	१४८	२९२
जीवो भवं भविस्सदि	११२	२१९
जीवो ववगदमोहो	८१	१३९
जीवो सयं अमुत्तो	५५	९५
जुत्तो सुहेण आदा	७०	१२१
जे अजधागहिदत्था	२७१	४८५
जे णेव हि संजाया	३८	६५
जे पज्जयेसु णिरदा	९४	१६७
जेसिं विसएसु रदी	६४	१११
जो इंदियादिविजई	१५१	२९५
जो एवं जाणित्ता	१९४	३५८
जो खलु दव्वसहावो	१०९	२१२
जो खविदमोहकलुसो	१९६	३६०
जो जाणदि अरहंतं	८०	१३५
जो जाणदि सो णाणं	३५	५९
जो जाणादि जिणिंदे	१५७	३०५
जो णवि जाणदि एवं	१८३	३४२
जो ण विजाणदि	४८	८०
जो णिहदमोहगंठी	१९५	३५९
जो णिहदमोहदिट्ठी	९२	१५९
जोण्हाणं णिरवेक्खं	२५१	४६२
जो तं दिट्ठा तुट्ठो	★८	१५९
जो पक्कमपक्कं वा	★३३	४२३
जो मोहरागदोसे	८८	१५१
जो रयणत्तयणासो	★३०	४१५
जो हि सुदेण	३३	५५
ठ		
ठाणणिसेज्जविहारा	४४	७३
ण		
ण चयदि जो दु	१९०	३५१
णत्थि गुणो त्ति व	११०	२१४
णत्थि परोक्खं	२२	३८
णत्थि विणा परिणामं	१०	१५
ण पविट्ठो णाविट्ठो	२९	४८
ण भवो भंगविहीणो	१००	१८९
णरणारयतिरियसुरा जीवा	११८	२३३
णरणारयतिरियसुरा भजंति	७२	१२३
णरणारयतिरियसुरा संठाणा....	१५३	२९९
ण विणा वट्टदि णारी	★२४	४१२
ण वि परिणमदि ण	५२	८८
ण हवदि जदि सद्दव्वं	१०५	२०२
ण हवदि समणो त्ति	२६४	४७६
ण हि आगमेण	२३७	४४०
ण हि णिरवेक्खो	२२०	४०४
ण हि तस्स तण्णिमित्तो	★१६	३९९
ण हि मण्णदि जो	७७	१३१
णाणप्पगमप्पाणं	८९	१५२
णाणप्पमाणमादा	२४	४१
णाणं अट्ठवियप्पो	१२४	२४३
णाणं अत्थंतगयं	६१	१०७
णाणं अप्प त्ति मदं	२७	४५
णाणी णाणसहावो	२८	४७
णाहं देहो ण मणो	१६०	३०८
णाहं पोग्गलमइओ	१६२	३११
णाहं होमि परेसिं	२०४	३८०
णाहं होमि परेसिं..संति	१९१	३५३
णिग्गंथं पव्वइदो	२६९	४८२
णिच्छयदो इत्थीणं	★२१	४११
णिच्छिदसुत्तत्थपदो	२६८	४८०
णिद्धत्तणेण दुगुणो	१६६	३१७
णिद्धा वा लुक्खा वा	१६५	३१५
णिहदघणघादिकम्मो	१९७	३६२
णो सद्दहंति सोक्खं	६२	१०८
त		
तक्कालिगेव सव्वे	३७	६३
तम्हा जिणमग्गादो	९०	१५३
तम्हा णाणं जीवो	३६	६०
तम्हा तस्स णमाइं	★१०	१६५

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

	गाथा	पृष्ठ
तम्हा तह जाणित्ता	२००	३६७
तम्हा तं पडिरूवं	★२८	४१४
तम्हा दु णत्थि कोई	१२०	२३७
तम्हा समं गुणादो	२७०	४८३
तवसंजमप्पसिद्धो	★५	१३६
तस्स णमाइं लोगो	★२	६१
तह सो लद्धसहावो	१६	२५
तं गुणदो अधिगदरं	★४	११६
तं देवदेवदेवं	★६	१३६
तं सब्भावणिबद्धं	१५४	३००
तं सव्वट्ठवरिट्ठं	★१	३१
तिक्कालणिच्चविसमं	५१	८६
तिमिरहरा जइ दिट्ठी	६७	११५
तिसिदं बुभुक्खिदं	★३६	४८२
तेजो दिट्ठी णाणं	★३	११६
तेण णरा व	★६	१६०
ते ते कम्मत्तगदा	१७०	३२२
ते ते सव्वे समगं	३	४
ते पुण उदिण्णतण्हा	७५	१२७
तेसिं विसुद्धदंसण	५	५
द		
दव्वट्ठिएण सव्वं	११४	२२३
दव्वं अणंतपज्जय	४६	८३
दव्वं जीवमजीवं	१२७	२५२
दव्वं सहावसिद्धं	६८	१८२
दव्वाणि गुणा तेसिं	८७	१४८
दव्वादिएसु मूढो	८३	१४२
दंसणणाणचरित्तेसु	२४२	४४६
दंसणणाणुवदेसो	२४८	४५८
दंसणसंसुद्धाणं	★१४	३७०
दंसणसुद्धा पुरिसा	★७	१४२
दिट्ठा पगदं वत्थुं	२६१	४७३
दुपदेसादी खंधा	१६७	३१६
देवदजदिगुरुपूजासु	६६	११६
देहा वा दविणा	१६३	३५७
देहो य मणो	१६१	३१०
ध		
धम्मेण परिणदप्पा	११	१७
प		
पइडीपमादमइया	★२२	४११
पक्केसु अ आमेसु	★३२	४२३
पक्खीणघादिकम्मो	१६	३२
पयदम्हि समारद्धे	२११	३६०
पप्पा इट्ठे विसए	६५	११३
परदव्वं ते अक्खा	५७	६६
परमाणुपमाणं वा	२३६	४४४
परिणमदि चेदणाए	१२३	२४२
परिणमदि जदा	१८७	३४७
परिणमदि जेण	८	१२
परिणमदि णेयमट्ठं	४२	७१
परिणमदि सयं	१०४	२००
परिणमदो खलु	२१	३६
परिणामादो बंधो	१८०	३३८
परिणामो सयमादा	१२२	२४०
पविभत्तपदेसत्तं	१०६	२०४
पंच वि इंदियपाणा	★१२	२६०
पंचसमिदो तिगुत्तो	२४०	४४६
पाडुब्भवदि य	१०३	१६८
पाणाबाधं जीवो	१४६	२६३
पाणेहिं चदुहिं	१४७	२६१
पुण्णफला अरहंता	४५	७५
पेच्छदि ण हि.....	★२०	४१०
पोग्गलजीवणिबद्धो	१२८	२५३
फ		
फासो रसो य गंधो	५६	६७
फासेहिं पोग्गलाणं	१७७	३३५
ब		
बालो वा बुड्ढो	२३०	४२४
बुज्झदि सासणमेदं	२७५	४६१

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

	गाथा	पृष्ठ
भ		
भणिदा पुढवि-	१८२	३४१
भत्ते वा खमणे	२१५	३६४
भंगविहूणो य	१७	२८
भावेण जेण जीवो	१७६	३३४
म		
मणुआसुरामरिंदा	६३	११०
मणुवो ण होदि	११३	२२१
मरदु व जियदु	२१७	३६८
मुच्छारंभविजुत्तं	२०६	३८२
मुज्झदि वा रज्जदि	२४३	४५२
मुत्ता इंदियगेज्झा	१३१	२५६
मुत्तो रूवादिगुणो	१७३	३२६
मोहेण व रागेण	८४	१४४
र		
रत्तो बंधदि कम्मं	१७६	३३७
रयणमिह इंदणीलं	३०	५०
रागो पसत्थभूदो	२५५	४६७
रूवादिएहिं रहिदो	१७४	३३०
रोगेण वा छुधाए	२५२	४६३
ल		
लिंगग्गहणे तेसिं	२१०	३८८
लिंगम्हि य इत्थीणं	★२६	४१२
लिंगेहिं जेहिं दव्वं	१३०	२५७
लोगालोगेसु णभो	१३६	२६८
व		
वण्णरसगंधफासा	१३२	२५६
वण्णेसु तीसु एक्को	★२६	४१५
वत्थक्खंडं दुद्दिय	★१८	४०५
वदसमिदिंदियरोधो	२०८	३८६
वदिवददो तं देसं	१३६	२७४
वंदणणमंसणेहिं	२४७	४५७
विसयकसाओगाढो	१५८	३०६
वेज्जावच्चणिमित्तं	२५३	४६४
स		
स इदाणिं कत्ता	१८६	३४५
सत्तासंबद्धेदे	६१	१५६
सदवट्ठिदं सहावे	६६	१८६
सद्दव्वं सच्च गुणो	१०७	२०७
सपदेसेहिं समग्गो	१४५	२८८
सपदेसो सो अप्पा	१८८	३४८
सपदेसो सो अप्पा	१७८	३३६
सपरं बाधासहिदं	७६	१२६
सब्भावो हि सहावो	६६	१७४
समओ दु अप्पदेसो	१३८	२७२
समणं गणिं गुणड्ढं	२०३	३७६
समणा सुद्धुवजुत्ता	२४५	४५४
समवेदं खलु दव्वं	१०२	१६५
समसत्तुबंधुवग्गो	२४१	४४८
सम्मं विदिदपदत्था	२७३	४८८
सयमेव जहादिच्चो	६८	११७
सव्वगदो जिणवसहो	२६	४३
सव्वाबाधविजुत्तो	१६८	३६४
सव्वे आगमसिद्धा	२३५	४३७
सव्वे वि य अरहंता	८२	१४०
संति धुवं पमदाणं	★२३	४११
संपज्जदि णिव्वाणं	६	६
सुत्तं जिणोवदिट्ठं	३४	५७
सुद्धस्स य सामण्णं	२७४	४८६
सुविदिदपयत्थसुत्तो	१४	२१
सुहपरिणामो पुण्णं	१८१	३३६
सुहपयडीण विसोही	★१३	३४६
सेसे पुण तित्थयरे	२	४
सोक्खं वा पुण दुक्खं	२०	३४
सोक्खं सहावसिद्धं	७१	१२२
ह		
हवदि व ण हवदि	२१६	४०१
हीणो जदि सो आदा	२५	४१

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

★ कलशकाव्योंकी वर्णानुक्रम सूची ★

	श्लोक	पृष्ठ
आत्मा धर्मः स्वयमिति	५	१६०
आनन्दामृतपूर	२०	५०४
इति गदितमनीचै-	२२	५०५
इत्यध्यास्य शुभोपयोग-	१७	४८४
इत्युच्छेदात्परपरिणतेः	८	२५१
इत्येवं चरणं पुराणपुरुषैः	१५	४२६
इत्येवं प्रतिपत्तुराशय	१६	४५१
जानन्नप्येष विश्वं	४	६०
जैनं ज्ञानं ज्ञेयतत्त्व	१०	३७०
ज्ञेयीकुर्वन्नञ्जसा	११	३७०
तन्त्रस्यास्य शिखण्ड	१८	४८५
द्रव्यसामान्यविज्ञान	६	२५१
द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य	१३	३७२
द्रव्यानुसारि चरणं	१२	३७१
द्रव्यान्तरव्यतिकरा-	७	२५०
निश्चित्यात्मन्यधिकृत	६	१६१
परमानन्दसुधारस	३	२
वक्तव्यमेव किल	१४	४०३
व्याख्येयं किल	२१	५०४
सर्वव्याप्येकचिद्रूप	१	१
स्यात्कारश्रीवासवश्यैः	१६	५०२
हेलोल्लुप्तमहामोह	२	२

*

—'तत्त्वप्रदीपिका' टीकामां उद्धृत गाथाओंकी सूची—

	पृष्ठ			
जावदिया वयणवहा	५०१	गो० कर्मकाण्ड	गाथा	८६४
णिद्धस्स णिद्धेण	३१८	गो० जीवकाण्ड	,,	६१४
णिद्धा णिद्धेण	३१७	गो० जीवकाण्ड	,,	६१२
परसमयाणं वयणं	५०१	गो० कर्मकाण्ड	,,	८६५

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

'तात्पर्यवृत्ति' टीकामां उद्धृत अवतरणोंकी वर्णानुक्रम सूची

	पृष्ठ	
अवाप्योरलोपः	४	
अंतिमतिगसंघडणं	४१३	कर्मकाण्ड, ३२.
उत्पादव्ययध्रौव्य	१८६, २१४	तत्त्वार्थसूत्र, ५, ३०.
एकं द्वौ त्रीन् वा	३५	तत्त्वार्थसूत्र, २, ३०.
एको भावः सर्वभाव	८५	
एगो मे सस्सदो	१४८	मूलाचार, ४८.
औदयिका भावा	७६	
कायस्थित्यर्थमाहारः	३५	
किं पलविएण वहुणा	२८७	बारस अणुवेक्खा, ६०.
गुणजीवा पज्जत्ती	४३३	गो० जीवकाण्ड, २.
छट्ठो त्ति पढमसण्णा	३५	,, जीवकाण्ड, ७०१.
जेंसि अत्थिसहावो	१६७	पञ्चास्तिकाय, ५.
जो सकलणयरज्जं	३७८	
ण बलाउसाहणट्ठं	३५	मूलाचार, ४८१.
णिद्धस्स णिद्धेण	३१८	गो० जीवकाण्ड, ६१४.
णोकम्मकम्महारो	३५	भावसंग्रह, ११०.
तवसिद्धे णयसिद्धे	३६७	सिद्धभक्ति, २०.
देशप्रत्यक्षविद्	४६०	चारित्रसार, पृ. २२.
पुढवी जलं च	२६०	गो० जीवकाण्ड, ६०१.
पुंवेदं वेदंता	४१३	सिद्धभक्ति, ६.
भावा जीवादीया	१६७	पञ्चास्तिकाय, १६.
भावान्तरस्वभावरूपो	१६०	
भिण्णउ जेण ण जाणियउ	४३३	दोहापाहुड, १२८.
भुक्त्युपसर्गाभावात्	३४	नन्दीश्वरभक्ति (?)
ममत्तिं परिवज्जामि	४२०	मूलाचार, ४६.
मुख्याभावे सति	४१३	आलापपद्धति
मोहस्स वलेण घाददे	३४	गो० कर्मकाण्ड, १६.
व्यापकं तदतन्निष्ठं	४६	
शुद्धस्फटिकसङ्काशं	३४	
सद्दो खंदप्पभवो	२६३	पञ्चास्तिकाय, ७६.
समगुणपर्यायं द्रव्यम्	४०	
समसुखशीलितमनसां	१०६	
सम्यग्दर्शनज्ञान	४५१	तत्त्वार्थसूत्र, १, १.
समाहारस्यैकवचनम्	३८७	
सावद्यलेशो	४६२	स्वयम्भूस्तोत्र, ५८.